विषय-सूची ।

विषयसूची ॥ १ ॥



ममलपाहुड़ ग्रन्थ—प्रथम भागके दातारोंकी नामावली।

|||

७०१) स्वर्गीय सेठ मूलचन्दजी समैयाकी धर्मपत्नी कस्तूरीबाईजी।

१०१) स्वर्गीय सेठ गुरप्रसादजी समैयाकी धर्मपत्नी भोगाबाईजी।

१०१) भाई मोहनलाल भगवानदास सोभालाल समैया—सागर।

१०१) भाई मूलचन्द जीवनदास समैया—सागर।

१००४) कुल सहायता। तथा बाकी द्रव्य चैत्यालय सागरका लगा है।

—प्रकाशक।



विषयसूची
॥ २ ॥

शुद्धाशुद्धि पत्र।

पृ० १० प्रारंभमें छूटगया।

गुरु गुरयति हो लोयालोय सु ममल सुभाए।

अर्थ—गुरुमहाराज बड़े ज्ञानी हैं, वे लोकालोकके पदार्थोंको निर्मल स्वभावमें द्रव्यदृष्टिसे जैसाका तैसा जानते हैं।

पृ०	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
२४	२१	उसे ही	उससे ही
३५	१८	आगम	अगम
४८	११	न कहत्रू न	न कहु इन
,,	१३	पंच मों	पंच मो
५०	७	ज्ञानावरणादि .है	×× (नहीं चाहिये)
६०	७	तित्थपर	तित्थयर
६१	१५	सइज	सहज
६९	१	भद्दिम	मद्दिम
७६	१५	गम्य	भव्य
७९	१५	अभिय	अमिय
९५	५	उनका	उनका सा
,,	२२	दान कर हैं	दान करते है
९६	८	भाव रहित	भय रहित
९८	१५	जनिपऊ	जानि यऊ
९९	६	गले दरिना	गलेहरिना

पृष्ठ	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
१०६	१५	पिपक	पिपक्र
११२	८	धारण करेंगे	धारण न करेंगे
,,	१८	भावना	भगवान
११५	१	पात्र	पांच
,,	९	तृप्ति	प्राप्ति
११८	१८	भव	भय
१२१	५	शङ्का रहित	शङ्का सहित
१२६	११	हिंसाघन्दी	हिंसानन्दी
१२९	४	शब्द	भाव
१३१	१८	आत्मारूपी	अ त्मारूपी कमल
१३३	६	स्वाभालिक	स्वाभाविक
१३५	६	भुनन्तु	मुनन्तु
१३९	१३	जिननाणी	जिनवाणी
१४१	३	वियोग	संयोग
१४२	३	अणणणायं	अणण्ण मविसेसं
१५३	१९	शल्य रहित	शल्य सहित
१५९	६	आरूव	अरूव
१६१	२२	घन्ध	बन्द
१७२	१	समाउ	समाउ

पृष्ठ	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
१९५	१७	एक ही	एकट्टी
२१०	१९	वह जगह	वह जहाज
२१३	९	मिल जाते	मिट जाते
२२२	१५	ममल	समल
२३६	१६	सुखं	सुरयं
२४४	७	तप करके	तय करके
२४५	१	सन्तोष	सन्ताप
२५३	१५	सात पर्यायों	समस्त पर्यायों
२५४	२३	जानने योग्य	न जानने योत्य
२५६	१८	क्रोधकी घात	क्रोधकी आग
२६४	३	१४	६४
२९१	११	अव सहाव	अप सहाय
२७६	१०	अघ	ऊर्द्ध
२२१	३	भय जिनस्य	भय विनस्य
२९८	२०	विनयं	विषयं
२९९	२	नरकं	तरकं
३०८	५	आवरन	आयरन
३१२	१५	अरुह सुभय	अरुह सुभाय
३२०	५	अनया सह	अवयासह
३२२	१	कालके	कमलके
३२६	१	परम दुष्ट	परम इष्ट
३२७	१४	विकसित	वैसे२ विकसित
३३४	२२	अघातीय	घातीय
३४९	१३	करनेनाले	करनेवाले
३५२	३	ज्ञान यहीं	ज्ञान नहीं
३५४	१६	आकर्म	आकर्न
३५८	२१	निष्काम	निष्कार्य
३६८	५	विश्राम	विभाव
३६०	२३	दृष्टिके	इष्टके
३७३	६९	धर्ममय	धर्मध्यान
३७५	२२	विरोध	निरोध
३८७	१३	विधि	निधि
४०५	१८	वश	वंश
४०६	१६	परवंसं	परवे सं
४१७	१८	स्वाध्याय	स्वध्याय
४१८	७	तीन सुत	तिन सुत
४२०	१३	आगासाद	आगासोद

भूमिका पृ० ४ ला० २८ सर्व भव्योंको - सर्व भयोंको





भूमिका ।

इस श्री ममल पाहुड़ ग्रन्थके कर्ता श्री जिन तारणतरण स्वामी बड़े भारी जैनसिद्धातके ज्ञाता और अध्यात्मरसके प्रेमी महात्मा इस मध्यप्रांतमें होगये हैं। इनका जन्म विक्रम सम्वत् १५०५ व समाधिमरण वि० स० १५७२ में मल्हारगढ़में हुआ था, जहा उनकी स्मृतिमें बड़ी विशाल शानदार श्री नशियाजी (श्री निश्रेयजी) बनी है, जो ग्वालियर राज्यमें वेतवा नदीके तटपर है। खास नदीतटपर उनके सामायिक करनेका चबूतरा बना है। तथा नदीके मध्यमें सामायिक करनेके तीन चबूतरे नजर आते हैं। एक तो बहुत ही स्पष्ट है। वह अच्छे ज्ञानयोगके पण्डित आत्मरसिक थे, ऐसा स्वामीजी द्वारा रचित ग्रन्थोंसे झलकता है।

इस ममल पाहुड ग्रन्थमें अध्यात्मरससे पूर्ण अनेक चालको लिये हुए भजन हैं जिनको गानेसे व अर्थ समझनेसे मन एकदम अध्यात्मरसमें मगन होजाता है। गम्भीर व सूक्ष्म आत्मानुभवकी छटा पद पदपर झलक रही है। अध्यात्मीक कथन होनेसे एक ही विषयका वारवार विवेचन है, तथा शब्दोंका भी वारवार एकसा व्यवहार है। अध्यात्म मननमें इस बातकी आवश्यक्ता पड़ती ही है। क्योंकि मनन भी तो एक अपने शुद्धात्माका ही वारवार करना होता है।

इस ग्रन्थका उल्था बहुत कठिन कार्य था। परन्तु श्री जिनेन्द्रके चरण प्रतापसे व श्री स्वामी तारणतरणजीके स्मरणसे यथा शक्ति अर्थको ठीक समझकर उसका भावार्थ खोला गया है।

क्योंकि इस ग्रथमें भिन्न २ प्रकारके भजन हैं अतएव पुरा भजन यथासभव शुद्ध लिखकर फिर उसका अर्थ एक साथ करके कुल एक भजनका भावार्थ लिखा है। इसी पद्धतिसे पाठकोंको लाभ होता जानकर यह रीति वर्ती गई है।

हमारे पास नीचे प्रमाण तीन लिखित प्रतिया भाई मथुराप्रसादजी सागर द्वारा प्राप्त हुई थी—

(१) पुरानी प्रति जिसके अंतमें है–रति भय पिपनिकु ममलपाहुड़ ग्रंथु जिन तारन तरन विरचित सम उत्पत्तिता ३२२२। संवतु १६३७ वों चैत्र वदि आमावस्या मगलवारको सास्त्र प्रति पूर्ण मौ सास्त्र लेषीऊ विन्यानी सिंघाई जोग्य लिषितं गमनु पाड़े लिख दीयो।

(२) पुरानी प्रति जिसके अंतमें है ३१९८। इति भय पिपनिक ममलपाहुड ग्रंथु जिन तारन तरन विरचित सम उत्प-

मिता, संवत १६८१ वर्षे आषाढ़ वदी १३ बृहस्पति सास्त्र संपूर्ण लिखितं । यह श्रीराम श्रीपाडे सुमतिको उपदेशसे असहटीनिके चैत्यालें लिप्यो । मानिकचंद गोलाराड़ेने लिपायो ।

(३) आधुनिक ३१९९ इति श्री मय पिपिनक ममलपाहुड़ ग्रन्थ जिन तारनतरन विरचित सम उत्पंनित मिती पूस वदी १३ संवाद १९७० गुरवार मुकाम श्री निसईजी लिखित मंगलजीत श्री सागर चैत्यालेको उतारो ।

हम इस ग्रंथका तीसरा भाग ही उल्था कर सके गाथा १०१५ तक ।

ऊपरकी दो प्राचीन प्रतियोंसे बहुत मदद मिली है। वे प्राय शुद्ध लिखी हैं। इस ग्रन्थमें अध्यात्मरसके पीनेवालोंको अमृतमई फलोंके समान बडे २ उत्तम भजन हैं जिनमें शुद्धात्माके गुणोंको निश्चय नयकी प्रधानतासे वर्णन किया गया है । पाठकोंके ज्ञानके लिये हम कुछ वाक्य नीचे देते हैं जिनको पढनेसे पूर्ण ग्रंथको पढनेकी रुचि होसकेगी ।

भजन नं० (६) तत्वसार फूलना गाथा ८६ से १०२ तक ।

जं दर्सन हो मोहउ अंधो, भ्रमन सुभाए । सो भमिहो हो आदि अनादि, जुकम्म सहाए ॥
अनेयह हो विभ्रम सहियो, पर्जय दिट्ठी । तं ज्ञान अन्मोयह हो, विलयो दर्सन दिट्ठी ॥ १० ॥

भावार्थ—जो यह अन्धा करनेवाला व भवभवमें भ्रमण करानेवाला दर्शन मोहनीयकर्म है उस आदि व अनादि दर्शन मोहनीय कर्मकी सहायतासे यह जीव संसारमें भ्रमा है । प्रवाहकी अपेक्षा कर्मका सम्बन्ध जीवके साथ अनादिसे है । नवीन बन्धकी अपेक्षा सादि है । अनेक प्रकारके मिथ्यात्वभावके कारण इस संसारी जीवकी जो पर्यायबुद्धि होरही है, परमें आत्मबुद्धि होरही है वह दर्शनमोहकी मिथ्या दर्शनरूपी दृष्टि आनन्दमय आत्मज्ञानके मननसे करणलब्धिके प्रतापसे चली जाती है और सम्यग्दर्शनका प्रकाश होजाता है।

(९) गर्भ चौवीसी गाथा १३० से १५४ ।

तं पदम सुरं सुरयं, तं पदम कमल धुरयं । पद विंद परम मिलियं, तं नन्त कम्म गलियं ॥ ५ ॥

भावार्थ—वे ही अरहन्त अपने कमल समान आत्माको प्रफुल्लित करनेके लिये बड़े तेजस्वी सूर्य हैं। वे स्वयं कमलोंमें सबसे अग्रगामी कमल समान शोभायमान हैं । अर्थात् परमात्म-स्वरूप हैं। उन्होंने श्रेष्ठ ज्ञानमई पद पालिया है, उनके अनन्त कर्म गल गये हैं।

(१०) पात्र विसेष गाथा १५५ से १८४ तक ।

दानं चौविहि उत्ति पउ ज्ञानाहार संजुत्तु । भेषज दान जु उत्त जिन, अभयं भय विलयंतु ॥ १३ ॥

भूमिका
॥ २ ॥

नन्द भाव जो परिनमउ, पद पखलन जिन उत्तु। आहारदान नन्द मउ, उवन पत्तु संजुत्तु ॥१६॥
पत्तु विक्त पर्जय गलिय, सल्यसंक विलयन्तु। पत्तह दत्त सुभाव मुनि, समय सिद्धि संपत्तु ॥३०॥

भावार्थ—व्यवहारमें दान चार प्रकार कहा गया है। प्रथम ज्ञानदान, दुसरा आहारदान, तीसरा औषधिदान जैसा जिनेन्द्रने कहा है। चौथा अभयदान जो भयोंको मिटानेवाला है ॥ १२ ॥ पात्र दान देते हुए पात्रके पगोंका प्रछालन करना चाहिये फिर आहारदान देना चाहिये। सो आत्मानुभव करते हुए जो आनदमावमें परिणमन करना है वही मानो अपने आत्माके पद धोना है अर्थात्आत्मानदके अभावमें जो मलीनता थी उसको मिटा देना है ऐसा जिनेन्द्रने कहा है। जब आत्मा अपने आपमें मगन होजाता है आत्मयोग पैदा होजाता है तब यह आत्मा दाता अपने ही आत्मारूपी पात्रको आनदमई आहारदान देता है। आत्मानुभव करते हुए परम तृप्ति होती है, आत्माका बल बढ़ता है ॥ १६ ॥ जब पर्यायें गल जाती हैं तब सर्व भाव व सर्व शकाएं विला जाती हैं। इसतरह पात्रदानका स्वभाव मनन करो। इस स्वभावके मननसे आत्मा सिद्धिको पाता है ॥ ३७ ॥

(१२) दान पात्र फूलना गाथा १९४ से २२० तक।

कमल सहावे पत्त जुई, सिद्ध सरूव स उत्तरिना। कारन कार्जह कमल रुई, दत्त सहाव स उत्तरिना ॥५॥
सयनासन सम भाव कमु, सहजानन्द संजुत्तुरिना। न्यान विन्यान अन्मोय मऊ, ममल सुदर्सन दिस्टिरिना ॥१३॥

भावार्थ—जो पात्र मुनि हैं वे कमलके समान प्रफुल्लित अपने स्वभावमें लीन हैं, वही सिद्ध भगवानके समान स्वरूप हैं जिसके समान और कोई रूप नहीं है। अपने आत्मारूपी कमलमें रुचि या प्रतीति वही कारण है, वही कार्य है। आत्मरुचिसे ही प्रतीति गाढ़ होती है। चतुर्थ गुणस्थानमें जो आत्मरुचिरूप सम्यग्दर्शन है वही बढ़ते बढ़ते श्रुतकेवली मुनिके अवगाढ़ सम्यक्त होजाता है और अरहन्तके वही परमावगाढ़ सम्यक्त होजाता है। आत्मरुचि ही दातार है, आत्मरुचि ही पात्र है। आपसे आपको मनन करनेसे आत्माका स्वभाव पुष्ट होता जाता है। आत्माकी गाढ़ रुचिके समान कोई दातार नहीं है। सम्यग्दर्शन ही आत्माको आत्मानन्द प्रदान करता है। आत्माको पुष्ट करते करते उसको सिद्ध बना देता है ॥ ५ ॥ उनके शयनका व बैठनेका स्थान एक सममाव है जिसके समान कोई और शयनासन नहीं होसक्ता है। वे सहजानन्दमें मग्न है, उनके समान कोई सहजानदी संत नहीं हैं। वे आनन्दमय स्वानुभवमई स्वसंवेदन ज्ञानस्वरूप हैं। शुद्ध सम्यग्दर्शन जैसा उनके भीतर शोभायमान है वैसा और कहीं नहीं है। वास्तवमें जहा शुद्धात्मानुभव है वहा ही वास्तवमें निश्चय सम्यग्दर्शन है ॥ १३ ॥

(१५) चौविहि दर्सन गाथा २६३ से २८८।

भय तव श्रुत अन्यान मउ, विवरह मुह योलंतु। भय भीओ पर्जय सहिउ, भव संसार भमंतु ॥ १८॥
भय विपिनक तं अमिय पउ, ममल रमन रस उत्तु। कमल सहावे न्यान पउ, न्यान विंद दरसंतु ॥२१॥

भावार्थ—वह मिथ्यादृष्टी अज्ञानमई मिथ्या व्रत, तप व शास्त्रकी घोर भेजानेवाली बातोंको अपने सदोष मुखसे बोला करता है, ऐसा धर्मका भीरु व कायर प्राणी पर्यायमें रत रहता हुआ अनेक जन्मोंमें भरे हुए संसारमें भ्रमण किया करता है ॥ १० ॥ वह आत्मीक पद सर्व भय शंकाओंको मिटानेवाला है यह अविनाशी अमृतमई पद है, यहा शुद्ध स्वभावकी रमणताका स्वाद आता है ऐसा कहा गया है। वह प्रफुल्लित स्वभावरूपी ज्ञानमई पद है। यहा ज्ञानका अनुभव या शुद्धात्मानुभव दिख जाता है ॥ २१ ॥

(१६) कमल छन्द गाथा २८९ से ३०२।

कमलं उवनं कमलं सुवनं, कमलं अगय कमल सुरयं।
कमलं विन्यान पयोहरहं, कमलं पय पर्म पदं ममल ॥ २ ॥
कमलह अन्मोय सु सिद्धि पऊ, कमलह कम्मान यन्तु पिपऊ।
कमलह सुह मुक्ति सुपर्म पऊ, भय पिपिय भन्तु सुद्ध सिद्धि गऊ ॥ १३ ॥

भावार्थ—ऐसा स्वात्मानुभवमें रमण करनेवाला कमल समान प्रफुल्लित आत्मा ही प्रकाशरूप है व यही कमल शोभनीक वन है जहा आतमा बड़े प्रेमसे रमण करता है। यही कमलरूप आतमा अविनाशी है व यही सम्यग मदिरा है जिसका पान कर योगी आत्मामें उन्मत्त होजाते हैं। यह कमल समान आत्मा ही सम्यग्ज्ञानरूपी मेघ है जिससे आत्मीक अमृत जलकी वर्षा होती है। वह कमल सम आत्मीक पद ही शुद्ध श्रेष्ठ पद है जहा मुमुक्षु जीव अपना स्थान जमाते हैं ॥ २ ॥ यही स्वात्मानुभवमें रमण करनेवाला आत्मारूपी कमल आनन्दरूप सिद्ध पद है अर्थात् सिद्धपना यही शोभता है। सिद्ध समान शुद्धात्माका ज्ञान यहा विद्यमान है। इसी कमलके प्रभावसे कर्मोंके बन्ध क्षय होजाते हैं। यही कमल स्वय मुक्तिका सुन्दर परमपद है। जो भव्य जीव सर्व भयोंको वश करके व शंकाओंको छोडकर इस कमलमें विश्राम करता है वह स्वयं सिद्ध गतिको प्राप्त कर लेता है ॥ १३ ॥

(२०) कमल विसेष ४१८ से ४४५ तक ।

कमल विन्यान संजुत्तं, कमलं कलियं च अप्प सुद्धप्पा ।
परमप्पं परम पदं, ममल सहावेन कम्म संषिपनं ॥ ९ ॥

कमलं न्यान सहावं, अन्यान सहकार सकल विलयन्तो ।
भय विनास भव अन्तं, ममल दिस्टिं च सल्य विलयं च ॥ १० ॥

भावार्थ—इस आत्मारूपी कमलमें स्वपरका भेदविज्ञान भरा है । यह कमलवत् आत्मा शुद्धात्माका ही अनुभव करता है वहीं परमात्माका परम पद विराजता है । इस शुद्धोपयोगके प्रभावसे कर्मोंका क्षय होता है ॥ ९ ॥ यह आत्मारूपी कमल ज्ञान स्वभावमय है । इसके सामने अज्ञान सम्बंधी सर्व भाव विला जाते हैं । इस ज्ञान स्वभावमें रमनेसे भय दूर होजाता है व संसारका अंत होजाता है । इस शुद्ध आत्मीक शिक्षासे सर्व शल्यें दूर होजाती है ॥ १० ॥

(२७) ह्रींकार गाथा ५१० से ५४३ तक ।

ह्रींकारं दर्सन दिट्ठी, दर्सन दर्सेइ कम्म गलियं च ।
विकहा सरनि विमुक्कं, भय षिपियं ममल न्यान सहकारं ॥ २७ ॥

संसार सरीर सु विषयं, ममल सहावेन समल विलयंती ।
तारन तरन सु समयं, न्यान बलेन निव्वुए जंति ॥ ३४ ॥

भावार्थ—ह्रीं मंत्रसे सम्यग्दर्शनका अनुभव होता है । वह सम्यग्दर्शन आत्माका दर्शन करता है तब सर्व कर्म शिथिल होजाते हैं, कर्मकी जड़ कट जाती है, विकथाओंमें परिणमन छूट जाता है, संसारका भय मिट जाता है और शुद्ध ज्ञान प्रगट होजाता है ॥ २७ ॥ संसार शरीर और भोगोंसे वैराग्य होजाता है । शुद्ध स्वभावके द्वारा सर्व मलीन भाव विला जाते हैं, तारनतरन स्वसमय-रूप अरहंतपद प्रगट होजाता है । वे अरहंत केवलज्ञानके बलसे निर्वाण पहुंच जाते हैं ॥ ३४ ॥

(३२) जिनेन्द विंद गाथा ६२८ से ६३८ तक।

जिनेन्द विंद लोय लोय ऊर्ध सुद्ध उत्तयं, तं न्यान दि्स्टि परम इस्टि पर्म भाव जलपियं।
तं कम्म षेउ मोषु हेउ भव्व लोय पोसियं, आनन्द नन्द चेय नन्द परम नन्द नन्दितं ॥ ३ ॥
कम्म ठग ठितं अनिस्ट ममल भाव छिन्नियं, तं सुद्ध न्यान सुद्ध ज्ञान नन्त नन्त दर्सियं।
तं राय दोस मिथ्याभाव सल्य भय निकंदनो, तं पर्म भाव पर्म उत्तु परम भाव लष्यनो ॥ ४ ॥

भावार्थ—श्री जिनेन्द्र भगवान लोकालोकके ज्ञाता हैं, उन्होंने शुद्ध स्वरूपका कथन किया है। वे ज्ञान दृष्टिके रखनेवाले हैं, भव्योंको परमप्रिय हैं। वे शुद्धोपयोगरूप आत्मानुभवसे उत्पन्न शांत अमृतमई जलका सदा पान करते रहते हैं। उन्होंने कर्मोंको क्षयकर व मोक्षमार्गका उपदेश देकर भव्यजीवोंको संतोषित किया है। वे आत्मानन्दमें मगन हैं, वे चिदानन्दी हैं, वे उत्कृष्ट अतींद्रिय सुखमें रमण कर रहे हैं ॥ ३ ॥ श्री जिनेन्द्रने कर्मरूपी ठगके अशुभ फलको अपने शुद्ध भावके द्वारा नाश कर दिया है। उन्होंने शुद्ध ज्ञानके द्वारा व शुद्ध आत्मध्यानके द्वारा अनन्तानन्त पदार्थोंको देख लिया है। उन्होंने रागद्वेष मिथ्यात्व शल्य व सर्व भय निवारण कर दिया है। वे उत्कृष्ट भावमें तल्लीन हैं। वे शुद्धोपयोगका अनुभव करते हैं। उन्होंने इसी शुद्धोपयोगमई अनुभवका कथन किया है ॥ ४ ॥

(३४) अचष्य दर्सन गाथा ६५० से ६७४।

अचष्य दर्सन दर्स, अचष्य रूवेन पर्जाव विलयन्ती।
जनरंजन सहाव गलियं, गलियं रागं च न्यान विन्यानं ॥ ९ ॥
अचष्य विभ्रम सहियं, जोतिष कलाप परपंच दर्स च।
अनेयं भयभीय न्यानं, अन्मोय भयभीउ विलयन्ति ॥ २२ ॥

भावार्थ—जो आत्माका दर्शन देख लेता है उसके मनके द्वारा होनेवाले परिनाम मिट जाते हैं। जगके मानवोंको प्रसन्न करूं ऐसा भाव भी नहीं रहता है। तथा राग सहित सर्व ज्ञान विज्ञान गल जाता है। वीतराग विज्ञानमय भाव प्रगट होजाता है ॥९॥ जब मन मिथ्यात्व सहित होता है तब यह संसारलिप्त प्राणी ज्योतिष सामुद्रिक आदि विकल्पोंके भीतर चित्तको लगाता है और रात दिन नानाप्रकार भयोंसे गृसित रहता है, परन्तु जिसकी मगनता ज्ञानानन्दमें है उसको कोई भय नहीं होता है ॥ २२ ॥

(३७) जोगी फूलना गाथा ७१९ से ७४३ तक।

जिनवर उत्तउ ममल सरूवे, उवनो दाता देउ। अमिय रसायन धम्मह सहियो, मुक्ति पन्थ दर्सेइ ॥ ६ ॥

भावार्थ—श्री जिनेन्द्रने कहा है कि यह आत्मा शुद्ध स्वरूपका धारी है। यह आत्मादेव है, यही आनन्द दातार है, यही प्रकाशमान है। यह अमृतरूपी रसायनको पिलानेवाले रत्नत्रयमई धर्मको रखनेवाला है। यही मोक्षमार्गका अनुभव करनेवाला है ॥ ६ ॥

सहयारह संयोगे जोगी, अमिय रमन रस जुत्तु। तारनतरन सहावह सहजे, धम्म रमन सिवसंतु ॥ २४ ॥

भावार्थ—इस अरहतकी दिव्यवाणीकी सहायतासे योगी आनन्दामृत–रसमें रमण करते हैं, उनके भी सहज हीमें तारन तरन स्वभाव प्रगट होजाता है, वे भी अरहत परमात्मा होजाते हैं। वे अपने आत्मीक धर्ममें रमण करते हुए मोक्षरूप और शान्त होजाते हैं ॥ २४ ॥

(४२) जिन आयरो गाथा ८१९ से ८४५ तक।

ऊंवंकार उवन पौ उचन उवन मौ, उव उवन स विंद विन्यान पओ।
जिन जिनपति जिनय जिन अरूवी, जिननन्द सनन्द स उत्तु सुयं जिन आयरो ॥ १ ॥

भावार्थ—ॐ मंत्रमें परमात्माका पद प्रगट है, जो परमात्मा सदा प्रकाशमान है, वहीं स्वानुभव स्वरूप ज्ञानका पद प्रकाशित है। वे ही जिन हैं, वे ही जीतनेवाले हैं, वे ही वीतरागी जिन हैं, वे ही अमूर्तीक आत्मा है। वे ही जिन आनन्द मगन कहे गये हैं। परमात्मा स्वय जिन स्वरूप हैं। इस आत्मा जिनेन्द्रका आचरण करे। इस अपने परमात्मादेवका ध्यान करो ॥ १ ॥

(४४) सुह गम्य रमन फूलना गाथा ८७३ से ८९३ तक।

आरतिहि रयन पउ, इस्ट संजोय मउ, न्यान विन्यान स चिंतु।
तं नन्त सहज रुई, नन्द परम पउ, तं पर परजय विलयंतु ॥ ११ ॥
तं रौद्र जिनुत्तु, कम्मु विलय सुई, न्यान विन्यान सहाउ।
जिन उत्त नन्द मौ, कम्मु गलिय सुई, षिपि कम्मु मुक्ति सभाउ ॥ १२ ॥

भावार्थ—निश्चयनयसे आरति ध्यान वह है जहा रत्नत्रयपदमें सर्व तरफसे रति हो, जहा परम इष्ट परमात्माके स्वभावका संयोग हो, जहा भेदविज्ञान पूर्वक शुद्ध ज्ञान स्वभावका चिन्तवन हो, जहा स्वाभाविक अनन्त गुणमई आत्मामें रुचि हो। जहा परमा-

त्माके पदमें आनन्द हो, जहा रागादि पर परिणतिका कोप होगया हो ॥ ११ ॥ निश्चयसे जिनेन्द्रने रौद्रभाव उसे कहा है जिस भावसे कर्मरूपी शत्रुओंका संहार किया जावे । वह शुद्ध ज्ञान स्वभावरूप है, वह ध्यान आनन्दमई है, ऐसा जिनेन्द्रने कहा है । इसमे सर्व कर्म क्षय होजाते हैं । तथा कर्मोंके क्षय होनेसे मुक्तिका स्वभाव प्रगट होजाता है ॥ १२ ॥

(४८) वडो पथाऊ गाथा ९६५ से ९८५ तक ।

मोह मही हर कम्म जु ऊपजे, कषयह विषय संजुत्तु समू ।
अन्यान दिट्ठि परजावह सहियो, न्यान अन्मोयह गलि गमऊ ॥ १८ ॥
अप्पा अप्पा सुद्धप्पा पउ, परमप्पा परम सु समय मऊ ।
न्यान विन्यानह ममल सुभाउ हो, परम न्यान सो मुक्ति गऊ ॥ २१ ॥

भावार्थ—विषय कषायके साथ मोहरूपी पर्वतसे कर्मोंकी उत्पति होती है । साथमें शरीरमें आसक्ति रखनेवाली अज्ञानदृष्टि रहती है सो सब मिथ्यादृष्टि आत्मज्ञानमें आनन्द आनेसे गल जाती है ॥ १८ ॥ यह आत्मा आप ही शुद्धात्मा है, आप ही परमात्मा है, आप ही स्वसमयरूप है, यही ज्ञानानन्दमय शुद्ध स्वभावका धारी है । इसीके अनुभवसे केवलज्ञान प्रगट होता है और यह आत्मा मुक्तिपदको प्राप्त कर लेता है ॥ २१ ॥

पाठकोंको इस ग्रन्थको ध्यानपूर्वक शातिमे स्वाध्याय करनेसे बड़ा ही आत्मानन्द प्रगट होगा । भव्यजीवोंके हितार्थ ही यह कार्य किया गया है । सर्व भव्यजीव इस ममल पाहुडको मनन करके अपना सच्चा हित करें । मैंने बहुत सम्हालकर अर्थ लिखा है । कहीं प्रमाद व अज्ञानवश भूल रह गई हो तो विद्वज्जन सम्हाल लें व मुझे सूचित करनेकी कृपा करें । मैं वारवार भाई मथुराप्रसादजी सागरकी धर्मरुचिकी प्रशंसा करता हू जिनकी प्रेरणासे ही मेरे द्वारा यह सेवा बन सकी है ।

लखनऊ
डालीगज, जैन बाग मदिर,
आसोज वदी १४ गुरुवार, वीर सवत
२४६१ विक्रम सं० १९९२ ।
ता० २६ सितम्बर सन् १९३५ ।

सर्व जिनवाणी भक्तोंका दास—
ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद ।

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

श्री तारणतरणस्वामी विरचित—

श्री ममलपाहुड़ या अमलपाहुड़

प्रथम भाग।

मङ्गलाचरण।

दोहा—अर्हत सिद्धाचार्यको, उपाध्याय सब साधु।
मैं त्रियोग वन्दन करूँ, लहूँ अमल पद साधु ॥ १ ॥

श्री तारणस्वामी कथित, पाहुड अमल सु नाम।
परमातम पद लाभको, सहकारी सुखधाम ॥ २ ॥

चिदानन्द रुचि धार जे, भव्य सरल गुण प्रेम।
तिन हित भाषामें लिखूँ, सार ग्रन्थ धर प्रेम ॥ ३ ॥

तुच्छ बुद्धि आगम महा, दुर्लभ ताका ज्ञान।
जिनवर भक्ति सहायसे, लिखूँ सु साहस ठान ॥ ४ ॥

भूल चूक कुछ होय तो, क्षमा करो गुणवान।
अर्थ सार उर धारके, करो आत्म कल्याण ॥ ५ ॥

(१) श्री देवदिप्त गाथा १ से १७ तक ।

मूल पाठ—तत्वं नन्द आनन्द मउ, चेयानन्द सहाउ ।
परम तत्त्व पद विंद पउ, नमियो सिद्ध सहाउ ॥ १ ॥
जिनवर उत्तो सुद्ध जिन, सिद्धह ममल सहाउ ।
ज्ञान विज्ञानह समय पउ, परम निरञ्जन भाउ ॥ २ ॥
परमप्पा परमान मुनि, परम ज्ञान सहकार ।
परम निरञ्जन सो मनहु, ममलह ममल सहाउ ॥ ३ ॥
भय विनाश भवि जो मुनहि, परमानन्द सहाउ ।
परम निरञ्जन सो सुनहु, ममलह सुद्ध सहाउ ॥ ४ ॥
देव जु दिट्ठह जिनवरह, उवनो दाता देउ ।
ज्ञान विज्ञानह ममल पउ, सो परमप्पा जोउ ॥ ५ ॥
दिप्त दिष्ट तं दिष्ट सम, दिप्त दिष्ट संभेउ ।
दिप्त सब्द विज्ञान सुइ, उत्पन दाता देउ ॥ ६ ॥
दिप्त दिष्ट सुइ नन्त मुनि, कमल इष्ट परमेष्टि ।
सुयं लब्ध तं रयन पउ, नन्त चतुष्टय जुत्त ॥ ७ ॥
अंगदि अंगह दिष्ट मउ, सब्दहि पार संजुत्त ।
अर्थति अर्थह कमल रुइ, दिप्त दिष्ट सञ्जुत्त ॥ ८ ॥

दिप्त दिष्ट सुइ सब्द मउ, हिय उवयार संजुत्त ।
अर्क विद तं रमन पउ, उवनो दाता देउ ॥ ९ ॥

उवन उवन हिययार पउ, सहयार दिप्त संजुत्त ।
ज्ञान विज्ञानह दिष्ट मउ, दिष्ट देइ सोइ देउ ॥ १० ॥

जं जं उवन सहाव लइ, दिप दिष्ट उवओत ।
सब्द ऊवनो उवन पउ, उवन दिष्ट दरसेत ॥ ११ ॥

दरसिउ नन्तानन्त पउ, ज्ञान वीर्य विज्ञान ।
नन्त सोय तं परम पउ, तं देवउ उववन्न ॥ १२ ॥

परम ज्ञान तं परम पउ, परम भाव संभेउ ।
नन्तानन्त सु देव पउ, परम देव सोइ देव ॥ १३ ॥

नो उत्पन्न सो जिनइ, जिनियो नन्तानन्त ।
नन्त उवन सो रमन पउ, परम ज्ञान सोइ जोत ॥ १४ ॥

परम उवन जो रमन पउ, परम ज्ञान सोइ जोत ।
परम उवन जो जिनय जिन, उववन विलिजिन ओत ॥ १५ ॥

परम सुभावह परम रउ, परम परम जिन ओत ।
परम लष्य गम अगम पउ, परम परम जिन ओत ॥ १६ ॥

ममलं ममलं उववन्न, भय षिपि सक विलयंत ।
कम्मं ओतं विलियंत, ममल पाहुडं बोच्छ ॥ १७ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(तत्वं) जो परमात्वतत्व (नन्द आनन्दमउ) आत्मीक आनन्दका आनन्द लेरहे हैं (चेयानंद सहाउ) चिदानन्द स्वभावधारी हैं (परम तत्व) सब तत्वोंमें श्रेष्ठ हैं (पदविंद पउ) ॐ मंत्रमें विन्दु पदसे जाने जाते है (सिद्ध सहाउ) जिनका स्वभाव सिद्ध भगवानके समान है उनको (नमियो) नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ (जिनवर उत्तो) श्री जिनेन्द्र भगवानने कहा है (सुद्ध जिन) कि वही तत्त्व शुद्ध व जिन या जीतनेवाला है (सिद्धह ममल सहाउ) सिद्धोंका निर्मल स्वभाव है (ज्ञान विज्ञानह समय पउ) ज्ञान और भेदविज्ञान मई आत्मीकपद है (परम निरंजन भाउ) श्रेष्ठभाव है जिसमें कोई अंजन या मैल नहीं है ॥ २ ॥ (परमप्पा) वही परमात्मा है (मुनि परमान) मुनियोंके द्वारा प्रमाणीक है। अर्थात् साधुजन उसे ही सत्य तत्व मानते हैं (परम ज्ञान सहकार) केवलज्ञानकी उत्पत्तिमें यही तत्व सहकारी है (परम निरंजन) वही परम निरंजन है। अर्थात् पूर्ण शुद्ध है, (ममलह सुद्ध सहाउ) कर्ममल रहित शुद्ध स्वभावधारी हैं (सो मुनहु) उसी तत्वका अनुभव करो, मनन करो ॥ ३ ॥ (भय विनाश) सर्व संसारका भय दूर करके निर्भय होकर (जो भवि मुनहि) जो भव्य जीव अनुभव करता है (परमानद सहाउ) वह परमानन्द स्वभावधारी (परम निरंजन) परम निरंजन (ममल सुद्ध सहाउ) कर्ममल रहित शुद्ध स्वभावमई तत्वको पाता है (सो मुनहु) उसीका अनुभव करो ॥४॥ (जिनवरह जुदेव दिट्ठह) श्री जिनेन्द्रने जिस देवका दर्शन किया है (उवनो दाता देउ) वही प्रकाशमान उदयरूप परमानन्दका देनेवाला देव है (ज्ञान विज्ञानह ममल पउ) वही ज्ञान और भेदविज्ञानका धारी निर्मल पद है (सो परमप्पा जोउ) वही परमात्मा है, उसीको तू देख या अनुभव कर ॥ ५ ॥ (दिप्त दिप्त) जिसमें ज्ञानका प्रकाश झलक रहा है (तं समदिट्ठ) वहीं समभाव या वीतरागभाव प्रकाशित है (सुइ दिप्त सव्द विज्ञान) सो ही दिव्यध्वनिका मूल ज्ञान है (उत्पन दाता देउ) वही उदयरूप परमानन्दके दाता देव हैं ॥ ६ ॥ (सुइ अनन्त दिष्ट दिप्त मुनि) वही अनन्तदर्शनसे प्रकाशमान मुनि हैं (कमल इष्ट परपष्टि वही कमलाकार मनको प्यारे मनन योग्य परम पदके धारी परमेष्टी है (सुय त रयन पउ लद्ध) उन्होने स्वयं अपने पुरुषार्थसे उस सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रमई रत्नत्रयके पदको प्राप्त किया है (अनन्त चतुष्टय जुत्त) वही अनन्त चतुष्टय अर्थात् अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त सुख तथा अनन्त वीर्यके धारी हैं ॥ ७ ॥

(अगह दिष्ट मउ अगदि) द्वादशांगवाणी द्वारा देखने योग्य वही अङ्गीकार करने या ग्रहण करने योग्य है (सब्दहि पार सजुत) शब्दोंके पारको प्राप्त है, अर्थात् शब्दोसे उनका अनुभव नहीं होसक्ता है—वचन अगोचर है (अर्थह

अर्थति) निश्चय करने योग्य पदार्थोंमें वे ही निश्चय करने योग्य हैं (कमल म्इ) कमलाकार मनके लिये वे ही रुचिवान हैं । अर्थात् मन उनहीसे प्रेम करता है (दिप्त दिष्ट सजुत्त) वे ही प्रकाशमान दर्शनके धारी हैं या क्षायिक सम्यग्दर्शनके धारी हैं ॥ ८ ॥ (सुइ दिप्त दिष्ट सव्द मउ) वही प्रकाशमान ज्योति है उन्हींका शब्दोंसे स्तवन किया जाता है (हिय उवयार सजुत्त) वही आत्म–हितरूप उपकार करनेवाले हैं । अर्थात् उनहीके ध्यानसे अपना आत्मा परमात्मा होसक्ता है (अर्क विंदत रमन पउ) वही सूर्य समान प्रकाशित है तथा वही वह पद है जिसमें रमन करना चाहिये (उवनो दाता देउ) वही उदयरूप परमानन्दके देनेवाले देव हैं ॥ ९ ॥

(ह्रिययार पउ उवन उवन) वही हितकारी पद उदयरूप प्रकाशमान है (सहयार दिप्त सजुत्त) वही ज्ञानके लिये सहकारी प्रकाश सहित हैं (ज्ञान विज्ञानह दिष्ट मउ) वही ज्ञान और भेदविज्ञानके धारी दर्शन या निर्मल सम्यग्दर्शन स्वरूप हैं (सोइ दिष्ट देइ देउ) वही सम्यग्दर्शनके देनेनाले देव हैं । अर्थात् उनहीकी भक्तिसे सम्यग्दशन गुणका प्रकाश होता है ॥१०॥ (ज जं उवन सहाउ लइ दिष्ट दिप उवओत) जिस जिस उदयरूप स्वभावको लेकर सम्यग्दशनरूपी दीपकका प्रकाश होता है (सव्द उवनो उवन पउ) उसी उसी स्वभावको लेकर शब्दोंकी उत्पत्ति या रचना की जाती है वे शब्द उसी पदको प्रकाश करते हैं (उवन दिष्ट दरसेत) उन्हींसे प्रकाशमान सम्यग्दर्शनका दर्शन या अनुभव होता है । भावार्थ–आत्मीक गुणोंके वाचक शब्दोंके द्वारा मनन करते रहनेसे ही आत्मीक गुणोंका अनुभव करानेवाला सम्यग्दर्शन गुण प्रगट होता है ॥ ११ ॥

(अनन्तानन्त पउ दरसिय) जिसने अनन्तानन्त आत्मपदका दर्शन किया है। भावार्थ आत्माकी अनन्त पर्यायोंको देखा जाना है या अनन्त आत्माओंको देखा है (ज्ञान वीर्य विज्ञान) जो अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य व भेदविज्ञानका धारी है (अनन्त सोय) जो अनन्त ज्ञानका श्रोत है अर्थात् जिससे अनन्त ज्ञानका प्रकाश होता है (त परम पउ) वही परम पदधारी है (तं देवउ उववन्न) वही देव उदय होरहे हैं ॥ १२ ॥ (परम ज्ञान तं परम पउ) जिस परम अरहंतपदमें केवलज्ञान विराजित है (परम भाव समेउ) जिसने परम पारिणामिक भावसे सम्बन्ध किया है (अनन्तानन्त सुदेव पउ) जो अनन्तानन्त गुणोंके धारी सच्चे देवका पद है (सोइ देव परम देव) सो ही देव परमात्मा पूज्यनीय महान देव है ॥ १३ ॥ (सो नो उत्पन्न जिनइ) सो देव नवीन आनेवाले कर्मोंको जीतनेवाला है (अनन्तानन्त जिनियो) जिसने अनंतानंत कर्मोंको जीत लिया है (नन्त उवन सो रमन पउ) अनन्त गुणोंका प्रकाश रूप वही उनके रमनेका पद है (सोइ परम ज्ञान जोत) वही परम ज्ञानमई ज्योति स्वरूप है ॥१४॥

(जो परम उवन रमन पउ) जो देव श्रेष्ठ उदय रूप आत्मरमणमें रमनेवाला पद है (सोह परम ज्ञान जोत) वही परम ज्ञान ज्योति स्वरूप है (जो परम उवन जिनय जिन) जो श्रेष्ठ आत्मा उत्पन्न कर्मोंको जीतनेवाला जिन है (उववन विलिओत जिन) जो उत्पन्न होनेवाले और झड़नेवाले कर्मजालको जीतनेवाला है ॥ १५ ॥ (परम सुभावह परम रउ) जो श्रेष्ठ स्वभावमें उत्तम प्रकारसे रत है (परम परम जिन ओत) जो परमात्मा परम विजयका समूह है (परम लष्य गम अगम पउ) जो निश्चयनयके द्वारा जानने योग्य मोक्षमार्ग है तथापि व्यवहारनयसे जो पद अगम्य है, जानने योग्य नहीं है (परम परम जिन ओत) सो ही परमात्मा परम विजयका समूह है ॥ १६ ॥ (ममल ममलं उववन) जो द्रव्यकर्म मलसे रहित है। भावकर्म मलसे रहित प्रकाशमान है (भय षिपि सक विलयत) जो सर्व भयको क्षय करनेवाला है, जो शङ्काओंको मिटानेवाला है (कम्मं ओतं विलयत) जिसने कर्मोंके जालको नाश कर दिया है (ममल पाहुडं बोच्छ) ऐसे शुद्ध परमात्माके सारभूत तत्वको कहनेवाला यह ममलपाहुड़ ग्रन्थ है उसे मैं कहूँगा ॥ १७ ॥

भावार्थ—श्री तारणस्वामीने प्रारम्भमें मंगलाचरणरूपी यह श्री अरहंदेवकी स्तुति निश्चयनयके आश्रय की है। जब अरहंतके शरीरकी, समवशरणकी आदि आत्माके बाहरकी वस्तुओंकी प्रशंसा द्वारा अर्हतकी स्तुति की जाती है, उसे व्यवहार स्तुति कहते हैं। जहां केवल आत्मीक गुणोंको ही लेकर स्तुति करते हैं वह निश्चय स्तुति कहलाती है। ऐसा ही श्री कुन्दकुन्दाचार्य महाराजने समयसारमें कहा है—

ववहार णयो भासदि जीवो देहो य हवदि खलु इक्को। ण दु णिच्छयस्य जीवो देहो य कदावि एकट्ठो ॥ २७ ॥
इणमण्ण जीवादो देह पुग्गलमय थुणित्तु मुणी। मण्णदि हु सथुदो वंदिदो मए केवली भयवं ॥ २८ ॥
त णिच्छये ण जुज्जति ण सरीरगुणा हि होंति केवलिणो। केवलिगुणो थुणदि जो सो तच्च केवलिं थुणदि ॥ २९ ॥

भावार्थ—व्यवहारनय जीव और देहको एक मानके कहता है, परन्तु निश्चयनयका यह अभिप्राय है कि जीव और देह किसी भी कालमें एक नहीं होते हैं। जीवसे अन्य इस पुद्गलमयी देहकी स्तुति करके मुनि महाराज ऐसा मानते हैं कि मैंने केवली भगवानकी वन्दना और स्तुतिकी यह व्यवहार स्तुति है। परन्तु निश्चयनयसे शरीरके गुण केवली परमात्माके गुण नहीं होसक्ते हैं इसलिये व्यवहार स्तुति निश्चयनयकी अपेक्षा ठीक नहीं है। जो केवली भगवानकी आत्माके गुणोंकी स्तुति करता है वही निश्चयसे केवली भगवानकी स्तुति करता है।

यहां इन १७ गाथाओंमें श्री अरहंत परमात्माकी निश्चय स्तुति की है कि वह आत्मा निरंजन निर्विकार, शुद्ध, वीतराग, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त सुख तथा अनन्त वीर्यमई चतुष्टयका धारी है। उसके केवलज्ञानके द्वारा जो शब्दरूपी वाणीका प्रकाश होता है उसको जो समझते हैं उनको अपने परमात्म-स्वभावधारी आत्माका यथार्थ ज्ञान व श्रद्धान होता है। जो द्वादशांग-वाणी भगवानकी दिव्य-ध्वनिके अनुसार बनी है उसका सर्वस्व सार अपने आत्माके स्वभावका यथार्थ ज्ञान है। जो इस ज्ञानको पाता है उसीके भीतर भेदविज्ञान पैदा होता है जिससे उसको अपना आत्मा द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादि, भावकर्म रागद्वेषादि, नोकर्म शरीरादिसे भिन्न दीखता है। इस भेदविज्ञानके प्रतापसे जब स्वानुभव किया जाता है तब ही भव्यजीवको मोक्षका मार्ग हाथ लगता है। स्वानुभव ही मोक्षमार्ग है इसीपर चलके केवलज्ञानका प्रकाश होता है। अरहंत परमात्मा ही सच्चे देव हैं। क्योंकि उनमें कोई सांसारिक मल नहीं है। न राग है, न द्वेष है, न मान है, न मोह है, न भय है, न शङ्का है, न कोई अज्ञान है। वे यथार्थ सर्वज्ञ वीतराग हैं। उनकी भक्ति, पूजन व उनका ध्यान करनेसे परम सुख प्राप्त होता है। वही परमानन्द-स्वरूप हैं। व जो उनकी शरणमें जाता है उसे भी परमानन्दका लाभ होता है। वे अरहंत भगवान निरंतर आत्मानन्दका भोग करते हैं। उनके आत्माका स्वभाव सिद्धके समान है। क्योंकि आत्माके घातक ज्ञानावरणादि चार घातीय कर्मोंका उन्होने क्षय कर डाला है। वह अरहंत भगवान जिस आत्मदेवका अनुभव करते हैं उसीका अनुभव करना हरएक भव्यजीवका कर्तव्य है। यही अनुभव मोक्षमार्ग है। वह आत्मा परम शुद्ध परमानन्दमय परम ज्योति-स्वरूप है। भव्यजीव अपने मनसे उसी स्वरूपको प्यार करते हैं।

यद्यपि शब्दोंसे उस आत्म-तत्वका स्वरूप कहा जाता है, परन्तु वह वचन गोचर नहीं है। जब ध्याता जीव अपने उपयोगको थिर करके आत्मीक गुणोंमें जोड़ता है तब ही अपने आत्माका दर्शन या अनुभव होता है। नौ पदार्थ या सात तत्वोंमें सारभूत निश्चय करने योग्य निज आत्मीक तत्व है। यद्यपि शब्दोंसे यकायक आत्माका बोध नहीं होता है तथापि शब्दोंसे ही आत्माका वर्णन व परमात्माका स्तवन किया जाता है। परमात्मा हमारे परम उपकारक हैं। जब हम उनका स्तवन व ध्यान करते हैं, हमारा भाव निर्मल होता है जिससे कर्म कटते हैं। तथा शुभ भावोंसे पुण्यका बन्ध होता है—औपशमिक, क्षायिक, मिश्र, औदयिक और पारणामिक। इन पांच भावोंमेंसे परम पारणामिक भाव जीवत्व इस जीवका

अमलपाहुड
॥ ७ ॥

स्वभाव है, उसी भावमें श्री अर्हंत भगवान स्थित हैं। जैनसिद्धांतमें दो नय बताए हैं–एक व्यवहारनय, दूसरा निश्चयनय। व्यवहारनय भेद रूप या अशुद्ध रूप वस्तुको बताता है इससे शुद्ध आत्माका बोध नहीं होसक्ता। निश्चयनय आत्माके शुद्ध स्वरूपको बताता है, इस निश्चयनयसे वस्तुके यथार्थ स्वरूपका बोध होता है। तथापि आत्माके निकट ही निश्चयनय पहुँचाता है। जब इस नयके द्वारा मनन करते हुए आत्मा आत्मस्थ होजाता है और स्वानुभव पैदा होता है तब ही सच्चे परमात्माका अनुभव होता है। तब निश्चयनयका भी विकल्प या विचार नहीं रहता है जैसा समयसारकलशमें श्री अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं–

उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं क्वचिदपि च न विद्मो याति निक्षेपचक्रं।
किम परमभिदध्मो धाम्नि सर्वंकषेऽस्मिन्ननुभवमुपयाते भाति न द्वैतमेव ॥ ९ ॥

भावार्थ– सर्व ज्योतिको मन्द करनेवाली आत्मज्योतिका अनुभव होनेपर नयोंकी लक्ष्मी उदय नहीं होती है, प्रमाणोंका विचार नहीं रहता है, नामादि चार निक्षेप न मालूम कहां विला जाते हैं और अधिक क्या कहें। सिवाय आत्माके और कोई दूसरा पदार्थ ही नहीं भासता है। श्री अरहंत भगवानकी आत्माको या शुद्ध परमात्माको नमस्कार करके श्री तारणतरणस्वामीने यह प्रतिज्ञा की है कि मैं ममलपाहुड़ ग्रन्थ कहूँगा। अमल मल रहित शुद्ध आत्माको कहते हैं। पाहुड़ सारको या प्राभृतको या अध्यायको कहते हैं। इस अमलपाहुड़में या शुद्ध सार ग्रन्थमें शुद्ध आत्माका ही अनुभव करानेका प्रयत्न कराया जायगा। प्राभृत नाम भेटका भी है जिसके द्वारा शुद्ध आत्माके स्वरूपकी भेट भव्य जीवोंको दी जायगी, वह यह ममल या अमलपाहुड़ ग्रन्थ है।

---

(२) मुक्ति श्री फूलना १८ से २७ गाथाओं तक।

मूलपाठ—चलि चलहु न हो मुक्तिसिरी, तुम्ह ज्ञान सहाए।
कललंकृत हों कम्म न उपजै, ममल सुभाए ॥
जिन जिनवर हो, उत्तो स्वामी–परम सुभाए।
मुनि मुनहु न हो भवियनगन, तुम्ह अप्प सहाए ॥ १ ॥

तुम्हरी अषय रमन रै नारी, ज्ञानी भव-भंवर विनट्ठी,
मन हरषिय लो, जिन तारन स्वामी।
जव सम मुक्ति पहुते हो ज्ञानी ॥ अपय रमन० (आचरी) ॥ २ ॥
सो मुनियो हो उत्तउ जिन हो, अमल सुभाए।
धरि धरियो हो अर्थति, अर्थह ज्ञान सहाए ॥
कलि कलियो हो अमल दिप्टि यह, कमल सुभाए।
रै रमियो हो पंच दिप्ति यह, आद सहाए ॥३॥ तुम्हरी० ॥
उदि उदियो हो इस्ट संजोगे पर्म सुभाए।
दिपि दिपियो हो पर्म ज्योति, यह अप्प सहाए ॥
लहि लहियो यो अंगदि अंगह सुद्ध सहाए।
मै मइयो हो अंग सर्वगह, अमल सुभाए ॥४॥ तुम्हरी० ॥
रहि रहियो हो सूक्ष्म सहियो, अमल सुभाए।
गहि गहियो नन्तानन्त सु गगन सहाए ॥
उगि उगियो हो ऊर्ध सुद्धह मुक्ति सुभाए।
मल रहियो हो अमल बुद्धिय पिपक सुभाए ॥५॥ तुम्हरी० ॥
उव उवनो हो दिस्टि देइ सो देव सहाए।
सहकारे हो देइ अनन्त जु अमल सहाए ॥
दर दरसिओ हो देवासु दंमन ज्ञान सुभाए।
अवकासह हो उपजै ज्ञान सु रयन सुभाए ॥६॥ तुम्हरी० ॥

गुरु गुपित सु हो दिट्ठउ, दीन्हउ चरण सहावे ।
चर चरियो हो अमल दिष्टि, यहु अप्प सुभावे ॥
तव वरियो हो महकारे, जिन सहज सुभावे ॥७॥ तुम्हरी० ॥
उप उपजे हो कम्म अनन्त, अनिष्ट सुभावे ।
पिपि पिपियो हो ज्ञान दिष्टि, यहु अमल सुभावे ॥
नद नदियो हो चिदानन्द, जिन कमल सुभावे ।
आनन्दिउ हो परम नन्द, यह मुक्ति सुभावे ॥८॥ तुम्हरी० ॥
यहो जानहु हो भय विनमय, यह भव्व सुभावे ।
पर परजय हो दिष्टि न देउ, सु अमल सुभावे ॥
अनुमोदय हो मिलियो जोति, सु रयन सुहावे ।
पिपि कम्म जु हो, मुक्ति पहुते अमल सुभावे ॥९॥ तुम्हरी० ॥
दिपि दिपियो हो देऊलंकृत, अनुमोय सहाये ।
भय पिपिनक हो मिलियो रमियो पिपक सुभावे ॥
आनन्दियो हो परमानन्दह, परम सुभावे ।
अन्मोयह हो मिलियो जोति सु सिद्ध सुहावे ॥१०॥ तुम्हरी० ॥

अन्वय सहित अर्थ—(चल चलि हु न हो मुक्ति सिरी तुप ज्ञान महाव) हे भाई ! तुम ज्ञानकी सहायतासे मुक्तिरूपी लक्ष्मीके पास क्यों नहीं चलते हो, चलो (कललकृत हो कम्म न उपजे अमल सुभाव , यद्यपि तुम शरीर सहित व कर्ममल सहित हो तथापि शुद्ध स्वभावमें रमनेसे नवीन कर्मका बन्ध न होगा (जिन जिनवर हो उत्तो

स्वामी परम सुभाए) इस बातको परम स्वभावके धारी श्री जिनेन्द्र भगवानने कहा है (मुनि मुनहु न हो भवियनगन तुम अप्प सहाए) हे भव्यगणो ! तुम अपने आत्माकी सहायतासे अवश्य इस बातका मनन करो ॥ १ ॥

(तुम्हरी अषय रमन नारी भव भवर विनट्ठी) तुम्हारी अविनाशी आत्मामें रमन करनेवाली स्वानुभूति रूपी स्त्री संसारके भँवरमें नष्ट भ्रष्ट होरही है (मन हरषिय हो जिन तारन स्वमी जय सम मुक्ति पहुते हो ज्ञानी) परन्तु अव तुम मनमें हर्ष करो। श्री जिनेन्द्र भगवान भव्योंके तारक जव ज्ञानी व वीतरागी होकर मुक्ति पहुँचे हैं, तुम भी उसी मार्गसे पहुँचोगे ॥ २ ॥

(सो मुनियो हो उत्तम जिन हो अमल सुभाए) हे भाई ! श्रेष्ठ जिनेन्द्रके निर्मल स्वभावका मनन करो। (धर धरियो हो अर्थति अर्थह ज्ञान सहाए) हे भाई ! ज्ञान स्वभावसे पदार्थोका निश्चय करके उनकी धारणा करो (कंलि कलियो हो अमल दिष्टि यह कमल सुभाए) अपने आत्माके कमलके समान प्रफुल्लित स्वभावसे शुद्ध सम्यग्दर्शनको ग्रहण करो (रै रमियो हो पंच दिप्ति यह आद सहाए) आत्माके स्वभावको ग्रहण कर पंचपरमेष्ठीके गुणोंका मनन करो ॥ ३ ॥

(उद उदियो हो इस्ट सजोगे परम सुभाए) परम स्वभावधारी परमेष्ठीकी सहायतासे परम प्रिय आत्मज्ञानका उदय करो (दिपि दिपियो हो परम जोति यह अप्प सहाए) अपने आत्माके स्वभावका अनुभव करनेसे परम ज्ञानकी ज्योतिका प्रकाश होता है (लह लहियो हो अगदि अगह सुद्ध सहाए) शुद्ध आत्माकी सहायतासे द्वादशांग वाणीका सार प्राप्त होता है (मै मइयो हो अग सर्वंगह अमल सुभाए) इस निर्मल आत्म स्वभावको पूर्णपने अपनेमें तन्मय करो ॥ ४ ॥

(रह रहियो हो सूक्ष्म सहियो अमल सुभाए) इन्द्रियोंसे न जानने योग्य ऐसे सूक्ष्म निर्मल आत्मस्वभावमें रहना चाहिये (गह गहियो हो नन्तानन्त सो गगन सहाए) आकाशके समान अनन्तानन्त ज्ञान स्वभावी आत्माको ग्रहण करो (उगि उगियो हो ऊर्ध सुद्धह मुक्ति सुभाए) तव श्रेष्ठ शुद्ध मुक्त स्वभावका प्रकाश हो जायगा (मल रहियो हो अमल बुद्धिय विपक सुभाए) व कर्ममल व रागमल रहित निर्मल ज्ञानमय क्षायिक स्वभाव प्रगट हो जायगा ॥ ५ ॥

(उव उवनो हो दिस्टि देह सो देव सहाए) श्री परम देवकी सहायतासे निर्मल ग्रहण योग्य दृष्टि पैदा होगई है (सहकारे हो देह अनत जु अमल सहाए) इसमें अनन्त गुणधारी शुद्ध स्वभावी परमात्माकी सहायता है

(दर दरसिओ हो देव सु दंसन ज्ञान सुभाए) तब दर्शन ज्ञान स्वभावी परमात्म देवका दर्शन हो जाता है (अवकासह हो उपजै ज्ञान सु रयन सुभाए) रत्नत्रय धर्मके स्वभावमें रमनेसे आकाश समान निर्मल ज्ञान पैदा होता है॥६॥

(गुरु गुपति सुहो दिहुउ दीन्हउ चरण सहाये) वह आत्मज्ञान आत्मज्ञानी गुरुके भीतर छिपा है उन्होंने अनुभव किया है। तथा अपने चारित्रकी सहायतासे वे दूसरोंपर प्रभाव डालकर अर्पण करते हैं (चा चरियो हो अमल दिष्ट्रि यहु अप्प सुभावे) वे गुरु महाराज निर्मल सम्यग्दर्शनसे अपने आत्माके स्वभावमें रमण करते हैं (तव वरियो हो सहकारे जिन सहज सुभावे) वे गुरु महाराज कषाय विजयी आत्माके सहज स्वभावकी सहायतासे आत्मीक तपमें लवलीन हैं ॥ ७ ॥

(उा उपजे हो कम्म अनत अनिष्ट सुभाये) आत्मीक भावसे विपरीत राग, द्वेष, मोहरूप अनिष्ट या विपरीत स्वभावके कारण जीवके अनन्त कर्मोंका बन्ध होता है (पिपि पिपियो हो ज्ञान दिष्टि यहु अमल सुभावे) सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान सहित निर्मल आत्म-स्वभावमें रमण करनेसे कर्मोंका क्षय होजाता है (नद नदियो हो चिदानंद जिन कमल सुभावे) चिदानन्दमई जिन भगवानके कमलके समान प्रफुल्लित स्वभावमें जमकर आनन्दका लाभ करो (आनंदिउ हो परम नद यहु मुक्ति सुभावे) परमानन्दमई मुक्ति स्वभावमें या सिद्ध स्वभावमें आनन्दित रहो ॥ ८ ॥

(यहो जानहु हो भय विनसय यह भव्व सुभावे) इस भव्य आत्मीक स्वभावमें रमन करनेसे सर्व भयका नाश होजाता है, इस बातको अच्छी तरह जानो (परपर जय हो दिष्ट न देइ सु अमल सुभ वे) हे जीव ! तू इस शुद्ध स्वभावमें रह। और इससे विरुद्ध परस्वभावमें तू अपनी दृष्टि न दे। निज आत्माके सिवाय पुद्गलादि सर्व पदार्थोंकी ओरसे उपयोगको हटाले (अनुमोदय हो मिलियो जोति सु रयन सुहावे) निश्चय रत्नत्रयस्वभावमें अपने उपयोगकी ज्योतिको मिलाकर आनन्द लाभ करो। आत्माका शुद्ध स्वभाव सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्रकी एकता स्वरूप है। इसीमें अपनी ज्ञान ज्योतिको मिलाकर सुखी हो (पिपि कम्म जु हो मुक्ति पहने अमल सुभावे) इस शुद्ध स्वभावमें रमन करनेसे सर्व प्रकारके कर्मोंसे छूटकर मुक्ति-लक्ष्मीके पास जायगा॥९॥

(दिपि दिपियो हो देऊलं क्रत अनमोय सहाये) परम दिव्य शोभायमान आनन्दमई स्वभावकी सहायतासे अरहंतदेवका पद प्रकाशित होजाता है। अर्थात् जो आनन्दमय आत्माका अनुभव करता है उसका ज्ञान दीप्तमान होजाता है, केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है (भय पिपिनक हो मिलियो रमियो पिक सुभावे) जो सर्व भयोंका

ममलपाहुड ॥ १२ ॥

क्षय कर देता है, निर्भय हो आत्म-रमण करता है वह क्षायिक स्वभावसे मिल जाता है और उसीमें क्रीड़ा करता है। अर्थात् वह स्वयं नौ क्षायिक भावोंको प्राप्त कर अरहंतपदमें रमण करता है (आनदियो हो परमानंदह परम सुभावे) वह परमानन्दमई आत्माके श्रेष्ठ स्वभावमें थिर होकर परम सुखी रहता है (अमोयह हो मिलियो जोति सु सिद्ध सहावे) वही जोति स्वरूप आनन्दमई भगवान फिर सिद्धोंके स्वभावमें मिलकर सिद्ध होजाता है। अर्थात् शुद्ध सिद्ध परमात्मा होकर सिद्ध क्षेत्रमें पहुंच कर अनन्त सिद्धोंकी अवगाहनामें तिष्ठकर एक क्षेत्रावगाह होनेसे मिल जाता है। तथापि अपनी सत्ताको पृथक् रखता है ॥ १० ॥

भावार्थ—इस फूलनामें श्री तारणस्वामीने भव्यजीवोंको प्रेरणा की है कि हे भाइयो! प्रमाद छोड़ो। भवसागरके दुःखोंसे यदि बचना हो, आवागमनसे छुट्टी पाना हो, जन्म, मरण, रोग, शोकादिसे छूटना हो तो शीघ्र ही उठो, तैयारी करो, और मुक्तिरूपी लक्ष्मीकी प्राप्तिका यत्न करो, सिद्धपदको प्राप्त करो। इस मुक्तिरूपी लक्ष्मीकी प्राप्तिका उपाय अपने ही शुद्धात्माका अनुभव है। आत्मज्ञान सहित आत्माका ध्यान है जहां निश्चय रत्नत्रयकी एकता है। यह मोक्षमार्ग गुप्तज्ञान है। आत्मज्ञानी गुरु इसे भलेप्रकार जानते हैं। वे इसीका निरंतर स्वाद लेते हैं। वे इसीमें आनन्दित रहते हैं। उनका स्वानुभवरमणरूपी चारित्र उनके वचनोंमें व उनके शरीरके ऊपर ऐसा झलकता है कि जब वे गुरु किसी शिष्यको उपदेश करते हैं तब वह शिष्य प्रभावित होकर बहुत शीघ्र गुप्त आत्मज्ञानको पालेता है। आत्मध्यान करना ही तप है। यही नए कर्मोंके संवरका कारण है व पिछले संचित कर्मोंकी निर्जरा करनेवाला है। कर्मोंका बन्ध रागद्वेष मोहसे होता है। अपने आत्माके सिवाय परपदार्थोंका मोह बन्धका कारण है। जब परसे मोह व रागद्वेष हटाकर निज आत्मामें तन्मय हुआ जाता है तब कर्मोंकी निर्जरा होने लगती है। तथा आत्मीक आनन्दका भी स्वाद आता है। इस तरह अभ्यास करते हुए गुणस्थानोंके मार्ग द्वारा यह आत्मा क्षायिक सम्यग्दर्शनको पाकर जब क्षपकश्रेणी चढता है तब पहले मोहका सर्वथा नाश कर देता है। फिर बारहवें क्षीण मोह गुणस्थानमें दूसरे शुक्लध्यानके बलसे शेष तीन घातीय कर्मोंको भी क्षय करके केवलज्ञानी अर्हंत परमात्मा होजाता है। उस समय नौ क्षायिक भाव प्रगट होजाते हैं—(१) अनन्तज्ञान, (२) अनन्तदर्शन, (३) अनन्तवीर्य, (४) क्षायिक सम्यक्त, (५) क्षायिक चारित्र, (६) अनन्त दान, (७) अनन्त लाभ, (८) अनन्त भोग, (९) अनन्त उपभोग।

॥ १३ ॥

अन्तमें शेष अघातीय कर्मोंका भी जब क्षय होजाता है तब यह आत्मा सर्व कर्ममलसे व शरीरादिसे मुक्त होकर मुक्तिश्रीको प्राप्त कर लेता है। सिद्ध होजाता है तब ऊर्ध्वगमन स्वभावसे लोकाग्रमें तिष्ठता है। सिद्धक्षेत्र ४५ लाख योजनके व्यासमें है। इसीमें अनन्तानन्त सिद्ध भगवान अलग २ सत्ताको लिये विराजित हैं। वहीं यह भी तिष्ठता है। जैसे दीपकोंकी ज्योतिमें ज्योति मिली हुई दीखती है परन्तु हरएक ज्योति भिन्न ही है वैसे सिद्धोंकी अवगाहनामें सिद्ध परस्पर तिष्ठते हैं तथापि सबकी सत्ता अलग अलग ही रहती है।

श्री गुरु दिस गाथा २८ से ४५ तक।

मूल गाथा—गुरु उवएसिउ गुपत रुइ, गुपत ज्ञान सहकार।
तारनतरन समर्थ मुनि, भव संसार निवार ॥ १ ॥
संसय सल्य विमुक्त गुरु, भय विलयत जिन उत्त।
अभय ज्ञान सुइ गुपत रुइ, ज्ञान विज्ञान संजुत्त ॥ २ ॥
गुरु गरुवो गुरु नन्त पउ, दिस दिष्ट दरसंत।
सब्द संजोये अमिय रस, भय पिपियं उवसंत ॥ ३ ॥
दिस ऊवनो ज्ञान मइ, दिष्ट इष्ट संजुत्तु।
दिस विज्ञान सु गुपित मउ, दिस इष्ट संजुत्तु ॥ ४ ॥
दिस सहाउ सु समय पउ, समय अमल जिन उत्तु।
दिष्ट इष्ट सुइ अमिय पउ, भय पिपि अमल संजुत्तु ॥ ५ ॥
दिस विसेप निसंक पउ, कंप रहित जिन उत्तु।
भय सल्य संक विलय सुई, अमिय रमन विस भंज ॥ ६ ॥

ध्रुत्ति रयन मल विलिय पउ, निध्रुत्ति दिस जिन उत्त ।
भय विनास सु दिष्ट मउ, अमिय रमन संजुत्त ॥ ७ ॥
दिस रमन जिन उवन पउ, उवन सहाव संजुत्त ।
दिस उवन सहकार जिन, भय षिपि अमल जिनुत्त ॥ ८ ॥
दिस ओत पद् कमल जिन, अवयास दिष्ट दिष्टंत ।
उववन हिय सहयार पउ, अमलं दिष्ट दरसंत ॥ ९ ॥
दिस दिष्टि सो नन्त पउ, दिष्टि नन्त जिन उत्त ।
सल्य संक विलयंत गुरु, अमिय रमन सिद्धंत ॥ १० ॥
दिस नन्त जिन उत्त जिन, रंजन राग विलंत ।
अन्मोय दिस्टि भय पिपक जिन, अन्मोय अमल सिद्धंत ॥ ११ ॥
षिपियो नन्त सु कम्म सुइ, मुक्ति इष्ट इष्टंतु ।
अमिय रमन विपविलय गुरु, अमल मुक्ति दरसंतु ॥ १२ ॥
जं सहाय चउ रह गमन, साधु समय जिन उत्तु ।
परजय सल्य संक गलिय, ज्ञान दिस दरसंतु ॥ १३ ॥
अनदिठ अनश्रुत गुप्त गुरु, अनहुत् दर्स दर्संत ।
गुप्त गुहिज जे रमन मउ, गुप्त मुक्त जिन उत्त ॥ १४ ॥
उवन उवन दिप दिष्ट जिन, उवनो दाता देउ ।
गुरु गुप्तह सुइ रमन पउ, अमिय रमन रस ओत ॥ १५ ॥

देव दिस हिय यार मुइ, ग्रन्थ-मल्य भय चत्तु ।
गुप्त रमन दरमंत मुइ, सिद्ध मुक्त मोइ उत्तु ॥ १६ ॥
परम गुप्त परमप्प जिन, पर पर्जय विलयंत ।
भय षिपनक जो अमिय मउ, अमल परम गुरु उत्तु ॥ १७ ॥
उववन हिय महयार मउ, परम गुप्त दरसंत ।
उववन हिय महयार श्री, परम मुक्त विलसंत ॥ १८ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(तारन तरन समर्थ मुनि गुरु) संसारसे परको तारनेमें और स्वयं तरनेमें समर्थ ज्ञानी गुरु महाराजने (भव समार निवार) भव भवके भ्रमणको दूर करनेवाले (गुपत ज्ञान सहकार) गुप्त ज्ञान जो केवलज्ञान उसको प्रगट करनेवाले (गुपत रुइ) गुप्त रुचि जो आत्म प्रतीति रूप निश्चय सम्यग्दर्शन (उव एसिउ) का उपदेश किया है ॥ १ ॥

(संसार सल्य विमुक्त गुरु) गुरु महाराजमें कोई तत्वमें संशय नहीं है और न कोई मिथ्या, माया, निदान शल्य है। शास्त्रमें कहा है " निःशल्यो व्रती " व्रती शल्य रहित होता है। (भय विलयन) भयको दूर करनेवाला (जिन उत्त) जिनेन्द्र भगवानका कहा हुआ (ज्ञान विज्ञान संजुत्त) आत्मा और अनात्माके भेदज्ञानको रखनेवाला (अभय ज्ञान) निर्भय ज्ञान स्वरूप (सुइ गुपत रुइ) सो ही निश्चय सम्यक्त है अर्थात् आत्मानुभवरूप सम्यग्दर्शन परम निःशङ्क है। जिसके यह सम्यक्त है वह सदा निर्भय रहता है उसको अपना आत्मा शुद्ध दिखता है ॥ २ ॥

(गुरु गम्भो) गुरु महाराज बड़े गम्भीर हैं (गुरु नन्त१उ) गुरुने अनन्तज्ञानका भेद पालिया है (दिष्ट दरसन) गुरु महाराज प्रकाशनीय सम्यग्दर्शनका स्वरूप दिखाते हैं (सब्द अमियरस सजोग) गुरुने अपने शब्दोंमें अमृत-रस मिला दिया है। अर्थात् गुरुके आत्म प्रतीति करानेवाले वचनोंको सुनकर श्रोताओंके मैं र आनन्दरूपी अमृत-रसका स्वाद आजाता है (भय खिपियो) गुरुके वचन सर्व भयको दूर करनेवाले है (उवसत) तथा शांतिमय हैं ॥ ३ ॥

(दिप्त ज्ञानमइ हुवनो) प्रकाशमान या शोभनीय आत्मज्ञानकी बुद्धि उत्पन्न होती है वह (इष्ट दिष्ट सजुत्त) हितकारी सम्यग्दर्शन सहित होती है (दिप्त विज्ञान सु गुपित मउ) वहां ही प्रकाशनीय भेदविज्ञान है जो गुप्तरूप है। अर्थात् निश्चय तत्वको भिन्न २ झलकानेवाला है (दिप्त इष्ट सजुत्त) वह ज्ञान शोभनीय हितको करनेवाला है। अर्थात् इसी सम्यग्ज्ञानसे आत्माको केवलज्ञानका व मोक्षका लाभ होता है ॥४॥

(जिन उत्त) जिनेन्द्र भगवानने कहा है (दिप्त सहाउ सु समय पउ) कि जो आत्माका शुद्ध प्रकाशमान स्वभाव है वही समय पद अर्थात् आगमके पदोंका सार है (अमल समय) वह कर्ममल रहित आत्मा ही है (इष्ट दिष्ट सुइ अमिय पउ) परमप्रिय आत्माकी प्रतीति सोई अमृतपद है अर्थात् यही सहज आत्माका गुण अविनाशी सम्यग्दर्शन है (भय पिपि अमल सजुत्त) यह सम्यक्त सातों भयोंको दूर करनेवाला है। सम्यक्तीको इसलोक भय कि लोग क्या कहेंगे ऐसा भय। २ परलोक भय—परलोकमें कहीं दुःखमय गतिमें न चला जाऊँ। ३-वेदना भय—रोग होनेका भय। ४-अरक्षा भय—मेरा कोई रक्षक नहीं है क्या करूंगा। ५-अगुप्त भय—मेरा परिग्रह कहीं चला न जावे। ६-मरण भय—कहीं मर न जाऊँ। ७-अकस्मात् भय—कहीं छत न गिर पडे, आग न लग जावे। ऐसे सात भय नहीं होते हैं। तथा यह सम्यक्त मल रहित है, शंकादि २५ दोषोंसे रहित है ॥ ५ ॥

(जिन उत्त) जिनेन्द्र भगवानने कहा है (दिप्तविसेप) यह विशेष आत्मज्ञानका प्रकाश (निसंक पउ) निःशंक पद है—इसमें किसी तरहकी शङ्का नहीं है, यह निःशंकित गुण सहित है (कंष रहित) इसमें कोई सांसारिक विषय-सुखकी इच्छा नहीं है। यह निःकांक्षित गुण सहित है (भय सल्य सक विलय सुई) इसमें न कोई भय है, न शंका है, न कोई शल्य है (अमिय रमन) यह आत्मज्ञान आनन्दामृतमें रमन कर रहा है—आनन्द ले रहा है (विष भजु) विषयके चाहरूपी विषको दूर करनेवाला है ॥ ६ ॥

(जिन उत्त) जिनेन्द्रने कहा है (वृत्ति रमन मल विलिय पउ) यह आत्मज्ञान आत्म स्वरूपमें रमनरूप चारित्रमें लयलीन है तथा कर्ममलको दूर करनेका यही पद है या कारण है (निवृत्ति दिप्त) और मोक्षको प्रकाश करनेवाला है (भय विनास सुदिष्ट मउ) यही सर्व भय विनाशक सम्यग्दर्शन स्वरूप है (अमिय रमन संजुत्त) इससे आनन्दामृतका भोग होता है ॥ ७ ॥

(दिप्त रमन जिन उवन पउ) प्रकाशक आत्मज्ञानमें रमन करनेवाला यह जिनेन्द्रका उदय रूप पद है

(उवन सहाव संजुत्तु) वह प्रकाशनीय स्वभाव सहित है अर्थात् सदा ही प्रकाशित रहता है (जिन दिप्त उवन सहकार) ऐसे जिनेन्द्र भगवान आत्मज्ञानके प्रकाशमें सहकारी हैं (मय विपि अमल जिन उत्तु) जिनेन्द्रका कथन भय विनाशक है व रागादि मलोंको दूर करनेवाला है ॥ ८ ॥

(दिप्त ओत षट् कमल जिन) सम्यग्ज्ञानसे पूर्ण छः अक्षरी मंत्र ॐ ह्राँ ह्रीं ह्रूँ ह्रौं ह्रः है जिसे कमल पर विराजमान करके श्री जिनेन्द्रका ही ध्यान किया जाता है। इस मंत्रमें मुख्यतासे अरहंतका संकेत है जो सम्यग्ज्ञानसे पूर्ण हैं (अवयास दिष्टि दिष्टत) वे जिनेन्द्र अनंत दर्शनसे देखनेवाले हैं। (उववन इिय सहयार पउ) श्री जिनेन्द्रका उदयरूप पद भव्य जीवोंके हितमें सहकारी है। (अमल दिष्ट दरसत) वे शुद्ध सम्यग्दर्शनको दिखाते हैं ॥ ९ ॥

(अनंत दिष्टि जिन उत्त) अनन्त ज्ञानदर्शनके धारी श्री जिनेन्द्रने कहा है (दिप्त दिष्टि सो अनत पउ निश्चय सम्यग्दर्शन अनन्त गुणोंका प्रकाशक पद है (सल्य संक विग्यंत गुण) यह तीन शल्योंसे व शंकादि दोषोंसे रहित महान तत्व है (अमिय रमन सिद्धन्त) यह आनन्दामृतमें रमन करानेवाला सिद्धांत है ॥ १० ॥

(अनत दिप्त जिन जिन उत्त) अनन्त ज्ञानी और वीतरागी जिनेन्द्रने कहा है (अन्मोय दिष्ट) आनन्द-प्रद सम्यग्दर्शन (भय षिपक) भयको क्षय करनेवाला है (जिन) रागादिको जीतनेवाला है (रंजन राग विलन) मनोरंजन करनेवाले सब रागभाव इस समतादायक सम्यग्दर्शनके प्रभावसे विलय होजाते हैं अन्मोय अमल सिद्धन्त) यह आनन्दमय शुद्ध सिद्धांत है ॥ ११ ॥

(सुई षिपियो अनत सुकम्म) इसी सम्यग्दर्शनसे अनन्त कर्मोंका क्षय होजाता है (इष्ट मुक्ति इष्टन्तु) ग्रहण करनेयोग्य हितकारी मुक्तिसे प्रेम वढ जाता है (अमिय रमन) इसीसे आनन्दामृतका भोग होता है (विष विलय) विष समान विषय सुखका राग विला जाता है (गुरु अमल मुक्ति दरसतु) महान शुद्ध मोक्ष-भावका अनुभव होता है ॥ १२ ॥

(जिन साधु समय उत्तु) वीतरागी साधुने आगममें कहा है (ज सहाय चउरह गमन) इस सम्यग्दर्शनकी सहायतासे चार घातीय कर्मोंकी निर्जरा होजाती है (परजय सल्य संक गलिय) पर्याय बुद्धिसे होनेवाली शल्य व शंकाएं विला जाती हैं (दिप्त ज्ञान दरसंतु) इससे प्रकाशमान आत्मज्ञान या केवलज्ञान दिख जाता है ॥१३॥

(अनदिठ) जिसको अबतक नहीं देखा था (अन श्रुत) जिसको अबतक नहीं सुना था (गुत गुरु)

ऐसा अपनेमें ही छिपा हुआ महान् (अनहुत दर्स दसैंत) व बाहरसे नहीं दिया गया, अपने हीमें विद्यमान सम्यग्दर्शनका प्रकाश होता है (गुप्त गुहिज जे रमन मउ) जिससे अपने आत्माकी गुप्त गुफामें रमन होता है (गुप्त मुक्त जिन उत्त) ऐसा परम अनुभवमें गुप्त और जीवन्मुक्त जिनेन्द्रने कहा है ॥ १४ ॥

(दिय दिष्ट जिन उवन उवन) ज्ञान दर्शनधारी जिनेन्द्रका उदय हुआ है (दाता देउ उवन) आनन्द-दाता देवका प्रकाश हुआ है (सुइ गुरु गुप्तइ रमन पउ) सो ही महान पद है जो अपनेमें ही गुप्तभावमें अर्थात् अनिर्वचनीय भावमें रमनरूप है (अमिय रमन रस ओत) आनन्दामृतके भोगके स्वादसे पूर्ण है ॥ १५ ॥

(सुइ देव दिप्त हिययार) सो ही पद देवदिप्त है अर्थात् प्रकाशमान पूज्यनीय देव है व भव्य जीवोंका हितकारी है (ग्रन्थ सल्य भय चक्षु) उसमें कोई अन्तरंग व वहिरङ्ग ग्रन्थ अर्थात् परिग्रह नहीं है न कोई शल्य, न कोई भय है (सुइ गुप्त रमन दरसत) सो ही पद-आत्मीक अनुभवमें गुप्त है व रमन कर रहा है व उसी आत्माको देख रहा है (सोइ सिद्ध मुक्त उत्त) उसीको सिद्धपद या मोक्षपद कहते हैं ॥ १६ ॥

(परम गुप्त परमप्प जिन) परम अनुभवमें गुप्त जिनेन्द्र परमात्मा हैं (पर पर्जय विलयंत) जहांपर परणतिका अभाव है-रागादि भाव नहीं है (जो भय विपनक अभिय मउ) जो सर्व भय रहित अमृतमई हैं। (ममल परम गुरु उत्तु) ऐसा वीतरागी परम गुरुने कहा है। ॥ १७ ॥

(हिय सहयार मउ उववन) आत्महितमें सहायकारी जिनेन्द्रका उदय हुआ है (परम गुप्त दरसत) जो परम गुप्त शुद्ध आत्मीक तत्वको देखनेवाले हैं (हिय सहयार श्री उववन) उनमें आत्म हितको सहायकारी अनंत चतुष्टय लक्ष्मीका प्रकाश है (परम मुक्त विलसतु) वे ही परम मोक्षभावका आनन्द ले रहे हैं। ॥ १० ॥

भावार्थ—इस गुरु दिप्त गाथा-समूहमें यह बताया है कि मोक्षमार्ग गुप्त ज्ञान है। उसका लाभ आत्मज्ञानी गुरुकी कृपासे होता है। गुरु महाराज अपने वचनोंमें आत्मज्ञानका रस भरकर पिलाते हैं। भव्यजीव उसको पीकर तृप्त होजाते हैं। परम गुरु तारणतरण श्री तीर्थंकरदेव हैं जो अपनी दिव्यध्वनिसे गुप्त ज्ञानका प्रकाश करते हैं। उनके पीछे श्री गणधरदेव व अन्य निर्ग्रन्थ जैनाचार्य हैं। इन गुरुओंकी कृपासे हितके वांछक शिष्यको आत्मज्ञानका सहजमें लाभ होता है। वे भेदविज्ञान बताते हैं। शुद्धात्माका स्वभाव सर्व परभावोंसे अलग झलकते हैं। उनके उपदेशको धारणामें लेकर जो मनन करता है, वारवार विचार करता है उसके अनन्तानुबन्धी और मिथ्यात्व कर्मका उपशम होकर उपशम सम्य-

ममलपाहुड
॥१९॥

गदर्शन प्राप्त होजाता है। उसीके साथ ज्ञान सम्यग्ज्ञान होजाता है। साथ ही स्वरूपाचरणकी शक्ति पैदा होजाती है। सम्यग्दृष्टीके भीतर अहंमान्यता एक अपने निज शुद्धात्मापर दृढ होजाती है। वह यही अनुभव करता है कि मैं मुक्त ही हूँ, मुक्त ही था व मुक्त ही रहूँगा। कर्म जड हैं, इनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिये निःशङ्क होजाता है। उसको कोई भय नहीं रहता है, न कोई निज तत्वमें शङ्का रहती है, न यह भय होता है कि मेरा कुछ विगाड़ होगा। वह द्रव्यार्थिक नयसे अपने आपको ध्रुव समझता है व जानता है कि न मेरे आत्मामें रोग होसक्ता है, न मरण होसक्ता है, न कोई अकस्मात् होसक्ता है, न मेरे आत्माके गुणरूपी धनको कोई चुरा सक्ता है। उस सम्यक्तीके भीतर सर्व इच्छाओंका अभाव होजाता है। वह सिवाय अपने आत्मीक पदके किसी भी विषयभोगको व किसी भी सांसारिक पदको नहीं चाहता। वह परम निःकांक्षित भावमें जमा रहता है।

उसके भीतर गुप्त ज्ञान प्रकाशमान होजाता है जिससे वह जगत मात्रके सचे स्वरूपको जानकर अपने आत्म-तत्वमें सन्तोषी रहता है। वह इस गुप्त ज्ञानमें गुप्त होनेका अर्थात् आत्मानुभव करनेका अभ्यास करता है जिससे प्राचीन कर्मोंकी निर्जरा करता है व नये कर्मोंका संवर करता है। इसतरह गुरु महाराजकी कृपासे व अपने पुरुषार्थसे जो कोई गुप्त ज्ञानको पालेता है वह मोक्षमार्गी होजाता है। सर्व जिन आगमका सार यही है जो आत्मप्रतीति रूप सम्यग्दर्शनको प्राप्त किया जावे। यदि कोईको आत्मज्ञान नहीं है तो उसका सर्व चारित्र व तप कुचारित्र व कुतप है। आत्मज्ञानको दोईजका चन्द्रमा कहा है। यही वढते वढ़ते केवलज्ञान रूपी पूर्णमासीका चन्द्रमा होजाता है।

समयसार कलशमें कहा है—

क्लिश्यन्तां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्मभिः । क्लिश्यन्तां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरं ॥
साक्षान्मोक्ष इदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं । ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपि प्राप्तुं क्षमन्ते न हि ॥ १०-७ ॥

भावार्थ—कोई मोक्षमार्गसे विरुद्ध क्रियाकांडसे कष्ट उठावे तो उठाओ व कोई महाव्रत व तपको पाल करके वहुत कष्ट चिरकाल तक करे परन्तु मोक्ष न होगी, क्योंकि मोक्ष तो साक्षात् अपने ही आत्माका एक अविनाशी पद है जो स्वयं अपने ही अनुभव करने योग्य शुद्ध ज्ञानमई है वह आत्मज्ञान गुणके प्रकाशके विना और किसी भी तरह प्राप्त नहीं होसक्ता है।

सम्यग्दर्शनके अनुभवसे कर्म मैल भी कटता है व आत्मानन्द भी होता है। अरहंत व सिद्धका स्तवन, पूजन, ध्यान व मनन मंत्रोंके द्वारा करना उसी स्वरूपके जागृत करनेका साधन है। इस सम्यक्तके प्रभावसे आत्मीक रसका ऐसा प्रेम पैदा होजाता है कि उस सम्यक्तीका रागभाव जो दूसरोंके मनोंको रंजायमान करनेका हो वह नहीं रहता है। उसके भीतर साम्यभावका साम्राज्य जम जाता है। जितना जितना सम्यक्ती आत्मानुभव अधिक२ करता है उतना उतना विषयसुखका राग छूटता जाता है। यही भाव परम निर्जराका कारण है। सम्यग्दर्शनका स्वरूप यद्यपि कठिन है-कभी सुना नहीं, कभी विचारा नहीं, तथापि यह सम्यक्त अपने पास ही है। कोई किसीको भेट नहीं कर सक्ता है। अपने भीतर ही मौजूद है। विरोधी कर्मके उदयके हटनेसे प्रगट होजाता है। ऐसा सम्यक्ती जीव जब बाहरी व अंतरङ्ग परिग्रह त्याग कर निर्ग्रंथ हो आत्मध्यान करता है तब चार घातीय कर्म नाशकर अरहंत परमात्मा होजाता है, उनसे गुप्तज्ञानका प्रकाश होता है। आयु अन्तमें सर्व कर्म रहित होकर वे सिद्धपदको पा लेते हैं।

---

(४) श्री ध्यावहु फूलणा गाथा ४६ से ६२ तक।

मूल गाथा पाठ—ध्यावहुरे गुरु, गुरुह परम गुरु, भव संसार निवारे ॥ टेक ॥
ज्ञान विज्ञानह केवल सहियो, आप तरे पर तारे ॥१॥ ध्याव० ॥
परम गुरुह उवएसिउ लोयह, ज्ञान विज्ञानह भेउ।
भय विनास भव्य तं मुनहु, उवनो दाता देउ ॥२॥ ध्या० ॥
देव उवन्नो दिट्ठो दिन्हू, लोयालोय उवएसा।
परम देव परमा सोह उवने, परम अमल सुपएसा ॥३॥ ध्या० ॥
परम देव परमप्पा सहियो, नन्तानन्त सुदिट्ठी।
नन्त गुपित विज्ञान उवन्नो, अमल दिष्टि परमेष्ठी ॥४॥ ध्या० ॥

जिन उवएसिउ भव्या लोया, अर्थति अर्था जोइ ।
षट्कमलह तं विमल सुनिर्मल, जिम सूक्षम कम्म गलेइ ॥५॥ ध्या० ॥
चिदानन्द जिन कहिउ परम जिन, सुकिय सुभाव सुदिट्ठी ।
अर्थति अर्थह कमलह सहियो, सहजानन्द जिन दिट्ठी ॥६॥ ध्या० ॥
जिनवर उत्तो सुद्ध परम जिन, भर्म कर्म सु जिनेई ।
जह जह समयह कम्म उपज्जै, ज्ञान अन्मोय पिपेई ॥७॥ ध्या० ॥
जह जह स्थानक कम्म उपज्जै, कम्मह कम्म सहाई ।
ज्ञान अन्मोयह तं तं विलिओ, भर्म कर्म सु जिनेई ॥८॥ ध्या० ॥
परम जिनं परमक्षर गहिओ, परमानन्द सहाई ।
परम सुभावह ज्ञान विज्ञानह, केवल सहियो सोई ॥९॥ ध्या० ॥
धम जो धरियो जिनवर उत्तो, ज्ञान विज्ञान सुभाओ ।
जह जह कम्म उपत सदिट्ठी, तह तह खिपन सहाओ ॥१०॥ ध्या० ॥
परम धम्म परमप्पह सहिओ, परम भाव उवलब्धी ।
परम निरंजन अञ्जन रहियो, ममल भाव सिव सिद्धी ॥११॥ ध्या० ॥
दर्सन सहियो दिष्टि अन्मोयह, परनै ज्ञान सहाओ ।
परमानह सो चरन उपज्जै, अन्मोयह ममल सहाओ ॥१२॥ ध्या० ॥
चप अचपह अवहि जु सहियो, ज्ञान विज्ञान संजुत्तु ।
कम्म उपतिह कम्म जो विलियो, ज्ञान अन्मोय स उत्तु ॥१३॥ ध्या० ॥
जैवंतह तं ज्ञान सहावह, मन पर्जय ज्ञान सुदिट्ठी ।

पर परजे विलयंत सहज सोइ, ज्ञान विज्ञान सु दिट्ठी ॥१४॥ ध्या० ॥
पद विंदइ सर्वज्ञ सु सहियो, अर्थह कमल सहाओ ।
कललंकृत कम्म जो गलियो सहजे, निर्मल ममल सहाओ ॥१५॥ ध्या०॥
दव्व कम्म अवर्न उपज्जै, घाय कम्म जिन उत्तु ।
भाव कम्म नो कम्मह सहियो, ज्ञान अन्मोय विलन्तु ॥१६॥ ध्या०॥
ज्ञानी ज्ञान अन्मोय संजुत्तु, सरन न कम्म स उत्तु ।
विमल सुनिर्मल भावह सहियो, सिवपुरि गमन तुरंतु ॥१७॥ ध्या०॥

अन्वय सहित अर्थ—(भव ससार निवारे) संसारके भ्रमणको दूर करनेवाले (ज्ञान विज्ञानह केवल सहियो) सर्वको जाननेवाले केवलज्ञानके धारी (आप तरे पर तारे) आप भवसमुद्रसे तरनेवाले तथा दूसरोंको तारनेवाले (गुरु गुरुह परम गुरु ध्यावहु) गुरुओंके गुरु परमगुरु श्री अरहंत भगवानका ध्यान करो ॥ १ ॥ (परम गुरु) परम गुरु श्री अरहंतने (भव विनास) संसारको नाश करनेवाले (ज्ञान विज्ञानह भेउ) भेद विज्ञानका भेद (लोयह) लोगोंको (उवएसिउ) उपदेश किया है (भव्य तं मुनहु) हे भव्य! उस भेदविज्ञानका मनन करो (दाता देउ उवनो) वे अरहंत परमानंदके दाता देव प्रकाशमान हैं ॥ २ ॥ (देव उवनो दिट्ठो दिन्हू लोयालोय उवएसा) प्रकाशमान श्री अरहंतदेवने लोकालोकको देखा है और लोक व अलोकका स्वरूप अपनी दिव्य ध्वनिसे उपदेश किया है (सोइ परमदेव परमा उवने) सो ही श्रेष्ठ देव व परमात्मा उद्यमान हैं (परम ममल सुपएसा) उनके असंख्यात प्रदेश ज्ञानावरणादि घातीय कर्मोंके नाशसे परम निर्मल हैं ॥ ३ ॥ (परमदेव परमप्पा) श्रेष्ठ देवाधिदेव परमात्मा (नन्तानन्त सुदिट्ठी सहियो) अनंत दर्शन सहित हैं (ममल दिष्टि परमेष्ठी) वे निर्मल क्षायिक सम्यग्दर्शनके धारक हैं व परमपदमें तिष्ठनेसे परमेष्टी हैं (अनन्त गुपित विज्ञान उवनो) उनहीसे अनंत आत्मज्ञान जो उनके आत्माके स्वभावमें गुप्त था सो प्रकाशित हुआ है ॥ ४ ॥

(जिन भव्वा लोया) जिन्होंने भव्य लोगोंको (अर्था जोइ) पदार्थोंको स्वयं देखकर (अर्थति उव एसिउ) वैसे ही पदार्थोंका उपदेश किया है (पट् कमलह तं विमल सु निर्मल) व परम निर्मल छः कमलोंको मंत्र सहित

ममलपाहुड
॥ २३ ॥

बताया है या छः अक्षरी मंत्रका उपदेश दिया है जो अत्यन्त निर्मल है (जिम सूक्षम कम्म गलेई) इस मंत्रके द्वारा परमात्माके ध्यानसे सूक्ष्म कर्मके वन्ध गल जाते हैं। भावार्थ–ॐ ह्रॉं ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः यह छः अक्षरी मंत्र है, या तो इसे एक ही छः पत्तेके कमल पर एक एक अक्षर विराजमान करके उस कमलको नाभि व हृदय आदि किसी भी स्थान पर विराजमान करके एक एक मंत्र पद द्वारा उसके वाचक परमात्माके स्वरूपका मनन किया जावे या छः स्थानों पर छः कमल एक स्थान पर एक विराजमान करके हरएक कमलके मध्यमें एक एक अक्षर लिखें व विचारें, वे छः स्थान होसक्ते हैं। सिर, मस्तक, मुख, कंठ, हृदय, नाभि इसका अर्थ जो समझमें आया सो लिखा है, विद्वज्जन विचार लेवें ॥ ५ ॥

(चिदानन्द जिन) चिदानन्द वीतराग (परम जिन कहिउ) परम जिनेन्द्रने कहा है (सुकिय सुभाव सुदिट्ठी) कि आत्माका अपना स्वभाव ही सम्यग्दर्शन है (सहजानंद) वही स्वाभाविक आनन्दका अनुभव करानेवाला है (जिन दिट्ठी) यही वह श्रद्धा है जिससे यथार्थ जिनेन्द्र परमात्माके स्वरूपकी श्रद्धा होती है (अर्थति अर्थह कमलह सहियो) उन्होंने नौ पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको व कमलके मंत्रके भावको भी बताया है ॥ ६ ॥

(जिनवर उत्तो) श्री जिनेन्द्रने कहा है (सुद्ध परम जिन) शुद्ध परमात्मा रागद्वेष विजयीका अनुभवना (मर्म कर्म सु जिनेई) रागादि भाव कर्म व ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मको भले प्रकार जीतनेवाला है (जह जय समयह कम्म उपज्जे) जिस जिस समय कर्मोंका वन्ध होता है (अनमोय ज्ञान पिपेई) आनन्दमें मग्न आत्मज्ञान उससमय कर्मोंकी निर्जरा कर रहा है। भावार्थ–साधक अवस्थामें जहांतक पूर्ण वीतरागता नहीं हुई है, धर्मध्यान व शुक्लध्यान करते हुए जितने अंश कषायकी सूक्ष्म भी कलुषता है उतने अंश वह कलुषता नवीन वन्धका कारण है, उसीसमय जो आत्मानुभव रूप धर्मध्यान या शुक्लध्यान होता है उसके द्वारा विशेष कर्मोंकी निर्जरा होती है अथवा ध्यानमें एकता होनेसे जो कर्म आनेवाले थे उनका निरोध या संवर भी होजाता है ॥ ७ ॥

(कम्मह कम्म सहाई) कर्मोंके उदयसे ही जो आत्माके भीतर कषाय या योगका परिणमन होता है उसे ही कर्मोंका आस्रव या वंध होता है, ऐसा होनेपर (जहजह स्थानक कम्म उपज्जै) जिस जिस गुणस्थानमें जो कर्मका आस्रव या वंध होता है (अन्मोयह ज्ञान त त विलिओ) आत्मानंदमें मगन ज्ञान उस कर्मबंधको क्षय करनेवाला है, या तो उसीसमय वीतरागताके प्रभावसे स्थिति व अनुभाग बहुत अल्प पड़ता है

अथवा सम्यग्दृष्टी ज्ञानीके सर्व ही कर्मका बंध क्षयके सन्मुख है क्योंकि उसने (मर्म कर्म सुजिनेई) भाव कर्मोंको–रागद्वेष मोहको अच्छी तरह जीत लिया है ॥ ८ ॥

(परमं जिन) श्रेष्ठ जिन या जिनेन्द्रदेव (परमाक्षर गहियो) परम अविनाशी गुणोंके धारक हैं (परमानन्द सहाई) स्वयं परमानन्दमय है व जो उनका ध्यान करता है उसको परमानन्द पानेमें सहकारी है (सोई परम सुभावह ज्ञान विज्ञानह केवल सहियो) वे ही परम पारणामिक स्वभावधारी हैं व केवलज्ञान सहित हैं ॥ ९ ॥

(जिनवर उत्तो) श्री जिनेन्द्र द्वारा कथित (ज्ञान विज्ञान सुभावो) भेदविज्ञान द्वारा प्राप्त स्वानुभव स्वभाव रूप (धर्म जो धरियो) धर्मको जिसने धारण किया है उस (सदिट्ठी) सम्यग्दृष्टिके (जह जह कम्म उपत) जैसे जैसे नवीन कर्मोंका बन्ध होता है (तह तह खिपन सहाओ) वैसे वैसे वह बन्ध क्षपणशील है–अवश्य ही क्षय होनेवाला है । सम्यग्दृष्टीके कर्मका भार जड़रहित वृक्षके समान है, शीघ्र ही पुराने बन्धके साथ नवीन बंध भी नष्ट होजायगा ॥ १० ॥

(परम धम्म परमप्पइ सहियो) उत्तम या निश्चय धर्म वही है जहां अपने आत्माको परमात्माके साथ एक समान माना जावे (परमभाव उवलब्धी) जिससे उत्तम निर्मल शुद्धोपयोग भावकी प्राप्ति होसके अजन रहियो परम निरंजन) रागादि मलसे रहित परम शुद्ध (अमल भाव सिव सिद्धी) निर्मल शुद्धोपयोगरूप भाव ही मोक्षकी सिद्धिका उपाय है ॥ ११ ॥

(दर्सन सहियो अन्मोयह दिट्टि) सम्यग्दर्शन सहित आनन्दमय आत्माका दर्शन या अनुभव होना है (परनै ज्ञान सहाओ) वही सम्यग्ज्ञानमय स्वभावमें परिणमना है (परमानह सो चरण उवउजै) जब प्रमाणरूप सम्यग्ज्ञान होता है अर्थात् आत्मा स्वसंवेदन ज्ञानसे आपसे आपको जानता है तब ही स्वरूपाचरण चारित्र पैदा होजाता है (अन्मोयह अमल सहाओ) यही आनन्दमय निर्मल आत्माके स्वभावका प्रकाश है यही धर्म है या मोक्षमार्ग है ॥ १२ ॥

(चष अचषहि अवहिजु सहियो) सम्यग्दृष्टी जीव जिस आत्मानुभवसे तीन चक्षु, अचक्षु और अवधि-दर्शन-दर्शनोपयोगको प्रकाश कर लेता है (ज्ञान विज्ञान सजुत्तु) साथ ही मति, श्रुत, अवधि तीन ज्ञान भी होते हैं (अन्मोय ज्ञान स उत्तु) वही आनन्दमय ज्ञान कहा गया है (कम्म उपतिह जो कम्म विलियो) यहां कर्मोंका आस्रव होता है तथापि कर्मोंकी निर्जरा भी होती है । गुणस्थानोंके अनुसार दसवें सूक्ष्म सांपराय

गुणस्थान तक कषाय सहित होनेसे वन्ध होता है, परन्तु शुद्धोपयोगका जितना२ प्रकाश सम्यग्दृष्टी जीवको अधिक२ होता है उतनी अधिक२ कर्मकी निर्जरा होती है ॥ १३ ॥

(त ज्ञान सहाव -यवनइ) वह ज्ञान स्वभाव जयवंत रहो। (मनपर्यय ज्ञान सुनिट्ठी) जिससे सम्यग्दृष्टी साधुको मनःपर्यय ज्ञान प्रगट होजाता है (पर प-जे सहज विलयत) उसके पर पदार्थमें परिणमन सहज ही विला जाता है। वह मनःपर्यय ज्ञानधारी बहुत शुद्ध परिणामवाला होता है, स्वभावमें अधिक परिणमन करता है। क्षायिक सम्यग्दृष्टी साधु विपुलमति मनःपर्ययको पालेता है जो उसी भवसे केवलज्ञान होनेतक नहीं छूटता है (सोइ ज्ञ- दज्ञान प-ड) यही परम प्रिय भेदविज्ञानकी महिमा है या स्वानुभवका प्रताप है जिससे मनःपर्यय ज्ञान पैदा होजाता है ॥ १४ ॥

(पद विंदह सवज्ञ जु उहिया) फिर वही साधु महात्मा तेरहवें गुणस्थानके पदमें सर्व ज्ञानका प्रकाश करके सर्वज्ञ होजाते हैं (अर्थह कमर प- अ) वहां आत्मारूपी पदार्थ कमलके स्वभावके समान विकसित होजाता है। जैसे कमल रात्रिको बंद होता है, सवेरे सूर्यके प्रकाशसे प्रफुल्लित होजाता है, वैसे केवलज्ञानावरणके उदयसे केवलज्ञानका प्रकाश न था—केवलज्ञानके प्रकाशसे आत्माका स्वरूप विकसित होजाता है (कललकृत कम्म जु गालयो महजे) शरीरमें रोकनेवाले संसारके कारण चार घातीय कर्म सहज ही आत्मध्यानके प्रतापसे गल जाते हैं (निर्मल ममल सहाओ) कर्ममल रहित निर्मल शुद्ध स्वभाव प्रकाशमान होजाता है ॥ १५ ॥

(जिन उत्त) जिनेन्द्रने कहा है (दव्व कम्म आवरण घाय कम्म उपज्जै) द्रव्य कर्मरूपी आवरण चार घातीय कर्मोंके साथ (भाव कम्म नोकम्म सहियो) रागादि भावकर्म तथा शरीरादि नोकर्म सहित (अन्मोय ज्ञान विलंतु) आनन्दमय ज्ञानके प्रतापसे क्षय होजाता है अर्थात् आत्मज्ञानके अनुभवसे पहले रागादि भावकर्म तथा चार घातीय कर्मोंका क्षय होता है। अरहन्त भगवान जब अयोगकेवली गुणस्थानमें जाते हैं तब अन्तिम दो समयमें शेष अघातीय कर्मोंका व शरीरका भी क्षय होजाता है तब आत्मा सिद्ध परमात्मा होजाता है ॥ १६ ॥

(ज्ञानी ज्ञान अन्मोय संजुत्त) ज्ञानी आत्मा शुद्ध ज्ञान व आनन्द सहित होजाता है (कम्म संरुं न) उसको कर्मोंका आस्रव बन्द होजाता है, वहां न योग है न कषाय है (स उत्तु) ऐसा वह सिद्धात्मा कहा

गया है (विमल सु निर्मल भावह सहियो) कर्म मल, रागादि मल, व शरीर मल सबसे रहित शुद्ध भावके साथ (सिवपुरि गमन तुरन्तु) वे सिद्ध भगवान उसी समय शरीर त्याग मोक्ष-क्षेत्रमें ऊर्द्धगमन स्वभावसे चले जाते हैं ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस फूलणामें पहले श्री अरहन्त भगवानकी स्तुति की है कि ने ही परमगुरु हैं, तरन तारन हैं, उन्होंने सच्चा मोक्षमार्ग बताया है। वे अरहन्त भगवान सर्वज्ञ वीतराग व आनन्दमय हैं। वे क्षायिक सम्यग्दृष्टी हैं व परम पूज्य परमेष्ठी हैं। उनके उपदेशका सार यह है कि यह प्राणी राग द्वेष मोहसे कर्मोंका वन्ध करता है। मिथ्या ज्ञानसे यह संसारमें भ्रमण कर रहा है। इसे आत्म प्रतीतिरूप सम्यग्दर्शनको प्राप्त करना चाहिये। भेदविज्ञानसे यह भलेप्रकार समझना चाहिये कि आत्मा स्वभावसे परम शुद्ध ज्ञानानन्दमई सिद्ध परमात्माके समान है। द्रव्य कर्म, भावकर्म, शरीरादि नोकर्म इसके स्वभावमें नहीं है। जो भव्यजीव इस भेदविज्ञानका वारवार अभ्यास करता है उसका अनन्तानुवन्धी कषाय सहित मिथ्यात्व-भाव चला जाता है और सम्यग्दर्शनका प्रकाश होजाता है। सम्यग्दर्शनके साथ ज्ञान भी सम्यग्ज्ञान होजाता है। चारित्र भी स्वरूपाचरणरूप प्रगट होता है। स्वानुभवका अभ्यास कर्मके संवर व कर्मकी निर्जराका कारण है। स्वानुभवके अभ्याससे अवधि दर्शन सहित अवधि ज्ञानका प्रकाश होजाता है। यही स्वानुभव जब अधिक बढ़ता है तब शुद्ध परिणामोंके प्रतापसे साधुके मनःपर्यय ज्ञान पैदा होजाता है। मनःपर्यय ज्ञान सहित स्वानुभव करते हुए वह साधु क्षपकश्रेणीपर चढ़के मोहका क्षय कर देता है। फिर ज्ञानावरण दर्शनावरण तथा अन्तराय कर्मोंका भी क्षयकर अर्हंत परमात्मा होजाता है। अर्हंत भगवान् अन्तमें शेष अघातीय कर्मोंका भी क्षय करके सिद्ध परमात्मा होकर ऊर्ध्वगमन स्वभावसे सिद्ध क्षेत्रमें जाकर विराजमान होजाते हैं। मोक्षमार्ग स्वानुभवरूप है, मोक्ष भी स्वानुभवरूप है। जैसा कारण होता है वैसा ही कर्म होता है। श्री जिनेन्द्र भगवानका यह परमोपकार हमें भाव सहित ग्रहण करके उसहीका मनन करना चाहिये। तथा परम गुरु श्री अर्हंत परमात्माका ध्यान करना चाहिये व वारवार उनका स्तवन करना चाहिये। सम्यग्दर्शनका ऐसा प्रभाव है कि उसके होते हुए जो कुछ कर्मबन्ध होता भी है वह सर्व क्षय होजायगा। उसीकी सत्तामें अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर मात्रसे अधिक कर्मोंकी स्थिति नहीं होती है। तब नवीन बन्ध भी जो होता है वह भी इससे अधिक स्थितिका नहीं होता है अर्थात् जितना नवीन बन्ध

अमलपाहु ॥ २७

भी होगा वह पुराने कर्मोंके उदयके साथ २ झड़ जायगा। तथा सम्यक्तीके घातीय कर्मोंमें व असातावेदनीयादि पापरूप अघातीय कर्मोंमें स्थिति व अनुभाग कम पड़ता है।

सातावेदनीयादि पुण्य प्रकृतियोंमें भी स्थिति कम पड़ती है परन्तु अनुभाग अधिक पड़ता है। उसके आत्मानुभवके प्रसादसे सत्तामें बैठे हुए कर्मोंकी स्थिति भी घट जाती है। एक दफे सम्यक्त होजानेपर सम्यक्ती सिद्धपुरकी तरफ गमन करने लगता है। संसारकी तरफ उसकी पीठ होजाती है। अनन्तानुबन्धी कषायके उदय न होनेसे व मिथ्यात्वके उदय न होनेसे संसारकी जड़ कट जाती है। इसलिये वह मोक्षमार्गी सदा आत्मानन्दमें मगन रहना ही वांछता है। वह आत्मानन्दकी मगनताको ही धर्म समझता है। गृहस्थीको यद्यपि कषायोंके उदयसे अपनी २ पदवीके योग्य अथ व काम पुरुषार्थ साधन करना पड़ता है, तथापि उसकी गाढ़ रुचि मोक्षभावमें ही रहती है। वह सर्व संसार जालको आत्मानन्दका बाधक जानता है, रोग जानता है, रोगसे छूटना ही चाहता है। सम्यक्तीके गुणस्थानोंके अनुसार आस्रव होता है तथा संवर भी होता है। मिथ्यात्व, सासादन व मिश्र गुणस्थानोंमें जिन प्रकृतियोंका आस्रव अनन्तानुबन्धी कषाय, मिथ्यात्व व मिश्र मिथ्यात्वसे होता था उनका बिलकुल संवर होजाता है। पांचवें गुणस्थानपर जानेसे अप्रत्याख्यानावरण कषायके उदयसे जो कर्म आते थे उनका यहां संवर होजाता है। इसीतरह आगे२ संवर होते २ सयोग गुणस्थान तक मात्र आस्रव आता है, अयोग गुणस्थानमें बिलकुल संवर होजाता है। शुक्लध्यानके प्रभावसे सर्व पुरातन कर्मकी निर्जरा होजाती है। संवर व निर्जराके प्रतापसे आत्मा मोक्ष होकर सिद्ध होजाता है।

---

(९) धर्मादिष्ट गाथा ६३ से ८९ तक।

धम्म जु उत्तो जिन वरह, अर्थति अथह जोय।
भय विनास भव जू मुनहु, ममल ज्ञान परलोय ॥ १ ॥
अर्थति अथह भेउ मुनि, लषन रूव संजुत्तु।
ममल ज्ञान सहकार मउ, भय विनास तं उत्तु ॥ २ ॥

उवंकार ऊँवं नमइ, ह्रींकार हिय यार।
श्रींकार संजुत्त श्री, अमल ज्ञान सहकार ॥ ३ ॥
उवन हिया सहयार मउ, अर्थति अर्थ संजुत्त।
धम्म जु धरियो अमल पउ, अमिय रमन जिन उत्त ॥ ४ ॥
रमने रमियो अमल पउ, सल्य संक विलयन्त।
अन्मोय ज्ञान भय पिपिय, धम्म रमन जिन उत्तु ॥ ५ ॥
धम्म जु धरियो ममल पउ, धरिय उवन जिन उत्तु।
अर्क सु अर्क सुअर्क मउ, विंद विज्ञान सुंजुत्तु ॥ ६ ॥
अर्क सुय जिन अर्क मउ, अर्क रमन हिय यार।
गुप्त अर्क सहकार जिन, विंद रमन विज्ञान ॥ ७ ॥
पदह अर्क पद विंद सम, पदह पर्म पद उत्तु।
परमप्पह परमप्प जिन, पदह अमिय रस उत्तु ॥ ८ ॥
अर्थति अर्थह अर्क सम, लघु दीरघ नहि दिट्ठु।
अर्क विंद विज्ञान सम, उत्पन् भाव सुइट्ठु ॥ ९ ॥
धरयति धम्म जु जिन कहिय, धरय तिलोयालोय।
अर्थति अर्थह समय सम, धम्म अमिय सुइ ओय ॥ १० ॥
धरयति धरियो ममल पउ, समल भाव विलयंत।
जम्मन मरन जु समल पउ, अन्मोय ज्ञान विलयन्त ॥ ११ ॥

ममलपाहुड
॥ २९ ॥

धरन विलय अधरन धारिय, धम्म तिलोय पसिद्ध ।
नन्तानन्त विज्ञान पउ, पर परजय विलयन्त ॥ १२ ॥
गहन विलय अगहन गहन, सल्य संक विलयन्तु ।
अमिय पयोहर रमन पउ, अभय अमिय विलसंतु ॥ १३ ॥
सहन विलय असहन सहिउ, सहिय ज्ञान उवएस ।
धरन धरिउ जिन धरन जिन, पर परजे विलयंत ॥ १४ ॥
रहन विलय अरहन सहिउ, रह पर्जय विलयन्तु ।
दिस दिष्टि सुइ ज्ञान पउ, ज्ञान मुक्त दरसन्तु ॥ १५ ॥
रमन विलय अरमन रमिउ, रमियो उवनहि सार ।
सह अरमन साहिउ ममल, अमिय रमन हिययार ॥ १६ ॥
दंस गलिउ दस धरियो, दिष्टि गलिय जिन दिष्टि ।
तारनतरन सहाव ले, धम्म इष्ट परमेस्टि ॥ १७ ॥
लष गलियो अलष लषियो, जिनयति कम्म सहाउ ।
भय विनास भवि जू मुनहु, अमिय अमल सद्भाउ ॥ १८ ॥
लष गलियो अलष लषियो, लषियो अमल सहाउ ।
भय षिपिय परजय विलयं, विस विलय अमिय भाउ ॥ १९ ॥
गम गलियो आगम गमियो, अगम दिष्टि दर्संतु ।
सुद्ध इष्ट सो अमिय मय, अभय अमल दर्संतु ॥ २० ॥

गम गलियो अगम गमियो, गमियो नन्तानन्त ।
विंद विज्ञान सु समय मउ, धम्म रमन सिव पंत ॥ २१ ॥
लब्धि गलिउ जिन लब्धियो, जिनियो कम्म सहाव ।
परजय भय विलयंत सुइ, अमिय अमल सद्भाव ॥ २२ ॥
परम परम परिनाम धरि, परम ज्ञान सहकार ।
पर परजय भय सल्य विन, परम धम्म सहकार ॥ २३ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(जिन वरह अर्थति अर्थह जोय जु धम्म उत्तो) जिनेन्द्र भगवानने निश्चयसे यथार्थ रूपमें पदार्थोंको देखकर जो धर्म कहा है (भय विनास) वह सर्व भयोंको नाश करनेवाला है (परलोय ममल ज्ञान) व परलोकके लिये निर्मल ज्ञान देनेवाला है (भव जू मुनहु) हे भव्यजीव ! उसी धर्मका मनन कर ॥ १ ॥

(लषन रूव सजुत्त) लक्षण और स्वभावोंके साथ (अर्थति अर्थह भेद मुनि) पदार्थोंका यथार्थ भेद मनन करो (ममल ज्ञान सहकार मउ वही निर्मल ज्ञानकी उत्पत्तिमें सहकारी है (भय विनास तं उत्त) उसी धर्मको भय विनाशक कहा गया है ॥ २ ॥

(उवंकार ऊंव नमइ) ॐकारमें ॐ मन्त्रको नमस्कार करो (हिययार ह्रींकार) तथा हितकारी ह्रीं मंत्रको नमस्कार करो (श्री सजुत्त श्रींकार) व अन्तरङ्ग बहिरङ्ग लक्ष्मी सहित श्रीं मंत्रको नमन करो (अमल ज्ञान सहकार) निर्मल ज्ञानके प्रकाशमें ये मंत्र सहकारी हैं। भावार्थ—साधकको ॐ ह्रीं श्रीं मंत्रोंके द्वारा इनके वाचक पांच परमेष्ठीको, चौवीस तीर्थंकर अरहन्तोंको व केवलज्ञान रूपी लक्ष्मीको मनन करके उनके शुद्ध स्वभावका ध्यान करना चाहिये ॥ ३ ॥

(हिया उवन) मनमें उत्पन्न, (सहयार मउ) सहकारी, (अर्थति अर्थ सजुत्त) यथार्थ पदार्थको बतानेवाले (ममल पउ) निर्मल पदको देनेवाले (अमिय रमन) आनन्दामृतमें रमन करनेवाले (धम्म जु धरियो) धर्मको धारण करना योग्य है (जिन उत्त) ऐसा जिनेन्द्रने कहा है। भावार्थ—निश्चय रत्नत्रयमई आत्मानुभव रूपी धर्म यथार्थ आत्माका बोधक है व केवलज्ञानका दाता है व परमात्म पदका कारण है तथा परमानन्दसे पूर्ण है। इसी धर्मका मनमें मनन करो ॥ ४ ॥

ममलपाहुड
॥३१॥

(रमने ममल पउ रमियो) आनन्दमई निर्मल आत्मपदमें रमण करो (सल्य सक विलवंत) जिससे सर्व शल्य व सर्व शङ्काएँ विला जाती हैं (भय षिपिय अन्मोय ज्ञान) वही भय रहित आनन्दप्रद ज्ञान है (धम्म रमन जिन उत्त) इसी धर्ममें रमना या लीन होना जिनेन्द्रोंने कहा है। भावार्थ–आत्माका स्वभाव परम रमणीक ज्ञानमई व आनंदमई तथा निर्भय स्वरूप अमूर्तीक है। यही धर्म है। इसी धर्ममें रमण करना धर्माचरण है॥५॥

(ममल पउ धम्म जु धरियो) शुद्ध आत्मीक पदरूपी धर्मको धारण करो (उवन्न धरिय) यही उत्पन्न होनेवाले या आनेवाले कर्मोंको रोकनेवाला है (जिन उत्तु) ऐसा जिनेन्द्रने कहा है (अर्क सुअर्क सुअर्क मउ) यही धर्म सूर्य समान प्रकाशक है, अग्निके समान कर्मदाहक है, स्फटिकके समान निर्मल है। (नोट–अर्क शब्दके सूर्य, अग्नि, स्फटिक तीनों ही अर्थ होते हैं) (विंद विज्ञान संजुत्त) और वह धर्म स्वानुभव ज्ञान सहित है। भावार्थ–स्वात्मानुभव सहित ही धर्म है। इसी धर्मको जो धारण करते हैं उनका कर्मास्रव रुकता है। यह धर्म सूर्यके समान वीतराग विज्ञानमय है, अग्निके समान पिछले कर्मोंकी निर्जरा करता है तथा सर्व रागादि विकारोंसे व संकल्प विकल्पोंसे रहित स्फटिकमणिके समान निर्मल है ॥ ६ ॥

(अर्क सुय जिन अर्क मउ) यह धर्म स्वयं सूर्यके समान सर्व अन्य प्रकाशोंको जीतनेवाला परम तेजस्वी है (अर्क रमन हिययार) यह सूर्यसम परमात्माके स्वभावमें रमन करनेवाला हितकारी है (गुप्त जिन अर्क सहकार) आत्मामें छिपा वीतरागमय केवलज्ञान–भानुकी प्रगटताका कारण है (विंद रमन विज्ञान) यही स्वानुभव रमन भेदविज्ञान है ॥ ७ ॥

(पदह अर्क पद विंद सम) यह धर्मपद ज्ञानमय सूर्यपदका अनुभव करानेवाला समभाव रूप है (पदह परम पद उत्तु) यह धर्मपद परमपद या मोक्षपद रूप कहा गया है (परमप्पह परमप्प जिन) यही परमात्माका परम स्वरूप जिनरूप है (पदह अमिय रम उत्त) इस धर्मपदमें अमृत रस भरा है ऐसा कहा गया है। भावार्थ- परमात्म स्वरूपका शुद्ध अनुभव ही धर्म है। जब धर्मी आत्मा इस धर्ममें तन्मय होता है तब स्वयं मानों परमात्मा रूप होजाता है तब आनन्दरूपी अमृत रसका स्वाद आता है ॥ ८ ॥

(अर्थति अर्थह अर्क सम) वास्तविक निश्चय आत्म पदार्थ सूर्यके समान है (लघु दीरघ नहि दिट्ठु) वह समतामय है, वहां छोटे बड़ेका कोई भेद नहीं दीख पडता है अर्थात् पर्यायकी अपेक्षा बहिरात्मा, अंतरात्मा तथा परमात्माका भेद वहां नहीं है, वह एकरूप है (अर्क विन्द विज्ञान सम) वही प्रकाशमान स्वानुभव ज्ञानमई

व समतारूप है (सु इट्ठु भाव उत्पन्न) परम इष्ट हितकारी मोक्षका कारण रूप भावका वहां उदय है ॥ ९ ॥

(जिन कहिय धम्म जु धरियति) जिनेन्द्र द्वारा कथन किये हुए धर्मको जो धारण करता है (तिलोयालोय धरय) वह तीन लोक व अलोकको अर्थात् लोकालोकके स्वरूपको अपने ज्ञानमें पहचानता है (अर्थति अर्थह समय सम) वही वास्तविक तत्व है, वही भलेप्रकार स्वपरिणमन रूप समय है व समताभाव रूप है (सुइ ममित ओत धम्म) सो ही अमृतसे पूर्ण धर्म है ॥ १० ॥

(धरियो ममल पउ धरयति) जो कोई धारने योग्य इस निर्मल आत्म स्वरूपका ध्यान करता है (समल भाव विलयत) उसके अशुद्ध मलीन भाव नाश होजाते हैं (जम्मन मरन जु समल पउ) जन्म, मरण सहित जितनी अशुद्ध पर्यायें या अवस्थायें हैं वे (अन्मोय ज्ञान विलयंत) इस आनन्दमय आत्मज्ञानके प्रतापसे विला जाती हैं। भावार्थ—शुद्धात्मीक ध्यानसे ऐसा कर्मका बन्ध नहीं होता है जिससे भव भवमें जन्म मरण करना पड़े। शुद्धोपयोगी शीघ्र ही कर्म काटकर मुक्त होजाता है ॥ ११ ॥

(धरन विलय अधरन धरिय) जिनको ग्रहण किया था या धारण किया था ऐसे कर्मोंका व शरीरका जिससे नाश हो तथा जिसमें किसी परभावका धारना नहीं है ऐसे आत्माके स्वभावमें जो धारणा करे (धर्म्म तिलोय पसिद्ध) वही धर्म है और वह तीन लोकमें प्रसिद्ध है। सर्व ही गणधरादि संत ऐसा ही कहते हैं। श्री समंतभद्राचार्य रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें लिखते हैं—

देशयामि समीचीन धर्मं कर्मनिवर्हणं। संसारदुःखत सत्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे ॥ २ ॥

मैं ऐसे धर्मको कहूंगा जो सनातन है व जो कर्मोंको काटे और जीवको संसारके दुःखोंसे बचाकर उत्तम आत्मीक सुखमें धारण करे (नन्तानन्त विज्ञान पउ) यह अनन्तज्ञानरूपी पदको देनेवाला है (पर परजय विलयंत) तब सर्व पर पर्यायोंका व कर्मकृत अशुद्ध अवस्थाओंका नाश होजाता है ॥ १२ ॥

(गहन विलय अगहन गहन) इस धर्मके प्रतापसे जिस शरीरको जीवने ग्रहण किया है वह शरीर नाश होकरके जिस आत्माके स्वभावमें या आत्माके प्रदेशोंमें किसी पर पदार्थका प्रवेश या ग्रहण निश्चयसे नहीं होसक्ता है उसका ग्रहण या अनुभव या लाभ होजाता है। अर्थात् परसे छूटकर आपमें ही थिर हो जाता है (सल्य संक विलयंतु) आत्माका जब ग्रहण होता है तब सर्व शल्य व सर्व शंकाएँ विला जाती हैं। निःशल्य व निर्भय भाव जागृत होजाता है (अमिय पयोहर ममल पउ) अमृतरूपी जलसे भरे हुए मेघके

ममलपाहुड ॥ ३३ ॥

समान आत्मामें रमन करानेवाला यह धर्मपद है (अमन ...) इसीमें रमनेसे निर्भय आनन्दरूपी अमृतका स्वाद आता है ॥ १३ ॥

(सहन विलय अमहन) जिन दुःख सुखोंको कर्मोंके उदयसे सहना पड़ता था उन सर्वका नाश होजाता है तथा जिसमें कोई कष्टका सहना नहीं है ऐसे आत्मानन्दका संयोग या प्रकाश होजाता है (महिय ज्ञान उवएस) साथमें ज्ञानमय शिक्षाका तत्व जागृत होजाता है। अर्थात् श्री गुरुने जो आत्मज्ञानकी शिक्षा दी थी उसीके अनुसार ज्ञानमय भाव जग उठता है ... (धरन जिन) धराने योग्य श्री जिनेन्द्रका जो उपादेय जिनपद है उसका धारण होजाता ... (... अ-यन) तब सर्व परभाव विला जाते हैं। भावार्थ—आत्मधर्ममें तल्लीन होनेसे दुःखोंका अन्त होजाता है, परम सुख व निर्मल ज्ञान प्रगट होजाता है। इसी अभ्याससे परमात्मपद झलक जाता है, संसारीपद नाश होजाते हैं । १४ ॥

(सहन विलय अगहन) त्यागने योग्य घातीय कर्मोंका नाश होजाता है तब न त्यागने योग्य व ग्रहण योग्य व पूजने योग्य अर्हंत पदका लाभ होजाता है (... वयन) त्यागने योग्य संसारकी पर्यायोंका अर्थात् जिनपदमें तिष्ठनेसे चार गतिकी जन्म-मरणरूपी पर्यायोंका अन्त होजाता है (दिप्त दिष्ट मई ...) प्रकाशमान अनन्तदर्शन व उसीके साथ अनन्त ज्ञानमय होजाता है (ज्ञ मुक्त ...) वह केवलज्ञान साक्षात् कर्मरहित शुद्ध आत्माका दर्शन ... है। —आत्मधर्ममें रमन करनेसे अरहन्त परमात्मा होजाता है। उनका निर्मल केवलज्ञान ... आत्माको साक्षात् प्रत्यक्ष देखलेता है ॥ १५ ॥

(रमन विलय अरमन ...) सांसारिक सुख विला जाता है तथा जो आत्मा किसी परकृत सुखमें रमता नहीं है उस आत्मामें रमन या परिरमण होजाता है। अर्थात् इंद्रिय सुखका रमन मिटकर अतीन्द्रिय सुखमय आत्मामें रमण हो जाता है (रमयो ...) इस आत्मरमणसे परम हितकारी पद उत्पन्न होजाता है (अरमन सम ममल साहिउ) इस अरमन अर्थात् परमें नहीं रमनेवाले आत्मीक भावके साथ रमनेसे निर्मल परम शुद्ध पदका साधन होजाता है। अर्थात् जैसा साध्य हो वैसा साधन होना चाहिये। शुद्ध स्वरूपके परिणमनसे ही शुद्ध स्वरूपका प्रकाश होता है (अमिय रमन हिययार) आनन्दामृतके स्वादमें रमना ही हितकारी है अर्थात् आनन्दमय वीतराग शुद्ध आत्मीक भावमें रमण करनेसे आत्मा सिद्ध होकर अनन्तकालके लिये स्वाधीन होजाता है। ऐसे हितका कर्ता यह आत्म रमण है ॥ १६ ॥

(दस गलिय दर्स धरियो) दोष गल जाता है, आत्मीक दर्शन या सम्यग्दर्शनका ग्रहण होजाता है अर्थात् आत्माका अज्ञान व रागद्वेषमय दोष सब गलकर परमावगाढ़ सम्यग्दर्शनका ग्रहण होजाता है (दिस्टि गलिय जिन दिस्टि) परकी तरफ जानेवाली दृष्टि गल जाती है। तब सर्व कषायोंको जीतनेवाली आत्म-दृष्टि प्रकाश होजाती है (तारण तरण सहाव ले) उस अरहन्त पदमें तारणतरण स्वभावका लाभ होजाता है। वह अरहन्त अपने उपदेशसे अनेकोंको भवसागरके पार होनेका उपदेश देकर तार देते हैं व आप भी पार होजाते हैं (धम्म इस्टि परमेष्टि यह धर्म परम प्रिय अरहन्तके परमेष्टी पदमें पहुँचा देता है ॥ १७ ॥

(लप गलियो अलप लपियो इंद्रिय व मनसे होनेवाला संसारीको प्रगट ऐसा ज्ञान गल जाता है तथा संसारीको अप्रगट ऐसे गुप्त केवलज्ञानका प्रकाश होजाता है (कम्म सहाय जिनपति) कर्मोंके स्वभावको जीत लिया जाता है इसीसे अरहन्तको जिन केवली परमात्मा कहते हैं (ममल अमिउ सदभाव) वहा निर्मल आनन्दामृतकी सत्ता सदा पाई जाती है, अरहन्त अनन्त सुखके भोक्ता होजाते हैं (भय विनास भवि जु मुनहु) हे भव्यजीव ! सर्व भय हटाकर उसी धर्मका मनन करो जिससे ऐसा अरहन्त पद प्राप्त हो ॥ १८ ॥

(लप गलियो अलप लपियो) इंद्रिय ज्ञान व सुख गल जाता है, अतीन्द्रिय ज्ञान व सुख प्रगट होजाता है (लपियो ममल सहाउ) निर्मल स्वभावका अनुभव होजाता है (भव पिपिय परजय विलय) तब सर्व संसारका भय क्षय होजाता है। अर्थात् संसारके कारण कर्मोंका नाश होजाता है तब सर्व पर्याएँ विला जाती हैं, एक शुद्ध परिणति ही रह जाती है (विस विलय अमिय भाउ) इन्द्रिय सुखरूपी विष विलय होजाता है, आत्मानन्दरूपी अमृतका भाव झलक जाता है ॥ १९ ॥

(गम गलियो अगम गमियो) संसारका भ्रमण मिट जाता है, भ्रमण रहित मोक्षपदका लाभ होजाता है (आगम दिष्टि दरसतु) जहां व्यवहारीकी पहुँच नहीं है ऐसी अगम दृष्टि या आत्माकी दृष्टि दिख जाती है, अर्थात् आत्माका साक्षात्कार होजाता है (सुद्ध इष्ट सो अमिय मय) वही पद शुद्ध है इष्ट है तथा अमृतमय अविनाशी है (अभय अमल दर्सतु) वहां भय रहित मल रहित आत्माका दर्शन होजाता है ॥ २० ॥

(गम गलियो अगम गमियो) भव भ्रमण गल जानेसे भ्रमण रहित मुक्तिका लाभ होजाता है (नन्तानन्त गमियो) तब अनन्तानन्त कर्म चले जाते हैं। अर्थात् अनन्त कर्म वर्गणाएँ आत्मासे छूट जाती हैं। महान् कर्मोंकी निर्जरा होती है (विंद विज्ञान सुसमय मउ) स्वानुभवरूप ज्ञान व स्वसमयरूप व आत्मीकरूप पद

प्रगट होजाता है (धम्म रमन सिव पन्त) ऐसे आत्म धर्ममें रमनेसे शिव या मोक्षको पालेता है ॥ २१ ॥

(लब्धि गलियो जिन लब्धियो) क्षयोपशमरूप दान लाभ भोग उपभोग वीर्यरूप लब्धियें गल जाती हैं, क्षायिक दानादि लब्धियां श्री जिनेन्द्रके प्रगट होजाती हैं (कम्म सहाव जिनियो) कर्मोंके स्वभावको जीत लिया जाता है (परजय मय विलयत सुई) भव भवमें ग्रहण किये जानेवाली पर्यायोंका भय स्वयं विला जाता है (ममल अमिय सद्भाव) शुद्ध आनन्दामृत प्रगट होजाता है ॥ २२ ॥

(परम परम परिनाम धरि) तब परम पारमाणिक भावका धारी होजाता है (परम ज्ञान सहकार) परम श्रेष्ठ केवलज्ञानका सहयोग रहता है (पर पर्जय मय सल्य विन) सर्व पर परिणतियोंका या अवस्थाओंका भय व माया मिथ्या निदान शल्यें चली जाती हैं (परम धम्म सहकार) एक श्रेष्ठ आत्म धर्म या आत्म स्वभाव साथ रह जाता है। भावार्थ—स्वाभाविक नित्य अविनाशी मुक्तपद उदय होजाता है ॥ २३ ॥

भावार्थ—इस गाथा-समूहमें धर्मके स्वरूपका वर्णन है। धर्म वही है जो आत्मीक आनन्दको प्रदान करे तथा कर्मोंको काटके आत्माको शुद्ध करके परमात्मपदमें पहुंचा देवे। वह धर्म सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र रूप है। व्यवहारनयसे जिनेन्द्र कथित पदार्थोंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। उनहीका संशय रहित जानना सम्यग्ज्ञान है। फिर उन क्रियाओंको आचरना जिनसे पाप कटे व मोक्षमार्गका साधन होसके वह सम्यक्चारित्र है। निश्चयनयसे अपने आत्माके शुद्ध स्वभावका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है व उसहीमें लीन होना सम्यक्चारित्र है। अर्थात् वह एक शुद्धात्मानुभूति रूप है, स्वसंवेदन ज्ञानरूप है व स्वरूपाचरण चारित्ररूप है। इस निश्चय आत्मानुभूति धर्ममें आचरण करनेसे तुर्त ही परमानन्द प्राप्त होता है—वीतरागताका प्रकाश होता है, जिस भावसे नवीन कर्मोंका संवर होता है व पुराने कर्मोंकी निर्जरा होती है। श्री जिनेन्द्रने इसीको धर्म कहा है। यह धर्म सूर्यके समान वीतरागभावके साथ अपने ज्ञान स्वभावरूप आत्मामें प्रकाशित होता है। यह स्फटिकमणिके समान राग द्वेष रहित निर्मल है। यही वह ध्यानकी अग्नि है जो कर्मोंको जलानेवाली है। जब कोई इस आत्मधर्ममें लीन होता है तब कोई संकल्प विकल्प नहीं रहते हैं। इससे वही आनन्द व वैसा ही आनन्द आता है जैसा आनन्द अरहन्त परमात्माको होता है। इस निश्चय धर्ममें भेदरूप दृष्टिका विचार नहीं रहता है। बहिरात्मा अन्तरात्मा परमात्माका भेद व्यवहारदृष्टिसे है, निश्चयसे सर्व आत्माएं एक समान हैं। यही समभाव आत्मीक धर्मके

अनुभव कर्ताके भीतर रहता ह। लोकालोक छः द्रव्योंका समूह है। यह सम्यग्दृष्टी ज्ञानी जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश इनका यथार्थ स्वरूप केवलज्ञानीकी तरह ठीक२ जानता है। इस आत्मीकधर्मके अनुभवसे अशुद्ध भाव रागादि भाव गलते जाते हैं। संसार भ्रमण करानेवाले कर्मोंका वन्ध नहीं होता है।

यह आत्मधर्म आनन्दामृतसे पूर्ण मेघके समान शोभनीक है। इसके भीतर चलनेसे कभी कोई कष्ट वेदन नहीं होता है, कोई भयका वहां संचार नहीं होता है। सम्यग्दृष्टी ज्ञानी सदा ही निर्भय रहता है। वह आतमा मात्रको ही अपना समझता है। आत्माका न मरण है, न आत्माका नाश है। श्री गुरुकी यही शिक्षा थी कि अपने आपका अनुभव करो। इस आत्मानुभवको जो करने लगता है उसने गुरुकी शिक्षाके अनुकूल आचरण किया है। इसी धर्मके अभ्याससे श्रावक होता है, इसीसे साधु होजाता है, इसी आत्मधर्मपर चलनेसे उन्नति करते २ क्षपकश्रेणी चढता है। शुक्लध्यानके प्रतापसे मोहनीय कर्मका नाश होता है। फिर क्षीण मोह गुणस्थानमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अन्तराय कर्मोंका भी क्षय हो जाता है और यह आत्मा अर्हंत परमात्मा होजाता है। तब चार गतिका भ्रमण वन्द होजाता है। अर्हंत परमात्माके नौ केवल लब्धियां प्रगट होजाती हैं—(१) अनन्तज्ञान, (२) अनन्तदर्शन, (३) क्षायिक सम्यक्त, (४) क्षायिक चारित्र, (५) अनन्त दान, (६) अनन्त लाभ, (७) अनन्त भोग, (८) अनन्त उपभोग, (९) अनन्त वीर्य। केवलज्ञानीके एक मात्र केवलज्ञान होता है। मति आदि चार ज्ञान क्षयोपशमिक होते हैं, इससे नहीं रहते हैं। तब इंद्रिय व मन द्वारा ज्ञान व इंद्रिय द्वारा सुख दुःखका अनुभव सब विलय हो जाता है। अतीन्द्रिय आनन्दका अनुभव वे सदा करते हैं। उनके परमावगाढ सम्यक्त प्रगट होजाता है। वे जबतक जीते हैं अपने उपदेशसे हजारोंको भवसागरसे तिरनेका उपदेश देते हैं। फिर वे शेष चार अघातीय कर्मोंका भी नाश करके सिद्ध परमात्मा होजाते हैं, परम जीवत्व पारणामिक भावको पालेते हैं और सदाके लिये मुक्त स्वरूपमें रहते हैं। यह धर्म मोक्षके अनन्त सुखका कारण है।

श्री तत्वार्थसारमें श्री अमृतचन्द्राचार्यने ऐसा ही कहा है—

निश्चयव्यवहाराभ्यां मोक्षमार्गो द्विधा स्थितः। तत्राद्य साध्यरूप स्याद्द्वितीयस्तस्य साधनम् ॥ २ ॥

श्रद्धानाधिगमोपेक्षा शुद्धस्य स्वात्मनो हि या.। सम्यक्त्वज्ञानवृत्तात्मा मोक्षमार्ग. स निश्चयः ॥ ३ ॥

श्रद्धानाधिगमोपेक्षा या पुन स्युः परात्मना। सम्यक्त्वज्ञानवृत्तात्मा स मार्गो व्यवहारतः ॥ ४ ॥

पश्यति स्वस्वरूपं यो जानाति च चरत्यपि। दर्शनज्ञानचारित्रत्रयमात्मैव स स्मृतः ॥ ८ ॥

स्यात् सम्यक्त्वज्ञानचारित्ररूपः पर्यायार्थादेशतो मुक्तिमार्गे । एको ज्ञाता सर्वदैवाद्वितीयः स्यादद्रव्यार्थादेशतो मुक्तिमार्गः ॥२१॥

भावार्थ—**मोक्षमार्ग दो प्रकारका कहा गया है—१–निश्चय मोक्षमार्ग। २–व्यवहार मोक्षमार्ग। निश्चय मोक्षमार्ग साध्यरूप है, व्यवहार मोक्षमार्ग उसका साधन है। शुद्ध आत्माका श्रद्धान, शुद्ध आत्माका ज्ञान व परम वीतरागता तीन रूप एक आत्मा ही निश्चय मोक्षमार्ग है। पर पदार्थ जीवादिका श्रद्धान, ज्ञान व पररूप चारित्र व्यवहार मोक्षमार्ग है। जो अपने ही आत्माके स्वरूपको श्रद्धान करता है, जानता है व उसीमें आचरण करता है वह आत्मा ही रत्नत्रय स्वरूप मोक्षमार्ग है।**

पर्यायार्थिक नयसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तीन रूप मोक्षमार्ग है। द्रव्यार्थिकनयसे एक ही ज्ञाता आत्मा अद्वितीयरूप आत्मा ही सदा मोक्षमार्ग है। इसी यथार्थ धर्मको ऊपरकी गाथाओंमें बड़ी सुन्दरतासे बताया है।

---

(६) तत्वसार फूलना गाथा ८६ से १०२ तक।

उव उवनो हो न्यान विन्यानह, तत्व सहाये।
सो तत्व जो हो उत्तो जिनवर, ममल सहाये॥
मल रहियो हो उवनु जो दाता, देव सुभाये।
तत्कालह हो उवनु जो स्वामी, तत्व सुभाये॥ १॥

दिपि दिष्टि जु हो देव सहाए, सब्द सहाए।
तं सब्द विवर्ण प्रियो, सोइ मुक्ति सुभाए॥
उव उवनो हो न्यान विन्यानह, तत्व सहाये।
सो तत्व जो हो उत्तो जिनवर, ममल सहाये॥ २॥

तत्कालह हो समय ऊवनो, न्यान सहाये ।
सो न्यान विन्यानह हो उवनो, तत्व सहाये ॥
सहकारह हो तत्काल ऊवनो, अवयास सुभाए ।
अवयामह हो तत्काल ऊवनो, अन्मोय सुभाए ॥ ३ ॥ उव० ॥

अन्मोयह हो न्यान विन्यानह, षिपक सुभाये ।
सो षिपनक हो ऊवनो स्वामी, ममल सुभाये ॥
सो तत्व जो हो परमतत्व, यह परम सुभाये ।
जिन कहियो हो परमतत्व, उत्पन्न सहाये ॥ ४ ॥ उव० ॥

तत्कालह हो नो स्व मी, ममल सुभाए ।
सहकारह हो ऊ नो स्व मी, परम सुभाए ॥
परमप्पह हो रम सुभावह, सहज सुभावे ।
अन्मोय जु हो उपजिउ मिलियो, परम सुभाए ॥ ५ ॥ उव० ॥

सो तत्व जु हो परम तत्व जि उत्त सहाए ।
जिन जिनियो हो कम्म निवधा, न्यान सहाए ॥
चिदानन्द जु हो चेयन महियो, ममल सुभाए ।
जिन जिनियो हो कम्म जु स्वामी, जिनय सुभाए ॥ ६ ॥ उव० ॥

जिन जिनवरहो उत्तउ सहजे, सुकिय सहाए ।
जिनि कम्म जुहो भर्म जो जिनियो, परम सुभाए ॥

ममलपाहुड
॥ ३९ ॥

अन्मोय जु हो उवनो स्वामी, ममल सुभाए।
जिन परम जिनेसुर हो उत्तउ, मुक्ति सुभाए ॥ ७ ॥ उव० ॥

जं कम्म जुहो उपजि नंतु, अन्यान सहाए।
जनरंजन हो राग जु उवनो, समल सुभाए ॥
पर परजै हो दिष्टि जु सहियो, अनिष्ट सहाए।
सो न्यान अन्मोयह विलियो, ममल सहाए ॥ ८ ॥ उव० ॥

कल रंजन हो कम्म जु ऊपजि, समल सहाए।
मन रंजन हो गारव सहियो, राग सुभाए ॥
जं कम्म जु हो नन्तानन्त, अनन्त भवाए।
तं कम्म जु हो विलियो स्वामी, अन्मोय सहाए ॥ ९ ॥ उव० ॥

जं दर्सन हो मोहउ अन्धो, भ्रमन सुभाए।
सो भमिहो हो आदि अनादि, जु कम्म सहाए ॥
अनेयह हो विभ्रम सहियो, पर्जय दिष्ठी।
तं न्यान अन्मोयह विलयो, दर्सन दिष्ठी ॥ १० ॥ उव० ॥

तं न्यान आवर्न जु सहियो, कम्म अनन्तु।
पर परजय हो दिस्टि संजोए, अनिष्ट सहाए ॥
सो कम्म जु हो घाय स उत्तो, जिनवर दिष्ठी।
सो कम्म जु हो विलियो स्वामी, न्यान सु दिष्ठी ॥ ११ ॥ उव० ॥

जह कम्म जु हो उपजिउ स्वामी, अथ अनिट्ठी ।
सो न्यान अन्मोयह विलयो, ममल सुदिट्ठी ॥
जो चष अचषह उवनो, समल सहाए ।
सो न्यान अन्मोयह विलयो, ममल सुभाए ॥ १२ ॥ उव० ॥

जं अवहि हो कम्म स उत्तो, अनिष्ट सहाए ।
सो न्यान अन्मोयह विलयो, इष्ट सुभाए ॥
जं गुहिज स दिस्टि दिट्ठिउ, कम्म उपत्ती ।
सो न्यान अन्मोयह विलयो, दर्सन दिसी ॥ १३ ॥ उव० ॥

तं जं जं हो कम्म ऊवनो, समल सहाए ।
सो न्यान अन्मोयह विलयो, ममल सुभाए ॥
मनपर्जय हो न्यान ऊवनो, ममल सहाए ।
रिजु विपुला संजोए सहियो, न्यान सुभाए ॥ १४ ॥ उव० ॥

षट् कमल ति अर्था जोए, दिस्ति उपत्ती ।
दिप दिपियो हो न्यान विन्यानह, ममल स उत्ती ॥
पद दरसिउ हो परम तत्त्व, परमष्टी सहाए ।
विन्यानह हो विंदु जु दरसिउ, ममल सुभाए ॥ १५ ॥ उव० ॥

सर्वंग जु हो सर्व सु दरसिउ, ममल सहाए ।
तं नंता हो नंत चतुष्टै, सहज सुभाए ॥

अन्मोय जु हो उवनो स्वामी, ममल सुभाए ।
जिन परम जिनेसुर हो उत्तउ, मुक्ति सुभाए ॥ ७ ॥ उव० ॥

जं कम्म जुहो उपजि नंतु, अन्यान सहाए ।
जनरंजन हो राग जु उवनो, समल सुभाए ॥
पर परजै हो दिष्टि जु सहियो, अनिष्ट सहाए ।
सो न्यान अन्मोयह विलियो, ममल सहाए ॥ ८ ॥ उव० ॥

कल रंजन हो कम्म जु ऊपजि, समल सहाए ।
मन रंजन हो गारव सहियो, राग सुभाए ॥
जं कम्म जु हो नन्तानन्त, अनन्त भवाए ।
तं कम्म जु हो विलियो स्वामी, अन्मोय सहाए ॥ ९ ॥ उव० ॥

जं दर्सन हो मोहउ अन्धो, भ्रमन सुभाए ।
सो भमिहो हो आदि अनादि, जु कम्म सहाए ॥
अनेयह हो विभ्रम सहियो, पर्जय दिष्ठी ।
तं न्यान अन्मोयह विल्यो, दर्सन दिष्ठी ॥ १० ॥ उव० ॥

तं न्यान आवर्न जु सहियो, कम्म अनन्तु ।
पर परजय हो दिस्टि संजोए, अनिष्ट सहाए ॥
सो कम्म जु हो घाय स उत्तो, जिनवर दिष्ठी ।
सो कम्म जु हो विलियो स्वामी, न्यान सु दिष्ठी ॥ ११ ॥ उव० ॥

जह कम्म जु हो उपजिउ स्वामी, अथ अनिट्ठी ।
सो न्यान अन्मोयह विलयो, ममल सुदिट्ठी ॥
जो चष अचषह उवनो, समल सहाए ।
सो न्यान अन्मोयह विलयो, ममल सुभाए ॥ १२ ॥ उव० ॥

जं अवहि हो कम्म स उत्तो, अनिष्ट सहाए ।
सो न्यान अन्मोयह विलयो, इष्ट सुभाए ॥
जं गुहिज स दिस्टि दिट्ठिउ, कम्म उपत्ती ।
सो न्यान अन्मोयह विलयो, दर्सन दिसी ॥ १३ ॥ उव० ॥

तं जं जं हो कम्म ऊवनो, समल सहाए ।
सो न्यान अन्मोयह विलयो, ममल सुभाए ॥
मनपर्जय हो न्यान ऊवनो, ममल सहाए ।
रिजु विपुला संजोए सहियो, न्यान सुभाए ॥ १४ ॥ उव० ॥

षट् कमल ति अर्था जोए, दिप्ति उपत्ती ।
दिप दिपियो हो न्यान विन्यानह, ममल स उत्ती ॥
पद दरसिउ हो परम तत्त्व, परमष्टी सहाए ।
विन्यानह हो विंदु जु दरसिउ, ममल सुभाए ॥ १५ ॥ उव० ॥

सर्वंग जु हो सर्व सु दरसिउ, ममल सहाए ।
तं नंता हो नंत चतुष्टै, सहज सुभाए ॥

सो केवल हो सहियो स्वामी, ममल सहाए।
पिपि कम्म जु हो मुक्ति पहुंते, न्यान सहाए ॥ १६ ॥ उव० ॥
सो पत्तह हो दत्त विसेपे, परम सुभाए।
सो तारन हो तरन समर्थ, जु ममल सहाए ॥
सो निर्मल हो ममल जु, केवल न्यान सहाए।
सो न्यान अन्मोयह, मुक्ति पहुते ममल सुभाए ॥ १७ ॥ उव० ॥

अन्वय सहित अर्थ—(तत्त्व सहाए) तत्त्वोंकी सहायतासे (न्यान विन्यानह उत्र उवनो हो) भेदविज्ञान उत्पन्न होजाना है अर्थात् जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इन सात तत्वोंको व्यवहार नयसे जानकर फिर निश्चय नयसे जानना चाहिये तब यह ज्ञान होगा कि इन सात तत्वोंमें जीव और पुद्गल दो द्रव्योंका ही संयोग है, पुद्गल कर्म त्यागने योग्य है, निज जीव द्रव्य ग्रहण करने योग्य है। इसीका नाम भेदविज्ञान है। भेदविज्ञानसे अपना आत्मा कर्म रहित शुद्ध दिखता है। (सो तत्त्व जो हो जिनवर ममल महाए) इन तत्वोंको श्री जिनेन्द्र भगवानने अपने वीतराग शुद्ध स्वभावसे जानकर प्रतिपादन किया है। (सहियो हो उवनु जो दाता देव सुभाए) वे ज्ञानके देनेवाले देव कर्ममलसे व राग मलसे रहित होकर अपने स्वभावमें प्रकाशमान हैं (तत्काल हो उवनु जु स्वामी तत्व सुभाए) जिससमय घातीय कर्ममल चला जाता है उसी समय परमात्मतत्वका प्रकाश अपने स्वभावसे होजाता है ॥ १ ॥

(दिपि दिष्टि जुहो देव सहाए सब्द सहाए) सम्यग्दर्शनका प्रकाश श्री जिनेन्द्रदेवके द्वारा प्रकाशित दिव्यध्वनि द्वारा होता है (तं सब्द विवर्ण प्रियो सोइ मुक्ति सुभाए) जीवन्मुक्त स्वभावधारी अरहन्तके शब्द वर्णरहित निरक्षर होते हैं व परम प्रिय अमृतके समान होते हैं (उव उवनो हो ममल सहाए) इनका अर्थ ऊपर आचुका है ॥ २ ॥

(तत्काल हो समय ऊवनो न्यान सहाए) जब घातीय कर्मोंका क्षय होता है उसी समय केवलज्ञानकी सहायतासे समय अर्थात् आत्माका प्रकाश होजाता है (सो न्यान विन्यान हो उवनो तत्त्व सहाए) ऐसे श्री जिनेन्द्र

द्वारा प्रकाशित तत्वोंकी सहायतासे आत्मा और अनात्माका भेदविज्ञान–भिन्न २ ज्ञान पैदा होजाता है (सहकार हो तत्काल ऊवनो अवयास सुभाए) इस भेदविज्ञानकी सहायतासे उसी समय अर्थात् भेदविज्ञान द्वारा अनुभव करते हुए तुर्त ही आकाशके समान निर्मल आत्माका शुद्ध स्वभाव अपने अनुभवमें आजाता है (अवयास हो तत्काल ऊवनो अन्मोय सुभाए) जिस समय निर्मल आत्माका अनुभव उपजता है उसी समय आनन्द स्वभाव भी प्रगट होजाता है। भावार्थ–भेदविज्ञानके द्वारा मनन करते हुए जब उपयोग आत्माके शुद्ध स्वभावमें निश्चल होता है, शुद्ध आनन्दमय आत्माका अनुभव या स्वाद आजाता है–स्वात्मानुभव पाना ही तत्वका प्रकाश है ॥ ३ ॥

(अन्मोय हो न्यान विन्यानह विपक सुभाये) यह आनन्दमई ज्ञान क्षायिक स्वभाववाला होजाता है अर्थात् ज्ञानावरणीय कर्मका क्षय होकर क्षायिक केवलज्ञान प्रगट होता है (सो विपनक हो उवनो स्वामी ममल सुभाये) सो क्षायिक ज्ञान निर्मल स्वभाववाला उत्पन्न होता है (सो तत्व जो हो परम तत्व यह परम सुभाए, वही आत्माका परम तत्व है, वही परम स्वभाव है (जिन कहियो हो परम तत्व उत्पन्न सहाए) श्री जिनेन्द्रने जैसा कहा है वह परम तत्व भेदविज्ञानकी सहायतासे उत्पन्न होता है ॥ ४ ॥

(तत्कालह हो उवनो स्वामी ममल सुभाए) जिस समय आत्मानुभवकी ज्योति दूसरे शुक्लध्यानरूप जागती है उसीसमय निर्मल आत्माका स्वभाव प्रगट होता है (सहकारह हो उवनो स्वामी परम सुभाए) श्री जिनवाणीकी सहायतासे ही परम स्वभावका प्रकाश होता है (परमप्पह हो परम सुभावह सहज सुभावे) वही परमात्मा अरहन्त है जिनका स्वभाव उत्कृष्ट है तथा वही आत्माका सहज स्वभाव है (अन्मोय जुझे उपजिउ मिलियो परम सुभाए) वही परमानन्द है। ऐसा ही परम स्वभावका प्रकाश होगया है जो सर्व शुद्धात्माओंसे मिलता है ॥ ५ ॥

(सो तत्व जुझे परम तत्व जिन उत्त सहाए) वही आत्मीक तत्व उत्कृष्ट तत्व है जो जिनेन्द्र कथित उपदेशकी सहायतासे प्रगट हुआ है (जिन जिनियो हो कम्म निवधा न्यान सहाए) श्री जिनेन्द्र भगवानने कर्मोंके बन्धनोंको आत्मज्ञानकी सहायतासे जीत लिया है (चिनानद जुझे चेतन सहियो ममल सुभाए) वही चिदानन्द है, उनका शुद्ध चैतन्यमई स्वभाव है (जिन जिनियो हो कम्म जु स्वामी जिनवर सुभाए) श्री जिनेन्द्रने कर्मोंको अपने विजयी स्वभावसे जीत लिया है ॥ ६ ॥

(जिन जिनवर हो उत्तउ सहजं सुकिय सहाए) श्री जिनेन्द्रने कहा है कि वह सहज स्वभाव अपनी ही सहायतासे अर्थात् स्वयं आत्मानुभव करनेसे प्रगट होता है (जिनि कम्म जु हो मर्म जो जिनियो परम सुभाए) जिन्होंने अपने आत्मीक उत्कृष्ट स्वभावसे कर्मोंको और भावकर्मोंको जीत लिया है (अन्मोयह हो उवनो स्वामी ममल सुभाए) वह परमात्मपद आनन्दमई है सो आत्मीक निर्मल स्वभावके प्रतापसे प्रगट होता है (जिन परम जिने सुर हो उत्तउ मुक्ति सुभाए) श्री परमात्मा परमेश्वरने कहा है कि वही जिनेन्द्र मुक्तिके स्वभावको रखनेवाले हैं ॥ ७ ॥

(ज कम्म जु हो उपजि नन अन्यान महाए) अज्ञान या मिथ्याज्ञानके कारण अनंत कर्मवर्गणाओंका वन्ध होता है (जन रंजन हो राग जु उवनो समल सुभाए) तथा अशुद्ध स्वभावके कारण लोगोंको रंजायमान करनेवाला राग पैदा होता रहता है (पर पजे हो दृष्टि जु महियो अनिष्ट सहाए) आत्माका बुरा करनेवाला अनिष्टकारी मिथ्यात्व है उसकी सहायतासे पर पर्यायमें दृष्टि होती है, कर्मजनित पर्यायोंको अपनी मान लेता है, मैं मनुष्य, मै बड़ा आदमी, मैं राजा, मैं सेठ इत्यादि (सो ममल अन्मोय ज्ञान सहाए विलियो) सो अब कर्म्म व राग व मिथ्यात्व शुद्ध आनन्दमय आत्मज्ञानके प्रतापसे नाश होजाता है ॥ ८ ॥

(कलरंजन समल सहावे जु कम्म ऊजि हो) शरीरमें आसक्त होनेवाले अशुद्ध भावसे जोर कर्मोंका बंध होता है (मन रंजन गारव सहियो राग सु भाए) व मनको राजी रखनेवाले अभिमान सहित राग स्वभावसे (जं अनतानत कम्म जु अनत भवाए) जो अनंत जन्मोंमें उदय आकर कष्ट देनेवाले अनंतानंत कर्मोंका वन्ध होजाता है (अन्मोय सहाय ते कम्म जु विलियो) आनंदमय आत्मीक स्वभावमें रमनेसे वे सब कर्म क्षय होजाते हैं ॥९॥

(ज अधो भ्रमन सुभाए दर्सन मोहउ) जो यह अन्धा करनेवाला व भव भवमें भ्रमण करानेवाला दर्शन मोहनीय कर्म्म है (सो आदि अनादि कम्म जु मनियो) उस आदि व अनादि दर्शनमोहनीय कर्मकी सहायतासे यह जीव संसारमें भ्रमा है। प्रवाहकी अपेक्षा कर्मोंका सम्बन्ध जीवके साथ अनादिकालसे है। नवीन वन्धने व पुराने गलनेकी अपेक्षा सादि कालसे है (अनेयह विभ्रम सहियो पजे दिट्ठी) अनेक प्रकारके मिथ्यात्व भावके कारण इस संसारी जीवकी जो पर्याय बुद्धि होरही है—परमें आत्मबुद्धि होरही है (त दर्सन दिट्ठी अन्मोयह ज्ञान विलियो) वह दर्शनमोहकी मिथ्यादर्शनरूपी दृष्टि आनन्दमय आत्मज्ञानके मननसे करणलब्धिके प्रतापसे चली जाती है और सम्यग्दर्शनका प्रकाश होजाता है ॥ १० ॥

(त ज्ञान आवर्न जु सहियो कम्म अनत) उस ज्ञानको आवरण करनेवाले स्वभावके धारी अनंत ज्ञानावरण कर्म हैं (अनिष्ट सहाए पर परजय दृष्टि सजोए) इस अनिष्ट कर्मकी सहायतासे परमें आसक्तिरूप पर्यायदृष्टिका संयोग होरहा है (जिनवर दिट्ठी सो कम्म घाय जु उत्तो) जिनेन्द्रके आगममें उस कर्मको घातीय कहते हैं क्योंकि वह आत्माके ज्ञानको घातता है (सुदिट्ठी ज्ञान सो जु कम्म विलियो) सम्यग्दर्शन सहित ज्ञानके प्रतापसे उस कर्मकी निर्जरा होती है ॥ ११ ॥

(अनिट्ठी अर्थ जह कम्म जु उपजिउ) पदार्थको मिथ्या समझनेसे या आत्माका बुरा करनेवाले संसारी पदार्थोंमें मोह करनेसे जो कर्म जैसा२ बंधता है (सो अमल सुदिट्ठी ज्ञान अन्मोयह विलियो) सो कर्म शुद्ध सम्यग्दर्शन और आनन्दमय आत्मज्ञानके प्रभावसे क्षय होजाता है (समल सहाए जो चष अचपह उवनो) अशुद्ध मिथ्यात्व भावके कारण जो चक्षु या अचक्षुदर्शन होता है (सो ममल सुभाए अन्मोयह ज्ञान विलियो) सो दर्शन शुद्ध स्वभाव व आनन्दमय ज्ञानके अनुभवसे विला जाता है। भावार्थ—मिथ्यात्व दशामें चक्षुइंद्रियसे व अन्य इंद्रिय व मनसे जो दर्शनोपयोग काम करता था उसके साथ मिथ्यात्व मिला हुआ था। वह मिथ्यात्वी पदार्थोंको जानकर उनमें अहंबुद्धि व आसक्त बुद्धि कर लेता था। जब सम्यग्दर्शन सहित आत्मज्ञानका अनुभव होने लगा—आत्मानन्द प्रगट होने लगा तब चक्षु अचक्षु दर्शनके कार्योंमें भी निर्मलता हो गई ॥ १२ ॥

(अनिष्ट सहाए ज अवहि कम्म स उत्तो) मिथ्यात्वके साथ जो अवधिज्ञानका कार्य कहा जाता है वह कुअवध है (सो इष्ट सुभाए अन्मोयह ज्ञान विलियो) सो कुअवधि ज्ञान सम्यग्दर्शनके हितकारी स्वभावसे व आनन्दमय आत्मज्ञानसे विलय होजाता है। (जो सदिष्टि दिट्ठिउ गुहिज कम्म उपत्ती) जो सम्यग्दर्शनरूपी दृष्टिके गुप्त रहनेपर—प्रगट न होनेपर मिथ्यात्व अवस्थामें कर्मोंका बंध होता है (सो दर्सन दिसी अन्मोयह ज्ञान विलियो) सो सम्यग्दर्शनके प्रकाश होते ही आनन्दमय ज्ञानके प्रभावसे क्षय होजाता है ॥ १३ ॥

(त ज जं कम्म समल सहाए ऊवनो) वह जो कोई कर्मका बन्ध इस जीवके अशुद्ध मलीन स्वभावसे पैदा है (सो ममल सुभाए अनमोयह ज्ञान विलियो) सो कर्म शुद्ध स्वभावमें रमन करनेसे जो आनन्दमय ज्ञान है उससे नाश होजाता है (ममल सहाए मन पर्जय ज्ञान ऊवनो) शुद्ध स्वभावमें रमनेसे साधुके उत्पन्न होजाता है (ज्ञान सुभाए रिजु विपुला संजोए सहियो) वह ज्ञानका स्वभाव रिजु विपुलम-

तिके संयोग सहित होता है। भावार्थ–स्वाभाविक परिणतिमें ही रमनेसे रिजुमति और विपुल दोनों मनः-पर्यय ज्ञान प्रगट होजाते हैं ॥ १४ ॥

(षट्कमल ति अर्था जोए दिपि उत्ती) छः कमलके समान जीवादि छः द्रव्योंको व तीन अर्थ सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रको मनन करनेसे ज्ञानकी दीप्ति प्रकाशित होती जाती है (दिपदिपियो हो न्यान विन्यानह ममल स उत्ती) वह दीप्ति निर्मल ज्ञान विज्ञानरूप प्रगट होजाती है, ऐसा कहा गया है (पद दरसिउ हो परम तत्व परमेष्ठि सुभाए) तब परम आत्मीक तत्वका पद अर्हंत परमेष्ठीरूप देख लिया जाता है (विन्यानह हो ममल सुभाए विन्दु जु दरसिउ) उस केवलज्ञानके निर्मल स्वभावसे श्री सिद्ध भगवानका स्वरूप दिखलाई पड़ता है ॥१५॥

(सर्वंग जु हो सर्व सु दरसिउ ममल सुभाए) तब उस शुद्ध स्वभावसे सर्वांग सर्वस्व देख लिया जाता है। अर्थात् सर्वज्ञपना प्रगट होजाता है, जो सर्व द्रव्योंको तीन कालकी पर्याय सहित जानते हैं (तं नन्ता हो नन्त चतुष्टै सहज सुभाए) वह ज्ञान अनन्त है। चारों ही अनन्त चतुष्टय उनके सहज स्वभावमें झलक जाते हैं (सो केवल सहियो स्वामी ममल सुभाए) सो केवलज्ञानी निर्मल स्वभावके स्वामी होजाते हैं (पिपि कम्म जु हो मुक्ति पहुते न्यान सहाए) फिर इसी केवलज्ञानकी सहायतासे सर्व कर्मोंको क्षय करके मुक्ति पहुँच जाते हैं ॥१६॥

(सो पत्तह हो दत्त विसेपे ममल सुभाए) वह परमात्मा अपने शुद्ध स्वभावसे पात्र हैं व दाता विशेष भी हैं। वे रत्नत्रय धर्मके धनी महान् उत्तम पात्र हैं तथा वे ही परम तत्वका ज्ञान देते हैं, इससे वे ही परम दातार हैं (सो तारन हो तरन समर्थ जु ममल सहाय) वे ही अपने शुद्ध स्वभावकी प्रगटतासे स्वयं अपनेको संसार–सागरसे तार देते हैं व दूसरोंको भी अपने उपदेशसे तारते हैं। वे तारणतरण प्रभु होजाते हैं (सो निर्मल हो ममल जु केवलज्ञान सहाए) सो परमात्मा रागादि मलसे रहित व कर्ममलसे रहित पवित्र केवलज्ञानकी सहायतासे शेष मलसे भी छूट जाते हैं (सो अमोयह ज्ञान ममल सुहाए मुक्ति पहुचे) वही आनन्दमय ज्ञानी परम निर्मल स्वभावके कारण मोक्षधाममें पहुँच जाते हैं ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस तत्वसार फूलनामें यह बताया है कि परमतत्व निजात्माका अनुभव है वह परमानन्दमय है, उसीका अनुभव करनेसे भव्यजीव अरहंत परमेष्ठी सशरीर परमात्मा होजाते हैं तब उनकी वाणीसे वही सार तत्त्व प्रगट होता है। जो भव्य उस तत्वको मनन करते हैं वे परम आत्म तत्वके अनुभवको पाकर सम्यग्दृष्टी होजाते हैं। सम्यक्तके प्रकाशसे मिथ्यात्वका अन्धकार हट जाता है व जो

वज्र नाराच संघ्रणजं सहियो, भय विनास सुपएसं ।
तं सरीर अवदारिक सहियो, भय षिपिय तरन सुपएसं ॥ हा० ॥ ७ ॥
चष अचषह जं भव उपजै, गहि जह भव जु अनत ।
तारन तरन सहावे जिनियो, न्यान दिष्टि विलयंत ॥ हा० ॥ ८ ॥
तारन तरन सहावे विलियो. सल्य संक विलयंतु ।
न्यान विन्यानह ममल सरूवे, भय षिपनिक मुक्ति पहुंतु ॥ हा० ॥ ९ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(विमु भनै) ब्रह्मचारी कहता है (तारन तरन जिन ऊगन) कि तारन तरन श्री जिनेन्द्र प्रगट हुए हैं। (एक विनती सुनीजे) सो मेरी एक प्रार्थना सुनिये (तुम अनमोघ) आप तो आनन्दमय हैं (भव्य जिय उवने तिन उवएस कहीजे) जो भव्य जीव यहां पैदा हुए हैं उनको धर्मका उपदेश कहिये ॥ १ ॥

(नद आनदह चिदानद जिन) आप आनन्दमें मग्न हो, आप चिदानन्द जिन हो (उवन्न कम्म विलीजे) मेरे पास जो कर्मोंका बंध है उसको नाश कीजिये ॥ २ ॥

(चौगय ममत भव भरी दुख सुख न कहु इन पायो) चारों गतियोंमें भ्रमण करते हुए हरएक जन्ममें भारी दुःख उठाए हैं, कही भी कुछ सुख नहीं पाया (ऐसे काल तारन जिन उवने–मुक्तिपथ दरसावो) ऐसे समयमें जब भव्य जीव दुःखी हो रहे थे, भवसे उद्धार करनेवाले श्री तीर्थंकर जिन उत्पन्न हुए जिन्होंने मोक्षका मार्ग दिखलाया ॥ ३ ॥

(काल पंचनो चपल अनिष्ट है–इष्ट दिष्टि नहि उवजे) यह पंचम दुःखमा काल आकुलतामय तथा अनिष्ट निमित्तोंसे पूर्ण है, इसमें हितकारी सम्यग्दर्शन शीघ्र नही उत्पन्न होता है (ज्ञान बलेन इष्ट सजोए भय षिपिनक कम्म विलीजे) तौभी ज्ञानके अभ्यासके बलसे आत्महितकारी सम्यग्दर्शनका संयोग होता है तब सर्व भय नाश होजाता है और कर्मोंका क्षय होने लगता है अर्थात् सम्यग्दर्शनके होते ही अविपाक निर्जरा प्रारंभ होजाती है ॥ ४ ॥

(संसै सरनि नन्त भवभारी भयह दिष्टि भव भमिजे) तत्वोंमें संशय रखनेसे अनन्त भव धारण किये हैं व

साधनके हेतु मायाचार करता है, तीव्र लोभी हो व्यवहार करता है, मनको प्रसन्न करनेके लिये रागभावके कारणोंमें लगा रहता है। मानचोंमें बैठकर स्त्री कथा, भोजन कथा, देश कथा व राजा कथाएँ बनाकर राग-द्वेष बढाकर रंजायमान होता है। संसारमें आसक्ति बढाकर अपना अनिष्ट करता है। यह मिथ्यात्वभाव व अनन्तानुबन्धी कषाय तत्वके मननसे दूर होजाता है तब पर्यायबुद्धिका अहंकार मिटता है और आत्मामें आत्मबुद्धिका दीप प्रकाशित होजाता है।

विनती फूलना १०३ से १११ तक।

भनै विरमु तारन तरन जिन उवने, विनती एक सुनीजै।
तुम अन्मोय भव्य जिय उवने, तिन उवएस कहीजै ॥ १ ॥
हां जू तरन जिन विनती एक सुनीजै ॥ (आचरी)
नंद आनंदह चिदानन्द जिन, कम्म उवन्न विलीजै ॥ हां जू०॥ २ ॥
चौगम भमत दुःख भव भारी, सुख न कहवू न पायो।
ऐसे काल तारन जिन उवने, मुक्ति पंथ दरसायो ॥ हां० ॥ ३ ॥
काल पंच भौ चपल अनिष्ट है, इष्ट दिष्टि नहि उपजै।
ज्ञानबलेन इष्ट संजोए, भय षिपनिक कम्म विलीजै ॥ हां० ॥ ४ ॥
संसै सरनि नन्त भौ भारी, भयह दिष्टि भव भमिजै।
भय विनास तं भव्य ऊवनो, कम्म उवन्न विलीजै ॥ हां० ॥ ५ ॥
दव्व कम्म आवरन ऊपजै, सल्य संक भय ओतं।
ज्ञानावर्नु ज्ञान तं विलियो, भय षिपि सिद्धि संपत्तं ॥ हां० ॥ ६ ॥

वज्र नाराच संघ्रणजं सहियो, भय विनास सुपएसं ।
तं सरीर अवदारिक सहियो, भय षिपिय तरन सुपएसं ॥ हा० ॥ ७ ॥
चष अचषह जं भव उपजै, गहि जह भव जु अनंत ।
तारन तरन सहावे जिनियो, न्यान दिष्टि विलयंत ॥ हा० ॥ ८ ॥
तारन तरन सहावे विलियो. सल्य संक विलयंतु ।
न्यान विन्यानह ममल सरूवे, भय पिपनिक मुक्ति पहुंतु ॥ हा० ॥ ९ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(विसु भनै) ब्रह्मचारी कहता है (तारन तरन जिन ऊगन) कि तारन तरन श्री जिनेन्द्र प्रगट हुए हैं। (एक विनती सुनीजे) सो मेरी एक प्रार्थना सुनिये (तुम अनमोय) आप तो आनन्दमय हैं (भव्य जिय उवने तिन उवएस कहीजे) जो भव्य जीव यहां पैदा हुए हैं उनको धर्मका उपदेश कहिये ॥ १ ॥

(नद आनदइ चिदानद जिन) आप आनन्दमें मग्न हो, आप चिदानन्द जिन हो (उवन्न कम्म विलीजै) मेरे पास जो कर्मोंका बंध है उसको नाश कीजिये ॥ २ ॥

(चौगय भमत भव भरी दुख सुख न कहु इन पायो) चारों गतियोंमें भ्रमण करते हुए हरएक जन्ममें भारी दुःख उठाए हैं, कहीं भी कुछ सुख नहीं पाया (ऐसे काल तारन जिन उवने-मुक्तिपथ दरसावो) ऐसे समयमें जब भव्य जीव दुःखी हो रहे थे, भवसे उद्धार करनेवाले श्री तीर्थंकर जिन उत्पन्न हुए जिन्होंने मोक्षका मार्ग दिखलाया ॥ ३ ॥

(काल पंचनो चपल अनिष्ट है-इष्ट दिष्टि नहि उवजे) यह पंचम दुःखमा काल आकुलतामय तथा अनिष्ट निमित्तोंसे पूर्ण है, इसमें हितकारी सम्यग्दर्शन शीघ्र नहीं उत्पन्न होता है (ज्ञान बलेन इष्ट सजोए भय पिपिनक कम्म विलीजै) तौभी ज्ञानके अभ्यासके बलसे आत्महितकारी सम्यग्दर्शनका संयोग होता है तब सर्व भय नाश होजाता है और कर्मोंका क्षय होने लगता है अर्थात् सम्यग्दर्शनके होते ही अविपाक निर्जरा प्रारंभ होजाती है ॥ ४ ॥

(ससै सरनि नन्त भवभरी भयह दिष्टि भव भमिये) तत्त्वोंमें संशय रखनेसे अनन्त भव धारण किये हैं व

तीव्र भयकी दृष्टी रखते हुए रात दिन मरण व दुःखोंसे डरते हुए संसारसे भ्रमण किया है (भय विनास तं भव्य ऊवनो, कम्म उवन्न विलीजै) जब सर्व भयोंको दूर करनेवाला आनन्दप्रद सम्यग्दर्शन पैदा होजाता है तब बन्धे हुए कर्म क्षय होने लगते हैं ॥ ५ ॥

(दव्व कम्म आवरन ऊवजे सल्य सक भय ओतं) मिथ्यात्वके होते हुए शल्य, भय व शकाओंसे भरे हुए होनेके कारणसे द्रव्यकर्मोंका आवरण वन्ध किया है अर्थात् ज्ञानावरणादि कर्मोंको बांधा है (ज्ञान त ज्ञानावरन विलयो, भय षिपि सिद्धि सपत्त) परन्तु सम्यग्ज्ञान या आत्मज्ञानके अनुभवसे सर्व भय क्षय होजाता है व ज्ञानावरणादि आत्मज्ञानके अनुभवसे सर्व भय क्षय होजाता है व ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मोंका क्षय होकर सिद्धपदका लाभ होजाता है ॥ ६ ॥

(वज्रनाराच सघ्रणजं सहिय, भय विनाष सुयएस) श्री तीर्थंकर भगवान प्रथम वज्रवृषभनाराच संहननके धारी हैं जो मुक्ति होनेयोग्य महात्माके लिये आवश्यक है। उनके सर्व आत्माके प्रदेशोसे भयका नाश होगया है। भयके कारण घातीय कर्मोंका क्षय होगया है (त सरीर अवदारिक सहियो, भय षिपिय तरन सुयएस) उनका शरीर परमौदारिक है जिनके आत्माके प्रदेशोंमें भयादिका अभाव है अतएव वह आत्मा संसार-सागरसे तरनेवाला है ॥ ७ ॥

(चष अचषह ज भय उपजै गहिजह जु अनत भव) पांचों इन्द्रियों और मनके वशीभूत होनेसे संसारकी उत्पत्ति होती है, इसीलिये अनन्त भव इस जीवने ग्रहण किये हैं (तारन तरन जिनियो ज्ञ न दिष्टि विलयत) परन्तु जब तारन तरन श्री जिनेन्द्रका अरहन्त पद प्रगट होजाता है तब उनकी आत्मज्ञानकी दृष्टिके सामने सर्व भय विला जाते हैं ॥ ८ ॥

(तारन तरन सहाने विलियो सल्य सक विलयतु) आत्माका जब तारण तरण स्वभाव प्रगट होता है तब सर्व शल्य विला जाती हैं व सर्व शंकाऐं मिट जाती है (न्यान विन्यानह ममल सरूवे भय षिपिनऊ मुक्ति पहुतु) केवलज्ञानमई शुद्ध स्वरूपके प्रभावसे सर्व भय क्षय होजाता है। भयका कारण कर्म नाश होजाता है और यह जीव शुद्ध होकर मुक्त होजाता है ॥ ९ ॥

भावार्थ—यहां ऐसा प्रगट होता है कि ब्रह्मज्ञानी श्री तारणस्वामी अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर भगवानकी स्तुति करते हुए अपनेको मुक्तिका लाभ हो ऐसी भावना कर रहे हैं। स्तुतिमें बताया है कि

अमलपाहुड़
॥ ५०

तीर्थंकर भगवान उत्तम संहननके धारी होते हैं। उनका उपदेश भव्यजीवोंके लिये परम कल्याणकारी होता है। भव्यजीव मिथ्यात्वके अन्धकारमें भयभीत होते हुए चारों गतियोंमें भ्रमण करते हुए दुःख उठाते हैं। श्री तीर्थंकर भगवानके तीर्थ प्रचारसे उनको भव–भ्रमणके नाश करनेका उपाय प्राप्त होजाता है। यद्यपि इस पञ्चमकालमें निमित्त बहुत प्रतिकूल हैं तथापि जो श्री जिनेन्द्रके उपदेशको चित्तमें धारण करके मनन करते हैं उनका मिथ्या भ्रम व संशय सब मिट जाता है। और आत्मज्ञानका लाभ होजाता है। आत्मज्ञानके अभ्याससे सम्यग्दर्शनका उदय होजाता है, जिससे नवीन बन्ध थोड़ा होता है और निर्जरा विशेष होती है। सम्यग्दृष्टी कभी न कभी अवश्य सर्व कर्म नाश करके मुक्त होजाता है। इसलिये इस विनतीमें बताया है कि हे प्रभु! आपके प्रतापसे व आपकी भक्तिसे मेरे सर्व कर्मोंका क्षय होजावे।

---

(८) पात्र गर्भ गाथा ११२ से ११९ तक।

पत्त उवन्न विसेष मुनि, पत्त सुयं जिन उत्तु।
पत्त सहाव सु न्यान मउ, पत्त गर्भ सम उत्तु ॥ १ ॥
जब जिन गर्भवास अवतरियो, ऊर्ध ध्यान मन लायो।
दर्सन न्यान चरन तव चरियो, सिद्धि मुक्त फल पायो ॥ २ ॥
जिन उत्तं जिन वयन मुनि, दर्स सहाव संजुत्तु।
लष्य अलष्य जिन इस्ट पउ, उवन उवन इष्टंतु ॥ ३ ॥
गम्य अगम जिन जिनय पउ, अर्थति अर्थ स[illegible]।
समय सहाव सु समय मउ, अवयास हि दर्संतु ॥ ४ ॥
वयन उत्त जिन परिनमउ, उत्त प्रमान संजुत्तु।
दिस्टि इस्ट जिन दिस मउ, दर्सनन्त जिन पत्तु ॥ ५ ॥

इष्ट इष्ट जिन सिस्ट मउ, इष्ट उवन संजुत्तु ।
समय सहाव जिन समय मउ, सह अनन्त जिन उत्तु ॥ ६ ॥
अन्मोयह जिन पिपक मउ, मुक्त मुक्ति दरसंतु ।
जिन अर्थह अवयास पउ, अन्मोयह दिपि जुत्तु ॥ ७ ॥
मुक्ति अर्थ जिन कमल मउ, रमलंकृत जिन उत्तु ।
जिन विन्यान सु समय मउ, न्याननन्त सम चित्तु ॥ ८ ॥
न्यानाकार सु समय मउ, अन्मोयह सुइ इस्टु ।
षिपक रमन रय रमिय पउ, मुक्त मुक्ति दरसंतु ॥ ९ ॥
जिन उवएसउ उवन मउ, ऊ वं उवन सहाउ ।
उववन सह परमेष्टि मउ, जिन नय उवन सहाउ ॥ १० ॥
नय जिनमय जिन सिव रमन, जिन धुव ममल सहाउ ।
भय षिपनक भवि उत्त सुह, अमिय रमन सद्भाउ ॥ ११ ॥
तारन तरन सहाव लह, ममल रमन सिवसंतु ।
भय षिपि अमिय सु रमन पउ, जिनिय उवन साहंतु ॥ १२ ॥
जिन उवएसिउ सुइ रमनु, विंजन ज्ञान संजुत्तु ।
विंजन रमनह सुर रमिउ, दर्स परम पय उत्तु ॥ १३ ॥
उवन उवन सुइ सहिय पउ, जिन हि रमन साहंतु ।
ह्रीं रमन जिन उवन पउ, षट् रमनह साहंतु ॥ १४ ॥

ममलपाहुड
॥५२॥

अर्क बिंद आगंत मुनि, हिय उवयार संजुत्तु ।
जिन रमन विंजन गमन मुनि, पत्तु मरहु लाहंतु ॥ १५॥
उवन सहाव जिन उत्त पउ, ह्रीं उवन दरसंतु ।
उवन हियार सहाउ पउ, पात्त गर्भ सुइ उत्तु ॥ १६॥
जिन उववन यो साहियो, दरस दरस साहंतु ।
जिन सहाव जिन समय मउ, जिन गम अगम पिछंतु ॥ १७॥
जिन उवने भरिऊ मऊ, सुइलै गर्भ उत्तु ।
जं भरियो तं अयरिऊ, गर्भ उवन जिन उत्तु ॥ १८॥

अन्वय सहित अर्थ—(विसेष मुनि पत्त उवन्न) खास मुनि पात्रका उदय हुआ है। मुनि महाराज उत्तम पात्र हैं जिनमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रत्नत्रय धर्म वसता है। पात्र वर्तनको कहते हैं। आत्मज्ञानी तद्भव मोक्षगामीको विशेष मुनि कहते हैं (पत्त सुय जिन उत्तु) यह आत्मा ही स्वयं पात्र है ऐसा जिनेन्द्रने कहा है (पत्त सहाव सुन्यान मउ , इस आत्मारूपी पात्रका स्वभाव ज्ञानमई है (पत्त गर्भ सम उत्तु) समभाव या वीतरागभाव या आत्माका शुद्ध स्वभाव जैसा सिद्धोंमें है उसे ही पात्र गर्भ कहते हैं अर्थात् आत्मारूपी पात्रके गर्भमें परमात्मा पद है। जो आत्माका सेवन करता है उसके परमात्मपदका उदय होजाता है ॥१॥

(जव जिन गर्भवास अवनरियो) जब श्री जिनेन्द्र परमात्मा भव्यजीवके अन्तरंगमें या गर्भमें प्रकाशमान होते हैं (ऊर्ध ध्यान मन लायो) तब उनके मनमें उत्तम ध्यान प्रगट होता है (दर्स न्यान चरन तव चरियो) उसी समय वहां सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तथा सम्यक्तपका आचरण होरहा है। जहां आत्मा आत्मामें ही लीन होता है वहां चारों ही आराधनाका आराधन होरहा है (सिद्ध मुक्त फल पायो) इसी निश्चय आराधनारूप उत्तम ध्यानसे अर्थात् धर्मध्यान तथा शुक्लध्यानसे सर्व कर्मोंसे आत्मा छूटकर सिद्धपद पालेता है। चार आराधनाका फल मोक्ष लाभ है ॥ २ ॥

(जिन उत्तं जिन वयन मुनि दर्स सहावं सजुत्तु) श्री जिनेन्द्र द्वारा प्रगट जिनवाणीके अनुसार मुनिमहारा-
जके भीतर सम्यग्दर्शनका स्वभाव झलक रहा है (लष्य अलष्य जिन इस्ट पउ) सम्यग्दर्शनके प्रभावसे आत्माका
स्वभाव जो इंद्रिय व मनसे अलक्ष्य है, नहीं जाना जासक्ता है, वह स्वभाव अनुभव कर लिया जाता है।
वही आत्माका स्वभाव सर्व पर भावोंको जीतनेसे जिनरूप है, वही हितकारी पद है, इसी पदसे आत्मा
परमात्मा होता है (उवन उवन इष्टतु) वे मुनिमहाराज इसी प्रकाशमान आत्माके उदय या प्रकाशके साथ
प्रेम करते हैं ॥ ३ ॥

(गम्य अगम्य जिन जिनय पउ) आत्माका स्वभाव यद्यपि मन व वचनसे व कायकी प्रवृत्तिसे अगोचर
है तथापि सम्यग्दृष्टी ज्ञानी मुनिराजके अनुभवगम्य है वही जिनेन्द्रका जीतनेवाला पद है अर्थात् इसी
आत्मपदरूपी खड्गके चमकानेसे कर्मोंको अर्थात् सबसे प्रबल वैरी मोहको जीत लिया जाता है (अर्थति
अर्थ सजुत्तु) वही रत्नत्रय सहित पदार्थ है, रत्नत्रय आत्माका निज स्वभाव ही है (समय सहाव सु समय मउ)
वही आत्माका स्वभाव है व वही स्वरूपमें परिणमन रूप है (अनयामहि दर्सेतु) वही आत्मा अनन्त पदा-
र्थोंके स्वरूपको देख लेता है ॥ ४ ॥

(वयन उत्त जिन परिनमउ) आत्मज्ञानी मुनिमहाराज श्रीजिन वचनके अनुसार स्वस्वरूपमें परिणमन
कररहे हैं (उत्त प्रमान सजुत्तु) सम्यग्ज्ञानका जो स्वरूप जिनेन्द्रने कहा है वह उन ज्ञानी मुनिके भीतर
प्रकाशमान होरहा है (इष्ट दिष्टि जिन दिप्त मउ) उनके भीतर हितकारी सम्यग्दृष्टि प्रगट है जो कर्मोंको
जीतनेवाली है व प्रकाशमान है (दर्स नंत जिन पत्तु) उसीके अनुभवसे श्री जिनरूप परमात्माका पद प्रगट
होता है जहां अनंतदर्शन प्रकाश होजाता है ॥ ५ ॥

(इष्ट इष्ट जिन सिष्ट मउ) ऐसे परमात्मा परमेष्ठी जिन उत्कृष्ट आत्मा हैं (इष्ट उवन संजुत्तु) उनमें
आत्माके लिये परम प्रिय जो शुद्ध पद है उसका उदय होरहा है (समय सहाव जिन समय मउ) वही आत्माका
स्वभाव है, वही जिन है, वही स्वानुभवरूप व आत्मामें रमणरूप है (सह अनंत जिन उत्तु) वही अनंतज्ञानादि
गुणोंके स्वामी हैं ऐसा जिनेन्द्रने कहा है ॥ ६ ॥

(अन्मोयह जिन पिपक मउ) वही आनन्दमय जिन क्षायिक भावोंके धारी हैं (मुक्त मुक्ति दरसंतु) वे ही
जीव मुक्त हैं, उनहीने मुक्तिका अनुभव किया है व वे ही मुक्तिका स्वरूप दरशाते हैं (जिन अर्थह अनयास

पउ) वही विजयी आत्म पदार्थ हैं वह गुणोंकी अपेक्षा अनंत हैं (अन्मोयह दिपि जुत्तु) वे ही आनन्दमय और ज्ञानमय दीप्तिसे प्रकाशमान हैं ॥ ७ ॥

(मुक्ति अर्थ जिन कमल मउ) वे ही मुक्तिके धारी पदार्थ हैं, वे ही जिन हैं व वे ही प्रफुल्लित कमलके समान विकास कर रहे हैं (रयलरुन जिन उत्तु) वही आनन्दभावसे शोभित जिन कहे गए हैं। (जिन विज्ञान सु समय मउ) वे ही जिन ज्ञानस्वरूप हैं व स्वात्म रमणरूप हैं (ज्ञान अनत सम चित्तु) उनमें अनंतज्ञान है व उनके भीतर चैतन्यभाव समतामें तल्लीन है। वहां रागद्वेषका अभाव है ॥ ८ ॥

(न्यानाकार सुसमय मउ) वे ही अमूर्तीक ज्ञानाकार हैं व स्वसमयरूप हैं अर्थात् वे रत्नत्रयमई स्वात्मरमणपदमें कल्लोल कर रहे हैं (अ मोयह सुइ इए) वे ही आनन्दमय हैं, वे स्वयं इष्ट हैं अर्थात् शोभनीक हैं। सन्तपुरुष उनके साथ गम्भीर प्रेम रखते हैं (पिपक रमन रय रमिय पउ) वे क्षायिक भावमें रमण कर रहे हैं, वे लगातार नदीके वेगके समान धाराप्रवाहरूप अपने आत्मपदमें रमन करते हैं, कभी भी स्वात्मानन्दके भोगसे विमुख नहीं होते हैं (मुक्त मुक्ति दरसतु) वे मुक्तरूप हैं, वेही मुक्तिको देख रहे हैं व मुक्तिको दिखलाते हैं ॥९॥

(जिन उवएसउ उवन मय ऊ व उवन सहाउ) श्री जिनेन्द्रने ॐ मन्त्रका उपदेश किया है जो प्रकाश स्वरूप है व जो शुद्धात्माके स्वभावको बतानेवाला है (उववन सह परमेष्ठि मउ) जो प्रकाशनीय पांच परमेष्टीका वाचक है, अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु स्वरूपका स्मरण करानेवाला है। ॐ बना है अरहन्तका प्रथमाक्षर अ, सिद्ध या अशरीरका प्रथमाक्षर अ, आचार्यका आ, उपाध्यायका उ, साधु या मुनिका प्रथमाक्षर म्। इसतरह अ+अ+आ+उ+म्=ॐ होजाता है (जिन नय उवन सहाउ) जैनसिद्धांतमें इस ॐ को उदय स्वरूप प्रकाश मात्र ज्योतिरूप बताया गया है, इसे चमकता हुआ भौहोंके मध्यमें व नाशिकाके अग्रभागमें विराजमान करके ध्यावे ॥ १० ॥

(नय जिन मय जिन सिवरमन) शुद्ध नयसे यह आत्मा जिन स्वरूप जिन है व अपने आनन्दमय मुक्त स्वभावमें रमण करनेवाला है (जिन ध्रुव ममल सहाउ) वह जिन स्वरूप अविनाशी शुद्ध स्वभावका धारी है (भय षिपनक भवि उत्त सुइ) जो ऐसे आत्म स्वरूपको ध्याता है वही भव्य स्वयं सर्व संसारके भयसे मुक्त होजाता है (अमिय रमन सद्भाव) वह आनन्दामृतमें रमन करता है ॥ ११ ॥

(तारन तरन महाव लइ) वही अरहंत होकर तारनतरन स्वभावको प्राप्त करता है। आप भवसागरसे

तरता है और दूसरोंको तारता है (ममल रमन मिवसतु , वही शुद्ध स्वभावमें रमन करता हुआ आनन्दमय साधु है (भय विपि अमिय सु रमन पउ) यह सर्व भय रहित हो अपने आनन्दामृतमें भले प्रकार रमन करनेवाले स्वरूपरमणपदको पालेता है (जिनिय उवन साहतु) उसने जितेन्द्रिय या जिनेन्द्रके प्रकाशको साधन कर लिया है ॥ १२ ॥

(जिन उवएसिउ सुइ रमन) वही जिनेन्द्र श्रुत या वाणीका उपदेश करते हैं, जो निश्चयसे आत्मरमण रूप है (विंजन न्यान सजुत्तु) जो ज्ञान सहित चिह्नोंसे भरपूर है अर्थात जिस ध्वनिसे ज्ञानका बोध होता है (विंजन रमनइ सुरमिउ) भव्य जीवोंको रमणीक व्यंजन व रमणीक स्वर सहित सुन पडती है वह श्रोताओंको बड़ी ही प्रिय अपनी २ वाणीमें झलकती है (वर्ण पाम पय उत्तु) वह वाणी परमात्म पदके स्वरूपको कहती है ॥ १३ ॥

(उवन उवन सुइ सहिय पउ) उस वाणीके प्रतापसे पदोंके साथ श्रुतज्ञानका उदय हुआ है (जिनइ रमन साहतु) जिस श्रुतज्ञानके द्वारा श्री जिनेन्द्र परमात्म-स्वरूपके ध्यानकी सिद्धि होती है (ह्रीं रमन चिन उवन पउ) ह्रीं पद श्री जिनेन्द्रका प्रकाशक है, उसके ध्यानमें रमन करना चाहिये (पट् रमनह साहतु) छः अक्षरी मंत्र ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्र इसके द्वारा ध्यान करनेसे सिद्धि होती है ॥ १४ ॥

(अर्क विन्दु आगत मुनि) सूर्यके समान ज्ञानमें मुनि प्रकाशमान होजाते हैं (हिय उवयार सजुत्तु) यही केवलज्ञान हित करनेवाला उपकारी है (जिन रननवि जिनगमन मुनि) वे मुनिराज जिन स्वरूपमें ही रम रहे हैं व जिन स्वरूपमें ही परिणमन कर रहे हैं (पत्तु भरहु लाहतु) उनको पूर्ण पात्रपना प्राप्त होगया है। अर्थात् उनका आत्मारूपी पात्र रत्नत्रय धर्मसे व आत्मीक गुणोंसे पूर्ण होगया है ॥ १५ ॥

(उवन सहाव जिन उत्त पउ) जिनेन्द्रने जैसा कहा है वैसा आत्माका पद अपने स्वभावमें उदय हो जाता है (ह्रीं उवन दरसतु) जिस पदको ह्रीं मंत्रका उदय दर्शाता है। अर्थात् ह्रींमें चौवीस तीर्थंकर अर्हंत गर्भित है। वही अर्हंतपद आत्मध्यानी मुनिराजको प्राप्त होगया है (उवन हियार सहाव पउ) वही हितकारी स्वाभाविक पद प्रकाशमान है (पत्त गर्भ सुइ उत्तु) इसीको पात्र गर्भ कहते हैं ॥ १६ ॥

(जिन उवन यो सहियो) जिसने इसतरह जिनेन्द्रके प्रकाशका साधन किया है (दरस दरस साहतु) आत्मदर्शनसे केवलदर्शनका साधन किया है (जिन सहाव जिन समय मउ) वही जिनका स्वभाव है वही

जिन स्वरूपमें परिणमन कर रहे हैं (जिनगम आगम पिछतु) उन्हीं जिनेन्द्रने सर्व प्रगट अप्रगट स्थूल सूक्ष्म सर्व पदार्थोंकी सर्व पर्यायोंको देखा है ॥ १७ ॥

(जिन उवने भरिऊ मऊ) जब आत्मा गुणोसे भरपूर होकर अरहन्त जिन होजाता है (सुइ लै गर्भ उत्तु) उन्हीं अप्रगट गुणोंको लेकर आत्माके लिये गर्भ कहा गया था (न भरियो त भरियऊ) जो गर्भमें भरा था उसीका आचरण होगया है वह प्रगट होगया है (गर्भ उवन जिन उत्तु) इसीको गर्भसे उत्पन्न जिन कहते हैं ॥ १८ ॥

भावार्थ—यहां पात्रगर्भ आत्माको कहा है जिसके गर्भमें सर्व शुद्ध आत्मीक गुण विद्यमान हैं। जब श्री परमात्मपद प्रगट होजाता है और केवलज्ञान दर्शन आदि शुद्ध गुणोंका प्रकाश होजाता है तब उस गर्भमेंसे परमात्मपदका जन्म हुआ ऐसा कहा जाता है। इसी भावको इस गाथावलीमें बताया गया है। उस गर्भसे जिनपदका जन्म तब ही होता है जब कोई मुनि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तथा सम्यक् तप इन चार आराधनाओंको आराधन करके क्षपकश्रेणी चढकर चार घातीय कर्मोंका क्षय करता है। मुनिराज श्री जिनेन्द्रकथित तत्वोंको भलेप्रकार श्रद्धान करके आत्मज्ञानका मनन तथा अनुभव करते हैं। आत्मानुभवके सेवनसे ही कर्मपटल हटते हैं और आत्मीक गुणोंका प्रकाश होता है। इसी आत्मानुभवसे केवलज्ञानादि गुण प्रगट होजाते हैं तब श्री अरहन्त परमात्मा, जिन, वीतराग, स्वात्मरमणरूप, परमानन्दमय, परमेष्टी पदको धारण करते हैं। अरहन्तका आत्मा वीतराग सर्वज्ञ होजाता है इसलिये भव्य जीव–सन्तजन उनकी भक्ति करते हैं व उनके स्वरूपका मनन करते हैं। वे अरहन्त प्रत्यक्षरूपसे अमूर्तिक आत्माको मुक्तरूप या सिद्धरूप देखते हैं व अपनी दिव्य वाणीसे परमात्माका स्वरूप झलकाते हैं। उनकी वाणीके आधारपर ही द्वादशांग वाणीका प्रकाश होता है। पदोंके द्वारा आत्मज्ञानका मनन किया जाता है। ध्याताको ॐ, या ह्रीं या ॐ ह्रॉं ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः इन मन्त्रोंके द्वारा आत्माके शुद्ध स्वभावका मनन करना चाहिये। आत्माके शुद्ध स्वभावके अनुभवसे ही आत्मा शुद्ध होता है। श्री अरहन्त ही यथार्थमें तारनतरन हैं। आप तरते हैं व दूसरोंको तारते हैं। श्री परमात्मामें सर्व आत्मीक गुण जो गर्भमें थे अर्थात् अव्यक्त थे–प्रगट न थे सो सर्व प्रगट होजाते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि इसी तरह अन्य भव्य जीवोंको अपने ही आत्माको पात्र गर्भ समझना चाहिये और गर्भके जन्मके लिये चार आराधना-

ममलपाहुड
॥५७॥

ओंके द्वारा शुद्धात्माका अनुभव करना चाहिये। गृही हो या साधु, आत्मध्यानसे ही कल्याण होगा। इसीसे ही मुक्तिका लाभ होगा। ऐसा श्रद्धान करके आत्मानुभव करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

---

(९) गर्भ चौबीसी गाथा १३० से १५४ तक।

जिन जिन पति जिन ऊवनं, उव नंत न्यान रयनं।
विन्यान विंद भवनं, सुइ ममल मुक्ति मिलनं ॥ १ ॥
स न्यानी जिन नाथ रमन रमनं, भय षिपिय भव्व मिलन।
स न्यानी तं अमिय कमल कलनं, जिन रंज सिद्ध गमन ॥
स न्यानी ममल अमिय वयनं (आचरी) ॥ २ ॥
जिन गर्भ उत्त जिनय, परिनाम नन्त ममलं।
तं नन्त कम्म गलनं, सुइ न्यान गर्भ मिलनं ॥ ३ ॥ स न्यानी० ॥
सुइ न्यान रमन सुरयं, उत्पन्न न्यान रमनं।
श्री वर सु सहज उवनं, तं नन्तनन्त गमनं ॥ ४ ॥ स न्यानी० ॥
तं पदम सुरं सुरयं, तं पदम कमल धुरयं।
पदविद परम मिलियं, तं नन्त कम्म गलियं ॥ ५ ॥ स न्यानी० ॥
महा पदम सुर सुरयं, सोइ सहज न्यान उवनं।
हिययार कमल कलनं, तं सिद्धि मुक्त गमनं ॥ ६ ॥ स न्यानी० ॥
ति अर्थ अर्थ मिलनं, तं गम अगम्य गमनं।
तं चरन सहज चरनं, अन्मोय मुक्ति मिलनं ॥ ७ ॥ स न्यानी० ॥

केवल सुभाव कलियं, तं कमल कंठ मिलियं ।
हिययार कमल रहयं, तं नन्त कम्म विलयं ॥ ८ ॥ स न्यानी० ॥
सहयार ईर्ज रतियं, पुंडरिय भाव धुरयं ।
तं गहिर कमल गहियं, हिययार रमन रमियं ॥ ९ ॥ स न्यानी० ॥
तं अर्क रमन रमनं, विन्यान विंद भवनं ।
आ गंतु अर्थ मिलनं, जिन अरह रमन रमनं ॥१०॥ स न्यानी० ॥
हिय उवयार सुरयं, सर्वज्ञ रमन अयरं ।
पुंडरिय महा सुरयं, त गुहिज कमल अयरं ॥११॥ स न्यानी० ॥
श्रीवर सुकमल उवनं, सुइ सहज गम्य गमनं ।
तं गुपित न्यान मिलनं, तं तिविह कम्म गलनं ॥१२॥ स न्यानी० ॥
तं नन्त लष्य लषनं, परिनाम अमल मिलन ।
परिनवै गर्भ ग्रहन, तित्थयर रमन रमनं ॥१३॥ स न्यानी० ॥
श्रीवर सु कमल उवनं, षट् दिस ममल भवनं ।
ति अर्थ अर्थ रहन, अस्थान थान मिलनं ॥१४॥ स न्यानी० ॥
श्री दिसि सिद्धि सुरयं, परिनाम नन्त ममलं ।
श्री सांति सुद्ध सुवणं, श्री दिसि मुक्ति मिलनं ॥१५॥ स न्यानी० ॥
ह्री दिसि हि या रहियं, हिय नन्त न्यान रमनं ।
दरसै सुनन्त भइयं, हिय चरन चरन चरियं ॥१६॥ स न्यानी० ॥

अमल्पाहु ॥६९॥

घृति ध्रुवं ममल मिलियं, तं लोय लोय ममलं ।
कृत सुकृत कम्म गलियं, तं क्रांति उवन ममलं ॥१७॥ स न्यानी० ॥
बुधि वोध न्यान उवनं, तं नन्त नन्त ममलं ।
लषियं अलष्य लषनं, मय ममल न्यान भवनं ॥१८॥ स न्यानी० ॥
षट् दिसि दिस दिपनं, तं नन्त नन्त गमनं ।
दरसै सुनन्त सयनं, तं नन्त नन्त ममलं ॥१९॥ स न्यानी० ॥
तित्थ पर गब्भ उवनं, तं नन्त न्यान भवियं ।
परिनाम नन्त लषियं, तं सिद्धि मुक्ति मिलनं ॥२०॥ स न्यानी० ॥
सिरि कमल दिस उवनं, सुह सहज गम्य गमनं ।
जोजन सत सहस्सं, तं लष्यभाव सुवनं ॥२१॥ स न्यानी० ॥
त उग्र उग्र उवनं, लष्यन लषीय भवनं ।
वत्तीस लख्य लखियं, संजोंय चरन चरियं ॥२२॥ स न्यानी० ॥
चौसट्ठ चरन चरियं, तित्थपर गर्भ मिलियं ।
परिनाम नंत ममलं, उव उवन मुक्ति मिलनं ॥२३॥ स न्यानी० ॥
तं समय उत्त उवनं, सम समय साधु मिलनं ।
तं नंतकम्म गलनं, अन्मोय मुक्ति मिलनं ॥२४॥ स न्यानी० ॥
जं समय सुद्ध सजनं, सहकार विंद मिलनं ।
विन्यान न्यान रमनं, अन्मोय सिद्धि गमनं ॥२५॥ स न्यानी० ॥

अन्वय सहित अर्थ—(जिन जिनयति जिन ऊवनं) श्री जिनेन्द्र भगवान विजयी वीरका उदय हुआ है (उवनत न्यान रमन) वे अपने अनन्त केवलज्ञानमें रमन कर रहे हैं (विन्यान विंद भवन) वे ज्ञानचेतनामय होगए हैं (सुइ ममल मुक्ति मिलन) उन्होंने ही शुद्ध मुक्तिको प्राप्त कर लिया है ॥ १ ॥

(स न्यानी जिननाथ रमन रमन) वे ही ज्ञानी अपने परमात्माके आनन्दमें रमन करते हैं (भय षिपिय भव्व मिलन) सर्व भयरहित शोभनीक पदको उन्होंने प्राप्त कर लिया है (स न्यानी त अमिय कमल कलन) वे ही ज्ञानी हैं–उन्होंने अमृतमई प्रफुल्लित कमल समान आत्माका ग्रहण किया है (जिन रज सिद्ध गमन) वे अपने जिन स्वभावमें रंजायमान होते हुए सिद्धपदमें पहुँच जाते हैं (स न्यानी ममल अमिय वयन) वे ही ज्ञानी हैं जिनके द्वारा निर्दोष अमृतमई वचनोंका प्रकाश होता है ॥ २ ॥

(जिन गर्भ उत्त जिनय) वे ही जिन गर्भ कहे गये हैं अर्थात् अरहन्त होनेके पहले जिनपद गुप्तरूप छिपा था सो अब वे साक्षात् उसे प्रगट कर जिन होगये हैं (परिनाम नत ममल) उनके भाव शुद्ध हैं। वे अनन्त शक्तिके धारी हैं (त नत कम्म गलन) उन्होंने अनन्त कर्म–वर्गणाओंको अपने प्रदेशोंसे छुड़ा दिया है (सुइ न्यान गर्भ मिलन) उन्होंने उस केवलज्ञानको जो गर्भमें था, छिपा था उसको प्राप्त कर लिया है ॥३॥

(सुइ न्यान रमन सुरय) वे ही ज्ञान जलसे पूर्ण सुन्दर आत्म–गङ्गामें मगन होरहे हैं (उत्पन्न न्यान रमन) उनके ज्ञानका अनुभव प्रगट होगया है। वे निरन्तर शुद्ध आत्मज्ञानका ही स्वाद लेते हैं (श्रीवर सु सहज उवन) उनके श्रेष्ठ अन्तरंग गुणरूपी लक्ष्मी सहज स्वभावसे प्रगट होगई है (त नत नत गमनं) जिससे वे अनन्तानन्त पदार्थोंको जानते हैं। अथवा जिन्होंने अनन्तानन्त कर्मोंको क्षय कर डाला है ॥ ४ ॥

(तं पदम सुर सुरय) वे ही अपने कमल समान आत्माको प्रफुल्लित करनेके लिये बड़े तेजस्वी सूर्य हैं (त पदम कमल धुरय) वे स्वयं सर्व कमलोंमें सबसे अग्रगामी कमल समान शोभायमान हैं अर्थात् परमात्म स्वरूप हैं (पद विंद परम मिलिय) उन्होंने श्रेष्ठ ज्ञानमई पद पालिया है (तं नत कम्म गलिय) उनके अनन्त कर्म गलगये हैं ॥ ५ ॥

(महा पदम सुर सुरय) महान कमलके समान आत्माको विकसित करनेके लिये वे बड़े तेजस्वी सूर्य हैं (सोइ सहज न्यान उवन) केवलज्ञान ही स्वाभाविक सहज ज्ञान है सो प्रगट होगया है (हिययार कमल कलनं)

यही हितकारी कमल समान आत्माका अनुभव करनेवाला है (तं सिद्धि मुक्ति गमन) ऐसा केवलज्ञानी आत्म-सिद्धि पाकरके मोक्ष चला जाता है ॥ ६ ॥

(ति अर्थ अर्थ मिलनं) वहां रत्नत्रयमई पदार्थका लाभ होगया है (त गम अगम्य गमनं) उसने स्थूल व सूक्ष्म सर्व पदार्थोंको जान लिया है (त सहज चरन चरन) वह स्वाभाविक सहज स्वरूपाचरण चारित्रमें आचरण कर रहे हैं (अन्मोय मुक्ति मिलनं) उनको आनन्दमई मुक्तिका लाभ होगया है ॥ ७ ॥

(केवल सुभाव कलिय) वे केवल पर संयोग रहित स्वभावमें लीन हैं (त कमल कण्ठ मिलियं) शुद्धात्मा-रूपी कमल उनके कंठमें मिल गया है अर्थात् वे शुद्धात्मा होगए हैं (हिययार कमल रइयं) उनके हितकारी प्रफुल्लित कमल ही रच गया है अर्थात् जो आत्मस्वभाव गुप्त था वह प्रकाशमान होगया है (त नन्त कम्म विलय) उनके अनन्त कर्म नाश होगए हैं ॥ ८ ॥

(सइयार इर्ज रतिय) वे अपने सरल शुद्ध परिणमनमें रत रहते हैं (पुडरिय भाव धुरिय) वे शुद्ध भावकी धुरा हैं (तं गहिर कमल गहिय) उन्होंने गम्भीरतासे अपने आत्मारूपी कमलको ग्रहण कर लिया है (हिययार रमन रमिय) वे हितकारी आनन्दमें रमन कर रहे हैं ॥ ९ ॥

(त अर्क रमन रमन) वे सूर्य समान प्रेमपात्र आत्मामें रमन कर रहे हैं (विन्यान विन्द भवनं) वे ज्ञानके अनुभवमें ही परिणमन कर रहे हैं (आगतु अर्थ मिलन) अर्द्धोन्मीलित नेत्रोंके धारी होरहे हैं । स्वात्मानुभव करते हुए अरहन्तका आसन ऐसा ही होता है (जिन अरह रमन रमनं) इसतरह श्री जिनेन्द्र अरहन्त पदके सुखमें रमन कर रहे हैं ॥ १० ॥

(हिय उवयार सुरय) वे आत्माके हितके करनेमें बड़े उत्साहवान हैं (सर्वज्ञ रमन अयर) जो सर्वज्ञपदके आनन्दमें उन्मत्त हैं (पुडरिय महा सुरय) वे शुद्ध भावमें महान उत्साही हैं (त गुहिज कमल अयरं) वे अन्त-रंगमें छिपे हुए आत्मविकाशको प्रकाश करके उसीमें मानों उन्मत्त हैं ॥ ११ ॥

(श्रीवर सुकमल उवन) उनके पास ज्ञान सुखादि लक्ष्मीको धरनेवाला उत्तम श्रेष्ठ कमलसमान आत्माका प्रकाश झलक गया है (सुइ सहज गम्म गमन) सो ही स्वाभाविक परिणतिमें परिणमन है (तं गुपित न्यान मिलन) उन्होंने गुप्त केवलज्ञानको प्राप्त कर लिया है (त तिविह कम्म गलन) उन्होंने तीन प्रकार कर्मोंको अर्थात् भाव-कर्म रागादि, द्रव्य कर्म ज्ञानावरणादि व नोकर्म शरीरादिको गला डाला है ॥ १२ ॥

(त नन्त लष्य लषन) उन्होंने अनन्त जानने योग्य पदार्थोंको जान लिया है (परिनाम ममल मिलन) उन्होंने सर्व दोष रहित शुद्ध भावोंको प्राप्त कर लिया है (परिनवै गर्भ ग्रहन) वे अपने भीतरके शुद्ध स्वभावको ग्रहण करते हुए अर्थात् सिद्ध स्वभाव जो गर्भमें हैं उसे अनुभव करते हुए परिणमन कर रहे हैं। (तित्थयर रमन रमनं) वे ही तीर्थंकर हैं जो आनन्दमें मगन होरहे हैं ॥ १३ ॥

(श्रीवर सुकमल उवन) ज्ञानादि लक्ष्मी सहित श्रेष्ठ उत्तम कमल समान आत्माका प्रकाश हुआ है (पट दिप्त ममल भवन) छः द्रव्योंका प्रकाश स्पष्टपने होगया है अर्थात् वे छः द्रव्योंके स्वरूपको, उनके अनन्त गुण व पर्यायोंके साथ जानते हैं। अथवा चार घातिया कर्मोंके नाशसे उनमें छः दीप्तियां प्रकाशित हैं—

(१) अनन्तज्ञान, (२) अनन्तदर्शन, (३) अनन्त वीर्य, (४) अनन्त सुख, (५) क्षायिक सम्यग्दर्शन, (६) क्षायिक चारित्र–(ति अर्थ अर्थ रहन) रत्नत्रयमई आत्म पदार्थका जहां विश्राम है (अस्थान थान मिलन) जिसको पहले अपना निज स्वाभाविक पदका स्थान नहीं प्राप्त था उसे अब अपना निज स्थान प्राप्त होगया है ॥ १४ ॥

(श्री दिप्ति सिद्धि सुरय) अन्तरंग लक्ष्मीके प्रकाशकी सिद्धि उनके लगातार रहनेवाली है (परिनाम नन्त ममल) उनके भाव अनन्तकाल तक निर्मल रहेंगे (श्री साति सुद्ध सुवण) वे शोभनीक शांतिकी शुद्धतासे प्रकाशमान हैं (श्री दिप्ति मुक्ति मिलनं) उनका मेल अन्तरंग शोभासे प्रकाशित मुक्तिसे होगया है ॥१५॥

(ह्रीं दीप्ति ह्रिया रहिय) ह्रीं मंत्रसे प्रकाशित श्री चौवीस तीर्थंकरोंमें जो दीप्ति है वह हितकारी है व हितरूप है (हिय अनन्त ज्ञान रमनं) उसी हितकारी अनन्त ज्ञानमें रमन कर रहे हैं (दर्सै सु नन्त मइयं) वे अनन्तदर्शनमई है (हिय चरन चरन चरिय) वे हितकारी आत्मामें आचरणरूप चारित्रमें चल रहे हैं ॥१६॥

(धृति ध्रुवं ममल मिलिय) उनको अविनाशी शुद्ध धैर्य या सन्तोष या कृतकृत्यपना प्राप्त होगया है (त लोयलोय ममलं) तीन लोकमें उनके समान बल कहीं नहीं है, वे अनन्त बलि हैं (कृत सुकृत कम्म गलिय) उनके किये हुए पुण्य कर्म भी गल गये हैं (तं क्राति उवन ममलं) वे शुद्ध आत्म–ज्योतिसे प्रकाशित हैं॥१७॥

(बुधि बोध न्यान उवनं) उनके बुद्धिवानोंके लिये जानने योग्य ज्ञानका उदय होगया है (त नन्त नन्त ममल) वह ज्ञान ऐसा निर्मल है जिसमें अनन्तानन्त पदार्थ झलक रहे हैं (लषियं अलष्य लषन) जिसने अती-

न्द्रिय आत्माको, जो इंद्रियोंसे जानने योग्य नहीं है उसको देख लिया है (मय ममल न्यान भवनं) उनमें शुद्ध ज्ञानमई परिणमन ही रहता है ॥ १८ ॥

(षट् दिप्ति दिप्त दिपन) उनमें छः प्रकाशोंकी ज्योति दिप रही है। अर्थात् वे अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, अनन्त सुख, क्षायिक सम्यग्दर्शन व क्षायिक चारित्रसे जाज्वल्यमान है (तं नन्त नन्त गमनं) उन दीप्तियोंका परिणमन अनन्त परिणमन रूप है (दरसै सु नन्त सयनं) उसमें अनन्त परिणमन दिख रहा है अर्थात् वे अनन्तानन्त द्रव्योंकी पर्यायोंको एक काल जानते हैं (तं नन्त नन्त ममल) वह शुद्ध अनन्तानन्त परिणमन है, उसमें कोई अशुद्धता नहीं होती है। शुद्ध द्रव्यके भीतर वस्तु स्वभावसे उत्पाद व्यय पर्यायोंकी अपेक्षा होते हुए भी कोई विकारमई अशुद्धता नहीं होती है ॥ १९ ॥

(तित्थ पर गब्भ उवन) तीर्थंकर भगवानके गर्भका जन्म होगया है अर्थात् जो आत्माका प्रकाश गुप्त था सो प्रगट होगया है जैसे–बादलोंके गर्भमें सूर्य हो सो बादलोंके जानेसे प्रकाश होजाता है (त नंत न्यान मवियं) वह अनन्त ज्ञानका परिणमन है (परिनाम नन्त लषिय) उससे द्रव्योंकी अनन्त पर्यायें जानली जाती हैं (तं सिद्धि मुक्ति मिलनं) उनकी सिद्धि होगई है उनको मुक्तिका मिलाप होगया है ॥ २० ॥

(सिरि कमल दिप्त उवन) अन्तरङ्ग लक्ष्मी सहित कमलकी दीप्ति प्रकाशित है (सुइ सहज गम्य गमनं) सो ही स्वाभाविक रूपसे सर्व ज्ञेयको जान रही है (जोजन सत सहस्सं) वह कमल जंबूद्वीप समान एक लाख योजनका चौड़ा है। यहां यह अभिप्राय झलकता है कि पिंडस्थध्यानमें जब अग्निधारणाका विचार किया जाता है तब नाभिस्थानमें एक लाख योजनका तप्त सुवर्णमय कमल विचारा जाता है। उसके मध्यमें कर्णिका मेरुपर्वत समान होती है, उसमें ह्रीं अक्षरका ध्यान करके उससे अग्निकी ज्वाला प्रज्वलित की जाती है जो सर्व कर्म व शरीरको जलाकर आत्माको शुद्ध करती है। भाव यह है कि एक लाख योजन चौडे कमलके ध्यानकी सहायतासे जो आत्मज्योति प्रकाशित होती है (त लष्य भाव सुवन) उसमें शोभनिक अनुभवगम्य भाव भरा हुआ है ॥ २१ ॥

(तं उग्र उग्र उवनं) वह दीप्ति या प्रकाश बहुत ही उग्र शक्तिशाली उदय हुआ है (लष्यन लषीय भवनं) जो जाननेयोग्य उपयोग लक्षणमें परिणमन रूप है (बत्तीस लष्य लखिय) जो शुद्ध आत्मप्रकाश बत्तीस लक्ष-

णोंसे या गुणोंसे प्राप्त होता है अर्थात् जो बत्तीस गुणोंका मनन करता है उसीके भीतर वह शुद्ध प्रकाश होता है। वे बत्तीस गुण नीचे प्रकार समझमें आए हैं:—

३ रत्नत्रय-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र।
८ सम्यग्दर्शनके आठ अंग निःशंकितादिक।
८ सम्यग्ज्ञानके आठ अंग कालादिक।
१३ सम्यक्चारित्र तेरह प्रकार।
———
३२

उनका विस्तार यह है—

१-निःशंकितांग—तत्वोंमें शङ्का न करना, २-निःकांक्षित अंग—इंद्रिय सुखको सुख न समझना, ३-निर्विचिकित्सित अंग—रोगी दुःखी श्रावक मुनि आदिसे ग्लानि न करना, ४-अमूढदृष्टि— मूढतासे किसी अधर्मको न मानना, ५-उपगूहन—अपने गुणोंको बढाना, धर्मात्माओंके दोषोंको प्रगट न करना, ६-स्थितिकरण—धर्ममें दृढ करना, ७-वात्सल्य—धर्मात्माओंसे प्रेम करना, ८-प्रभावना—धर्मकी उन्नति करना। वे आठ अंग सम्यग्दर्शनके हैं।

१-शब्द शुद्धि, २-अर्थ शुद्धि, ३-शब्द व अर्थ उभय शुद्धि, ४-कालाध्ययन-ठीक समयपर पढ़ना, ५-विनय सहित पढ़ना, ६-उपधान या धारणा सहित पढना, ७-बहु मानके साथ पढना, ८-अनिन्हव-ज्ञानको व गुरुको न छिपाना। यह १३ प्रकार सम्यक्चारित्र है।

पांच महाव्रत-अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रहत्याग।

पांच समिति-ईर्या (४ हाथ आगे देखकर चलना) २-भाषा (शुद्ध वचन कहना) ३-एषना (शुद्ध भोजन करना) ४-आदाननिक्षेपण (देखके रखना उठाना) ५-उत्सर्ग (मल मूत्रको देखकरके करना)।

तीन गुप्ति-मन वचन कायको वश रखना।

(सजोय चरन चरिय) इन ३२ गुणोंके संयोगसे चारित्रका आचरण करना चाहिये ॥ २२ ॥

(चौसट्ठ चरन चरिय) चौसठ प्रकारके आचरण पालनेसे (तित्थयर गर्भ मिलिय) तीर्थंकरका गर्भ मिलता है अर्थात् परमात्माका स्वरूप प्राप्त होता है। वे ६४ प्रकारका आचरण नीचेप्रकार समझमें आता है—

५ महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रहत्याग या ५ समिति-ईर्या भाषा आदि।
३ गुप्ति—मन, वचन, काय।
१० धर्म—उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य।
१२ भावना—अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ, धर्म।
१२ तप—अनशन (उपवास), अवमौदर्य (कम खाना), वृत्तिपरिसंख्यान (नियम लेकर भिक्षाको जाना), रस परित्याग (दूध, दही, घी, तेल, लवण, मिष्ट इन छः रसोंका व कमका त्याग), विविक्त शयनासन (एकान्तमें बैठना सोना), कायक्लेश (शरीरको कष्ट देकर रहना), प्रायश्चित्त (अपराधका दंड लेना, विनय), वैय्यावृत्त (सेवा), स्वाध्याय, व्युत्सर्ग (ममता त्याग), ध्यान।
२२ परीषहोंका जय—क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नग्नता, अरति, स्त्री, चर्या (चलनेकी), निषद्या (बैठनेकी), शय्या, आक्रोश (गाली), वध, याचना (मॉगनेके भावकी), अलाभ, रोग, तृणस्पर्श (झाडीके स्पर्शकी), मल, सत्कार पुरस्कार (आदर निरादर), प्रज्ञा (ज्ञानमदकी), अज्ञान, अदर्शन (श्रद्धासे छूटनेकी)।

६१ कुल

(परिनाम नत अमल)) जिनके अनन्त भाव शुद्ध होते हैं (उत उवन मुक्ति मिलन) उस उदयरूप पदसे मुक्तिका लाभ होजाता है ॥ २३ ॥

(तं समय उत्त उवनं) वह शुद्ध पद जैसा आगममें कहा है वैसा प्रगट होता है (मम ममर साधु मिलन) समतारूप आत्माका भलेप्रकार लाभ होजाता है (त नत कम्म गलन) उसके प्रभावसे अनन्त कर्मबन्ध गल जाते हैं (अन्मोय मुक्ति मिलनं) आनन्ददायक मुक्ति मिल जाती है ॥ २४ ॥

(ज समय सुद्ध सजन) जो आत्माके शुद्धपदका प्रकाश है (सहकार विंद मिलन) सो स्वानुभवकी मददसे मिलता है (विज्ञान ज्ञान रमन) जहां ज्ञानचेतनामें रमन होता है (अन्मोय सिद्धि गमन) व आनन्दप्रद सिद्धगतिमें गमन होजाता है ॥ २५ ॥

भावार्थ—इस गभ चौवीसीमें परमात्मा पद अरहंत या सिद्धरूप जो भव्यजीवके भीतर गर्भरूपसे रहता है उसीकी महिमा अनेक प्रकारके शब्दोंसे गाई गई है। बारबार अरहन्त व सिद्धपदका विचार किया गया है। भाव यह है कि हे भव्यजीवों! अविनाशी आनन्दमय, ज्ञानमय व शांतिमय मोक्षको प्राप्त करना उचित है, वह कहीं बाहर नहीं है, तुम्हारे ही गर्भमें है, तुम्हारे ही पास है। उसका जन्म या प्रकाश करना चाहिये। अतएव रत्नत्रय धर्मको व्यवहार या निश्चय उभयरूपसे पालना चाहिये। व्यवहार रत्नत्रय निमित्त साधक है, निश्चय रत्नत्रय साध्य है। उस गर्भको प्रगट करनेका उपाय निश्चय रत्नत्रय स्वरूप अपने ही शुद्धात्माका अनुभव है। यह अनुभव परम शांत है व आनन्दमय है व आत्माका निज प्रकाश है। यही आत्मज्ञानका जब धारावाही मनन किया जाता है और सर्व पर परिणमनको—रागद्वेषको जीता जाता है तब पूर्व कर्म गलने लगते हैं, नवीन कर्मोंका संवर होता है, विषयानुराग अस्त होजाता है, आनन्दामृतका प्रेम बढ़ता जाता है, स्वात्मरमणरूप आनन्दमय भावके अभ्याससे घातीय कर्मोंका क्षय होकर केवलज्ञानका प्रकाश होजाता है। यह ज्ञान सूर्यसम प्रगट होता है, यही सहज ज्ञान है। इसमें द्रव्योंकी अनन्त पर्यायोंको एक काल जाननेकी शक्ति है। जब अरहंत पद प्रगट होजाता है तब आत्माका प्रकाश हो ही जाता है। शेष कर्म्म जली हुई रस्सीके समान रह जाते हैं, जो ज्ञानचेतनाके प्रभावसे स्वयं गल जाते हैं तब सिद्धपद या मुक्तिपद प्राप्त होजाता है। इस पदमें आत्मा परम शुद्ध भावमें सदा रमण करता है। जैसे कमल रात्रिमें बन्द रहता है—जब सूर्यका उदय होता है तब विकसित होजाता है, वैसे आत्मारूपी कमल ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय व मोहनीयके अंधकारमें छिपा हुआ था—ढका हुआ था—मुद्रित था, सो केवलज्ञान सूर्यके प्रगट होते ही पूर्ण आनन्दके साथ प्रफुल्लित होजाता है। श्री अरहंत परमात्माकी महिमा वचन अगोचर है। उनका स्वरूप भी वास्तवमें अनुभवगम्य है। साधकको ही श्रीं आदि मन्त्रोंके द्वारा अभ्यास करके उस निज पदको झलकानेका उपाय करना चाहिये। आठ अङ्ग सहित सम्यक्त, आठ अङ्ग सहित सम्यग्ज्ञान व तेरह प्रकारका चारित्र पालना चाहिये। १२ तप, १२ भावनाका अभ्यास करना चाहिये। उत्तम क्षमादि १० धर्मको पालना चाहिये। आत्मध्यानका विशेष अभ्यास करना चाहिये। ध्यान ही वह अग्नि है जो सर्व कर्म गलाती है व आत्माको शुद्ध करती है। शुद्ध सिद्धपदमें परम संतोष या कृतकृत्यपना सदा बना रहता है। हे भव्य जीवों! पूर्ण विश्वास करो कि परमात्म

अमलपाहुड
॥ ६७॥

पद तुम्हारे ही गर्भमें है और तुम अपने ही आत्मज्ञानके साधनसे उसको प्राप्त कर सक्ते हो। वह पद जैसे आनन्दरूप है वैसे उसका उपाय भी आनन्दरूप है। इसलिये इस मानव जन्मको सफल करनेके लिये अपने आपको पहचानो। अपने भीतरसे ही परमात्म पद प्रगट होता है। यही भावार्थ इस पात्र चौवीसीका है।

---

(१०) पात्रविसेष गाथा-१९९ से १८४ तक।

पय उवनउ तं उवन मउ, उवनो न्यान स उत्तु।
उत्तम अवहि उवन पऊ, मधिम न्यान सुइ जुत्तु ॥ १ ॥
जहिन पात उववन पऊ, मति समये संजुत्तु।
सहकार समय जिनुत्ति पऊ, उवन सब्द दरसंतु ॥ २ ॥
उवन उवन जु देइ पउ, हिययार उवन जुत्तु।
सहकार उवन सहाउ लइ, उवन दिष्टि दरसंतु ॥ ३ ॥
उवन दिस सुइ न्यान पउ, दिसि दिस्टि दरसंतु।
हिययार दिसि दिस्टि मउ, उवन उवन जिन उत्तु ॥ ४ ॥
उवन दिसि सहयार सुइ, सार दिसि दरसंतु।
सहयार सहाव उवन दई, सार पंथ जिन उत्तु ॥ ५ ॥
उवन हिया सहयार मउ, उत्पन्नं दरसंतु।
कल मनरंज विलन्त, सुइ, दर्सन मोह विलन्त ॥ ६ ॥
जिन वयनु जिन दर्स मउ, सम सहाव संजुत्तु।
जिन अयास अन्मोय मउ, षिपक मुक्ति दरसंतु ॥ ७ ॥

मद्दिम पत्तउ हि गरमउ, सहयारं दरसंतु ।
सहयार जुत्त ममल पउ, पर्जय भय विलयंतु ॥ ८ ॥
हिययार दिप्ति रयरई, दिस्टि इस्टि संजुत्तु ।
उवन दिप्ति सुइ दिप्त मउ, सहयारं दरसंतु ॥ ९ ॥
सहयार दिप्ति उवन मउ, दिस्टि इस्टि सुइ सन्त ।
हिययारं सद्भाव लहि, पर परजय विलयन्त ॥ १० ॥
जहिन पत्त उववन्न मउ, दिप्ति दिष्टि दरसंतु ।
उवन हिययार सह रमउ, नन्त कम्म विलयन्तु ॥ ११ ॥
जहिन सुभाव स उत्त मउ, पात्त दान जिन उत्तु ।
सहयारं उववन्न पउ, दान भाव जिन उत्तु ॥ १२ ॥
दानं चौविहि उत्ति पउ, ज्ञानाहार संजुत्तु ।
भेषज दान जु उत्त जिन, अभयं भय विलयन्तु ॥ १३ ॥
उत्तम पत्त विसेप मुनि, उवन देइ सुइ नन्त ।
पर परजय विलयन्त सुइ, उवन मुक्ति दरसंतु ॥ १४ ॥
जहिन ग्रहन जं ज्ञानश्री, दान समय संजुत्तु ।
उववन पत्त जुविह समउ, उवन दिस्टि विगसंतु ॥ १५ ॥
नन्द भाव जो परिनमउ, पद पखलन जिन उत्तु ।
आहार दान नन्द मउ, उवन पत्तु संजुत्तु ॥ १६ ॥

पदका अर्थ हितकारी है (उवन सहकार सहाउ लइ उवन दिष्टि दरसतु) उसके प्रकाशित स्वभावकी सहायता लेकर प्रकाशित आत्मश्रद्धा उपजती है ॥ ३ ॥

(उवन दिप्त सुइ ज्ञान पउ) श्रुतज्ञानका वही पद है जिससे भीतर प्रकाश पैदा हो (दिप्ति दिष्टि दरसतु) जिससे सम्यग्दर्शनका प्रकाश देखा जासके (हिययार दिप्ति दिष्टि मउ) यह आत्मदर्शनकी दीप्ति आत्माका हित करनेवाली है (उवन उवन जिन उत्तु) जिनेन्द्र भगवानने इस बातको प्रगट रूपसे कहा है ॥ ४ ॥

(उवन दिप्ति सहयार सुइ) इस प्रकाशित सम्यग्दर्शनकी दीप्तिका सहकारी श्रुतज्ञानका मनन है (सार दिप्ति दरसंतु) जिससे सारभूत आत्माकी दीप्ति देखी जाती है (सहयार सहाव उवन दई) उसकी सहायतासे स्वभावका उदय होता है (मार पन्थ जिन उत्तु) यह आत्माके स्वभावका उदय मोक्षका सार या निश्चय मार्ग है ऐसा जिनेन्द्रने कहा है ॥ ५ ॥

(उवन हिया सहयार मउ) यह प्रकाशित ज्ञान हितकारी व मोक्षमार्गमें सहकारी है (उत्पन्न दरसंतु) इस आत्माके प्रकाशित स्वभावका अनुभव करना चाहिये (फल मनरंज विलत सुइ) जिससे पापवर्द्धक मनको रंजायमान करनेवाली विकथाओंके सुननेका भाव विला जाता है (दर्सन मोह विलंत) दर्शनमोहनीय कर्मका उपशम होजाता है। भावार्थ—जो कोई भव्य जिनवाणीको रूचिपूर्वक पढता है, विचारता है, मनन करता है, आत्मा व अनात्माका भेद जानता है फिर अनात्मासे भिन्न अपने आत्माके स्वरूपका वारवार चिन्तवन करता है, उसके भीतर अनन्तानुबन्धी रागभाव घटता जाता है, घटते २ जब अनन्तानुबन्धी- कषाय और मिथ्यात्वकर्मका उपशम होजाता है तब सर्व विकथाओंका राग व संसारका राग विला जाता है, आत्मानंदका प्रेम व आत्मसुखका स्वाद प्रगट होजाता है। संसार रूचि मिट जाती है, मोक्षकी रूचि पैदा होजाती है। जघन्य पात्र वही है जो इसतरह शास्त्रका अभ्यास करके आत्माके शुद्ध स्वभावकी रूचि प्राप्त कर लेवे ॥ ६ ॥

(जिन वयनु जिन दर्स मउ) जिनवाणी वही है जो रागद्वेषको जीतनेवाले वीतराग भगवानका स्वरूप दिखलावे (सम सहाव संजुत्तु) जिसमें समताका स्वभाव हो, जिसके मननसे समताका लाभ हो (जिन अयास अन्मोय मउ) जो आकाशके समान निर्मल व आनन्दमई जिनपदको दरशावे (षिपक मुक्ति दरसंतु) जो कर्मोंके क्षयका उपाय बताकर मोक्षका स्वरूप प्रगट करे ॥ ७ ॥

(भद्दिम पत्तउ हि यरमउ) मध्यम पात्र शास्त्रके तत्वके ज्ञाता श्रुतज्ञानके मरमी अपने हितमे रमन करते हैं। (सहयार दरसंतु) जो उस श्रुतकी सहायतासे आत्माका दर्शन करते है। (सहयार जुव ममल पउ) जो जिनवाणीकी मददसे निर्मल आत्मीक पदके अनुभव करनेवाले हैं। (पर्जय भय विल्यतु) जिनके भीतरसे संसारकी पर्यायोके धारनेका भय विला गया है। भावार्थ—शास्त्रके भावके ज्ञाता सम्यग्दृष्टी मध्यमपात्र हैं। जिनको ऐसा गाढ निश्चय है कि मानो हमने मोक्ष प्राप्त ही कर लिया है, उनको कर्मजनित सांसारिक अवस्था पानेका भय नहीं रहा है। क्योंकि वे निःशंकित गुणके धारी होते हैं, उनको परलोकका भय नहीं होता है। वे ज्ञानी अपनेको सदा जीवन्मुक्त अनुभव करते हैं॥ ८ ॥

(हिययार दिप्ति रयरई) वे हितकारी आत्मप्रकाशमें बड़े उत्साहसे रत रहते हैं (दिस्टि इष्ट दरसतु) वे परम इष्ट सम्यग्दर्शनको या आत्मदर्शनको देखते हैं (उवन दिप्ति सुइ दिप्त मउ) उनके भीतर जो दीप्ति प्रकाशित होती है वही भाव श्रुतज्ञानकी दीप्ति है (सहयारं दरसतु) जिसकी सहायतासे वे आत्माका अनुभव करते हैं॥ ९ ॥

(सहयार दिप्ति उवन मउ) यह प्रकाशित दीप्ति परम सहकारी है (दिस्टि इस्टि सुइ सत) जो इस प्रिय दृष्टिको धारण करते हैं वे ही संत हैं (हिययार सद्भाव लहि) वे हितकारी शुद्ध भावको पाते है (पर पाजय विल्यत) उनके रागादि पर परिणमन विला जाता है अर्थात् वे आत्माके शुद्ध भावमें रमण करते हैं। रागादिसे उदासीन रहते हैं। उनकी श्रद्धा तो स्वभाव रमणमें पक्की होती है। चारित्रकी अपेक्षा वे यथाशक्ति अपने स्वरूपमें रमण किया करते हैं॥ १० ॥

(जहिन पत उववन मउ) जघन्य पात्रके उत्पन्न होनेवाली (दिप्ति दिष्टि दरसतु) दीप्ति सम्यग्दर्शनको अनुभव कर लेती है (उवन हिययार सह रमउ) वे इस प्रकाशित हितकारी सम्यग्दर्शनके साथ आत्मामें रमण करते हैं (नन्त कम्म विलयंतु) इस आत्मानुभवके प्रतापसे अनन्त कर्म विला जाते हैं॥ ११ ॥

(जहिन सुभाव स उत्तमउ) जघन्य भावसे लेकर उत्तम भावके धारी पात्र तक (पात्त दान जिन उत्तु) पात्र दानका होना जिनेन्द्रोंने कहा है। (सहयार उववन्न पउ) अपने २ पदमें प्रकाशित ज्ञानकी सहायतासे आत्मीक पदको प्रकाशित करना या आत्माकी उन्नति करना (दानभाव जिन उत्तु) उसीको पात्रदानका भाव जानना चाहिये ऐसा जिनेन्द्रने कहा है। अर्थात् अपने ज्ञानके प्रमाण अपने आत्माके शुद्ध स्वभावके रमणके द्वारा

॥ ७३ ॥

पद्का अर्थ हितकारी है (उवन सहकार सहाउ लइ उवन दिप्टि दरसतु) उसके प्रकाशित स्वभावकी सहायता लेकर प्रकाशित आत्मश्रद्धा उपजती है ॥ ३ ॥

(उवन दिप्त सुइ ज्ञान पउ) श्रुतज्ञानका वही पद है जिससे भीतर प्रकाश पैदा हो (दिप्ति दिप्टि दरसतु) जिससे सम्यग्दर्शनका प्रकाश देखा जासके (हिययार दिप्ति दिप्टि मउ) यह आत्मदर्शनकी दीप्ति आत्माका हित करनेवाली है (उवन उवन जिन उत्तु) जिनेन्द्र भगवानने इस बातको प्रगट रूपसे कहा है ॥ ४ ॥

(उवन दिप्ति सहयार सुइ) इस प्रकाशित सम्यग्दर्शनकी दीप्तिका सहकारी श्रुतज्ञानका मनन है (सार दिप्ति दरसंतु) जिससे सारभूत आत्माकी दीप्ति देखी जाती है (सहयार सहाव उवन दई) उसकी सहायतासे स्वभावका उदय होता है (सार पन्थ जिन उत्तु) यह आत्माके स्वभावका उदय मोक्षका सार या निश्चय मार्ग है ऐसा जिनेन्द्रने कहा है ॥ ५ ॥

(उवन हिया सहयार मउ) यह प्रकाशित ज्ञान हितकारी व मोक्षमार्गमें सहकारी है (उत्पन्नं दरसंतु) इस आत्माके प्रकाशित स्वभावका अनुभव करना चाहिये (कल मनरज विलंत सुइ) जिससे पापवर्द्धक मनको रंजायमान करनेवाली विकथाओंके सुननेका भाव विला जाता है (दर्सन मोह विलंत) दर्शनमोहनीय कर्मका उपशम होजाता है। भावार्थ—जो कोई भव्य जिनवाणीको रूचिपूर्वक पढ़ता है, विचारता है, मनन करता है, आत्मा व अनात्माका भेद जानता है फिर अनात्मासे भिन्न अपने आत्माके स्वरूपका वारवार चिन्तवन करता है, उसके भीतर अनन्तानुवन्धी रागभाव घटता जाता है, घटते २ जब अनन्तानुवन्धी कषाय और मिथ्यात्वकर्मका उपशम होजाता है तब सर्व विकथाओंका राग व संसारका राग विला जाता है, आत्मानंदका प्रेम व आत्मसुखका स्वाद प्रगट होजाता है। संसार रूचि मिट जाती है, मोक्षकी रुचि पैदा होजाती है। जघन्य पात्र वही है जो इसतरह शास्त्रका अभ्यास करके आत्माके शुद्ध स्वभावकी रुचि प्राप्त कर लेवे ॥ ६ ॥

(जिन वयनु जिन दर्स मउ) जिनवाणी वही है जो रागद्वेषको जीतनेवाले वीतराग भगवानका स्वरूप दिखलावें (सम सहाव सजुत्तु) जिसमें समताका स्वभाव हो, जिसके मननसे समताका लाभ हो (जिन अयास अन्मोय मउ) जो आकाशके समान निर्मल व आनन्दमई जिनपदको दरशावे (षिपक मुक्ति दरसंतु) जो कर्मोंके क्षयका उपाय बताकर मोक्षका स्वरूप प्रगट करै ॥ ७ ॥

ममलपाहुड

(मद्धिमपत्तउ हि यरमउ) मध्यम पात्र शास्त्रके तत्वके ज्ञाता श्रुतज्ञानके मरमी अपने हितमें रमन करते हैं। (सहयार दरसंतु) जो उस श्रुतकी सहायतासे आत्माका दर्शन करते है। (सहयार जुत ममल पउ) जो जिनवाणीकी मददसे निर्मल आत्मीक पदके अनुभव करनेवाले हैं। (पर्जय भय विल्यतु) जिनके भीतरसे संसारकी पर्यायोंके धारनेका भय विला गया है। भावार्थ—शास्त्रके भावके ज्ञाता सम्यग्दृष्टी मध्यमपात्र है। जिनको ऐसा गाढ़ निश्चय है कि मानों हमने मोक्ष प्राप्त ही कर लिया है, उनको कर्मजनित सांसारिक अवस्था पानेका भय नहीं रहा है। क्योंकि वे निःशंकित गुणके धारी होते हैं, उनको परलोकका भय नहीं होता है। वे ज्ञानी अपनेको सदा जीवन्मुक्त अनुभव करते हैं ॥ ८ ॥

(हिययार दिप्ति रयरई) वे हितकारी आत्मप्रकाशमें बड़े उत्साहसे रत रहते हैं (दिस्टि इष्ट दरसतु) वे परम इष्ट सम्यग्दर्शनको या आत्मदर्शनको देखते हैं (उवन दिप्ति सुइ दिप्त मउ) उनके भीतर जो दीप्ति प्रकाशित होती है वही भाव श्रुतज्ञानकी दीप्ति है (सहयारं दरसतु) जिसकी सहायतासे वे आत्माका अनुभव करते हैं ॥ ९ ॥

(सहयार दिप्ति उवन मउ) यह प्रकाशित दीप्ति परम सहकारी है (दिस्टि इस्टि सुइ सत) जो इस प्रिय दृष्टिको धारण करते हैं वे ही संत हैं (हिययार सद्भाव लहि) वे हितकारी शुद्ध भावको पाते हैं (पर परजय विल्यत) उनके रागादि पर परिणमन विला जाता है अर्थात् वे आत्माके शुद्ध भावमें रमण करते है। रागादिसे उदासीन रहते है। उनकी श्रद्धा तो स्वभाव रमणमें पक्की होती है। चारित्रकी अपेक्षा वे यथाशक्ति अपने स्वरूपमें रमण किया करते है ॥ १० ॥

(जहिन पत उववन्न मउ) जघन्य पात्रके उत्पन्न होनेवाली (दिप्ति दिप्टि दरसंतु) दीप्ति सम्यग्दर्शनको अनुभव कर लेती है (उवन हिययार सह रमउ) वे इस प्रकाशित हितकारी सम्यग्दर्शनके साथ आत्मामें रमण करते हैं (नन्त कम्म विलयतु) इस आत्मानुभवके प्रतापसे अनन्त कर्म विला जाते है ॥ १ ॥

(जहिन सुभाव स उत्तमउ) जघन्य भावसे लेकर उत्तम भावके धारी पात्र तक (पात्त दान जिन उत्तु) पात्र दानका होना जिनेन्द्रोंने कहा है। (सहयारं उववन्न पउ) अपने २ पद्में प्रकाशित ज्ञानकी सहायतासे आत्मीक पदको प्रकाशित करना या आत्माकी उन्नति करना (दानभाव जिन उत्तु) उसीको पात्रदानका भाव जानना चाहिये ऐसा जिनेन्द्रने कहा है। अर्थात् अपने ज्ञानके प्रमाण अपने आत्माके शुद्ध स्वभावके रमणके द्वारा

अपने ही आत्माको आत्मानुभवरूपी दान करना जिससे आत्मानन्द प्राप्त होकर परम तृप्ति होती है। यही पात्रदानका भाव है, यही अपनेसे ही अपनेको दान देना है ॥ १२ ॥

(दान चौ विहि उचि पउ) व्यवहारमें दान चार प्रकारका कहा गया है (ज्ञानाहार सजुत्त) प्रथम ज्ञान-दान दूसरे आहार दान (भेषज दान जु उत्त जिन) तीसरा औषधि दान जैसा जिनेन्द्रने कहा है (अभय भय विलयतु) चौथा अभयदान जो भयोंको मिटानेवाला है ॥ १३ ॥

(उत्तम पत्त विशेष मुनि) उत्तम पात्र विशेष आत्मानुभवी मुनिराज होते हैं जिनके अवधिज्ञानका भी उदय होगया है जैसा पहले कहा है (उवन देइ सुइ गत) वे अपनेको अनन्तगुणी विशुद्धता सहित भावका दान करते हैं। अर्थात् उनके परिणाममें अनन्तगुणी विशुद्धता वढती जाती है। जव ऐसे विशेष मुनि अधःकरण, अपूर्वकरण, और अनिवृत्तिकरण तीन करणलब्धियोंके द्वारा चारित्रमोहनीय कर्मको उपशम या क्षय करनेके लिये उपशम या क्षपकश्रेणी चढते हैं तव सातवेंसे आठवें फिर नौमें गुणस्थानमें जाते हैं। परिणामोकी विशुद्धता अनन्तगुणी समय समय वढती जाती है (पर परजय विलयत सुइ) जिससे वे पर परिणतिको नाश करते जाते हैं। अर्थात् नौमें गुणस्थान तक सिवाय सूक्ष्म लोभके सर्व कषायोंका उपशम या क्षय होजाता है। दशवेंके अन्तमें सर्व मोहका उपशम या क्षय होजाता है (उवन मुक्ति दःसतु) फिर वे ही क्षपकश्रेणी द्वारा जव क्षीणमोह गुणस्थानमें जाते हैं तव तीन घातीय कर्मोंका भी क्षय कर अरहन्तकेवली परमात्मा होजाते हैं और अपने शुद्ध स्पष्ट प्रत्यक्ष केवलज्ञान द्वारा शुद्ध मुक्त आत्माको प्रत्यक्ष देख लेते है ॥ १४ ॥

(जहिन ग्रहन ज न्यानश्री) जघन्य पात्र जो शास्त्रज्ञानके उत्सुक होते हैं वे ज्ञानलक्ष्मीको ग्रहण करते हैं (दान समय संजुत्तु) यही दान वे अपनी आत्माको देते हैं। अर्थात् शास्त्राभ्यास द्वारा वे अपने आत्माको ज्ञान देते हैं (उवन पत्त जु विह समउ) वे जघन्य पात्र प्रफुल्लित मन होकर प्रगट रहते हैं (उवन दिष्टि विगसतु) उनको सम्यग्दर्शनका प्रकाश होजाता है जिससे वे आनन्दित रहते हैं। अर्थात् जघन्य पात्र दान यह है जो तत्वखोजी शास्त्र द्वारा ऐसा ज्ञान दान अपनेको करे जिससे सम्यग्दर्शनका उदय होजावे ॥ १५ ॥

(नन्द भाव जो परिनमउ पद पखल्न जिन उत्तु) पात्रदान देते हुए पात्रके पगोका प्रक्षालन करना चाहिये

फिर आहारदान देना चाहिये। सो आत्मानुभव करते हुए जो आनन्द भावमें परिणमन करना है वही मानों अपने आत्माके पद धोना है अर्थात् आत्मानन्दके अभावमें जो मलीनता थी उसको मिटा देना है ऐसा जिनेन्द्रने कहा है (आहारदान नन्द मउ उवन पत्तु सजुत्तु) जब आत्मा अपने आपमें मगन होजाता है-आत्मयोग पैदा होजाता है तब यह आत्मदाता अपने ही आत्मारूपी पात्रको आनन्दमई आहारदान करता है। आत्मानुभव करते हुए परम तृप्ति होती है, आत्माका बल बढ़ता है, यही आहारदान है ॥१६॥

(उवन दिष्टि तं दिप्ति मउ) उदयमान सम्यग्दर्शनरूपी ज्योति (त्याग सु ममल सु उत्तु) जब रागद्वेषको त्याग देती है तब शुद्ध वीतराग सम्यग्दर्शनरूपी ज्योति कही गई है (उवन भाव सुइ रमन पउ) वह प्रकाशित जो भाव है सो ही आत्मामें रमणरूप भाव है (उवन मुक्ति दरसंतु) वही उदयमान भाव मुक्तिका अनुभव करता है अर्थात् शुद्ध मुक्त आत्माका दर्शन करता है ॥ १७ ॥

(मद्धिम पत्त जिनुत्त सुइ) मध्यम पात्र जिनेन्द्रने उसे ही कहा है (हिय दिष्टि दरसतु) जो हितकारी आत्म दृष्टिसे आत्माको देखते हैं (उवन देइ सुइ न्यान मउ) वे श्रुतज्ञानमई प्रकाशको अपनेको देते हैं। शास्त्रके द्वारा शुद्धात्म ज्ञानका भाव अपनेमें जागृत करते हैं (परजय उवन विलतु) तब उत्पन्न होनेवाली कर्मकी परिणति विला जाती है अर्थात् वीतराग भावसे कर्मोंका संवर होता है ॥ १८ ॥

(मद्धिम पत्त सुदान मउ) मध्यम पात्र जब अपनेको भाव श्रुतज्ञानका दान देते हैं तब (आहारदान उत्तु) वह अपनेको आहारदान करते हैं क्योंकि भाव श्रुतज्ञानमें समयसारका ज्ञान होनेसे उनको परम तृप्ति मिलती है (पात्रदान सुइ सुख मऊ) जब वे मध्यम पात्र अपने आत्मामें भावश्रुतज्ञान द्वारा रमन करते हैं तब वे आनन्दमय होजाते हैं, यह सच्चा पात्रदान है (सुयखम कम्म विलतु) इस अनुपम पात्रदानसे सूक्ष्म कर्मके स्कंध जो बन्ध प्राप्त थे उनकी निर्जरा होजाती है ॥ १९ ॥

(जहिन पात जिन उत्ति यउ) जिनेन्द्रोंने जिनको जघन्य पात्र कहा है (दत्त पत्त विज्ञान) वे स्वयं दाता अपने आप पात्रको भेदविज्ञानका दान करते हैं, आत्माको भिन्न २ विचार करते हैं (विज्ञान विंद रयण पउ) इस भेदविज्ञानके द्वारा वे रत्नत्रयमय धर्मको समझते हैं, आत्मरमणरूप निश्चय रत्नत्रयके भावको पहचानते है (पत्त दान सुइ उत्त) यही जघन्य पात्रदान कहा गया है। अर्थात् शास्त्र द्वारा आत्मा व अनात्माका भेद-विज्ञान आपको देना जिससे निश्चय रत्नत्रय रूप बोधका लाभ हो यही पात्रदान है ॥ २० ॥

(दान भाव सु अनन्त सम) यही पात्रदानका भाव है, जहां अनन्त समभावका लाभ हो (दिप्ति दिस्टि दरसंतु) प्रकाशमान आत्मज्योतिका अनुभव हो (दिप्त मिली दिप्तहि सहिउ) जहां अपने आत्माका उपयोग परमात्माके प्रकाशसे मिल जावे (दिप्ति विगस विगसंतु) जहां प्रफुल्लित आनन्दका भाव खिल जावे ॥२१॥

(दिप्त दिस्टि त सुइ रमन) जहां आत्माका उपयोग श्रुतज्ञानमें रमण करे (जिन उत्तु सव्द टत्त) जिनेन्द्र कथित शब्दोंको कहे व पढ़े व मनन करे (पय आवरन सुभाउ मुनि) जब मुनि शास्त्र पदोंके अनुसार अपने चारित्रके स्वभावको बनावे (ज्ञान दान सजुत्तु) तब ही ज्ञान दान कर रहे है। अर्थात् आपको आपसे शास्त्र-ज्ञान देना व स्वसंवेदन ज्ञानका अपनेमें प्रकाश करना या वीतराग चारित्रमई स्वभावकी तरफ झुकना यही सचा ज्ञान दान है ॥ २२ ॥

(भेषज दीन्हो भय रहिउ, बाधा विलय सुभाउ) अपनेको भय रहित औषधिदान यह है कि बाधासे रहित स्वभाव होजावे अर्थात् आर्तध्यान व रौद्रध्यानसे रहित निराकुल धर्मध्यानमई स्वभावका प्रकाश होजावे (ससार सरीर सुभाव मउ, भोग बाध विलयतु) ऐसा वैराग्यभाव प्रगट होजावे कि संसार शरीर व भोगोंकी ओरसे चिन्तारूपी बाधा विला जावे, न चार गतिरूप दुःखमई संसारकी कामना रहे न नाशवंत शरीरको प्राप्तिकी इच्छा रहे, न अतृप्तिकारी भोगोंकी चाहना रहे। इन सबकी चाहकी दाहका मिटना सोई अपनेको औषधि-दान करना है ॥ २३ ॥

(अभयदान तं भय रहिउ) अपनेको सर्व भयसे रहित करना अभयदान है (भय विनास त मन्वु) जिसका सर्व सांसारिक भय नाश होजाता है वही गम्य है (अभय रमन भय विलय सुई) आत्मा अभय है, वह अवि-नाशी अमूर्तीक है, उसको किसीके द्वारा नाश होनेका व विगड़नेका भय नहीं है। इस अभय स्वरूप आत्मामें रमण करना सो ही सर्व भयोंको नाश कर देना है (भय पर्जय विलयतु) आत्मामें रमण करनेसे भय नोकषायका परिणमन मिट जाता है। यही अभयदान है ॥ २४ ॥

(दान देइ त ममल पउ) दान वही है जिसके देनेसे निर्मल पद मोक्षपद प्राप्त होजावे (ममल मऊ जिन उत्तु) वही शुद्ध दान है ऐसा जिनेन्द्रने कहा है (पत्त सुभाव जिन समय) पात्रका स्वभाव जितेन्द्रिय व जित-राग द्वेष वीतराग आत्मा है (सह यार सिद्धि संपत्तु) इसी वीतराग विज्ञान स्वभावमें रमण करनेसे सिद्ध गतिकी प्राप्ति होती है ॥ २५ ॥

(विगसिय जिन पउ विगसमउ) प्रफुल्लित जिनपदका लाभ जो आनन्दमय है (पयाचरन पद विंद) वही निजपदका आचरण है, वही निजपदका अनुभव है (आहारह सुइ मुक्तिवल) यही मोक्षके पदको ग्रहण करना है या आहारदान है, अपनेको स्वानुभव रसका पिलाना जिससे मुक्ति होगी वही आहारदान है (भेषज अव्वावाह) बाधारहित निराकुल भावको अपनेको देना यही औषधिदान है ॥ २६ ॥

(अभयदान सुइ अमय पउ) आपको निर्भय आत्मपदमें स्थापित करना सो ही अभयदान है (अमय मुक्ति दरसतु) जिससे निर्भय मुक्तिपदका दर्शन होता है (पत्त दिस्टि सुइ दिसि) अपने आत्म पात्रका दर्शन करना सोई आत्माका प्रकाश है (सहयार सिद्धि सपत्तु) जिसकी सहायतासे सिद्धगतिकी प्राप्ति होती है ॥२७॥

(पत्त स उत्तउ विक्त रुइ) जिसके सम्यग्दर्शन रूपी रुचि प्रकाशमान होगई है उसे ही पात्र कहते हैं (न्यान विन्यान म उत्तु) उसको भेदविज्ञानी कहा गया है (विक्त रूव सहकार जिन समय सिद्धि सपत्तु) स्वानुभवमें प्रगट आत्माके स्वभावकी मददसे आत्मा वीतराग होकर सिद्धिको प्राप्त कर लेता है ॥ २८ ॥

(सक्ति सरुव अपत्त मुनि) जिसके सम्यग्दर्शनकी प्रगटता नहीं हुई है किंतु आत्मामें शक्तिरूपसे सम्यक्त मौजूद है प्रगटतामें मिथ्यात्व है, उसको अपात्र जानो (सद्दियारह नहि जुत्तु) उसकी रुचि योग्य नही है, वह मोक्षकी सहकार नहीं है (धुव अधुव सुइ उत्तुसम) जो ध्रुव तथा अध्रुवको समान जानता है, उसको द्रव्य व पर्यायका भेद मालूम नहीं है कि पर्याय अनित्य होती है जबकि द्रव्य नित्य होता है। आत्मा द्रव्यार्थिक नयसे सदा ध्रुव ज्ञाता दृष्टा वीतराग आनन्दमय है। पर्यायार्थिक नयसे आत्माकी सांसारिक अवस्था होरही है, ये सर्व कर्मजनित पर्यायें नाशवन्त हैं। आत्मा अविनाशी है। वह वर्तमान प्राप्त पर्यायको ही थिर मानकर लीन होजाता है। या वह अथिर इन्द्रिय सुखको थिर मान लेता है (समय नरय सपत्तु) इसलिये उसका आत्मा मिथ्यात्वके कारण नरक गतिको पालेता है ॥ २९ ॥

(पत्त विक्त पर्जय गलिय) जब आत्मा पात्र प्रकाशमान अपने स्वभावमें होजाता है तब सर्व सांसारिक पर्यायें गल जाती हैं (सल्य सक विलयतु) तब सर्व शल्य व सर्व शंकाएँ विला जाती हैं (पत्तह दत्त सुभाव मुनि) इसतरह पात्रदानका स्वभाव मनन करो (समय सिद्धि संपत्त) इसी स्वभावके मननसे आत्मा सिद्धिको पालेता है, सिद्ध होजाता है।

भावार्थ—यहां पात्रदानका बहुत गम्भीर निश्चय प्रधान कथन मनन योग्य किया गया है। व्यवहारमें

स्वरूप समझें, निश्चयनयसे तथा व्यवहारनयसे जीवादि तत्वोंको जानें, अरहन्त सिद्ध परमेष्ठीकी सच्ची भक्ति करे, अपने आत्माके शुद्ध स्वभावका वारवार मनन करें, जिससे सम्यग्दर्शनका लाभ होजावे, आत्माके आनन्दका स्वाद आजावे, विषयवासनाके मलीन सुखसे श्रद्धा हट जावे, साम्यभावकी शक्ति प्रगट होजावे, जीवन सुखमई वीते और मोक्षमार्ग अपने हाथमें आजावे। व्यवहारमें गृहस्थोंको पात्रदान करते हुए भी इस निश्चय पात्रदानको अवश्य नित्यप्रति करना चाहिये, स्वात्मानुभवका अभ्यास करना चाहिये, यही मुक्तिका उपाय है।

---

(११) चेतक हियरा गाथा-१८९ से १९३ तक।

ॐ वंकारं उवन पउ, सुइ नन्द अनन्दं।
विन्यान विंद रस रमन है, जिन जिनय जिनंदं॥
जिन जिनियो कम्म अनन्त हैं, जिन रमन सनदे।
जिन चेयन नन्द सनद, कमल जिन सहज सनंदे॥ १॥
सो न्यानी तू चाहिले, हो चेतक हियरा।
विन्यान विंद रस रमन पिय, जिन वेदक हियरा॥
षट् रमन कमल रस रमन हो, हे चेतक हियरा।
तं अभिय रमन विष गलन, सुयं जिन वेदक हियरा॥
भय षिपनक भव्व सु उत्त है, हो चेतक हियरा।
लषिमेव रमन परमत्थ, जिनय जिन वेदक हियरा॥
वैदिप्ति हिया रस रमन पउ, हो चेतक हियरा।
सित समय सिद्धि संपत्तु, ममल रस वेदक हियरा॥ २॥ (आचरी)

उत्पन्न कमल जिन उत्त है, उव उवन स उत्ते ।
परिनाम अनन्तानन्त सुइ, षिपक स उत्ते ॥
तं कमल कुन्द जिन उत्त है, जिन जिनय जिनंदं ।
तं विंद रमन विन्यान चरन, सोइ सहज जिनंदं ॥ ३ ॥ सो न्यानी० ॥
विन्यान न्यान रस रमन जिन, सो परम सनंदे ।
तं विंद रमन विन्यान गमन, सुइ सहज सविंदे ॥
सुइ अर्क सुअर्क सु अर्क पउ, सुइ लषिय सलष्ये ।
सर्वार्थ सिद्ध सुइ समय मउ, सुइ परम परिष्ये ॥ ४ ॥ सो न्यानी० ॥
सो अर्थति अथ समर्थ पउ, समर्थ सु भवने ।
सम समय समतु जिन, जिनय जिन ज्ञान सवने ॥
सह्यार अर्थ जिन अर्थ सुइ, अवयास अनन्ते ।
तं नन्तानन्त जिनतु, अलष जिन जिनय जिनुत्ते ॥ ५ ॥ सो न्यानी० ॥
अन्मोय अर्थ सोइ ममल पउ, सोइ रमन संजोए ।
तं षिपिओ नन्तानन्त, जिनय जिन ज्ञान अम्मोए ॥
सुइ रमन सुयं सुइ रमन पउ, सोइ सहज सनन्दे ।
तं विंद कमल रस रमन परम जिन परम सवंदे ॥ ६ ॥ सो न्यानी० ॥
कमल सभाव जिनुत्त सुइ, जिन जिनय स उत्ते ।
सुइ नन्तानन्त जिनुत्तु कलिंकमल पयत्ते ॥

जिन उत्त स उत्तु सु समय मउ सइ परिनै उत्ते ।
सुइ सहिय नन्तानन्त विसेष परम जिन पर्मपयत्ते ॥ ७ ॥ सो न्यानी० ॥
सुइ समय सहाव जिनुत्त, जिन सहयार जिनुत्ते ।
अव या सह नन्तानन्त है, तं कमल पयत्ते ॥
अन्मोय अर्थ सुइ अर्क, जिन सुइ कमल सनंदे ।
तं षिपियो नन्तानन्त पयंउ, जिन परम जिनन्दे ॥ ८ ॥ सो न्यानी० ॥
सुइ षिपक भाव सुइ उत्त जिन, सुइ जिनय जिनन्दे ।
तं मुक्ति रमन सिधि राध, परम जिन परम सनंदे ॥
तं तरन विमान सहाव मउ, सम समय सनन्दे ।
सित समय सिद्धि संपत्तु, जिनय जिन सहज जिनन्दे ॥ ९ ॥ सो न्यानी० ॥

अन्वय सहित अर्थ—(ॐ वंकार उवन पउ सुइ नद आनंद) ॐ पद्का प्रकाश होरहा है। यह पद आनन्दमें मगनता देनेवाला है (विन्यान विंद रस रमन है) ॐ की सहायतासे आत्मज्ञानके रसमें जो रमण कर रहा है (जिन जिनय जिनद) वह जिन है, जीतनेवाला है, जिनेन्द्र है (जिन जिनियो अनन्त कम्म है) जिन्होंने अनन्त कर्मोंको जीत लिया है (जिन रमन सनंदे) व जो वीतराग जिन स्वभावमें आनन्द सहित रमन कर रहे हैं (जिन चेयन नद सनन्द कमल जिन सहज अनन्दे) वे ही जिन चिदानन्द हैं, आनन्दमय प्रफुल्लित कमलके समान अपने सहज स्वभावमें आनन्द ले रहे हैं ॥ १ ॥

(सो न्यानी तू चाह के हो चेतक हियरा) हे ज्ञानी ! उसे ही तू प्रेमपात्र वना। तू तो अनुभव करनेवाला है (विन्यान विंद रस रमन पिय जिन वेदक हियरा) आत्मज्ञानके रसमें रमन करके कर्मोंका क्षय कर जिन होजाता। हे अनुभव करनेवाले जीव! (षट् रमन कमल रस रमन हो, हे चेतक हियरा) छः अक्षरी मंत्र "ॐ ह्राँ ह्रीं ह्रूँ ह्रौं ह्रः" सहित कमलके रसमें तू रमन कर। हे अनुभव करनेवाले जीव ! अर्थात् हृदयमें छः पत्तोंका कमल वनाकर उन पत्तोंपर यह मंत्र लिखकर उस मंत्रके द्वारा आत्मीक रसका स्वाद ले (तं अमिय रमन वि: गलन सुय जिन

वेदक हियरा) उस आत्मानन्दरूपी अमृतके स्वादमें रमन करनेसे विषयोंके स्वादका विष दूर होजाता है और यह आत्मा स्वयं जिन होकर ज्ञान चेतनाका अनुभवी होजाता है (भय पिपनक भव्व स उत्त है, हो चेतक हियरा) वही भव्य कहा जाता है जिसके संसारका भय क्षय होजाता है। हे चेतनेवाले समझ! (लषि मेय रमन परमत्थ जिनय जिन वेदक हियरा) अनुभव करने योग्य आनन्दरूपी मदिरामें रमन करनेसे निश्चयसे कर्मोंका जीतनेवाला जिन आत्मज्ञानी होजाता है (वैदिप्ति हियरा रस रमन पउ हो चेतक हयरा) अपने हृदयमें जो आत्मज्ञानकी दीप्ति प्रगट होती है उसके स्वादमें रमनेवाला हो। हे अनुभव करनेवाले जीव ! (मित समय सिद्धि सपत्त ममल रम वेदक हियरा) जब आत्मानुभव पूर्णताको सिद्ध कर लेता है तब यह आत्मा सिद्धिको या मुक्तिको प्राप्त कर लेता है। उस स्थितिमें यह शुद्ध आत्मीक रसका अनुभव करता रहता है ॥ २ ॥

(उत्पन्न कमल जिन उत्त है उव उवन स उत्ते) जैसा जिनेन्द्रने कहा है वैसा आत्मा कमलके समान जब विकसित हो जाता है तब उसे उदय रूप कहते हैं। अर्थात् ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयसे केवलज्ञानका उदय होजाता है तब इसे प्रकाशमान परमात्मा सूर्य कहते है (परिनाम अनन्तानन्त सुइ सुइ पिाक स उत्ते) उस ही केवली भगवानको अनन्तानन्त गुणमें परिणमनेवाला कहते हैं। अर्थात् उनके अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य व अनन्तसुख प्रकाशित होजाते हैं तथा वे ही क्षपक या क्षपणक या क्षायिक नौ भावधारी कहलाते हैं। (तं कमल कुंद जिन उत्त है, जिन जिनय जिनदं) उन्हीको कुंदके समान श्वेत शुक्ल लेश्याधारी व कमलके समान प्रफुल्लित जिन, जितेन्द्रिय व जिनेन्द्र कहते हैं। (तं विंद रमन वि यान चरन सोइ सहज जिनद) वे ही परमात्मा अपने ज्ञानमें रमण करते हैं या अपने ज्ञानमें आचरण करते है। वे ही सहज स्वभावमें शोभायमान जिनेन्द्र हैं ॥ ३ ॥

(विन्यान न्यान रस रमन जिन सो परम सनदे) वे शुद्धज्ञानके रसमें रमण करते हैं। वे ही जिन परमानन्दमई है। (त विंद रमन वि‍यान गमन सुइ सहज स विंदे) वे ही ज्ञानमें रमण करते हैं, उनको सर्वज्ञान प्राप्त है, वे स्वभावहीसे स्वानुभव रूप हैं। (सुइ अर्क सु अर्क सु अर्क पउ सुइ लषिय सलष्ये) वे ही सूर्यके समान परम तेजस्वी परमात्मा ज्ञानमई सूर्य है जिसने सर्व ही जाननेयोग्यको जान लिया है (सर्वार्थसिद्ध सुइ समय मउ सुइ परम परिष्ये) उन केवली भगवानने सर्व प्रयोजन सिद्ध करलिया है अर्थात् आत्माको शुद्ध करलिया है। वे ही आत्मामई है। वे ही उत्तम प्रकारसे घातीय कर्मोंको क्षय करनेवाले हैं ॥ ४ ॥

(सो अर्थति अर्थ समर्थ पउ समर्थ सु भवने) वेही सर्वही पदार्थोंके निश्चय करनेमें समर्थ पद्के धारी अनन्त सामर्थ्य या वीर्यमें परिणमन करनेवाले हैं। (सम समय समतु जिन त्रिनय जिन न्यान सवने) वे ही परम शान्त सम-भावधारी आत्मा, सर्व प्रकारसे जीतनेयोग्य अज्ञान अंधकारको जीतनेवाले केवलज्ञानरूपी सवन अर्थात् चन्द्रमा हैं। भावार्थ—यहां श्रीजिनेन्द्र भगवानको तेजस्वी ज्ञान प्रकाशके होनेके कारण सूर्यकी उपमा तथा परमशांति स्वयं रखनेके कारण व दूसरोंको शान्ति देनेके कारण चन्द्रमाकी उपमा दी है। (सहयार अर्थ जिन अर्थ सुइ अवयास अनन्ते) जितने पदार्थ हैं उनकी अपेक्षासे श्री जिनेन्द्र सर्व पदार्थोंको जानते हैं परन्तु उनमें अनन्त आकाशके समान ऐसे अनन्त पदार्थसमूहरूप लोगोंके जाननेकी शक्ति है (तं नतानन्त जिन तु अलष जिन जिनय जितुत्ते) उन भगवान परमात्माने अनन्तानन्त कर्मोंकी प्रकृतियोंको जीत लिया है। वे इन्द्रियोंके द्वारा जानने योग्य नहीं हैं इससे अलक्ष्य हैं। वे ही जिनेन्द्र हैं ऐसा जिन भगवानने कहा है ॥५॥

(अन्मोय अर्थ सोइ ममल पउ सोइ रमन सजोए) वे ही आनन्दमई आत्म पदार्थ हैं वे ही शुद्ध पद्में विराजित हैं। उनहीको आत्म—रमणका लाभ हुआ है (त षिपिओ नन्तानन्त जिनय जिन न्यान अन्मोए) उन जिनेन्द्र भगवानने अपने आत्मज्ञानके आनन्दके प्रतापसे अनन्तानन्त कर्मोंको क्षय कर डाला है। जब आत्मा आत्मानन्दमें मगन होता है तब ही कर्मोंकी निर्जरा होती है (सुइ रमन सुय सुइ रमन पउ सोइ सहज सनन्दे) वे ही स्वयं आपमें रमण कररहे हैं। वे ही स्वयं रमणीक पदवीमें है। वे ही सहजानन्दके भोक्ता हैं (त विंद कमलरस रमन परम जिन परम सवदे) वे ही स्वात्मानुभवरूपी कमलके रसमें मगन है। वे ही उत्कृष्ट जिन हैं। वे ही उत्कृष्ट चन्द्रमा हैं ॥ ६ ॥

(कमल सुभाव भिनुक्त सुइ जिन जिनय स उत्ते) कमलके समान विकसित स्वभावके धारी जिन भगवान स्वयं कर्मोंको जीतनेवाले हैं, ऐसा जिनेन्द्रोंने कहा है (सुइ नन्तानन्त जिनुत्तु कलि कमल पयचे) वे ही जिनेन्द्र स्वयं अनन्तानन्त विभावोंको जीतनेवाले हैं, जीतकर आत्मारूप विकसित कमलकी कलिकामें अपने उप-योगको स्थापित कर रहे हैं (जिन उत्त स उत्त सु समय मउ सइ परिनै उत्ते) जैसा जिनेन्द्रोंने कहा है उसी प्रमाण वे स्वसमयमई है। अर्थात् स्वस्वरूपमें तन्मय है। अपनेमें स्वयं परिणमन कर रहे हैं। ऐसे ही कहे गये हैं (सुर साहिय नन्तानत विसेष परम भिन पर्म पयत्ते) उन्होंने अनन्तानन्त ज्ञानरूप विशेष गुणको सिद्ध कर लिया है। वे परम जिन हैं। वे ही परम पद्में विराजित हैं ॥ ७ ॥

ममलपाहुड
॥ ८३ ॥

(सुइ समय सहाव भिनुक्त जिन सहयार जिनुत्ते) वे ही आत्मीक स्वभावमें हैं। जैसा जिनेन्द्रने कहा है वे ही जिन हैं। वे ही भव्यजीवोंको सहकारी हैं ऐसा जिनेन्द्रने कहा है (अव या सह नन्तानन्त है तं कमल पयत्ते) उनमें अनन्तानन्त पदार्थोंके जाननेकी शक्ति है, इससे वे अनन्त आकाशके समान हैं तथा वे ही विकसित निजात्मारूपी कमलके पदमें शोभायमान हैं (अन्मोय अर्थ सुइ भर्क जिन सुइ कमल सनदे) वे ही आनन्दमय पदार्थ हैं। वे ही सूर्य हैं। वे ही जिन हैं। वे ही आनन्दमय आत्मा विकसित कमलके समान हैं (तं पिपियो नतानंत पयडि जिन परम जिनंदे) उन्होंने अनन्तानन्त कर्मकी प्रकृतियोंको क्षय कर डाला है। वे ही वीर परम जिनेन्द्र हैं ॥ ८ ॥

(सुइ पिपक भाव सुइ उत्त जिन सुइ जिनय जिनन्दे) उन्हींको क्षायिक भावधारी कहते हैं। वे ही जिन कहे गये हैं। वे ही जितेन्द्रिय जिनेन्द्र हैं (तं मुक्ति रमन सिधि राव परम जिन परम सनन्दे) वे ही मुक्तिमें रमण करनेवाले हैं। उन्होने आत्माकी आराधनाको सिद्ध कर लिया है। वे ही उत्तम जिन व परमानन्दमई हैं (तं तरन विमान सहाव मउ सम समय सनन्दे) वे ही अर्हंत भगवान स्वयं भवसे पार होते हैं व विमानके समान दूसरोंको भी मोक्षनगरमें लेजानेवाले हैं। वे समताभावरूप आनन्दमय आत्मा है (सित समय सिद्धि सपत्तु जिनय जिन सहज जिनन्दे) वे शुक्ल लेश्याधारी आत्मा हैं जिन्होंने आत्माकी सिद्धिको पालिया है। वे ही विजयी जिन हैं, वे ही सहज स्वभावमें रहनेवाले जिनेन्द्र हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस आत्मानुभव करानेवाले व चितावनी देनेवाले भजनमें श्री तारणस्वामीने श्री अरहंत परमात्माकी बड़ी ही उत्तम निश्चय स्तुति की है। शरीर व वाहरी विभूतिके आश्रित जो स्तुति होती है वह व्यवहार स्तुति है जो आत्माके गुणोंकी अपेक्षा स्तुति है, वह निश्चय स्तुति है।

जैसा श्री समयसारमें कहा है—

तं णिच्छये ण जुज्जदि ण सरीरगुणा हि होंति केवलिणो। केवलिगुणो थुणदि जो सो तच्च केवलिं थुणदि ॥ ३४ ॥

भावार्थ—निश्चयनयसे शरीरके गुणोंके कहनेसे केवली आत्माके गुण नहीं कहे जाते हैं। जो केवली भगवानकी आत्माकी स्तुति करता है वही तत्त्व दृष्टिसे केवलीकी स्तुति करता है।

इसको भाव सहित पढ़नेसे अरहंतकी शुद्ध आत्मापर वहुत अच्छीतरह लक्ष्य चला जायगा। श्री

अरहन्त भगवान स्वात्म रमणमई निश्चयधर्मके प्रभावसे चार घातीय कर्मोंको क्षय करके अनन्त ज्ञानादि गुणोंके धारी होगए हैं। उनके ज्ञानमें यह शक्ति है कि जितने जाननेयोग्य अस्तिरूप लोकालोक हैं उनके ऐसे अनन्तानन्त लोक भी हों तौभी वे उनके ज्ञानमें झलक सक्ते हैं। इसीलिये उनको आकाशकी उपमा दी है। उनका वीर्य अनन्त है। कभी भी उनको कोई आकुलता, चिन्ता, बाधा नहीं होती है। उनका अनन्त सुख अपूर्व है जिससे वे सदा आत्मीक आनन्दका रस पान करते रहते हैं। उनके भीतर अपूर्व वीतरागता व शांति है जिससे वे सिवाय निजात्मीक स्वभावमें स्मरणके किसी पदार्थमें रमण नहीं करते हैं। वे भगवान परम तेजस्वी सूर्यके समान स्वपर प्रकाश करते हुए भी निन्दा प्रशंसासे विचलित नहीं होते हैं। उनमें परम शांति भरी है इसलिये वे चन्द्रमाके समान भक्तोंको शांतिके देनेवाले हैं। उनको स्वात्मानन्द अमृतके पानसे परम तृप्ति है। उन्होंने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यक् तप इन चार आराधनाओंको सिद्ध कर लिया है। वे सच्चे राधारमण हैं। वे ही मुक्ति रमणीके नाथ हैं। अब वे कभी संसारमें भ्रमण न करेंगे। वे ही जिनेन्द्र हैं। जिन्होंने आत्माके वैरी राग, द्वेष, मोहको भलेप्रकार जीत लिया है। भव्य जीवोंके लिये एक आदर्श है व जो भव्य जीव उनकी स्तुति पूजा भक्ति करता है, उसके भावोंकी निर्मलता स्वयं होजाती है जिससे पाप कट जाते हैं व शुभ भावोंसे महान पुण्यका बन्ध होजाता है। भगवान परम वीतराग हैं, वे न किसीपर प्रसन्न होते हैं न किसीपर अप्रसन्न होते हैं जैसा स्वयंभूस्तोत्रमें स्वामी समन्तभद्रने कहा है—

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ विवान्तवैरे। तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्न पुनातु चित्तं दुरिताजनेभ्य ॥ ५७ ॥

भावार्थ—हे भगवान्! आप वीतराग हैं। आपको न हमारी पूजासे कुछ मतलब है और न निन्दासे कोई प्रयोजन है, क्योंकि आपमें वैरभाव नहीं है तौभी आपके पवित्र गुणोंका स्मरण करनेसे हम भक्तोंका भाव पापरूपी मैलसे शुद्ध होजाता है। जो कोई अर्हंत भगवानकी आत्माको वह मानता है वह अपनी आत्माको पहचानता है। व ॐ, ह्रां, ह्रीं, आदि मंत्रोंके पदोंके सहारे जो अर्हंतके स्वरूपका ध्यान करता है वह भावोंसे उन्नति करता हुआ मुक्तिके निकट आता जाता है। इसलिये भगवान् श्री अर्हंत भगवानको विमानकी उपमा दी है अर्थात् वे साक्षात् तारणतरण हैं।

स्तुतिमें भव्यजीवोंको प्रेरणा की गई है कि तुम अपने आत्माके स्वभावमें रमण करो, आत्माका

ध्यान करो, आत्मीक आनन्द रसका पान करो, यही वह उपाय है जिससे तुम सच्चा सुख यहां पाओगे और तुम भी जिन अर्हंत परमात्मा होजाओगे। श्री अर्हंतको कमलकी उपमा इसीलिये दी है कि जबतक सूर्यका उदय नहीं होता है कमल मुद्रित रहता है, सूर्यके उदय होनेपर विकसित होजाता है, उसी तरह केवलज्ञान सूर्यके उदय न होनेसे आत्माका प्रकाश गुप्त था, आत्मा प्रफुल्लित न था, परम तन्द्रित था। जब केवलज्ञान सूर्यका प्रकाश होगया तब आत्मारूपी कमल अपने आनन्दमय सहज स्वभावमें प्रकाशित होगया। जो आत्माके आनन्दमें रमण करते हैं वे ऐसे उन्मत्त होजाते हैं जैसे कोई मदिरा पीकर उन्मत्त होजावे। साधककी भी यही दशा होती है व अर्हंत परमात्मा भी अपने स्वभावके रस-स्वादमें ऐसे उन्मत्त हैं कि किसी और वस्तुका स्वाद नहीं लेते। श्री अर्हंत भगवानमें रत्नत्रयकी एकता विद्यमान है। वे स्वस्वभावके श्रद्धावान, स्वस्वभावके ज्ञाता व स्वस्वभावके भीतर आचरण करनेवाले हैं। वे अर्हंत कभी पर समयरूप नहीं होते हैं निरन्तर स्वसमयरूप हैं। वे कार्य समयसाररूप हैं। जिनको आत्माका कल्याण करना हो उनको उचित है कि वे श्री अर्हंत भगवानके गुणोंकी निश्चय स्तुति करके अपने आत्मीक गुणोंका मनन करें।

(१२) द्यात्रपात्र फूलना गाथा-१९४ से २२० तक।

न्यानी न्यान विन्यान मुनी, न्यानी न्यान स उत्तरिना।
न्यान सहावे दरसिओ, वीरज अप्प सहाउरिना ॥ १ ॥
सूक्षम सहियो सो मुनहु, सूक्षम ममल सहाउरिना।
नंत चतुष्टे समय मऊ, सिद्ध सहाव स उत्तरिना ॥ २ ॥
पत्तह दत्त सहाउ मुनी, दान अनन्त विसेषुरिना।
पत्तजु उत्तहु जिनवरहु, पत्त जु दत्तु संजुत्तरिना ॥ ३ ॥

पत्तह दत्त विसेष मुनी, रयनं रयन सरूवरिना ।
न्यान विन्यान सु समय मउ, पत्तह दत्त जिनुत्तरिना ॥ ४ ॥
कमल सहावे पत्त जुई, सिद्ध सरूव स उत्तरिना ।
कारन कार्जह कमल रुई, दत्त सहाव स उत्तरिना ॥ ५ ॥
रमियो न्यान सहाव लई, जिनियो कम्म अनन्तरिना ।
रमने रमियो ममल पऊ, तिविह कम्म लयंतुरिना ॥ ६ ॥
लंकृत सहियो पत्त जुई, लीन सहाव सुदत्तुरिना ।
सुद्धह सुद्ध सहाव लई, मुक्ति पंथ दरसंतुरिना ॥ ७ ॥
जय विन्यान संजुत्त सुई, ममल सहाव सुदत्तुरिना ।
परिनै सहियो दत्त सुई, परमानह केवल दिष्टिरिना ॥ ८ ॥
मय मूरत पत्तजु न्यान मउ, समय सहाव सुदत्तुरिना ।
नन्तानन्त सु पातु मुनी, सहकारह नन्त सुदत्तुरिना ॥ ९ ॥
नाना प्रकार न्यान सहियो, पत्तु जिनेन्द्रह उत्तरिना ।
दत्त सहाव विन्यान मउ, अवयासह नन्ता नंतुरिना ॥ १० ॥
दत्तह पत्त विसेष मुनी, अन्मोयह संजुत्त उत्तरिना ।
न्यान विन्यानह पर्म पऊ, सिद्धह भक्ति सुभावुरिना ॥ ११ ॥
अनमोयह नन्त विसेस मुनी, पत्त दत्त सम भावुरिना ।
दिस्टि दिस्ट अन्मोय मऊ, नन्दानन्द संजुत्तरिना ॥ १२ ॥

सयनासन सम भाव सम्रु, सहजानन्द संजुत्तुरिना ।
न्यान विन्यान अन्मोय मऊ, ममल सुदर्सन] दिस्टिरिना ॥ १३ ॥
आहार न्यान सो ममल पऊ, सहकारह संजुत्तुरिना ।
विंजन विन्यानह सहियो, दुद्धर धरिउ सहाउरिना ॥ १४ ॥
ह्रिदै दरसिउ ममल पऊ, ममल न्यान सहकारुरिना ।
पत्तह दत्त विसेष मुनी, न्यानी न्यान अन्मोयरिना ॥ १५ ॥
सिद्ध सरूवे पत्त मुनी, न्यान सहावे दत्तुरिना ।
सिद्ध सरूवे सिद्ध पऊ, न्यान सरूवे मुक्तिरिना ॥ १६ ॥
अन्मोयह स सहाव मुनी, सिद्धह मुक्ति सहावुरिना ।
कमलह कमल सहाव लई, अर्थति अर्थ संजुत्तुरिना ॥ १७ ॥
पंच न्यान परमेस्टि मऊ, न्यान अन्मोय विसेषुरिना ।
न्यान न्यान सुबुद्धि पऊ, ममल न्यान परमसुरिना ॥ १८ ॥
चष्यह मिलियो दिष्टि मऊ, अचष्यह न्यान सुउत्तरिना ।
अवहि मिलियो गुपित रुई, ममल न्यान सहकारुरिना ॥ १९ ॥
पत्तह दत्त विसेप मुनी, लषन रुव संजुत्तुरिना ।
पत्त जु उत्तह जिनवरह, दत्त जु दान संजुत्तुरिना ॥ २० ॥
पत्तह दत्तु विसेषि यऊ, वित्त सरनि संसारुरिना ।
जनरंजन राग जु वित्त मऊ, कलरंजन दिष्टि गलंतुरिना ॥ २१ ॥

मन रंजन गारव विक्त रुई, दर्सन मोहंध विमुक्तु रिना ।
न्यान आवरन न पेषि पऊ, दर्सन अमल सहावुरिना ॥ २२ ॥
कल लंकृत कम्म जु स्वै गलिऊ, गलिय सरनि संसाररिना ।
कुन्यान दिस्टि मै स्वै गलियं, तिविह कम्म विलयंतु रिना ॥ २३ ॥
न्यानी न्यान सहाव मुनी, न्यान विन्यान संजुत्तरिना ।
ममल न्यान अन्मोद लई, सरूवे मुक्ति स उत्तरिना ॥ २४ ॥
न्यान दान विन्यान मऊ, परम न्यान संजुत्तु रिना ।
आहार न्यान आहार मऊ, ममल भाव संतु सिरिना ॥ २५ ॥
भेषज दान जुजिन कहियो, वाधा रहित संजुत्तुरिना ।
अभयदान तं जिन भनियो, भय विनास तं भव्वुरिना ॥ २६ ॥
दानु चउ विहि उत्तियऊ, ममल भाव जिन दिट्ठुरिना ।
पत्तह दत्त सु ममल मुनी, ममल न्यान सिव संतुरिना ॥ २७ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(न्यानी न्यान वियान मुनी) जो ज्ञानी हैं वे भेदविज्ञानके धारी आत्माको आत्मा परको पर जाननेवाले तथा आत्माका अनुभव करनेवाले मुनि होते हैं (न्यानी न्यान म उत्तरिना) ऐसे ज्ञानीमें जो आत्मज्ञान होता है उसकी कोई उपमा नहीं होसकती है। वही अनुपम आत्मानुभवरूप ज्ञान है (न्यान सहावे दरसिओ) उस ही आत्मानुभवसे ज्ञान स्वभावधारी आत्माका दर्शन होता है (वीरज अप्प सहाउरिना) आत्माके स्वभावमें जो वीर्य है उसके समान किसी पुद्गलादिमें बल नहीं होता है ॥ १ ॥

(सूक्षम सहियो सो मुनहु) वह आत्मा सूक्ष्म स्वभावधारी है, इन्द्रियोंके व मनके अगोचर है, केवल आत्मा हीके द्वारा अपना सूक्ष्मभाव अनुभवमें आसक्ता है। ऐसे आत्माका मनन करो (सूक्षम ममल महाउरिना) आत्माका जैसा सूक्ष्म व शुद्ध स्वभाव है वैसा और किसीका नहीं है (नन्त चतुष्टे समय मऊ) वही अनन्त-

ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, चार–चतुष्टय स्वरूप आत्मीक भाव स्वरूप है (सिद्ध सहाव सउ चरिना)वही सिद्ध स्वभाव धारी है, उसके समान और किसी द्रव्यका स्वभाव नही है ॥ २ ॥

(पत्तइ दत्त सहाउ मुनी) वे ही मुनि पात्र व दाता दोनों स्वभावके धारी है। वे ही दातार है–अपने ज्ञान स्वभावका लाभ आपको ही देते हैं। वे ही पात्र हैं जो स्वात्म लाभको आपसे ही पाते हैं (दान अनन्त विन्दुरिना) आत्मा दातार, आत्मा पात्रको अनन्त दान किया करता है। अनन्तकाल तक आत्मीक रसका दान देना रहता है। इस दानके समान और कोई दान नही होसक्ता है (पत्तजु उत्तहु जिनवरु हु) श्री जिनेन्द्रने जो पात्र बताया है वह उत्तम पात्र यह ज्ञानी आत्मा है (पत्त जु दत्त समुत्त रेना) वही पात्र है, वही दातार है। ऐसा संयोग और कहीं नही है जो आप ही दाता हो व आप ही पात्र हो ॥ ३ ॥

(पत्तइ दत्त विसेष मुनी) यह विशेष आत्मध्यानी मुनि पात्र भी है, दातार भी है (रयन त्रयन सरूवरिना) यह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रमई रत्नत्रय स्वभावमें रत हैं। इनके ऐसा स्वरूप और नही है (न्यान विन्यान सु समय मउ) वे ही ज्ञान स्वरूप हैं, भेदविज्ञान स्वरूप हैं, वे ही स्वसमय रूप हैं। आप अपने आत्मीक स्वभावमें तल्लीन हैं (पत्त दत्त जिनुचरिना) विषय कषायको जीतनेवाले जिनके समान न कोई पात्र है न कोई दातार है ॥ ४ ॥

(कमल सहावे पत्त जुई) जो पात्र मुनि हैं वे कमलके समान प्रफुल्लित अपने स्वभावमें लीन हैं (सिद्ध सरूव स उत्त रेना) वही सिद्ध भगवानके समान स्वरूप है जिसके समान और कोई रूप नहीं है (कारन कार्ज कमल रई) अपने आत्मारूपी कमलमें रुचि या प्रीति वही कारण है, वही कार्य है। आत्मरुचिसे ही प्रतीति गाढ होती जाती है। चतुर्थ गुणस्थानमें जो आत्मरुचि रूप सम्यग्दर्शन है वही बढते बढते श्रुतकेवली मुनिके अवगाढ सम्यक्त होजाता है। आत्मरुचि ही दातार है, आत्मरुचि ही पात्र है। आपसे आपको मनन करनेसे आत्माका स्वभाव पुष्ट होता जाता है (दत्त सहाव स उत्तरिना) आत्माकी गाढ रुचिके समान कोई दातार नही है। सम्यग्दर्शन ही आत्माको आत्मानन्द प्रदान करता है। आत्माको पुष्ट करते करते उसको सिद्ध बना देता है ॥ ५ ॥

(रमियो न्यान सहाव रई) जो ज्ञानी ज्ञान स्वभावको ध्यानमें लेकर उसीमें रमण करते हैं (जिनियो कम्म अनन्तुरिना) वे ही अनन्त कर्मोंको जीत लेते हैं, उनके समान और विजयी वीर कौन होसक्ता है (मने

रमियो ममल पऊ) वे ज्ञानी रमणीक शुद्ध आत्मीक पदमें रमण करते हैं (तिविह कम्म लयतुरिना) जिससे तीनों प्रकारके कर्म नाश होजाते हैं-रागद्वेषादि भावकर्म, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, व शरीरादि नोकर्म, तीनों ही कर्मोंके कारण कर्मोंकी निर्जरा होती जाती है ॥ ६ ॥

(संकृत सहियो पत्त जुई) जो मुनि पात्र हैं वे अपने स्वभावमें शोभायमान है (लीन सहाव सुदत्तुरिना) वे जब स्वभावमें लीन होते हैं तब जो दान अपने आत्माको देते हैं जो ज्ञानानन्द प्रदान करते हैं उसके समान न कोई दान है न उसके समान कोई दातार है (सुद्धह सुद्ध सहाव ल्ई) शुद्ध भावसे शुद्ध भाव बढता जाता है अर्थात् जितना जितना शुद्ध आत्मध्यान किया जाता है उतना २ शुद्ध भाव अधिक होता जाता है, यही शुद्ध भावका दान है। (मुक्तिपथ दरसतुरिना) इस स्वात्मानुभवमें जहां आप ही दातार होकर आप ही अपने पात्रको ज्ञानानन्द व शुद्ध भावका दान होता है मुक्तिका मार्ग झलक रहा है ऐसा आदर्श मोक्षमार्ग दूसरा कोई और नहीं होसक्ता है ॥ ७ ॥

(जय विन्याय सजुत्त सुई) वे ही ज्ञानी भेदविज्ञान सहित हैं, उनकी जय होरही है (ममल सहाव सुदत्तुरिना) वे ही निर्मल स्वभावके धारी हैं, उनके समान और कोई उत्तम दाता नहीं है (परिनै सहियो दत्त सुई) वे अपने स्वभावमें स्वरूपमें परिणमन करके आप ही अपनेको आत्मीक रसका दान करते है (परमानह केवल दिष्टिरिना) उनकी शुद्ध आत्मदृष्टि स्वाधीन है, उसीमें प्रमाणमयी सम्यग्ज्ञान है। जैसे केवलज्ञान स्वाधीन है वैसे स्वात्म मननरूप ज्ञान स्वाधीन है। इस समान कोई और प्रमाण नहीं है ॥ ८ ॥

(मय मूरत पत्तजु न्यान मऊ) वे ज्ञानी पात्र मानो ज्ञानमई मूर्ति ही हैं वे सर्वांग आत्मरसमें लीन है उनके भीतर ज्ञानचेतना विराज रही है, वे ज्ञानका ही स्वाद लेरहे हैं (समय सहाव सुदत्तुरिना) वे ही आत्माके स्वभावमें रत हैं। आप ही अपनेको स्वात्मानन्द रस देरहे हैं। उनके समान कोई उत्तम दातार नहीं है (नंतानत सु पाहु मुनी) वे मुनिराज अनन्तानन्त गुणोंके पात्र हैं। उनकी आत्मामें अनन्त वीर्यादि गुण शोभायमान हैं (सहकारह नंत सुदत्तुरिना) वे ही उत्तम दातार हैं जो अनन्त शक्तिका प्रकाश आपको अपनेसे देते हैं। उनके समान कोई दातार नहीं है ॥ ९ ॥

(नानाप्रकार न्यान सहियो पत्तु जिनेन्द्रह उत्तरिना) नानाप्रकार ज्ञेयोंको जाननेके कारण नानाप्रकार ज्ञानके धारी श्री जिनेन्द्र भगवानके समान और कोई उत्तम पात्र नहीं है (दत्त सहाव विन्यान मउ) जो आपसे

आपको ज्ञान स्वभावका दान करते हैं इससे दातार भी हैं (अवयासह नंत्रा नंतुरिना) उस ज्ञानमें आकाशके समान अनन्तानन्त ज्ञानशक्ति विद्यमान है, उस केवलज्ञानके समान और कोई ज्ञान नहीं है ॥ १० ॥

(दत्तइ पत्त विशेष मुनी) वे विशेष आत्मध्यानी मुनि दातार भी हैं, पात्र भी हैं (अ मोयह मजुत उत्तगिना) वे जिस आनन्दको भोगते हैं उस आत्मानन्दके समान और कोई आनन्द नहीं है (न्यान विन्यानह धर्म पऊ) वे स्वात्मानुभवरूप परम पदमें तिष्टते हैं (सिद्धह भत्ति सुभावुरिना) मुक्ति स्वभावकी सिद्धिका इससे बढ़कर दूसरा उपाय नहीं है ॥ ११ ॥

(अन्मोयह नंत विशेष मुनी) यह विशेष आत्मध्यानी मुनि अनन्त आत्मीक आनंदमें मग्न है (पत्त दत्त सम भावुरिना) वे ही पात्र हैं, वे ही दातार हैं। अपनेसे अपनेको जिस समताभावको प्रदान करते हैं उसके समान समभाव और नहीं है (दिस्ट दिस्ट अन्मोय मऊ) उन्होंने आनन्दमई आत्मदर्शनको देखा है या अनुभव किया है (नंदानंद मंजुत्तरिना) वे जिस आनन्दमें मग्न हो रहे हैं ऐसा आत्मानन्दमें मग्न महात्मा और कोई नहीं है ॥ १२ ॥

(सयनासन समभाव समु) उनके शयनका व बैठनेका स्थान एक समभाव है, जिसके समान कोई और शयनाशन हो नहीं सक्ता है (सहजानंद मंजुत्तुरिना) वे सहजानन्दमें मग्न हैं, उनके समान कोई सहजानन्दी संत नहीं है (न्यान विन्यान अन्मोय मऊ) वे आनन्दमय स्वानुभव मई स्वसंवेदन ज्ञान स्वरूप हैं (ममल सुदर्शन दिस्टिरिना) शुद्ध सम्यग्दर्शन जैसा उनके भीतर शोभायमान है वैसा और कहीं नहीं है। वास्तवमें जहां शुद्धात्मानुभव है वहां ही वास्तवमें निश्चय शुद्ध सम्यग्दर्शन है ॥ १३ ॥

(आहार न्यान सो ममल पऊ) वे निर्मल पदमें रहकर आत्मज्ञानका ही आहार करते रहते हैं। वे आत्मीक रसमें तृप्त रहते हैं (सहकारह संजुत्तु रिना) जिस तरह वे आत्मानुभव करके आत्मरसको वेदते हैं ऐसा आत्मवेदी दूसरा नहीं है (विंजन विन्यानह महियो) वे प्रगट आत्माके भी विज्ञानको रखनेवाले हैं (दुद्धर धरिउ महाउरिना) जिस आत्माके स्वभावका ग्रहण या अनुभव अति कठिन है उस दुर्द्धर स्वभावको ग्रहण करनेवाला या अनुभव करनेवाला उनके समान दूसरा नहीं है ॥ १४ ॥

(हिदे दरसिउ ममल पऊ) उन्होंने अपने हृदयमें या अपने भीतर निर्मल आत्मीक पदका दर्शन किया है (ममल न्यान सहकारुरिना) जो शुद्ध ज्ञान उनके भीतर झलक रहा है उसके समान और कोई कारण

मोक्षका नहीं होसका है (पत्तः दत्त विमेष मुनी) वे ही विशेष मुनि पात्र भी हैं, दातार भी हैं (न्यानी न्यान अ.मोयरिना) वे ज्ञानी हैं, ज्ञानके आनन्दको लेनेवाले हैं ॥ १५ ॥

(सिद्ध सरूवे पत्त मुनी) उन मुनियोंने सिद्ध स्वरूपको अपने अनुभवमें पा लिया है इसलिये वे पात्र हैं (न्यान सहावे दत्तरिना) ज्ञान स्वभावी आत्मामें ही स्वानुभवका दान किया है। उसके समान कोई दाता नहीं है (सिद्ध सरूवे सिद्ध पऊ) सिद्ध स्वरूपमें रमण करनेसे सिद्ध पदका लाभ होता है (न्यान सरूवे मुक्तिरिना) ज्ञान स्वरूपी आत्मा ही मुक्ति स्वरूप है, इसके सिवाय और कोई मुक्ति नहीं है ॥ १६ ॥

(अन्मोयह स सहाव मुनी) वे मुनिराज आनन्दमय अपने स्वभावमें मग्न हैं (सिद्धः मुक्ति सहावुरिना) मुक्तिके सिद्ध करनेका और कोई आत्म-स्वभाव नहीं होसक्ता है अर्थात् स्वात्मानन्दका जहां लाभ है वहीं मुक्तिका उपाय है (कमलह कमल सहाव लई) उनकी कमल समान आत्माने कमल समान प्रफुल्लित आत्मीक स्वभावको ग्रहण कर लिया है। (अर्थति अर्थ सजुत्तुरिना) उन्होंने सर्व पदार्थोंमें उत्तम आत्म पदार्थको पालिया है जिसके समान कोई और पदार्थ नहीं है ॥ १७ ॥

(पच न्यान परमेश्टि मऊ) श्री अरहन्त परमेष्ठीमें पांचों ही ज्ञान हैं अर्थात् मुख्यतासे केवलज्ञान है उसीमें चार ज्ञानका विषय भी गर्भित है (न्यान अन्मोय विसेवुरिना) उस केवलज्ञानमें आनन्द अनुभवके समान और कोई आनन्द नहीं है (न्यान न्यान सुवृद्धि पऊ) ज्ञानहीके द्वारा ज्ञानकी वृद्धि होती हुई सर्वोत्कृष्ट केवलज्ञानका पद प्रगट होता है (ममल न्यान परमसुरिना) वही शुद्ध ज्ञान है, वही परमार्थ या निश्चय असल ज्ञान है। उसके समान कोई और ज्ञान नहीं है ॥ १८ ॥

(चष्यह मिलियो दिष्टि मऊ) उनका चक्षुदर्शन आत्मदर्शनमें मिल गया है अर्थात् जो चक्षुसे नहीं देखते हैं अर्द्धोन्मीलित ध्यानमई नेत्र हैं उनके इंद्रियोंके द्वारा व मनके द्वारा दर्शनोपयोग व ज्ञानोपयोग काम नहीं करते हैं, वे अतीन्द्रिय केवलदर्शन व केवलज्ञानके धारी हैं (अचष्यह न्यान सु उत्तरिना) जिनका ज्ञान इंद्रिय रहित अतीन्द्रिय है, जिस ज्ञानके समान कोई ज्ञान नहीं है (अवहि मिलियो गुपित लई) तथा अवधिदर्शन व अवधिज्ञान गुप्त रुचिमें मिल गया है अर्थात् जो केवलदर्शन व केवलज्ञान छद्मस्थ अवस्थामें गुप्त थे अप्रगट थे जब वे प्रगट होगए तब उनहीमें अवधिदर्शन व ज्ञानका विषय गर्भित है (ममल न्यान सहकारुरिना) जो शुद्ध केवलज्ञान उनमें प्रगट है उसके समान कोई ज्ञान नहीं है ॥ १९ ॥

(पत्तइ दत्त विसेष मुनी) वह विशेष आत्मध्यानी मुनि पात्र भी है व दातार भी है (पात्र दात सहकार मगुत्तु गिना) जो पात्रका लक्षण व स्वभाव है वही दातारका लक्षण व स्वभाव है। दोनोंका एकीभावमें संयोग है। ऐसा स्वभाव कहीं और नहीं है (पत्त जु उत्तः निरगार) उत्तमोत्तम पात्र श्री तीर्थंकर जिनेन्द्र कहे गए हैं (दत्त जु दान मगुत्तु गिना) वेही दातार हैं, वेही दान हैं, अर्थात् वे अरहन्त भगवान अपनेही आपको ज्ञानानन्दका दान करते रहते हैं। जैसे दातार पात्र व दानका संयोग यहां है वैसा और जगह नहीं है ॥ २० ॥

(पत्तइ दत्त विसेषयऊ) पात्र और दातार दोनो ही यहां विशेष हैं (जिन गति मगाम गिना) जिनमें प्रगटपने संसारके भ्रमणका भाव अब बाकी नहीं रहा है। उनमें कोई ऐसी गति व आयुका बन्ध नहीं है जिससे वे फिर किसी जन्मको धारण करेंगे (रा रयन गाम जु जिन मन रुजान दिष्टि मगुत्तु गिना) उनके जनोंको रंजायमान करनेवाला प्रगट राग भाव शरीरमें रागवर्द्धक इष्टि सब गल गई है अर्थात वे वीतराग हैं व क्षायिक सम्यग्दृष्टी हैं। उनके समान दूसरा कोई अग्रन्थ नहीं है ॥ २१ ॥

(मनरंजन गारव विक्कई) दानको गर्जा रमानेवाले घमण्डको प्रगट रुचि (दर्शनमोह विमुक गिना) तथा दर्शन मोह कर्म जो मिथ्या रुचि पैदा करके अन्धा कर देता है उनसे वे मुक्त हैं। न उनमें कोई प्रकारका अहंकार है, न मिथ्यात्वभाव है। वे मद रहित क्षायिक सम्यग्दृष्टी अपूर्व हैं, उनसा कोई नहीं है (ज्ञान आवरन न पेषि पऊ) ज्ञानावरण कर्म क्षय होगया है इसलिये अब वह उनकी ओर नहीं देखता है। उनका ज्ञान फिर कभी आवरणको नहीं पाता है (दर्शन अवगाह मगुत्तु गिना) जैसा शुद्ध परमावगाढ सम्यग्दर्शन प्रभुमें है वैसा स्वभाव कहीं दूसरेमें नहीं पाया जाता है ॥ २२ ॥

(कम्मउत्पन्न कम्म जु ष्वै गलिय) उनके पुनः शरीरको प्राप्त करानेवाला कर्म स्वयं गल गया है (गलिय गति ममाक गिना) तथा संसार भ्रमणका मार्ग भी क्षय होगया है, अब भ्रमण न करेंगे। ऐसा महापुरुष दूसरा अल्पज्ञानी नहीं है (कुज्ञान इष्टिगय ष्वै गलिय) उनके मिथ्याज्ञान व मिथ्यादर्शन स्वयं गल गये हैं (विविह कम्म विर्गयंतु गिना) तथा तीन प्रकार कर्म भी विला गये हैं न वहां रागादि भाव कर्म है, न ज्ञानावरणादि घातक द्रव्य कर्म है, न ऐसे किसी कर्मका बन्ध है जिससे नया जन्म लेना पड़े। ऐसा अर्हंत परमात्मा दूसरा नहीं है ॥ २३ ॥

(न्यानी न्यान महार मुनी) ज्ञानी मुनि आत्मीक ज्ञान स्वभावमें रत हैं (न्यान विन्यान मगुत्तु गिना) वे

भेदविज्ञान सहित स्वानुभव सहित हैं, उनसा कोई और नहीं है (ममल ज्ञान अन्मोय लई) उनका शुद्ध ज्ञान
आनन्दमें मग्न है (सद्धे मुक्ति स उवरिना) उनके स्वभावमें मुक्ति प्रगट है, ऐसा स्वभाव दूसरे आत्मज्ञका
नहीं होसक्ता है ॥ २८ ॥

(न्यान दान विन्यान मऊ) वे श्री अर्हंत भगवान आत्मानुभव रूपी ज्ञानका दान अपनेको करते हैं
(परम न्यान सजुत्तुरिना) वे श्रेष्ठ ज्ञानके धारी हैं, उनका कोई और अल्पज्ञ नहीं है (आहार न्यान आहार मऊ)
वे अपनेको ज्ञानानन्दका आहार कराते हैं यही आहारदान है (ममल भाव सतुष्टिरिना) वे शुद्ध भावमें जैसे
तृप्त हैं व सन्तोषी हैं वैसा कोई दूसरा नहीं है ॥ २५ ॥

(भेषज दान जु जिन कहियो) जिनेन्द्रकथित औषधिदान यह है कि (बाधा रहित सजुत्तुरिना) वे आपको
बाधारहित निराकुलताका दान देते हैं, उनकी आत्मामें कोई क्षोभ कभी उत्पन्न नहीं होता है। ऐसा दान
कहीं नहीं मिल सक्ता है (अभयदान त जिन भनियो) जिनेन्द्र कथित अभयदान यह है कि (भय विनाम त
भवुरिना) उनके सर्व भय नष्ट होगए हैं। न मरणका भय है, न वेदनाका भय है, न अकस्मात भय है, न
अनरक्षा भय है, न अगुप्त भय है, न इसलोकका भय है, न परलोकका भय है। उनके समान भव्य जीव
कोई और नहीं है ॥ २६ ॥

(दान चउ विहि उत्तिमउ) इसतरह वहां चार प्रकार दान कहे गए हैं (अमल भाव जिन दिट्ठुरिना) वे ही
शुद्ध भावके धारी हैं, उनके समान वीतराग भावका अनुभवी दूसरा नहीं है (पत्तह दत्त सु अमल मुनि) इस-
तरह शुद्ध भावके धारी मुनि ही पात्र हैं व वे ही दातार हैं (अमल न्यान सिवसतुरिना) वे ही निर्मल ज्ञानके
धारी हैं, मोक्षरूप हैं, आनन्दरूप हैं, तथा वे ही सच्चे सन्त हैं। उनके समान कोई नहीं है ॥ २७ ॥

भावार्थ—इस कथनमें दातार और पात्रका तथा चार प्रकारके दानका बहुतही मनन योग्य गम्भीर
कथन है। यहां यह बताया गया है कि उत्तम पात्र श्री आत्मध्यानी मुनि हैं जो अपने आत्मीक रसके
पानमें मग्न हैं, आत्मानुभव कर रहे हैं। इनमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र तीनों ही रत्न
विद्यमान हैं। यह ही सच्चे मोक्षमार्गी हैं। यही उत्तम दानके पात्र हैं व यह ही उत्तम दातार हैं। यह ही
दातार अपने आपको ज्ञानानन्दका दान कर हैं। इसीमें चार दान गर्भित हैं। ज्ञानका स्वाद लेना व ज्ञानको
निर्मल करना ज्ञानदान है। आनन्दका रस पिलाना आहारदान है जो परम सन्तोषकारी है। आपको बाधा

रहित निराकुल करना औषधिदान है। अपनेको सप्त भयरहित कर देना अभयदान है। उत्तमोत्तम पात्र श्री अरहन्त भगवान हैं। वे केवलज्ञानी परमावगाढ, क्षायिक सम्यक्ती, अनन्तवीर्यके धारी, वीतरागी, समभावके धारी, इंद्रियोंके ज्ञान व सुखसे मुक्त, अतीन्द्रिय सुखमें मग्न होते हुए उत्तमोत्तम दातार हैं। आपसे आपको चार प्रकारका दान देते हैं।

वे अपनेको ज्ञानचेतनामें रमाते हैं यही ज्ञान दान हैं। अनन्त अतीन्द्रिय आनन्दका भोग कराते हैं व परम सन्तोषित करते हैं यही आहारदान है। सर्व रागादिके क्षोभसे रहित परम वीतराग भावकी निराकुल भूमिकामें आपको जमा रहे हैं यही औषधिदान है। अनन्त वीर्यके कारण आपसे आपको सर्व भाव रहित रखते हैं यही अभयदान है। जो उत्तम पात्र होकर उत्तम दातार भी होते हुए आपको उत्तम चार प्रकारका दान करते हैं, वे ही पुष्ट होते हुए चार घातीय कर्मोंका नाशकर अर्हंत परमात्मा होजाते हैं। अब वे कभी भी संसारमें भ्रमण न करेंगे।

जहां शुद्धात्मानुभव है वहीं मोक्षका उपाय व कारण है व वहीं निश्चय चार दान है। तथा जहां शुद्धात्मानुभव केवलज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष है, वहीं मोक्षका उपाय सिद्ध होगया है, वहीं कार्य होगया है, वहां भी निश्चय चार दान है। इसका फल सिद्ध पदका लाभ है। ऐ भव्यजीवो! यदि भव भ्रमणसे छुट्टी पाना है तो उत्तम पात्र व दातार होकर अपनेको अपनेसे अपने लिये आत्मानुभवका पवित्र दान करो। षट्कारकमय आपको विचार करो। यह आत्मा स्वयं कर्ता या दातार होकर अपनेआप आत्माको स्वयं कर्मरूप करके अर्थात् पात्र बनाकर अपने ही द्वारा करण होकर अपनेही लिये संप्रदान होकर अपनेहीमेंसे अपादान होकर अपनेमें ही आधार होकर स्वात्मानन्दका दान करता है। यह भेदरूप पात्र दाता व दानका विचार है। जहां स्वात्मानुभव है वहां भी षट्कारक हैं। वहां भी दातार पात्र व दान हैं, परन्तु अभेदरूप हैं, वचन व मनके गोचर नहीं हैं। भेदरूप पात्रदान अभेदरूप पात्रदानका कारण है।

श्री नागसेन मुनिने तत्वानुशासनमें यही कहा है—

स्वात्मानं स्वात्मनि स्वेन ध्यायेत्स्वस्मै स्वतो यत। षट्कारकमयस्तस्मात् ध्यानमात्मैव निश्चयात् ॥ ७४ ॥

भावार्थ—अपने आत्माको अपने आत्मामें अपने ही द्वारा अपने ही लिये अपनेहीमेंसे आप ही

ध्यान करे तब यह छः कारक रूप आत्मा ही निश्चयसे ध्यान है। वहीं कहा है कि इसी प्रकारके आत्मानुभवरूपी ध्यानसे संवर व निर्जरा होती है—

पश्यन्नात्मानमैकाग्रयात् क्षपयत्यार्जितान् मलान्। निरस्ताहममीभाव संवृणोत्यप्यनागतान् ॥ १७८ ॥

भावार्थ—जो परमें अहंकार व ममकारको दूर करके एकाग्र होकर आत्माको ही अनुभव करता रहता है वह पूर्वबद्ध कर्मोंकी निर्जरा करता है व नवीन कर्मोंका संवर करता है, यही मुक्तिका इलाज है। स्वहित वांछकको आत्मध्यानका ही अभ्यास करना चाहिये। तीन लोकमें कहीं भी कोई और तरहके न उत्तम पात्र हैं, न उत्तमोत्तम दातार हैं, न उत्तमोत्तम पात्र हैं, न उत्तम दातार है, न उत्तम चार दान हैं, न उत्तमोत्तम चार दान हैं। ऐसे दातार, ऐसे पात्र व ऐसा दान यह सब अपूर्व ही है! इसके सिवाय और कोई मार्ग नही होसक्ता है। भव्यजीवको इसीका आश्रय करके तारणतरण होना चाहिये।

---

(१३) अज्ञानी अज्ञान कथन गाथा २२१ से २३७ तक।

अन्यानी अन्यान मओ, मिथ्या सल्य सजुत्तरिना।
मुक्ति मुक्तिन चिंतवहि, मूढा मुक्तिन होइरिना ॥ १ ॥
मिथ्यादिष्टि हि पर सहिओ, पर पर्जय संजुत्तुरिना।
न्यान उवएस न संपजै, अन्यानी नरय निवासुरिना ॥ २ ॥
जन रंजन राग जु समय मऊ, जनऊ तह नंत विसेसुरिना।
आरति ध्यानह तू सहियो, थावर गय विलसतुरिना ॥ ३ ॥
दर्सन मोहे अंध तु हूं, 'अदर्सन समय संजुत्तुरिना।
न्यान विन्यान विवर्जियऊ, नरय वीय संजुत्तुरिना ॥ ४ ॥
अन्यानी असमय सहियो, समय सहाउ न दिट्ठुरिना।

पर पर्जय दिष्टिहि सहियो, तिरिय गए मजुत्तुरिना ॥ ५ ॥
पत्त विसेप न जानिपऊ, पत्तह भेउ अभेउरिना ।
अन्यानी मिथ्या सहियो, नरय तिरिय भमेडरिना ॥ ६ ॥
कल रंजन दोसह सहियो, पर्जय दिस्टि अनंतुरिना ।
मोह महामय पूरियऊ, भव संसार भमंतुरिना ॥ ७ ॥
मन रंजन गारव सहियो, श्रुत अन्यान भनन्तुरिना ।
न्यान सहाव न चेतियऊ, थावर सरनि सजुत्तुरिना ॥ ८ ॥
पर्जय मोहंधह सहिओ, अप्प सहाउ न दिट्ठुरिना ।
ममले सहियो नरय गऊ, सरनि अनन्त भयंतुरिना ॥ ९ ॥
न्यान सहाव न दर्सियऊ, अन्यानह सहकारुरिना ।
पर पंचह पर्जय सहियो, दुक्ख अनन्त सहतुरिना ॥ १० ॥
घाय कम्म संतुष्टपरा, वय तवक्रिय अन्यानुरिना ।
गारव सहियो तव कियउ, नरयह दुक्ख अनंतुरिना ॥ ११ ॥
उवएसिओ अन्यान पऊ, कलकंकृत क्रिय संजुत्तुरिना ।
न्यान भेउ नवि जनिपऊ, अन्ध जु कुआ पडंतुरिना ॥ १२ ॥
राय सहिओ गारव सहियो, मिथ्यामय उवएसुरिना ।
अन्मोय विरोहु न जानियऊ, दुग्गइ गमन सहतुरिना ॥ १३ ॥
देव न दिट्ठो अमिय मऊ, परम देव नहु भेउरिना ।
अन्धो वहिरंधो मुनहु, चौगइ दुक्खु सहंतुरिना ॥ १४ ॥

गुरु नवि जानियो गुपित रुई, परम गुरह नहु भेउरिना ।
मिथ्यामय सल्यह सहियो, दुक्ख अनन्त सहंतुरिना ॥ १५॥
धम्मह भेउ न जानियऊ, कम्मह किय उवएखुरिना ।
अन्यानी वय तवं सहियो, भमियो काल अनंतुरिना ॥ १६ ॥
अवकिन मूढा चिंतवही, न्यान सिरी सिहु भेउरिना ।
न्यान विन्यानह समय पऊ, कम्म विसेष गलेदरिना ॥ १७॥

अन्वय सहित अर्थ—(अन्यानी अन्यान मओ) मिथ्याज्ञानी मिथ्याज्ञान सहित होते हैं उनको आत्मा और अनात्माका सचा भेद विज्ञान नहीं होता है (मिथ्या सल्य सजुत्तरिना) उनके भीतर मिथ्यात्व भावकी शल्य वर्तती है। शुद्धात्माके यथार्थ द्रव्य गुण पर्यायकी श्रद्धा व पहचानमें भ्रम रह गया है, यही मिथ्यात्वकी शल्य है। इसलिये (मुक्ति मुक्तिन चिंतवहि) मुक्ति हो मुक्ति हो व मैं मुक्तिकी प्राप्तिका यत्न करता हूं, मुझे मुक्ति शीघ्र मिले ऐसा निरन्तर चिन्तवन करते रहते हैं (मुढा मुक्तिन होइरिना) परन्तु उन मिथ्यादृष्टी अज्ञानी जीवोंको मुक्तिका या शुद्धात्माका सचा स्वरूप न मालूम होनेसे सम्यग्दर्शनके लाभके विना कभी भी सम्यग्दर्शन व सम्यक्चारित्रको न पाते हुए मोक्षका लाभ नहीं होसक्ता है, जैसे द्रव्यलिंगी जैनके मुनि भी जो बाहरी सर्व चारित्र जैन सिद्धांतानुसार पालते हैं परन्तु आत्मानुभवके लाभ विना उस शुद्ध आत्माके ध्यानसे वंचित रहते हैं जिससे मोक्षमार्गको पासकें ॥ १ ॥

(मिथ्यादृष्टि हि पर सहियो) मिथ्यादृष्टी जीव आत्मासे भिन्न जो शरीर है या रागादि भाव हैं या बाहरी सम्पदा है उनको ही अपना मान लेता है (पर पर्जय सजुत्तरिना) वह पुद्गलकी पर्यायोंमें रत है, कर्मोंके उदयसे प्राप्त नर नारक देव तिर्यंच आदि पर्याय व तत्सम्बन्धी अनेक भाव व अनेक अवस्थाएँ उनहीके भीतर रंजायमान हैं। धन धान्यादिका मोही है, शरीरादिके मोहमें इतना तत्पर है, कि इसे अपने असली आत्मस्वरूपकी कुछ भी खबर नहीं है (न्यान उवएस न सपजै) उसको तत्वज्ञानका उपदेश नहीं सुहाता है, आत्मज्ञानकी चर्चा विष तुल्य भासती है। विषयभोगोंमें लिप्त होकर द्युतादि सात व्यसनोंमें रत होकर

घोर हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील व परिग्रह सम्बन्धी पापोंको बांधकर (अन्यानी नरय निवासुरिना) वह अज्ञानी नरकके वासमें चला जाता है ॥ २ ॥

(जनरंजन राग जु समय मऊ) जिस अज्ञानीका आत्मा ऐसे रागमें फँसा रहता है कि मैं जगतके मानवोंको राजी रक्खूं (जनऊ तह नत विसेपुरिना) उस राग सम्बन्धी अंशोंकी अपेक्षा अनन्त भेदोंको पैदा करता रहता है। नानाप्रकारके तीव्र तीव्रतम तीव्रतर राग किया करता है (आरति ध्यानह तू सहियो) जो इष्टवियोग, अनिष्ट संयोग, पीड़ा चिन्तवन तथा निदान ऐसे चार प्रकार आर्तध्यानोंमें ही सन्तोष मानता है, वह तिर्यंच आयु बांध लेता है और (थावर गय विलसतुरिना) एकेन्द्रिय स्थावरोंकी गतिमें पापका फल भोगता है। महान् अज्ञानी व पराधीन होजाता है। साधारण वनस्पति निगोदमें जाकर अनन्तकाल विताता है। पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, प्रत्येक वनस्पतिकायिक, इन पांच स्थावरोंमें भी दीर्घकाल तक कष्ट पाता है ॥ ३ ॥

(दर्सन मोहे अव तु ह) दर्शनमोह नामा कर्मके मोहसे अन्ध होता हुआ (अदर्शन समय सजुत्तुरिना) मिथ्यादर्शन सहित अपने आत्माको कर लेता है अर्थात् मिथ्यात्वभावमें अपनेको परिणमाता रहता है, परमें अहंकार ममकार किया करता है, स्वार्थवश रागी द्वेषी देवोंको मानता है, परिग्रही गुरुकी भक्ति करता है, हिंसामय धर्मको धर्म मान लेता है (न्यान विन्यान विर्जियऊ) उसको न तत्वोंका ज्ञान है न आत्मा और अनात्माका भेद विज्ञान है। वह मोही विषयासक्त होकर बहु आरंभ व बहु परिग्रहमें फंसा रहता है (नायवीय सजुत्तरिना) और नरक जानेका बीज बोता है अर्थात् नरकगति बांधकर नरकमें चला जाता है ॥ ४ ॥

(अन्यानी असमय महियो) अज्ञानी जीव मिथ्या आगमको मानकर या आत्माके यथार्थ ज्ञानसे रहित होकर (समय महावन दिट्ठुरिना) आत्माके स्वभावको श्रद्धान नहीं करता है। मैं निश्चयसे शुद्ध बुद्ध ज्ञाता द्रष्टा वीतराग आनन्दमई आत्मा हूं, ऐसा विश्वास नहीं कर पाता है (पर पजय दिट्ठि हि सहियो) वह शरीरादि पर पुद्गलकी पार्यायोंमें आपा मानकर मिथ्या श्रद्धान रखता हुआ भोगोंकी लालसामें उलझा हुआ अनिष्ट संयोग व इष्ट वियोगमें व रोगादिकी पीड़ामें चिंतित रहता है, शोक करता है, रुदन करता है, इंद्रियोंके भोगोंके लिये आतुर रहता है (तिरिय गाग सजुत्तरिना) इससे वह तिर्यंच गति बांधकर एकेन्द्रिय,

द्वेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौंद्रिय व पंचेद्रिय पशुओंमें जन्म धारण कर पराधीनपने व असमर्थपने घोर वेदना सहता है ॥ ५ ॥

(पत्त विसेष न जानियऊ) वह अज्ञानी पात्र विशेषको नहीं समझता है (पत्तइ भेउ अमेउरिना) न पात्रोंके भेद प्रभेदको जानता है। उसको पात्र अपात्रका बोध नहीं होता। पात्र तीन प्रकारके होते हैं—सुपात्र, कुपात्र, अपात्र। जो यथार्थ सर्वज्ञ प्रणीत आगमके अनुसार सम्यग्दर्शन सहित अपनी पदवीके योग्य यथार्थ चारित्र पालते हैं वे सुपात्र हैं। जिनके भीतर आत्मप्रतीति रूप निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं है परन्तु व्यवहारसे तत्वोंका श्रद्धान है व जो जैन आगमके अनुसार यथार्थ व्यवहार चारित्र पालते हैं वे कुपात्र हैं। जिनके न तो निश्चय सम्यक्त है, न व्यवहार सम्यक्त है और न शास्त्रोक्त चारित्र है वे अपात्र हैं। अपात्र धर्मके पात्र नहीं हैं इसलिये वे भक्ति करनेके योग्य नहीं हैं। सुपात्र और कुपात्र धर्मके पात्र हैं अतएव भक्ति करनेके योग्य हैं। कुपात्रको क्षणमात्रमें सम्यक्त होसक्ता है, वह क्षणमें सुपात्र होसक्ता है। अल्पज्ञानी भक्तजन अन्तरंगकी ठीक २ परीक्षा नहीं कर सक्ते हैं अतएव उनके लिये दोनों ही भक्तिके भाजन हैं।

सुपात्रोंमें उत्तम पात्र मुनिराज हैं उनमें तीर्थंकर मुनि सर्वोत्कृष्ट हैं। ऋद्धिधारी मुनि मध्यम हैं व सामान्यसे यथार्थ चारित्रके पालक साधु जघन्य उत्तम पात्र हैं। मध्यम पात्र श्रावक हैं। उनमें दशमी ग्यारहवीं प्रतिमाधारी उत्तम हैं, सातवींसे नौमी प्रतिमावाले मध्यम हैं पहली दर्शन प्रतिमासे छठी रात्रि-भुक्ति त्याग प्रतिमा तक जघन्य हैं, व्रत रहित सम्यग्दृष्टी जघन्य पात्र हैं। उनमें क्षायिक सम्यक्ती उत्तम हैं, उपशम सम्यक्ती मध्यम हैं, वेदक सम्यक्ती जघन्य हैं। इन सब भेदोंको अज्ञानी नहीं समझता है, वह अपात्रोंको ही अपने स्वार्थवश भक्ति करके अपना संसार बढाता है (अन्यानी मिथ्या सहियो) अज्ञानी मिथ्या देव गुरु धर्मकी श्रद्धा रखता हुआ (नरय तिरिय भमेइरिना) नरकगति अथवा तिर्यंचगतिमें वारवार जन्म धारकर भ्रमता रहता है, तिर्यंचगतिमें दीर्घकाल विताता है, एकेन्द्रिय अज्ञानी होकर पराधीनपने घोर संकट सहता है ॥ ६ ॥

(कलरजन दोसह सहियो) शरीरमें रंजायमान होनेके दोषके कारण अर्थात् शरीरकी आसक्तिके कारण (पर्जय दिष्टि अनन्तुरिना) पर्यायदृष्टिका प्रवाह अनन्तकालतक चला जाता है। जिस जिस शरीरमें प्राप्त होता है उस उस शरीरमें ही आपापना मान लेता है, अपने यथार्थ स्वरूपसे अनन्तकाल तक बेखबर बना

रहता है (मोह महामय पूरियउ) उनके भीतर मोहरूपी महान मद पूर्णपने भरा रहता है, वे मोहके नशेमें चूर रहते हैं। हम राजा, हम सेठ, हम सुन्दर, हम बलवान, हम धनवान, हम ब्राह्मण, हम क्षत्री, हम वैश्य, हम शूद्र, हम बालक, हम वृद्ध, हम युवा, हम गोरे, हम रोगी, हम निरोगी, हम मानव, हम पशु, हम स्त्री, हम पुरुष, हम मुनि, हम श्रावक, हम दानी, हम तपस्वी इत्यादि मान्यतामें फंसे रहकर मोहके नशेमें बेखबर रहते हैं (भव समार भमतुरिना) जिस कारणसे वे इस संसारके चक्रमें भ्रमण करते रहते हैं। उनका संसार चलता ही रहता है ॥ ७ ॥

(मनरंजन गारव महियो) मनको रंजायमान करनेवाले अहंकारको रखकर (श्रुत अन्यान भवतुरिना) कि मैं बड़ा पंडित हूं, अज्ञानसे मिथ्या कुमार्गको पुष्ट करनेवाले शास्त्रोंको पढ़ता रहा या सुनता रहा (न्यान सहाव न चेतियऊ) परंतु ज्ञान स्वभावी शुद्धात्माका कभी भी अनुभव नहीं किया। इसलिये मिथ्याज्ञानके प्रचारसे तिर्यंच आयु बांध ली और (थावरनि सजुत्तुरिना) स्थावरोंमें जाकर वारवार जन्म धारण किया। हिंसापोषक मिथ्यात्ववर्द्धक कुमार्गका प्रचार करना बड़ा भारी दोष है ॥ ८ ॥

(पर्जय मोइघह सहिओ) जिस शरीरको पाया उस ही शरीरके मोहमें अन्धा होकर-शरीर व उसके सम्बन्धियोंके मोहमें अपने स्वरूपको न जानकर (अप्प सहाव न दिट्ठुरिना) अपने आत्माके स्वभावका दर्शन नहीं किया-कभी आत्माका अनुभव नहीं किया (समले सहिओ नरय गऊ) तीव्र लोभकी मलीनतासे-बहुत आरंभ व परिग्रह रखनेके कारण नरकमें गया (मगनि अनत भमतुरिना) तथा अनन्त जन्म मरण लेता हुआ एकेन्द्रियादि पर्यायोंमें भ्रमण करता रहा ॥ ९ ॥

(न्यान महाव न दर्सियऊ) जिस मिथ्यादृष्टिने ज्ञान स्वभावी आत्माका श्रद्धान नहीं किया है। जो आत्म श्रद्धानरूप सम्यक्तसे बाहर है (अन्यानह सहकारुरिना) तथा मिथ्याज्ञान सहित है (पग्पचह पर्जय सहियो) वह जगतके प्रपंचमें फंसा हुआ पर्याय बुद्धि रहता है, वह पापोंको बांधकर (दुक्ख अनंत सहंतुरिना) अनन्त काल तक दुःखोंको सहता है ॥ १० ॥

(घाय कम्म सतुष्टपरा) जो घातीय कर्मोंके उदयमें सन्तोष मानते हैं अर्थात अज्ञानमें, मोहमें, क्रोधादि कषायोंमें व आत्मबलकी कमीमें जो विषयाधीनपना होता है उसमें संतोष मानते हैं (वय तवक्रिय अन्या-नरुरिना) तथा जो अज्ञानपूर्वक आत्मज्ञानसे रहित व्रत, तप व क्रियामें लवलीन रहते हैं (गारव सहियो तव

करते हैं, तप करते हुए हम तपस्वी हैं इस मानसे उद्धत हैं (नर यह दुक्खह भन-
किग्रउ) अहंकार सहित तप करते हैं, तप करते हुए हम तपस्वी हैं इस मानसे उद्धत हैं ॥ ११ ॥
तुरिना) वे मिथ्यादृष्टि अज्ञानी पाप बांधकर नर्क गतिमें जाकर अनन्त दुःखोंको पाते हैं (कलक

(उवएसिओ अन्यानयऊ) कोई२ अज्ञानी गुरु अज्ञान पद या चारित्रके पालनेका उपदेश देते हैं (कलक
कृतक्रिय सजुत्तुरिना) आत्माकी तरफ बिलकुल लक्ष्य न देते हुए शरीरको शोभा देनेवाली या शरीरको सुखा-
नेवाली क्रियाको या कायक्लेशको करते हैं (न्यान भेउ नवि जानियऊ) आत्मज्ञानका गुप्त रहस्य अर्थात् निश्चय
सम्यक्त्वको नहीं जानते हैं (अन्जु कुआ पड्तुरिना) वे स्वयं अंध होकर संसारकूपमें गिरते हैं व दूसरोंको
गिराते हैं—जैसे अन्धी भेड़ आगे चलती हुई एक कुएँमें गिर पड़े, तो उसके पीछेकी सब भेड़ें कुएँमें गिर
पड़ती हैं। इसीतरह अज्ञानी गुरु पत्थरकी नावके समान हैं। आप डूबते हैं व औरोंको डुबाते हैं। आत्मा-
नुभवके विना व्रत, जप, तप सब असार हैं ॥ १२ ॥

(राय सहियो गारव सहियो) रागी और अहंकारी जीव (मिथ्यामय उवएसतुरिना) मिथ्या मतका उपदेश
करते हैं (अन्मोह विरोहु न जानियऊ) उनको यह ज्ञान नहीं है कि वे आत्मानन्दका विरोध कर रहे हैं अर्थात्
आत्मानन्दके मार्गसे स्वयं च्युत हैं व दूसरोंको च्युत करते हैं। आप भी विषयसुखमें मग्न हैं व दूसरोंको भी
विषयसुखकी प्राप्तिका मार्ग बताते हैं। ऐसे अज्ञानी जीव (दुगइ गमन सहतुरिना) दुर्गतिमें जाकर दुःख
सहन करते हैं ॥ १३ ॥

(देव न दिट्ठो अमिय मऊ) उनको अमृतमई परमात्मदेवका श्रद्धान नहीं होता है, वे वीतराग सर्वज्ञ
अर्हंत सिद्ध परमात्माका विश्वास नहीं रखते हैं (परम देव नहु मेउरिना) उनको परमात्मा उत्कृष्ट देवका
भेद नहीं मालूम होता है (अन्धो बहिरंगो मुनडु) वे यथार्थ आत्मतत्वके ज्ञानसे अन्ध होकर बहिरात्मा बने
रहते हैं (चौगइ दुक्ख सहतुरिना) वे चारों गतियोंमें जाकर दुःख सहते हैं, वे आत्मज्ञान रहित तप करके
मन्द कषायसे देवगतिमें भी चले जाते हैं। वहां विषयसुखमें मग्न होकर देवसे तिर्यंच गतिमें आकर जन्म
धारण कर लेते हैं ॥ १४ ॥

(गुरु न वि जानियो गुपित रुई) उनको गुप्त रुचि अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शनके धारी गुरुका भी ज्ञान
नहीं होता है, वे संसारासक्त मार्गको बतानेवाले गुरुको ही गुरु मान लेते हैं (परम गुरु नहु मेउरिना) वे उत्तम
आत्मज्ञानी गुरुका भेद न जानते हुए ऐसे गुरुसे भेट नहीं कर पाते हैं (मिथ्यामय सल्यह सहियो) वे मिथ्या-

मतकी शल्य सहित होते हुए (दुक्ख अनंत सहतुरिना) इस संसारमें अनन्त काल तक दुःख सहते हैं ॥१५॥

(धम्मह मेउन जानियऊ) उनको सत्य आत्मानुभवरूप धर्मका भी भेद नहीं मालूम होता है (कम्म किया उवएसुरिना) वे क्रियाकाण्ड वा बाहरी कर्मको ही धर्मके नामसे उपदेश करते हैं (अन्यानी वय तव सहियो) वे धर्मको न जानते हुए अज्ञानसे व्रत तप पालते हैं (भमियो काल अनतुरिना) इसलिये उनका इस संसारमें अनन्त काल तक भ्रमण बना रहता है ॥ १६ ॥

(अवकिंन मूढा चिंनवहि) हे मूढ पुरुषो ! अब क्यों नहीं विचार करते हो (न्यान सिरी मिहु मेउरिना) आत्मज्ञानकी लक्ष्मीके साथ भेट करना चाहिये व आत्मज्ञानका भेद पाना चाहिये (न्यान विन्यानइ समय पऊ) भेदविज्ञानके द्वारा शुद्धात्माके पदको जानना चाहिये (कम्म विसेष गलेइरिना) जिससे विशेष कर्मोंकी निर्जरा होवे। विशेष निर्जराका कारण आत्मानुभव है, इसीको प्राप्त करना चाहिये ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें मिथ्यात्वकर्म व अनन्तानुबन्धी कषायके उदयसे जो संसारी जीवोंकी अवस्थाएं होती हैं उनको दिखाया है। मिथ्यात्व दो प्रकारका है—एक अग्रहीत, दूसरा ग्रहीत। जो कर्मोंके उदयसे अनादिकालसे चला आया है वह अग्रहीत मिथ्यात्व है। इसके होते हुए जीव जिस शरीरको पाता है उसहीमें आपापना मान लेता है, उसको इस बातका श्रद्धान नहीं होता है कि शरीरसे व पुण्य पापादि कर्मोंसे व रागद्वेष भावोंसे भिन्न कोई शुद्ध बुद्ध ज्ञाता दृष्टा अमूर्तीक परमानन्दमय वीतराग आत्मा है या इंद्रियसुखसे विलक्षण कोई आत्मीक आनन्द है। इस अपूर्व परम सुखदाई आत्माका ज्ञान व श्रद्धान न पाते हुए अज्ञानी जीव जिस शरीरको पाते हैं उसीमें रत होकर रात दिन अपनी इन्द्रियोंकी इच्छाओंकी पूर्तिका उपाय किया करते है। इष्ट पदार्थके वियोगमें शोक करते हैं, अनिष्ट पदार्थके संयोगमें रुदन करते हैं, पीडा होनेपर घबड़ाते हैं, आगामी भोगोंके लिये आतुर रहते हैं। अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरोंको कष्ट देकर भी काम बना लेते हैं, घोर हिंसा करते हैं, घोर असत्य बोलते हैं, चोरी लूटपाट कर लेते हैं, परस्त्री व वेश्यागमन करते हैं, शिकार खेलते हैं, मदिरापान करते हैं, मांस खाते हैं, जूआ खेलते हैं, रौद्रध्यान व आर्तध्यानमें रात दिन तन्मय रहते हैं, तृष्णाकी दाहको बढाते रहते हैं, कभी भी शमन नहीं कर पाते हैं। इच्छाओंकी पूर्ति न पाते हुए आयुकर्मकी समाप्ति कर मर जाते हैं, फिर दूसरे शरीरमें जाकर यही इंद्रियोंकी आसक्तिका काम चलता रहता है। एकेंद्रियसे पंचेंद्रिय

तक सर्व ही मिथ्यादृष्टी जीव इस मिथ्यात्वभावसे महान कष्टमय जीवन विताते हैं और तीव्र कर्म बांधकर नर्क निगोद व तिर्यंच गतिमें व अशुभ मानवगति व तुच्छ देवगतिमें वारवार जन्म धारणकर असहनीय दुःख सहते हैं। गृहीत मिथ्यात्व वह है जो देखादेखी मान लिया जावे। कुदेव, कुगुरु तथा कुधर्मकी श्रद्धा होकर कुदेवादिकी भक्ति करके सन्तोष मानना, लौकिक कार्यकी सिद्धिके वश कुगुरुओंके उपदेशसे हिंसादि कर्मको भी धर्म मान लेना, इत्यादि वीपरीत देव गुरु धर्मकी श्रद्धासे वे कभी भी सच्चे देव गुरु धर्मका श्रद्धान नहीं कर पाते है। इन दोनों ही प्रकारके मिथ्यात्वका मद मदिराके मदके समान चढा रहता है जिससे यह संसार वढता ही रहता है, कभी भी इस भयानक संसार-सागरसे उद्धारका मार्ग हाथ नहीं लगता है। अतएव श्रीगुरु वताते हैं कि हे भाई! वड़ी कठिनतासे नरभव पाया है, इंद्रियोंकी पूर्णता पाई है, दीर्घ आयु पाई है, वुद्धि भी ठीक है, अव प्रमाद न करके आत्मज्ञानी सच्चे गुरुकी शरण ग्रहण करो, गुरुके उपदेशको सुनो। इस संसारसे वैराग्यभाव धार करके वीतराग सर्वज्ञ श्री अरहन्त व सिद्ध परमात्मामें, निर्ग्रंथ तपस्वी वीतरागी गुरुमें व अहिंसामय वीतराग विज्ञानमई धर्ममें श्रद्धा लाओ। व्यवहार सम्यक्तको पालते हुए निश्चय सम्यक्तको पानेका पुरुपार्थ करो। आगम द्वारा जीवादि सात तत्वोंको जानकर निज आत्माके शुद्ध स्वभावपर श्रद्धान लाओ। आत्माके अनुभवको ही सच्चा निश्चय रत्नत्रय मई मोक्षमार्ग समझो तथा इसीके लिये पुरुषार्थ करो। इसी आत्मानुभवसे ही कर्मोका क्षय होता है व सच्चा पुरुषार्थ मिलता है। इसीसे भवसागरसे पार होनेका उपाय सिद्ध होना है। व्यवहार श्रावक मुनिकी क्रियाएं मात्र आत्मानुभवकी प्राप्तिमें निमित्त कारण है। उन क्रियाओंको आत्मानुभवकी प्राप्तिके हेतुसे ही करना चाहिये। केवल उन क्रियाओंसे न मुक्ति होगी न कर्मोकी निर्जरा होगी। आत्मज्ञान रहित अज्ञान तप व्रत क्रियासे संसारका ही मार्ग वढेगा। द्रव्यलिंगी जैन मुनि आत्मज्ञानके विना पुण्य वांधकर नौमे ग्रैवेयक तक चले जाते हैं परंतु सम्यक्तके विना वे मिथ्यादृष्टी ही रहते हैं। संसारके भ्रमणसे छूटनेका उपाय उनको नहीं मिल पाता है, सम्यक्तके विना व्रत तपादिका मूल्य वहुत ही अल्प है।

श्री आत्मानुशासनमें कहा है—

शमवोधवृत्ततपसा पाषाणस्येव गौरव पुंस । पूज्यं महामणरिव तदेव सम्यक्तसंजुत्त ॥

भावार्थ—सम्यक्तके विना शांतभाव, ज्ञान, तप, चारित्रका मूल्य कंकड व पत्थरके समान है, परंतु

जो सम्यक्तके साथ ज्ञान व चारित्र व तप हो तो उनका मूल्य महान रत्नके समान है। अतएव आत्महित बोधकोंको चाहिये कि निजात्माको समझके अपने आत्माके शुद्ध स्वभावपर दृढ श्रद्धान लावे, अनादिके अज्ञानको व मिथ्यात्वको त्यागे, सच्चे वीतरागी देव गुरुको भजे, आत्मानुभवके लिये प्रयास करे, इसीसे कर्मकी निर्जरा होसकेगी व जीव कर्मसे छूटकर मुक्त होजायगा।

---

(१४) उत्पन्न छन्द गाथा २३८ से २६२ तक।

उव उवनौ उवन सहाव, लई उव उवन भाव संखुद्ध पऊ।
उव उवनौ केवल समय मऊ, सिहु समय सिद्धि संपत्तऊ॥ १ ॥
ऊवंकार जिनुत्त पऊ, न्यान विन्यान संजुत्तऊ।
उव उवन सहावे दरसिऊ, उव उवन सिद्धि संपत्तऊ॥ २ ॥
उवन उवन जुत्तओ, उवन भय गलतओ।
उवन ज्ञान रत्तओ, उवन मिथ्या चत्तओ॥ ३ ॥
उवन पंथ दरसिओ, उवन मल विलन्तओ।
उवन मुक्ति रत्तओ, सुपर्जय रय गलंतओ॥ ४ ॥
उवन सिद्धि पंथओ, कम्मान बन्ध चत्तओ।
उवन व्यक्त रूवओ, सो कम्म षियक सूरओ॥ ५ ॥
उवन लष्य लष्यनो, उवन पय वियष्यनो।
उवन दिष्टि दरसिओ, उवन इस्टि इस्टिओ॥ ६ ॥
उवन ओत जुत्तओ, ससंक भय विलंतओ।

उवन परिनै जुत्तओ, उवन कम्म चत्तओ ॥ ७ ॥
उवन समय सत्तओ, अज्ञान विलय रत्तओ ।
न्यानेन न्यान जुत्तओ, अन्यान भय गलंतओ ॥ ८ ॥
उवन परम इस्टिओ, सुयं सुभाउ दिस्टिओ ।
सहयार सुद्ध साहिओ, अन्मोय इस्ट ग्राहिओ ॥ ९ ॥
उवन रमन रत्तओ, उवन ओत जुत्तओ ।
उवन वयन रत्तओ, उवन समय सत्तओ ॥ १० ॥
संयत्त सुद्ध साहिओ, सम समय दिष्टि राहिओ ।
सो षिपक भाव षिपकओ, सो ममल भाव ममलपौ ॥ ११ ॥
सो अषय रूव रूवओ, सो सुरस दिष्टि सूरओ ।
उवन नन्त दरसिओ, उत्पन्न न्यान सरसिओ ॥ १२ ॥
उवन राग षंडनो, जन रंजन भय विहण्डनो ।
कल रंजन दोष गलिगओ, सो विंद रमन ऊवनपौ ॥ १३ ॥
मोहंध दर्स अदिस्टिओ, उत्पन्न दर्स दर्सओ ।
निसंक रूव रयनपौ, ससंक मय विलंतओ ॥ १४ ॥
न्यानेन न्यान समय मऊ, आवर्न न्यान विलय गउ ।
दर्स अनन्ता दरसिओ, आवरन दर्स गलंतओ ॥ १५ ॥
उत्पन्न मेहा उवन पउ, सो मोयमय विलंतओ ।
विन्यान न्यान समययौ, अन्तर सुभाउ विलयगौ ॥ १६ ॥

सो न्यान वंक अवंकओ, अन्यान वंक अवंकओ।
सो सरनि भय विरत्तऊ, सो मुक्ति पंथ रत्तऊ ॥ १७ ॥
अवयास यास जुत्तओ, आसा सुभाव विरत्तओ।
अन्मोय न्यान सत्तओ, अस्नेहमय विलंतओ ॥ १८ ॥
सो राग सर्म चत्तओ, सो लाज भय विलन्तओ।
सो अलब्धि लब्धि जुत्तओ, सो लब्धि सुह विरत्तओ ॥ १९ ॥
सो अभय भय गलन्तओ, सो भय संक विलन्तओ।
सो न्यान ग्राह वज्जओ, सो गारव भय गलन्तओ ॥ २० ॥
सो न्यान रमन सूरओ, सो आलस सुह गलंतओ।
सो परम तत्त्व दरसिओ, परपंच भय विनासिओ ॥ २१ ॥
विन्यान न्यान विभ्रओ, विभ्रम सुरय विलन्तओ।
उवन विंद विंदिओ, उवन नन्द नन्दिओ ॥ २२ ॥
सो नन्द नन्द जुत्तओ, सो चेय नन्द जुत्तओ।
तं सहज नन्द सहज मउ, सो परमानन्द परम पउ ॥ २३ ॥
उवन भाव लषिओ, सो रमन रय परिषिओ।
सो रमन मुक्ति रमन पउ, सो रमन रयन सिद्ध पउ ॥ २४ ॥

घत्ता—

उव उवन सहाउ सु उवन पउ, उव उवन समय संजुत्तओ।
सु तरन विमान सु समय मउ, सिद्ध समय सिद्धि संपत्तउ ॥ २५ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(उब उवनो उवन सहाव न्ई) अब अपने उद्योतकारी स्वभावको लिये हुए सम्यग्दर्शनका जन्म हुआ है (उव उवन भाव सद्भुद्ध पऊ) उसके साथ ही परम शुद्ध पद या मोक्षपद प्राप्तिका भाव जग उठा है (उव उवनो केवल समय मऊ) केवल असहाय आत्मामई शुद्ध भावका अनुभव उत्पन्न होगया है (सिहु समय सिद्धि सपत्तऊ) जिसके द्वारा स्वयं आत्माकी सिद्धि प्राप्त होजायगी ॥ १ ॥

(ऊवकार जिनुत्त पऊ) ॐकारका मंत्रपद जिनेन्द्रने कहा है (न्यान विन्यान सजुत्त पऊ) यह पद ज्ञानका तथा भेदविज्ञानका पैदा करानेवाला है। अर्थात् ॐका अर्थ विचारनेसे परमात्माके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान होता है तथा संसार अवस्था त्यागने योग्य व मुक्तिपद ग्रहण करने योग्य झलकता है (उव उवन सहावे दरसिओ) इस ॐ मंत्रके द्वारा प्रकाशमान आत्माका स्वभाव दर्शा जाता है अर्थात् आत्माका अनुभव होजाता है (उव उवन सिद्धि सपत्तऊ) जिसके द्वारा उदयरूप सिद्धपद प्राप्त होजाता है ॥ २ ॥

(उवन उवन जुत्तओ जब उद्योतमई सम्यग्दर्शन प्रकाशित होजाता है (उवन भय गलंतओ) तब संसारमें उत्पन्न होनेका भय गल जाता है अर्थात् सम्यक्तीको यह दृढ निश्चय होजाता है कि मैं अवश्य मोक्ष प्राप्त कर लूंगा अथवा सम्यक्ती अवश्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है, यह जैनागम है। अथवा सम्यक्तीको निःशंकित अंग प्राप्त होजाता है जिससे वह अपनेको जीवन्मुक्त समझता है और चारों गतियोंके दुःखोंसे निर्भय होजाता है (उवन न्यान रत्तओ , यह सम्यक्ती आत्मज्ञानमें रत रहता है (उवन मिथ्या चत्तओ) उसके भीतरसे मिथ्यात्वका उदय विला गया है ॥ ३ ॥

(उवन पन्थ दरसिओ) उसने मोक्षमार्गका प्रकाश देख लिया है अर्थात् निश्चय रत्नत्रयमई आत्मानुभवको प्राप्त कर लिया है जोकि साक्षात् मोक्षका मार्ग है (उवन मल विलंतओ) उसके भीतरसे अनन्तानुबन्धी कषाय और मिथ्यात्व सम्बन्धी राग द्वेष मोह सब विला गया है (उवन मुक्ति रत्तओ) वह उद्योतमय मुक्त स्वरूप आत्मामें लवलीन है (सुपर्जय रय गलतओ) उसकी शरीरमें आसक्ति गल गई है—पर्यायबुद्धिका अहंकार मिट गया है ॥ ४ ॥

(उवन सिद्धि पन्थओ) सम्यग्दृष्टीके भीतर आत्मसिद्धिका मार्ग प्रगट होगया है (कम्मान बन्ध चत्तओ) उसके कर्मोंका बन्ध ढ़ीला पड़ गया है। उसके अविपाक निर्जरा प्रारंभ होजाती है अथवा मिथ्यात्वकी जड़ कट जानेसे उसका सर्व कर्मबन्ध मूल रहित वृक्षकी तरह रहजाता है। अर्थात् शीघ्र ही कट जायगा या

ममलपाहुड
॥१०९॥

सूख जायगा (उवन व्यक्त रूवओ) उसके भीतर आत्माका स्वभाव प्रगट भास रहा है (सो कम्म पिपक सूरओ) वह कर्मोंके क्षय करनेके लिये वीर योद्धा हो जाता है। उसके भीतर यह दृढ़ उमंग हो जाती है कि मैं अवश्य कर्मोंका क्षय कर डालूँगा ॥ ५ ॥

(उवन लष्य लष्यनो) सम्यग्दृष्टीने लखने योग्य, ग्रहण करने योग्य, अनुभव करने योग्य अपने आत्माके स्वभावको अनुभव कर लिया है (उवन पय वियष्यनो) वह आत्मीक पदके भीतर जमनेमें विचक्षण होगया है। भेदविज्ञानकी कलासे सम्यक्तीके भीतर स्वानुभवकी कला जग गई है (उवन दिस्टि दरसिओ) उसने उद्योत रूप आत्म-दर्शनको देख लिया है (उवन इस्टि इस्टियो) तथा प्रकाशमान अपने प्रिय परमात्म स्वभावके प्रगट करनेका प्रेम उसने प्राप्त कर लिया है ॥ ६ ॥

(उवन ओत जुत्तओ) उस सम्यग्दृष्टीके भीतर चारों तरफसे आत्मज्ञानका प्रकाश है (ससक भय विलतओ) उसके भीतरसे सर्व शंकाएं व सर्व भय दूर होगये हैं। उसको तत्वार्थका दृढ़ निश्चय है व उसे किसी प्रकारका ऐसा भय नहीं है जिससे उसका श्रद्धान आत्माके स्वभावसे हट जावे (उवन परिनै जुत्तओ) वह सम्यग्दर्शन रूप ही परिणमन करता है। अर्थात् उसके भीतर दृढ श्रद्धानके अनुसार सम्यग्दर्शनाचार विद्यमान रहता है, वह निःशंकितादि आठ अंगोंको पालता है (उवन कम्म चत्तओ) सम्यक्त भावमें परिणमन करनेसे जो कर्म मिथ्यात्व व अनन्तानुबन्धी कषायोंके उदयसे आते थे उनका आश्रव बन्द होगया है ॥ ७ ॥

(उवन समय सत्तओ ' सम्यक्तीके भीतर आत्माकी सत्ताका व स्वभावका बोध प्रगट होगया है (अन्यान विभ्रम रत्तओ) वह अज्ञान रहित भावमें अर्थात् सम्यग्ज्ञानमें या स्वसंवेदन ज्ञानमें रत है (न्यानेन न्यान जुत्तओ) उसका ज्ञान आत्मज्ञानसे युक्त है—आत्माके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान उसके भीतर सदा बना रहता है (अन्यान भय गलतओ) उसके भीतरसे मिथ्याज्ञान व संसार भय सर्व गलगया है ॥ ८ ॥

(उवन परम दस्टिओ) परम इष्ट मोक्षमार्ग उसके भीतर उदय होगया है (सुय सुभाउ दिस्टिओ) उसने अपने स्वभावको स्वयं अनुभव कर लिया है (सहयार सुद्ध साहियो) वह सम्यग्दर्शनकी सहायतासे शुद्ध भावका साधन करता है (अन्मोय इस्ट आहियो उसने आनन्दमय इष्ट निज स्वरूपको ग्रहण कर लिया है ॥९॥

(उवन रमन रत्तओ) वह उद्योत रूप स्वरूपाचरण चारित्रमें रत है (उवन ओत जुत्तओ) वह सर्व तरफसे

आत्माकी रमणतासे युक्त है (उवन वयन रवओ) वह प्रकाशित जिन आज्ञामें लवलीन है (उवन समय सचओ) उसके भीतर आत्माकी यथार्थ सत्ता झलक गई है ॥ १० ॥

(समत्त सुद्ध साहिओ) उस अन्तरात्माने शुद्ध निश्चय सम्यक्तका साधन कर लिया है (सम समय दिरिट गहिओ) उसमें समताभाव सहित आत्मदृष्टिका स्थान है (सो पिपक भाव पिपकओ) यह सम्यग्दर्शन कर्मोंकी निर्जरा करनेवाला भाव है इसीसे उस सम्यक्तीके कर्मकी निर्जरा होरही है (सो ममल भाव ममलपौ) वह निर्मल भाव है। इसलिये आत्माको निर्मल करनेवाला है। जैसे निर्मल पानी मैले वस्त्रको धोकर साफ कर देता है वैसे निर्मल आत्मीक तत्वका शुद्ध श्रद्धान आत्माके रागादि मैलको धोकर उसे वीतराग कर देता है ॥११॥

(सो अषय रूव रूवओ) वह सम्यग्दर्शन अविनाशी आत्मीक स्वभावको दिखलानेवाला है (सो सुरस दृष्टि सूरओ) वह आत्मीक रससे भरी दृष्टिको दिखानेके लिये सूर्य है (उवन नन्त दरसिओ) उसीसे अनन्तदर्शनकी उत्पत्ति होती है (उत्पन्न ज्ञान सगसिओ) उसीसे ज्ञानकी सुन्दरता बढती जाती है ॥ १२ ॥

(उवन राग षडनो) वह सम्यक्त भाव संसारीक रागको खण्डन करनेवाला है (जनरजन मय विह'डनो) वह उस भयको दूर करनेवाला है कि मैं मानवोंको रंजायमान करूँ, नहींतो वे असंतुष्ट होकर मेरा बुरा करेंगे (कल रजन दोस गलिगओ) इसके भीतरसे शरीर आसक्तिका दोष गलगया है (सो विन्द रमन उवनपौ) उसने स्वात्म रमण पदको पालिया है ॥ १३ ॥

(मोहष दर्स अदिस्टिओ) उसको दर्शन मोहनीय कर्मके उदयका दर्शन नहीं होता है। अर्थात् उसके मिथ्या श्रद्धानका कभी उदय नहीं होता है (उत्पन्न दर्स दर्सओ) उसने प्रकाशमान सम्यग्दर्शनका अनुभव कर लिया है (निसंक रूव रयनपौ) वह निःशंक सम्यग्दर्शनरूपी रत्नको धारे हुए हैं (ससंक मय विलतओ) उसकी सर्व शंकाएँ मिट गई हैं वह निर्भय होगया है ॥ १४ ॥

(न्यानेन न्यान समय मउ) आत्मज्ञानके अभ्याससे आत्माका स्वाभाविक ज्ञान केवलज्ञान प्रगट हो जाता है (आवर्न न्यान विलय गउ) और ज्ञानावरणीय कर्मका क्षय होजाता है (दर्स अनन्ता दरसिओ) तथा अनन्तदर्शन प्रकाशित होजाता है (आवरन दर्स गलतओ) दर्शनावरण कर्म गल जाता है ॥ १५ ॥

(उत्पन्न मैड़ा उवन पउ) उदय स्वरूप वीतराग ज्ञानका जब प्रकाश होता है (सो मोह मय विलतओ) तब मोहमयी ज्ञान विला जाता है अर्थात् मोहनीय कर्मके क्षयसे ज्ञानके साथ वीतरागता भी प्रगट होजाती

है (विन्यान न्यान समपपौ) पूर्ण शुद्ध ज्ञानमई आत्मीक पद झलक जाता है, आत्मा सकलस शरीर परमात्मा होजाता है (अन्तर सुभाउ विलइगौ) कर्मोंके क्षयोपशमसे होनेवाले मध्यम स्वभाव जो केवलज्ञानके होनेके पहले होते थे वे सब विला जाते हैं। अब यहां मति श्रुत अवधि मनः पर्ययज्ञान नहीं हैं न अल्पवीर्य है न मन व इन्द्रिय सम्बन्धी कोई वर्तन है। यहां अतीन्द्रिय ज्ञान व अतीन्द्रिय सुख व अनन्त आत्म-वीर्य प्रगट होजाते हैं ॥ १६ ॥

(सो न्यान वक अवकओ जो पहले इंद्रियजनित परोक्षज्ञान था सो अब प्रत्यक्ष ज्ञान होजाता है (अन्यान वक अवकओ) जो परोक्ष अज्ञान था सो मिटकर प्रत्यक्ष केवलज्ञान होजाता है (सो सरनि भय विलत्तओ) संसारके भ्रमणका भय मिट जाता है। अब अरहन्त परमात्मा जन्म धारण करेंगे (सो मुक्ति पन्थ रत्तउ) वे मोक्षमार्गमें-शुद्धोपयोगमें रत हैं, शीघ्र ही मुक्त होंगे ॥ १७ ॥

(अवयास यास जुत्तओ) वे अनन्त प्रकाश सहित होजाते हैं (आसा सुभाव विरत्तओ) तृष्णा या आशाका कुभाव मिट गया है-अरहन्तके किसी प्रकारकी इच्छा नहीं होती है (अन्मोय न्यान सत्तओ) यहां आनन्दमय ज्ञानकी सत्ता रहती है, अनन्त सुख प्रगट होजाता है (अस्नेह भय विलतओ) सर्व रागभाव तथा भय स्वरूप द्वेषभाव विला जाता है ॥ १८ ॥

(सो राग सर्म चत्तओ) वहां इंद्रिय सुखका राग मिट जाता है (सो लाज भय विलतओ) उनके न किसी प्रकारकी लज्जा है, न किसी प्रकारका भय है क्योंकि हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद इन नौ नोकषायोंका पूर्णतया अभाव है (सो अलब्धि लब्धि जुत्तओ) जो अनन्त दान, अनन्त लाभ, अनन्त भोग, अनन्त उपभोग, अनन्त वीर्य जो पहले प्राप्त न थे सो प्राप्त होजाते हैं, पांच क्षायिक लब्धियां प्रगट होजाती हैं (सो लब्धि सुइ विरत्तओ) क्षयोपशम, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य संबन्धी सुखसे श्री अरहन्त भावनाविरक्त हैं ॥ १९ ॥

(सो अभय भय गलतओ) वे अभय होजाते हैं। उनका सर्व भय गल जाता है (सो भय सक विलतओ) सात प्रकारका इस लोक, परलोकादिका भय व अज्ञान जनित कोई शङ्का वहां नहीं रहती है (सो न्यान ग्राह वज्जओ) केवलज्ञान रूपी वज्रका वहां ग्रहण है (सो गारव भय गलंतओ) उसके सामने न कोई अहंकार है, न कोई भय है। जैसे वज्रको कोई टेढा व खण्ड नहीं कर सक्ता है वैसे केवलज्ञानमें कोई कषायके उद-

यकी वक्रता नहीं होसक्ती है, न उसके मिट जानेका भय है। वह सदा एकसा अविनाशी रहता है ॥ २० ॥

(सो न्यान रमन सूरओ) वे शुद्ध ज्ञानमें रमन करनेवाले सूर्य समान प्रकाशित हैं (सो आलस सुह गलतओ) उनके प्रमादजनित सुख नहीं रहता है। उनका अनन्त सुख सदा धारावाही एकसा प्रकाशमान रहता है (सो परम तत्त दरसिओ) उन्होंने परमात्माके तत्वके प्रत्यक्ष दर्शन कर लिये हैं (परपच भय विनासिओ) संसार प्रपंचका भय सब नष्ट होजाता है। उनको अब फिर संसारी आत्मा नहीं होना है ॥ २१ ॥

(विन्यान न्यान विभ्रओ) वे शुद्ध ज्ञानसे परिपूर्ण हैं (विभ्रम सुय विलनओ) मोहरूपी मदिराका मद क्षय होजाता है (उवन विंद विंदिओ) वे स्वात्मानुभवका स्वाद लेरहे हैं (उवन नंद नंदिओ) जिससे उत्पन्न अतीन्द्रिय आनन्दमें मगन हैं ॥ २२ ॥

(सो नद नद जुत्तओ) वे आत्मानन्दी आनन्द सहित रहते हैं (सो चेय नद जुत्तओ) वे चिदानन्दसे या ज्ञानचेतनाके आनन्दसे युक्त हैं (तं सहजनद महज मउ) वे स्वभावसे उत्पन्न सहजानन्दके भोक्ता हैं (सो परमानंद परम मउ) वे परमात्माके पदमें होनेवाले परमानन्दसे पूर्ण हैं ॥ २३ ॥

(उवन भाव रुपिओ) प्रकाशमान स्वभावकी ओर ही जहां लक्ष्य है (सो रमन रय परिपयो) वे आत्मरमनके उत्साहकी परीक्षा कर चुके हैं अर्थात् वे आत्माकी मगनतामें ही संतुष्ट हैं (सो रमन मुक्ति रमन पउ) वे परमात्मा मुक्तिके स्वादमें रमण करते हुए आत्मरमण पदसे सुशोभित हैं (सो रमन रयन सिद्ध पउ) वे रत्नत्रयके रमणसे सिद्धपदको पावेंगे ॥ २४ ॥

(उव उवन सुहाउ सु उवन पउ) वे परमात्मा उदयमान अपने स्वाभाविक अविनाशी पदमें विराजित हैं (उव उवन समय सजुत्तओ) वे प्रकाशमान आत्मीक रूपमें तन्मय हैं (सु तरन विरान सु समय मउ) वे ही तारणतरण परमात्मा हैं (सिद्ध समय सिद्ध सासउ) वे ही स्वयं सिद्ध आत्मीक पदको या शुद्ध आत्मीक पद निर्वाणको प्राप्त होंगे ॥ २५ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें सम्यग्दर्शनकी स्तुति मननयोग्य की गई है, सम्यग्दर्शनका महात्म्य बताया गया है। जब निकट भव्य सात तत्वोंका मनन करते हुए भेदविज्ञानका वारवार विचार करता है, अपने आत्माको सर्व अन्य आत्माओंसे, पुद्गलोंसे, धर्मास्तिकायसे, अधर्मास्तिकायसे, कालाणुओंसे, आकाश द्रव्यसे, ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंसे वारवार पृथक् देखा करता है तब यकायक

करणलब्धिकी प्राप्ति होजाती है, परिणाम समय समय अनन्तगुणे शुद्ध होते जाते हैं, अन्तर्मुहूर्त तक
इस क्रियाके होते रहनेसे अनन्तानुबन्धी कषाय और मिथ्यात्वका उदय बन्द होजाता है और सम्यग्दर्शन
गुणका प्रकाश होजाता है—मोक्षमार्गका उदय होजाता है। सम्यग्दृष्टी जीव संसारसे पीठ देकर मोक्षके
सन्मुख चलने लगता है, उसके भीतर आत्मानुभव करनेकी शक्ति होजाती है, उसको संसार शरीर
भोगोंसे पूर्ण वैराग्य होजाता है, वह आत्मीक आनन्दका स्वाद पाने लगता है, उसके विषयसुखसे अरुचि
होजाती है, उसके आत्मानुभवके प्रतापसे बहुतसे कर्म समयके पहले शुद्धभावके प्रतापसे गल जाते हैं,
उसके भीतरसे संसार सम्बन्धी राग द्वेष मोह चला जाता है, सर्व कर्मोंकी जड कट जाती है, थोडे ही
कालमें उसका कर्मरूपी वृक्ष सूख जाता है, वही अरहन्त सिद्ध परमात्माको ठीक २ पहचानता है, उसको
संसार–भ्रमणका भय नहीं रहता है। सम्यक्ती सम्यक्त अवस्थामें स्वर्गकी देवायुका ही बन्ध करता है।
सम्यक्तके पहले यदि नर्क, मनुष्य या तिर्यंच आयु बांधी हो तब तो उन गतियोंमें सम्यक्तको साथ लेकर
जाता है तथा प्रथम नर्कसे आगे नहीं जाता है, भोगभूमिमें ही पशु व मानव होता है। सम्यक्ती देव
मरकर स्वरूपवान कुलीन पुण्यात्मा मानव पैदा होता है, विकलांगी दरिद्री नहीं होता है। सम्यक्त यदि
लगातार बना रहे तो थोडे ही भवोंमें मुक्त होजाता है। सम्यक्तीका ज्ञान सम्यग्ज्ञान होजाता है और
चारित्र सम्यक्चारित्र होजाता है। वह आत्मानन्दका भोग करता रहता है जिससे उसको परम तृप्ति रहती
है। उसके भीतर अहंकार नहीं रहा है, वह पुद्गलकर्मजनित अवस्थाओंको क्षणभंगुर मानकर उनमें राग
या मद नहीं करता है।

सम्यग्दर्शनके प्रभावसे उसकी कषाय जब निर्बल होजाती है, अप्रत्याख्यानावरणका उदय नहीं
रहता है तब वह श्रावकके व्रतोंको पालता हुआ आत्मानुभवका अभ्यास करता है। जब प्रत्याख्यानावरण
कषायका भी उदय नहीं रहता है तब वह मुनिके व्रतोंको साधना है। इसी अभ्याससे जब संज्वलन चार
कषाय व नौकषाय गल जाते हैं तब क्षीणमोह गुणस्थानमें पहुँच कर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंत-
राय कर्मोंका भी क्षय करके अर्हंत जीवन्मुक्त परमात्मा होजाते हैं। तब वे अनन्त सुखमें व यथाख्यात-
रूप चारित्र या वीतरागतामें मगन रहते हैं। उनको निरन्तर आत्म–रमणता रहती है। वे परमात्माका
साक्षात्कार सदा करते रहते हैं। उनके अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक-चारित्र व

अनन्त दानादि पात्र लब्धियां ऐसे नौगुण प्रगट होजाते हैं, वे निरन्तर आत्मीक सुखका स्वाद लेते हैं, उनका वर्तन अब केवल आत्मा द्वारा ही होता है। वे पाच इंद्रियोंसे व मनसे काम नहीं रहते हैं। वे संसारको नाशकर चुके हैं, कर्मोंका क्षय कर चुके हैं। अघातीय कर्म जली हुई रस्सीके समान हैं। जब उनका नाश आयुके अन्तमें होजाता है तब वे ही सिद्ध परमात्मा होजाते हैं। अर्हंत परमात्मा परम कृत-कृत्य, सन्तुष्ट व वीतराग बने रहते हैं। उनके दर्शनसे, उनकी भक्तिसे, उनके ध्यानसे, उनकी सहाय-तासे सम्यक्ती आत्माका अनुभव करता है। ॐ, ह्रीं, श्री, आदि मन्त्रोंके द्वारा अर्हंतका ध्यान करता है। इस सविकल्प ध्यानसे निर्विकल्प ध्यान पैदा होजाता है। ऐसा ध्यानी कालान्तरमें स्वयं अर्हंत हो जाता है। मोक्षमार्गमें शिरोमणि यह सम्यग्दर्शनरूपी रत्न है। हरएक भव्यको भेदविज्ञान द्वारा इसकी तृप्ति करनी चाहिये।

चौविहि दर्सन गाथा २६३ से २८८ तक।

(१५) चौविहि दर्सन उत्ति यउ, चष्य अचष्य संजुत्तु।
दर्सन चौविहि उत्ति यउ, भय विनास त भव्वु ॥ १ ॥
अवहहि केवल ममल पउ, भय विनास त भव्वु ॥ १ ॥
उवन सुमन भय उत्ति यउ, उवन न्यान विलयतु।
उवन सहावे ममल पउ, भय गलिया सुइ भव्वु ॥ २ ॥
मन विसेष सुइ नन्त मउ, पर पर्जय संजुत्तु।
पर्जय रत्त मूढ मइ, उवन न्यान विलयंतु ॥ ३ ॥
मन भय संक सली मउ, भवह सरन संजुत्तु।
सरनि सहावे सरनि गउ, उवन न्यान विलयंतु ॥ ४ ॥
मन भय उवन उपाइ लइ, अदिस्ट इस्ट भय उत्तु।
भय भी पर्जय दिस्टि रमु, न्यान सहाउ विलन्तु ॥ ५ ॥

मन भय उवन हिया रमउ, सहयार गुपित भय उत्तु ।
भय सहाइ ससंक पउ, निसंक न्यान विलंतु ॥ ६ ॥
मन सहाइ पर्जय रऊ, अभय लब्धि नो उत्तु ।
अस्नेह भय लाज रऊ, न्यान लब्धि विलयंतु ॥ ७ ॥
दिस्टि भयह संजुत्तु सुइ, पर पर्जय रत उत्तु ।
पर सहाव परजय रमन, न्यान दिस्टि विलयंतु ॥ ८ ॥
पर दिस्टिह पर्जय सहिउ, लोभह भय संजुत्तु ।
गारव गुरु लघु दिस्टिपउ, न्यान दिस्टि विलयंतु ॥ ९ ॥
रंजन रागु जु दिस्टि पउ, कलरंजन भय जुत्तु ।
दर्शन मोह भय सहिउ, न्यान दिस्टि विलयंतु ॥ १० ॥
दिस्टि दर्स भय भीउ सुइ, पर्जय दिस्टि रमंतु ।
पर दिस्टि भय भीउ सुइ, न्यान दिस्टि विलयंतु ॥ ११ ॥
उवन दिस्टि भय भीउ सुइ, हिय स्थान भय उत्तु ।
गुप्त दिस्टि हि भय सहिउ, निसल न्यान विलयंतु ॥ १२ ॥
दिस्टि भयह सुइ झडप मउ, दिस्टि न सहै ससंक ।
भय भीयो संसय सहिउ, चौगय दुख्य सहंतु ॥ १३ ॥
उवन दिस्टि सुइ झडप मउ, हिय गुहिज लष्य अलष्य ।
भयह सहावे भमन पउ, अभय न्यान विलयंतु ॥ १४ ॥

कमलह भय संजुत्त मउ, वयन असुद्ध चवंतु ।
विवर सहाव जु भय सहिउ, न्यान सहाउ गलंतु ॥ १५॥

विवरह वयनह भय सहिउ, मीउ वयन सुइ उत्तु ।
जीवह गुन भूली जियहु, न्यान सहाव विलंतु ॥ १६ ॥

भय भीओ पर्जय सहिउ, श्रुतं अनन्तु अनिस्ट ।
इस्ट सहावे भय सहिउ, क्रिया नरय संजुत्तु ॥ १७॥

वय तव श्रुत अन्यान मउ, विवरह मुह बोलंतु ।
भय भीओ पर्जय सहिउ, भव संसार भमंतु ॥ १८ ॥

इस्ट सहाउ न उपजई, अनिस्ट इस्ट दरसंतु ।
संक कंप सुइ मूढ मई, सहिउ नरय संपत्तु ॥ १९ ॥

कमल सहाव स उत्त जिन, सल्य संक विलयंतु ।
पर्जय विलय सरनि विली, न्यान रमन रस उत्तु ॥ २० ॥

भय षिपनक तं अमिय मउ, ममल रमन रस उत्तु ।
कमल सहावे न्यान पउ, विन्यान विंद दरसंतु ॥ २१ ॥

कमलह कलियो न्यान मउ, भय पर्जय विलयंतु ।
पर्जय विलय सुराग मउ, कमल जिनुत्तु संजुत्तु ॥ २२ ॥

मन भय दिस्टि सु झडप मउ, विवर मुखं भय उत्तु ।
जीभ जी भुली भमन मउ, न्यान कमल विलयंतु ॥ २३ ॥

ममलपाहुड ॥११७॥

उवन हिया सहयार मउ, सुक पर्जय रय उत्तु ।
नो भय विलय सुन्यान पउ, न्यान कमल विलसंतु ॥ २४ ॥
कमल कलिय जिन उत्तयउ, न्यान विन्यान संजुत्तु ।
भय षिपनक सुइ अमिय रस, उवन विंद सम उत्तु ॥ २५ ॥
उवन हिया सहयार मउ, उवन उवन संजुत्तु ।
उवन समय सं उवन पउ, विंद सुन्य सम उत्तु ॥ २६ ॥

अन्वय सहित अर्थ—, दर्शन चौविहि उत्तियउ) चार प्रकारका दर्शन कहा गया है (चष्य अचष्य संजुत्तु) चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन (अवहहि केवल ममल पउ) अवधि दर्शन और निर्मल केवल दर्शन (भय विनास तं भन्वु) यह दर्शन भयका दूर करनेवाला है तथा भव्य है–उत्तम है। सम्यक्ती जीवके तीन दर्शन व केवलज्ञानीके केवल दर्शन होते हैं। चक्षुके द्वारा पदार्थोंका सामान्य अवलोकन चक्षुदर्शन है। चक्षुको छोड़कर चार इंद्रिय और मन द्वारा जो सामान्य अवलोकन है वह अचक्षुदर्शन है। अवधिज्ञानके पहले जो होता है वह अवधि दर्शन है। ये तीन दर्शन अल्पज्ञानीके होते हैं। सम्यक्ती छद्मस्थ उनसे पदार्थोंको अवलोकन कर व ज्ञानसे विशेष जानकर उन जाननेयोग्य पदार्थोंमें रागद्वेष नहीं करता है। इसीसे ये दर्शन हितकारी हैं ॥ १ ॥

(उवन सुमन भय उत्तियउ) जिस समय मनमें भय पैदा होजाता है ऐसा कहा जाता है (उवन न्यान विलगतु) उसी समय प्रकाशित आत्मज्ञान विला जाता है। भय एक प्रकारका कषाय है। इस कषाय भावके आते ही आत्मामें रमणता नहीं रहती है (उवन सहावे ममल पउ) जिसके भीतर निर्मल आत्मीक स्वभावका पद प्रकाशित होता है (भय गलिया सुइ भन्वु) उसके सर्व भय गल जाते हैं, वह निर्भय होजाता है, वही प्रशंसनीय सम्यग्दृष्टी है ॥ २ ॥

(मन विमेष सुइ नत मउ) मनके भेदोंके कारण अर्थात् संकल्प विकल्प व अशुद्ध भावोंके कारण पाप बांधकर जीवको अनन्त जन्म संसारमें धारण करने पड़ते हैं। (पर पर्जय सजुत्तु) जहां पर परिणति रहती है। शरीरमें मगन होकर शरीरमें आपा मान जीव मिथ्यादृष्टी बना रहता है (पर्जय रत्तउ मूढ़ मइ) प्राप्त

शरीरमें आसक्त होकर मूढ बुद्धि जीव (उवन न्यान विग्यतु) अपने भीतर प्रकाशित आत्मज्ञानका लोप किये रहता है। उसको सम्यग्दर्शन सहित आत्मज्ञान नहीं प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

(मन भय सक सली मउ मनके भीतर होनेवाले भय, शङ्का व शल्योंके कारण (भवह सरन सजुत्तु) यह जीव संसारमें भ्रमण किया करता है (मगनि महाने मगनि गउ, संकल्प, विकल्प भ्रमण स्वभावधारी हैं। उनके होनेके कारण कर्मको बांध जीव भ्रमण किया करता है (उवन न्यान विलयन्तु) तथा सम्यग्ज्ञानका लोप किये रहता है ॥ ४ ॥

(मन भय उवन उगाइ लइ) मनके भीतर भय या शङ्का उत्पन्न होनेके कारणसे (अदिष्ट इस्ट भय उत्तु) उसको अदृष्ट इष्ट जो नहीं प्रगट दिखनेवाला परम हितकारी परमात्मपद है उससे भय रहता है ऐसा कहा गया है अर्थात् जो आत्मीकपदकी ओर जानेमें भय व शङ्का करता है उसको अपने आत्माके स्वभावका दृढ निश्चय नहीं होता है (भय भी पर्जय दिस्टिगु) वह धर्ममार्गसे भयभित होकर पर्यायदृष्टी या मिथ्यादृष्टिमें या वर्तमान प्राप्त शरीरके अहंकार तथा मोहमें रमता रहता है, इंद्रिय विषयभोगोंमें तन्मय रहता है (न्यान महाउ विलतु) अपने शुद्ध आत्मज्ञानके स्वभावको नहीं जान पाता है ॥ ५ ॥

(मन भय उवन हिया रमउ) मनमें भय या शङ्का उत्पन्न होनेसे हृदय उसी शंकामें रम जाता है (महयार गुपित भय उत्तु) इसी कारण उसको अपने गुप्तज्ञानकी तरफ भय या शंका कही जाती है अर्थात् उसे अपने गुप्त शुद्ध ज्ञानका निश्चय नहीं होता है (भय सहाइ ससक पउ) भयके कारण निःशंकित पदको न पाकर सशंकित पदमें जमा रहता है (निसक न्यान विलतु) उसको संशय रहित ज्ञान नहीं होने पाता है। वह संशय मिथ्यादृष्टी बना रहता है ॥ ६ ॥

(मन सहाइ पर्जय रऊ) मनके दोषका कारण वह प्राप्त शरीररूपी पर्यायमें रत होजाता है (अभय लब्धिनो उत्त) उसको निर्भयपनेकी लब्धि नहीं प्राप्त होती है अर्थात् वह निःशंकित सम्यग्दर्शनको नहीं प्रगट कर पाता है ऐसा कहा गया है (अस्नेह भय लाज रऊ) वह जगतके स्नेहमें, भयमें, व लज्जामें रत रहता है। किन्हींसे प्रेम करता है, किन्हींसे भय करता है, किन्हींसे लाज करता है (ज्ञान लब्धि विज्ञयतु) उसको शंका रहित, भय रहित, लाज रहित, राग रहित, व वीतरागता सहित सम्यग्ज्ञानका व स्वसंवेदन ज्ञानका लाभ नहीं होपाता है ॥ ७ ॥

(दिरि मयह सजुत हुई) वह जीव भयकी या शंकाकी दृष्टि सहित होता हुआ मिथ्यादृष्टि होता है (पर पर्जय रत उत्त) वह अपने आत्माकी शुद्ध परिणतिको छोडकर कर्मजनित परिणतिमें या अशुद्ध रागादि भावोंमें रत होजाता है (पर सहाव पर्जय रमन) वह पर द्रव्यके स्वभावमें या पर परिणतिमें रमण करता रहता है (ज्ञान दिस्टि विग्यतु) उसको सम्यग्ज्ञानकी दृष्टि प्राप्त नहीं होती है ॥ ८ ॥

(पर दिस्टिह पर्जय सहिउ) मिथ्यादृष्टिके कारण वह शरीरको ही आपा मानकर उसी पर्यायदृष्टिका व्यामोह रखता है (लोभय भय सजुत्त) उसको इष्ट पदार्थोंके पानेका व रखनेका व भोगनेका लोभ होता है व अपने परिग्रहके चले जानेका व विगड़नेका व मरणका भय बना रहता है (गारव गुरु लघु दिष्टि पउ) उसको अहंकार होता है जिससे वह अपनेको बड़ा व दूसरोंको छोटा देखता है या दूसरोंको बड़ा अपनेको छोटा देखकर मनमें अहंकारसे दुःखी होता है (न्यान दिस्टि विग्यंतु) इसकी सम्यग्ज्ञानकी दृष्टि नहीं खुलती है । सम्यग्दर्शनके अभावसे वह क्रोध, मान, माया, लोभादि कषायोंके भीतर रंजायमान रहता है ॥९॥

(रजन राग जु दिष्टि पउ) उसके भीतर ऐसा राग देखा जाता है जिससे वह मानवोंको राजी रखनेमें प्रसन्न रहता है (कल रजन भय उतु वह मिथ्यादृष्टी शरीरमें व शरीरके क्षणिक सुखमें मगन रहता है तथा शरीरके छुटनेका बडा भय मानता है । (दर्सन मोहे भय सहिउ वह दर्शन मोहनीय कर्मके उदय सहित सदा भयभीत व शंकित रहता है (न्यान दिष्टि विग्यंतु) उसके सम्यग्ज्ञानका प्रकाश नहीं होता है ॥१०॥

(दिष्टि दर्सनय भीउ सुइ , वही मिथ्यादृष्टी सम्यग्दर्शनके प्रकाश करनेसे स्वयं भयभीत बना रहता है, उसको आत्मज्ञानकी वैराग्यमय चर्चाके सुननेका भय रहता है । (पर्जय दिस्टि रमतु) वह शरीरके मिथ्या मोहमें रमन करता रहता है (पर दिष्टि भय भीउ सुइ) वह मिथ्यादृष्टि स्वयं आत्माकी श्रद्धासे विमुख रहता हुआ भयभीत रहता है (न्यान दिष्टि विग्यतु) उसके सम्यग्ज्ञानका प्रकाश नहीं हो पाता है ॥ ११ ॥

(उवन दिष्टि भय भीउ सुइ) प्रकाश करने योग्य सम्यग्दर्शनसे वह स्वयं भयभीत रहता हुआ (हिय स्थान भय उत्तु) हृदयके स्थानमें भयसे पूर्ण रहता है ऐसा कहा गया है (गुप्त दिष्टिह भय सहिउ) गुप्त शुद्ध सम्यग्दर्शनसे भय रखता हुआ (निसल न्यान विग्यंउ) शल्य रहित ज्ञानको लोप किये रहता है। वह मिथ्यादृष्टि आत्मज्ञानकी चर्चा ही नहीं सुनता है । सशंक रहता हुआ आत्मापर श्रद्धा नहीं लाता है। उसका ज्ञान माया, मिथ्या, निदान शल्योंसे रहित नहीं हो पाता है । ॥ १२ ॥

(दिस्टि भयह सुइ झडप मउ) वह भयसे पूर्ण व शंकासे पूर्ण व आकुलतासे पूर्ण दृष्टि रखता है। (नोट झडप कोई संस्कृत शब्द नहीं मालूम होता है। प्रचलित भाषाका शब्द होगा जो ग्रंथकर्ताके समयमें प्रचलित होगा। झडपके अर्थ शीघ्रताके भी है, चंचलताके भी है) या वह मिथ्यादृष्टि ऐसा चंचल होता है कि उसका भाव शीघ्र२ बदलता रहता है, वह थिर बुद्धिवाला नहीं होता है (दिस्टि न मडै ससक) उसको सम्यग्दर्शन सहन नहीं होता है अर्थात् वह तत्वज्ञानको पी नहीं सक्ता है, वह शंका रहित होता है (भयभीओ ससय सहिउ) ऐसा भयभीत व संशयसे पूर्ण मिथ्यादृष्टी जीव (चौगइ दुष्ट सहेतु) चारों गतियोंके दुःख सहता है ॥ १३ ॥

(उवन दिस्टि सह झडप मउ) ऐसी चंचल स्वभावपनेकी दृष्टि जब मिथ्यादृष्टीके भीतर स्वयं उत्पन्न होती है (हिय गुहिज रुय्य अलष्य) तब उसको हृदयमें गुप्त जानने योग्य आत्माके शुद्ध स्वभावका ज्ञान नहीं होपाता है (भयह सहाव भमन पउ) वह भयभीत स्वभाव रखता हुआ भ्रमणके चक्करमें पडा रहता है (अभय ज्ञान विलयन्तु) उसको भय रहित निर्भय सम्यग्ज्ञानका लाभ नहीं हो पाता है ॥ १४ ॥

(कमलह भय सजुत्त मउ) जब मिथ्यादृष्टीका कमलाकार मन, भय व शङ्का सहित होजाता है (वयन असुद्ध यवतु) तब उसके वचन अशुद्ध निकलते हैं। अर्थात् उसकी सर्व कथनी या उसका सर्व उपदेश या उसकी सर्व वार्ताऍं अशुद्ध सदोष मिथ्यात्वपूर्ण व संसार–वर्द्धक निकलती है (विवर सहाउजु भय सहिउ) उसका स्वभाव दोष सहित होजाता है व भयपूर्ण होता है (यान सहाउ गलतु) उसका ज्ञान स्वभाव मानो गल जाता है। मिथ्यादृष्टीका मन रागद्वेष भय व शंकासे पूर्ण होता है। उसकी वचन प्रणाली ऐसी ही होती है। उसका वर्तन ऐसा ही होता है। उसको आत्मज्ञानकी तरफ जानेकी बुद्धि ही नहीं रहती है। वह मिथ्यात्वके अंधकारसे व्याप्त होजाता है ॥ १५॥

(विवरह वयनह भय सहिउ) यह दोष सहित व भय सहित वचनोंको कहता रहता है (भीउ वयन सुइ उत्त) उसके वचनोंको भीरुके वचन या कायरोंके वचन कहते हैं (भीवह गुन भूली जियहु) वह शुद्ध जीव पदार्थके गुणोंको बिलकुल भूले हुए रहता है। वह कभी यह स्मरण नहीं कर सक्ता है कि मैं निश्चयसे परमात्मा सिद्धके समान ज्ञाता दृष्टा अविनाशी आत्मा हूँ (न्यान सहाव दिलतु) इसका ज्ञान स्वभाव लुप्त रहता है॥१६॥

(भय भीओ पर्जय सहिउ) वह भयभीत सशंकित प्राणी शरीरके सुख या दुःखमें मग्न रहता है

(श्रु अनत अनिष्ट) और ऐसी कथनी, व चर्चा व वार्ताओंको सुनता है जिससे उसका बुरा अनंतकाल तक होगा। वह स्त्री कथा, भोजन कथा, देश कथा व राजा कथा आदि शृंगार रस कथाओंमें व रागद्वेषवर्धक कथाओंमे रंजायमान होकर घोर पाप बांध लेता है (इ ड सहावे भय महिड) वह अपने हितकारी आत्म-स्वभावकी ओर भय सहित व शङ्का सहित रहता है (क्रिया नाय मजुत्त) उसका सर्व क्रियाकाण्ड व आचरण ऐसा होता है जिससे वह नरकायु बांध लेता है। हिंसानन्द, मृषानन्द, चौर्यानन्द, परिग्रहानन्द, रौद्रध्यानमें तन्मय रहनेसे नर्कायुका वन्ध पड़ जाता है ॥ १७ ॥

(दय तव शुत अन्यान मउ) वह मिथ्यादृष्टी अज्ञानमई मिथ्या व्रत, तप, व शास्त्रकी ओर लेजानेवाली वार्तोंको (विवाह मुह बोलतु) अपने सदोष मुखसे बोला करता है (भय भीओ पर्जय सहिउ) ऐसा धर्मका भीरु व कायर प्राणी, पर्यायमें रत रहता हुआ (भव संसार भमतु) अनेक जन्मोसे भरे हुए संसारमें भ्रमण किया करता है ॥ १८ ॥

(इष्ट सहाव न उपजई) हितकारी अपने आत्माके स्वभावके ज्ञानको वह मिथ्यादृष्टी नहीं प्राप्त करता है (अनिस्ट इस्ट दरसतु) जिससे आत्माका हित न होकर अहित होगा, ऐसी बातोंको ही अच्छा देखा करता है–विषय कषायोंमें ही सुख मानता है (सक कष्य मुइ दृढ मइ सहिउ नाय सातु) वह विचारा शङ्का, कांक्षा व मूढ बुद्धि सहित रहता हुआ स्वयं नरक प्राप्त कर लेता है ॥ १९ ॥

(कमल सहाव स उत्तजिन) श्री जिनेन्द्र भगवानने कहा है कि यह आत्मा कमलके समान सदा प्रफुल्लित स्वभाव है (सल्य सक विलयतु) न उसमें कोई शल्य है न कोई शंका है (पर्जय विलय सानिविली) जब पर्याय दृष्टि या मिथ्यादृष्टि चली जाती है और आत्मामें आत्माकी सम्यग्दृष्टि पैदा होजाती है तब संसारका भ्रमण विला जाता है (न्यान रमन रस उत्तु) तब आत्मज्ञानकी रमणतासे आनन्द रसका स्वाद आता है, सिद्धावस्थाका आनन्द प्रगट होता है ऐसा कहा जाता है ॥ २० ॥

(भय विपनक त अमिय पउ) वह आत्मीक पद सर्व भय शङ्काओंको मिटानेवाला है, वह अविनाशी अमृतमई पद है (ममल रमन रस उत्तु) वहां शुद्ध स्वभावकी रमणताका स्वाद आता है, ऐसा कहा गया है (कमल सहावे ज्ञान पउ) वह प्रफुल्लित स्वभावधारी ज्ञानमई पद है (ज्ञान विं दरसतु वहां ज्ञानका अनुभव या शुद्धात्मानुभव दिख जाता है ॥ २१ ॥

(कमलइ कलियो ग्यान पउ) उस कमलसमान आत्मामें ज्ञानमई कलियें या पांखड़ियें विकसित हो-रही हैं (भय पर्नय विलयन्तु) वहां सर्व भयकी अवस्थाएं विला गई हैं (पर्जय विलय सु राग मउ) तथा रागमई अवस्थाएं भी दूर होगई हैं, वैराग्यका प्रकाश होगया है (कमल जिनुत्तु सजुत्तु) ऐसा जिनेन्द्रकथित कमल-समान आत्मा है ॥ २२ ॥

(मन भय दिस्टि जु झडप मउ) मन सम्बन्धी विकल्प, भय व चंचल स्वरूप आकुलतामय दृष्टि (विवर मुख भय उत्तु) सदोष मुखसे भयोत्पादक कथन व (जीभ जी मुली भमन मउ बकबक करके चलनेवाली जबा-नकी चंचलता (ज्ञान कमल विश्यतु) वे सब बातें आत्मज्ञानमय कमलके विकाससे विला जाती हैं अर्थात् जब आत्मा आत्मस्थ होकर आत्मानुभव करता है तब वहां न मनकी चंचलता है, न कोई भय है, न कोई वचनके प्रयोग हैं, न बाहर जल्प है, न अन्तर जल्प है। सर्व मन व वचन सम्बन्धी विकार नाश होजाते हैं ॥ २३ ॥

(उवन हिया सहयार मउ) जब हितकारी व सहकारी सम्यग्दर्शनका भाव पैदा होजाता है (सुक पर्जय रय उत्तु) तब अपनी ही आत्मीक शुद्धावस्थामें रति होजाती है ऐसा कहा गया है (नो भय विलय सु ज्ञान पउ) भय नामका नोकषाय बिलकुल विला जाता है—सम्यग्ज्ञानका पद झलक जाता है (ग्यान कमल विकसतु) शुद्ध आत्मज्ञानरूपी कमल प्रफुल्लित होजाता है ॥ २४ ॥

(कमल कलिय जिन उत्त यउ) जिनेन्द्र भगवानने कहा है कि वह ज्ञानमय कमल है (ग्यान विन्यान सजुत्त) जो भेदविज्ञानसे या सम्यग्ज्ञानसे पूर्ण है (भय षिपनक हुइ अभिय रस) वह सर्व भयसे रहित है, वही अमृत-रससे पूर्ण है (उवन विंद सम उत्तु) उसे ही प्रगट समभाव सहित ज्ञानानुभव कहते हैं ॥ २५ ॥

(उवन हिया सहयार यउ) वह प्रगट सम्यग्दर्शन परम हितकारी व सहायकारी है (उवन उवन रुजुत्तु) वह उदयरूप अपने प्रकाशको लिये हुए है (उवन समय स उवन पउ) इसीको उदयरूप आत्मा कहते हैं, इसीको सम्यक् प्रकाशित पद कहते हैं। (विंद सुन्य सम उत्तु) इसीको शून्य भाव या निर्विकल्प भावका अनुभव कहते हैं, इसीको समभाव कहते हैं ॥ २६ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें यद्यपि चार प्रकार दर्शनका नाम लिया गया है तथापि इसमें सम्यग्द-र्शनके निःशंकित अंगका ही विस्तारसे कथन किया गया है। सम्यग्दृष्टी तत्वोंमें शंका रहित होता है।

ममलपाहुड
॥१२३॥

उसको आत्मा और अनात्माका यथार्थ भेदविज्ञान होता है। उसको पूर्ण निश्चय है कि यह आत्मा अपनी सत्ता भिन्न रखता हुआ भी परम शुद्ध एकाकी द्रव्य है, यह ज्ञानदर्शन आनन्दमय परम वीतराग है। यह ज्ञानावरणादि आठों कर्मोंसे, रागद्वेषादि भावकर्मोंसे, शरीरादि नोकर्मोंसे भिन्न है। सम्यक्ती सदा निर्भय रहता है। निश्चयनयसे वास्तवमें जब वह विचार करता है तब भी उसे सात भय नहीं होते हैं। व्यवहारसे विचार करनेपर भी वह सात भयरहित होता है। निश्चयसे वह समझता है कि मेरा लोक मेरा शुद्धात्मा है, मेरा परलोक या उत्कृष्ट लोक मेरा शुद्धात्मा है। अपनेको परमात्मा स्वभावसे काहेका भय? निश्चयसे मेरेको अपने आत्माके शुद्धस्वरुपकी वेदना है। उसीका अनुभव है। मेरे भीतर अन्य कोई सांसारिक सुख व दुःखकी वेदना ही नहीं है जिसका मुझको भय हो। न मुझे अरक्षा भय है, क्योंकि मेरा स्वरूप अखंड अविनाशी है, इसे रक्षाकी आवश्यक्ता नही। न इसे अगुप्तिभय है। यह अपने स्वरूपमें मगन है। इसका ज्ञान-दर्शन सुख वीर्यादि गुण सम्पदा इसीमें है, उसे कोई चुरा नही सक्ता, छीन नही सक्ता। न इसे मरण भय है। मरण तो आत्माका है ही नही, यह सदा ही अपने स्वभावसे अमर है। न इसे अकस्मात् भय है। आत्माका कोई नाश कर नहीं सक्ता। इसमें किसी अकस्मात्की संभावना नही है। इसतरह मैं सातो भयोंसे रहित परम अभय हूं, ऐसा निश्चयनयसे विचार सम्यग्दृष्टीको होता है। व्यवहारनयसे भी वह सातो भयोंसे रहित होता है। वह विचारता है कि मुझे अपने कर्तव्यका पालन निर्भय होकर करना चाहिये। लोगोके कहने सुननेका क्या भय? इस तरह उसे इस लोक भय नहीं होता है।

परलोकमें मैं अपने कर्मानुसार कहीं भी जन्म धारण करूँ। मै सब सुख दुःख ज्ञाता दृष्टा होकर सहलूंगा। मुझे परलोकका भय नहीं। मै रोग न होनेका यत्न रखता हूँ। यदि कर्मके उदयसे रोग शरीरमें होजायगा, मैं समतासे सहन करूँगा। भय करना व्यर्थ है। मै अपनी आयुकर्मके क्षय विना मर नहीं सक्ता। मेरा पुण्य मेरा रक्षक है, मुझे अनरक्षा भय नहीं है। मै अपनी सम्पदाका योग्यतया रक्षाका प्रबन्ध करता हूँ, ऐसा करते हुए भी यदि सम्पदा चली जावे तो मुझे कोई भय नहीं है। जबतक मेरे पुण्यका उदय है, मेरी सम्पत्ति कहीं जा नही सक्ती। मुझे अगुप्तिभय नहीं है। मेरा मरण तब ही होगा जब आयु-कर्म क्षय होगा। आयुकर्मको कोई ले नही सक्ता। मुझे मरणका क्या भय? मै अकस्मात् न होनेका यथा-शक्ति प्रयत्न रखता हूं, फिर भी यदि कोई घटना होजायगी, उसमें मेरे ही पापकर्मका उदय होगा, उसे

मैं सह लूंगा, मुझे अकस्मात् भय नहीं। इसतरह विचारकर वह सम्यक्ती व्यवहारमें भी निभय रहता है। वह साहसी वीर योद्धाके समान संसारमें जीवनयात्रा बिताता है। वह कभी कायर, भयभीत, सशंक नहीं होता है।

मिथ्यादृष्टी सदा ही सशंक व भयभीत रहता है। मिथ्यादृष्टीको अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपकी श्रद्धा नहीं होती है। उसके भीतर यातो विपरीत ज्ञान होता है कि यह शरीर ही आत्मा है या संशय होता है कि आत्मा है या नहीं, नित्य है या अनित्य है, शुद्ध है या अशुद्ध है। उसे मोक्षके अतीन्द्रिय सुखका श्रद्धान ही नहीं होता है। इंद्रियजनित सुखको ही सुख मानता है वा उसको संशय होता है कि अतीन्द्रियसुख है या नहीं। तत्वोंमें शंका सहित होता हुआ वह मोक्षका व मोक्षमार्गका ठीकर निश्चय नहीं कर पाता है।

वह ऐसा विषयसुखका मोही होता है, कुटुम्ब परिवारका मोही होता है। धन सम्पदाका लोभी होता है कि उसको धर्म चर्चा व आत्मचर्चा व वैराग्यकी वात सुननेसे ऐसा भय लगता है कि कहीं सुन लूंगा तो गृहस्थसे उदास होना पड़ेगा, दान धर्म करना पडेगा, विषयसुख त्यागने पड़ेंगे, वह सात प्रकार भयोंसे ग्रसित होता है। जीवनमें सदा ही लोगोंके कहने सुननेका भय करता है। परलोकमें कहीं नरकगतिमें न चला जाऊँ, पशु गतिमें दुःख न उठाऊँ ऐसा भय रखता है। मेरा कोई रक्षक नहीं दीखता, मै कैसे जीवन विताऊँगा ! मेरा धन कोई लेजायगा तो क्या करूँगा। कहीं मरण न आजावें। मरण आजायगा तो सवकुछ छोड़ना पड़ेगा, कहीं छत न गिर पड़े, पानीमें न डूब जाऊँ, गाडीसे न गिर पडूँ। इसतरह सात प्रकारके भयोंसे नित्य ग्रसित रहता है। आत्मासे वाहरी पदार्थोंका मोह व उनके चले जानेका भय मिथ्यातीको सदा आकुलित रखता है। शंका तथा भय दोषोंके कारण मिथ्यात्वीको न कभी आत्माका विश्वास होता है न कभी वह आत्माका अनुभव कर सक्ता है। स्वात्मानुभव तव ही होता है जव सम्यक्तीके भीतर निःशंक व भय रहित भाव जमा रहता है। भयभीत व सशंकित प्राणी कभी भी आत्माका अनुभव नहीं कर सक्ता है। जिसको शरीरादि पर पदार्थोंका मोह न होगा वह अवश्य निर्भय हो आत्मानुभव कर सकेगा। सम्यक्ती जीव संकल्प विकल्पोंको त्यागकर निर्विकल्प आत्माका ध्यान निश्चित होकर कर सक्ता है जव कि मिथ्यादृष्टी जीवका मन अनेक प्रकारके संकल्प विकल्पोंमें फंसा रहता है। वह रातदिन

समयपाहुड
॥१२५॥

विषयोंकी इच्छा करता है। विषय चले न जावें इसका निरन्तर भय रखता है। उसके भीतर मायाचार, मिथ्यात्व व निदान नामकी तीन शल्ये रहती हैं। मिथ्यादृष्टी यदि कोई दान धर्म परोपकारादि काम करता है तौ उसके भीतर मायाचार, मिथ्यात्व या निदानकी शल्य वनी रहती है।

मिथ्यात्वी जीव मनके संकल्प विकल्पोंमें–संसारके मोहमें लिपटा रहता है इसलिये वारवार मिथ्यात्वादि कर्म बांधकर एकेन्द्रियादि अनन्त जन्म धारण करता हुआ जन्म मरणके दुःख सहता है, वह पर्यायबुद्धि होता है, लोकलाजका भय रखता है, तृष्णाके भीतर फंसा रहता है, धनादि होनेपर बड़ा अहंकार करता है, उसको क्रोधादि कपायोंके करनेमें आनन्द भासता है, परको दुःखी करनेमें राजी रहता है। वह अपने किसी कामको सिद्ध करनेके लिये या प्रतिष्ठा पानेके लिये जनताको प्रसन्न करनेवाली वातें या क्रियाएं करता है। अशुद्ध मन रखनेके कारण मिथ्यादृष्टी अशुद्ध ही उपदेश देता है–विषयोंके बढानेकी तरफ झुकता है। उसका उपदेश संसारवर्द्धक होता है, यह भयभीत होता है, इसलिये काय-रोकेसे वचन कहता है। खोटी कथाओंमें मगन रहता है। ऐसा मिथ्यादृष्टी जीव हिंसावन्दी आदि रौद्र ध्यानके कारण नर्क चला जाता है या इष्टवियोगादि आर्तध्यानके कारण पशुगतिमें चला जाता है। मिथ्या-दृष्टी संसारके भीतर चारों ही गतियोंमें भ्रमण कर दुःख उठाता है। सम्यग्दृष्टी आत्मज्ञानी निभय व निशंक होकर आत्मानन्दका स्वाद लेता है। उसको भेदविज्ञान होता है, वह मोक्षमार्गी है। उसको अवश्य सिद्धपद प्राप्त होगा। वह साम्यभावमें रमणकर कर्मोंकी निर्जरा करता हुआ परमसंतोषी रहता है–निशं-कित अंगको भलेप्रकार पालकर सुखी रहता है।

---

(१६) कमल छंद गाथा २८९ से ३०२।

कमलं कमल विसेप मुनी, कमल भाव संसुद्ध पओ।
कमलह केवल ओत समु, मुक्ति पंथ सिवसुख मओ ॥ १ ॥
कमलं उवनं कमलं सुवनं, कमलं अपयं कमलं सुरयं।
कमलं विन्यान पयोहरहं, कमलं पय पर्मपदं ममलं ॥ २ ॥

कमलं पय अर्थ समुच्चियऊ, कमलं समभाउ परिष्ठियऊ ।
कमलं सुइ सयन स उत्तियऊ, अर्थह जि अर्थ ति अर्थ पऊ ॥३॥
सम अर्थ सुयं परमार्थ पऊ, कमलं सम समय संजुत्ति यऊ ।
कमलह सहकार अर्थ ममलो, कललंकृतु कम्म सुयं विलयो ॥४॥
कमलह अवयास स उत्तियऊ, अवयासह नन्तानन्त पऊ ।
कमलह कम्मान वंध विलओ, कमलह सिव सासय पुण्य पओ ॥५॥
कमलह उववभ्रवि रयन पऊ, कमलह कम्मा सौ गलि गयऊ ।
कमलह जिन उत्तो ममल पऊ, कमलह भय सल्य संक विलऊ ॥६॥
कमलह परिनवै सु पर्म पऊ, परमानहं नन्ता नंतियऊ ।
कमलह लंकृत तं लीन पऊ, कमलह विन्यान न्यान समऊ ॥७॥
कमलह सम समय सु दिस्टि मऊ, कमलह सहकार सुनन्ति यऊ ।
कललंकृत कम्मु नंत विलओ, कमलह परम पुनंतु मऊ ॥ ८ ॥
कमलह कलियो सुइ न्यान पऊ, नानाप्रकार विन्यान मऊ।
कमलह अवयास जिनुत्ति पऊ, अन्मोय विरोह विलंति यऊ ॥९॥
कमलह कम्मान न उत्ति यऊ, कमलह परजाय विलन्ति यऊ ।
कमलह परु सयन न उत्ति यऊ, कमलह परिनाम जिनुत्ति यऊ ॥१०॥
कमलह हिय यार स उत्ति यऊ, कमलह परजय विरन्ति यऊ ।
कमलह ववन संजुत्ति यऊ, कमलह सुइ नंतानन्त पऊ ॥ ११ ॥
कमलह अन्मोय न्यान ममलु, कमलं पर्जाय सुयं विलउ ।

कमलह सुइ सहजानन्द मऊ, कमलह जनरंजन सुय विलऊ ॥ १२ ॥
कमलह अन्मोय सु सिद्धि पऊ, कमलह कम्मान वंधु षिपऊ ।
कमलह सुइ मुक्ति सुपर्म पऊ, भय षिपिय भव्वु सुइ सिद्धि गऊ ॥ १३ ॥

घत्ता—

इय कमलेन सहाओ, पर्म भाव सुइ पर्म मुनी ।
तं परमानन्द सहाओ, ममल मुक्ति संजुत्तु मुनी ॥ १४ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(कमलं कमल विसेष मुनी) कमलसे यहां आत्मासे प्रयोजन है जिसमें सम्यग्दर्शनका प्रकाश होगया है, सम्यग्दृष्टी प्रफुल्लित कमलके समान शोभायमान होता है। उन कमल समान सम्यग्दृष्टी महात्माओंमें मुख्य कमल विशेष आत्मध्यानी साधु महाराज होते हैं (कमल भाव सशुद्ध पयो) जिनके भीतर परमशुद्ध पद्धारी आत्माका आनन्दमय भाव प्रगट होता है (कमलः केवल ओत समु) उनका आत्मा केवल समताभावसे ओतप्रोत भरा होता है। मुक्तिपथ सिवसुखमओ) उनका शुद्धोपयोग भाव मोक्षका मार्ग है, वही मोक्षके आनन्दसे पूर्ण है। अर्थात् जब साधु शुद्धात्मानुभवमें तल्लीन होते हैं तब उनके कर्मोंकी निर्जरा भी होती है व उनको अतीन्द्रिय आनन्दका भी लाभ होता है। जिन्होंने मोक्ष पाई है व पारहे हैं व पावेंगे वे सब स्वात्मानुभवरूपी भोगसे ही पाई है, पारहे हैं व पाएंगे ॥ १ ॥

(कमल उवन कमल सुवन) ऐसा स्वात्मानुभवमें रमण करनेवाला कमल समान प्रफुल्लित आत्मा ही प्रकाशरूप है व यही कमल शोभनीक वन है, जहां आत्मा बड़े प्रेमसे रमण करता है (कमलं अपय कमल सुय) यही कमल सम आत्मा अविनाशी है व यही सरस मदिरा है जिसका पान कर योगी आत्मामें उन्मत्त होजाते हैं (कमलं विन्यान पयोहरह) यह कमल समान आत्मा ही सम्यग्ज्ञानरूपी मेघ है जिससे आत्मीक अमृतजलकी वर्षा होती है (कमलपय पर्मपदं ममलं) यह कमल सम आत्मीक पद ही शुद्ध श्रेष्ठ पद है जहां मुमुक्षु जीव अपना स्थान जमाते हैं ॥ २ ॥

(कमल पय अर्थ समुच्चियऊ) यही आत्मकमल सर्व पदोंके अर्थोंका समूह है। अर्थात् जहां शुद्धात्माके अनुभवका प्रकाश है वहां द्वादशांगवाणीका सर्वस्व प्राप्त होगया, ऐसा जानना चाहिये क्योंकि आत्मा-

भव कराना ही सब द्वादशांगवाणीके पदोंके अर्थोंका प्रयोजन है। (कमल समभाउ परिष्यियऊ) इसी आत्मा-रूपी कमलमें समताभावकी परीक्षा है। अर्थात् जहां स्वात्मानुभव है वहांसे नियमसे रागद्वेषरहित सम-भाव पाया जाता है। जिसको शुद्धात्माका अनुभव न हो और वह रागद्वेष न करके समभाव रक्खे तौ वह सच्चा समभाव न होगा। उसका शांतभाव किसी अंतरंग शल्यको लिये हुए होगा। कोई स्वार्थसिद्धिका भाव उसकी जड़में होगा या मान्यता पानेका या आगामी भोग पानेका या किसीको रिझाकर प्रयोजन सिद्ध करनेका, परन्तु जहां सम्यग्दर्शन सहित निजात्माकी तल्लीनता होगी वहां ही सच्चा वीतरागभाव पाया जायगा (कमलं सुइ सयन सु उत्तियऊ) यह आत्मारूपी कमल स्वयं ही एक शय्या कही गई है, जहां योगीगण निश्चिन्त होकर विश्राम करते हैं। योगियोंको लेटनेकी शय्या निज आत्माका अनुभव है (अर्थह जिअर्थ तिअर्थ पऊ) वही सर्व पदार्थोंमें सार पदार्थ है, वही रत्नत्रयकी एकताका पद है—जहां आत्मा स्वस-मयरूप है, समयसार रूप है वही सर्व पदार्थोंका सार है तथा वही निश्चय सम्यग्दर्शन है, निश्चय सम्य-ग्ज्ञान है व निश्चय सम्यक्चारित्र है ॥ ३ ॥

(सम अर्थ सुय परमार्थ पऊ) वही समतामय पदार्थ है, वही स्वयं परमार्थपद है, इसी पदमें अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु रमण करते हुए परमेष्ठी कहलाते हैं (कमल सम समय सुत्त उ पऊ) यह आत्मारूपी कमल समभाव सहित चारित्रसे पूर्ण है। यही स्वसमयरूप परिणति है, पर समयकी परिणतिका अभाव है (कमलइ सहकार अर्थ ममलो) प्रफुल्लित आत्मानुभव सहित आत्मा ही निर्मल भावधारी पदार्थ है (कमलं हुतु कम्म सुयं विलयो) जिसमें रमण करनेसे शरीरकी शोभा बढानेवाले कर्म स्वयं विला जाते हैं अर्थात् जिन कर्मोंके उदयसे पुन शुभ या अशुभ शरीर प्राप्त हो वे कर्म गल जाते हैं ॥ ४ ॥

(कमलइ अवयास स उत्तियऊ) इस प्रफुल्लित आत्मानुभवी कमल समान आत्माको आकाशके समान निर्मल व अनन्त कहा गया है (अवयासह नन्तानन्त पऊ) जिसमें अनन्तानन्त पदार्थोंका स्वरूप अवकाश पाजाता है अर्थात् आत्माके ज्ञानमें ऐसी शक्ति है कि लोकालोक सब झलकता है। सर्व ही द्रव्य अपने अनन्त गुणपर्याय सहित प्रकाशित होते है तौभी उसके अवकाशदानकी शक्ति कम नहीं होती है। ऐसे अनन्त लोकालोक हों तौभी आत्माके ज्ञानमें समा सक्ते हैं। कमलइ वर्धमान बन्ध विलओ) इसी आत्मानुभव-रूपी कमलके प्रभावसे कर्मोंके बन्ध उसी तरह विला जाते हैं जैसे सूर्यके तापसे पानी भाफ बनकर विला

ममलपाहुड
॥१२९॥

जाता है। (कमलह पिव सासय सुण्य पओ) यही कमल समान आत्मा ही मोक्षके अविनाशी सुखका स्थान है। जहां आत्माका आत्मामें रमण होता है वहीं मोक्ष-सुखका स्वाद आने लगता है ॥ ५ ॥

(कमलह उवत्रत्रपि रयन पऊ) इसी कमलमें रत्नत्रय पद झलक रहा है निश्चय रत्नत्रय आत्मसमाधि भाव है सो इसमें चमक रहा है (कमलह कम्मा सौ गलि गयऊ) इस आत्मानुभव कमलके प्रभावसे नवीन कर्मोंका आस्रव निरोध होजाता है-संवर भावका प्रकाश होता है कमलह जिन उत्तो ममल पऊ इसी कमलको जिनेन्द्र भगवानने शुद्ध पद कहा है, शुद्धोपयोग कहा है जो साक्षात् कर्मोंके संवर निर्जराका कारण है (कमलह भय सक सल्य विलऊ) इस कमलमें न कोई भय है, न कोई शङ्का है, न कोई शल्य है। यह आत्म-रमणरूपी भाव निर्भय, निःशंक व निःशल्य है ॥ ६ ॥

(कमलह परिनवै सु पर्म पऊ) यही आत्मानुभवरूपी भाव परमपद मोक्षमें परिणमन कर रहा है। अर्थात् इसी शुद्धोपयोगके रमणसे परम शुद्धोपयोगमय मोक्षका लाभ होता है (पमानह नन्त नंत पऊ) इसीसे अनन्तानन्त पदार्थोंका जाननेवाला केवलज्ञानरूपी प्रत्यक्ष प्रमाण प्रगट होजाता है। केवलज्ञानका कारण आत्मज्ञानका रमण है। (कमलह लकुत त लीन पऊ) इसी कमलमें वही आत्मतल्लीनता रूपी पद शोभनीक है। (कमल्ह विन्यान न्यान समऊ) यही कमल ज्ञान विज्ञानसे पूर्ण आत्मा है ॥ ७ ॥

(कमल्ह सम समय सुदिष्टि मऊ) यही कमल समान आत्मा समतासे पूर्ण क्षायिक सम्यग्दर्शन स्वरूप है (कमलह सहकार सुनतिरऊ) यही कमलसम आत्मा अनन्तशक्तिके प्रकाशका कारण है अर्थात् आत्मानुभवके प्रतापसे अनन्तवीर्य प्रगट होता है (कललंकृत कम्मु नत विंओ) इसीके कारण कार्माण शरीरमें बन्धे हुए अनन्त कर्म क्षय होजाते हैं (कमल्ह परम दुनंतु मलो) इसी कमलवत् आत्मामें रमण करना रागादि मलोंको हटाकर परम पवित्र कर देता है ॥ ८ ॥

(कमलह कलियो सुह न्यान पऊ) इस आत्मारूपी कमलमें स्वयं ज्ञानमई कलियां हैं या पांखड़ियां हैं (नानाप्रकार विन्यान मऊ) जो अनेकप्रकार ज्ञानसे पूर्ण हैं अर्थात् एक एक ज्ञानमय पांखड़ी या किरण अनन्तप्रकारके ज्ञेय पदार्थोंको झलकानेवाली है (कमलह अवयास जिनुत्ति पऊ इस आत्मीक कमलको आकाशके समान अनन्त पदार्थव्यापी जिनेन्द्रोंने कहा है (अन्मोय विरोह विलति पऊ) इसमेंसे आनन्दका विरोधी सर्व मोहभाव विला गया है ॥ ९ ॥

(कमलह कम्मान न उत्तिपऊ) जहां आत्मा स्वानुभवरूप कमलमय रहता है वहां मन, वचन, कायके कर्म शुभ व अशुभ कोई नहीं कहे गए हैं। वहां त्रिगुप्ति रूप शुद्धोपयोग मय संवर भाव है (कमलह पर गय विलति पऊ) इसी कमलमें रमण करनेसे शरीररूपी पर्यायका नाश होजाता है अर्थात् वारवार शरीरका धारण करना मिट जाता है (कमलह परु सयन न उत्तिपऊ) यह आत्मारूपी कमल कभी भी पर पदार्थमें शयन नहीं करता है अर्थात् यह अपने आप जागृत रहता है। यह राग द्वेष परिणतिमें नहीं जाता है। ऐसा कहा गया है (कमलह परिनाम जिनुत्तिपऊ) इसी आत्मिक कमलमें वह शुद्धोपयोग परिणति है, जिसका पाया जाना जिनेन्द्रोंने कहा है ॥ १० ॥

(कमलह हययार स उत्तिपऊ) इसी कमलको या स्वानुभवको मोक्षमार्गमें हितकारी व कार्यकारी कहा गया है (कमलइ परजाय विरति पऊ) यह आत्मारूपी कमल शरीरकी पर्यायसे विरक्त है। निजात्म प्रदेशोंमें विश्राम व रति करता है (कमलह उववन संजुत्तिपऊ) यह कमल सदा ही प्रकाशरूप रहता है, यह कभी वन्द नहीं होता है न यह कभी मुरझाता है। इसमें सदा ज्ञानानन्द भरा रहता है कमलह सुइ नतानत पऊ) यही कमल वह पद है जहां अनन्तानन्त ज्ञानादि गुण विराजमान हैं ॥ ११ ॥

(कमलह अन्मोय ज्ञान अमलु) इसी कमलमें शुद्ध आनन्द है व शुद्ध ज्ञान है (कमल परजाय सुय विलऊ) इस कमलकी रमणतासे पर परिणति स्वयं विला जाती है (कमलह सुइ सहज नंद मऊ) यह स्वात्मानुभवरूपी कमल सहजानन्दमयी है। यहां स्वाभाविक सुख भरा है (कमलह जन रंजन सुय विलऊ) इस स्वात्मानुभवमें वह ज्ञानका विकल्प नहीं है जिससे जनसमुदायको प्रसन्न किया जावे अर्थात् जनरंजन राग व रागवर्द्धक विकथाओंका भाव इसमेंसे निकल गया है ॥ १२ ॥

(कमलह अन्मोय सु सिद्धि पऊ) यही स्वात्मानुभवमें रमण करनेवाला आत्मा रूपी केवल आनन्द-स्वरूप सिद्धपद है। अर्थात् सिद्धपना यहीं शोभता है। सिद्ध समान शुद्धात्माका ज्ञान यहां विद्यमान है (कमलह कम्मानुबन्ध पिपऊ) इसी कमलके प्रभावसे कर्मोंके बन्ध क्षय होजाते हैं (कमलइ सुइ मुक्ति सु पर्म पऊ) यही कमल स्वयं मुक्तिका सुन्दर परम पद है (भय पिपिय भव्वु सुइ सिद्धि गऊ) जो भव्य जीव सर्व भयोंको व शङ्काओंको छोड़कर इस कमलमें विश्राम करता है वह स्वयं सिद्ध गतिको प्राप्त कर लेता है ॥ १३ ॥

(इय कमलेन सहाओ) इस आनन्दमय प्रफुल्लित आत्मानुभव रूपी कमलकी सहायतासे (पर्म भाव

सुद्द पर्म मुनी) परम भावको धारण कर स्वयं श्रेष्ठ मुनि होजाता है (न पमानद महाओ समल मुक्ति संजुद मुनी) जिसके प्रतापसे परमानन्द स्वभाव धारी सर्व रागादि व कर्मादि व शरीरादि मलोंसे रहित मुक्तिके पदको वे ध्यानी मुनि प्राप्त कर लेते हैं ॥ २४ ॥

भावार्थ—यह आत्मा अपने स्वभावसे कमलके समान प्रफुल्लित परम शोभनीक है जिसमें केवलज्ञानादि लक्ष्मीका निवास है। जबतक मिथ्यादर्शन व अनन्तानुबन्धी कषायका उदय रहता है या मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान व मिथ्याचारित्रका अन्धकार रहता है तबतक यह आत्मारूपी कमल मुद्रित रहता है, प्रमादी रहता है, अशोभनीक रहता है, मानों निद्रित रहता है, मूर्छित रहता है। जब सम्यग्दर्शन रूपी सूर्यका प्रकाश होता है या उसके साथ २ स्वानुभवकी लब्धिरूपी ज्ञानका व स्वरूपाचरण चारित्रका प्रकाश होता है तब ही यह आत्मारूपी कमल खिल जाता है—प्रफुल्लित होजाता है।

सम्यग्दृष्टी आत्माओंमें वे ही वीतराग सम्यग्दृष्टी साधुओंकी आत्मायें साक्षात श्रेष्ठ मोक्षमार्गी हैं जो स्वात्माके स्वरूपमें रमण कररही हों। निश्चयसे स्वात्मानुभव जहां है वहीं निश्चय सम्यग्दर्शन है, वही निश्चय सम्यग्ज्ञान है, वही निश्चय सम्यक्चारित्र है। यही भाव मोक्षमार्ग है, यही कर्मोंको क्षय करनेवाला भाव है, यही परमानन्दमय भाव है, यही सहजानन्दमय भाव है, यही शुद्धोपयोग है, यही परमानन्द पद है, यही समभाव है, यही आत्माका आराम या उपवन है जहां ज्ञानी भव्य रमण करता है। यही अविनाशी पद है, यही वह मदिरा है जिसको पीकर अद्वैतभाव, आत्मासक्त भाव जग जाता है, निर्विकल्प समाधि पैदा होजाती है। यही भाव मेघके समान है जिससे आत्मानन्दरूपी अमृतकी वर्षा होती है। इसी भावमें रमना द्वादशांगवाणीका सार पालेना है, यहीं सदा समभाव रहना है, यही ज्ञानीके लेटनेकी शय्या है, इसी शुद्धात्मानुभवमें रमण करनेसे साधुको सच्चा सुख मिलता है।

जैसे २ गुणस्थानोंपर चढता है, नवीन आस्रव बन्ध रुकता जाता है, वीतरागताके प्रभावसे कर्मोंकी विशेष निर्जरा होती है। यही सच्ची सामायिक है। इसी सामायिक चारित्रके प्रतापसे मोहनीय कर्मका क्षय कर दिया जाता है। यही शुक्लध्यान है जिससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तरायका भी क्षय होजाता है और केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त बलका प्रकाश होजाता है। क्षायिक सम्यग्दर्शन व परम वीतरागता झलक जाती है। केवलीके ज्ञानमें आकाशसे भी अनन्तगुणी अनन्त पदार्थोंके प्रकाश करनेकी शक्ति है।

तीसरे चौथे शुक्लध्यानसे नाम, गोत्र, वेदनी, आयु ये चार अघातीय कर्मोंका भी क्षय होजाता है और वह केवली सिद्धपदको प्राप्त कर लेता है जहां वह कमल अपने सम्पूर्ण विकासको प्राप्त कर लेता है। तात्पर्य यह है कि हे भव्यजीवो ! अपने आत्मारूपी कमलको विकसित करो। आत्मज्ञान प्राप्त करके आत्मज्ञानके अभ्याससे सम्यग्दर्शनका प्रकाश करो, निर्भय व निःशंक होकर आत्माका अनुभव करो जिससे सिद्ध-पदका यहीं अनुभव होगा और वह सिद्धपद निकट आता जायगा। मोक्षमार्ग भी आपमें ही है, मोक्ष भी आपमें ही है। आपसे ही आपको अपना स्वाभालिक मोक्षपद प्राप्त होता है। आत्मानुभवके सिवाय और कोई उपाय नहीं है। श्री पूज्यपादस्वामीने इष्टोपदेशमें कहा है—

स्वसवेदनसुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्यय, अत्यंतसौख्यवानात्मा लोकालोकविलोकन ॥ २१ ॥

सयम्य करणग्राममेकाग्रत्वेन चेतस, आत्मानमात्मवान् ध्यायेदात्मनैवात्मनि स्थित ॥ २२ ॥

एकोऽह निर्मम शुद्धो ज्ञानी योगीन्द्रगोचर बाह्या सयोगजा भावा मत्त सर्वेऽपि सर्वथा ॥ २७ ॥

अभवच्चित्तविक्षेप एकाते तत्त्वसस्थिति, अभ्यस्येदभियोगेन योगी तत्व निजात्मन ॥ ३६ ॥

यथा यथा समायाति सवित्तौ तत्वमुत्तमम्, तथा तथा न रोचन्ते विषया सुलभा अपि ॥ ३७ ॥

आत्म नुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारवहि स्थिते, जायते परमानन्द कश्चिद्योगेन योगिन ॥ ४७ ॥

आनदो निर्दहत्युद्ध कर्मेन्धनमनारत, न चासौ खिद्यते योगीर्बहिर्दु खेष्वचेतन ॥ ४८ ॥

भावार्थ—यह आत्मा निश्चयनयसे अपने स्वसंवेदन ज्ञानसे या आत्मानुभवसे ही प्रगट होता है। यह अविनाशी है, लोक अलोकका ज्ञाता दृष्टा है, अत्यन्त आनन्दमय है व शरीर मात्र आकारधारी है। इसतरह अपने शरीरके भीतर परमात्मा स्वरूप अपने आपको देखे ॥ २१ ॥

फिर पांचों इन्द्रियोंको व मनको रोककर आत्मज्ञानी आत्माहीके भीतर आत्माहीके द्वारा अपने आत्माको ध्यावे ॥ २२ ॥

ऐसा मनन करे कि मैं एक अकेला हूं, मेरा कोई नहीं है, मैं शुद्ध हूं, ज्ञानी हूं, योगियोंके द्वारा अनुभवगम्य हूं, कर्म व शरीरके संयोगसे पैदा होनेवाले सर्व ही रागादि भाव व शरीरादि पर्याय मेरेसे सर्वथा भिन्न हैं, मैं उनसे रहित शुद्ध हूं ॥ २७ ॥

समलपाहुड
॥१३३॥

जहां चित्तको क्षोभ न पैदा हो, आकुलता न हो, ऐसे एकांतमें बैठकर तत्वज्ञानी योगी आलस्य त्यागकर प्रयत्नपूर्वक अपने आत्माके तत्वका अभ्यास करें ॥३६॥ जैसे जैसे अपने अनुभवमें उत्तम परमात्मतत्व आता जायगा वैसे वैसे सुलभ प्राप्त विषय भी नहीं सुहाऐंगे। वह इंद्रियोंके विषयोंसे उदासीन होता जायगा ॥ ३७ ॥

जब परिणाम सर्व व्यवहारसे बाहर होजांयगे व आत्माके ही स्वादमें रम जांयगे तब योगीको ध्यानके प्रतापसे कोई अद्भुत आनन्द प्राप्त होजायगा ॥ ४७ ॥

यही आनन्द वह ध्यानकी अग्नि है जो निरन्तर लगातार जबतक गलती है बराबर कर्मोंके ईंधनको जलाती रहती है, उस समय योगी ध्यानमें ऐसा मस्त होजाता है कि उसे बाहरके दुःखोंके पड़ने पर भी खबर नहीं रहती है न उसे कोई खेद होता है ॥ ४८ ॥

---

(१७) गिरा छंद गाथा ३०३ से ३१७ तक।

कमल गिरा स उत्तजिनु, न्यानेन न्यान सम उत्तियउ।
भय विनास भवु जू मुनहु, ममल न्यान संजुत्तउ ॥ १ ॥
सु जिनह स उत्तउ न्यान पउत्तो, सु न्यान विन्यानह ममल भुवंतु।
सु भय षिपनिक हे भव्वु स उत्तु, सु वानि विसेपह न्यान कुनंतु ॥ २ ॥
सु न्यान विन्यानह भेउ मुनंतु, सु जिह्वा स्वाद अनन्त विलन्तु।
सु विषय सुभाउ पर्जाउ गलंतु, सुन्यान सहावह तत्तु मुनंतु ॥ ३ ॥
सु जिह्वा ममल संजुत्तु थुनंतु, सु मलह सहाव अनन्तु गलन्तु।
सु मिथ्या ससंक सल्य विलयन्तु, सुन्यान सहावह कम्म गलन्तु ॥ ४ ॥
जिह्वा परभाव न उत्तु न जुत्तु, जिह्वा परजायह भाव विलन्तु।

ममलपाहुड
॥१३५॥

जिह्वा कुन्यानह देस न उत्तु, जिह्वा संसारह सरनि विरत्तु ॥ ५ ॥
जिह्वा संदर्सन मोह विमुक्कु, जन रंजन रागु दोष विलयन्तु ।
जिह्वा कलरंजन भाव विमुक्कु, जिह्वा मनरंजन गार गलन्तु ॥ ६ ॥
जिह्वा आवर्नु न्यान चवंतु, दर्सन आवर्नु न भाउ कलन्तु ।
मोह न आवर्नउ उवन गलन्तु, जिह्वा ज्ञानह अन्तस न चवन्तु ॥ ७ ॥
आसारूप भाव न लेतु थुनंतु, अस्नेह दिस्टि नहु देत भुनंतु ।
लाजहु भय भीउ न संक करंतु, लोभह भय नन्तानन्त गलंतु ॥ ८ ॥
गारव गयंद विहडंतु सिंहु, आलस सुइ गलिय वयन समूहु ।
परपंच पर्जाय न दिस्टियऊ, विभ्रम भय भीउ विलतियऊ ॥ ९ ॥
जिह्वा भय षिपिय कम्मु विलयं, पर पर्जय नन्तनन्त गलियं ।
सकरहिय निसंक सल्य विलयं, भय मोह प्रमान न उत्तु सयं ॥ १० ॥
जिह्वा परमप्पो परम समो, सुइ नन्तानन्त सुन्यान गमो ।
जिह्वा पद अर्थह भेउ मुनंतु, अर्थति अर्थह परमार्थ मुनन्तु ॥ ११ ॥
जिह्वा सहकार सहाव संजुत्तु, उववन अनन्त सो देइ पउत्तु ।
जिह्वा अवयासह अर्थ ममलो, जिह्वा परमत्थ पमासवनो ॥ १२ ॥
जिह्वा सम समय दिस्टि ममलो, माया पिपिन कुरुव उत्तु ममलो ।
जिह्वा अन्मोय न्यान सहजै, अन्मोये षिपिय कम्म तिविहे ॥ १३ ॥
जिह्वा परिनामुनन्त विरियं, नानाप्रकार न्यान सुरयं ।
जिह्वा विन्यान नंतु अमलो, भय षिपिय भव्वु तं मुक्ति गओ ॥ १४ ॥

घत्ता—

भय पिपिय अभय सभाउ लइ, न्यानमई अत्तुरत्तऊ।
तं तिविह कम्म विलयन्त सुई, ममल सिद्धि संपत्तऊ ॥ १५ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(कमल गिरा स उत्त जिन) श्री जिनेन्द्र द्वारा कथित जो आत्मारूपी कमलकी वाणी या जिनवाणी है या अध्यात्मवाणी है (न्यानेन न्यान सम उत्तिण्ड) वह यह वताती है कि आत्मज्ञानके द्वारा ही समतारूप ज्ञान या वीतराग विज्ञान प्राप्त होता है (भय विनास भवु जु मुनहु) यह वाणी संसारके भयको नाश करनेवाली है। हे भव्यजीव हो ! इस भगवद्वाणीका मनन करो (ममल न्यान संजुत्तउ) यह वाणी शुद्ध सम्यग्ज्ञानसे पूर्ण है ॥ १ ॥

(सु जिनह स उत्तउ न्यान पउत्तो) श्री जिनेन्द्र भगवानने जिस ज्ञानको कहा है वह ज्ञान पवित्र है–स्वयं पवित्र है और दूसरोंको पवित्र करनेवाला है (सुन्यान वि यांनह ममल मुनंतु) उस वाणीके द्वारा सम्यग्ज्ञानका तथा निर्मल भेदविज्ञानका मनन करो, अर्थात् अपने आत्माके शुद्ध स्वभावको सर्व पर पदार्थोंसे जुदा विचार करो (सु भय पिपनिक हे भन्तु स उत्त) यह वाणी सर्व भयोंको क्षय करनेवाली–निर्भय करनेवाली कही गई है। हे भव्य ! ऐसा समझ (सुवानि विसेपह न्यान कुनतु) यह दिव्य भगवद्वाणी विशेष ज्ञानको अर्थात् तत्वज्ञानको पैदा करनेवाली है ॥ २ ॥

(सुन्यान बिन्यानह मेउ मुनतु) हे भव्य ! तू सम्यग्ज्ञानका व भेदविज्ञानका भेद मनन कर। भलेप्रकार जीवादि पदार्थोंको निश्चयनय और व्यवहारनयसे समझकर छः द्रव्योंके गुण व पर्यायोंका मनन कर। सबमें सार निज आत्मा है उसीका विशेष मनन कर (सुजिह्वा स्वाद अनत विलतु) श्री जिनेन्द्रकी पवित्र वाणीका मनन करनेसे व उच्चारण करनेसे वचनका अनन्त स्वाद विला जाता है। अर्थात् रागवर्द्धक द्वेषकारक हिंसाकारक असत्य कलहकारक विकथामय आदि अध्यात्मीक रससे भिन्न स्वादमें रमनेवाले वचनोंका प्रयोग बन्द होजाता है। वचनोंको अध्यात्म–रसका स्वाद ही प्रिय लगता है। अध्यात्मरस वर्षानेवाले वचनोंको ही आत्मज्ञानी कहता है। उसकी अध्यात्म चर्चा ही प्रिय लगती है (सुविषय सुभाउ पर्जाउ गलन्तु) पांचों इंद्रियोंके विषयोंके स्वभावमें परिणमन बन्द होजाता है, अर्थात् वह तत्वज्ञानी ऐसी वार्तालाप नहीं करता है

जिससे उसका व दूसरोंका मन पांचों इंद्रियोंके रमणीक विषयोंके स्वादमें रंजायमान हो (सुन्यान सहावह तत्तु मुनतु) सम्यग्ज्ञानके द्वारा आत्मीक तत्वका ही मनसे या वचनोंसे हे भव्य ! मनन करो ॥ ३ ॥

(सु जिह्वा ममल संजुत्तु थुनतु) हे भव्य ! अपनी जबानसे शुद्ध भाव सहित वचनको कहो। ऐसे वचनोंको कहो जिनसे शुद्ध आत्मीक भाव प्रकाशित हो। (सुमलह सहाव अनत गलतु) जिनको वचनोंके कहने सुननेसे अनन्त प्रकारके दोषीक भाव गल जावें (सुमिथ्य ससक सल्य विल्यतु) अर्थात् सर्व मिथ्यात्वभाव, सर्व शंकाएँ व सर्व शल्ये विला जावें। सम्यग्ज्ञानपूर्ण आत्माके स्वरूपकी ऐसी चर्चा करनी करनी चाहिये जिसके द्वारा संसारासक्तिका भाव मिट जावे, सर्व संसारका भय मिट जावे व सर्व प्रकारकी निदानादि शल्यें चली जावे-अपने शुद्धात्माकी प्रतीति होजावे व स्वात्मानुभवकी तरफ दृष्टि जम जावे (सुन्यान सहावह कम्म गलंतु) आत्मज्ञानके स्वभावका मनन करनेसे व तत्सम्बन्धी चर्चा करनेसे कर्मोंका क्षय होता है, आत्मीक तत्वके मननसे वीतरागता बढती है। यही कर्मोंकी निर्जरा करती है ॥ ४ ॥

(जिह्वा पर भाव न उत्त न जुत्तु) तत्वज्ञानी अपने वचनोंसे परभावोंको-रागद्वेष वर्द्धक बातोंको नहीं कहते हैं, न अपने भावोंमें ऐसी बातोंके कहनेका विचार करते हैं (जिह्वा परगावह भाव विलंतु) उनके वचनोंके कहने सुननेसे शरीरमें आसक्ति कारक भाव विला जाते हैं-संसारसे वैराग्य व मोक्षसे प्रेम बढ़ जाता है (जिह्वा कुन्यानह देस न उत्त) तत्वज्ञानी अपने मुखसे मिथ्या ज्ञानवर्द्धक उपदेश नहीं कहते हैं। जिन वचनोंसे मिथ्यात्वकी ओर प्रवृत्ति होजावे ऐसे वचनोंको न कहकर सम्यग्दर्शनको दृढ करनेवाले वचनोंको ही उपदेशते हैं (जिह्वा ससारह सरनि विरतु) उनके मुखसे ऐसे वचन खिरते है जिनके सुननेसे संसारके भ्रमणसे वैराग्यभाव आजावे ॥ ५ ॥

(जिह्वा सदर्सन मोह विमुक्कु) तत्वज्ञानीके वचनोंके ऊपर ध्यान देनेसे दर्शनमोह मिथ्यात्वभाव दूर होजाता है (उन रजन राग दोष विर्यंतु) तथा साधारण जनता जिन बातोंमें राग द्वेष करके राजी होती है उन बातोंकी ओर रागद्वेष विला जाता है। अर्थात् स्त्री कथा, भोजन कथा, देश कथा व राजाओंकी विकथाके कहने सुननेका भाव बुद्धिसे निकल जाता है (जिह्वा कलरजन भाव विमुक्कु) जिनके मुखकी वाणी सुननेसे शरीरके सुखमें रंजायमान होनेवाले भावोंसे विरागभाव आजाता है, शरीरासक्ति मिट जाती है, आत्मानन्दका प्रेम बढ़ जाता है (जिह्वा मनरजन गार गलतु) उनकी वाणीसे ऐसे वचन खिरते हैं जिनसे

मनको राजी रखनेवाला गारव या अहंकार भाव गल जाता है, पर पदार्थमें अहंबुद्धिका भाव निकल जाता है ॥ ६ ॥

(जिह्वा आवर्न न्यान चवंतु) उस जिनवाणीके सुननेसे ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होकर ज्ञानकी वृद्धि होती है (दर्सन आवर्न न भाव कलंतु) तथा दर्शनावरणके उदयसे होनेवाला भाव न प्रगट होकर दर्शनावरण कर्मका क्षयोपशम होनेसे दर्शनकी शक्ति बढ जाती है (मोहन अवर्न उ उवन गलंतु) मोहनीय कर्मका उदय गल जाता है। मिथ्यात्व व कषायोका भाव मिट जाता है (जिह्वा ज्ञानह अन्तर न चवंतु) पवित्र जिनवाणीके सुननेसे ज्ञानमें अन्तराय नहीं रहती है, ज्ञानके धारनेकी शक्ति बढ जाती है। भावार्थ—श्री जिनवाणीका मनन करनेसे ज्ञानावरणादि चारों घातीय कर्मोंका क्षयोपशम होता है जिनसे ज्ञानशक्ति, दर्शन शक्ति, वीर्यशक्ति बढती है, सम्यक्त भाव प्रगट होता है या सम्यक्त निर्मल होता है तथा कषायोंका जोर घटकर वीतरागता झलकती है ॥ ७ ॥

(आसा भय भाव न लेतु श्रुनतु) तत्वज्ञानी किसी प्रकारकी आशा व तृष्णाका आशय अपने भावोमें नहीं रखते है। इसलिये उनके वचन भी ऐसे ही प्रगट होते है जो तृष्णाके मिटानेवाले हो (आनंद दिष्टि नहि देत सुनतु) जिनके वचनोसे जगतके स्नेहकी दृष्टि नहीं प्रगट होती है। प्रत्युत जगतसे वैराग्य आजाता है। हे भव्य! ऐसे वचनोका मननकर (लाजहु भय भीउ न सक गलंतु) तत्वज्ञानीके वचनोंसे लज्जाजनक भाव, भयजनक भाव व शंकामय भाव सब निकल जाता है (लोभह भय नन नत गलंतु) अनन्तानन्त शक्तिको लिये हुए लोभ कषाय व भय नोकषाय गल जाता है ॥ ८ ॥

(गारव गयंद विहंतु सिंह) जिनके वचन अहंकाररूपी हाथीको भगानेके लिये सिंहके समान होते हैं (आलस सुहग लिय वयन समूह) जिनकी वचनावली सुननेवालोंके प्रमाद भावको दूर कर देती है, उनसे आत्मोन्नति करनेका पुरुषार्थ जग जाता है (पपच पर्जाय न दिस्टियऊ) उन तत्वज्ञान पूर्ण वचनोंसे मायाचारकी कोई परिणति नहीं दिखलाई पडती है (विभ्रम भय भीउ विलतयऊ) उनसे भ्रम बुद्धि व भय बुद्धि सब विला जाती है। तत्वोंमें शङ्का या विपरीतभाव या अनध्यवसाय (कुछ होगा) भाव निकल जाता है। मेरी आत्मा अखण्ड है, अजर है, अमर है, ऐसा भाव प्रगट होनेसे सर्व भयका भाव दूर होजाता है ॥९॥

(जिह्वा भय पिपिय कम्म गलिय) तत्वज्ञानीके वचनोंको सुननेसे सर्व संसारका भय दूर होजाता है

तथा कर्मोंकी शक्ति गल जाती है, पाप कर्मोंका अनुभाग कम होजाता है (प‹ पर्जय नतनत गलिय) जिससे पुद्गल कृत अनन्तानन्त पर्यायोंकी प्राप्तिका पाप गल जाता है । जब सम्यक्तभाव प्रगट होजाता है तब सर्व संसारकी दुःखमय पर्यायोके पानेका पाप नहीं रहता है । सम्यक्ती सम्यक्तावस्थामें स्वर्गकी देवायु ही बांधता है (सक रहिय निसक सल्य विलय) निःशंकभाव प्रगट होजाता है, सर्व प्रकारकी तत्वमें शंका व सर्व प्रकारकी शल्यें विला जाती हैं (मय मोह प्रमान न उत्तुमय) तत्वज्ञानी ऐसी वाणी नहीं कहते जिससे ज्ञानका मद या मोह प्रगट हो, न उनकी वाणीसे उनके भीतर ज्ञानका मद है या संसारका मोह है ऐसा झलकता है, न उनकी वाणीसे दूसरोके भीतर मद मोह पैदा होता है ॥ १० ॥

(जिह्वा पामप्पौ परम समो) तत्वज्ञानियोंकी वाणीसे परमात्माका स्वरूप व परम समताभाव प्रगट होता है (सुइ नतानत सुन्यान गमो) जिस परमात्मामें अनन्तानन्त ज्ञानका उदय होता है अथवा जिस परमात्माके व परम समताभावके अनुभवसे केवलज्ञानका प्रकाश होजाता है (जिह्वा पद अर्थह मेउ मुनतु) तत्वज्ञानीकी वाणीसे जिनवाणीके पदोंका यथार्थ भाव प्रगट होता हैं (अर्थ ति अर्थह परमार्थ मुनतु) तथा नौ पदार्थ व रत्नत्रय धर्म व परमार्थ आत्मतत्वका मनन होता है ॥ ११ ॥

(जिह्वा सहकार सहाव संजुत्तु) जिननाणीके कहने व सुननेकी मददसे यह प्रभाव होता है कि (उवत्न अनन्त सोवेइ पउत्त , पवित्र व अनन्त ज्ञानका उदय होजाता है ([जि]ह्वा अवयास अर्थ मपको) जिनवाणीके सुननेसे यह ज्ञान होता है कि आत्मा शुद्ध पदार्थ है जिसमें आकाशके समान अनन्त पदार्थोंके जाननेकी शक्ति है (जिह्वा परमत्थ पमा स्रवनो) उस जिनवाणीसे परमार्थ ज्ञान या अध्यात्म तत्वज्ञानका प्रकाश होता है ॥ १२ ॥

(जिह्वा मम ममय दिट्ठि ममला) जिनवाणीके सुननेसे शुद्ध समभाव रूप आत्माका अनुभव होजाता है (मय पिपिन कुरूव उत्तु ममलो) वह वाणी बताती है कि आत्माका स्वभाव परम निर्भय तथा सर्व दोष रहित पवित्र है (जिह्वा अन्मोय न्यान सहज) जिनवाणीके सुननेसे व मनन करनेसे सहजानन्दमय ज्ञान प्रगट होता है (अन्मोय पिपिन कम्म तिविह) आत्मानन्दके प्रतापसे द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म तीनो ही कर्मोंका क्षय होता है ॥ १३ ॥

(जिह्वा परिनामनन्त विहिय) जिनवाणीके मननसे ही आत्माका अनन्त वीर्य प्रगट होजाता है (नाना प्रकार न्यान सुयं) व नानाप्रकारके ज्ञान सूर्यका प्रकाश होता है। अर्थात् नानाप्रकारके जाननेयोग्य पदा-

थोंको जाननेवाला ज्ञान प्रगट होजाता है (जिह्वा विन्यान नन्त ममलो) जिनवाणीके मननसे ही रागादि दोष रहित शुद्ध वीतराग व अनन्त केवलज्ञान जग जाता है (भय षिपिय भव्वु तं मुक्ति गओ) तब भव्यजीव सर्व संसारके भयके कारण कर्मोंका क्षय करके मुक्तिमें पहुँच जाते हैं ॥ १४ ॥

(भय षिपिय अभय समाव लइ) तत्वज्ञानी सर्व शंकाभाव रहित निर्भय आत्माके स्वभावको ग्रहण करके (न्यानमई अनुरत्तउ) ज्ञानमई स्वभावमें तल्लीन होजाते हैं (त तिविह कम्म विलयत सुइ) इस आत्म समाधिके प्रतापसे तीनों ही प्रकारके कर्म–द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादि, भावकर्म राग द्वेषादि, नोकर्म शरीरादि नाश होजाते हैं (ममल सिद्धि सम्पउ) तब वे सर्व मलसे शुद्ध होकर आत्मसिद्धि या मुक्तिको प्राप्त कर लेते हैं ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें श्री जिनवाणीकी महिमा भलेप्रकार वर्णन की गई है। श्री सर्वज्ञ वीतराग अरहन्त भगवान सयोगकेवली जिन गुणस्थानमें अपनी दिव्य वाणीसे धर्मका प्रकाश करते हैं, जिनकी वाणी सुननेसे श्रोताओंके मिथ्यात्व मल गल जाते हैं, सम्यग्दर्शनका प्रकाश होजाता है। उसी वाणीके अनुसार तत्वज्ञानी महात्मागण भी अपनी वाणीसे धर्मोपदेशका प्रकाश करते हैं। उस वाणीके सुननेसे व मनन करनेसे तत्वोंका यथार्थ बोध होता है। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष तत्वोंसे यह बोध होता है कि यह जीव निश्चयसे शुद्ध परमात्म–स्वरूप ज्ञातादृष्टा वीतराग आनन्दमई है तथापि व्यवहारसे कर्मबन्ध होनेके निमित्तसे अशुद्ध है। इस कर्मबन्धका कर्ता यही जीव है फल भोक्ता भी यही जीव है। निश्चयसे यह जीव अपनी शुद्ध परिणतिका ही कर्ता है और अपने शुद्ध ज्ञानानन्दका भोक्ता है। इस जीवके साथ आठो कर्मका सम्बन्ध व शरीरका सम्बन्ध यह सब पुद्गल अजीवकी सत्तासे है। कर्मरूपी पुद्गलोंका जीवके साथ दूध पानीके समान संयोग सम्बन्ध प्रवाहकी अपेक्षा अनादिकालसे है। नवीन कर्म बन्ध होने व प्राचीन झड़नेकी अपेक्षा सादि सम्बन्ध है। यह जीव अपने मन, वचन, कायके व्यवहारसे अपनी योगशक्तिसे कर्म पुद्गलोंका ग्रहण करता है वही आस्रव तत्व है। शुभ योगोंसे पुण्यकर्म, अशुभ योगोंसे पापकर्मका आस्रव होता है। आये हुये कर्म जीवके साथ कुछ कालके लिये ठहर जाते हैं यही बन्ध तत्व है। कषायोंके अनुसार ही जीव कर्म व अधिक बन्धको पाता है। जिन भावोंसे कर्मोंका आस्रव होता है उन भावोंका निरोध करना संवर तत्व है। संवर भावसे नवीन कर्म नहीं आते है। पूर्वबद्ध कर्म

ममलपा

तपकेद्वारा समयके पूर्व झड़ जाते हैं यही निर्जरा तत्व है। सर्व कर्मोंसे छूट जानेका नाम मोक्षतत्व है। इन सातों तत्वोंमें निश्चयसे एक अपना शुद्धात्मा ही उपादेय है, सार है, ध्यान करनेके योग्य है। रागादि सब त्यागने योग्य हैं। कर्मोंका वियोग हटाने योग्य है, सिद्धपद प्राप्त करने योग्य है, इस तरहका ज्ञान व श्रद्धान श्री जिनवाणीके प्रतापसे होता है। श्री जिनवाणीके मननसे भेदविज्ञान होता है। भेदविज्ञानसे आत्मज्ञान होता है। आत्मज्ञानसे आत्मानुभव या आत्मध्यान होता है जो साक्षात् मोक्षका उपाय है।

जिनवाणीके मननसे ही सर्व शंकाएँ मिटती हैं, दर्शन मोहका अन्धकार मिटता है। सम्यग्दर्शनका प्रकाश होता है, ज्ञान निर्मल होता है, आत्मबल प्रकाशित होता है। वीतरागताका झलकाव होता है। तृष्णाका भाव मिटता है, प्रमादकी आदत मिटती है। परमात्माका स्वरूप झलक जाता है। समभावका लाभ होता है। आत्मध्यानका विकास होता है। परमागमकी सहायतासे भावोंमें विशुद्धि बढती जाती है, कर्मोंकी स्थिति गलती है, पापका अनुभाग कम होता है, शुद्धात्माका बोध होता है। जो कोई भव्य जीव शुद्धात्माका अनुभव करता है वह क्षपकश्रेणी चढकर चार घातीय कर्मोंका क्षय करके अरहन्त होजाता है। फिर सर्व कर्मोंका क्षय करके सिद्ध होजाता है। जिनवाणी भवसागरसे पार करके सिद्धपदमें पहुंचानेवाली है। जिनवाणीके प्रकाशक तत्वज्ञानी अपने उपदेशमें ऐसा कार्यकारी व हितकारी उपदेश करते हैं जिससे संसारका मोह गल जाता है, आत्मशुद्धिका प्रेम उमड़ आता है, विकथाओंके करनेसे मन हट जाता है, अध्यात्म चर्चा करनेकी ही रुचि होजाती है, अहंकारकी आदत मिट जाती है, जिनवाणीके पान करनेसे विकथाओके कहने सुननेका रस सूख जाता है, अध्यात्मरससे गर्भित वार्तालाप करनेका भाव जग उठता है, इंद्रियविषयोंकी रुचि दूर होजाती है, अतीन्द्रियसुखकी रुचि पैदा होजाती है। भगवद्वाणीका सार यही है जो अध्यात्मज्ञान प्राप्त करके अपने आत्मामें लवलीन होकर स्वरूपानन्द मगनता प्राप्त करना चाहिये। स्वसमयरूप जागृत करना चाहिये, पर समयकी आसक्ति मिटा देनी चाहिये। यह जिनवाणी निःशङ्क निर्भय व शल्य रहित कर देती है व समयसारका अनुभव कराती है। जो आत्मज्ञानी है—आत्मानुभवी है वही परमागमका ज्ञाता कहा जाता है।

श्री समयसारमें श्री कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं:—

जो हि सुएणहिगच्छादि अप्पाणमिणन्तु केवल सुद्ध । त सुदकेवलिमिसिणो भणति लोगप्पईवयरा ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो द्वादशांग जिनवाणीके द्वारा अपने इस आत्माको असहाय केवल शुद्ध अनुभव करते हैं उनहीको सर्वज्ञदेव श्रुतकेवली कहते हैं।

जो पस्सदि अप्पाण अबद्धपुट्ठं अणण्णाय भविसेस। अपदेस सुत्तमज्झ पस्सदि जिणसासण सव्वं ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो अपने इस आत्माको निश्चयसे ऐसा देखता है कि यह कर्मोंसे न बन्धा है न स्पर्शित है, यह सदा एकरूप रहता है। यह अपने गुणोंसे अभेदरूप सामान्य हैं। वह निश्चल है। यह रागादि संयोगसे रहित है ऐसा देखकर जो ऐसा ही अनुभव करता है, वही समस्त जिन शासनको जानता है। आत्मज्ञानका ही परम मनोहर अमृतमई पाठ यह जिनवाणी सिखाती है अतएव मुमुक्षु भव्य जीवका कर्तव्य है कि वह जिनवाणीकी शरण ग्रहण करे, बड़े भावसे उसे पढे पढावे, उनका उपदेश करे, उसका मनन करे, जिससे अपना मिथ्यात्व भी गले और दूसरोंका भी मिथ्यात्व गले। ऐसी परिणति होजावे कि विकथा न सुहावे, वृथा बकवाद न अच्छी लगे, संसारवर्द्धक वचनोंसे उदासीनता आजावे, वैराग्यमई चर्चामें ही प्रेम उत्पन्न होजावे, रातदिन जिनवाणीका सेवन किया जावे। वारम्वार मननसे अज्ञानको मिटाया जावे। कषायोंका बल घटाया जावे, ज्ञानरसका पान किया जावे। ऐसी रुचि पैदा की जावे कि और चर्चा न करके एक अध्यात्म चर्चाका ही व्यवहार किया जावे। परस्पर इसी विषयका प्रश्न किया जावे, आत्माके स्वभाव झलकानेका उत्साह बढाया जावे। नानाप्रकार सांसारिक वार्तालापमें, परकी निन्दा प्रशंसामें अपनी शक्तिको न खर्च किया जावे। तत्व चर्चामें ही अनुरक्त रहा जावे। आत्मीक रसका ही स्वाद लिया जावे। वास्तवमें जिनवाणी परम कल्याणकारिणी है—पढनेसे मनन करनेसे मनका विषाद मिट जाता है, अज्ञान हट जाता है, शांतभाव प्रगट होजाता है, परमात्माका दर्शन ज्ञानचक्षुके सामने होजाता है। मोक्षमार्गको व मोक्षको दर्पणके समान दिखलानेवाली यह जिनवाणी है, आनन्दामृतका स्वाद चखानेवाली है, सहजानन्द प्राप्त करानेवाली है, भव भ्रमण मिटानेवाली है, मोक्ष—द्वीपमें पहुंचानेवाली है। श्री तारणस्वामि कहते हैं—हे भव्यजीवो ! इस पवित्र जलके समान आत्माको पवित्र करनेवाली जिनवाणी गंगाके भीतर स्नान करके आत्माके मल धोकर आत्माको पवित्र कर लो। प्रमाद छोड़कर, लज्जा व भय छोड़कर उत्साही होकर जिनवाणीकी सेवा करो।

(१८) विंदरओ फूलना गाथा ३४८ से ३५२ तक।

जिन जिनयंति जिनंद पओ।
जिन जिनयति नद अनंद परम जिन विंदरओ ॥ १ ॥
विन्यान विंद रस रमनु अमिय रस विप विलओ।
भय षिपनकु हे भवु कमल कलि मुक्ति गओ ॥ २ ॥ (आचरी)
जिन जिनवर उत्तउ जिनय पओ।
जिन जिनियो कम्म अनतु जिनय जिन विंदरओ ॥ ३ ॥ विन्यान०
जं कम्मु अनन्तु अनन्तु भओ।
त न्यान अन्मोय विलन्तु सहज जिन विंदरओ ॥ ४ ॥ विन्यान०
ज कम्म उवन उव्वन्न मओ।
उववन्न न्यान विलयन्तु परम जिन विंदरओ ॥ ५ ॥ विन्यान०
जं चर नह चारिय अनिस्ट मओ।
तं न्यान चरन विलयन्तु नंद जिन विंदरओ ॥ ६ ॥ विन्यान०
जं वय तव क्रिया अनिस्ट मओ।
तं इस्ट दर्स विलयंतु चेय जिन विंदरओ ॥ ७ ॥ विन्यान०।
जन रंजन राग जु रमिय पओ।
जिन रंजन न्यान विलन्तु समय जिन विंदरओ ॥ ८ ॥ विन्यान०
कल रंजन कम्म स उत्त पओ।
तं कमल रमन विलयन्तु सुयं जिन विंदरओ ॥ ९ ॥ विन्यान०

ममलपाहुड
॥१४३॥

मन रंजन गारव कम्म पओ ।
मन रंजन न्यान विलन्तु षिपक जिन विंदरओ ॥ १० ॥ विन्यान०
जं दर्सन मोहे अन्ध पओ ।
सुइ परम इस्टि विलयन्तु ममल जिन विंदरओ ॥ ११ ॥ विन्यान०
जं न्यान आवर्नह कम्म रओ ।
तं न्यान अन्मोय विलन्तु मुक्ति जिन विंदरओ ॥ १२ ॥ विन्यान०
जं दर्सन आवर्नु आदर्स मओ ।
तं दर्सन दिस्टि गलंतु अषय जिन विंदरओ ॥ १३ ॥ विन्यान०
मानापमान आवर्न मओ ।
विन्यान अन्मोय विलन्तु जिनय जिन विंदरओ ॥ १४ ॥ विन्यान०
तं न्यानह अन्तरू समय मओ ।
तं समय विन्यान विलन्तु कमल जिन विंदरओ ॥ १५ ॥ विन्यान०
जं न्यान अन्तरु अन्यान मओ ।
तं न्यान अन्मोय गलन्तु सिद्ध जिन विंदरओ ॥ १६ ॥ विन्यान०
जं न्यान विओय अनिष्ट पओ ।
तं इस्ट अन्मोय गलन्तु अषय जिन विंदरओ ॥ १७ ॥ विन्यान०
जं असमय सहियो कम्म पओ ।
तं समय विन्यान विलन्तु अमिय जिन विंदरओ ॥ १८ ॥ विन्यान०

ममलपाहु
॥१४४॥

जं दिस्टि अनन्त जु कम्म पओ ।
तं न्यान दिस्टि विलयन्तु सुयं जिन विंदरओ ॥ १९ ॥ विन्यान०
जं सुरह सहाउ जु कम्म पओ ।
तं सुरह विन्यान विलन्तु अगम जिन विंदरओ ॥ २० ॥ विन्यान०
जं असद्ध स उत्तउ कम्म पओ ।
विन्यान विंद विलयन्तु नन्त जिन विंदरओ ॥ २१ ॥ विन्यान०
अदिस्ट उवन जु कम्म रओ ।
अदिस्टि इस्टि विलयन्तु अभय जिन विंदरओ ॥ २२ ॥ विन्यान०
जं गुप्ति कम्म सुइ अनन्त पओ ।
अन्मोय न्यान विलयन्तु निलय जिन विंदरओ ॥ २३ ॥ विन्यान०
सक सल्य संक भय कम्म रओ ।
सक गलिय न्यान विलयंतु सुद्ध जिन विन्दरओ ॥ २४ ॥ विन्यान०
जं कम्म विसेप अनन्त रुई ।
अन्मोय न्यान विलयन्तु अमल जिन विन्दरओ ॥ २५ ॥ विन्यान०
जं जिनवर उत्तउ अमिय जिनु ।
भय सल्य संक विलयन्तु नन्द जिन विन्दरओ ॥ २६ ॥ विन्यान०
जिन नन्दनन्द आनन्द मओ ।
जिन सहजनन्द स सहाव जिनय जिन विंदरओ ॥ २७ ॥ विन्यान०

जिन परमनन्द परमप्प पओ ।
जिन परम इस्टि दरसंतु इस्ट जि। विंदरओ ॥२८॥ विन्यान०
जिन इस्ट सुइस्ट सुइस्ट पओ ।
उववन्न इस्ट दरसन्तु सुयं जिन विंदरओ ॥२९॥ विन्यान०
जिन गम्य अगम्य सु नन्त पओ ।
जिन नत नंत दसंतु रयन जिन विंदरओ ॥३०॥ विन्यान०
जिन अर्थंति अर्थह जिनय पओ ।
जिन उवनो नन्तानन्त उवन जिन विंदरओ ॥३१॥ विन्यान०
उव उवनहियार सु जिनय पओ ।
सहयार न्यान सुइ उत्तु सुयं जिन विंदरओ ॥ ३२ ॥ वि[illegible]
उववन्नहियार सहयार मओ ।
जिन नन्त चतुष्टय जुत्तु परम जिन विंदरओ ॥ ३३ ॥ विन्यान०
जिन न्यान विन्यान सु समय मओ ।
सिद्ध समय सिद्धि सम्पत्तु समय जिन विंदरओ ॥ ३४ ॥ विन्यान०
जिन तारनतरन विवान मओ ।
सिद्ध समय सिद्धि संपत्तु सिद्ध जिन विंदरओ ॥ ३५ ॥ विन्यान०

अन्वय सहित अर्थ— (जिन जिनयति जिनय जिनेन्द्र पओ) कर्मोंको व रागादि भावोंको जीतनेवाले श्री जिनेन्द्रका पद जयवन्त हो (जिन जिनयति नद अनंद परम जिन विंदरओ) वे श्री जिनेन्द्र आत्मीक आनन्दमें मगन रहते हुए परम वीतरागमय ज्ञानभावमें तल्लीन हैं ॥ १ ॥

(विन्यान विंद रस रमनु अमिय रस विष विलओ) वे भेद विज्ञान द्वारा प्राप्त आत्मानुभवके रसमें रमण करते हुए जिस आनन्दामृतका स्वाद पाते हैं उसके प्रतापसे विषयसुखकी तृष्णारूपी विषका वेग नाश होगया है (मय विपनिक हे मवु कमल कलि मुक्ति गओ) हे भाई ! जो भव्य जीव सर्व भयोंको क्षय कर देता है और आत्मारूपी कमलमें रत होजाता है वह मुक्तिको पहुंच जाता है ॥ २ ॥

(जिन जिनवर उत्तउ जिनय पओ) वीतराग जिनेन्द्रभगवानने श्री जिनपद उसे ही कहा है (जिन जिनियो कम्म अनतु जिनय जिन विंदओ) जो वीतरागी होकर अनन्त कर्मोंको जीतते हुए वीतरागमय ज्ञानमें रत होजाते हैं ॥३॥

(ज कम्म अनतु अनतु भओ) जो अनंतकर्मोंका बंध अनन्त जन्मोंके भीतर भ्रमण करानेवाला होता है (त ज्ञान अन्मोय विलतु सहज जिनविंद रओ) वह सर्वकर्म आत्मज्ञानके आनन्दसे विला जाता है। यह आनन्द तब ही अनुभवमें आता है जब सहज वीतरागमई ज्ञानमें तल्लीनता हो ॥ ४ ॥

(ज कम्म उवन उववन्न मओ) जो कर्म उदय होरहे हैं व उदय होनेवाले हैं (उववन्न न्यान विलयतु परमन्निन विंद रओ) वे कर्म प्रकाशित सम्यग्ज्ञानके द्वारा दूर होजाते हैं, वह ज्ञान परम वीतरागमय ज्ञानचेतनामें रमणरूप है ॥ ५ ॥

(ज चरनह चरिय अनिष्ट मओ) ज्यों आत्माको अनिष्टकारी–दुखकारी चारित्रका आचरण है। हिंसादि पापोंमें व रागद्वेष भावोंमें वर्तन है (तं न्यान चरन विलयतु नद जिन विंद रओ) वह आत्मज्ञानमें चलनेसे व स्वरूपाचरण चारित्रसे दूर होजाता है। वह स्वरूपाचरण चारित्र आनन्दमय व वीतरागमय ज्ञानचेतनाके रमणरूप है ॥ ६ ॥

(ज वय तव क्रिया अनिष्ट मओ) जो पापबंधकारी या मिथ्यात्वसहित किये जानेवाले व्रत, तप व क्रियाका आचरण है (त इस्ट दर्स विलयतु चेय जिन विंद रओ) वह सर्व आचरण प्रिय सम्यग्दर्शनके प्रतापसे विला जाता है। वह सम्यक्त भाव अनुभवने योग्य वीतरागज्ञानमें रमणरूप है।

भावार्थ—कोई अज्ञानी हिंसाकारी तप पंचाग्नि जलाकर करते हैं व ऐसा व्रत करते हैं जो विपरीत हो, दिनमें न खाकर रात्रिको खाते हैं व ऐसी क्रिया करते हैं जिनसे हिंसा हो जैसे–पशुबलि यज्ञमें व देव-देवीके मठोंपर करना। ये सब क्रिया तो पाप ही बांधनेवाली हैं। कोई२ जैन धर्मके अनुसार शास्त्रोक्त व्रत, तप, आचरण पालते हैं परंतु सम्यक्त रहित मिथ्यात्वभावसे अंतरंग भोगाकांक्षासे पालते हैं, वे पुण्य बांध-

कर देवगतिमें चले जाते हैं। सम्यक्तके विना भोगोंमें मगन होकर वहांसे चयकर एकेन्द्रिय या पंचेन्द्रिय तिर्यंच जन्मते हैं या दीन मानव पैदा होजाते हैं, उनके आत्माका सच्चा हित नहीं होसक्ता है। ये सब व्रत तप क्रियाका अनुष्ठान सम्यग्दर्शनके प्रतापसे दूर होजाता है और तब सम्यक्ती जीव आत्मतल्लीनतारूप व्रत, तप, क्रियाको ही करता है या उसकी सिद्धिके हेतु व्यवहार उपवास, पंचव्रतोंका पालन आदि मुनि या श्रावकके चारित्रको पालता है ॥ ७ ॥

(जनरजनराग जु ‘मिय पओ) जो मानवोंको प्रसन्न करनेवाले रागमें रमणताका पद है (जिन रञ्जन न्यान विलन्तु समय जिन विंदश्रो) वह सर्व श्री जिनेन्द्रके गुणोंमें रंजायमान होनेवाले ज्ञानसे दूर होजाता है। वह ज्ञान वीतराग आत्माका अनुभव स्वरूप है।

भावार्थ—बहुधा मानवोंके भीतर यह भाव रहता है कि हम लोगोंको प्रसन्न रखे, इस हेतु वे राग-वर्द्धक काम व हास्यजनक वार्तालाप व अनुचित वार्तालाप करते रहते हैं। लोग प्रसन्न रहें इस हेतुसे वे पूजा, पाठ, जप, तप व शास्त्र पठन भी करते हैं। यह सर्व राग संसारका वर्द्धक है। जब तत्वज्ञानी श्री जिनेन्द्रके आत्मिक गुणोंमें तल्लीन होकर अपने आत्माको निश्चयसे जिनेन्द्रके समान पवित्र मानकर निज आत्माका अनुभव राग द्वेष मोहभाव छोडकर करता है तब उसका वह सर्व जनरंजक राग भाव दूर होजाता है ॥ ८ ॥

(कलरजन कम्म स उत्त पओ) शरीरके मोहमें रंजायमान होनेवाला कर्म जितना कुछ कहा गया है (तं कमल रमन विलयतु सुय जिन विंदश्रो) वह सब शुद्धात्मारूपी कमलके भीतर रंजायमान होनेसे विला जाता है। यह आत्मरंजक भाव स्वयं वीतराग विज्ञानमें रमणता है।

भावार्थ—जब सम्यक्ती सम्यग्दर्शनके प्रभावसे अपने शुद्धात्मीक आनन्दका रसिक होजाता है तब उसका पूर्ण वैराग्य शरीरकी तरफ होजाता है, वह शरीरके सुखका मोही नहीं रहता है, न वह शरीरकी आसक्तिसे कोई व्यवहार कर्म या भोग करता है। जबतक गृहस्थमें रहता है तबतक पूर्वबद्ध कर्मोंके उद-यसे उसे गृहस्थ योग्य सर्व काम व सर्व भोग करने पड़ते हैं, उसको सम्यक्ती कर्मका रोग जानता है। भावना यह बनी रहती है कि कब यह कषायका उदय मिटे जो मैं वीतरागभावमें ही नित्य रमण करूं। वह भीतरसे आत्मरमणताको ही अपना कर्तव्य समझता है। उसे स्वात्मानुभव ही प्रिय लगता है। वह

ममलपाहुड
॥१४८॥

कर्मचेतना व कर्मफल चेतनासे उदास होजाता है तथा ज्ञानचेतनाका रसिक होजाता है। जहांतक अवसर मिलता है ज्ञानचेतनाका स्वाद लिया करता है। वह सर्व अशुद्ध कार्योंका अपनेको कर्ता व भोक्ता नहीं मानता है। वह शुद्ध भावोंका ही कर्ता भोगता अपनेको निश्चय रखता है ॥ ९ ॥

(मन रजन गारव कम्म पओ) मनको रंजायमान करनेवाला जो गारव या अहंकार भाव है या घमंड है वह सब (मनरंजन न्यान विलतु विपक जिन विंद रओ) मनको रंजायमान करनेवाले आत्मज्ञानके प्रतापसे दूर होजाता है। यही आत्मज्ञान कर्मोंका क्षय करनेवाला वीतराग विज्ञानकी रमणतारूप है।

भावार्थ—जब सम्यक्तीका मन आत्माके शुद्ध स्वभावके मननमें व अनुभवमें आनन्द मानने लगता है तब उस मनकी वह परिणति नहीं रहती है जिस परिणतिसे मन धनमद, जातिमद, कुलमद, विद्यामद, रूपमद, तपमद, बलमद, अधिकारमद, रसीले भोजन पानेका मद, सुन्दर विषयोंके भोगका मद आदि भौतिक सम्पत्तिके मदमें रम सके, वह सम्यक्ती सांसारिक सम्पदाओंको कर्मजनित व क्षणिक मानकर उनसे भीतरसे कुछ भी राग नहीं करता है तब वह इनके होनेपर अहंकार कैसे कर सक्ता है। वह नियमसे मदरहित होता है। उसको मार्दवभाव ही प्रिय लगता है। जो मार्दवभाव स्वात्मानुभवके द्वारा प्राप्त होता है यही भाव पूर्वबद्ध कर्मोंकी निर्जरा करनेवाला है ॥ १० ॥

(ज दर्पन मोहे अधपओ) दर्शनमोहनीय कर्मके उदयसे जो मिथ्यात्व सहित अज्ञानभावका स्थान है (सुइ परम इस्टि विल्यतु ममल जिन विंद रओ) यह सब परम हितकारी सम्यग्दर्शनके प्रभावसे दूर होजाता है। वह सम्यक्तभाव निर्मल वीतराग ज्ञानचेतनामें रमणरूप है।

भावार्थ—जबतक सम्यग्दर्शन व उसीके साथ सम्यग्ज्ञानका प्रकाश नहीं होता है तबतक मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान व मिथ्याचारित्र बना रहता है, तब यह जीव बहिरात्मा होकर शरीरको ही आत्मा मानता है व शरीरके सुखको ही सुख समझता है। इस उल्टी समझसे वह सर्व लौकिक व धार्मिक काम विषयसुखके हेतुसे ही करता है। महान कठिन जैनसाधुका चारित्र भी निदान भाव सहित आगामी इंद्रियसुखके लोभसहित पालता है। यह सब अज्ञानपूर्वक आचरण सम्यग्दर्शनके प्रकाश होनेसे मिट जाता है। सम्यक्तीको यह सच्चा ज्ञान होजाता है कि मैं शुद्ध वीतराग परमात्मारूप हूं, मेरा सुख मेरे ही आत्माका स्वभाव मेरे ही पास है। विषयसुख असत्य और काल्पनिक है। सम्यक्तीके निःकांक्षित अंग प्रगट होजाता है॥११

ममलपाहुड ॥१४९॥

(ज न्यान आवर्नह कम्म रस्रो) जो ज्ञानावरण कर्मके उदयसे अज्ञानभाव होता है और उस अज्ञानभावसे जो कार्य किया जाता है अर्थात् अज्ञानमई कार्योंमें जो रति होती है (तं न्यान अन्मोय विलतु मुक्ति जिन विंदरओ) वह सब अज्ञानभाव व उसमें रति ज्ञानानन्दके प्रकाशसे दूर होजाते हैं। शुद्ध वीतराग आत्माके ज्ञानमें लीन होना ही ज्ञानानन्दका झलकाव है।

भावार्थ—आत्मोन्नतिसे विरुद्ध कार्योंमें व विषयभोगोंमें रतिभाव अज्ञानमई क्रिया है सो सर्व सम्यग्ज्ञानके प्रकाश होते ही विला जाती है। सम्यग्ज्ञानीको मुक्त शुद्ध आत्माके स्व स्वरूपका यथार्थ ज्ञान होता है अतएव वह उसीके स्वादमें रमन करता है। वह संसारकी रतिको अज्ञान समझता है। चारित्र-मोहके उदयसे गृहस्थी विषयभोगोंके काम यद्यपि करता है तथापि उससे उसे त्यागभाव है–विरागभाव है। उनको रोग जान उनसे छूटना ही चाहता है। ज्ञान वैराग्यसे किया हुआ विषय सेवन संसारवर्द्धक नहीं होता है। ज्ञानीके सर्व ही कार्य चाहे लौकिक हों या पारलौकिक हों ज्ञानमई होते हैं, जब कि अज्ञानीके सर्व धार्मिक कार्य भी अज्ञानमई होते हैं, क्योंकि ज्ञानीके भावोंमें सम्यग्ज्ञान है, अज्ञानीके भावोंमें मिथ्याज्ञान है। श्री समयसार कलशमें कहा है—

ज्ञानिनो ज्ञाननिवृत्ता सर्वे भावा भवन्ति हि। सर्वेऽप्यज्ञाननिर्वृत्ता भवन्त्यज्ञानिनस्तु ते ॥ २२-३ ॥

भावार्थ—ज्ञानीके सर्व ही भाव ज्ञानसे रचे हुए होते हैं जब कि अज्ञानीके सर्व भाव अज्ञानसे बने हुए होते हैं ॥ १२ ॥

(ज दर्सन आवर्नु अदर्समओ) जो दर्शनावरण कर्मके उदयसे अदर्शनमई भाव होते हैं, पदार्थोंका ठीकर सामान्य अवलोकन नहीं होता है वह अदर्शनभाव (त दर्सन दिस्टि गलतु अषए जिन विंदरओ) सम्यग्दर्शन सहित चक्षु अचक्षु व अवधिदर्शनके प्रकाशसे गल जाता है। सम्यग्दृष्टीका दर्शनोपयोग आत्म सन्मुख रहता है इसलिये वह अविनाशी वीतराग ज्ञानचेतनाकी रमणतामें प्रेरक है।

भावार्थ—अल्पज्ञानियोंके दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है। सम्यग्दृष्टी जीव जब मतिज्ञान द्वारा पदार्थोंको जानता है तब वह जीव अजीव सर्व द्रव्योंको ऐसा जानता है जिस ज्ञानसे उसको कभी मिथ्यात्वभाव नहीं होता है। क्योंकि सम्यग्दृष्टियोंको यह पक्का श्रद्धान है कि इस लोकके सर्व पदार्थोंकी अवस्थाएं छः-द्रव्योंकी पर्यायोंमें गर्भित हैं। सम्यक्तीको किसी भी पदार्थको देखकर आश्चर्य नहीं होता है ॥ १३ ॥

समकपाहुड
॥१५०॥

(मानापमान आवर्न मओ) मान या अपमानका भाव जो मोहनीयकर्मके उदयसे होसक्ता है (विन्यान अन्मोय विलतु जिनय जिन विंद-रमो) वह सब मलीनभाव ज्ञानानन्दकी रमणतासे विला जाता है। वह भाव वीतराग व जितेन्द्रिय स्वरूप ज्ञानकी रमणतारूप है।

भावार्थ—सम्यक्तीके भीतर अनन्तानुबन्धी कषायका उदय नहीं होता है इसलिये उसका तीव्र मोह सांसारिक अवस्थाओंसे नहीं होता है। अतएवं वह इस बातका भान नहीं करता है कि मैं बड़ा हूँ? यदि कहीं कोई अपमान हो तो सम्यक्ती उससे परिणामोंको मलीन नहीं करता है, न वह धनादिका घमण्ड करता है। जिसने पर, वस्तुओंको अपनी नहीं समझा है वह कैसे उनके होनेका अहंकार करेगा, गृहस्थ सम्यग्दृष्टी यद्यपि भीतर मद नहीं करते हैं तथापि यदि कोई अन्यायपूर्वक अपमान करता है तो उसका प्रतीकार इसलिये करते हैं कि अन्यायका प्रचार न हो। वीतराग सम्यग्दृष्टी साधुगण मान अपमानमें विलकुल समभाव रखते हैं। वे ज्ञानरसके ही रसिक बने रहते हैं ॥ १४ ॥

(त न्यानह अन्त समय मओ) जो कुछ आत्मा सम्बन्धी ज्ञानमें अन्तर रहता है अर्थात् आत्मज्ञानमें कमी होती है (त ममय विन्यान विन्तु कमल जिन विंद रओ) वह सब कभी आत्माके विशेष ज्ञान—यथार्थ ज्ञान होनेसे चली जाती है। सच्चा आत्मज्ञान तब ही होता है जब कमलके समान प्रफुल्लित वीतराग विज्ञानमई भावमें रमणता होती है अर्थात् आत्माका यथार्थ ज्ञान विना स्वात्मानुभव प्राप्त किये नहीं होसक्ता है। केवल शास्त्रोंद्वारा व गुरुद्वारा ज्ञान व केवल वचनसे व मनसे आत्माके गुणोंका मनन कार्यकारी नहीं है। जब मनन इतना किया जायगा कि आत्मा आत्मस्थ होजायगा तब ही आत्माका अनुभव होगा, तब ही आत्माका ज्ञान हुआ ऐसा कहा जायगा ॥ १५ ॥

(ज न्यान अतरु अन्यान मओ) जो ज्ञानके भीतर कुछ भी अज्ञानमई भाव होता है (तं न्याय अन्मोय गलतु सिद्ध जिन विंदरओ) वह अज्ञानमई भाव ज्ञानानन्दमें मगनतासे दूर होजाता है वह मगनता सिद्धस्वरूपी वीतरागभावमें रमणरूप है। भावार्थ—आत्मज्ञानमें व द्रव्योंके ज्ञानमें जो कुछ कमी होती है वह सब आत्मानुभव करनेसे दूर होजाती है। आत्मानुभवके कारणसे जो विशुद्धता होती है उससे ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होजाता है, तब जो अज्ञान होता है वह मिट जाता है। आत्मज्ञानानुभवके अभ्यास करते २ श्रुत ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होकर यह जीव श्रुतकेवली होजाता है ॥ १६ ॥

(जं न्यान विओय अनिष्ट पओ) जो आत्मज्ञान व सम्यग्ज्ञानसे रहित अनिष्ट पद है, आत्माको अहितकारी है, विषयभोगोंमें आसक्तिका भाव है (तं इस्ट अमोय गलंतु अपय न्नि विंदओ वह सब भाव उस इष्ट आत्मानन्दके प्रतापसे गल जाता है। यह आनन्द तब ही प्राप्त होता है जब अविनाशी वीतराग ज्ञान स्वरूप आत्मामें रमणता होती है। भावार्थ—आत्मानन्दका जितना २ स्वाद बढ़ता जाता है उतना उतना विषयवासनाका विकार मिटता जाता है ॥ १७ ॥

(ज असमय सहियो कम्म पओ) जो आत्माके अनुभवसे रहित कर्मोंके उदयमें उलझा हुआ भाव है (त समय विन्यान विलन्तु अमिय जिन विंदओ) वह सब आत्माके अनुभवसे विला जाता है। वह आत्मानुभव अमृतमई वीतराग विज्ञानकी रमणतारूप है। भावार्थ—रागद्वेष रूप कर्मोंके करनेमें तल्लीनताको कर्मचेतना कहते हैं। मैं कर्मोंके उदयसे सुख व दुःख होनेपर मैं सुखी व मै दुःखी ऐसा भाव होना उसको कर्मफलचेतना कहते हैं। ये दोनों ही चेतनाएं कर्मपद हैं। कर्ममें आसक्ति है सो ज्ञानचेतनासे अर्थात् आत्मज्ञानके अनुभवसे विला जाती है ॥ १८ ॥

(ज दिस्टि अनन्त जु कम्म पओ) जो कर्मोंके उदयसे होनेवाले अनन्त भावोंमें श्रद्धा है (तं न्यान दिस्टि विलयन्तु सुय जिन विंदओ) वह सब आत्मज्ञानकी श्रद्धा होनेमे विला जाती है, वह श्रद्धा स्वयं वीतराग विज्ञान भावमें रमण रूप है। भावार्थ—कर्मोदयजनित सर्व भाव क्षणभंगुर हैं, आत्माके स्वभाव नहीं है, उनको अपना स्वभाव मानलेना मिथ्या श्रद्धान है। यह मिथ्या श्रद्धान आत्माके यथार्थ श्रद्धानसे दूर हो जाता है ॥ १९ ॥

(जं सुग्ह सहाउ जु कम्म पओ) जो कर्मोंके उदयसे होनेवाला शब्दोंका प्रकाश है अर्थात् रागद्वेष मोहवर्धक शब्दोंका उच्चारण है (त सुग्ह विन्यान विलन्तु आगम जिन विंदओ) वह सब आत्मज्ञानमई शब्दोंके उच्चारणसे दूर होजाता है। यह अध्यात्मीक कथन तब ही होता है जब निर्विकल्प वीतरागमई ज्ञानमें रमण हो। भावार्थ—जो सम्यग्दृष्टी स्वात्मानुभवी हैं वे अध्यात्म कथनमें ही राजी रहते हैं इसलिये वे रागद्वेषवर्द्धक कथनीके मोहको दूर कर देते हैं। उनकी सर्व कथनी आत्मानुभवकी ओर प्रेरणा करनेवाली होती है ॥ २० ॥

(ज अमद्द स उत्तउ कम्म मओ) जो शब्द रहित मनमें होनेवाले कर्मोदय जनित रागद्वेषके विकल्प हैं (विन्यान विंद विलयतु नत जिन विंद रओ) वे सब भेदविज्ञानके अनुभवसे विला जाते हैं। इस भेदविज्ञानसे अनंत

वीतराग ज्ञानमें रमणता होती है। भावार्थ—भेदविज्ञानसे ज्ञानीको यह ज्ञान होता है कि शुद्ध आत्मीक वीतरागभाव ही उपादेय है ग्रहण करनेयोग्य है, शेष सर्व ही रागद्वेष मूलक भाव त्यागने योग्य हैं। भेदविज्ञानका अभ्यास करते करते कर्मजनित भावोंसे वैराग्यभाव दृढ होजाता है। यह भेदविज्ञान स्वात्मानुभव करानेवाला है ॥ २१ ॥

(अदिस्ट ठवन जु कम्म रओ) मिथ्यादृष्टिके उदयसे जो कर्मोंमें रति होती है–शुभ अशुभ क्रियाओंमें रंजायमानपना होता है या शुभोपयोगमें ही यह बुद्धि होती है कि यही मोक्षका उपाय है। (अदिस्टि इस्टि विलयतु अमय जिन विन्दरओ) वह सब भाव इंद्रियोंसे अगोचर आत्माके प्रेमसे विला जाता है। जहां आत्मप्रेम है वहां निर्भय वीतरागमय ज्ञानमें रमणता होती है।

भावार्थ—सम्यक्तके न होनेपर कोई २ पुण्यबन्धके कारक भावोंको निर्जराका कारण मान लेते हैं जब कि निर्जराका कारण तो शुभ व अशुभ भावोंसे रहित शुद्धोपयोग भाव है। इस मिथ्यात्वका नाश शुद्धात्माकी रमणतासे दूर होजाता है अथवा संसारके भीतर जो मोहभाव होता है, वह सब आत्मानन्दके प्रेमसे विला जाता है ॥ २२ ॥

(ज गुप्ति कम्म सुइ अनत पओ) जो सत्तामें बैठे हुए अनन्तप्रकारके कर्म हैं (अन्मोय न्यान विलयतु विलय जिन विन्दरओ) सो सब कर्म ज्ञानानन्दसे विला जाते हैं। यह ज्ञानानन्द तब ही होता है जब भव्यजीव वीतराग विज्ञानभावकी रमणताको अपना स्थान बनाता है।

भावार्थ—आत्मानुभवकी रमणतामें ठहरनेसे जो धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान होता है वह सत्तामें बैठे हुए कर्मोंकी स्थिति व अनुभागको खण्डन कर देता है–कर्मोंकी निर्जरा कर देता है ॥ २३ ॥

(सक सल्य संक भय कम्म रओ) जो कुछ शङ्का व शल्य व भयका प्रकाश कर्मोंके उदयसे होता है और अज्ञानी जीव उन भावोंमें रमन करके सशङ्कित, भयभीत व शल्य रहित होजाता है (सक गलिय न्यान विलयतु सुद्ध जिन विंदरओ) वह सब कुभाव निःशङ्क आत्मज्ञानसे दूर होजाता है। जहां निःशङ्क आत्मज्ञान होता है वहां शुद्ध वीतरागज्ञानमें रमणता होती है।

भावार्थ—तत्वोंका मनन करते २ जब सम्यक्तभाव उत्पन्न होजाता है और मैं शुद्ध आत्मास्वरूप हूं

समलपाहुड ॥१५३॥

यह सम्यक्तभाव प्रगट होजाता है तब तत्वमें सब शङ्काऐं निकल जाती है, संसारका भय दूर होजाता है माया मिथ्या निदान शल्ये दूर होजाती हैं, निःशङ्कित अगका प्रकाश होजाता है ॥ २४ ॥

(ज कम्म विसेस अनंत रुई) जो कर्मोंके विशेष उदयसे होनेवाले अनन्त प्रकारके भावोंमें रुचि है (अमोय न्यान विरयंतु ममल जिन विंद्‌ओ ; वह सब मिथ्यारुचि ज्ञानानन्दमे दूर होजाती है, यह ज्ञानानन्द तब ही प्रगट होता है जब मलरहित निर्दोष वीतराग विज्ञानमें रमणता होती है।

भावार्थ—चार गतिकी अपेक्षा देखा जावे तो अनन्त जीवोंकी रुचि अनन्त प्रकारकी होरही है कोई किसी इंद्रियके विषयमें अधिक रुचि रखता है, कोई किसीमें अधिक रुचि रखता है मानवोंको देखा जावे तो मानव भी अनेक रुचिवाले हैं। किसीको गानविद्याकी रुचि है, किसीको तैरनेकी रुचि है, किसीको वन रमणकी रुचि है, किसीको मद्यपानकी रुचि है, किसीको विकथा करनेकी रुचि है। सो सब रुचि आत्मानन्दकी रुचि होते ही दूर होजाती है। जब स्वात्मानुभवसे आत्मानन्द होता है तब सर्व सांसारिक सुखकी तरफ अरुचि होजाती है ॥ २५ ॥

(ज जिनवर उत्तउ भणिय जिनु) श्री जिनेन्द्रभगवानने जिस अमृतनन्द वीतराग जिनका स्वरूप बताया है (भय सल्य संक विरयतु नंद जिन विंद्‌ओ) वह सर्व भय, सर्व शल्य व सर्व शंकाओंसे शून्य है, वह आनन्दमय वीतराग विज्ञानमें रमणता रूप है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीसे लेकर अरहन्त तक सर्व ही आत्माएँ जिन हैं। ये सब ही अपने२ गुणस्थानके अनुसार ज्ञानानन्दमय निज पदका स्वाद लेते हुए आत्ममगन रहते हैं ॥ २६ ॥

(जिन नंद नंद आनंद मओ) श्री जिनेन्द्रभगवान या सर्व ही सम्यग्दृष्टी आत्माएँ आनन्दमई भावमें परमानन्दित रहते हैं (जिन सहज नंद स सहाव जिनय जिन विन्द्‌ओ) वे सर्व ही जिन सहजानन्द आत्मीक स्वभावमें रहनेवाले वीतराग विज्ञानमई भावमें रमण करनेवाले हैं।

भावार्थ—सम्यग्दर्शनके प्रकाश होते ही स्वाभाविक सहजानन्दका स्वाद आने लगता है। चतुर्थ गुणस्थानसे लेकर तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान तक जितना २ स्वानुभवमें अधिक अधिक थिरभाव होता है उतना उतना विशेष सहजानन्दका स्वाद आता है। श्री अरहन्त अनन्त आनन्दके धनी होजाते हैं ॥२७॥

(जिन परम नंद परमप्प पओ) श्री जिनेन्द्रका जो परमानन्दमय परमात्मा पद है (जिन परम इस्टि दरसतु

इष्ट जिन विन्दरओ) उस पदमें वे जिनेन्द्र परम प्रिय आत्माको देखते हुए परम प्रिय वीतराग विज्ञानमें रमण करते हैं अर्थात् अरहन्त व सिद्ध परमेष्ठी भी नित्य शुद्धात्मामें रमण करते हुए शुद्धात्मीक भावके सन्मुख बने रहते हैं, निरन्तर आत्मीक रसका पान करते हैं ॥ २८ ॥

(जिन इष्ट सुइष्ट सुइष्ट पओ) श्रीजिनेन्द्रका परमात्मापद जगतके सर्व इष्ट पदोंमें श्रेष्ठ इष्ट व ग्रहण करने योग्य पद है। (उववन्न इस्ट दरसतु सुयं जिन विन्दरओ) वे कर्मावरणके क्षयसे प्रकाशित शुद्ध आत्माको प्रत्यक्ष देखनेवाले स्वय वीतराग विज्ञानमें रमणशील हैं।

- भावार्थ—पांच परमेष्ठीपद जगतमें इष्ट हैं, उन सबमें उच्च श्री अरहन्त व सिद्धका पद है ॥ २९ ॥

(जिन गम्य अगम्य सु नत पओ) श्री जिन परमात्मा इंद्रियोंसे जाननेयोग्य व इंद्रियोंसे न जाननेयोग्य सर्व अनन्त ज्ञानके धारी हैं (जिन नंत नंत दरसतु रयन जिन विन्दरओ) वे श्री जिनेन्द्र अनन्त दर्शनके धारी हैं तथा रत्नत्रयमई वीतराग विज्ञानमें रमणशील हैं ॥ ३० ॥

(जिन अर्थति अर्थइ जिनय पओ) श्री जिनेन्द्रका पद सर्व पदार्थोंमें प्रधान व तीन रत्नमई है (जिन उवनो नन्तानत उवन जिन विन्दरओ) वे श्री जिनेन्द्र अनन्तानन्त ज्ञानमें प्रकाशित रहते हुए वीतराग ज्ञानमें रमणशील हैं ॥ ३१ ॥

(उव उवन हियार सु जिनय पओ) श्री जिनेन्द्रका पद आत्माको परम हितकारी है (सहयार न्यान सुइ उत्तु सुय जिन विंद रओ) उनका केवलज्ञान भव्य जीवोंके लिये मनन करनेको सहकारी ज्ञान कहा गया है। यह ज्ञान स्वयं वीतराग विज्ञानमें रमणरूप है ॥ ३२ ॥

(उववन्नहियार सहयार मइओ) श्री अरहंतका पद प्रकाशित परमहितकारी व भव्य जीवोंके लिये परम सहकारी है (जिन अनत चतुष्टय जुत्तु परम जिन विंदरओ) श्री जिनेन्द्र भगवान अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख, अनंतवीर्य इन चार अनंत चतुष्टय सहित परम वीतराग विज्ञानमें रमणरूप हैं ॥ ३३ ॥

(जिन न्यान विन्यान सुसमय मओ) श्री जिनेन्द्र भगवान केवलज्ञान स्वरूप निज आत्मामई स्वसमय रूप है–आप आपमें मगन है (सिद्ध समय सिद्धि संपत्त समय जिन विंदरओ) वे स्वयं आत्मसिद्धिको प्राप्त करके श्री सिद्ध आत्मा वीतराग विज्ञानमें रमणरूप होजाते हैं ॥ ३४ ॥

(जिन तारन तरन वित्रान मओ) श्री अरहन्त जिनेन्द्र भगवान तारण तरण जहाजके समान हैं (सिद्ध

ममलपाहुड
॥१६९॥

समय सिद्धि संपत्तु सिद्ध जिन विंदओ) वे स्वयं आत्माकी सिद्धिको पाकर श्री सिद्ध भगवान वीतराग विज्ञानमें मगन रहनेवाले होजाते हैं ॥ ३५ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें यह बताया गया है कि मोक्षका मार्ग निश्चय रत्नत्रयमई स्वात्मरमण भाव है। इस भावके जागृत होनेसे सर्व ही अशुद्ध भाव मिट जाते हैं; मिथ्या श्रद्धान, मिथ्या ज्ञान, मिथ्या चारित्र सब विला जाता है, तत्वकी गाढ़ रुचि होजाती है, सिद्ध स्वभाव पानेकी तीव्र उमंग जागृत होजाती है, कर्मोंके उदयसे होनेवाली जितनी भीतरी रागादि भावोंकी कम या अधिक परिणतियें हैं, जितने गुणस्थान सम्बन्धी भाव हैं, मिथ्यात्वसे लेकर अयोगी गुणस्थान पर्यंत उनसे तथा बाहरी जितनी पर्यायें हैं, एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय पर्यंत नारक, तिर्यंच, मानव व देवगतिकी, उन सबसे तीव्र वैराग्य होजाता है। उसको इंद्रपद, चक्रवर्ती पद, नारायण पद कोई भी पद अपद या अग्रहीत भासता है। एक निजपद ही—शुद्धपद ही ग्रहण योग्य झलकता है, उसकी गाढ़ रुचि आत्मीक रससे होजाती है, उसी रसका रसिक होजाता है। वह सर्व शरीर सम्बन्धी व इंद्रिय विषय विकार सम्बन्धी व मनको रंजायमान करनेवाली कषायोंकी प्रवृत्तियोंसे पूर्ण वैरागी होजाता है। उसके भीतर पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान ऐसा होता है जिससे वह किसी भी संसारकी पर्यायको देखकर आश्चर्य नहीं करता है। जगतको जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल इन छ द्रव्योंका नाटक समझता है। वह कर्मोंके उदयसे होनेवाली अवस्थाओंको अपनाता नहीं। मैं स्वभावसे उनका न तो कर्ता हूँ, न मैं उनका भोक्ता हूँ, ऐसा सच्चा ज्ञान उसके भीतर जागृत रहता है। अनन्तानुबन्धी कषायोंको और मिथ्यात्वको जीत लेनेसे उसके अनन्त भवोंमें भ्रमण करानेवाले कर्म गल जाते हैं, उसका आचरण आत्महितकारी होता है। वह ज्ञानसे विचार कर विवेकपूर्वक व्यवहार करता है। उसका सब जप, तप, व्रत, अनुष्ठान व क्रियाकांड, आत्मोन्नतिकी तरफ लक्ष्य रखनेका होता है। जिन२ क्रियाओंसे आत्माके शुद्ध गुणोंका मनन होसके, उन ही क्रियाओंको वह उसी हेतुसे साधन करताहै। मुनिपद व श्रावकपदका सर्व चारित्र आत्मानुभवके लिये ही पालता है, किसी अन्य कषाय जनित भावके लिये नहीं। वह न तो जनताको प्रसन्न करना चाहता है, न शरीरके सुखोंमें तन्मय होता है, न यह पर पदार्थोंके संयोगका अहंकार करता है उसके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय व मोहनीय कर्म चारों हीका क्षयोपशम दिनपर दिन उन्नति करता जाता है। उसकी सर्व अज्ञानमई चेष्टाएँ

विला जाती हैं। वह समझता है कि शब्दोंके उच्चारणसे व मनके विचार करनेसे आत्मानुभव नहीं हो सक्ता है, जब आत्मा आत्मामें रमता है। मन, वचन, कायसे परे होजाता है तब ही आत्मानुभव होता है। उसकी सत्तामें बैठे हुए कर्मोंकी निर्जरा हुआ करती है। वह निःशंकित अंगोंको रखता हुआ सर्व भय व शंकाओंसे दूर रहता है। ऐसा सम्यग्दृष्टी यही जानता है कि आत्मामें रमणता ही धर्म है, मोक्षमार्ग है। यही दुईजका चन्द्रमा है, जो स्वयं पूर्णिमासीका चन्द्रमारूप परमात्मा होजाता है। सम्यग्दृष्टी चौथे व पांचवे गुणस्थानमें गृहस्थ भी होते हैं, उनको कषायोंके उदयके अनुसार गृहस्थके कर्म भी करने पड़ते हैं। उनको वह नीतिपूर्वक भलेप्रकार सम्पादन करता है। परन्तु भावना यह होती है कि कब कषायरूपी रोग मिटे कि मै उदास होकर श्री निर्ग्रंथपद धारण करूँ। जब प्रत्याख्यानावरण कषायका उदय नहीं रहता है तब वह साधु होजाता है व तब वह वीतरागभाव हीमें रमण करता है, छठे गुणस्थानमें धर्मोपदेशादि भी करता है। सातवें अप्रमत्त गुणस्थानसे लगातार वह ध्यानस्थ रहता है। सातवेंमें धर्मध्यान फिर आठवेंसे शुक्लध्यानी होजाता है। आत्म-रमणता बड़ी ही उज्वल होजाती है। क्षपकश्रेणीपर चढ़कर वह चारों घातीय कर्मोंका क्षय करके अर्हंत परमात्मा होजाता है, जहां अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख व अनन्त वीर्य, चार चतुष्टय प्रगट होजाते हैं। वे अर्हंत भगवान निरन्तर आत्माको द्रव्यसे देखते हुए उसीके शुद्ध सहजानन्दमें मगन रहते हैं। उनके भीतर अपूर्व वीतरागता-समता प्रगट होजाती है। उनका ज्ञान अनन्तानन्त शक्तिका धारी होजाता है। वे जीवनपर्यंत अर्हंतपदमें रहते हैं। अन्तमें चार अघातीय कर्मोंका भी क्षय करके वे पूर्ण शुद्ध-पूर्ण मुक्त होकर मात्र आत्मारूप ही रह जाते हैं, सूक्ष्म व स्थूल सर्व पुद्गलोंका सम्बन्ध छूट जाता है। सिद्ध भगवान होकर भी वे अपनी सत्ताको खोते नहीं हैं। अनन्तकाल तक वीतराग विज्ञानमें रमण करते रहते हैं। यहां यह तात्पर्य है कि वीतराग विज्ञानमें रमणता ही मोक्षमार्ग है व यही मोक्ष है। उसीका साधन भव्योंको करना योग्य है।

समयप्राभृत
॥१५७॥

(१९) चषु दर्सन गाथा ३५३ से ३७८ तक।

भय विनास सुभ वयनं, न्यानी अन्मोय नन्द आनन्दं।
अन्यान मिच्छ पिपनं, अनिष्ट अन्मोय विरय रूवेन ॥ १ ॥
चष्यै दर्सन उत्तं, चेतन सहकार कम्म सुइ पिपनं।
भय ससंक पिपि ऊनं, पिपिओ संसार सरनि मोहंधं ॥ २ ॥
मल सुभाव संपिपत्नं, ममल दिस्टि च कम्म पिपिऊनं।
भय पिपनक सहकारं, ममल सहावेन ममल न्यानस्य ॥ ३ ॥
ममलं ममल उवन्नं, भय पिपिय ससंक विलयन्तो।
क्रम्मं उवन्न विलयं, भय गलिय ममल न्यान सहकारं ॥ ४ ॥
दिस्टि च ममल दिट्ठं, दिट्ठं इस्टी च इस्ट संजुत्तं।
ममल सहावे सुद्धं, भय पिपिय ससंक विलयन्ती ॥ ५ ॥
चष्येे दर्सन उत्तं, दर्सन दर्सेइ लोय आलोयं।
भवहं च भय विनट्ठं, दर्सन चष्ये च ममल रूवेन ॥ ६ ॥
चष्ये दर्सन सहियं, दर्सन न्यानं च ममल स सहावं।
दर्सेति इस्ट इस्टं, भय रहियं ससंक विलयन्ती ॥ ७ ॥
चष्ये च सुद्ध दिट्ठं, मल मुक्कं मिथ्या सल्य गलियं च।
ममलं ममल सहावं, भय पिपिय ससंक विलयन्ती ॥ ८ ॥
दर्सन चष्य विसेषं, विन्यान न्यान दिस्टि संजुत्तं।

इस्टं च ईर्जे भावं, षिपन सहावेन ममल रूवेन ॥ ९ ॥
चष्ये चेयन रूवं, तारन तरन ममल सहकारं ।
भय विनष्ट संजोय, विलयं कम्मान तिविह जोएन ॥ १० ॥
चष्ये चरंति चरनं, चरनं आचरन ममल दिस्टं च ।
मलं सहाव न दिट्ठं, भय रहिय अभयदान सहकारं ॥ ११ ॥
चष्ये आरूव रूवं, सुर विंजन सरूव संजुत्तं ।
ससंक संक रहियं, भय पिपिय ममल न्यानं जोइत्थं ॥ १२ ॥
चष्ये षिपनक रूवं, षिपिओ संसार सरनि मोहंधं ।
षिपिओ समल उवन्नं, भय षिपिय ममल न्यान सहकारं ॥ १३ ॥
चष्ये दर्सन सुद्धं, सुद्धं स सहाव असुद्ध गलियं च ।
अन्यान मिथ्य गलियं, गलिय अन्यान सल्य गलिय च ॥ १४ ॥
चष्ये दिस्टति इस्टं, अनिस्ट सहकार सल्य विलयन्ती ।
भय षिपनक स सहावं, ममल सहावेन कम्म षिपनं च ॥ १५ ॥
चष्ये ममल सुदिस्टिं, इस्टं संजोय विओयं अनिस्टं ।
भय विनास भव अन्तं, ममल सुभावेन कम्म गलियन्ती ॥ १६ ॥
चष्ये रमन सहावं, रमनं रसियं च ममल सहकारं ।
भव षिपनक स सहावं, षिपिओ कम्मान तिविह जोएन ॥ १७ ॥
षिपिओ नन्त विसेषं, भय षिपियं ससंक विलयन्ती ।
विलयं कम्म उवन्नं, ममल सहावेन कम्म षिपनं च ॥ १८ ॥

पिपिओ दिस्टि सहावं, दिस्टि सहकार इस्टि संजोयं।
इस्टं च इस्ट रूवं, अनिष्ट संसार सरनि विलयन्ती ॥ १९ ॥
चष्ये अनन्त दिस्टि, मल मुक्कं सल्य संक विलयन्ती।
भय विनष्ट संजोयं, ममल दिष्टं च कम्म पिपनं च ॥ २० ॥
चष्ये दिस्टि सुदिस्टिं, पर्जय विलयन्ति नन्त नन्ताए।
रागं जन रंजनयं, भव षिपिय ममल सुद्ध सहकारं ॥ २१ ॥
पर पर्जय नन्त विसेषं, पर्जय संसर्ग कम्म उप्पती।
कम्म विसेषं विलयं, भय षिपिय ममल न्यान सद्भावं ॥ २२ ॥
चष्ये च ममल दिस्टि, समलं पर्जाय नन्त षिपिऊनं।
ससंक कम्म विलयं, ममल दिस्टि च न्यान सहकारं ॥ २३ ॥
पर्जय अनिस्ट रूवं, अन्यान सहकार कम्म उप्पत्ति।
समल सहावं विलयं, भय षिपनक भव्य न्यान सहकारं ॥ २४ ॥
चष्य सहावं ममलं, वयनं उप्पत्ति कम्म सद्भावं।
वयनं च ममल रूवं, भय जिनियं नन्त कम्म विलयन्ती ॥ २५ ॥
कमल सहावं उत्तं, कमलं कारन जिनेहि उप्पत्ती।
कारन काज संजोयं, ममल सहावेन समल भय विलयं ॥ २६ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(भय विनास सुभ वयनं) संसारके भयको नाश करनेवाले ज्ञानीके शुभ वचन होते हैं अर्थात् ज्ञानी ऐसा उपदेश करते हैं जिससे सर्व भयोंका नाश होजावे (न्यानी अन्मोय नंद आनंदं) ज्ञानी आत्मानन्दमें मगन होकर आनन्दित रहते हैं (अन्यान सिंह्छ पिपन) उनके उपदेशसे अज्ञान और मिथ्या-

त्वका क्षय होजाता है (अनिष्ट अ मोय विग्य रूवेन) आत्माके अहितकारी विषय कषाय हैं उनमें रंजायमान होनेका भाव छूट जाता है ॥ १ ॥

(चष्ये दर्सन उत्त) ज्ञानी निश्चयनयसे चक्षु दर्शनको कहते है। व्यवहारनयसे आंखके द्वारा पदार्थोंके सामान्य अवलोकनको चक्षु दर्शन कहते हैं, निश्चयनयसे आंखकी दृष्टिको ध्यानावस्थामें भीतर रखते हुए ज्ञानमय दृष्टिसे निज आत्माका अवलोकन करना या अनुभव करना चक्षु दर्शन है उसीका यहां वर्णन है (चेतन महकार कम्म सुइ पिान) जहां चेतन स्वरूप आत्माका दर्शन होता है वहां उस आत्मदर्शनके प्रभावसे कर्म स्वयं क्षय होते जाते हैं। आत्मानुभवके कारणसे कर्मोंकी विशेष निर्जरा होती है (भय ससंक विपिऊन) जहां आत्माके आनन्दका स्वाद आजाता है, सर्व भय व सर्व शंकाएं दूर हो जाती है (विपिओ संसार सरनि मोःयं) संसारमें भ्रमण करानेवाला दर्शन मोह कर्म या मिथ्यात्वभाव सर्व दूर हो जाता है। सम्यग्दर्शन निश्चयसे आत्माका स्वभाव है। उस स्वभावमें रमण करनेसे संसारकी रमणता दूर होजाती है। सम्यक्त प्रकाश है, मिथ्यात्व अन्धकार है। अन्धकारके दूर होनेसे ही प्रकाश प्रकाशित रहता है ॥ २ ॥

(मल सुभाव संपिानं) रागद्वेषसे जो स्वभावकी मलीनता थी, सो दूर होजाती है, वीतरागता प्रगट होजाती है (ममल दिष्टिं च कम्म विपिऊन) जहां मल रहित शुद्ध आत्मदृष्टि होती है वहां कर्मोंका क्षय अवश्य होता है। नोट—ममल शब्दका व्यवहार श्री तारनस्वामीने यत्रतत्र किया है जो अमलके ही अर्थमें है। इसलिये हमने अबतक ममल शब्द ही रखकर उसका अर्थ अमल किया है। दोनों ही शब्दोंका अर्थ एक ही है) (भय पिानक सहकार) आत्मानुभवके समय सर्व भयोंका क्षय होजाता है। इस निर्भय भावके कारण (ममल महावेन मयरु न्यानम्य) शुद्धोपयोगके द्वारा ज्ञान निर्मल होता जाता है। अर्थात् इसीसे केवलज्ञानका प्रकाश होता है ॥ ३ ॥

(ममलं ममरु उवन्न) निर्मल भावके मननसे ही भावोंकी निर्मलता होती है। शुद्धात्माकी भावना ही से आत्मा शुद्ध होता है (भय पिपिय मसक विलयनो) इसी शुद्ध आत्माकी भावनासे सर्व भय क्षय होजाता है व सर्व शंकामय भाव विलय होजाता है (कम्म उवन्न विलय) तथा नवीन कर्मोंका उपजना बन्ध होजाता है। संवर भावके प्रतापसे नवीन कर्मोंका आस्रव व बन्ध नहीं होता है (भय गलिय ममल भाव सहकार) इस

ममलपाहुड

भाव तारनतरन है। अर्थात् शुद्धोपयोग हीसे यह जीव संसारसे पार होता है व इसीका उपदेश दूसरोंको भी भवसागरसे पार करता है। यही आत्माकी शुद्धिका कारण है (भय विनष्ट मजोय) इस शुद्ध भावके संयोगसे सर्व भय नाश होजाता है (विलय कम्मान तिविह जोएन) जब कोई भव्यजीव मन, वचन, काय, तीनों योगोंको रोककर आत्मध्यान करता है तब उसके कर्मोंकी निर्जरा होती है ॥ १० ॥

(चण्ये चरन्ति चरन) जो इस आत्माके दर्शनके चारित्रमें चलते हैं। अर्थात् जो आत्माका ध्यान करते हैं (चरन आचरन ममल दिस्ट च) वे ही चारित्रको पालते हुए निर्मल श्रद्धाके धारक हैं (मल सहाव न दिट्ठ) वहां कोई दोषमय व रागादिमय स्वभाव नहीं दिखलाई पड़ता है (भय रहिय अभयदान सहकार) वे ही निर्भय हैं, वे ही अपनेको अभयदान देते हैं, आत्माको संसारके भयसे छुड़ाते हैं ॥ ११ ॥

(चण्ये अरुव रूव) यह अन्तरंग चक्षुदर्शन अमूर्तीक आत्माके स्वभावका अनुभव कराता है (सुर विंजन सरूव संजुत्त) यह आत्मानुभव प्रगट सूर्य समान स्वरूपका धारी है। अर्थात् वीतरागताके साथ आत्माका प्रकाशक है (ससक सक रहियं) इसमें कोई भय व शंका नहीं है (भय विपिय ममल न्यान जोइयं) यह भयका नाश करनेवाला है, यह निर्मल ज्ञान ध्यानस्थ महात्माको होता है ॥ १२ ॥

(चण्ये षिपनक रूवं) यह आत्मदर्शन क्षायिक स्वभाव है। अर्थात् इससे कर्मोंका क्षय होता है (षिपिओ ससार सरनि मोहधं) यह भाव संसारमें भ्रमण करानेवाले दर्शन मोह या मिथ्यात्वको क्षय कर देता है (षिपिओ ममल उवन्न) इस आत्मदर्शनके प्रभावसे उदयमें आनेवाला मलीन भाव क्षय होजाता है। अर्थात् रागद्वेष उत्पादक कर्म गल जाता है (भय षिपिय ममल न्यान सहकार) इससे सर्व भय दूर होता है। यही केवलज्ञानका कारण है ॥ १३ ॥

(चण्ये दर्सन सुद्ध) यह अन्तरंग चक्षुदर्शन शुद्ध है (सुद्ध स सहाव असुद्ध गलिय च) यह शुद्ध आत्माका स्वभाव है। इसने अशुद्ध भावको गला दिया है (अन्यान मिथ्या गलिय) इसमें अज्ञान भाव व मिथ्यात्वभाव दूर होगया है (गलिय अन्यान सल्य गलियं च) अज्ञानके नाशके साथ शल्य भी गल गई है ॥ १४ ॥

(चण्ये दिस्टति इस्ट) यह चक्षुदर्शन इष्ट परमात्म पदको देखनेवाला है (अनिस्ट सहकार सल्य विरयती) इसके प्रतापसे हानिकारक सब शल्य-माया मिथ्या निदान दूर होगई हैं (भय षिपनक स सहाव) इससे भय

क्षय होजाता है, यह आत्माका निज स्वभाव है (ममल सहावेन कम्म खिपनं च) इस शुद्ध स्वभावके अनुभवसे ही कर्म क्षय होजाते हैं ॥ १५ ॥

(चष्ये ममल सुदिस्टं) यह अन्तरंग चक्षुदर्शन निर्मल सम्यग्दर्शन है (इस्ट संजोय विजोय अनिस्टं) यह इष्ट जो सिद्धपद उसका संयोग कराता है और अनिष्ट जो संसार उसका नाश करता है (भय विनास भव अन्त) इससे भय नाश होजाता है व संसारका ही अन्त होजाता है (ममल सहावेन कम्म गलियन्ती) इसी शुद्ध स्वभावके प्रभावसे कर्म गल जाते हैं ॥ १६ ॥

(चष्ये रमन सहाव) वह अन्तरंग चक्षुदर्शन आत्मरमण स्वभावमय है। अर्थात् स्वात्मानुभवरूप है (रमन रसियं च ममल सहकारं) यह आत्मीक रसमें मगन है व यही निर्मलताका साधक है (भय खिपनक स सहाव) यह भय नाशक आत्माका स्वभाव है (पिपिओ कम्मान तिविह जोएन) इसीके प्रभावसे मन, वचन, काय तीनों योग थिर होजाते हैं, आत्म-समाधि जागृत होती है जिससे कर्मोंका क्षय होता है ॥१७॥

(पिपिओ नन्त विसेषं) इसके प्रभावसे अनन्त भेदोंका विकल्प मिट जाता है (भय पिपिय ससक विलयन्ती) इससे भय क्षय होता है व सशंक भाव विला जाता है (विलय कम्म उवन्न) यह कर्मोंके आस्रवको रोकता है (ममल सहावेन कम्म खिपन च) इसी शुद्ध स्वभावके द्वारा कर्मोंकी निर्जरा होती है ॥ १८ ॥

(पिपिओ दिस्टि सहाव) इसीसे मिथ्यात्व दृष्टिका स्वभाव दूर होजाता है (दिस्टि सहकार इस्ट सजोयं) सम्यग्दर्शनके प्रभावसे इष्ट जो परमात्मपद उसका संयोग होता है (इस्ट च इस्ट रूवं) परमात्म स्वरूपकी ही तरफ प्रेम रहता है (अनिस्ट संसार सरनि विलयन्ती) इससे दुःखदाई संसारका भ्रमण मिट जाता है ॥१९॥

(चष्ये अनत दिस्टी) यह अन्तरंग चक्षुदर्शन अनन्तदर्शनका अनुभव करता है। अर्थात् अनन्तदर्शनधारी परमात्माका अनुभव करता है (मल मुक्क सल्य संक विलयन्ती) इससे सर्व मल, सर्व शल्य, व सर्व शंकाएँ दूर होजाती हैं (भय विनष्ट संजोय) इसके संयोगसे भयका क्षय होजाता है (ममल दिस्ट च कम्म खिपन च) इसी शुद्ध स्वभावके अनुभवसे कर्मोंका क्षय होजाता है ॥ २० ॥

(चष्ये दिस्टि सु दिस्टं) इस अन्तरंग आत्मदर्शन रूप चक्षुदर्शनके अनुभव करनेसे (पर्जाय विरयंति नन्त नन्ताए) अनन्तानन्त शरीरोंमें प्राप्त करानेवाला कर्म क्षय हो जाता है (रंग जनरंजनय) जनोंके मनको प्रसन्न

करनेवाला राग विला जाता है (भय विपिय ममल सुद्ध सहकार) व सर्व भय दूर होजाता है। परम शुद्ध भावका यह साधक है ॥ २१ ॥

(पर पर्जय नन्त विसेषु) अनन्त प्रकारकी पर परिणतियें होती हैं। स्वात्म रमणकी परिणतिसे विरुद्ध सांसारिक परिणतियें अनन्त प्रकारकी होती हैं (पर्जय ससर्ग कम्म उप्पत्ती) इन्हीं अशुद्ध रागद्वेष मोह रूप परिणतिके संयोगसे कर्मोंका वन्ध होता है (कम्म विसेषं गलियं भय विपिय ममल न्यान सद्भाव) सो सर्व कर्म भयरहित शुद्ध ज्ञानके कारण दूर होजाते हैं ॥ २२ ॥

(चष्येय ममल दिस्टि) इस अन्तरंग चक्षुदर्शनकी शुद्ध दृष्टिके प्रतापसे (समलं पर्याय नन्त विपिऊनं) मल सहित अशुद्ध परिणाम सव क्षय होजाते हैं (ससंक कम्म विलय) शंकाको व भयको पैदा करनेवाला कर्म विला जाता है (ममल दिस्टि च न्यान सहकार) यही निर्मल आत्मदृष्टि केवलज्ञानको उत्पन्न करती है ॥२३॥

(पर्जय अनिष्ट रूव) अहितकारी संसारवर्द्धक जो परिणाम है या अवस्था है (अन्यान सहकार कम्म उप्पत्ती) उस अज्ञानमई भावके कारण कर्मोंका बन्ध होता है (समल सहाव भय विपनक भव्व न्यान सहकारं) वह सव अशुद्ध भाव भयरहित निर्मल प्रशंसनीय ज्ञानके प्रतापसे विला जाता है ॥ २४ ॥

(चष्य सहाव ममल) आत्माका दर्शन शुद्ध है (वयन उप्पत्ति कम्म सद्भावं) जहां वचनोंका प्रकाश है अर्थात् वचन द्वारा विकल्प है, स्तुति है या जप है वहां कर्मोंका आस्रव है (वयनं च ममल रूवं) परन्तु जहां वचनोंके द्वारा जप या मनन करते हुए आत्माका शुद्ध स्वभाव झलक जाता है (भय जिनिय नन्त कम्म विलयती) वहां भय सव जीतलिया जाता है व अनन्त कर्म क्षय होजाते हैं ॥ २५ ॥

(कमल सहावं उत्त) इसतरह कमलके समान प्रफुल्लित आत्माका स्वभाव कहा गया (कमल कारन जिनेहि उप्पत्ती) यही शुद्धात्माका अनुभव ही श्री जिनेन्द्र पदकी उत्पत्तिका कारण है (कारन काज सजोय) जैसा कारण होता है वैसा कार्य होता है। शुद्ध स्वभावका ध्यान ही शुद्ध भावका प्रकाशक है। केवल स्वरूप आत्माका अनुभव ही केवलज्ञानका कारण है (ममल सहावेन समलं भय विलयं) शुद्ध स्वभावके झलकावसे दोष सहित सर्व भय विला जाता है ॥ २६ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें स्वामीने अन्तरंग ज्ञानचक्षु द्वारा जो शुद्धात्माका दर्शन होता है अर्थात् शुद्धात्माका अनुभव होता है, उसीकी महिमा व स्तुति रमणीक शब्दोंमें की है व वारंवार कहा है कि यही

ममलपाहुड
॥१६५॥

शुद्धात्मानुभव सर्व संसारके भयोंका मेटनेवाला है, यही निःशंक करनेवाला है। कोई शल्य आत्मानुभवमें नहीं रहती है। न सम्यग्दृष्टीके पास माया, मिथ्या, निदान कोई शल्य ही रहती है। जहां शुद्धात्मानुभव है वहीं निर्मल सम्यग्दर्शन है, वहीं सम्यग्ज्ञान है, वहीं सम्यक्चारित्र है, यही आत्मामें रमणता है, यही धर्मध्यान है व यही शुक्लध्यान है। चौथे अविरत सम्यग्दर्शन गुणस्थानसे इस अन्तरंग चक्षु दर्शनका प्रकाश होजाता है। इसीके प्रकाशसे मिथ्यात्व भाव चला जाता है। इसके रहते हुए बहुत कर्मोंका आस्रव रुकता है व बहुत कर्मोंकी निर्जरा होती है। मोक्षमार्ग ही वास्तवमें स्वात्मानुभव है, इसके लाभके विना बाहरी जप तप व्रत उपवास मुनि व श्रावकके व्रत मोक्षमार्ग नहीं होसक्ते। सरागभावसे कर्मका बंध होता है, निर्जरा नहीं। निर्जराका कारण तो मात्र एक शुद्धोपयोग है, एक निर्मल भाव है, वीतराग विज्ञानमय भाव है। इसी भावके द्वारा ही गुणस्थानके द्वारा आत्माकी उन्नति होती है। इसी आत्मीक शुद्ध भावसे घातिय कर्मोंका क्षय होता है व केवलज्ञान व केवलदर्शन प्रगट होता है। परमात्मपदका कारण एक यही शुद्धात्मानुभव है इसीसे सर्व कर्म क्षय होजाते हैं व यह आत्मा परमात्मा पद या सिद्ध पद पालेता है। जहां शुद्धात्मानुभव है वहां मन, वचन, काय तीनोंका विकल्प नहीं रहता है। तत्वज्ञानी महात्माओंका कर्तव्य है कि वे ऐसा ही उपदेश करें जिससे यह चक्षुदर्शन भव्यजीवोंके भीतर प्रकाशमान होजावे और वे संसारसागरके पार पहुंच जावें।

(२०) वैराग्य फूलना ३७९ से ३९९ तक।

उव उवनउ हो न्यान महावं, विंद सजोए विंद पओ।
लोयह हो लोय प्रमानु, नन्तानन्त विन्यान पओ ॥ १ ॥
अर्थह हो ति अर्थ सजुत्तु, अर्थति अर्थह पूरिउयो।
मइ सुइ हो अवहि सहाओ, पंच न्यान पद विंद मओ ॥ २ ॥
न्यानी हो न्यान संजुत्तु, दर्सन दिस्टिहि दिस्टिओ।

दसन हो दरसिउ लोया, सम्यक्दर्सन समय पओ ॥ ३ ॥
अनन्तह हो दर्सन दिस्टि, लोयालोय सु न्याय मओ ।
अर्थह हो तिअर्थ संजुत्तु, पंच दिप्ति परमिस्टि मओ ॥ ४ ॥
दसिओ हो ममल सहाओ, न्यान विन्यान सुदिस्टि मओ ।
अप्पा हो अप्प सहाओ, सहजनन्द चेयन सहिओ ॥ ५ ॥
वीरह हो पयोग संजुत्तु, न्यान अन्मोयह ममल पओ ।
न्यानी हो न्यान सहाओ, भय विनास भवु जु मुनहु ॥ ६ ॥
मसंकह हो रहियो निसंकु, कंप्या रहित सु ममल पओ ।
जोइ पहो जोउ सु इस्टु, अनिस्टह सरनि विमुक्कु परो ॥ ७ ॥
पर परजय हो दिस्टि न देइ, न्यान अन्मोय सु ममल पओ ।
परिनय हो न्यान सहाओ, अवयासह नन्तानन्त पओ ॥ ८ ॥
जोई हो जोउ अनन्तु, दर्सन दिस्टि सुन्यान मओ ।
विंदिओ हो लोय अलोय, नन्तानन्त सु ममल सरो ॥ ९ ॥
दर्सन हो चौविहि उत्तु, चष्यह दर्सउ मल रहिओ ।
कम्मह हो उवन सहाओ, दिस्टि हि विलियो कम्म सुओ ॥ १० ॥
कम्म जुहो तस्कर उत्तु, चेयन दिस्टि गलि गलियो ।
अचष्यह हो दिस्टि अनन्तु, कम्म कलंक विवज्जियो ॥ ११ ॥
कम्म जुहो वन्धु संजुत्तु, घायक कम्म सुजिन भनिओ ।
आवर्नह हो न्यान सहाओ, न्यान अन्मोयह गलि गयओ ॥ १२ ॥

ममलपाहुड
॥१६७॥

अवहिहि हो दिस्टि सहाओ, गुरु गुतिह रुत्तियो न्यान समो ।
अन्यानह हो अन्मोय संजुत्तु, परजय रत्तउ सरनि परो ॥ १३ ॥
विरोह हो चेयन दिस्टि, अन्मोय संजोए न दिस्टि यऊ ।
कम्मह हो कम्म सहाओ, न्याम अन्मोयह विलय गओ ॥ १४ ॥
त्रिविधि हो कम्म उपत्ति, न्यान अन्मोयह अर्थ परा ।
अर्थह हो ति अर्थ संजोओ, न्यान अन्मोयह पिपि गयओ ॥ १५ ॥
वैरागह हो, उवनउ भाओ, संसारह सरनि विमुक्त परा ।
सरीरह हो सरड सहाओ, न्यान दिस्टि विलयन्तु परा ॥ १६ ॥
भोगह हो भोउ उवभोओ, कलंकृत कम्म जु ऊपजे ।
कम्मह हो कम्म सहाओ, न्यान अन्मोयह गलि गयओ ॥ १७ ॥
अवहि हो देसा उत्तु, न्यान अन्मोयह परिनवे ।
न्यानी हो न्यान-अन्मोय, पर्म अवहि सो ममल मुनी ॥ १८ ॥
मन पर्जय हो अंकुर उत्तु, रिजुमति विपुल उवन्न सुई ।
वैरागह हो तिविह संजुत्तु, ग्रन्थ मुक्तु निर्ग्रन्थ मुनी ॥ १९ ॥
छदमस्तह हो घाय विमुक्तु, केवल सहियो सो मुनहु ।
ध्यानह हो ध्यान निमित्तु, न्यानी न्यान अन्मोय मओ ॥ २० ॥
केवल हो दिस्टि सुदिस्टि, न्यान अन्मोय सु ममल पओ ।
तारन् हो तरन समर्थु, ममल न्यान सुमुक्ति गओ ॥ २१ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(उव उवनउ हो न्यान सहावं विंद संजोए विंद पओ) अब ज्ञान स्वभावी आत्माका प्रकाश हुआ है, जो आत्मज्ञान सहित है व स्वानुभव स्वरूप है (लोयह हो लोय प्रमानु नन्तानन्त विन्यान पओ) उस ज्ञान स्वभावमें लोकालोक प्रमाण अनन्तानन्त ज्ञानमई पदको देखो। अनन्त ज्ञानधारा आत्माका दर्शन करो ॥१॥ (अर्थह हो तिअर्थ सजुत्तु अर्थति अर्थह पुरिउयो) यह आत्मा तीन स्वभाव सहित है, रत्नत्रय सहित है, यह आत्म पदार्थ आत्मा आदि नौ पदार्थोंके निश्चयसे परिपूर्ण है (मइ सुइ हो अवहि सहाओ) तत्वज्ञानी साधुकी आत्मा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान तथा अवधिज्ञान सहित है (पच न्यान पद विंद मओ) सो पांचों ज्ञान पदको रखनेवाले एक केवलज्ञानमई पदको अनुभव कर रहा है ॥ २ ॥

(न्यानी हो न्यान सजुत्तु) यह ज्ञानी महात्मा तत्वज्ञानसे पूर्ण हैं (दर्सन दिस्टिः दिस्टियो) इन्होंने आत्मदर्शनकी दृष्टिका दर्शन कर लिया है। यह आत्मानुभवी हैं (दर्सन हो सिउ लोय) इनका आत्मदर्शन लोकालोकको देखनेवाला है। अर्थात् अनन्तदर्शन स्वरूप आत्माका अनुभव यह कर रहे हैं (सम्यक्त दर्सिन समय मओ) यह ज्ञानी सम्यग्दर्शन सहित स्वसमयरूप है। अर्थात् अपने आत्मामें रमण कर रहे हैं (अनन्तह हो दर्सन दिस्टि) उस आत्मामें अनन्तदर्शन दीख रहा है (लोयालोय सु न्यान मओ, यह आत्मा लोक अलोकको जाननेवाला है (अर्थह हो तिअर्थ संजुत्त) यह आत्मा रत्नत्रयसे पूर्ण पदार्थ है (पच दिप्ति परमेस्टि मओ) यही पांच पदका प्रकाशक परमेष्टी स्वरूप है। अर्थात् यही आत्मा साधु है, यही आचार्य है, यही उपाध्याय है, यही अर्हंत है, यही सिद्ध है। इन पांचों पदोंके प्रकाशकी शक्ति इस आत्मामें है ॥ ४ ॥

(दर्सिओहो ममल सहाओ) तत्वज्ञानी साधु महात्माने शुद्ध स्वभावधारी आत्माका दर्शन या अनुभव किया है (न्यान विन्यान सु दिस्टि मओ) वह आत्मा ज्ञान विज्ञान व सम्यग्दर्शनसे पूर्ण हैं (अप्पा हो अप्प सहाओ) यह आत्मा अपने आत्मीक स्वभावमें है (सहजनंद चेयन सहिओ) इसमें स्वाभाविक आनन्द है व यह शुद्ध ज्ञान चेतना सहित है। इसका स्वभाव शुद्ध ज्ञान भावके अनुभव करनेका है ॥ ५ ॥

(वीरह हो पयोग संजुत्त) यह साधु महात्मा बड़े वीर हैं, यह शुद्ध उपयोगके धारी हैं (न्यान अमोह ममल पओ) यह ज्ञानमें आनन्दित होरहे हैं, शुद्ध पदमें विराजित हैं (न्यानी हो न्यान सहाओ) यह आत्मज्ञानी हैं, ज्ञान स्वभावमें रत हैं (भय विनास भवुजु मुनहु) इसी स्वात्मानुभवसे संसारका भय नाश होजाता है। हे भव्यजीव ! तुम भी इसी शुद्धात्माका अनुभव करो ॥ ६ ॥

ममलपाहुड ॥१६९॥

(ससंकह हो रहियो निसंक) हे शङ्का सहित प्राणी ! तू शङ्का छोड दे। आत्माके शुद्ध स्वभावका निश्चय कर (इच्छा रहित सु ममल पओ) और किसी बातकी इच्छा न करके, सर्व विषयोंकी वाञ्छा छोड़कर उस शुद्ध पदका मनन कर (जोइ पहो जोउ सु इन्दु) हे योगी ! तू उस परम इष्ट परम प्यारे आत्माकी तरफ लौ लगा (अनिस्टह सरनि विमुक्कु परो) और आत्माके लिये अनिष्ट–त्यागनेयोग्य ऐसे संसारके मार्गसे वैराग्यवान हो। अर्थात् संसार असार है, दुःखमय है, जन्ममरण सहित है, वास योग्य नहीं है, ऐसी वैराग्य भावना भा ॥ ७ ॥

(पर परजय हो दिस्टि न देइ) हे योगी ! तू निज आत्माकी शुद्ध परिणतिको छोडकर और किसी पर परिणतिमें या पुद्गलकृत–कर्मकृत पर्यायमें अपनी दृष्टि न दे। केवल एक शुद्धात्मा हीकी तरफ देख (न्यान अन्मोय सु ममल पओ) वहीं ज्ञान है, वहीं आनन्द है, वही वीतराग पद है (परिनय हो न्य न सह ओ) हे योगी ! तू इस ज्ञान स्वभावमें परिणमन कर (अवयासइ नतानंत पओ) इस ज्ञान पदमें अनन्तानन्त पदार्थोंको जाननेकी शक्ति है ॥ ८ ॥

(जोई हो जोउ अनंतु दर्सन दिस्टि सु न्यान मओ) हे योगी ! अनन्तदर्शनकी दृष्टि रखनेवाले, सम्यग्ज्ञानमई आत्माकी ओर लौ लगा। उसीके आश्रय योगाभ्यास कर (विंदिओ हो लोयालोय नंत नन्त सु ममल सओ) और उसीका अनुभव कर, जो लोकालोकके अनन्तानन्त पदार्थोंको जाननेवाला शुद्ध स्वरूपका धारी है ॥९॥

(दर्सन हो चौविहि उत्तु) दर्शनोपयोग चार प्रकार कहा गया है–चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन (चष्यह दर्सउ मल रहिओ) उनमें चक्षुदर्शन मल रहित है। यहां निश्चयनय प्रधान कथन है। अपनी दृष्टिको सर्व पर पदार्थोंसे हटाकर अंतरंग आत्माको देखना यही चक्षुदर्शन है। इसमें कोई रागादि मल नहीं है (कम्मह हो उवन सहाओ) कर्मोंका स्वभाव उदयरूप है। बन्ध प्राप्त कर्म अपनी स्थिति पूर्ण होनेपर उदय आते हैं (दिस्टि हि विलियो कम्म सुओ) सम्यग्दर्शनके प्रभावसे अर्थात् आत्मदर्शनके महात्म्यसे वे कर्म स्वयं झड़ जाते हैं। ज्ञानी कर्मोंके उदयसे प्राप्त सुख या दुःखमें रंजायमान नहीं होता है। ज्ञाता दृष्टा होकर देखता जानता मात्र है अतएव वे कर्म झड़ जाते हैं। वैराग्यभावनाके बलसे तब नवीन आस्रव व बंध नहीं होता है ॥ १० ॥

(कम्म जुहो तस्कर उत्तु) कर्मोंको चोर या डाकूके समान कहा गया है (चेयन दिस्टि गलि गलियो) यह कर्म

उदयमें आकर रागद्वेष पैदा करके आत्माको मोक्षमार्गसे हटानेवाले हैं। ज्ञान दर्शन चारित्र सम्यक्त सुख आदि धनको लूटनेवाले हैं। इन कर्मरूपी चोरोंको आत्मज्ञानकी दृष्टि भगा देती है। आत्मानुभवके सामने इनका साहस नहीं होता है कि ये आक्रमण कर सकें—ये भाग जाते हैं (अचष्यइ हो दिस्टि अनन्तु) निश्चय अचक्षु दर्शन वह है जहां मनको रोककर अनन्तदर्शन धारी आत्माको देखा जावे (कम्म कलंक विवज्जियो) जो आत्मा अपने स्वभावकी अपेक्षा निश्चयसे कर्मकलंकसे रहित है ॥ ११ ॥

(कम्म जुहो बन्धु संजुत्तु) बन्धमें प्राप्त जो कर्म हैं (घायक कम्म सुजिन भनिओ) उनमेंसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय व मोहनीय इन चार कर्मोंको श्री जिनेन्द्रने घातीय कर्म कहा है। क्योंकि ये आत्माके ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सम्यक्त और चारित्र गुणको घात करते हैं, रोकते हैं (आवर्नइ हो न्यान सहाओ) ज्ञान स्वभावको ढकनेवाला जो ज्ञानावरण कर्म है (न्यान अन्मोयह गलि गयओ) वह कर्म आत्मज्ञानमें आनन्दित होनेसे गलता जाता है ॥ १२ ॥

(अवहिहि हो दिस्टि सहाओ) अवधिदर्शन भी आत्माके दर्शन स्वभावको रखनेवाला है। सम्यग्दृष्टीको ही अवधिदर्शन होता है। यहां निश्चय प्रधान कथन है। सम्यग्दृष्टी अपने आत्माकी ओर लौ लगाता है। उसकी अवधि या देखनेकी मर्यादा आत्माकी है और तरफ वह दृष्टिपात नहीं करता (गुरु गुप्तिहि रुचियो न्यान समै) गुरु महाराजने जिस गुप्त रुचिको ज्ञानमई आत्माकी रुचि कहा है उस यथार्थ निश्चय आत्मरुचिमें या निश्चय सम्यक्तमें वह तन्मय है (अन्यानइ हो अन्मोह सजुत्त) जो मिथ्या ज्ञानमें आनन्द मानता है, हिंसानन्द, मृषानन्द, चौर्यानन्द, परिग्रहानन्द रौद्रध्यानमें मगन रहता है (परजय रचउ सरनि परो) वह शरीरमें रति करानेवाला भव भवमें भ्रमण करानेवाला है। ज्ञानी इस अज्ञानके आनन्दको त्याग करदेते हैं ॥१३॥

(विरोह हो चेयन दिस्टि) ज्ञान चेतनाके अनुभवसे विरोध रूप जो कर्म या कर्मफल चेतनाका अनुभव है (अन्मोय सजोए न दिस्टि यऊ) सो ज्ञानानन्दकी मगनतामें नहीं दिखलाई पड़ता है। तत्वज्ञानी महात्मा संसारसे वैरागी होते हैं। अतएव न तो वे रागद्वेष पूर्वक कर्म करनेमें मगनता मानते हैं न सुख दुःख रूप कर्मके फलमें रत होते हैं, उनकी आसक्ति एक ज्ञानचेतना हीमें होती है (कम्मह हो कम्म सहाओ) कर्मोंका स्वभाव तो कर्मरूपमें उलझाना है (न्यान अन्मोयह विलय गओ) वे कर्म ज्ञानानन्दके प्रतापसे क्षय होजाते हैं ॥१४॥

(त्रिविधि हो कम्म उप्पत्ति) तीन प्रकार कर्मोंका उदय है। द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादिका उदय, उनमेंसे

घातीय कर्मोंके उदयसे रागादि भाव कर्मोंका उदय तथा अघातीय कर्मोंके उदयसे शरीरादि नोकर्मोंका उदय (न्यान अन्मोयह अर्थ परा) तब आत्माका ज्ञानानन्दमय आत्मीक पदार्थमें ही लवलीन रहता है (अर्थ हो तिअर्थ संजोओ) वह आत्मा पदार्थ रत्नत्रय सहित है (न्यान अन्मोयह षिपि गयओ) ऐसे ज्ञानानन्दमें तन्मय होनेसे वे तीनों ही प्रकारके कर्म क्षय होजाते हे ॥ १५ ॥

(वैरागह हो उवनउ भाओ) हे भाई ! वैराग्यको उत्पन्न करके उसीकी भावना करो। संसार शरीर भोगोंसे वैराग्यका चिंतवन करो (संसारह सरनि विमुक्क परा) जिससे संसारके भ्रमणसे छूटनेका भाव दृढ हो जावे, संसार वाससे उदासीनता होजावे (सरीरह हो सरविई सहाओ) यह शरीर चलन स्वभाव है। क्षण क्षणमें बदलता है या आयुकर्मके क्षयसे नाश होरहा है, एक दिन अवश्य छूट जायगा (न्यान दिस्टि विलयत परा) आत्मज्ञानके अनुभवसे जब यह शरीर भी नाश होजायगा तब आत्मा फिर कभी शरीर न धारण करके सदा पवित्र रहेगा ॥ १३ ॥

(भोगह हो भोउ उपभोओ) भोग दो प्रकारके होते हैं। (१) भोग—जो एक दफे भोगे जासकें। जैसे भोजनपान माला चन्दनादि, उपभोग—जो वारम्वार भोगे जासकें, जैसे वस्त्र आभूषण मकानादि (कलल्कृत कम्म जु काजै) शरीर द्वारा भोग व उपभोग करनेसे कर्मोंका बन्ध होता है (कम्मह कम्म सहाओ) उन बांधे हुए कर्मोंके उदयके कारण (न्यान अन्मोयह गलि गयओ) ज्ञानानन्द स्वभाव छिप गया है। अथवा भोगोपभोग करनेसे जो कर्म बन्धते हैं उन कर्मोंकी निर्जरा ज्ञानानन्दमें रमण करनेसे होजाती है ॥१७॥

(अवहि हो देसा उत्तु) देश अवधिज्ञान सम्यग्दृष्टीके पैदा होना कहा गया है (न्यान अन्मोयह परिनवै) ऐसा अवधिज्ञानी सम्यग्दृष्टी ज्ञानानन्द स्वभावमें परिणमन करता है, ज्ञानानन्दका स्वाद लेता है (न्यानी हो न्यान अन्मोय) ऐसा अवधिज्ञानी आत्मज्ञानकी अनुमोदना करता रहता है (पर्म अवधि सो ममल मुनी) उसीके प्रभावसे शुद्ध वीतराग मुनिको परम अवधिज्ञानकी प्राप्ति होजाती है। जो उसी भवसे मुक्तिमें पहुँचा देता है ॥ १८ ॥

(मन पर्जय हो अकुर उत्तु) आत्मज्ञानी व आत्मध्यानी साधुके मनःपर्यय ज्ञानका अंकुर उत्पन्न हो जाता है (रिजुमति विपुल उत्पन्नमई) ऋजुमति तथा तद्भव मोक्षगामीको विपुलमति मनःपर्यय-ज्ञान होजाता है (वैरागह हो तिविहि संजुत्त) उन साधुको संसार, शरीर, भोगोंसे ऐसा तीन तरहका वैराग्य रहता है (अन्य

मुक्कु निर्ग्रंथ मुनी) वे अंतरंग मिथ्यात्वादि १४ प्रकार व बाहर क्षेत्र मकानादि १० प्रकारके परिग्रहको त्यागकर निर्ग्रंथ मुनि होते हैं ॥ १९ ॥

(छदमस्तह हो घाय विमुक्कु) जबतक केवलज्ञान न हो तबतक साधुको छद्मस्थ या अल्पज्ञ कहते हैं। छद्मस्थ अवस्थामें श्री मुनिमहाराजने क्षपकश्रेणी आरूढ़ होकर बारहवें गुणस्थानतक चार घातीय कर्मोंको नाश करके (केवल सहियो सो मुनहु) केवलज्ञानको प्राप्त किया। उन अरहंत परमात्माका मनन करो (ध्यानह हो ध्यान निमित्त) ध्यानके अभ्याससे ही ध्यानकी वृद्धि होती है। धर्मध्यानसे उन्नति करके शुक्लध्यान होता है (न्यायी न्यान अन्मोय मओ) उसी शुक्लध्यानीके केवलज्ञानका लाभ होता है। केवलज्ञानी ज्ञानानन्दमई भावमें रत रहते हैं ॥ २० ॥

(केवल हो दिरिट सुदिस्टि) वे केवलज्ञानी केवलदर्शनके द्वारा पदार्थोंको देखते हैं (न्यान अन्मोय सु ममल पओ) श्री अरहंत परमात्माका शुद्ध पद ज्ञानानंदमई है (तारन हो तरन समर्थु) वे श्री अरहंत भगवान भव्य जीवोंको तार करके आप स्वयं तरनेको समर्थ हैं (ममल न्यान सु मुक्ति गओ) उस निर्मल केवलज्ञानको पाकर श्री अरहंत परमात्मा शेष कर्मोंको भी नाशकर मोक्ष पहुँच जाते हैं ॥ २१ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें स्वामीने भव्य जीवोंको प्रेरणा की है कि वे ज्ञान स्वभावी शुद्धात्माका अनुभव करे। यह स्वानुभव रत्नत्रय स्वरूप है, सहजानन्दमई है, आत्माके भीतर अनन्तज्ञान, अनन्त-दर्शन, क्षायिक सम्यग्दर्शन, अनंतवीर्य भरा हुआ है। इसी आत्मामें अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु पांचों पदोंके प्रकाशकी शक्ति है। भव्य जीवोंको उचित है कि वे आत्माके शुद्ध स्वभावमें किसी तरहकी शङ्का न रखके निःशङ्क भाव रखके शुद्धात्माका ध्यान करे। इसी आत्मध्यानसे सं रके मार्गका नाश होजाता है, कर्मोंका क्षय होजाता है। यहां चक्षुदर्शन व अचक्षुदर्शनको निश्चयनयसे घटाकर कहा है कि अन्तरंग ज्ञानचक्षु द्वारा आत्माको देखना ही चक्षुदर्शन है। मन द्वारा आत्माका मनन करके ही आत्माका अनुभव करना अचक्षुदर्शन है। आत्माके भीतर रमण करके आत्मासे बाहर नहीं जाना सो अवधिदर्शन है। इन्हीं तीन दर्शनोके द्वारा अनुभव करते२ परम साधु उन्नति करके मनःपर्यय ज्ञानको प्राप्त कर लेते हैं। विपुल मनःपर्यय ज्ञान व परम अवधि व सर्वावधि ज्ञान जिस साधुको प्राप्त होजाता है वह उसी भवसे मोक्ष प्राप्त कर लेता है। स्वात्मानुभव हीके अभ्याससे चार घातीय कर्म क्षय होजाते

हैं। अर्हंतपद प्रगट होजाता है तब केवलज्ञान दर्शनका प्रकाश होजाता है। अरहन्त ही फिर सिद्ध हो जाते हैं। भव्यजीवोंको उचित है कि संसार शरीर भोगोंसे वैराग्यभाव धारण करें।

संसारको अनित्य, दुःखोंका घर व असार विचारे, शरीरको अपवित्र व नाशवंत सोचे व इन्द्रिय-भोगोंको क्षणभंगुर व अतृप्तिकारी जानें। संसारकी सर्व पर्यायें त्यागने योग्य हैं। केवल एक शुद्ध आत्माकी परिणति ही ग्रहण करनेयोग्य है। ऐसा वैराग्य जिसको होगा वही मोक्ष-प्राप्ति करनेका प्रेमी होगा। ससारके भ्रमणका कारण कर्म है। कर्मोंके ही उदयसे रागद्वेषादि भाव होते हैं व कर्मोंके ही उदयसे शरीरादि प्राप्त होते हैं। जब सर्व कर्म क्षय होजाते हैं तब भावकर्म, नोकर्म व द्रव्यकर्म तीनोंसे रहित आत्मा शुद्ध सिद्ध परमात्मा होजाता है। भव्य जीवोंको उचित है कि अपने ही आत्माको परमात्मारूप अरहंत व सिद्धरूप अनुभव करें। शुद्धात्माका अनुभव ही आत्माकी शुद्धिका कारण है।

---

(२१) जकडी गाथा ४०० से ४१७ तक।

ऐ जिन उत्तु भवियन हो, न्यान विन्यान सहाउ।
जिहि सहाइ भय विनसै, अभय मुक्ति सभाउ ॥ १ ॥
ऐ यहु अभय मुक्ति सभाउ स उत्तु, कम्म मुक्कु जिन देउ।
जोतिय लोयह अर्थति अर्थह, समय मुक्ति संजुत्तु ॥ २ ॥ (आचरी)
ऐ जिन जिनवर उत्तो, जं जिनियो कम्मु अनंतु।
ऐ अन्यान जु सहिओ, सो न्यान दिस्टि विलयन्तु ॥ ३ ॥ ऐ यहु अभय०
ऐ जिन उत्तो भविय हो, ममलह ममल सहाउ।
ऐ यहु न्यान दिस्टि सो उपजिऊ, सुद्धह सुद्ध सहाउ ॥ ४ ॥ ऐ यहु०

ऐ जह जह कम्म जु ऊपजै, समल दिस्टि समाउ ।
ऐ तह तह कम्म जु विलयो, ममलह ममल सहाउ ॥ ५ ॥ ऐ।यहु०
ऐ यहु आदि जु उपजिओ, भय विनास हे भव्वु ।
ऐ यहु न्यान सहावे, सहियो नन्तानन्तु ॥ ६ ॥ ऐ०
ऐ यहु ममल सहावह, अनादि कम्म विलयन्तु ।
ऐ यहु समय संजुतु, कम्म मुक्कु जिन उत्तु ॥ ७ ॥ ऐ०
ऐ यहु उत्तउ जिनु हे, जं जिनियो कम्मु अनन्तु ।
ऐ यहु लोयालोय विसुद्धो, न्यान दिस्टि सम उत्तु ॥ ८ ॥ ऐ०
ऐ यहु अप्प सहावह, पर पर्जय विलयंतु ।
ऐ यहु ममल सरूवह, मुक्ति पंथ दरसंतु ॥ ९ ॥ ऐ०
ऐ यहु सिद्ध सरूवे पिच्छै, अर्थति अर्थह भेउ ।
ऐ यहु न्यान सहावह, उवनो दाता देउ ॥ १० ॥ ऐ०
ऐ यहु पंच दिसि परमिस्टि हि, परम भाव उवलद्धु ।
ऐ यहु समय संजुत्तु, समय सरनि जिन उत्तु ॥ ११ ॥ ऐ०
ऐ यहु चष्य अचष्यह, ममल भाव दर्संतु ।
ऐ यहु समलु न पिच्छै, अन्यानह विलयंतु ॥ १२ ॥ ऐ०
ऐ यहु न्यान जु सहियो, सिद्ध सरूव स उत्तु ।
ऐ यहु अवहि विन्यानी, तिविहि कम्म विलयंतु ॥ १३ ॥ ऐ०

ऐ यह विमल जु केवल, पद विंदह संजुत्तु ।
ऐ यहु उवनु जु दाता, देव सहाउ संजुत्तु ॥ १४ ॥ ऐ०
जह जह कम्म जु उपजे, समल सहाउ संजुत्तु ।
ऐ यहु तह तह विलयो, सुद्ध सहाव संजुत्तु ॥ १५ ॥ ऐ०
ऐ यहु कम्मु अनन्तु जु, अन्यानह संजुत्तु ।
ऐ यहु न्यान अन्मोयह, कम्म उपत्ति विलयन्तु ॥ १६ ॥ ऐ०
ऐ यहु कम्म जु ऊपजे, नन्तानन्त भवन्तु ।
ऐ यहु न्यान सहावह, अनादि कम्म विलयन्तु ॥ १७ ॥ ऐ०
ऐ यहु अन्यान जु सहियो, अन्मोय विरोह संजुत्तु ।
ऐ यहु अन्तर्मुहुर्त, अन्मोय न्यान विलयन्तु ॥ १८ ॥ ऐ०
ऐ यहु ममल सहावह, कम्म उवन विलयन्तु ।
ऐ यह भय विनास है, ममल सिद्धि संपत्तु ॥ १९ ॥ ऐ०

अन्वय सहित अर्थ-[नोट—इस जकड़ीमें दो पुरानी पुस्तकोंमें गाथा ४१७ तक है । कुल गाथाएं १८ आती हैं । परन्तु पाठमें १९ ठीक जचती है । इसलिये न० ४१७ कायम रखके गाथाए १९ देदी है] (ऐ जिन उत्तु भवियन हो) हे भव्य जीवो ! श्री जिनेन्द्र भगवानने कहा है (न्यान विन्यान सहाउ) कि भेद विज्ञानका स्वभाव ऐसा है अर्थात् आत्माको सर्व पर पदार्थ, पर गुण, पर पर्यायसे भिन्न शुद्ध ज्ञानानन्दमय अनुभव करना ऐसा मार्ग है (जिहि सहाइ भय विनसै) जिसकी सहायतासे सर्व संसारका भय नाश होजाता है (अभय मुक्ति सभाउ) वही निर्भय मुक्तिके स्वभावको झलकानेवाला है या जिसके अनुभवसे अभय मुक्तिका लाभ होता है । भावार्थ— भेदविज्ञानके द्वारा शुद्धात्मानुभव ही मोक्षका मार्ग है ॥ १ ॥

ममलपाहुड
॥१७६॥

(ऐयह अमय मुक्ति सहाउ स उत्तु) उसी स्वानुभवको भयरहित मोक्षका स्वभाव कहा गया है। अर्थात् मोक्ष भी स्वानुभव रूप है व मोक्षमार्ग भी स्वानुभव रूप है (कम्मु मुक्कु जिनदेउ) इसी स्वानुभवसे कर्मोंसे मुक्त होकर जिनदेव (अरहन्त व सिद्ध) होजाता है (जो तिर लोयह अर्थति अर्थह) यह जिनपद तीनलोकके सर्व पदार्थोंमें मुख्य पदार्थ है (समय मुक्ति सजुत्तु) यही आत्मा मुक्ति सहित है ॥ २ ॥

(ऐ जिन जिनवर) हे भाई! श्री जिनेन्द्र भगवानने (ज जिनियो कम्म अनन्तु उत्तो) जिन्होंने अनन्त कर्मोंको जीत लिया है, जो कर्म विजयी वीर हैं ऐसा कहा है ए अन्यान जु महिओ) कि अज्ञान सहित भाव है (सो न्यान दिस्टि विल्यतु) सो सम्यग्ज्ञानकी दृष्टिसे विला जाता है। अर्थात् जब सम्यग्दर्शन स्वरूप आत्माकी सच्ची प्रतीति होजाती है व उसी समय ज्ञान सम्यग्ज्ञान होजाता है तब अज्ञानका अन्धेरा विला जाता है ॥ ३ ॥

(ऐ जिन उत्तो भविय हो) हे भव्यजीवो! श्री जिनेन्द्रने कहा है (ममलह नमल सहाउ) कि जो आत्माका स्वभाव परम निर्मल हो, शुद्ध हो, रागद्वेष रहित हो (ऐ यहु न्यान दिस्ट सो उपजिऊ) वही सम्यग्ज्ञानकी दृष्टिका प्रकाश होना है (सुद्धह सुद्ध सहाउ) वही परम शुद्ध स्वभाव है। भावार्थ–परम शुद्ध आत्माका श्रद्धान, ज्ञान व अनुभव यही निश्चय रत्नत्रय स्वरूप मोक्षमार्ग श्री जिनेन्द्रोने कहा है ॥ ४ ॥

(ऐ जह जह कम्म जु ऊवजे ममल दिस्टि मभाउ) हे भाई! मलीन दृष्टि या मिथ्यादृष्टिमय स्वभावसे या रागद्वेष मोहसे जैसे २ कर्मोंका बन्ध होता था (ऐ तह तह कम्म जु वल्या ममलह ममल सहाउ) वैसे २ वे सब कर्म परम शुद्ध आत्माके स्वभावके अनुभवसे दूर होजाते हैं। भावार्थ–मिथ्यादर्शनकी मलीनतासे बांधे-हुए कर्म सम्यग्दर्शन सहित शुद्धात्माके अनुभवसे क्षय होजाते हैं ॥ ५ ॥

(ए यह अदि जु उपजिओ) हे भाई! अनादि मिथ्यादृष्टी जीवको जब पहले पहल उपशम सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है (भय विनास हे भव्वु) हे भव्य जीव! उसीके प्रगट होनेसे सर्व संसारका भय नाश होजाता है यह नियम है। जिसको सम्यक्त होजायगा वह अवश्य निर्वाण प्राप्त करेगा। (यहु न्यान सहावे सहियो नतानतु) यह सम्यक्तभाव अनन्त ज्ञान सहित आत्माका अनुभव कर लेता है ॥ ६ ॥

(ए यहु ममल सहावह) हे भाई! इसी शुद्ध स्वभावके अनुभवसे (अनादि कम्म विलयतु) अनादिकालसे प्रवाहरूप आए हुए मिथ्यात्व व अनन्तानुबन्धी कषाय सम्बन्धी कर्म दूर होजाते हैं (ऐ यहु समय सजत्त कम्म

पुक्रु जिन उत्तु) उस सम्यग्दृष्टीको आत्माका अनुभव करनेवाला कहा गया है, उसे ही कर्मरहित जिन कहा गया है अर्थात् सम्यक्ती सम्यक्तके बाधक कर्मोंको जीत लेता है इसलिये वह जिन कहा जाता है ॥ ७ ॥

(ए यहु उत्तउ जिनहे) हे भाई ! सम्यग्दृष्टीको जिन इसलिये कहा गया है (जं जिनियो कम्म अनतु) क्योंकि उसने आत्माके घातक व सम्यक्तके विरोधक अनन्तानुबन्धी कषायके व मिथ्यात्वके कर्मोंको जीत लिया है (ऐ यहु लोयालोय विसुद्ध न्याण दिस्टि मम उत्तु) उसके भीतर लोकालोकको जाननेवाले शुद्ध ज्ञानकी ओर दृष्टी होगई है, वही समभाव कहा गया है। सम्यक्ती, आत्माको अनन्त ज्ञानमय व वीतराग-मय व समताभावमय अनुभव करता है ॥ ८ ॥

(ऐ यहु अप्प सहावह) हे भाई! सम्यक्ती, आत्माके स्वभावको अनुभव करता है (पर परजय विलयतु) जिसमें कर्मकृत परिणतिका अभाव है अथवा शुद्धात्माके अनुभवसे पर परिणति–राग द्वेषमय परिणति विला जाती है (ऐ यहु ममल बहु मुक्तिपन्थ दरसतु यही सम्यक्ती निर्मल स्वभावमयी या शुद्धोपयोगमय मोक्षके मार्गको अनुभव करता है ॥ ९ ॥

(ऐ यह सिद्ध सरूवे पिच्छै) सम्यग्दृष्टी सिद्ध परमात्माके स्वरूपको देखता है (अर्थति अर्थह भेउ) पदार्थोंके भेदोंको निश्चयसे जानता है अथवा रत्नत्रयके भेदको जानता है, व्यवहार तथा निश्चय रत्नत्रयके साधनमें तत्पर है (ऐ यहु न्यान सहावउ वह ज्ञानस्वभावी आत्माका अनुभव करता है (उवनो दाता देव) वही अपनेको आत्मीक रसका दान करता है इससे दातार है वही निश्चयसे परमात्मा देव है ॥ १० ॥

(ऐ यहु पंच दिप्ति प मेस्टि) उसीके भीतर पांचो परमेष्ठी पदोंका प्रकाश होता है। वही उन्नति करते करते साधु, उपाध्याय, आचार्य, अरहंत तथा सिद्ध होजाता है (परम भाउ उवनउ) वह श्रेष्ठ भावको या शुद्धोपयोगको प्राप्त कर लेता है (ए यहु समय सजुत्तु) वही आत्मतत्वको अनुभव करता है (समय सगनि जिन उत्तु) उसीको आत्माके मार्गमें चलनेवाला जिन या जितेन्द्रिय या वीतराग कहा गया है ॥ ११ ॥

(ऐ यहु चष्य अचष्यह ममल भाव दसैंतु) वही निश्चयनयसे आत्मीक चक्षु द्वारा या मनके आलम्बनसे अचक्षु द्वारा शुद्ध भावको देखता है (ऐ यहु समल न पिच्छै) वह अशुद्ध आत्माका अनुभव नहीं करता है (अन्यानहं विलयतु) उसका मिथ्याज्ञान दूर होगया है ॥ १२ ॥

(ऐ यहु न्यान जु सहियो सिद्ध सरूप स उत्तु) वही तत्वज्ञान सहित है, वह मानो सिद्धस्वरूप रूप है,

सिद्ध भावमें तन्मय होगया है ऐसा कहा गया है (ऐ यहु अवहि विन्यानी) वही अवधिज्ञानी होजाता है या उसका ज्ञान ज्ञानके यथार्थ स्वरूपको अनुभवता है (तिविह कम्म विग्यतु) उसी आत्मानुभवीके तीनों ही प्रकारके कर्म, द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म क्षय होजाते हैं ॥ १३ ॥

(ऐ यहु विमल जो केवल पद विंदह सजुत्तु) वही शुद्ध वीतराग केवलज्ञानीके पदको अनुभव करता है (ऐ यहु उवनु जु दाता) वही अपनेको स्वात्मानन्द देनेवाला दातार होजाता है (देव सहाउ सजुत्तु) उसीमें परमात्मदेवका स्वभाव झलक जाता है ॥ १४ ॥

(जइ जइ कम्म जु ऊजे समल सहाउ सजुत्तु) अशुद्ध स्वभावके कारण जैसे जैसे कर्मोंका बंध होता था (ऐ यहु तह तह विल्यो सुद्ध सहाव संजुत्तु) शुद्ध स्वभावके अनुभवसे वैसे वैसे उन कर्मोंका क्षय होता जाता है। रागद्वेष मोह वन्ध करते है, जबकि वीतराग विज्ञानमय भाव वन्धको छोड़ देते हैं ॥ १५ ॥

(ऐ यहु कम्म अनंत जु अन्यानह सजुत्तु) मिथ्याज्ञान या अज्ञानके कारण अनन्तकर्मवर्गणाओंका वन्ध होता है (ऐ यहु न्यान अन्मोयह कम्म उवति विलयतु) ज्ञानानन्द भावमें रमनेसे कर्मोंका वंध रुक जाता है॥१६॥

(ऐ यहु कम्म जु ऊपजे नन्तानंत भवतु) हे भाई ! अनंतानंत भवोंमें जिन कर्मोंका बंध किया था (ऐ यहु न्यान सहावह अनादि कम्म विलयतु) उन सव प्रवाह अपेक्षा अनादिकालके कर्मोंको आत्मज्ञानके स्वभावमें लय होनेसे दूर कर दिया जाता है ॥ १७ ॥

(ऐ यहु अन्यान सहियो) अज्ञान सहित होनेपर (अन्मोह विरोह सजुत्तु) अनन्त आनन्दका लाभ नहीं होता है (ऐ यहु अतर्मुहूर्त अन्मोय न्यान विल्यतु) एक अन्तर्मुहूर्त भी ज्ञानानन्दमें एकत्वभावसे लय होनेसे अर्थात् एकत्ववितर्क अवीचार शुक्लध्यानके प्रभावसे सर्व अज्ञान नाश होकर केवलज्ञान पैदा होजाता है ॥ १८ (अ)॥

(ऐ यहु ममल सहावे कम्म उवन विलयतु) इस शुद्ध स्वभावके भीतर रमनेसे अयोग गुणस्थानमें योगोंके अभावमें कर्मोंका आश्रव घन्द होजाता है (ऐ यहु भय विनास है) तव सर्व संसारभ्रमणका भय जाता रहता है (ममल सिद्धि सपत्तु) तब सर्व कर्मसे शुद्ध होकर सिद्धगतिकी प्राप्ति होजाती है ॥ १८ (आ) ॥

भावार्थ—इस जकड़ीमें सम्यग्दर्शनका महात्म्य वर्णन किया गया है। जीवादि सात तत्वोंका ज्ञाता भेदविज्ञानके द्वारा जव अपने आत्माको सर्व पर पदार्थोंसे भिन्न, रागादि भावोंसे जुदा, आठ कर्म रहित

ममलपाहुड

व सर्व प्रकारके शरीर रहित शुद्ध वीतराग द्रव्यस्वरूप मनन करता है–तब इस शुद्धात्माके मननके प्रतापसे अनन्तानुबन्धी चार कषाय और मिथ्यात कर्मके अनन्त कर्म पुद्गल उपशम होजाते हैं, तब अनादि मिथ्यादृष्टी जीवको प्रथम उपशम सम्यक्तका लाभ होजाता है। सम्यक्तके होते ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान होजाता है व स्वरूपाचरण चारित्रका प्रकाश होजाता है अर्थात् रत्नत्रय स्वरूप मोक्षमार्ग प्रगट होजाता है। वह नियमसे मोक्षका पात्र होजाता है। उसके भीतर स्वात्मानुभवकी शक्ति प्रगट होजाती है।

इस स्वात्मानुभवमें वह सिद्धपदको अनुभव करता है। मुक्तिके शुद्ध पदका ध्यान करनेसे जैसे२ भाव शुद्ध होते हैं वैसे वैसे कर्मोंके आवरण दूर होजाते हैं, वह वेदक सम्यक्ती होकर फिर क्षायिक सम्यक्ती होजाता है। कषायोंके उपशमसे श्रावक फिर साधु होजाता है। साधुपदमें स्वानुभवका विशेष अभ्यास करता है तब क्षपकश्रेणी चढकर पहले मोहनीयकर्मको फिर बारहवे गुणस्थानमें शेष तीन घातीय कर्मोंको एक अंतर्मुहूर्तमें क्षय करके अरहंत परमात्मा होजाता है। फिर वही शेष चार अघातीय कर्मोंको भी क्षय करके सिद्ध परमात्मा होजाता है। तब आत्मा द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादि, भावकर्म रागद्वेषादि, नोकर्म शरीरादिसे भिन्न होजाता है, अनंतकालके लिये परमात्मा होजाता है। इसलिये हे भव्य जीवो ! पुरुषार्थ करके आत्माकी प्रतीति रूप सम्यग्दर्शनका प्रकाश करो। निरतर तत्वोंका मनन करके मिथ्या ज्ञानको दूर करो। सम्यग्दर्शनके समान कोई भी उपकारी नहीं है।

---

(२२) कमल विसेष गाथा ४१८ से ४४५ तक।

कमल सुभावं सहियो, अष्यर सुर विंजनस्य पद सहियं।
ममल सहाव संजोयं, भय पिपियं अभय दिस्टि ममलं च॥ १ ॥
कमलं सहज सरूवं, अष्यर रमनं च अषय पद सहियं।
भय षिपनक सुरं च सुरयं, विंजन विन्यान ममल सहकारं॥ २ ॥
कमल संजोय सदिट्ठं, पद दरसं पर्मं तत्तु पद विन्दं।

सर्वन्यं ममल सहावं, भय षिपिय भव्वु कम्म संषिपनं ॥ ३ ॥
कमलं कमल सहावं, पद अर्थ परम अर्थ संदर्स ।
अर्थंति अर्थ ममलं, भय षिपिय ति अर्थ दिस्टि ममलं च ॥ ४ ॥
कमलं कमल उपत्ती, सम अर्थ समय सुद्ध संदिस्टि ।
हित मित परिनै ममलं, ममलं सहकार अर्थ संदर्स ॥ ५ ॥
कमल सहाव अवयासं, अवयासं अर्थ न्यान अवयासं ।
अवयास नन्त नन्तं, भव षिपिय भव्वु न्यान विन्यानं ॥ ६ ॥
कमलं सहाय रमियं, रमियं समयं च न्यान विन्यानं ।
न्यानं ममल सहावं, न्यान सहावेन संक भय षिपियं ॥ ७ ॥
कमल लंकृत सहियं, न्यान विन्यान सुद्ध सहकारं ।
अन्यान समय विलय, भय षिपियं ममल न्यान सद्भावं ॥ ८ ॥
कमल विन्यान संजुत्तं, कमलं कलियं च अप्प सुद्धप्पा ।
परमप्पं परम पदं, ममल सहावेन कम्म संषिपनं ॥ ९ ॥
कमलं न्यान सहावं, अन्यान सहकार सकल विलयन्तो ।
भय विनास भव अंतं, ममल दिस्टि च सल्य विलयं च ॥ १० ॥
कमल नन्त विसेषं, कमलं षिपिऊन नन्त बन्धानं ।
कमल सहावं सुद्धं, भय षिपियं भव्वु कम्म विरयंति ॥ ११ ॥
कमल अन्मोय सहियं, अन्मोय न्यान कम्म षिपिऊनं ।
षिपिऊ समल विसेषं, ममल सहावेन कम्म गलियं च ॥ १२ ॥

ममलपाहुड
॥१८१॥

कमल संजोयं सुद्धं, उत्त जिन उत्त परम सद्भावं ।
ससंक कंष्य विलयं, भय पिपियं समल कम्म विलयंती ॥ १३ ॥
कमलं सहज सरूवं, सद्धं सहकार न्यान विन्यानं ।
सद्धं वियार संजुत्तं, भय षिपिय समल सद्ध विलयंती ॥ १४ ॥
कमलं न्यान विन्यानं, न्यानं विन्यान सव्द विंदन्ती ।
विंदन्ति वेद वेदं, वेदन्तो मन वयन काय विलयं च ॥ १५ ॥
कमलं कंष्य विमुक्कं, आसा अस्नेह सयल विलयन्ती ।
ममल सहाव सु समयं, भय पिपिनक भव्वु कम्म गलयंती ॥ १६ ॥
कमलं कलंक रहियं, कललंकृत कम्म भाव गलियं च ।
जं पर्जाव विसेषं, ममल सहावेन पर्जाव विलयन्ती ॥ १७ ॥
कमल कल न पिच्छंतो, लाजं लोभं च षिपिय उप्पत्ती ।
कम्म पर्जाव विमुक्कं, भय पिपिनक लोभ लाज विलयंती ॥ १८ ॥
कमलं सरनि न उत्तं, सरीर सहकार भय च भय मुक्कं ।
गारव गयंद गलियं, सीह सहावेन ममल सहकारं ॥ १९ ॥
कमलं सीह सहावं, नन्द आनन्द चेयनानन्दं ।
सरीरं न्यान विन्यानं, आलस पर्जाव सयल विलयन्ती ॥ २० ॥
कमल सरूवं रूवं, सरीरं सरनि न्यान विन्यानं ।
पर्जय प्रपंच विलयं, पर्जय भय पिपिय न्यान दिस्टं च ॥ २१ ॥
कमलं क्रान्ति सहावं, विभ्रम पर्जाव सयल गलियं च ।

ममलपाहुड
॥१८२॥

ममलं ममल स उत्तं, भय षिपनक भव्वु विभ्रमं गलियं ॥ २२ ॥
कमलं षिपनति जिनियं, जनरंजन राग सयल विलयन्ती ।
कललंकृत दोष गलियं, ममल सहावेन भव्वु भय षिपनं ॥ २३ ॥
कमलं मल विलयन्तो, मनरंजन गारवेन षिपनं च ।
दर्सन मोहंध मुक्कं, भय षिपियं ममल न्यान संदिट्ठ ॥ २४ ॥
कमलं दिप्ति उपत्ती, न्यान आवरन अन्ध विलयन्ती ।
दिप्ति दर्सन नन्तं, आवरन विलय ममल सहकारं ॥ २५ ॥
कमलं मोह सन्यानं, मोहन विलयन्ति सरनि परजायं ।
भय षिपनक अन्तर विलयं, आवरनं तिक्त ममल न्यानं च ॥ २६ ॥
हितकारं कमल सहावं, हितमित परिनवै कोमलं दरमं ।
हित ह्रींकार सु ममलं, भय षिपनक भव्वु कम्म षिपनं च ॥ २७ ॥
हितकारं ह्रींकारं, कमल सहावेन नन्त ममलं च ।
भय विमुक्क भय रहियं, हित सहकार न्यान ममलं च ॥ २८ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(कमल सुभावं सहिय) प्रफुल्लित कमलके समान आत्माके स्वभावको प्रगट करनेवाले (अष्यर सुर विंजनस्य पद सहियं) स्वर व्यंजन अक्षरोंसे वने हुए पदके द्वारा (ममल सहाव संजोयं) शुद्ध स्वभावधारी आत्माका संयोग या अनुभव होता है (भय षिपण ममल ...) उस आत्मानुभवसे संसारका भय दूर होजाता है। निर्भय शुद्ध सम्यग्दर्शनका प्रकाश रहता है।

भावार्थ—शब्दोंका भाव ज्ञानके साथ वाचक वाच्य सम्बन्ध है। शब्दोंसे ...र्थका बोध होता है। कमल शब्दसे शुद्ध आत्माका बोध होता है। कमल शब्द वाचक है, आत्मा ... है। शास्त्रके मननसे

ही सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, तब निःशंकभाव पैदा होजाता है, सम्यक्ती निर्भय वीर होता है ॥ १ ॥

(कमल सहज सरूव) आत्मारूपी कमल जब अपने सहज स्वभावमें झलकता है तब ही कमलस्वरूप है (अप्यर रमन च अपय पद सहिय) तब यह अपने अविनाशी ब्रह्म स्वभावमें रमण करता है। इसका लक्ष्य अविनाशी मोक्षपद पर रहता है (भय विपनक सुर च सुरय च) यही आत्मारूपी कमल सर्व भयोंको मिटानेवाला है, यह सूर्य समान प्रकाशित है, यही एक मदिरा है जिसके पानमें आत्मा लवलीन होजाता है (निंजन विन्यान ममल मन्कार) वहां प्रगट रूपसे निर्मल भेदविज्ञानकी सहायता है।

भावार्थ—भेदविज्ञानके प्रभावसे सूर्य समान शुद्धात्माका अनुभव होता है। जब स्वात्मानुभव होता है तब एक प्रकारका आत्मरसमें लीनताका भाव मदिरापानके समान होजाता है ॥ २ ॥

(कमल सजोय सदिट्ठ) जब कमलके समान शुद्ध आत्माका अनुभव भलेप्रकार प्रगट होता है (पद दंस परम तत्तु पद विंद) तब परमात्मतत्वका पद दिख जाता है, आत्मीकपदका वेदन होजाता है, आत्मीक रसका स्वाद आजाता है (सर्वन्य ममल सहाव) यह आत्मारूपी कमल सर्वज्ञ है व शुद्ध स्वभावधारी है (भय पिपिय मन्नु कम्म सषिपन) इसके भीतर लय होनेसे सर्व भय मिट जाते हैं—भव्यजीवके कर्म क्षय होजाते हैं ॥३॥

(कमलं कमलसहाव) यह आत्मारूपी कमल कमलके समान प्रफुल्लित स्वभावका धारी है (पद अर्थ परम अर्थ संदर्स) इस आत्मारूपी पदार्थमें परमार्थ तत्वका या शुद्ध मुक्त आत्मतत्वका भलेप्रकार दर्शन होता है (अर्थति अर्थ ममल) वहां मलरहित पदार्थका निश्चय है (भय पिपिय तिअर्थ दिस्टि ममल च) वहां निर्भय या शङ्कारहित तीन रत्नोंकी सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रकी शुद्ध दृष्टि है। अर्थात् तीनोंका शुद्ध अनुभव है ॥ ४ ॥

(कमल कमल उत्ती) कमलवत् विकसित शुद्धात्माके ध्यानसे शुद्ध कमलकी या अरहंत कमलकी प्रगटता होजाती है (सम अर्थ समय मद्ध सदिस्टि) जहां समताभावमय पदार्थ तथा शुद्ध आत्मरूपी पदार्थका अनुभव आता है (हित मित परिनै ममल) वहां परम हितकारी शुद्ध परिणमन अपने द्रव्यकी मर्यादाके भीतर होरहा है। हरएक द्रव्य अगुरुलघु सामान्य गुणके रखनेके कारण अपनी मर्यादाको उल्लंघन नहीं करता है। जितने गुण सम्भव है उतने ही गुण रहते हैं व एक एक गुणकी जितनी अनंतपर्यायें संभव हैं वे ही पर्यायें होती हैं। एक गुणका परिणमन भी अन्य गुणरूप नहीं होता है। ज्ञानका परिणमन सुखरूप न

होगा, चारित्रका परिणमन ज्ञान रूप नहीं होगा (ममल सहकार अर्थ सदर्स) शुद्ध भावकी मददसे ही आत्मपदार्थका भले प्रकार दर्शन होता है ॥ ५ ॥

(कमल सहाव अवयास) आत्मारूपी कमलका स्वभाव आकाशके समान है (अवयास अर्थ न्यान अवयास) आकाश पदार्थके समान ज्ञानमें अनंत अवगाहन शक्ति है (अवयास नत नत) इस आत्माके शुद्ध ज्ञानमें अनंतानंत पदार्थ झलक सक्ते हैं (भय षिपिय भ नु न्यान विन्यान) यहां रमण करनेसे सर्व भय मिट जाता है, भव्य जीवका ज्ञान सम्यग्ज्ञान रूप रहता है ॥ ६ ॥

(कमल सहाव रमियं) कमल समान आत्माका स्वभाव अपने ही स्वभावमें रमण करनेका है (रमिय समय च न्यान विन्यान) वहां स्वात्मरमन या ज्ञानमें रमण होता है (न्यान ममल सहाव) ज्ञान निर्मल स्वभावरूप होता है (न्याय सहावेन सक भय षिपिय) उस ज्ञान स्वभावी शुद्धात्मामें रमण करनेसे सर्व शंकाएं मिट जाती हैं व सर्व भय क्षय होजाते हैं ॥ ७ ॥

(कमल लकृत सहिय) यह आत्मारूपी कमल परम शोभायमान है (न्यान विन्याय सुद्ध सहकार) यहां शुद्ध ज्ञानकी शोभा होरही है (अन्यान समय विरय) इसके प्रभावसे अज्ञानमय आत्माकी परिणति विला गई है। यहां रागद्वेष मोहादि अशुद्ध भावोंका झलकाव नहीं है (भय षिपियं ममल न्यान सद्भाव) इस आत्माकी शुद्ध परिणतिसे सर्व भय क्षय होगए हैं। यहां शुद्ध ज्ञानका ही सद्भाव है ॥ ८ ॥

(कमल वियान सजुत्त) इस आत्मारूपी कमलमें स्वपरका भेदविज्ञान भरा है। (कमल कलि पच अप्प सुद्धप्पा) यह कमलवत् आत्मा शुद्धात्माका ही अनुभव कर रहा है (परमप्प परम पद) यही परमात्माका परमपद विराजित है (ममल सहावेन कम्म सषिपत) इस शुद्धोपयोगके प्रतापसे कर्मोंका क्षय होरहा है।

भावार्थ—जब आत्मा अपने ही परमात्म स्वभावमें तन्मय होता है तब वीतरागता सहित स्वानुभूति झलकती है जिससे प्रचुर कर्मोंकी निर्जरा होजाती है ॥ ९ ॥

(कमल न्यान सहाव) यह आत्मारूपी कमल ज्ञान स्वभावमय है (अन्यान सहकार सकल विलयतो) इसके सामने अज्ञान सम्बन्धी सर्व भाव विला जाते हैं। (भय विनास भव अंत) इस ज्ञानस्वभावमें रमनेसे भय दूर होजाता है व संसारका अंत आजाता है (ममल दिस्ट च सल्य विलय च) इस शुद्ध आत्मीक दर्शनसे सर्व शल्यें दूर होजाती हैं ॥ १० ॥

(कमल नन्त विसेयं) कमल स्वरूप आत्मामें अनन्तगुण हैं (कमल पिपऊन नन बन्धन) इस कमलमें भ्रमरके समान रमण करनेसे अनन्त कर्मोंके वन्धन कट जाते हैं (कमल मह व सुद्ध) कमल स्वरूप आत्माका स्वभाव रागादिसे रहित शुद्ध है (भय पिपिय भ वु कम्म वि यती) इस कमल सम आत्मामें लवलीन होनेसे भव्यजीवका सर्व भय दूर होजाता है और कर्मोंका क्षय होजाता है ॥ ११ ॥

(कमल अन्मोय सहिय) यह आत्मारूपी कमल आनन्द सहित है (अन्मोय न्यान कम्म पिपऊन) ज्ञानानन्दके प्रभावसे ही कर्मोंका क्षय होता है (पिपिऊ सयल विसेप) इसीसे सर्व मलीन रागादि मल जो वैभाविक परिणामोंकी अवस्थाएँ हैं वे दूर होजाती हैं (ममल सहावेन कम्म गलिय न) शुद्ध स्वभावके रमणसे कर्म गल जाते हैं, उनकी स्थिति घट जाती हैं, उनका अनुभाग घट जाता है। पुण्य कर्म अनुभागकी वृद्धि पाकर शीघ्र उदय होकर क्षय होजाते हैं ॥ १२ ॥

(कमल सजोयं सुद्ध) इस आत्मारूपी कमलका संयोग शुद्ध स्वरूप (उच जिन उत्तु परम सद्भाव) कहा गया है। इसीमें वह शुद्धोपयोग व श्रेष्ठ भाव है जिसे जिनेन्द्रने मोक्षमार्ग कहा है (ममक कष्य विलय) इसी शुद्ध स्वरूपमें रमनेसे सर्व शङ्काएँ व सर्व कांक्षाएँ दूर होजाती हैं। मैं शुद्धात्मा हूँ, ज्ञानानन्दमय हूँ, इस भावमें कोई शङ्का नहीं रहती है। तथा सर्व ही विषयोंकी इच्छाएँ, इंद्रादि, अहमिंद्रादि, चक्रवर्ती आदि पदोंकी चाहनाएँ नष्ट होजाती हैं (भय पिपिय सयल कम्म विलयती) इसीसे सर्व भय दूर होजाता है। और अशुद्ध कर्म-अर्थात् रागादि सहित मन, वचन, कायकी क्रियाएँ वन्द होजाती है। स्वात्मामें रमण करनेसे मन, वचन, काय निश्चल होजाते हैं ॥ १३ ॥

(कमल सहज सरूव) यह आत्मारूपी कमल अपने सहज स्वभावमें शोभता है (सव्दं सहकार न्यान विन्यानं) मन्त्रोंके जापकी सहायतासे इसका भेदविज्ञान पूर्वक ज्ञान होता है (सव्द वियार सजुत्त) शब्दोंके द्वारा आत्मा व अनात्माका भिन्न २ स्वरूप विचार किया जाता है (भय पिपिय ममल सव्द विलयति) तब सर्व भय जाता रहता है व रागादि सहित अशुद्ध शब्दोंका कहना वन्द होजाता है।

भावार्थ—जब तत्वज्ञानीका उपयोग आत्मामें एकाग्र नहीं होता है तब वह ॐ ह्रीं श्री आदि शब्दोंके द्वारा आत्माका मनन करते हैं। शब्दोंके जप करनेसे अन्य रागादिवर्द्धक शब्दोंका कहना वन्द होजाता

है तब उपयोग अशुभोपयोगमें जानेसे रक्षित रहता है। मन्त्रोका जप शुभोपयोग है। इसके सहारेसे फिर आत्मा आत्मस्थ होकर शुद्धोपयोग प्राप्त कर सक्ता है ॥ १४ ॥

(कमल न्यान विन्यान) यह आत्मारूपी कमल सम्यग्ज्ञानसे पूर्ण है (न्यान विन्याय सब्द विंदती) शब्दोंके द्वारा इसके ज्ञानमय स्वभावका मनन होता है (विंदति वेद वेद) तब आत्मज्ञानका अनुभव होजाता है (वेदतो मन वयन काय विलयं च) जिस समय स्वात्मानुभव जागृत होता है उस समय मन वचन कायकी क्रियाएँ नहीं रहती हैं।

भावार्थ—आत्माभ्यासी साधु " ज्ञानस्वरूपोऽहं " इत्यादि मन्त्रोंके द्वारा ज्ञानस्वभावी आत्माका मनन करते करते जब यकायक आपसे आपमें थिर होजाता है तब इसे आत्मज्ञानका अनुभव होजाता है उस समय परम अद्वैतभाव–एकाग्रभाव या आत्मसमाधिभाव प्रगट होजाता है ऐसी दशामें मनके विचार, वचनोंके प्रयोग और कायकी चेष्टाएँ बन्द होजाती हैं ॥ १५ ॥

(कमल कंप्य विमुक्त) इस आत्मारूपी कमलमें किसी प्रकारकी इच्छा नहीं होती है, यह बिलकुल निस्पृह है–कृतकृत्य है (आसा अस्नेह सयल विलयंती) न इसमें कोई आशा तृष्णा है न कोई जातिका किसीसे स्नेह है, यह परम वीतरागी है (ममल सहाव सु समय) यही दोषरहित निर्मल स्वभाव धारी स्वसमय रूप है–आपसे आपमें रमण रूप है (भय षिपिनक भव्वु कम्म गलयंती) इसीकी रमणतासे भव्यजीवके सर्व भय दूर होजाते हैं व सब कर्म गल जाते हैं ॥ १६ ॥

(कमल कलंक रहिय) यह आत्मारूपी कमल सर्व कलंक या दोषोंसे रहित है (कल्लकृत कम्म भाव गलिय च) इसमें शरीर सम्बन्धी सर्व ही कर्म व सर्व ही भाव नहीं हैं। भावार्थ–आत्माके न कोई पुद्गलकृत शरीर है, न शरीर सम्बन्धी कोई कर्म है, न कोई मोहरूप भाव हैं (ज पर्जाव विसेष) जितने वैभाविक या औपाधिक राग विशेष हैं वे सब (ममल सहावेन पर्जाव विलयंती) परिणाम शुद्ध स्वभावमें रमण करनेसे ही दूर होजाते हैं ॥ १७ ॥

(कमल कल न विच्छती) यह आत्मारूपी कमल शरीरकी ओर दृष्टिपात नहीं करता है। यह शरीरसे अत्यन्त उन्मुख है (लाज लोभ च षिपिय उप्पत्ती) इस कारण न वहां शरीरके सुख पहुँचानेका कोई लोभ पैदा होता है और न वहां कोई लज्जाका भाव आसक्ता है कि हम नग्न हैं। भावार्थ–निर्ग्रंथ दिगम्बर साधु

भावलिंग स्वरूप जो शुद्धात्माका अनुभव है उसमें लीन रहते हुए शरीर सम्बन्धी मर्व लज्जा व लोभसे विरक्त रहते हैं (कम्म पजांव विमुकं) तत्वज्ञानी कर्मोंके उदयसे होनेवाली परिणतियोंसे विरक्त रहते हैं (भय विपनक लोभ लाज विलयंती) इसलिये उनके न कोई भय है न लोभ है और न लज्जाका भाव है ॥ १८ ॥

(कमलं सरनि न उत्त) इस आत्मारूपी कमलका संसारमें भ्रमण नहीं कहा गया है। अथवा जो इस आत्मारूपी कमलमें भ्रमरवत् मगन हैं उन महात्माओंका संसार नहीं रहता है (सरीर महकार भय च भय मुक्त) उनको इस शरीर सम्बन्धी कोई भय नहीं है कि यह रोगी होजायगा या मर जायगा तो क्या होगा और न कोई दूसरा ही भय है। यह आत्माको अविनाशी जानते हैं, इससे इसके मरणका भय भी नहीं रखते हैं (सीह सहावेन ममल महकार गारव गयद गलिय) उनके शुद्ध स्वभावरूपी सिंहके सामने अहंकाररूपी हाथी भाग गया है। अर्थात् निर्ग्रंथ साधु परम वीतराग शुद्ध स्वभावका जब मनन या अनुभव करते हैं तब उनके भावोंमें कोई गारव या मद या अहङ्कार नहीं रहता है। वे सम्यग्दृष्टी जाति, कुल, रूप, बल, विद्या, अधिकार, धन, तप, इन आठों मदोंको जीत चुके हैं। साधुओंको ऋद्धिकी प्राप्तिका मद, प्रतिष्ठा पानेका मद आदि कोई गारव भाव नहीं होता है ॥ १९ ॥

(कमलं सीह सहाव) तत्वज्ञानी साधुका आत्मा सिंह स्वभावका धारी परम वीर साहसी होता है (नन्द आनन्द चेयनानन्द) वह ज्ञानानन्द स्वभावमें मगन होकर सदा आनन्दित रहता है (सरीर न्यान विन्यान) इस सिंहसमान आत्माका शरीर सम्यग्ज्ञान है (आलस पजांय सयल विलय तीं) यहां आलस्य या प्रमादकी कोई परिणति नहीं है।

भावार्थ—आत्मानुभवमें तल्लीन साधुका आत्मा सिंहके समान पराक्रमी व अप्रमादी है, ज्ञानमय शरीरका धारी है व सदा ज्ञानानन्दमें मगन है। अपने सिंह स्वभावको कभी त्यागता नहीं है। परम साहस व उद्योग करके यह ज्ञानी सिंह कर्मोंका संहार करता है ॥ २० ॥

(कमल सरूव रूव) इस आत्माका स्वभाव कमलके समान प्रफुल्लित है (सरीर मानि न्यान विन्याय) इसका शरीर ज्ञानमय भावमें परिणमन है (पजेय प्रपच विलय) इसमें जड शरीर पर्याय सम्बन्धी कोई प्रपंच, कोई विकल्प, कोई चिन्ता नहीं है (पजेय भय पिपिय न्यान विन्यान) इसमें कोई शरीर सम्बन्धी भय नहीं है, इसमें तो ज्ञान विज्ञान पूर्ण है ॥ २१ ॥

(कमल काति सहावं) यह आत्मारूपी कमल परम कांतिकारी–परम रमणीक है (विभ्रम पर्जाय सयल गलिय च) इसके भीतरसे मिथ्यात्व व रागद्वेष सम्बन्धी सर्व परिणति विला गई है (ममलं ममल स उत्तं) यह वीतराग है व कर्ममलसे रहित कहा गया है (भय षिपनक भव्वु विभ्रम गलिय) भव्यजीव इस आत्मारूपी कमलमें तन्मय होकर सर्व भयको दूर कर सर्व मोह प्रपंचको गला डालते हैं ॥ २२ ॥

(कमल षिपनति जिनय) यह आत्मारूपी कमल ही क्षपणक है, कर्मको क्षय करनेवाला साधु है तथा वही कर्मोंको जीतनेसे जिन है (जनरंजन राग सयल विल्यती) इसके भीतर लोगोंको रंजायमान या प्रसन्न करनेका रागभाव नहीं है, यह परम विरक्त है (कललकृत दोष गलियं) इसके भीतरसे शरीर सम्बन्धी सर्व दोष गल गए हैं । (ममल सहावेन भव्वु भय षिपन) इस भव्य ज्ञानीके शुद्ध स्वभावके कारण सर्व भय दूर होगए हैं ।

भावार्थ—जो साधु शुद्धात्मारूपी कमलमें मगन होते हैं वे राग द्वेष भय रहित परम वीतरागी होजाते हैं ॥ २३ ॥

(कमल मल विलयन्तो) इस आत्मारूपी कमलमें लय होनेसे सर्व रागादि मल दूर होजाते हैं (मनरंजन गारवेन षिपन च) मनको राजी रखनेवाला अहंकार भाव वहांसे दूर होजाता है । संसारी प्राणी धन, कुटुंब, मान आदि पानेपर प्रसन्न होते हैं । यह प्रसन्नता कषाय विजयी साधुओंके नहीं होती है (दर्सन मोहंध मुक्क) यह निर्ग्रंथ साधु दर्शनमोह कर्मसे या मिथ्यात्वभावसे विलकुल मुक्त हैं (भय षिपिय ममल न्यान सदिट्ठं) उनके कोई भय नहीं रहा है । इन्होंने निर्मल ज्ञानका भलेप्रकार अनुभव किया है ॥ २४ ॥

(कमलं दिप्त उपत्ती) इस निर्ग्रंथ साधुके आत्मारूपी कमलमें विशेष प्रकाश झलक गया है (न्यान आवरण अध विल्यती) यहांसे ज्ञानावरण कर्मका अन्धकार विला गया है । केवलज्ञान प्रगट होगया है (दिप्ति दर्सन नत) अनन्त दर्शनकी ज्योति भी प्रगट होगई है (आवरन विल्य ममल सहकारं) शुद्धोपयोगकी सहायतासे दर्शनावरण कर्म क्षय होगया है ॥ २५ ॥

(कमल मोह सन्यान) यह आत्मारूपी कमल केवलज्ञानमें मगन है । उसीमें आसक्त है । अतएव (मोहेन विलयती सरनि पर्जाय) इसने मोहनीय कर्मका भी क्षय कर दिया है । जो भव २ की पर्यायोंमें भ्रमण करानेवाला है (भय षिपनक अंतर विलयं) यह सर्व भयसे रहित होगया है । क्योंकि इसने अन्तराय कर्मका

ममलपाहुड ॥१८९॥

भी क्षय कर दिया है (आवरन तिक्त ममल न्यानं च) इस अरहंत स्वरूप कमलका सर्व आवरण हट गया है, शुद्ध ज्ञान ज्योतिका यहां प्रकाश होरहा है ॥ २६ ॥

(हितकारं कमल सहाव) यह कमल स्वभावधारी आत्मा परम हितकारी है (हितभित परिनवै कोमलं ...) जो कोमल भावसे इसको देखता है व परम प्रेमसे व मर्यादा पूर्वक इस रूपमें परिणमन करता है (हित ह्रींकार सुममल) ह्रीं नामके हितकारी व शुद्ध मंत्रका सहारा लेता है (भय षिपनक भव्वु कम्म षिपनं च) वह भव्यजीव सर्व भयसे छूटकर कर्मोंका क्षय कर डालता है।

भावार्थ–जो भव्य आत्मा शुद्धात्माका प्रेमी होकर मंत्रोंके द्वारा मनन करके उसीमें लय होता है वह कर्मोंको क्षयकर अरहंत व सिद्ध होजाता है ॥ २७ ॥

(हितकार ह्रींकार) यह ह्रीं मंत्र जो २४ तीर्थंकरोंका वाचक है, परम हितकारी है (कमल सहावेन नत ममल च) इसके सहारेसे अनन्त गुणधारी शुद्ध कमलस्वभावी आत्माका मनन होता है (भय विमुक्कु भय रहिय) इसीके अनुभवसे भय छूट जाता है–भव्य जीव भय रहित होजाता है (हित सहकार न्यान ममल च) इसीकी मददसे शुद्ध ज्ञानका लाभ होजाता है जो परम हितकारी है।

भावार्थ—ह्रीं मन्त्रके द्वारा जो कोई अरहन्त स्वरूप आत्माका मनन या अनुभव करता है वह स्वयं चार घातीय कर्मोंको क्षय कर अरहन्त होजाता है–जैसा भावै तैसा होजावै ॥ २८ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें आत्माको कमलकी उपमा देकर आत्मध्यानकी व आत्मानुभवकी महिमा गाई है, आत्माकी स्तुति करके भावपूजा की है। वास्तवमें शास्त्रोंके जाननेका सार यही है जो अपने आत्माका दृढ़ निश्चय किया जावे, पक्का ज्ञान किया जावे कि यह आत्मा स्वभावसे परमात्मारूप, वीतरागी, अनन्त ज्ञानी, अनन्त बली, अमूर्तीक, अनन्तदर्शन गुणधारी है। इसमें न तो ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म हैं, न रागद्वेषादि भावकर्म हैं, न शरीरादि नोकर्म हैं। इसकी सत्ता अन्य आत्माओंसे सदा भिन्न रहती है। यही आत्मा सूर्य है क्योंकि यह सर्वको जैसाका तैसा जानते हुए भी सूर्यके समान किसीपर रागद्वेष नहीं करता है, समभाव रखता है। इस आत्मामें आनन्दमय रस ऐसा मधुर है–उसमें इतना नशा है कि जो भव्यजीव आत्मरसको पान करता है वह मदिरा पीनेवालेके समान स्वरूप रमणमें उन्मत्त होजाता है। यह आत्मा सिंहके समान है। इसका जो अनुभव करता है उसके भीतरसे परको

आपा माननेका अहंकार व पर पदार्थ सम्बन्धी मान सब गल जाता है। इस तरह अपने आत्माका मनन शब्दोंके द्वारा व मनके द्वारा करते करते एक समय आता है जब मिथ्यात्व कर्म व अनन्तानुबन्धी कषायोंके उपशम होनेपर सम्यग्दर्शन प्रगट होजाता है। आत्माके स्वरूपकी भक्ति, आत्माके स्वरूपका स्वाध्याय, आत्माके स्वरूपका समभावके साथ विचार, आत्मस्वरूपकी जाप ये ही साधन हैं जिनके प्रतापसे सम्यक्त होता है।

भेदविज्ञानका मनन देवपूजा, गुरुभक्ति, स्वाध्याय, सामायिक द्वारा करते रहना चाहिये। जैसे कृषक धान्यमें चावलको छिलकेसे अलग जानता है, तेली तिलोंमें तेलको भूसीसे अलग देखता है, सर्राफ मलीन सोनेमें सुवर्णको मैलसे अलग जानता है, वैसे भेदविज्ञानके बलसे आत्माको परसे भिन्न जान लेना चाहिये। इतना दृढ़ अभ्यास करना चाहिये कि एक वृक्षके भीतर भी आत्मा परसे भिन्न दिखाई दे व अपने भीतर भी दिखाई दे। जब आत्माका साक्षात्कार होता है तब ही सम्यग्दर्शनका प्रकाश होता है। तब आत्मानन्दका स्वाद आता है। श्री समयसार कलशमें कहा है—

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया। तावद्यावत् पराच्च्युत्वा ज्ञान ज्ञाने प्रतिष्ठते ॥ ५-६ ॥

भावार्थ—कि भेदविज्ञानकी भावना लगातार वहांतक करते रहो जहांतक ज्ञान परसे छूटकर ज्ञानमें प्रतिष्ठित न होजावे। सम्यग्दर्शनके प्रभावसे तत्वज्ञानीको निरन्तर अपने ही भीतर परमात्माका दर्शन होजाता है। उसी आत्मदर्शनका जितना २ अभ्यास सम्यक्ती करता है उतनी २ अधिक कर्मोंकी निर्जरा होती है। स्वात्मानुभव करने हीसे गुणस्थानोंमें उन्नति होती है। सातवें गुणस्थानमें जाकर निर्ग्रंथ साधु परम वैरागी होजाता है, धर्मध्यानकी पूर्णताको पाकर क्षपकश्रेणी चढकर प्रथम शुक्लध्यानके प्रतापसे मोहनीय कर्मका क्षय करके फिर द्वितीय शुक्लध्यानसे शेष घातीय कर्मोंका क्षय करके अर्हंत परमात्मा होजाता है तब अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य व अनन्त सुख ये चार चतुष्टय प्रगट होजाते है। अर्हंत परमात्मा परमानन्दमें मगन रहते हैं। यही शेष कर्मोंको काट फिर सिद्ध मुक्त होजाते हैं। कमल स्वभावी आत्माके मननसे तथा अनुभवसे ही यह कमल स्वभावी अर्हंत परमात्मा होजाता है।

(२३) इष्ट छन्द गाथा ४४६ से ४६४ तक ।

जिन जिनवर उत्तो जिनय पऊ, इस्ट उवन संसुद्ध पऊ ।
अन्मोय न्यान सुर समय मऊ, मुक्ति पंथ सिव सुष्य मऊ ॥ १ ॥
जिन इस्ट इस्ट इस्टिओ, उवन इस्टि उवन पओ ।
जिन इस्ट न्यान सु उवन पओ, उत्पन्न न्यान सुइ मुक्ति गओ ॥ २ ॥
जिन इस्ट लष्य लष्यनो, उत्पन्न इस्ट सु अलष मओ ।
जिन लष्य अलष्य सु न्यान मओ, परिनाम लष्य सु सिद्धि पओ ॥ ३ ॥
जिन चौसठ वरन सु वरन मओ, लष्यन सुभाउ मु ममल पओ ।
जिन इस्ट विन्यान सुन्यान मओ, अन्मोय न्यान सुइ मुक्ति पओ ॥ ४ ॥
जिन इस्ट गम्य सुइ गमन मओ, जिन अगम इस्ट सुइ अगम मओ ।
गम अगम दिस्टि सुइ समय पओ, तं दिष्ति अमियरस मुक्ति पओ ॥ ५ ॥
जिन इस्ट कमल सुइ कमल मओ, उत्पन्न कमल सुइ रमन पओ ।
जिन कलन न्यान सुइ रमन मओ, सुइ कम्म विलय सुइ मुक्ति पओ ॥ ६ ॥
जिन इस्ट रमन सुइ ममल पओ, उत्पन्न रमन सुइ कम्म पओ ।
उववन्न उवन सुइ रमन मओ, भय पिपिय अमिय रस सिद्धि पओ ॥ ७ ॥
जिन इस्ट सु लंकृत लीन मओ, लंकृत उववन्न सु सिद्धि पओ ।
पर्जय पर्जाव सु विलय मओ, जिन न्यान रमन सुर मुक्ति पओ ॥ ८ ॥

विन्यान न्यान सुइ इस्ट पओ, अन्मोय सहाव उवन्न मओ।
मय मूरति न्यान सु इस्ट पओ, मै उवन सहाउ सु उवन पओ ॥ ९ ॥
जिन नेय नेय सु इष्ट मओ, उववन अन्मोय सु ममल पओ।
जिन न्यान रमन सु अनेय मओ, जिन नेय उवन सु मुक्ति पओ ॥ १० ॥
जिन समय उवन सु इस्ट मओ, उववन्न समय उववन्न पओ।
जिन ऋतु सुयं सु न्यान मओ, जिन नन्तानन्त सु इस्ट पओ ॥ ११ ॥
जिन वयनु जिनुत्त सु इस्ट मओ, जिन रमन आलाप सुजिनय पओ।
जिन सव्द इष्ट सुइ न्यान मओ, जिन सव्द विचार सु दिष्टि मओ ॥ १२ ॥
जिनुत्त सु न्यान जिनुत्त मओ, जिन सव्द सहाउ सु ममल पओ।
जिन उत्तु सव्द उत्पन्न मओ, जिन दिस्टि सव्द सुई सिद्धि पओ ॥ १३ ॥
जिन उत्तु न्यान सुइ परिनमओ, जिन परिनइ जिनयति कम्म पओ।
जिनु न्यान अन्मोय सु अषय पओ, जिन न्यान न्यान सुइ मुक्ति पओ ॥ १४ ॥
जिन उत्तु सव्द सुइ परम पओ, जिन उत्तु समय परमान मओ।
जिन उत्तु दिसि सुइ दिष्टि मओ, जिन सव्द प्रिये सुइ मुक्ति गओ ॥ १५ ॥
जिन रज उवन हिययार मओ, भय पिपिय अमिय रम रमन पओ।
जिन रंज सहाव विन्यान मओ, वै दिसि रमन जिन रमन पओ ॥ १६ ॥
जिन जिनय रज सुइ ममल पओ, जिननाथ रमन सुइ सिद्धि पओ।
जिन नन्द सुयं परमानंदो, अन्मोय अवलि वलि मुक्ति पओ ॥ १७ ॥

ममलपाहुड
॥१९३॥

जिन रंज रमन मुइ नन्द मओ, अन्मोय अवलि विषु विलय पओ।
जिन तारन तरन सहाउ मओ, सिहु समय स उत्तु सु मुक्ति पओ॥ १८॥

घत्ता।

जिन जिनपति कम्म उव्वन्न पओ, उववन न्यान विलसतु।
जिन अथति अर्थ सुसमय मऊ, आयरन सिद्धि सपत्तु॥ १९॥

अन्वय सहित अर्थ—(जिन जिनवर उत्तो जिनय पऊ) श्री वीतराग जिनेन्द्रने जिनपदका महात्म्य वर्णन किया है (इष्ट उवन सशुद्ध पऊ) वही परम हितकारी प्रकाशमान शुद्ध पद है (अन्मोय न्यान सुइ समय मऊ) वही ज्ञानानन्दमय है, वही आत्मामयी है या आत्मारूप है (मुक्तिपन्थ सिव सुष्य मऊ) वही मोक्ष सुखदाई मोक्षका मार्ग है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी अनन्तानुबन्धी कषाय व मिथ्यात्वको विजय कर लेनेसे जिन कहलाता है। उसके भावोंमें शुद्धात्माका स्वरूप जो ज्ञानानन्दमय है वह अनुभवमें आजाता है। इसी स्वात्मानुभवको ही मोक्षमार्ग कहते हैं। इसीसे परम सुखदाई मोक्षपदका लाभ होता है।

(जिन इष्ट इस्ट इष्टियो) सम्यग्दृष्टीको परम हितकारी वीतरागी आत्मा ही प्रिय भासता है, वह सम्यक्ती शुद्धात्माका प्रेमी होजाता है (उवन इस्टि उवन पओ) उसके भीतर इष्ट सम्यक्तका व इष्ट जिन-पदका प्रकाश होगया है (जिन इस्ट न्यान सु उवन पओ) उसके भीतर परम हितकारी आत्मज्ञानमई वीतराग सम्यग्ज्ञानका प्रकाश होगया है (उत्पन्न न्यान सुइ मुक्ति गओ) उसी आत्मज्ञानके अनुभवसे केवलज्ञान प्रगट होजाता है और यह आत्मा मुक्त होजाता है॥ २॥

(जिन इष्ट लष्य लष्यनो) उस जिन सम्यक्तीने परम प्रिय अनुभवने योग्य निजात्माका अनुभव प्राप्त कर लिया है (उत्पन्न इष्ट सु अलष मओ) उसके भीतर परम प्रिय आत्माका प्रकाश होगया है जो पांच इंद्रिय तथा मनके विकल्पोंसे नहीं जाना जासक्ता है। आत्माका सच्चा ज्ञान इंद्रिय व मनसे परे अतीन्द्रिय है—आपसे ही आप अनुभव करने योग्य है। (जिन लष्य अलष्य सु न्यान मओ) उसका ज्ञान ऐसा प्रगट होजाता है कि उसमें लक्ष्य अलक्ष्य सब भासने लगता है। इंद्रियगोचरको लक्ष्य व इंद्रिय अगोचरको अलक्ष्य कहते हैं।

(परिनाम लप्य सु सिद्धि पत्रो) जिसका परिणमन अनुभवने योग्य आत्मारूप होजाता है वही सिद्धपदको प्राप्त कर लेता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—शुद्धात्माका ग्रहण मन व इंद्रियोंसे नहीं होसक्ता, जब आप आत्मासे ही अपने ही आत्माको ग्रहण किया जाता है–स्वसंवेदन ज्ञान प्राप्त किया जाता है तब ही स्वानुभव होता है। इसीसे केवलज्ञान प्रगट होता है और वह जीव सिद्ध होजाता है ॥ ३ ॥

(जिन चौसठ वरन सु वरन मओ) जिनवाणीमें चौसठ अक्षर हैं, उनहीसे सर्व द्वादशांगवाणीकी रचना है। ज्ञानमार्गणा–श्री गोम्मटसारमें कहा है—

गाथा—तेतीस वेंजणाई, सत्तावीसा सरा तहा भणिया। चत्तारिय जोग वहा, चउसट्ठी मूलवण्णाओ ॥ ५१५ ॥

भावार्थ—जिनवाणीके ६४ अक्षरोंमें ३३ व्यंजन सत्ताईस स्वर व चार योगवाह गर्भित हैं–क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ये तेतीस व्यंजन हैं। अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ, इन नौ स्वरोंको ह्रस्व, दीर्घ, लुप्त तीन शब्दके भेदोंके द्वारा विभाजित करनेसे २७ स्वर होजाते हैं। जैसे—अ आ आ, इ ई ई, उ ऊ ऊ, ऋ ॠ ॠ, ऌ ऌ ॡ, ए ए ए, ऐ ऐ ऐ, ओ ओ ओ, औ औ औ। एक मात्रावालेको ह्रस्व, दो मात्रवालेको दीर्घ, तीन मात्रावालेको लुप्त कहते हैं। चार योगवाह अक्षर हैं। अनुस्वार (ं) विसर्ग (ः) जिह्वामूलीय (ᳵक) उपध्मानीय (ᳶप)।

गाथा—चउसट्ठिपद, विरलिय–दुग च दाऊण सगुणं किच्चा–रूऊण चकरा पुण–सुदणाणस्सक्खरा होंति।

भावार्थ—इनको फैलाकर २ का अङ्क ६४ जगह लिखकर परस्पर गुणा करनेसे जो एक ही प्रमाण अक्षर आएंगे उनमें १ घटानेसे कुल पुनरुक्त अक्षर जिनवाणीके हैं उनमें द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी आदि चौसठ संयोगी तक अपुनरुक्त अक्षर हैं।

(२×२ ×२)–१ =१८४४६७४४०७३७०९५५१६१५। इनका विशेष कथन गोम्मटसारसे जानना योग्य है।

(लष्यन सुभाव सु ममल पओ) उस द्वादशांगवाणीके द्वारा शुद्ध आत्मीक पदका लक्षण व सुभाव

जाना जाता है (जिन इस्ट विन्यान सु न्यान मओ) तब परम प्रिय वीतरागी आत्माका भेदविज्ञान प्राप्त होता है जो सम्यग्ज्ञान स्वरूप है (अन्मोय न्यान सुइ मुक्ति पओ) जो इस आत्मज्ञानमें आनन्दित होजाता है वही मुक्तिको पाता है ॥ ४ ॥

(जिन इष्ट गम्य सुइ गमन मओ) जो वीतरागी प्रिय आत्मा जानने योग्य है उसे जब जान लिया जाता है (भिन अगम इस्ट सुइ अगम मओ) उसका जो स्वरूप आत्मज्ञानी द्वारा नहीं जानने योग्य है वही परम प्रिय अगम्य आत्मपद है जो केवलज्ञानगम्य है (गम अगम दिस्टि सुइ समव पओ) आत्माका स्वभाव यही है जो गम्य अगम्य सबको स्वयं देखनेवाला है (त दिप्ति अमिय रस मुक्ति पओ) ऐसा केवलज्ञान जिसको प्रगट होजाता है वह आनन्दामृत रसका पान करता हुआ मुक्त होजाता है।

भावार्थ—छद्मस्थको परोक्ष रूपसे आत्माका ज्ञान श्रुतज्ञान द्वारा होता है यद्यपि वह ज्ञान यथार्थ है तथापि पूर्ण व विशद व प्रत्यक्ष आत्माका वह ज्ञान नहीं है। पूर्ण विशद प्रत्यक्ष आत्माको जाननेवाला केवलज्ञान है। श्रुतज्ञान अपूर्ण है, आत्मद्रव्यकी कुछ गुण व पर्यायोंको जान सक्ता है, आत्माके अनन्त गुण व अनन्त पर्याएँ श्रुतज्ञानकी अपेक्षा अगम्य हैं। जब आत्मा ज्ञानावरण कर्मका क्षय करके केवलज्ञानी होजाता है तब उसके ज्ञानमें सर्व ज्ञान गर्भित है, श्रुतज्ञानका विषय भी उसमें गर्भित है। केवलज्ञानी परमात्मा आनन्दामृतका सदा पान करते हैं व मुक्त होजाते हैं ॥ ५ ॥

(जिन इस्ट कमल सुइ कमल मओ) कमलके समान प्रफुल्लित आत्मा राग द्वेष रहित, जिन स्वरूप व शुद्धात्मस्वरूप शुद्ध कमलके समान झलकता है (उत्पन्न कमल सुइ रमन पओ) ऐसा कमल जब सम्यग्दृष्टीके भावमें पैदा होजाता है तब वह सम्यक्ती स्वयं अपनी आत्मामें मगन होजाता है (जिन कलन न्यान सुइ रमन मओ) उस समय वह आत्मज्ञानी जिन स्वरूपका अभ्यास करता है, उसका ज्ञान ज्ञानमें रमण करता है (सुइ कम्म विलय सुई मुक्ति पओ) इसी शुद्धोपयोगसे कर्म क्षय होजाते हैं और यह जीव स्वयं मुक्तिको प्राप्त कर लेता है ॥ ६ ॥

(जिन इष्ट रमन सुइ ममल पओ) परम प्रिय जिन स्वभावमें रमन करना ही स्वयं एक निर्मल शुद्धात्मीक पद है (उत्पन्न रमन सुइ कम्म पओ) जब स्वात्मामें रमणता झलक जाती है, कर्मोंका क्षय होजाता है (उववन्न उवन सुइ रमन पओ) तब यह आत्मा स्वयं आत्मीक रमणतामय केवलज्ञान पदको पैदा कर लेता है

ममलपाहुड
॥१९३॥

(मय विपिय अमिय रस सिद्धिपओ) तब सर्व संसार–भ्रमणका भय दूर होजाता है। यह परमात्मा आनन्दामृत रसका पान करता हुआ सिद्धपदको पालेता है ॥ ७ ॥

(जिन इस्ट सुलस्त लीन मओ) यह सम्यक्ती तत्वज्ञानी महात्मा परम प्रिय वीतरागभावसे शोभित होता हुआ उसी जिन स्वभावमें लीन होजाता है (लकृत उववन्न सु सिद्धि पओ) इस शोभनीक आत्मानुभवसे सिद्ध पदका प्रकाश होजाता है (पर्जय पर्जाय सु विलय मओ) तब सर्व सांसारिक पर्यायोंकी परिणतियें विला जाती हैं (जिन न्यान रमन सुइ मुक्ति पओ) वीतरागता सहित शुद्ध ज्ञानमें रमन करना ही स्वयं मुक्तिका प्राप्त करना है ॥ ८ ॥

(विन्याय न्यान सुइ इष्ट पओ) भेदज्ञान पूर्वक आत्मानुभव ही हितकारी मोक्षका मार्ग है (अन्मोय सहाबु उवन्न मओ) यही प्रकाशमान आनन्दमई स्वभाव है (मय मूरति न्यान सु इस्ट पओ) यह परमप्रिय आत्मज्ञान अपने स्वरूपमें मगन होता हुआ आनन्द मूर्तिसा होजाता है (मय उवन सहाव सु उवन पओ) जब आत्मानन्दका स्वभाव झलक जाता है वही आत्माका प्रकाशित पद है। अर्थात् आत्माके स्वभावमें तल्लीन होनेसे परमानन्दमई एक उन्मत्त भाव प्रगट होजाता है, जहां आत्मरसके सिवाय दूसरे रसका स्वाद नहीं आता है ॥ ९ ॥

(जिन नेय नेय सुइष्ट मओ) परमप्रिय हितकारी वीतराग भावको मनन करते हुए (उववन अन्मोय सु ममल पओ) आनन्दमय शुद्ध पदका प्रकाश होता है (जिन न्यान रमन सु अनेय मओ) इस अभ्यासको करते२ आत्मीक ज्ञानमें ऐसी रमणता होती है कि फिर मनन नहीं रहता है, थिरता होजाती है (जिन नेय उवन सु मुक्ति पओ) जब जिनेन्द्रपदका प्रकाश होजाता है तब यह आत्मा मुक्त होजाता है ॥ १० ॥

(जिन समय उवन सुइष्ट पओ) वीतराग आत्माका प्रकाश होना ही इष्ट हितकारी पद है (उववन्न समय उववन्न पओ) वही प्रकाशित आत्मा है, वही प्रकाशित पद है। अर्थात् जहां आत्मा अपने ही आत्मामें मग्न होता है वही मोक्षका मार्ग है, वही आत्माका शुद्ध स्वरूप है वही आत्मीक पद है (जिन ऋतु सुय सुन्यान मओ) यही जिनेन्द्रका सत्य धर्म है, यही स्वयं ज्ञानस्वरूप है (जिन नतानंत सु इस्ट पओ) वही अनन्तानन्त गुण पर्यायोंका ज्ञाता परम हितकारी पद है ॥ ११ ॥

(जिन वयनु जिनुच सु इस्ट मओ) श्री जिनेन्द्र द्वारा प्रकाशित श्री जिन वचन परम हितकारी हैं (जिन

रमन आलाप सु जिनय पओ) उसका यही उपदेश है कि वीतराग भावमें रमन करना तल्लीन होना वही कर्मोंको जीतनेका उपाय है (जिन सव्द इस्ट सुइ न्यान मओ) जिन शब्द परम हितकारी है । यही शब्द ज्ञान स्वरूपी शुद्ध आत्माका वाचक है । जो सर्व परको जीते वही जिन है, आत्मा है, वीतराग विज्ञानमय भावका स्वामी है (जिन सव्द वियार सु दिस्टि मओ) जिन शब्दका विचार सम्यग्दर्शन सहित व श्रद्धा सहित स्वात्म-रमणका कारण है ॥ १२ ॥

(जिनुत्त सु न्यान जिनुत्त मओ) जिनेन्द्रने जिस आत्मज्ञानका उपदेश किया है वह वैसा ही श्रद्धान करनेयोग्य है जैसा जिनेन्द्रने कहा है (जिन सव्द सहाउ सु ममल पओ) जिन शब्दका स्वभाव अर्थात् जिन शब्दसे जो अर्थ या भाव झलकता है वही निर्मल शुद्ध पद या उपाय है (जिन उत्तु सव्द उत्पन्न मओ) जिसके अन्तरंगमें जिनोक्त शब्दोंका प्रकाश है अर्थात् जो जिनेन्द्र कथित मंत्रों द्वारा जप या ध्यान करता है । वे मंत्र हैं–णमोकार मंत्र, अ सि आ उ सा, अरहंत सिद्ध, ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ ह्रीं, सोऽहं, ह्रीं, श्रीं, ॐ इत्यादि (जिन दिस्टि सव्द सुइ सिद्धि पओ) तथा जिन शब्दके द्वारा जो वीतराग आत्माका अनुभव करता है वही सिद्धपदको पाता है । ध्यानकी प्रारंभिक अवस्थामें मंत्रोंके आश्रयकी जरूरत पड़ती है । उनके द्वारा शुद्धात्माका अद्वैत व एकाग्र व सहज समाधि रूप अनुभव ही मोक्षको पहुँचानेवाला है ॥ १३ ॥

(जिन उत्तु न्यान सुइ परिनमओ) जिनेन्द्रने जो सम्यग्ज्ञानका उपदेश दिया है उस रूपमें अपनेको परिणमाना चाहिये । अर्थात् शुद्धात्मामें रमण करना चाहिये (जिन परिनय जिनपति कम्म पओ) इस जिनके स्वभावमें परिणमन करनेसे कर्मोंके पदोंको या कर्मोंके स्थानोंको जीता जाता है । कर्म जीतनेका उपाय स्वात्म रमण है (जिन न्यान अन्मोय सु अवय पओ) उस वीतराग भावमें आनन्दमय होजाना ही अविनाशी पद है या अविनाशी पदका कारण है (जिन न्यान न्यान सुइ मुक्ति पओ) जिनका ज्ञान है सोई आत्मज्ञान है, सोई मोक्षका मार्ग है । आत्माको ही जिन कहते हैं, यही कर्म विजयी वीर हैं । इसीमें एकतानता पाना ही मुक्तिपद है, यही मोक्षमार्ग है व यही मोक्ष है ॥ १४ ॥

(जिन उत्त सद्द सुइ परम पओ) जिनेन्द्र कथित शब्दोंके मनन करनेसे परम पदका लाभ होता है (जिन उत्तु समय परमान मओ) जिनेन्द्र कथित आगम ही प्रमाणरूप है, यथार्थ मानने योग्य शास्त्र है (जिन उत्तु दिप्ति सुइ दिस्टि मओ) जिनेन्द्र कथित आत्मज्ञानका प्रकाश सो ही अनुभव करने योग्य है (जिन सव्द प्रिये

सुई मुक्ति गओ) जिसको जिन शब्द प्यारा है, जो जिन शब्दके द्वारा जिन स्वभावी आत्माका अनुभव करता है वही मुक्तिमें पहुँच जाता है ॥ १५ ॥

(जिन रज उवन हिययार मओ) जिन स्वभावी आत्मामें रंजायमान होना यही हितकारी मार्गका उदय है। अर्थात् जिसने आत्माके स्वरूपमें रमण कर आनन्द लाभ किया, उसीको हितकारी मोक्षमार्ग मिलगया (भय विविय अमिय रस रमन पओ) उसका सर्व संसारमें पतनका भय दूर होगया, उसका आत्मानन्दरूपी अमृतरसमें रमण होगया (जिन रज सहाउ विन्यान मओ) जिनमें रंजायमान होना सो ही सम्यग्ज्ञानका स्वभाव है (वै दिप्ति रमन जिन रमन पओ) वही आत्म-ज्योतिमें रमण है-वही जिन भगवानमें रमण है ॥ १६ ॥

(जिन जिनय रज सुइ ममल पओ) राग द्वेष विषयी व कर्मविजयी आत्मामें मगन होना ही शुद्धोपयोग है (जिननाथ रमन सुइ सिद्धि पओ) वही श्री जिनेन्द्रमें रमन है, वही परमात्मामें रमण है, वही सिद्धि पद है, वही आत्मसिद्धिका उपाय है या वही सिद्ध स्वरूप है। (जिन नद सुय परमानदो) श्री जिनेन्द्रके गुणोंमें आनन्दित होना ही परमानन्दमय होजाना है (अन्मोय अवलि बलि मुक्ति पओ) यही आनन्दमय बलि है, या पूजा है, या यज्ञ है जिसके समान और कोई बलि नहीं होसक्ती। अपने सर्व इंद्रिय विषयोंको व कषायोंके कर्मोंको जिसमें बलि किया जावे-क्षय किया जावे ऐसा यह निरुपम यज्ञ आनन्दमय आत्मामें रमण है, वही मोक्षमार्ग है ॥ १७ ॥

(जिन रंज रमन सुइ नंद मओ) जिनके स्वभावमें रंजायमान होकर रमण करना सोई आनन्दमय भाव है (अन्मोय अवलि विंदु विलय पओ) इस आनन्दभावमें रमण करना सो ही निरुपम बलिदान है या यज्ञ है, अथवा जहां आनन्दमय भावका विनाश नहीं है, प्रवाह रूपसे धारावाही आनन्दानुभव है वहां सर्व विषयसुखकी तृष्णाका विष दूर होजाता है या मोहनीय कर्मका विष क्षय होजाता है (जिन तारन तरन सहाउ मओ) तब फिर वह श्री अरहन्त परमात्मा जिन होजाता है। अरहन्त भगवानका स्वभाव तारणतरण है, वे भव्य जीवोंको धर्मोपदेश देकर संसारसे पार करते हैं व आप भी भवसागरसे पार होजाते हैं (सिद्ध समय स उत्तु सु मुक्ति पओ) वे ही शुद्ध आत्मा हैं, वे ही मुक्तिके पदमें विराजित परमात्मा कहे गए हैं ॥१८॥

(जिन जिनयति कम्म उवन पओ) बन्ध प्राप्त व उदय प्राप्त कर्मोंको जीतनेवालेको जिन कहते हैं (उवन्न

·यान विरसतु) वे जिनेन्द्र ज्ञानावरणके क्षयसे प्रकाशित केवलज्ञानका विलास करते हैं, वे केवलज्ञानमें मगन हैं (जिन अर्थति अय सु समय मऊ) वे ही जिन यथार्थ आत्म पदार्थ है, वे ही रत्नत्रय स्वरूप हैं, वे ही स्व-समय रूप हैं (आयरन सिद्धि सपत) वे ही स्व चारित्र रूप हैं, वे ही सर्व कर्मक्षयकर सिद्धगतिको पाते हैं ॥१९॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें श्री तारणस्वामीने प्रत्येक पदमें अपने आत्मानुभव पूर्ण शब्दोंके द्वारा स्वात्मानुभव करनेका उपाय स्वात्ममननको झलकाया है। यह एक प्रकारका आत्माका स्तवन है, यही जिन स्तुति है। जिन आत्माको ही कहते हैं, यही अपने पुरुषार्थसे-स्वात्मरमणसे कषायोंको व कर्मोंको जीत लेता है। सम्यक्ती भव्यजीवको उचित है कि निज आत्माको शुद्ध निश्चयनयसे निश्चय ज्ञान चेतनाका स्वामी, शुद्ध ज्ञान व दर्शनोपयोगका धारी, अमूर्तीक, स्वात्म परिणतिका ही कर्ता, स्वात्मानन्दका भोक्ता, अपने ही शरीराकार विराजित सिद्ध समान परम शुद्ध वीतरागमय जाने, माने वैसा ही वारवार देखे अनुभवे, उसीमें तन्मय होकर सहज समाधि प्राप्त करे। सहज समाधि ही आत्मानन्दका प्रकाश करती है तथा वीतराग भाव झलका कर कर्मोंका संहार करती है। साधकको शब्दोंके द्वारा ही मनन करना चाहिये। ॐ, ह्रीं, श्रीं, सोहं आदि मंत्रोंके द्वारा या जिन शब्दके द्वारा शुद्धात्माका मनन करना चाहिये। मनन करते२ जब परिणाम थिर होजाते हैं तब शुद्धोपयोग प्रगट होजाता है। यही भाव सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी एकतारूप है। यही स्वसमयरूप है। यही जिन स्वरूप है। द्वादशांग वाणीका सार ही यह है जो स्वात्म रमणरूप मोक्षमार्गको पाया जावे। इसी मार्गके सेवनसे सदा ही आनन्दका लाभ होता है। जितना २ अधिक परमानन्द झलकता है उतना २ अधिक कर्मोंका संवर व कर्मोंका क्षय होता है। आत्मामें ध्यानकी अग्नि जलाकर राग द्वेषोंकी व कर्मोंकी वलि चढाना यही सच्चा यज्ञ है, यही सच्ची जिनेन्द्रकी पूजा है। इस आत्मयज्ञसे यह आत्मा उसी तरह शुद्ध होता है जैसे अग्निद्वारा राखसे निकाला हुआ सोना शुद्ध होता है। सिद्धपदका उपाय निजात्माका अनुभव ही है। यही मोक्ष है व यही मोक्षका उपाय है। भव्य जीवोंको यह पक्का श्रद्धान करके निजात्माका अनुभव करना चाहिये। यही वह अमोघ मन्त्र है जो मोहनीय कर्मरूपी सर्पके विषको दूर कर देता है। जिससे क्षीणमोही होकर यह शेष घातीय कर्मोंका भी क्षय करके अरहन्त परमात्मा होजाता है। अरहन्त भी स्वात्मरमण रूप हैं, परम वीतराग हैं, परमानन्दमय हैं, अनन्त सुखी हैं, अनन्त ज्ञानी हैं, अनन्त वली हैं, वे ही अरहन्त अन्तमें कर्मोंसे

छूटकर मोक्षपद पालेते हैं। मुक्तिका मार्ग कहीं बाहर नहीं है, भीतर ही है। शुद्धात्माका श्रद्धान ज्ञान-चारित्ररूप ही है। वह कथन योग्य नहीं है, मनन योग्य नहीं है, केवल मात्र अनुभव करने योग्य है। जहांतक अनुभव न हो आगमका पढ़ना, तत्वोंका मनन, अर्हंत भक्ति, जप, पाठ, तप आदि सर्व सहायक हैं। परन्तु विना आत्मानुभवके ये मोक्षमार्ग नहीं होसकते। क्योंकि मोक्ष भी स्वात्मानुभवगम्य है। अतएव उसका मार्ग भी स्वानुभवगम्य है। जैसा समयसार कलशमें कहा है—

क्लिश्यतां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्मभिः। क्लिश्यतां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरं ॥
साक्षान्मोक्ष इदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं। ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपि प्राप्तुं क्षमन्ते न हि ॥ १०-७ ॥

भावार्थ—मोक्षमार्गसे विरोधी कठिन२ कार्योंसे कष्ट उठाओ तो उठाओ या महाव्रत व तपका भार वहकर चिरकाल तक खेद उठाकर दुःख भोगो। मोक्ष तो साक्षात अविनाशी पद स्वानुभवगम्य आप ही है, ज्ञान स्वरूप है, सो आत्मज्ञानके विना कभी भी प्राप्त नहीं होसकता है। आत्मज्ञान सहित श्री जिनेन्द्र कथित तपादि व महाव्रतादि मोक्षमार्ग हैं। आत्मज्ञान विना नहीं।

(२४) इष्ट उत्पन्न छन्द गाथा ४६९ से ४७९ तक।

जिन जिनवर उत्तउ जिनय जिनु, जिनु वयनु सब्द सहकार मओ।
जिन दिप्ति दिस्टि सुइ सब्द रओ, जिनु इस्ट दर्स दर्सतओ ॥ १ ॥
जिन इस्ट सुयं सुइ दस मओ, जिन इस्ट दर्स सुइ लष्य रओ।
जिन इस्ट अलापो अलप मओ, जिन नन्तानन्त सुय सुरओ ॥ २ ॥
जिन इस्ट गम्य सुइ न्यान मओ, जिन इस्ट अगम सुइ अगम रओ।
जिन इस्ट अपय सुइ रमन मओ, जिन सुयं रमन गुइ उवन पओ ॥ ३ ॥
जिन इस्ट विन्यान सु रमन पओ, जिनु विंद विन्यान सु उवन पओ।
पय विंद इस्ट सुइ सुन्य मओ, उववन्न नन्त जिन समय मओ ॥ ४ ॥

ममलपाहुड
२०१॥

जिन इस्ट कमल सुइ कमल मओ, जिन कमल इस्ट जिन उत्त पओ ।
जिन उत्तु सु उत्तु सु परिनैमो, जिन इस्ट प्रमान सु उवन मओ ॥ ५ ॥
जिन भय विनासु सु अभय मओ, जिन सल्य संक विलयन्त पओ ।
जिन इस्ट दर्स दर्संति पओ, अनिस्ट भाउ सु वि॰य पओ ॥ ६ ॥
जिन उवन इस्ट उत्पन्न मओ, उववन्न हियार सु रमन पओ ।
जिन सह सहयार सु दर्स मओ, जिन समय सहाव सु दिस्टि मओ ॥ ७ ॥
जिन दिस्टि दिस्टि सुइ रमन मओ, जिन दिस्टि इस्टि सुइ दिस्टि मओ ।
जिन सब्द प्रियो उवरमन मओ, जिन उवन सहाव सु मुक्ति पओ ॥ ८ ॥
जिन दिस्टि दिस्टि रै रमन मओ, जिन इस्ट सब्द सुइ मुक्ति पओ ।
जिन लषन कमल सु दर्स मओ, उत्पन्न दर्स जिन दर्स मओ ॥ ९ ॥
जिन अर्क दर्स सुइ सुयं मओ, जिन अर्थति अर्थ सु उवन मओ ।
जिन समय सहाउ सु रमन मओ, सहयार उवन अवयास पओ ॥ १० ॥
जिन दर्स इस्ट उत्पन्न मओ, जिन नन्तानन्त सु दिस्टि पओ ।
अन्मोय इस्ट उत्पन्न मओ, जिन षिपक दर्स सुइ न्यान पओ ॥ ११ ॥
जिन भय षिपनक सुइ अमिय मओ, जिन विंद रमन सुइ ममल पओ ।
जिन कमल सु केवल दर्स मओ; जिन कम्म विलय सुइ मुक्ति पओ ॥ १२ ॥
जिन तारनतरन सु दिस्टि रओ, जिन दिस्टि दर्स सुइ दर्स पओ ।
जिन इस्ट दर्स उत्पन्न मओ, अन्मोय तरन जिन सिद्ध पओ ॥ १३ ॥

सुइ इस्ट दर्स जिन अगम मओ, उत्पन्न दर्स जिन उवन पओ ।
भय षिपिय अमिय रस ममल पओ, अन्मोय विंद रस मुक्ति पओ ॥ १४ ॥

घत्ता—

इय दर्स इस्ट सुइ ममल पओ, उत्पन्न अमिय रस दर्स मओ ।
सुइ न्यान विन्यान सु घम पओ, विष विलय अमिय रस मुक्ति गओ ॥ १५ ॥

अन्वय सहित अर्थ–' जिन जिनवर उत्तउ जिनय जिनु) श्री वीतराग जिनेन्द्रने कहा है कि जो आत्माके वैरियोंको जीतता है वही जिन है (जिनु वयन सव्द सहकार मओ) यह जिनपना जिनेन्द्रके द्वारा कथित शब्दोंके ऊपर विचार करनेसे प्राप्त होता है (जिन दिपि दिस्टि सुइ सब्द रओ) जिन स्वरूप आत्माका प्रकाश देख लेना सो ही शब्दोंमें रत होना है अर्थात् शब्दोंके भावमें लीन होनेसे–पुनः पुनः मनन करनेसे वीतराग विज्ञानमय आत्माका ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त होजाता है (जिन इस्ट दर्स नमैनओ) तब श्री जिनेन्द्रको इष्ट जो सम्यग्दर्शन है उसका झलकाव होजाता है। अर्थात् श्री जिनेन्द्रने कहा है कि मोक्षमार्गमें सम्यग्दर्शन परम हितकारी है, यही जड़ है, इसके विना मोक्षमार्ग हो ही नहीं सक्ता। वह सम्यक्त आत्मज्ञानके होनेपर होजाता है। जब भेदविज्ञानके द्वारा आत्माको पर पदार्थोंसे भिन्न मनन किया जाता है तब मनन करते २ करणलब्धिके परिणामोंके द्वारा जब अनन्तानुबन्धी कषाय और मिथ्यात्वका उपशम होता है तब स्वानुभव दशा होती है। उस समय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व स्वरूपाचरण चारित्रका एक साथ प्रकाश होजाता है–मोक्षमार्ग हाथ लग जाता है ॥ १ ॥

(जिन इस्ट सुय सुइ दर्स मओ) जिनेन्द्र भगवान द्वारा जो उपयोगी बताया गया है वह स्वयं प्रकाशित आत्मदर्शन या सम्यग्दर्शन है (जिन इस्ट दर्स सुइ लप्य रओ) इस जिनेन्द्र द्वारा कहे गये उपयोगी सम्यग्दर्शनके भीतर रत होना सो ही अनुभवने योग्य आत्मामें या मोक्ष स्वरूप आत्मामें रत होना है (जिन इस्ट भलापो अलप मओ) जिनेन्द्र भगवानने जो हितकारी वचन कहा है वह इन्द्रिय व मनसे अतीत आत्माका ज्ञान प्राप्त करना है (जिन नन्तानन्त सुय सुगओ) जो आत्मा जिन है या वीतराग है तथा अनन्तानन्त ज्ञानको रखनेवाला स्वयं प्रकाशित सूर्य है।

भावार्थ—जिनेन्द्रके उपदेशका लाभ यही है जो अपने आत्माका स्वभाव सर्वज्ञ वीतराग परमात्माके समान सूर्यके सदृश जान लिया जावे। सूर्यमें जैसे विना रागद्वेषके प्रकाशितपना है वैसे अत्मामें प्रकाशपना है॥ २॥

(जिन इष्ट गम्य मुइ ग्यान मओ) जिनेन्द्र भगवानने जिसे उपयोगी अनुभवने योग्य बताया है वह ज्ञान स्वरूप आत्मा है (जिन इष्ट अगम मुइ अगन रओ) जिनेन्द्र कथित उपयोगी पद मन व इन्द्रियोंसे अगोचर स्वयं अतीन्द्रिय ज्ञानमें रमणरूप है। अर्थात् अतीन्द्रिय ज्ञानमें रमण करनेसे आत्मज्ञान होता है। (जिन इष्ट अपय मुइ रमन पओ) जिनेन्द्रको इष्ट ऐसा यह अविनाशी आत्मा स्वयं आत्माके स्वभावमें रमणरूप है (जिन सुय रमन मुइ उवन मओ) वही आत्मीक पद जिन है। स्वयं अनुभव रूप है व स्वयं प्रकाशरूप है, उसे परकी सहायताकी जरूरत नहीं है॥ ३॥

(जिन इष्ट विन्यान सु रमन पओ) वही परम प्रिय भेदविज्ञानसे प्राप्त स्वयं आत्मरमण रूप पद है अर्थात् जब भेदविज्ञानका मनन किया जाता है तब ही उस आत्माका दर्शन होता है (जिनु जिन विन्यान सु उवन पओ) वही वीतराग विज्ञानमय उदयरूप पद है (पय जिद इष्ट सुइ सुन्न मओ) वही पद स्वानुभवगम्य उपादेय व सहज समाधिरूप शून्य पद है अर्थात् जिसमें संकल्प विकल्प नहीं है—राग द्वेषके विकार नहीं है। (उववन नन जिन समय मओ) वह पद उदयरूप अनन्तशक्तिमई परम वीतराग व स्वसमयरूप है—स्वात्मामें रमणरूप है॥ ४॥

(जिन इष्ट कमल सुइ कमल मओ) वही जिनेन्द्र द्वारा कथित उपादेय कमलपद है। अर्थात् वही स्वयं प्रफुल्लित कमलके समान विकसित आत्मस्वरूप है (जिन कमल इष्ट जिन उन पओ) वही वीतराग विकसित कमल समान हितकारी पद है जैसा जिनेन्द्रने कहा है (जिन उत्तु म उत्तु परिनैमी) वही जिनेन्द्र कथित पद स्वस्वरूपमें परिणमनशील है (जिन इष्ट प्रमान सु उवन मओ) वही वीतराग विज्ञानमय सम्यग्ज्ञान स्वरूप प्रकाशित पद है॥ ५॥

(जिन भय विनासु सु अभय मओ) वही जिन पद सर्व भयोंको दूर करनेवाला एक सुन्दर अभय पद है जिसमें रमण करनेसे निःशङ्क भाव होजाताहै। जैसे कोई सुरक्षित किलेमें बैठकर अपनेको अभय समझे वैसे ही इस अभय आत्मामें तिष्ठनेसे निर्भय भाव प्राप्त होजाता है (जिन सहज सह विलयन पओ) उस पदमें

न कोई माया, मिथ्या, निदान शल्य है न कोई शंका है। पूर्ण निश्चय है कि मैं परमात्माके समान शुद्ध आत्म द्रव्य हूं (जिन इस्ट दर्स दर्मंति पओ) वही वीतराग उपादेय सम्यग्दर्शन द्वारा देखनेयोग्य पद है अर्थात् सम्यग्दृष्टी ही उस शुद्ध आत्मपदका अनुभव करते हैं (अनिस्ट भाव सु विलय पओ) आत्माके अनुभवके विरोधी सर्व ही रागादि भावोंका वहां पता नहीं है। स्वानुभवमें एक अनुपम अद्वैत भाव झलकता है, वहां कोई और विकल्प या विचार नहीं रहते हैं ॥ ६ ॥

(जिन उवन इस्ट उत्पन्न मओ) जहां श्री वीतराग हितकारी पद प्रकाशित है (उववन्न हियार सु रमन पओ) वह पद उत्पन्न रूप व हित स्वात्म रमण रूप है (जिन सह सहयार सु दर्स मओ) वह पद श्री जिनेन्द्रकी सहायतासे भलेप्रकार देखा जाता है। अर्थात् जो श्री जिनेन्द्रके वीतराग सर्वज्ञ पदको पहचानता है, वही स्वात्माके स्वरूपको पहचानता है (जिन समय सहाव सु दिस्टि मओ) वही जिनदेवका स्वाभाविक आत्मीक पद है, वही आत्मदर्शनमय है ॥ ७ ॥

(जिन दिप्ति दिस्टि सुइ रमन मओ) उस पदको श्री जिनेन्द्रने अपने केवलज्ञानकी ज्योतिसे देखा है, वह स्वात्मरमण रूप है (जिन दिप्ति इस्ट सुइ दिप्ति मओ) वही पद वीतराग ज्योतिस्वरूप, उपादेय व स्वयं ज्ञानमय है (जिन सब्द प्रियो उव रमन मओ) जिन शब्द जिनको प्रिय है वे भव्यजीव जिन शब्दके द्वारा वीतराग विज्ञानमें रमण करते हैं (जिन उवन सहाव सु मुक्ति पओ) इसीसे आत्माका वीतराग जिनमई स्वभाव पूर्ण प्रगट होजाता है और उसे मुक्तिपद प्राप्त होजाता है ॥ ८ ॥

(जिन दिप्ति दिस्टि रै रमन मओ) इस वीतराग विज्ञानमई दृष्टिमें धारावाही रमण करनेरूप ही यह पद है (जिन इस्ट सब्द सुइ मुक्ति पओ) उस पदका जो प्रेमी है उसे जिन शब्द इष्ट लगता है, वह जिन शब्दकी सहायतासे वीतराग सर्वज्ञमय पदको पाकर मुक्त होजाता है (जिन लपन कमल सुदर्स मओ) श्री जिनेन्द्रका लक्षण प्रफुल्लित कमल समान शुद्ध सम्यग्दर्शन रूप है (उत्पन्न दर्स जिन दर्स मओ) वहीं श्री जिनेन्द्रको देखनेवाला दर्शन प्रगट रहता है अर्थात् जब आत्माका स्वभाव शुद्ध होजाता है तब साक्षात् प्रत्यक्ष आत्माका दर्शन होजाता है ॥ ९ ॥

(जिन अर्क दर्स सुइ सुय मओ) जहां श्री जिनेन्द्ररूपी सूर्यका दर्शन है वहीं निज आत्माका दर्शन है। क्योंकि अपना आत्मा भी स्वभावसे श्री जिनेन्द्र सूर्यके समान है (जिन अर्थति अर्थ सु उवन मओ) श्री

ममलपाहुड ॥२०५॥

जिनका स्वभाव वही यथार्थ आत्म पदार्थ है, वही प्रकाशित रत्नत्रयमई भाव है (जिन समय सहाव सु रमन मओ) वही वीतराग आत्माका स्वभाव स्वात्म रमणरूप है (सहयार उवन अवयास मओ) उसीकी सहायतासे आकाशके समान अनन्त ज्ञानधारी अर्हतपद प्रगट होता है ॥ १० ॥

(जिन दर्स इस्ट उत्वन्न मओ) श्री जिनेन्द्रमें परम प्रिय स्वाभाविक सम्यग्दर्शन परम अवगाढ़रूप झलक जाता है (जिन नन्तानन्त सु दिप्ति मओ) श्री जिनेन्द्र अनन्त ज्ञानमई ज्योतिस्वरूप है (अन्मोय इस्ट उत्पन्न मओ) वहीं प्रकाशित परमप्रिय आनन्द होरहा है (जिन विपक दर्म सुइ न्यान पओ) श्री जिनेन्द्र क्षायिक दर्शन व क्षायिक ज्ञानपदके धारी हैं। अर्थात् चार घातीय कर्मोंके क्षयसे अर्हत परमात्माके अनन्त दर्शन, अनंत ज्ञान, अनन्त सुख व अनन्त वीर्य प्रगट होते हैं ॥ ११ ॥

(जिन मय पिपनक सुइ अमिय मओ) श्री जिनेन्द्रके सर्व सांसारिक भयका नाश होगया है। वे परमामृतका स्वाद लेरहे हैं (जिन विन्द रमन सुइ ममल पओ) वे जिनेन्द्र ज्ञान चेतनामें रमण कर रहे हैं। वे ही शुद्ध परमात्मपद हैं (जिन कमल सु केवल दर्स मओ) श्री जिनेन्द्र प्रफुल्लित कमलके समान केवलदर्शनके धारी हैं (जिन कम्म विलय सुइ मुक्ति पओ) श्री जिनेन्द्र सर्व कर्मोंको क्षय करके मुक्तिपद प्राप्त करेंगे ॥ १२ ॥

(जिन तारनतरन सु दिप्ति रओ) श्री जिनेन्द्र आत्मज्योति मय तारणतरण हैं। आप भी भवसागरसे पार होंगे व बहुतोंको भवसागरसे पार करेंगे (जिन दिप्ति दर्स सुइ दर्म पओ) श्री जिनेन्द्रमें आत्मदर्शन चमक रहा है। वे स्वयं आत्मदर्शन या सम्यक्त स्वरूप हैं (जिन इस्ट दर्स उत्पन्न मओ) श्री जिनेन्द्रकी आत्मामें परम हितकारी आत्मदर्शन प्रत्यक्ष प्रगट होगया है (अन्मोय तरन जिन सिद्ध पओ) वे आनन्दमई हैं, वे भवसागरसे पार होकर श्री सिद्ध जिन परमात्मा पद प्राप्त करेंगे ॥ १३ ॥

(सुइ इस्ट दर्स जिन अगम मओ) वे ही उपादेय दर्शनके धारी श्री जिनेन्द्र अतीन्द्रिय पदमें शोभायमान हैं, उनकी आत्माका दर्शन इंद्रिय व मनसे नहीं होसक्ता है (उत्पन्न दर्स जिन उवन पओ) वहां ही वीतराग सम्यग्दर्शन प्रकाशरूप झलक रहा है (भय पिपिय अमिय रस ममल पओ) वहां सर्व भय क्षय होगया है, वे आनन्दामृत रसको पान कर रहे हैं व शुद्धपदमें विराजित हैं (अन्मोय विंद रस मुक्ति पओ) वे आनन्द रसका स्वाद लेते हुए मुक्ति प्राप्त करेंगे ॥ १४ ॥

(इय दर्स इस्ट सुइ ममल पओ) यही आत्मदर्शन परम उपादेय है व यही शुद्ध पद है (उत्पन्न अमिय रस

दर्स मग्गो इसमें आनन्दामृत रसका झलकाव नित्य अनुभवमें आरहा है (सुई न्यान विन्यान सु पर्म मग्गो) वही केवलज्ञानमई परमात्मपद है (विष विग्य अमिय रस मुक्ति गओ) वे अरहन्त सर्व कर्मरूपी विषको नाश करके आनन्दामृत रसका पान करते हुए मुक्ति पदको पहुँच जाते हैं।

भावार्थ—इस गाथावलीमें श्री तारणस्वामीने अरहन्त पदके लिये जिस अभ्यासकी आवश्यक्ता है उसको बताया है। भव्य जीवको उचित है कि जिनवाणी द्वारा तत्वोंको जानकर अपने आत्माके निश्चय स्वरूपपर विश्वास लावे। पूर्ण व पक्का निश्चय करे कि मेरी आत्मा सर्व रागादि दोषोंसे रहित, कर्मोंके फन्देसे रहित परम वीतराग सर्वज्ञ स्वरूप है। आत्मा और परमात्माके स्वरूपमें कोई भिन्नता नहीं है। साधकको मन्त्रपदोंके द्वारा अपने ही शुद्ध स्वरूपका मनन करना चाहिये। संसार, शरीर व भोगोंसे वैराग्यवान होकर उसे मुक्तिका प्रेमी होना चाहिये। स्वतंत्रताका पुजारी बनकर वह एकांतमें बैठकर दिन-प्रतिदिन आत्माको परसे भिन्न विचार करे। उसी आत्ममननसे सम्यग्दर्शनके बाधक कर्मोंका उपशम होकर सम्यग्दर्शन प्रगट होजाता है। सम्यग्दर्शन प्रगट होते ही अपनी आत्माका साक्षात्कार होजाता है—शुद्धात्माका अनुभव होजाता है, जिस आत्माका अनुभव होता है उसका द्रव्य स्वभाव अनन्तज्ञानरूप परम वीतराग है। जैसे सूर्य वस्तुओंको दिखलाते हुए भी किसीपर राग द्वेष नहीं करता है वैसे आत्माका स्वभाव सर्व जानते हुए भी निर्विकार है। वही अविनाशी है, वही इष्ट पद है, वही स्वसमयरूप है, वही सर्व पर भावोंसे शून्य स्वरूप है, वही कमल स्वरूप है, सदा ही विकसित है, वह अपने ही स्वरूपमें परिणमनशील है, वही सम्यग्ज्ञान प्रमाणका धारी है, वही सर्व भयोंको मिटानेवाला निर्भय पद है। उसके भीतर कोई अनिष्ट भाव नहीं है, उसका स्वभाव ज्योतिके समान सदा प्रकाशरूप है। ध्याता ऐसे शुद्धात्माका मनन जिन शब्दों द्वारा या अन्य ह्रीं आदि मन्त्र द्वारा करते हैं। इसतरह शुद्धात्माके ध्यानसे शुद्धोपयोगका प्रकाश होजाता है। इसीको धर्मध्यान कहते हैं व अति शुद्ध परिणतिको शुक्लध्यान कहते हैं। इसीसे कर्मोंकी निर्जरा होजाती है और यह आत्मा अरहन्त भगवान होजाता है। तब जैसे सूर्य बादलोंमें छिपा है, बादल हटनेसे प्रगट होजावे वैसे ही यह आत्मा प्रगट होजाती है। अरहन्त भगवान मोह रहित हैं, परम वीतराग हैं, अपने स्वरूपमें मगन होकर आत्मानन्दरूपी अमृतरसका सदा पान करते हैं। वे अनन्त वीर्यधारी हैं, कभी उनको खेद या चिंता या भय या इच्छा या बाधा नहीं होती

है। रत्नत्रय धर्मका फल प्राप्त करके वे परम कृतकृत्य हैं, अनन्तज्ञान व अनन्तदर्शन स्वरूप हैं।

क्षायिक परमावगाढ सम्यक्तके धारक हैं। वे ही तारणतरण जहाज समान आप तरते हैं व भव्य-जीवोंको तरनेका मार्ग बताते हैं। वे ही प्रभु सर्व कर्मरूपी विषको स्वात्म रमणरूपी ध्यानके बलसे उतार कर परम निर्विष निजानन्दमई अमृतका स्वाद लेनेवाले सदा बने रहते हैं। शरीरसे रहित मुक्त होजाते हैं, सिद्ध परमात्मा होजाते हैं। तात्पर्य यह है कि इस मानवजन्मको सफल करना चाहो तो भव्यजीवोंको आत्म–सिद्धिका पुरुषार्थ करना योग्य है, अपने इष्टपदको अपनेमें प्रकाश करना योग्य है। मोक्ष स्वभाव यह अपना स्वरूप ही है व मोक्षमार्ग भी आप ही है। आप हीसे आप शुद्ध होता है। जैसे वृक्ष स्वयं रगडकर अग्नि होजाते हैं। समयसार कलशमें कहा है—

एको मोक्षपथो य एष नियतो दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मक । तत्रैव स्थितिमेति यस्तमनिशं ध्यायेच्च त चेतति ॥
तस्मिन्नेव निरतर विहरति द्रव्यान्तराण्यस्पृशन् । सोऽवश्य समयस्य सारमचिरान्नित्योदयं विन्दति ॥ ४७–१० ॥

भावार्थ—मोक्षका मार्ग सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी एकतारूप निश्चयसे एक रूप ही है। जो कोई अन्य द्रव्योंकी तरफसे उदासीन होकर उसीमें जम जाता है, उसीको रात दिन ध्याता है उसीका अनुभव करता है, उसीमें सदा विहार करता है, वह अवश्य नित्य उदयरूप समयसार या शुद्धात्माको शीघ्र ही अनुभव करता है।

(२५) ताऊ या तालु छन्द गाथा ४८० से ४९६ तक।

जिन उवएसिउ ममल पउ, परमानन्द सहाउ।
परम निरञ्जन परम पउ, भय षिपनक ममल सहाउ ॥ १ ॥
तारन तरन सु समय मउ, न्यान विन्यान स उत्तु।
ममल सहावे ममल पउ, भय षिपनक सिद्धि संपत्तु ॥ २ ॥

तत्काल उवनउ न्यान विन्यानं, सु सुद्ध स चेयन भव्व पमानं ।
तरुवा तं तरनइ भेउ संजुत्तु, सु भय षिपनक हे भव्व स उत्तु ॥ ३ ॥
तरुवा तं उवनह उवन सहाउ, सु अष्यर अषयह भेउ सुभाउ ।
ॐकार ऊवनो विंद सहाउ, विन्यान विंद सह नन्द सुभाउ ॥ ४ ॥
सुपद अर्थह परमप्प स उत्तु, सु ममल सहावे सिद्धि संपत्तु ।
सु अर्थह दर्सिउ अर्थ समर्थु, तरुवा तत्कालह कम्म गलन्तु ॥ ५ ॥
तं कमल कलं तउ कलिय स उत्तु, तं कारन कार्जह न्यान उवन्नु ।
जं उत्तउ जिनवर ममल सहाउ, तं भय षिपनक हे भव्व सुभाउ ॥ ६ ॥
समत्तह सहियो न्यान विन्यानु, समत्तह गलियो कम्म उवन्नु ।
संसार निवारन संसय मुक्कु, निसंक सहावे कम्म गलन्तु ॥ ७ ॥
तरुवा तं नन्तानन्त नियन्तु, सु ममल सहावे कम्म गलंतु ।
जं जिनवर उत्तउ भव्वु स उत्तु, तं भय विनास हे कम्म जिनन्तु ॥ ८ ॥
तरुवा तं कमल सहाव संजुत्तु, तं रमनह रमियो जिनह पउत्तु ।
जं जिनवर लंकृत न्यान सहाउ, तं परिनै जुत्तउ भव्व सुभाउ ॥ ९ ॥
तरुवा तं तरनह सरनि विमुक्कु, सुन्यान सहावे ममल मुनन्तु ।
आसा अस्नेह सुभाव गलन्तु, सो लाज लोभ भय गारव गलंतु ॥ १० ॥
विभ्रम विमोह सभाव गलंतु, जनरंजन राग दोस विलयन्तु ।
कलरंजन पर्जव दिस्टि गलंतु, मनरंजन गारव सरनि विमुक्कु ॥ ११ ॥

ममलपाहुड
॥२०९॥

दर्सन मोहह मय अन्ध विलंतु, तं न्यान सहावे दोस गलतु ।
सुन्यान विन्यानह जिनह स उत्तु, सु भय षिपनक है भव्वु स उत्तु ॥ १२ ॥
अप्पापर आनिउ न्यान विन्यान, पर पर्जव गलियो कम्म उवन्नु ।
न्यानेन न्यान विलयन्ति कम्मु, तं सहजै उपजै परम धम्मु ॥ १३ ॥
परमप्पह परम सहाव संजुत्तु, पदमर्थह परम तत्तु जिन उत्तु ।
सु जिनवर उत्तउ जिनय पउत्तु, सु ममल सहावे कम्म गलंतु ॥ १४ ॥
सु न्यान आवर्न न दर्सियउ, पर पर्जय सरनि न पेसियऊ ।
तरुवा तं तरनह न्यान सहाउ, सु भय पिपनक है ममल सुभाउ ॥ १५ ॥
तरुवा तं सइयो रूव अरूव, उत्पन्न हियार सहयार पुनन्तु ।
सु न्यान विन्यानह समय स उत्तु, अन्मोय संजुत्तउ मुक्ति पहुत्त ॥ १६ ॥

घत्ता ।

इय तरुव संजुत्तउ, न्यान विन्यान सु ममल पऊ ।
तत्काल उवन्न सहाउ, भय षिपिय भव्व सो मुक्ति गऊ ॥ १७ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(जिन उवएसिउ ममल पउ) श्री जिनेन्द्र भगवानने शुद्ध पद या मार्गका उपदेश किया है—मोक्षमार्गका शुद्ध स्वरूप झलकाया है, जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रकी एकता स्वरूप स्वानुभव है (परमानद सहाउ) वही परमानन्द स्वभावका धारी है (परम निरंजन परम पउ) वही परम शुद्ध रागादि अंजनोंसे रहित निरंजन परम पद है (भय षिपनक ममल सहाउ) वही सर्व संसारके भयोंको क्षय करनेवाला है, वही शुद्ध स्वभाव है ॥ १ ॥

(तारन तरन सु समय मउ) वही स्वानुभव स्वसमय रूप है, शुद्धात्मामें रमण रूप है, यही वह जगह है जिसपर चढकर भव्यजीव संसारसे पार होजाता है व यही वह आदर्श है जिसे पाकर दूसरे भी भव

सागरसे पार होते हैं इसलिये यही तारनतरन है (न्यान विन्यान स उत्तु) इसीको सम्यग्ज्ञान या भेदविज्ञान कहते हैं। जहां स्वानुभव होता है वहां आप ही अपनेको सर्व पर विभावोंसे भिन्न देखता है (ममल सहावे ममल पउ) इसी शुद्ध आत्मीक स्वभावमें रमण करनेसे शुद्ध परमात्माका पद प्रगट होता है (भय षिपनक सिद्धि सपत्तु) तब सर्व भय क्षय होजाता है और यह आत्मा निर्भय सिद्धिको पालेता है–मुक्त होजाता है ॥२॥

(तत्काल उवनउ न्यान विन्यानं) शास्त्र मनन व गुरुके उपदेशका मनन करते करते जब करणलब्धिका समय होता है, समय२ विशुद्ध परिणाम अनन्तगुणे अधिक होते जाते हैं, तब ही यकायक सच्चा भेदविज्ञान पैदा होजाता है–अनुभवमें पर परिणतिसे भिन्न आत्मा झलक जाता है (सु सुद्ध सु चेयन भव्वु पमान) वह आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप परम शोभनीक सम्यग्ज्ञानमय प्रकाश होजाता है (तरुवा तं तरनह भेउ सजुत्तु) यही आत्मानुभव वह जहाज है जो भव्यजीवको अवश्य भवसागरसे तार देता है (सु भय षिपनक हे भव स उत्त) यह जहाज निर्भय है, इसे कोई डुवा नहीं सक्ता, जला नहीं सक्ता, ऐसा अपूर्व जहाज यह कहा गया है ॥३॥

(तरुवा तं उवनह उवन सहाउ) यह जहाज सदा प्रकाशमय स्वभावको झलकाता है। अर्थात् आत्मानुभवरूपी जहाजमें सदा आत्माका तेज झलक रहा है (सु अव्यर अषयह भेय सुभाउ) यही अविनाशी है, इसका स्वभाव ही अविनाशी है व अभेद है। इसमें कोई गुण गुणीके भेदोंका भेद नहीं है (ॐकार उवनो विंद सहाउ) ॐ मंत्रके ध्यान करनेसे सिद्धके समान आत्माका स्वभाव अनुभवमें आगया है (विन्यान विंद सह नन्द सुभाउ) यही ज्ञानका अनुभव है यही आनन्द स्वभावका प्रकाश है ॥ ४ ॥

(सुपद अर्थह परमप्प स उत्तु) आत्मीक पदार्थको ही परमात्मा कहा गया है। आत्माका मूल स्वभाव परमात्मारूप है (सु ममल महावे सिद्धि सपत्तु) इसी आत्माके शुद्ध स्वभावमें रमण करनेसे सिद्धि प्राप्त होती है (सु अर्थह दर्सिउ अर्थ समर्थु) आत्म पदार्थ ही आत्माके स्वरूपको देखनेको समर्थ है। मन, वचन, कायकी वहां पहुँच नहीं है। आत्मा स्वसंवेदन गोचर है (तरुवा तत्कालह कम्म गलतु) यही आत्मानुभवरूपी जहाज क्षण मात्रमें या एक अन्तर्मुहूर्तमें सर्व कर्मोंका क्षय कर डालता है ॥ ५ ॥

(त कमल कलनउ कलिय स उत्तु) उसी आत्माको अपनी ज्ञानरूपी कलियोंसे पूर्ण कमलकी उपमा दी गई है। आत्मा प्रफुल्लित कमलके समान सर्वांग प्रकाशित है (त कारन कार्जह न्यान स उत्तु) उसी आत्माको या आत्मानुभवको कारण ज्ञान व कार्य ज्ञान कहा गया है। अर्थात् आत्मा ही साधक है, आत्मा ही साध्य

है। स्वात्मानुभव ही करते करते पूर्ण स्वात्मानुभव प्रगट होता है, आपसे ही आपका प्रकाश होता है ! इसलिये आत्मा ही कारण है, आत्मा ही कार्य है (त उत्तउ जिनवर ममल सहाउ) इसी शुद्ध आत्माको या शुद्धात्मानुभवको श्री जिनेन्द्रने शुद्ध स्वभावरूप कहा है (त भव पिपनक हे भव्व सुभाउ) वही निर्भय स्वभाव है। हे भव्य ! उसीकी भलेप्रकार भावना कर ॥ ६ ॥

(सम्मत्तइ सहियो न्यान विन्यान) सम्यग्दर्शन सहित ज्ञान ही सच्चा भेदविज्ञान है (सम्मत्तइ गलियो कम्म उवन्न) सम्यग्दर्शनके प्रतापसे बन्ध प्राप्त कर्म गल जाते हैं (ससार निवारन ससय मुक्कु) वह सम्यग्दृष्टी संसारका अभाव कर चुका है। वह बहुत शीघ्र मुक्त होगा। उसको अपनी मुक्तिमें कोई संशय नहीं है (निसंक सहाव कम्म गलतु) सम्यग्दृष्टीकी निज आत्मामें शंका रहित प्रतीति ही कर्मोंकी निर्जरा करनेवाली है ॥७॥

(तरुवा त नतानंत नियंतु) आत्मानुभवरूपी जहाजपर बैठनेसे अनन्तानन्त कर्मवर्गणाओंका नियंत्रण होजाता है। अर्थात् उन कर्मोंका आना रुक जाता है (सु ममल सहावे कम्म गलतु) शुद्ध स्वभावके प्रतापसे कर्मोंका क्षय होजाता है (ज जिनवर उत्तउ भव्व स उत्त) उसी सम्यग्दृष्टी ज्ञानीको श्री जिनेन्द्र भगवानने भव्यजीव कहा है (त भय विनास है कम्म जिनतु) उसका सर्व सांसारिक भय नाश होजाता है। वह कर्मोंको जीत लेता है ॥ ८ ॥

(तरुवा तं कमल सहाव सजुत्तु) वह आत्मानुभवरूपी जहाज प्रफुल्लित कमलके समान विकसित रहता है (तं रमनइ रमियो जिनइ पउत्तु) वह अपने आनन्दमें मगन रहता है, वही पवित्र जिन है (ज जिनवर लकुत न्यान सहाउ) उसकी आत्मा श्री जिनेन्द्र परमात्माके ज्ञान स्वभावसे शोभायमान है। अर्थात् उसके भीतर परमात्माके स्वभावका यथार्थ श्रद्धान तथा ज्ञान है (त परिनै जुत्तउ भव्व सुभाउ) तथा वह उसी स्वभावमें परिणमन भी कर रहा है, वही भव्य स्वभावधारी है ॥ ९ ॥

(तरुवा तं तरनइ सरनि विमुक्कु) यह आत्मानुभवरूपी जहाज तरनेवाला है। यह संसारके भ्रमणसे मुक्त होगया है (सुन्यान सहावं ममल मुनतु) उसको अपने ज्ञान स्वभावमें धारकर इसके शुद्ध स्वरूपका मनन करो (आसा असनेह सुभाव गलतु) जिससे तृष्णा व स्नेहमई विभाव भाव गल जावे (सो लाज लोभ भय गार गलंतु) तथा जगतसे लज्जाका भाव, लोभ, भय, अहङ्कार सब निकल जावे ॥ १० ॥

(विभ्रम विमोह स भाव गलतु) आत्मानुभव करते हुए सर्व विपरीत श्रद्धान व अनध्यवसान

ज्ञानके लाभमें आलस्य, ये सब कुभाव गल जाता है (जनरंजन रोगदोस गल्यतु) वे सब रागद्वेष दूर होजाते हैं जिनमें जगतके प्राणी अपना मन प्रसन्न रखते हैं। परकी निन्दा प्रशंसामें राजी होनेका स्वभाव मिथ्या-दृष्टीका होता है, सम्यग्दृष्टी इस भावसे मुक्त होजाता है (कलरंजन पर्जय दिस्टि गलतु) प्राप्त शरीरमें प्रसन्न होनेवाली पर्याय दृष्टि या शरीरमें आपा माननेका मोह सब गल जाता है (मनरंजन गारव सरनि विमुक्कु) मनको राजी रखनेके लिये जो अहङ्कार या घमण्ड किया जाता है। उसका मार्ग भी छूट जाता है सम्यक्ती परवस्तुके संयोगमें न प्रसन्न होता है न कोई अहंकार भाव रखता है उसकी दृष्टि समभावरूप रहती है॥११॥

(दर्सन मोहह भय अघ विलतु) आत्मानुभवके ही प्रभावसे दर्शन मोहनीय कर्मका क्षय होजाता है ! क्षायिक सम्यक्त प्राप्त होजाता है (त न्यान सहावे दोस गलंतु) उस आत्मज्ञानके स्वभावमें रमण करनेसे सर्व दोष मिलं जाते हैं। सुन्यान विन्यानह जिनह स उत्त) उसीके सम्यग्ज्ञान या सच्चा भेदविज्ञान श्री जिनेन्द्रने कहा है (सुभय विपनक हे भव्व स उत्तु) उसीको हे भव्य ! सर्व भयको क्षय करनेवाला कहा है ॥ १२ ॥

(अप्पा पर आनि उन्यान विन्यान) वह भेदविज्ञान आत्माको और पर अनात्माको यथार्थपने जानता है (पर पर्जय गलियो कम्म उवन्नु) पर परिणति रखनेसे अर्थात् राग द्वेष मोहभाव रखनेसे जो कर्मोंका बन्ध होता है सो बन्ध बन्द होजाता है (न्यानेन न्यान विलयति कम्मु) आत्मज्ञानके द्वारा ज्ञानका अनुभव करनेसे कर्म क्षय होजाते हैं (त सहज उपजै परम धम्मु) तब सहज ही स्वभावसे ही परम धर्म या परमात्म-स्वभाव प्रगट होजाता है ॥ १३ ॥

(परमप्पउ परम भाव सजुत्तु) वह परमात्मा उसी परम स्वभावको रखनेवाला है (पद अर्थह परम तत्तु जिन उत्तु) वही नौ पदार्थोंमें परम पदार्थ है, वही सात तत्वोंमें परम तत्व है, ऐसा जिनेन्द्रने कहा है (सु जिनवर उत्तउ जिनय पउत्तु) उसीको जिनेन्द्र भगवानने पवित्र जिन कहा है (सु ममल सहावे कम्म गलतु) इसी शुद्ध स्वभावके प्रभावसे सर्व कर्म क्षय होजाते हैं ॥ १४ ॥

(सु न्यान आवर्न न दर्सियउ) इस अरहन्त स्वरूप परमात्मपदमें ज्ञानावरण कर्म नहीं दिखलाई पड़ता है, ज्ञानावरण कर्मका क्षय होगया है (पर पर्जय मरनि न पेमियउ) अब वहां पर परिणतिके मार्गका प्रवेश नहीं है अर्थात् मोहनीय कर्म भी क्षय होगया है, इसलिये श्री अरहन्त भगवान परम वीतराग हैं व अपने स्वरूपमें ही मगन हैं (तरुवा त तरनह न्यान सहाउ) वे ही अरहन्त यथार्थ जहाज हैं, जो ज्ञानस्वभावी

होकर भवसागरसे पार होगए हैं (सु भय पिपनक है ममल सुभाउ) उनका सर्व भय क्षय होगया है, वे अभय शुद्ध स्वभावमई होगए हैं ॥ १५ ॥

(तरुवा तं सइयो रूव अरुव) यह अरहन्तरूपी जहाज अमूर्तीक ज्ञानस्वभावी रूपमें रुचिवन्त हैं, परमावगाढ सम्यक्तमें मगन हैं (उपन्न हियार सइयार थुनंतु) श्री अरहन्तरूपी जहाजका प्रकाश हितकारी है व सहकारी है। उनकी स्तुति करनी चाहिये। श्री अरहन्त भगवानके गुणानुवाद गानेसे परिणाम शुद्ध होजाते हैं (सु न्यान विन्यानह समय स उत्तु) वे ही शुद्ध ज्ञानमय आत्मा कहे जाते हैं (अन्मोय स गुत्तउ मुक्ति पहुत्त) वे ही आनन्दमय है। इन गुणोंको लिये हुए वे ही मुक्तिमें पहुंच जाते हैं ॥ १६ ॥

(इय तरुव मजुत्तउ न्यान विन्यान सु ममल पउ भव्व) ऐसा यह आत्मारूपी जहाज ज्ञानस्वरूपी शुद्ध पदका धारी भव्य (तत्काल उवन्न सहाउ) एक ही समयमें अपने प्रकाशमान स्वभावको लिये हुए (भय विपिय भव्व सु मुक्ति गऊ) निर्भय मुक्तिमें चला जाता है ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें रत्नत्रयकी एकतामें परिणमन करनेवाले सम्यग्दृष्टी आत्माके व श्री अर्हंत परमात्माके गुणानुवाद गाये गये हैं। सम्यग्दृष्टीका आत्मा जहाजके समान है। उसीको तरुवा या तरनेवाला कहा गया है। वह अवश्य संसारसे पार होगा। उसके भीतर आत्माका मूल स्वभाव जो ज्ञानमय, दर्शनमय, वीर्यमय, आनन्दमय, अमूर्तीक, अखण्ड, सर्व रागद्वेष रहित निरंजन निर्विकार है वह भलेप्रकार चमक रहा है। वह स्वात्मानुभव करनेवाला स्वयं मोक्षका कारण है, व स्वयं मोक्षरूपी कार्य है। जैसा कारण होता है वैसा ही कार्य होता है। उपादान या मूल कारण पूर्व क्षणमें कारण है, उत्तर क्षणमें कार्य होजाता है। सुवर्ण अग्निके तापके निमित्तसे स्वयं शुद्ध होता जाता है, उसके पूर्व समयकी शुद्धता उत्तर समयकी शुद्धताके लिये कारण है। मुक्त स्वभाव भी स्वात्मानुभवरूप है। वह पूर्ण है जब कि साधक स्वात्मानुभव अपूर्ण है। सम्यग्दर्शनके प्रकाशके समय स्वात्मानुभव दोयजके चन्द्रमाके समान है। वही अर्हंत भगवान या सिद्ध महाराजके पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान होजाता है। सम्यक्तीका स्वात्मानुभव भी आनन्दरूप है व अर्हंत व सिद्धका स्वात्मानुभव भी अनन्त आनन्द स्वरूप है। इसी स्वात्मानुभवसे नवीन कर्मोंका संवर होता है और बन्ध प्राप्त कर्मोंकी निर्जरा होती है। यही सच्चा तप है।

स्वात्मानुभवका प्रारम्भ उपशम सम्यग्दृष्टीके होता है। इसीके अभ्याससे वह वेदक सम्यक्ती होकर

क्षायिक सत्यग्दृष्टी होजाता है। इसीके प्रभावसे वह क्षपकश्रेणी चढकर चारों घातीय कर्मोंको क्षय करके अरहन्त होजाता है। अरहन्त तारनतरन हैं। आप भी तरते हैं व अनेक भव्योंको धर्मोपदेश देकर तारते हैं। फिर वे ही शेष चार अघातीय कर्मोंके क्षयसे सिद्ध परमात्मा होकर एक समयमें सिद्धक्षेत्रमें लोकाग्र पहुंच जाते हैं। सर्व संसारके भ्रमणके भयसे मुक्त होजाते हैं। श्री जिनेन्द्रभगवानने स्वात्मानुभवको ही तरुवा तारक कहा है, यही जहाज है। इस जहाजका निर्माण स्वयं होता है। मन वचन काय दूर रह जाते हैं। स्वात्मानुभव ही सम्यग्दर्शन है। इसके विना ज्ञान कुज्ञान है, चारित्र कुचारित्र है। इसके साथ ज्ञान व चारित्र सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र हैं। सम्यक्तके प्रभावसे अविपाक निर्जरा होती है। भवभवके बांधे कर्म विना फल दिये हुए क्षय होजाते हैं। स्वात्मानुभव प्रगट होते ही सर्व सांसारीक विषयोंकी तृष्णा मिट जाती है। जगतका स्नेह मिटकर शिवसुन्दरीका प्रेम जम जाता है। जगतसे लाज माननेका भाव, इस लोक परलोक आदि सात प्रकारका भय व सर्व प्रकारका मद या अहङ्कार दूर होजाता है। संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय तीन ज्ञानके दोष हैं सो मिट जाते हैं। निःशङ्क शुद्ध सत्य सम्यग्ज्ञानका प्रकाश होजाता है। रागद्वेष मोह चला जाता है। जगतको प्रसन्न करनेका भाव व मनको पर पदार्थमें रमण करनेका रंजायमान भाव विला जाता है। इसी स्वात्मानुभवके प्रतापसे सहज स्वभाव झलक जाता है, परमात्माका पद प्राप्त होजाता है। श्री अर्हंत व सिद्ध परमात्माका गुणानुवाद व उनके गुणोंका विचार व उनकी पूजा यह सब परम हितकारी है व सहकारी है कि भव्यजीवको निज आत्माका यथार्थ ज्ञान हो सके। भव्योंको चाहिये कि परमात्माकी भक्तिके द्वारा अपने ही आत्माकी भक्ति करें। वारवार आत्माके शुद्ध गुणोंका मनन करें। मनन करते करते स्वात्मानुभव होता है। जैसे दूधको विलोते विलोते मक्खन निकलता है। मानव जन्मको सफल करनेका उपाय इस स्वात्मानुभव रूपी जहाजपर चढकर मुक्तिद्वीपमें यात्रा करना है। आप ही जहाज है, आप ही जहाजके चलनेका सागर है, आप ही मुक्तिद्वीप है।

आपमें ही मोक्ष है, आपमें ही मोक्षमार्ग है। यह भेद भी व्यवहारनयसे है। निश्चयनयसे आप ही सदा शुद्ध एक स्वभाव ज्ञाता दृष्टा अविनाशी परम ब्रह्म है। न वहां संसार है, न आश्रव है, न बन्ध है, न वहां संवर है, न निर्जरा है, न वहां मोक्ष है, न वहां पुण्य है, न वहां पाप है। निश्चयसे वह गुण गुणीके भेदोंसे भी रहित है, वह वचन अगोचर है, मनके विचारोंसे भी परे है। यद्यपि मन द्वारा विचारते

विचारते उस आत्मारामकी ओर झुकाव होता है तथापि जब वह आत्माराम ध्यानमें आकर उपयोगरूपी भूमिकामें आ विराजता है तब मनका कहीं पता नहीं चलता है। संकल्प विकल्प रूपी मन उस समय न मालूम कहां लुप्त होजाता है। वास्तवमें आत्मा सर्व विभाव रहित, कर्म रहित व शरीर रहित है। यही परमात्मा है। आत्माको जाने सो परमात्माको जाने। परमात्माको जाने सो आत्माको जाने। परमात्मा पूजा आत्मपूजा है। आत्मपूजा परमात्मा पूजा है। परात्मा स्तुति आत्मस्तुति है। आत्मस्तुति परमात्मा स्तुति है।

(२६) कण्ठ छन्द गाथा ४९७ से ५०१ तक।

कमल कण्ठ जिन उत्तयउ, उव उवन उवन दसंतओ।
उव उवन सहावे विंद रऊ, सो कमल विंद सिधि रत्तओ॥ १॥
भय पिपनक अभय उवन पऊ, उव उवन हियार संजुत्तओ।
सहयार तरन सुइ उवन मऊ, तं अर्क विंद सुइ मिद्धओ॥ २॥
सो कण्ठ रमन जिन उवन सहाओ, भय पिपनक रस अमिय संजुत्तु।
सो कमल कण्ठ सुइ न्यान उवनू, सुइ सुद्ध सरूवे ममल पउत्तु॥ ३॥
सो कमल ऊवनो केवल उत्तु, सो उत्त जिनुत्तउ उवन संजुत्तु।
सो उवन उवन हिययार पउत्तु, सो उवनो ममल सहयार संजुत्तु॥ ४॥
सो अर्थति अर्थह रमन संजुत्तु, सो न्यान विन्यानह जान जिनुत्तु।
सु अपय रमन सुइ रमन संजुत्तु, सु समय विंद रस कमल जिनुत्तु॥ ५॥
सु कमलह कलियो अलषु सु लषु, सुगम अगम पय अर्थ संजुत्तु।
सो उत्त सहावे पयडि संजुत्तु, सो पय अगम्य सुइ नन्त स उत्तु॥ ६॥

सो पथ अर्थह पद परम सहाओ, पद अर्थ सु अथ तिअर्थ सुभाओ ।
सु अर्थह अर्थ सुयं जि उत्तु, स अर्थ सहावे समय संजुत्तु ॥ ७ ॥
सो समय सहावे सहज जिनेन्द, अवयास अर्थ सुइ पत्त आनन्द ।
सु न्यान अन्मोयह दिप्ति सजुत्तु, सुइ दिस्टि सब्द पिउ सिद्धि संयत्तु ॥ ८ ॥
जिन जिनय संजुत्तउ न्यान विन्यानु, सो कमल सहावे विद रवन्नु ।
सुइ अर्क सु अर्क अर्क स उत्तु, सो कमल विंद रस रमन संजुत्तु ॥ ९ ॥
सो कमल कलिय जिन उत्त स उत्तु, सु इस्ट इस्ट सुइ उवन स उत्तु ।
सो दर्सिउ इस्ट सु इस्ट संजुत्तु, उव उवन दर्स सुइ ममल संजुत्तु ॥ १० ॥
सु कमल कलंतो कण्ठ सुभाउ, सुकमल ठंकारे मुक्ति सहाउ ।
सु कमल अक जिन अर्क सु अर्क, सु अर्क कलिय जिन समय सुअक ॥११॥
सो अर्क सुभावे कलिय जिनुत्तु, सु तरन पयण्पय ममल मुनन्तु ।
सो कमल विन्द रस रमन कलन्तु, सु न्यान अन्मोय सम सिद्धि सम्पत्तु ॥१२॥

घत्ता—

इय कमल कंठ जिन उत्तियउ, मुक्ति ठंकार संजुत्तु ।
भय षिपनक सुइ भव्व मुनी, सुइ अमिय रमन सिधि रत्तऊ ॥१३॥

अन्वय सहित अर्थ—(कमल कण्ठ जिन उत्तयउ) श्री अर्हंत् परमेष्ठीने, जो प्रफुल्लित कमलके समान हैं, अपनी दिव्यवाणीसे प्रकाशित किया है (उव उवन उवन दर्सतओ) उस वाणीमें प्रथम ही सम्यग्दर्शनके उदयको दिखलाया है (उव उवन सहावे विंद रऊ) उसी सम्यग्दर्शनके प्रतापसे ज्ञान स्वभावमें रमणता होती है (सो कमल विंद सिधि रतओ) सो ही कमल समान परमात्माका अनुभव है सो ही सिद्ध भगवानमें रमणता है ॥१॥

(भय पिरनक अभय उवन पऊ) वही सम्यक्त सर्व भयोंको दूर करनेवाला है, निर्भय पदको उत्पन्न करनेवाला है (उव उवन हियार सजुत्तओ) यह सम्यक्तका प्रकाश हितकारी संयोग है (महयार तरन सुइ उवन गऊ) यही भवसागरसे तरनेको सहकारी उदयरूप पद है (त अर्क विंद सुइ सिद्धओ) इसीसे ज्ञान सूर्यका अनुभव होता है, वही ज्ञान सूर्य सिद्धपदमें पहुँच जाता है ॥ २ ॥

(सो कण्ठ रमन जिन उवन सहाओ) यह सम्यक्त जिनवाणीमें रमण करनेवाला सदा प्रकाशित स्वभाव है (भय पिरनक रस अमिय सजुत्तु) यही भयोंका क्षय करनेवाला है, यही आत्मानन्दरूपी अमृत रसका अनुभव करनेवाला है (सो कमल कण्ठ सुइ न्यान ऊवनु) उसी अर्हत् कमलकी वाणीसे आत्मज्ञान उदय होजाता है (सुइ सुद्ध मल्ये ममल पउत्तु) सो ही शुद्ध आत्माका स्वरूप है, वही निर्मल है, वही पवित्र है ॥ ३ ॥

(सो कमल ऊवनो केवल उत्तु) सम्यग्दृष्टीकी आत्मामें केवल शुद्ध कमल समान आत्माका झलकाव होजाता है ऐसा कहा गया गया है (सो उत्त जिनुत्तउ उवन संजुत्त) वह जिनेन्द्र कथित यथार्थ ज्ञानके उदय सहित है। अर्थात् सम्यग्दर्शनके साथ सम्यग्ज्ञानका भी प्रकाश होता है (सो उवन उवन हिययार पउत्तु) वह सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान हितकारी है व पवित्र है (सो उवनो ममल सहयार सजुत्तु) सो ही शुद्ध ज्ञानके उदयको सहकारी है। अर्थात् उन्हींके द्वारा आत्मानुभव करनेसे केवलज्ञानका उदय होता है ॥ ४ ॥

(सो अर्थति अर्थह रमन सजुत्तु) वह सम्यग्दर्शन आत्मा पदार्थमें या रत्नत्रयमें रमण स्वरूप है अर्थात् उसके साथ स्वरूपाचरण चारित्र भी है। सम्यक्तीके भीतर जब आत्मानुभव होता है तब वहां शुद्धात्माका श्रद्धान भी है, ज्ञान भी है, चारित्र भी है। तीनों स्वरूप एक अभेद आत्माका ही प्रकाश है (सो न्यान विन्यानह जान जिनुत्तु) वही भेदविज्ञान है। जैसा जिनेन्द्रने कहा है वैसा ही सम्यग्ज्ञान है। आत्मा व अनात्माका यथार्थ विवेक है (सु अपय रमन सुइ रमन सजुत्तु) वहां अविनाशी स्वरूपमें रमण है, वहीं स्वचारित्र है (सु समय विंद रस कमल जिनुत्तु) वहीं आत्माका स्वाद आरहा है, वही आनन्द रससे पूर्ण कमल समान आत्मा है ऐसा जिनेन्द्रने कहा है ॥ ५ ॥

(सु कमलह कलियो अलपु सु रुपु) वहां आत्मारूपी कमल अपने ही आत्माका अनुभव कर रहा है जो इंद्रियोंसे व मनसे अगोचर है। केवल स्वयं ज्ञानगोचर है (सुगम अगम पय अर्थ सजुत्तु) वहां सहज ही अनुभवगम्य पदार्थका प्रकाश है (सो उव सहावे पयडि सजुत्तु) वह उस स्वभावमें अपने स्वभावसे ही स्थिर है।

आत्माका स्वभाव ही आत्मस्वभावमें स्थिर रहनेका है (सो पय अगमय सुइ नन्त स उत्तु) वही आत्मानुभवरूपी पद अनुभवगोचर अनन्तज्ञानका अनुभव कहा गया है। आत्मज्ञानी श्रुतज्ञानके बलसे केवलज्ञान स्वरूपी आत्माका अनुभव करता है ॥ ६ ॥

(सो पय अर्थह पद परम सहाओ) उस अनुभवमें आत्मा पदार्थ परम स्वभावके पदका ही स्वाद लेरहा है (पद अर्थ सु अर्थति अर्थ सुभाओ) वह पदार्थ ही यथार्थ द्रव्य है व वही रत्नत्रय स्वभाव रूप है (सु अर्थह अर्थ सुय जिन उत्तु) वही सब पदार्थोंमें सार पदार्थ है, ऐसा श्री जिनेन्द्रने स्वयं कहा है। नौ पदार्थोंमें एक आत्मा ही सार है (स अर्थ सहावे समय सजुत्तु) वही आत्मा पदार्थ अपने स्वभावमें रमण करता हुआ स्वसमयरूप है ॥७॥

(सो समय सहावे सहज जिनेंद) वहां आत्मा अपने सहज स्वभावमें मगन होता हुआ मानों साक्षात् जिनेन्द्र है या अरहंत स्वरूप है (अवयास अर्थ सुइ पत्त आनन्द) वह आकाशके समान निर्मल पदार्थ है उसको आत्मानन्दका लाभ होरहा है (सु न्यान अन्मोयह दिप्ति सजुत्तु) वहीं ज्ञानानन्द ज्योतिका प्रकाश है (सुइ दिस्टि सब्द पिउ सिद्धि संपत्तु) सो ही सम्यग्दृष्टि शब्दोंके द्वारा प्रिय भासती है। अर्थात् ज्ञानी जब मंत्रोंके द्वारा व अन्य पदोंके द्वारा विचार करते हैं तब वहां आत्मदृष्टिका ही प्रकाश होता है। ध्यानके अभ्यासमें शब्दका आलम्बन दूसरे शुक्लध्यान तक रहता है। इसी आत्मदृष्टिसे, इसी स्वात्मानुभवसे सिद्ध गतिकी प्राप्ति होती है ॥ ८ ॥

(जिन जिनय सजुत्तउ न्यान विन्यान) आत्मानुभवमें आत्मा जिन है, कषायोंका विजयी है, उसका ज्ञान भेदविज्ञान सहित है। अर्थात् आत्माका अनुभव परके अनुभवसे रहित शुद्ध है (सो कमल सहावे विंद रहत्तु) सो ही कमल स्वभावी आत्माका स्वाद लेता हुआ रमणीक भास रहा है (सुइ अर्क सु अर्क अर्क स उत्तु) सो ही सूर्य समान अपूर्व सूर्य अपनी किरणोंके साथ प्रकाशित है। अर्थात् अनुभवमें कोटि सूर्यसे भी अधिक तेजस्वी श्री अरहन्त परमात्माका अनुभव होरहा है (सो कमलविंद रस रमन सजुत्तु) वहां आत्मारूपी कमलके स्वादमें आत्मानन्दरूपी रसका रमण होरहा है। अर्थात् आत्मा आत्मामें मगन होकर आत्मानन्दरूपी अमृतका पान कर रहा है ॥ ९ ॥

(सो कमल कलिय जिन उत्त स उत्तु) सो ही आत्मारूपी कमलमें मगन जिन स्वरूप है ऐसा कहा गया है (सु इस्ट इस्ट सुइ उवन स उत्तु) वहीं परमेष्टीपदका उदय कहा गया है (सो दर्सिउ इस्ट सु इस्ट संजुत्तु) उसने

अपने इस्ट मोक्ष स्वभावको देख लिया है, वह अपने इष्ट पद सहित है (उव उवन दर्स सुइ ममल सजुत्तु) वहीं आत्मदर्शनका प्रकाश है वही सर्व रागादि मल रहित है ॥ १० ॥

(सुइ मल कटतो कंठ सुभाउ) शुद्ध आत्मारूपी कमलका मनन करनेके लिये शब्दोंका विचार करो (सुकमल ठकारे मुक्ति सहाउ) उन शब्दोंसे मुक्ति स्वरूप आत्मारूपी कमलका बोध होता है (सु कमल अक जिन अर्क सु अर्क) शुद्धात्मारूपी कमल सूर्य सम है, वह वीतराग सूर्य होनेसे शांतमई सूर्य है, तापमई सूर्य नहीं है, अर्थात् शुद्धात्माके भीतर केवलज्ञानका प्रकाश है जो रागद्वेषसे रहित है (सु अर्क कलिय जिन समय सु अर्क) वही अनुपम सूर्य है, उसीका अनुभव स्वास्मानुभवमें होता है तब वही जिन स्वरूप आत्मा उत्तम सूर्य सम भासता है ॥ ११ ॥

(सो अर्क सुभावे कलिय जिनुत्तु) स्वात्मानुभवमें सूर्य समान आत्माके स्वभावका अनुभव है ऐसा जिनेन्द्रने कहा है (सु तरन पयष्पय ममल सुनतु) वही संसार तारक पदार्थ आत्मा शुद्ध स्वरूप है ऐसा मनन करो (सो कमल विंद रमन फलतु) स्वात्मानुभवमें आत्मारूपी कमलके स्वादमें रमण करो (सु न्यान अन्मोय सम सिद्धि सपत्तु) वहीं यथार्थ ज्ञान व आनन्द है, वहीं समभाव है उसीसे सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १२ ॥

(इय कमल कठ जिन उत्ति पउ) इस प्रकार श्री अरहंत भगवान कमलकी दिव्यवाणीमें कहा गया है (मुक्ति ठकार मजुतु) उस वाणीमें मोक्ष प्राप्त करनेकी प्रेरणा है (भय षिपनक सुइ भव्व मुनी) जो स्वात्मानुभव करता है वही सर्व भयोंसे रहित भव्य साधु है (सुइ अमिय रमन मिघि ताऊ) सो ही आनन्दामृतमें रमन करता है तथा वही आत्मसिद्धिमें रत हो सिद्ध होजाता है ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें श्री अरहंत भगवानसे प्रकाशित दिव्यवाणीकी महिमा गाई है। उस वाणी द्वारा मोक्षका व मोक्षके मार्गका सच्चा स्वरूप प्रगट होता है। मोक्षका मार्ग रत्नत्रय स्वरूप है, उन तीनोंमें सम्यग्दर्शन मुख्य है। निश्चय सम्यग्दर्शन अपने ही आत्माका शुद्ध श्रद्धान करना है। जहां यह शुद्धात्मप्रतीति होगी वहीं आत्मा अपने आत्माका यथार्थ ज्ञान रखता हुआ अपने स्वरूपमें आचरण करता है। स्वात्मानुभवरूप होजाता है। सिद्ध भगवानके स्वरूपका दर्शन इस स्वात्मानुभवमें होता है। सम्यग्दृष्टी जिनवाणीका मनन करता रहता है। उसकी सहायतासे उपयोग आत्मीक रसके स्वादमें चला जाता है। शुद्धात्माका अनुभव ही मोक्षमार्ग है, इसीसे कर्मोंका क्षय होता है व केवलज्ञानका प्रकाश

ममलपाहुड
॥२२०॥

मोक्षमार्गका लाभ न होगा, होता है। यदि बाहरी क्रियाकाण्ड हो परन्तु शुद्धात्माका अनुभव न हो तो
केवल पुण्य बन्ध होगा, जिससे संसारका भ्रमण दूर नहीं होगा। जब सम्यग्दृष्टीके भीतर स्वात्मानुभवका
प्रकाश होता है तब आत्मानन्द रसका अपूर्व स्वाद आता है। अमृतसे इसकी उपमा दी गई है। वही
आनन्द आत्माको अमर कर देता है। वास्तवमें आत्मा मन, वचन, कायके विकल्पोंसे दूर सहज एक
अनुभवगोचर पदार्थ है। यद्यपि श्रुतज्ञानी केवलज्ञानीके समान प्रत्यक्ष आत्माका विशद ज्ञान नहीं रखता
है तथापि श्रुतज्ञानके बलसे उसके भीतर श्रद्धा सहित शुद्धात्मा या सिद्धपदका या अर्हंतपदका या ज्ञान
सूर्यका ही अनुभव आता है। भेदविज्ञान पूर्वक जब शुद्धात्माका अनुभव किया जाता है तब ही शुद्ध
अनुभव होता है, रागद्वेषका अशुद्ध स्वाद नहीं आता है, वीतराग भावका ही स्वाद आता है। जिनवाणीने
बताया है कि जैसे मोक्षका मार्ग परमानन्दमय है स्वात्मरमणरूप है वैसे मोक्ष भी परमानन्दमय है व
स्वात्मरमनरूप है। जो मुनि स्वात्मरमण करता है वही कर्मोंका क्षय करके अरहंत व सिद्ध होजाता है।
भव्य जीवोंको उचित है कि इस छन्दकी शिक्षाको ग्रहणकर संसार शरीर भोगोंसे वैराग्यभाव रक्खें।
यदि गृहका त्याग होसके और इंद्रियोंपर विजय प्राप्त होसके तो एकांत सेवन करना चाहिये। नदीतट व
वन आदि निराकुल स्थानमें रहकर अध्यात्म शास्त्रका मनन करते हुए ध्यानका अभ्यास करना चाहिये।
समताभावको जागृत करना चाहिये। उपसर्ग व परीषहोंको सहना चाहिये। कष्ट पानेपर भी उत्तम
क्षमाको विकारी न बनाना चाहिये। संतोषपूर्वक आहारपान करते हुए आत्मानन्दके रसको पीना चाहिये।
यदि गृहत्याग न होसके तौ गृहस्थीमें ममतारहित रहना चाहिये। अपनी लगन शुद्धात्मापर ही रखना
चाहिये। त्रिकाल सामायिक, अरहंतभक्ति, स्वाध्याय, संयम, दान, गुरुसेवा आदि उपायोंसे आत्माका
चिंतवन करना चाहिये। व्यवहारमें न्यायपूर्वक वर्तना चाहिये, परोपकारमें अपने तन, मन, धनका उप-
योग करना चाहिये। मोक्षमार्ग आत्मामें ही है, इस विश्वासको दृढतासे रखना चाहिये। श्री अमृतचंद्रा-
चार्य पुरुषार्थ सिद्ध्युपायमें कहते हैं —

परिपालनीयमनिशं निरत्यया मुक्तिमभिलषिता ॥ २०९ ॥

इति रत्नत्रयमेतत् प्रतिसमय विकलमपि गृहस्थेन। पदमवलम्ब्य मुनीना कर्तव्यं सपदि परिपूर्णम् ॥ २१० ॥

बद्धोद्यमेन नित्यं लब्ध्वा समयं च बोधिलाभस्य।

भावार्थ—गृहस्थको उचित है कि अविनाशी मुक्तिकी भावना रखके एकदेश रत्नत्रय धर्मको रात-

दिन पाले फिर नित्य उद्यम करते हुए जब विशेष वैराग्य आजावे तब मुनिका पद धारण करके मोक्ष-मार्गको पूर्णरूपसे साधन करे।

(२७) ह्रींकार गाथा ५१० से ५४३ तक।

ह्रींकारं नन्त विसेषं, कोमल परिनाम कमल सहकारं।
ह्रींकारं भय विलयं, ममल सहावेन कम्म विलयंती ॥ १ ॥
ह्रींकारं हित सहियं, ह्रींकारं समल दिस्टि विलयन्ती।
कोमल न्यान सु कमलं, पर्जय षिपिऊन ममल सहकारं ॥ २ ॥
ह्रींकारं अरुह विसेषं, हृदयं दर्संति लोय अवलोयं।
ममल सहावं सहियं, भय षिपिय अरुह कमल ममलं च ॥ ३ ॥
अरुहं अरुह स उत्तं, ह्रींकार हियकार कोमलं वयन।
कठिन कठोर सु विलयं, भय विनसिय समल कठिन विलयंती ॥ ४ ॥
ह्रियं च अरुहं सहियं, महिय सहकार न्यान विन्यानं।
अन्यान मिच्छ गलियं, ममल सहावेन कम्म गलयन्ती ॥ ५ ॥
हृदयं अलष्य लष्यं, लष्यन्तो सरूव सुद्ध सहकारं।
ममल सहावं विलय, भय षिपनक भव्व कम्म विलयन्ती ॥ ६ ॥
हृदयं अनेय रूवं, रूवं अरूव विक्त रूवं च।
ममल सहावं सहियं, मल मुक्कं नन्त दर्सनं ममलं ॥ ७ ॥

हृदयं क्रांति संजुत्तं, ह्रींकारं न्यान अंकुरं ममलं ।
अंकुर वृद्धि सहावं, भय षिपनिक नन्त कम्म षिपनं च ॥ ८ ॥
हृदयं दिस्टि स उत्तं, हृदयं ममलं च कम्म षिपनं च ।
भय षिपनिक स सहावं, षिपिऊ संसार सरनि उववन्नं ॥ ९ ॥
ह्रींकारं अर्थति अर्थं, अर्थति अथ ममल उववन्नं ।
संसार कम्म षिपनं, षिपन पर्जाव सरनि मोहंधं ॥ १० ॥
ह्रिय च सहज सरूवं, सहजानन्द कम्म षिपनं च ।
भव विनस्ट भव वनं, ममल सहावेन कम्म गलियं च ॥ ११ ॥
हृदयं दिस्टि स दिस्टं, हृदयं सहकार कम्म षिपनं च ।
पर्जय समल न पिच्छं, भय षिपनिक तिविह कम्म विलयंती ॥ १२ ॥
हृदयं नंद आनन्दं, चेयन आनन्द कम्म संषिपन ।
न्यान सुहाव सु सुरयं, ममल दिस्टिं च कम्म विलयंती ॥ १३ ॥
हितं च हेयिं सु समयं, हेयिं अवगहुइ न्यान स सरूवं ।
अन्यान सल्य रहिय, भय षिपियं अभय न्यान विमलं च ॥ १४ ॥
हित च सासुत रूवं, अनृत असासुतं च विरयंति ।
ऋतं ति ममलं रयनं, भय षिपिय समल कम्म विलयंती ॥ १५ ॥
हितं च परम सरूवं, परमं परमप्प परम जोएन ।
पर्जय सल्य विमुक्कं, भय षिपियं सल्य संक विलयन्ती ॥ १६ ॥

हितं च चरन संजुत्तं, अन्यान चरन दोस गलियं च ।
मिथ्या सल्य विमुक्कं, भय षिपियं ममल सुद्ध सहयारं ॥ १७ ॥
हितं च दर्सन चरनं, दर्सन अन्यान पाप गलियं च ।
पर्जय पप विलयन्तो, ममल सहावेन सरनि मुक्कं च ॥ १८ ॥
हितं च न्यानं चरनं, हितकार वीर्ज विन्यान उववन्नं ।
अन्यानं विलयतो, भय षिपियं अनिस्ट दोस विलयन्ती ॥ १९ ॥
ह्रियं च तत्तु विसेषं, तत्काल उववन्न न्यान विन्यानं ।
तव उववन्न सहावं, चरन तव विषय दिस्टि विलयन्ती ॥ २० ॥
हियं च चरन सुचरनं, चरनं पिपिऊन पर्जाव समलं च ।
षिपिओ कम्म विसेषं, भय षिपियं ममल न्यान सहकारं ॥ २१ ॥
हियं च उववन सहियं, अन्या सम्मत्त वेदक सहकारं ।
अन्मोय विरोह न पिच्छै, भय गलियं ममल सुद्ध सहकारं ॥ २२ ॥
हियं च उवसम सहियं, षिपनिक पिपिऊन कम्म बन्धानं ।
पिपि अन्यान विसेषं; भय षिपनिक भव्व सुद्ध सम्मत्तं ॥ २३ ॥
हियं च पद संजुत्तं, पदं च परम तत्तु संदर्सं ।
पर पर्जय विलयन्तो, ममल सहावेन संक भय षिपनं ॥ २४ ॥
हियं च उवन उवेसं, जिन उत्त उज्झाय पयडि जुत्त च ।
भय पिपिनक अनन्त चरनं, भय षिपिय तिविह कम्म विलयंती ॥२५॥

ह्रियं च सुद्ध सहावो, अरहं ह्रींकार न्यान विन्यानं ।
समल कम्म विलयन्तो, ममल दिस्टी च पर्जयं विलयं ॥ २६ ॥
ह्रींकारं दर्सन दिट्ठी, दर्सन दर्सेइ कम्म गलियं च ।
विकहा सरनि विमुक्कं, भय षिपियं ममल न्यान सहकारं ॥ २७ ॥
अर्हं च उवन उवएसं, तारन तरनं च ममल सहकारं ।
सल्य संक भय षिपनं, कम्मं विलयन्ति मुक्ति गमनं च ॥ २८ ॥
कमल सहाव उपत्ती, केवल उववन्न षिपन स सरूवं ।
षिपियं कम्म उवन्नं, उववन सहकार मुक्ति मंदर्सं ॥ २९ ॥
दर्संति लोय अवलोयं, न्यान विन्यान उवन कमलं वा ।
सहकारं उववन्नं, तारनतरनं च मुक्ति सुइ मिलियं ॥ ३० ॥
संसर्ग कम्म षिपनं, सारं तिलोय न्यान विन्यानं ।
रुचियं ममल सुभावं, संसारं तरन्ति मुक्ति गमनं च ॥ ३१ ॥
सहकारं न्यान विन्यानं, रीनं कम्मान तिविह विलयन्ति ।
रुचियं ममल सहावं, तारन सहकार जंति निर्वानं ॥ ३२ ॥
विन्यान न्यान सुद्ध, षिपिओ कम्मान तिविह जोएन ।
इस्ट संजोय सुममलं, नन्दं आनन्द मुक्ति गमनं च ॥ ३३ ॥
संसार सरीर सुविपयं, ममल सहावेन समल वि[illegible]यन्ती ।
तारन तरन सुसमयं, न्यान वलेन निव्वुए जन्ति ॥ ३४ ॥

अन्वय सहित अर्थ–(ह्रींकार नत विसेष) ह्रीं मन्त्रमें अनन्त गुण है। यह मन्त्र चौवीस तीर्थंकरोका

वाचक है, र से २, ह से ४ लेना योग्य है। इस मन्त्रको जपनेसे व इसका ध्यान करनेसे अनन्त लाभ है। ह्रीं मन्त्रको नासिकाके अग्रभागपर, दोनों भौंहोंके बीच, हृदयकमलके मध्यमें, नाभिकमलके मध्यमें, मस्तकपर, कण्ठपर, मुहकमलपर विराजमान करके ध्याना चाहिये (कोमल परिनाम कमल सहकार) इस मन्त्रसे भाव कोमल होजाते हैं–आत्मारूपी कमल प्रफुल्लित होजाता है (ह्रींकार भय विलिय) ह्रीं मन्त्रके ध्यानसे सर्व भय विला जाते हैं (ममल सहावेन कम्म विलयती) शुद्ध स्वभाव आत्माका झलक जाता है–शुद्धोपयोग प्रगट होजाता है, जिसके प्रतापसे पूर्वबद्ध कर्म क्षय होजाते हैं ॥ १ ॥

(ह्रींकार हित सहिय) आत्मप्रेमके साथ या सम्यग्दर्शनके साथ ह्रीं मन्त्रका ध्यान करना योग्य है (ह्रींकार समल दिस्टि विलयती) इस ह्रीं के ध्यानसे अशुद्धोपयोग या मिथ्यादृष्टि भाव सब दूर होजाते हैं। (कोमल न्यान सुकमल) इससे ज्ञानमें कोमलता या मृदुता आजाती है तथा आत्मा विकसित होजाता है (ममल सहकार पर्जय विपिऊन) शुद्ध भावके प्रतापसे जन्म मरणका नाश होजाता है ॥ २ ॥

(ह्रींकार अरुह विसेषं) ह्रींके ध्यानसे श्री अर्हंत परमेष्ठीका स्मरण होता है (न्यान दर्सति लोय अलोय) यह मन लोक अलोकके ज्ञाता अर्हंतका स्वरूप जान लेता है (ममल सहाव सहिय) तब शुद्धोपयोग प्रगट हो जाता है (भय विपिथं अरुह कमल विमल च) सर्व संसारका भय विला जाता है। निर्मल अर्हंत भगवानरूपी कमलका प्रकाश अपने भावोंमें प्रगट होजाता है, अर्थात् अर्हंत परमात्माके गुणोंमें मन तन्मय होजाता है ॥३॥

(अरुहं अरुह स उत्त) श्री अर्हंत भगवानको ही पूजने योग्य, स्तवन योग्य, ध्यान योग्य कहा गया है (ह्रींकार हियकार कोमल वयनं) हितकारी ह्रींके ध्यानसे या सम्यक्त पूर्वक ह्रींके ध्यानसे वचन कोमल मद रहित पर्याय बुद्धिके अहङ्कार रहित निकलते हैं (कठिन कठोर सु विलय) कठिन भाव व कठोर वचन दूर होजाते हैं, भावोंमें मृदुता आजाती है, वचन भी मद रहित, विनययुक्त व परम मिष्ट हितकारी निकलते हैं (भय विनसिय समल कठिन विलयन्ती) सात भय नाश होजाते हैं, मानके कठोर भाव या रागद्वेष सहित अशुद्ध भाव विला जाते हैं ॥ ४ ॥

(ह्रिय च अरुह सहिय) ह्रीं मंत्रसे अर्हंत परमात्माके स्वरूपको विचारते हुए ध्याना चाहिये (सहिय सहकार न्यान विन्यान) भेदविज्ञानके संयोगका यह उपाय है। ह्रीं मंत्रद्वारा अर्हंत परमात्माका स्वरूप ध्यानेसे भेदविज्ञान उपज जाता है, अपना आत्मा भी परमात्मा है और सर्व रागादि, आठ कर्म समूह व शरी-

रादिसे भिन्न है, ऐसा भाव आजाता है (अन्यान मिच्छ गलिय) उसीके विचार करनेसे अज्ञान तथा मिथ्यात्व गल जाता है (ममल सहावेन कम्म गल्यंती) शुद्ध आत्मीक स्वभावके झलक जानेसे कर्म गल जाते हैं ॥ ५ ॥

(हृदय अलष्य लष्य) मनका ध्यान अलक्ष्यको देखनेकी तरफ झुक जाता है, मनमें शुद्धात्माके गुणोंका मनन होता है जो इंद्रियोंके द्वारा व मनके द्वारा अनुभवमें नहीं आसक्ता है। केवल आत्मा हीके द्वारा आत्माका अनुभव किया जाता है (लष्यतो सरूव सुद्ध सहकार) शुद्ध आत्मस्वरूपके प्रकाशका यही उपाय है जो ह्रीं मंत्रका ध्यान किया जावे (समल सहावं विलय) इसीसे अशुद्ध स्वभाव दूर होजाता है (भय षिपनक भव्व कम्म विलयती) भय रहित एकाग्र होकर जो भव्य ह्रीं मंत्रको ध्याता है उसके कर्म क्षय होजाते हैं ॥६॥

(हृदयं मनेय रूवं) मनमें ह्रीं मन्त्रके द्वारा अनेक प्रकार अरहन्तके गुण स्मरणमें आते हैं कि वे अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्यके धारी हैं। क्षुधा, तृषा, क्रोधादि, जन्म मरण आदि अठारह दोषोंसे रहित हैं (रूवं अरूव विक्त रूवं च) ह्रीं मन्त्रके द्वारा अरहन्तकी आत्माका अमूर्तिक स्वभाव ध्यानमें आता है तथा प्रगट मूर्तीक स्वभाव भी ध्यानमें आता है कि वे पद्मासन परम सौम्याकार, कोटि सूर्यकी दीप्तिको जीतनेवाले, सिंहासनादि आठ प्रातिहार्य सहित, बारह सभायुक्त, अन्तरीक्ष, वीतराग ध्यानमय मुद्राको झलकाते हुए शोभायमान हैं (ममल सहाव सहिय) तथा अपना भाव रागादि दोष रहित वीतराग होजाता है (मल मुक्कं नत दर्सन ममल) तब दर्शनावरण कर्म रहित अनन्तदर्शन वीतरागता सहित ध्यानमें झलक जाता है अर्थात् अनन्त दर्शनधारी वीतराग अरहन्त प्रभुका मानो साक्षात्कार होजाता है ॥ ७ ॥

(हृदय क्राति सजुत्त) ह्रीं के मननसे मनमें एक ज्योति चमक जाती है—आत्माका प्रकाश छाजाता है (ह्रींकार न्यान अकुर ममल) ह्रीं के ध्यानसे शुद्ध आत्मज्ञानका अंकुर उग उठता है, आत्मानुभवरूपी वृक्षका प्रारंभ होजाता है, आत्मानुभवरूपी वृक्षका अंकुर फूट निकलता है (अकुर वृद्धि सहाव) वह अंकुर बढता ही रहता है, उसका स्वभाव बढनेका है। जितना२ आत्मानुभवका अधिक अभ्यास किया जाता है उतना उतना अधिक निर्मल व अधिक काल तक ठहरनेवाला आत्मानुभव होता जाता है (भय षिपनिक नंत कम्म षिपन च) आत्मानुभवसे सर्व भय मिट जाता है। निःशङ्कपने मैं अजर अमर आत्मा हूं ऐसा प्रतीतिमें आजाता है तथा अनन्त कर्मोंकी निर्जरा होने लगती है ॥ ८ ॥

(हृदयं दिस्टि स उत्तं) मनमें आत्माका दर्शन होना वही कहा जाता है (हृदयं ममल च कम्म षिपनं च) जहां मन सर्व विकारोंसे शून्य होजावे। मनमें निर्विकारता छाजावे और कर्मोंका क्षय होना प्रारम्भ होजावे (भय षिपिनक स सहावं) अभय आत्मीक स्वभाव झलक जावे (पिपिऊ मसार सरनि उववन्न) तथा संसार भ्रमणकारी कर्मोंका आस्रव बन्द होजावे ॥ ९ ॥

(ह्रींकार अर्थति अर्थ) ह्रींकारके ध्यानसे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमई आत्माका अनुभव होता है (अर्थेति अर्थ ममल उववन्न) इसी आत्मारूपी पदार्थके मननसे शुद्ध परमात्म-पदार्थका प्रकाश होता है (ससार कम्म षिपन) संसारमें भ्रमण करानेवाले कर्मोंका क्षय होता है (षिपनं पर्जाव मगनि मोऽघ) भिन्न २ शरीरोंमें भ्रमण करानेवाले मोहनीय कर्मका क्षय होता है। मोहनीय कर्मसे ही सर्व कर्मोंमें स्थिति व अनुभाग पड़ता है। जब मोहका क्षय होजाता है तब सिवाय सातावेदनीयके जो एक समय स्थिति रखती है और किसी कर्मका आस्रव नहीं होता है ॥ १० ॥

(ह्रिय च सहज सरूव) ह्रीं के ध्यानसे आत्माका सहज या स्वाभाविक स्वरूप अनुभवमें आता है सहजानन्द कम्म षिनं च) सहजानन्दका स्वाद आता है। इसी आनन्दमई ध्यानाग्निसे कर्मोंका नाश होता (भवयन भव विनस्ट) भव्यजीवोंका संसार भ्रमण दूर होजाता है (ममल सहावेन कम्म गलियं च) शुद्ध स्वभावके रमणसे कर्म गल जाते हैं ॥ ११ ॥

हृदयं दिस्टि मदिष्ठ) मनमें यथार्थ हितकारी मोक्षकी तरफ दृष्टि जम जाती है (हृदय सहकार कम्म षिपन च) इस मोक्षमें प्रेम करनेवाले मनके परिणमनके कारण कर्मोंका क्षय होता है। क्योंकि वहां शुद्धोपयोग गर्भित शुभ भाव होते हैं (पऊव समल न पिच्छ) अशुद्ध परिणाम नहीं दिखलाई पड़ते हैं (भय षिपनिक तिविह कम्म विलयन्ती) सर्व भय दूर होजाता है और अन्तमें तीनों ही प्रकारके कर्म विला जाते हैं। अर्थात् भाव कर्म रागादि, द्रव्य कर्म ज्ञानावरणादि, नोकर्म शरीरादि सब क्षय होजाते हैं और वह आत्मा सिद्ध परमात्मा होजाता है ॥ १२ ॥

(हृदय नन्द आनन्दं) मन आनन्दमें मगन होजाता है (चेयन आनन्द कम्म षिपन) उस ज्ञानानन्द भावसे कर्मोंका क्षय होजाता है (न्यान सहाव सु सुय) ज्ञान स्वभावी केवलज्ञान सूर्यका प्रकाश होजाता है (ममल दिस्टि च कम्म विलयन्ती) शुद्ध आत्मदर्शनके प्रभावसे कर्म विला जाते हैं ॥ १३ ॥

(हितं च हेयि सु समयं) हितकारी स्वात्मरमणरूप ज्ञान जब होता है (हेयिं अवगाह न्यान स सरूवं) तब यह ज्ञान, ज्ञान–स्वरूपमें प्रवेश कर जाता है। अर्थात् ज्ञान शुद्ध ज्ञानका मनन करता है (अन्यान सल्य रहिय) तब सर्व अज्ञान व तीन शल्य विला जाती हैं (भय षिपियं अभय न्यान विमलं च) सर्व भय दूर होजाता है और निर्भय और शुद्ध ज्ञान प्रगट होजाता है ॥ १४ ॥

(हित च सासुत रूवं) अपना हितकारी आत्माका अविनाशी स्वभाव है (अनृत असासुत च विरयति) जहां मिथ्या व अनित्य संसारसे विरक्त भाव रक्खा जावे (ऋतं ति अमल रयन) यथार्थ व सत्य मार्ग शुद्ध या निश्चय रत्नत्रय धर्म है (भय षिपिय रमल धम्म विलयती) इसी धर्ममें लीन होनेसे सर्व भय दूर होजाता है व मलीनता करनेवाले कर्मोंका क्षय होजाता है ॥ १५ ॥

(हित च परम सरूव) अपना हितकारी आत्माका श्रेष्ठ स्वरूप है (परम परमप्प परम जोएन) उत्तम योगाभ्याससे श्रेष्ठ परमात्माका ध्यान होता है (पर्जव सल्य विमुक) जहां माया, मिथ्या, निदान तीन शल्यकी परिणतिको त्याग किया जावे (भय षिपिय सल्य सक विलयती) वहां सर्व भय मिट जाते हैं और सर्व ही शल्य व सर्व ही शंकाएँ भी विला जाती हैं, निःशंक निःशल्य निर्भय आत्मानुभव जागृत होजाता है ॥ १६ ॥

(हित चरन सजुत्त) अपना हित सम्यक्चारित्रके पालनेसे होता है (अन्यान चरन दोस गलिय च) सम्यक्चारित्रके प्रभावसे मिथ्या व अज्ञानमई चारित्रका दोष दूर होजाता है (मिथ्या सल्य विमुक्क) मिथ्यात्वका शल्य छूट जाता है (भय षिपिय ममल सुद्ध सहकार) भय क्षय होजाता है व दोष रहित शुद्ध भावका लाभ होजाता है। सम्यग्दर्शन सहित श्रावक व मुनिका चारित्र पालनेसे मिथ्या चारित्र विलय होजाता है, रागद्वेष भाव घटता है, वीतराग शुद्ध भाव बढता है ॥ १७ ॥

(हितं च दर्सन चरनं) आत्माका हित सम्यग्दर्शनका आचरण है। अर्थात् श्रद्धापूर्वक आत्माका अनुभव है (दर्सन अन्यान पाप गलियं च) इस दर्शनाचारसे मिथ्या श्रद्धानसे जो पापका बन्ध हुआ था, सो पाप क्षय होजाता है (पजेय पप विलयन्तो) शरीरका पक्ष कि मैं शरीररूप हूँ विला जाता है (कमल सहावेन सरनि मुक्कं च) शुद्ध स्वभावका प्रकाश होजाता है, जिससे संसारका भ्रमण छूट जाता है ॥ १८ ॥

(हित च न्यानं चरन) सम्यग्ज्ञानका आचरण करना आत्माका हित है (हितकारं बीजं विन्यान उववन्नं) इस ज्ञानाचारसे व ज्ञानके अभ्याससे हितकारी सम्यग्ज्ञानकी शक्ति उत्पन्न होती जाती है, ज्ञानावर-

(हृदयं दिस्टि स उत्तं) मनमें आत्माका दर्शन होना वही कहा जाता है (हृदयं ममल च कम्म षिपनं च) जहां मन सर्व विकारोंसे शून्य होजावे। मनमें निर्विकारता छाजावे और कर्मोंका क्षय होना प्रारम्भ होजावे (भय षिपिनक स सहावं) अभय आत्मीक स्वभाव झलक जावे (षिपिऊ संसार सरनि उववन्न) तथा संसार भ्रमणकारी कर्मोंका आस्रव बन्द होजावे ॥ ९ ॥

(ह्रींकार अर्थति अर्थं) ह्रींकारके ध्यानसे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमई आत्माका अनुभव होता है (अर्थति अर्थ ममल उववन्न) इसी आत्मारूपी पदार्थके मननसे शुद्ध परमात्म-पदार्थका प्रकाश होता है (संसार कम्म षिपन) संसारमें भ्रमण करानेवाले कर्मोंका क्षय होता है (षिपनं पर्जाव सरनि मोहंघ) भिन्न २ शरीरोंमें भ्रमण करानेवाले मोहनीय कर्मका क्षय होता है। मोहनीय कर्मसे ही सर्व कर्मोंमें स्थिति व अनुभाग पड़ता है। जब मोहका क्षय होजाता है तब सिवाय सातावेदनीयके जो एक समय स्थिति रखती है और किसी कर्मका आस्रव नहीं होता है ॥ १० ॥

(ह्रियं च सहज सरूव) ह्रीं के ध्यानसे आत्माका सहज या स्वाभाविक स्वरूप अनुभवमें आता है (सहजानन्द कम्म षिपन च) सहजानन्दका स्वाद आता है। इसी आनन्दमई ध्यानाग्निसे कर्मोंका नाश होता (भवयन भव विनस्ट) भव्यजीवोंका संसार भ्रमण दूर होजाता है (ममल सहावेन कम्म गलियं च) शुद्ध स्वभावके रमणसे कर्म गल जाते हैं ॥ ११ ॥

हृदय दिस्टि सदिष्ट) मनमें यथार्थ हितकारी मोक्षकी तरफ दृष्टि जम जाती है (हृदय सहकार कम्म षिपन च) इस मोक्षमें प्रेम करनेवाले मनके परिणमनके कारण कर्मोंका क्षय होता है। क्योंकि वहां शुद्धोपयोग गर्भित शुभ भाव होते हैं (पर्जव समल न पिच्छ) अशुद्ध परिणाम नहीं दिखलाई पड़ते हैं (भय षिपनिक तिविह कम्म विलयन्ती) सर्व भय दूर होजाता है और अन्तमें तीनों ही प्रकारके कर्म विला जाते हैं। अर्थात् भाव कर्म रागादि, द्रव्य कर्म ज्ञानावरणादि, नोकर्म शरीरादि सब क्षय होजाते हैं और वह आत्मा सिद्ध परमात्मा होजाता है ॥ १२ ॥

(हृदय नन्द आनन्दं) मन आनन्दमें मगन होजाता है (न्यान आनन्द कम्म स षिपन) उस ज्ञानानन्द भावसे कर्मोंका क्षय होजाता है (न्यान सहाव सु सुरय) ज्ञान स्वभावी केवलज्ञान सूर्यका प्रकाश होजाता है (ममल दिस्टि च कम्म विलयन्ती) शुद्ध आत्मदर्शनके प्रभावसे कर्म विला जाते हैं ॥ १३ ॥

ममलपाहुड
॥२२८॥

(हितं च हेयि सु समयं) हितकारी स्वात्मरमणरूप ज्ञान जय होता है (हेयिं अवगाह न्यान स सरूवं) तब यह ज्ञान, ज्ञान-स्वरूपमें प्रवेश कर जाता है। अर्थात् ज्ञान शुद्ध ज्ञानका मनन करता है (अन्यान सल्य रहिय) तब सर्व अज्ञान व तीन शल्य विला जाती हैं (भय षिपियं अभय न्यान विमल च) सर्व भय दूर होजाता है और निर्भय और शुद्ध ज्ञान प्रगट होजाता है ॥ १४ ॥

(हित च सासुत रूवं) अपना हितकारी आत्माका अविनाशी स्वभाव है (अनृत असासुत च वियरति) जहां मिथ्या व अनित्य संसारसे विरक्त भाव रक्खा जावे (ऋतं ति अमल रयन) यथार्थ व सत्य मार्ग शुद्ध या निश्चय रत्नत्रय धर्म है (भय षिपियं ममल कम्म विन्यती) इसी धर्ममें लीन होनेसे सर्व भय दूर होजाता है व मलीनता करनेवाले कर्मोंका क्षय होजाता है ॥ १५ ॥

(हित च परम सरूव) अपना हितकारी आत्माका श्रेष्ठ स्वरूप है (परम परमप्प परम जोएन) उत्तम योगाभ्याससे श्रेष्ठ परमात्माका ध्यान होता है (पर्जत्त सल्य विमुक्त) जहां माया, मिथ्या, निदान तीन शल्यकी परिणतिको त्याग किया जावे (भय षिपिय सल्य सक विन्यती) वहां सर्व भय मिट जाते हैं और सर्व ही शल्य व सर्व ही शंकाएँ भी विला जाती हैं, निःशंक निःशल्य निर्भय आत्मानुभव जागृत होजाता है ॥ १६ ॥

(हित चरन सजुत्त) अपना हित सम्यक्चारित्रके पालनेसे होता है (अन्यान चरन दोस गलिय च) सम्यक्चारित्रके प्रभावसे मिथ्या व अज्ञानमई चारित्रका दोष दूर होजाता है (मिथ्या सल्य विमुक्त) मिथ्यात्वका शल्य छूट जाता है (भय षिपिय ममल सुद्ध सहकार) भय क्षय होजाता है व दोष रहित शुद्ध भावका लाभ होजाता है। सम्यग्दर्शन सहित श्रावक व मुनिका चारित्र पालनेसे मिथ्या चारित्र विलय होजाता है, रागद्वेष भाव घटता है, वीतराग शुद्ध भाव बढता है ॥ १७ ॥

(हितं च दर्सन नान) आत्माका हित सम्यग्दर्शनका आचरण है। अर्थात् श्रद्धापूर्वक आत्माका अनुभव है (दर्सन अन्यान पाप गलियं च) इस दर्शनाचारसे मिथ्या श्रद्धानसे जो पापका बन्ध हुआ था, सो पाप क्षय होजाता है (पजय पप विलयन्तो) शरीरका पक्ष कि मैं शरीररूप हूँ विला जाता है (कमल सहावेन सरनि मुक्तं च) शुद्ध स्वभावका प्रकाश होजाता है, जिससे संसारका भ्रमण छूट जाता है ॥ १८ ॥

(हितं च न्यान चरन) सम्यग्ज्ञानका आचरण करना आत्माका हित है (हितकारं बीजं विन्यान उववन्नं) इस ज्ञानाचारसे व ज्ञानके अभ्याससे हितकारी सम्यग्ज्ञानकी शक्ति उत्पन्न होती जाती है, ज्ञानावर-

विमेयं) जब विशेष अज्ञानका क्षय होजाता है (मय पिपनक भव्व सुद्ध सम्मत) तव परम निर्भय शुद्ध सम्यक्त होजाता है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शनके यहां पांच भेद बताए हैं—(१) आज्ञा सम्यक्त, (२) उपशम सम्यक्त, (३) वेदक सम्यक्त, (४) क्षायिक सम्यक्त, (५) शुद्ध सम्यक्त। ह्रीं के मन्त्रके द्वारा पांचों ही सम्यक्त प्रगट हो सक्ते हैं। श्री जिनागमकी आज्ञानुसार सात तत्वोंका श्रद्धान करना आज्ञा सम्यक्त है। इसको व्यवहार सम्यक्त भी कहते हैं। अनन्तानुबन्धी चार कषाय और दर्शनमोहनीयकी एक मिथ्यात्व प्रकृति या मिथ्यात्व, मिश्र तथा सम्यक्त प्रकृति, इन तीनोंके उपशमसे अर्थात् पांच या सात प्रकृतियोंके उपशमसे जो सम्यक्त हो उसको उपशम सम्यक्त कहते हैं। इसकी स्थिति एक अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं है। फिर उपशम सम्यक्तीके जब सम्यक्त मोहनीयका उदय आजाता है, शेष छः का उदय नहीं होता है तव वेदक या क्षयोपशम सम्यक्त होजाता है। वेदक सम्यक्ती जब सातों प्रकृतियोंका क्षय कर डालता है तव उसके क्षायिक सम्यक्त होजाता है। क्षायिक सम्यक्तको ही सातवे गुणस्थानसे लेकर आगे सर्व गुणस्थानोंमें या सिद्धपदमें शुद्ध सम्यक्त या वीतराग सम्यक्त कहते हैं। इसीको श्रुत केवलीकी अपेक्षासे अवगाढ सम्यक्त व अर्हंत केवलीकी अपेक्षा परमावगाढ सम्यक्त कहते हैं॥ २३॥

(ह्रिय च पय सजुत) ह्रीं पदके सहारेसे ध्यान करनेसे (पद च परम तत्त सदर्म) उस पदसे परमात्माका स्वभाव मननमें आता है (पर पर्जय विलयन्ती) रागद्वेषरूप पर परिणति विला जाती है (ममल सहावेन मक भय पिान) शुद्ध स्वभाव प्रगट होजाता है तव सर्व शंकाएँ व सर्व भय दूर होजाते हैं॥ २४॥

(ह्रिय च उवन उवएस) ह्रींकारके द्वारा ध्यान करनेका उपदेश देना योग्य है (जिन उत्त उज्झाय पयडि जुत) श्री जिनेन्द्रने कहा है कि ह्रीं मन्त्रमें उपाध्याय परमेष्ठीका स्वभाव गर्भित है। जैसे उपाध्याय तत्वज्ञान सिखाते हैं वैसे ही मन्त्रके विचारसे तत्वज्ञान पैदा होजाता है (भय पिपनिक अनन्त चरनं) तथा निर्भय चारित्र पैदा होजाता है जिसकी सन्तान अनन्तकाल तक जाती है। जो स्वात्मानुभव साधक अवस्थामें होता है वही सिद्ध अवस्थामें भी बना रहता है (भय पिपिय तिविह कम्म विलयन्ती) जब निःशङ्क, निर्भय, निर्विकल्प समाधिका प्रकाश होजाता है, या शुक्लध्यान जग उठता है तव द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म सब कर्म गल जाते हैं और यह आत्मा परमात्मा होजाता है॥ २५॥

(हियं च सुद्ध सहावो) ह्रींके ध्यानसे आत्माका शुद्ध स्वभाव अनुभवमें आता है (अरहं ह्रींकार न्यान विन्यानं) ह्रीं मंत्रसे अर्हतपद तथा केवलज्ञान पैदा होजाता है (समल कम्म विल्यन्तो) घातीय चार कर्म नाश होजाते हैं (ममल दिस्टी च पर्जय विलय) फिर शुद्ध आत्मदर्शन या तृतीय और चतुर्थ शुक्लध्यानसे शरीर पर्याय भी क्षय होजाती है और यह आत्मा सिद्ध होजाता है ॥ २६ ॥

(ह्रींकार दर्सन दिट्ठी) ह्रीं से सम्यग्दर्शनका अनुभव होता है (न्यान दर्सइ कम्म गलिय च) यह सम्यग्दर्शन आत्माका दर्शन करता है तब सर्व कर्म शिथिल होजाते हैं, कर्मकी जड कट जाती है (विकहा सरनि विमुक) स्त्री, भोजन, राष्ट्र व राजा आदि विकथाओंमें परिणमन छूट जाता है। सम्यग्दृष्टी रागवर्द्धक कथाएँ न करके उपयोगी धर्मकथाएँ व हितकारी कथाएँ करता है। श्री मुनिराज तो मात्र निश्चयधर्मवर्द्धक वार्तालाप ही करते हैं (भय षिपिय ममल न्यान सहकार) उस सम्यक्तके प्रकाशसे संसारका भय मिट जाता है और शुद्ध ज्ञान प्रगट होजाता है ॥ २७ ॥

(आह च उवन उवणम) श्री अरहन्त परमात्मा सम्यक्तकी उत्पत्तिका उपाय उपदेश करते हैं (तारन तरन च ममल सहकार) वे अरहन्त तारनतरन हैं, आप तरेंगे व दूसरोंको तरनेका मार्ग बतावेंगे। उनके सहकारसे भव्य जीवोंके भाव निर्मल होते हैं (सल्य सक भय षिपन) सम्यक्तके प्रकाशसे शल्य, शङ्का व भय सब दूर होजाते हैं (कम्म विलयति मुक्तिगमन च) कर्म नाश होजाते हैं और यह जीव मुक्तिपदमें पहुंच जाता है।

भावार्थ— मोक्षका उपाय एक सम्यग्दर्शनका लाभ है ॥ २८ ॥

(कमल सहाव उपत्ती) सम्यग्दर्शनके ही प्रभावसे आत्माका कमलके समान प्रफुल्लित परमात्माका स्वभाव झलक जाता है (केवल उववन्न षिपन स रूवं) तथा क्षायिक स्वरूप प्रकाश होजाता है (षिपिय कम्म उवन्न) सर्व कर्मबन्ध जो सत्तामें था सो क्षय होजाता है (उववन सहकार मुक्ति संदर्सं) इसी सम्यक्तके उदयसे यह जीव मोक्षका दर्शन कर लेता है ॥ २९ ॥

(दर्सति लोय अवलोय) परमात्मा भगवान लोक अलोकको क्रम रहित देखते हैं (न्यान विन्यान उवन कमल च) उनके भीतर केवलज्ञानका प्रकाश है जिससे वे अरहन्त प्रफुल्लित कमलके समान हैं (सहकारं उववन्न) सम्यग्दर्शनका उदय जीवके लिये सहकारी है (तारनतरन च मुक्ति सुइ मिलिय) वे अरहंत तारनतरन हैं, फिर वे ही स्वयं मुक्तिको प्राप्त कर सिद्धक्षेत्रमें सिद्धोंकी अवगाहनामें भिन्न रूपसे मिले रहते हैं ॥३०॥

(संसर्ग कम्म विपन) ह्रीं मन्त्रद्वारा ध्यान करनेसे वीतराग सम्यक्तके प्रभावसे जितने कर्मोंका सम्बन्ध है वह सब नाश होजाता है (सार तिलोय न्यान विन्यानं) तीनलोकमें सार ऐसा शुद्ध ज्ञान प्रगट होजाता है। (रुचियं ममल सहावं) उनको शुद्ध स्वभाव ही रुचता है (संसार तरन्ति मुक्ति गमन च) ऐसे अरहन्त परमेष्टी संसारसे तरकर मोक्ष पहुंच जाते हैं ॥ ३१ ॥

(सहकार न्यान विन्यान) आत्मा और अनात्माका भेदविज्ञान ही परम सहकारी है—मोक्षमार्गमें सहायक है (रीन कम्मान तिविह विलयन्ती) इसीके द्वारा ध्यानकी वृद्धि होनेसे तीनों ही प्रकारके कर्म शिथिल होकर क्षय होजाते हैं। द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्म सब चले जाते हैं (रुचिय ममल सहाव) शुद्ध स्वभावमें ही मगनता होजाती है (तारन सहकार जति निर्वान) भव्यजीव अरहन्त पदके द्वारा निर्वाणमें जाकर सिद्ध हो जाते हैं ॥ ३२ ॥

(विन्यान न्यान सुद्ध) शुद्ध आत्मज्ञानका प्रकाश जब होता है (पिपिओ कम्मान तिविह जोएन) तब मन, वचन, काय तीनों योगोंकी एकता होनेपर सर्व कर्म क्षय होजाते हैं (इष्ट संजोय सु ममलं) शुद्ध इष्ट पदका संयोग होजाता है (नंद आनंद मुक्ति गमन च) वे निजानन्दमें आनन्दरूप होते हुए मोक्ष चले जाते हैं ॥३३॥

(संसार सरीर सु विषय) संसार, शरीर और भोगोंसे वैराग्य होजाता है (ममल सहावेन समल विलयन्ती) शुद्ध स्वभावके द्वारा सर्व मलीन भाव विला जाते हैं (तारनतरन सु समय) तारणतरण स्वस्वरूपमय अरहंत पद प्रगट होजाता है (न्यान बलेन निव्वुए जंति) वे अरहन्त केवलज्ञानके बलसे निर्वाण पहुँच जाते हैं ॥ ३४ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें ही मन्त्रका महात्म्य बताया है। पदस्थ ध्यानमें मन्त्रोंको विराजमान करके उनके द्वारा परमात्मा या आत्माका स्वरूप विचार किया जाता है। ह्रीं मन्त्रसे अरहंत परमात्माका मुख्यतासे बोध होता। श्री अरहंत भगवानके शुद्ध स्वभावको विचारते हुए ह्रीं द्वारा ध्यान करना चाहिये। अरहन्तके अन्तरङ्ग व वहिरङ्ग गुणोंको विचारना चाहिये। मुख्य लक्ष्य अन्तरङ्ग गुणोंपर देना चाहिये और अपने आत्माका स्वरूप भेदविज्ञानके द्वारा परमात्माके समान विचारना चाहिये।

ह्रीं मंत्र द्वारा अपने आत्मामें परमात्माके स्वरूपका वारवार मनन करनेसे सम्यग्दर्शनके वाधक कर्म उपशम होजाते हैं और उपशम सम्यक्त प्राप्त होजाता है, तब मोक्षप्राप्तिका वीज वो दिया जाता है। धर्मकी जड़ सम्यक्त है। सम्यक्तीके यहीं धर्मका अंकुर फूटने लगता है। भावोंमें ऐसी निर्मलता

होजाती है कि संसार शरीर और भोगोंसे वैराग्य होजाता है। संसारकी तरफसे अरुचि होजाती है। मोक्षकी तरफसे रुचि होजाती है। सम्यक्तीके शङ्काभाव नहीं रहता है। निशङ्कभावसे तत्वोंकी रुचि करता है। उसको विषयोंकी वांछा नहीं रहती है, न वह पर पदार्थमें अहंकार करता है। उसको यह दृढ विश्वास है कि सिवाय मेरी आत्मीक ज्ञानादि सम्पदाके और कोई परमाणुमात्र मेरा नहीं है। यह आत्मीक आनन्दका प्रेमी होजाता है। उस सम्यक्तके प्रभावसे ज्ञान, चारित्र, तप, जप सर्व ही सम्यक् यथार्थ नाम पाते हैं। सम्यक्तके विना ज्ञान कुज्ञान है, चारित्र कुचारित्र है, तप कुतप है। सम्यग्दर्शनसे ही आत्माका अनुभव होता है। सम्यक्तीके कर्मोंकी निर्जरा शुरू होजाती है। आत्मानुभवके प्रतापसे वह श्रावक या मुनिका चारित्र पालता है, गुणस्थान क्रमसे बढता चला जाता है। चार घातीय कर्मोंका क्षय करके अरहन्त होजाता है। फिर शेष चार अघातीय कर्मोंका भी क्षय करके सिद्ध होजाता है। ह्रींके द्वारा ध्यान करनेसे परिणामोंकी कठोरता मिट जाती है, कोमलता पैदा होजाती है, वचन भी सम्यक्तीके कोमल निकलते हैं, उसके भीतर विकथाओंके कहनेका राग निकल जाता है। ह्रींके द्वारा ध्यान करनेसे जैसे सम्यग्दर्शन पैदा होता है वैसे ही सम्यग्दर्शन होजानेपर भी ह्रींका ध्यान उपकारी है। इसके द्वारा सहज आत्मस्वरूप झलक जाता है, शुद्धात्माका अनुभव होजाता है, तब सहजानंदका स्वाद आता है, इसीको चेतनानन्द या ज्ञानानन्द कहते हैं। यही वह अग्नि है जो कर्मोंको जलाती है। इसीके अनुभवसे केवलज्ञान सूर्यका प्रकाश होजाता है, आत्मानुभवसे ही पूर्ण श्रुतज्ञान होजाता है, अवधि व मनःपर्यय ज्ञान भी प्रगट होजाता है। इसी आत्मानुभवसे सराग चारित्रसे वीतराग चारित्र होजाता है। ह्रीं मंत्रके द्वारा ध्यानका अभ्यास परम तत्वका प्रकाश कर देता है। यह मन्त्र उपाध्यायके समान तत्वज्ञानकी वृद्धिमें प्रेरक है। जो भव्यजीव अपना सच्चा हित करना चाहे उनको उचित है कि ह्रीं मन्त्रके द्वारा अरहंत स्वरूपको नीचे प्रमाण ध्यानमें विचारे। श्री नागसेन मुनि तत्त्वानुशासनमें कहते हैं—

तथाद्यमाप्तमाप्तानां देवानामधिदैवतं। प्रक्षीणघातिकर्माणं प्राप्तानन्तचतुष्टयं ॥ १२३ ॥

दूरमुत्सृज्य भूभागं नभस्तलमधिष्ठितं। परमौदारिकस्वाङ्गप्रभाभर्त्सितभास्करं ॥ १२४ ॥

चतुस्त्रिंशन्महाश्चर्यैः प्रातिहार्यैश्च भूषितं। मुनितिर्यङ्नरस्वर्गिसभाभिः सन्निषेवितं ॥ १२५ ॥

जन्माभिषेकप्रमुखप्राप्तपूजातिशायिनं। केवलज्ञाननिर्णीतविश्वतत्त्वोपदेशिनं ॥ १२६ ॥

प्रभाम्वलक्षणाकीर्णसम्पूर्णोदग्रविग्रहं । आकाशस्फटिकातस्थज्वलज्ज्वालानलोज्वल ॥ १२७ ॥
तेजसामुत्तम तेजो ज्योतिषा ज्योतिरुत्तम । परमात्मानमर्हंत ध्यायेन्नि:श्रेयसाप्तये ॥ १२८ ॥

भावार्थ—सर्व वक्ताओंमें मुख्य वक्ता आप्त श्री अरहंत भगवान हैं, वे ही देवोंके स्वामी महादेव हैं। उन्होंने चार घातीयकर्म क्षय करके अनन्तचतुष्टय–अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, अनन्तसुख प्राप्त कर लिया है। केवलज्ञान होते ही वे आकाशमें बिराज जाते हैं, उनके शुद्ध परमौदारिक शरीरकी शोभाका मण्डल या भामण्डल बन जाता है। वे ३४ अतिशय व ८ प्रातिहार्यसे शोभायमान हैं। मुनि, पशु, मनुष्य व देवोंकी १२ सभाओंसे सुशोभित हैं। जिनके गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण पांच कल्याणक हुए हैं, जिन्होंने केवलज्ञान द्वारा निर्णय करके समस्त तत्वोंका उपदेश दिया है, जिनका प्रभावशाली शरीर परम प्रभासे व्याप्त है। जैसे निर्मल स्फटिकके भीतर अग्नि जलती हुई शोभती हो ऐसा शोभायमान है, सर्व तेजोंसे अधिक तेजस्वी है, सर्व ज्योतियोंमें उत्तम ज्योतिस्वरूप है, ऐसे अर्हंत परमात्माको मोक्षके लाभके लिये ध्यावे।

---

(२८) अन्मोय चौबीसी गाथा ५४४ से ५६८ तक।

जिन दिस्टि इस्टि जिन उत्तं, जिन समय सह व स उत्तं।
जिन परिनय समय प्रमानं, जिन कमल उत्त जि., वयनं ॥ १ ॥
जिन लंकृत जिन विन्यानं, जिन समय ऋत्य समानं।
जिन नन्तानन्त सु दिस्टी, जिन न्यान पयो परमेस्टी ॥ २ ॥
जिन समय सहाव स उत्तं, जिन नन्त नन्त अवयासं।
तं जिन अन्मोय सु ममलं, जिन समय कम्म तं विलयं ॥ ३ ॥
जिन पिपिय कम्म वंधानं, जिन मुक्ति दिस्टि धुव न्यानं।
जिन जिनयति कम्म उपत्ती, अन्मोय विरोह विलन्ती ॥ ४ ॥

तं न्यान अन्मोय स उत्तं, जं नन्त कम्म विलयंतं ।
जं न्यान अन्मोय विओयं, तं सरनि सहाव संजोयं ॥ ५ ॥
तं यहु विओयं किम सहिये, ज जं विओय दुह लहिये ।
भय षिपिय मुक्ति सं मिलिये, तं अमिय रमन सिधि रमिये ॥ ६ ॥ (आचरी)
तं न्यान अन्मोय पिओयं, तं भय षिपनिक संजोयं ।
भय षिपिय रमन आनन्दं, तं अमिय विओय विनन्दं ॥ ७ ॥ तं यहु० ॥
तं न्यान अन्मोय अनन्तं, तं अमिय रमन रस जुत्तं ।
तं अमिय रूव आनन्दं, तं अमिय विओय विनन्दं ॥ ८ ॥ तं यहु० ॥
जं जिन अन्मोय विओय, तं भय षिपनिक संजोय ।
भय षिपिय पयोहर नन्दं, भय षिपिय विओय विनन्द ॥ ९ ॥ तं यहु० ॥
जं न्यान अन्मोय सहावं, त अमिय रमन रस भावं ।
तं अमिय सरूव आनन्दं, त अमिय विओय विनन्दं ॥१०॥ तं यहु० ॥
अन्मोय न्यान विन्यानं, भय पिपिय सजोये सवन ।
भय षिपिय सरूव सनन्दं, भय षिपिय विओय विनन्दं ॥११॥ तं यहु० ॥
अन्मोय न्यान स सरूवं, जं अमिय रस रमन सुखं ।
तं अमिय सरूव आनन्दं, त अमिय अरूव विनन्दं ॥१२॥ तं यहु० ॥
जं न्यान भक्ति अन्मोयं, भय षिपिय भक्ति संजोयं ।
भय षिपिय भक्ति आनन्दं, भय षिपिय विओय विनन्दं ॥१३॥ तं यहु० ॥

जं न्यान दिस्टि अन्मोयं, तं अमिय रमन संजोयं ।
जं अमिय दिस्टि आनन्दं, तं अमिय अदिस्टि विनन्दं ॥१४॥ तं यहु० ॥

जं न्यान दिस्टि अन्मोयं, भय षिपनिक इस्टि संजोय ।
अमिय रस इस्टि आनंदं, तं इस्टि विओय विनद ॥१५॥ तं यहु० ॥

जं तारन तरन सहावं, तं दिस्टि इस्टि सम भावं ।
भय षिपिय अमिय रस नंदं, तं इस्टि विओय विनन्दं ॥१६॥ तं यहु० ॥

जं उस्टि सृस्टि सहकारं, अवयास, अन्मोय अपारं ।
भय षिपिय अमिय रस नन्दं, तं दिस्टि विओय बिनन्दं ॥१७॥ तं यहु० ॥

अन्मोय न्यान सुइ समयं, त षिपनिक इस्ट संजोयं ।
भय षिपिय अमिय रस नन्दं, तं रमन विलोय विनन्दं ॥१८॥ तं यहु० ॥

जं षिपक दिस्टि संजोयं, तं मुक्ति इस्टि परलोय ।
भय षिपनिक सहज सहावं, तं अमिय रमन रस भावं ॥१९॥ तं यहु० ॥

जं इह संजोय सं मिलिये, तं मुक्ति रमन संचलिये ।
सहु अङ्ग अमिय रस रमनं, भय षिपिय मुक्ति संमिलनं ॥२०॥ तं यहु० ॥

जं न्यान अन्मोय सु ममलं, जं समल सुभाव सुविलयं ।
भय षिपनिक रुव सहावं, सहु अङ्ग अमिय रस भाव ॥२१॥ तं यहु० ॥

तं ईय विनोय आनन्दं, जं तारन तरन सनन्दं ।
तं जान सहाव स उत्तं, सिद्ध समय सिद्धि सम्पत्तं ॥२२॥ तं यहु० ॥

ममलपाहुड
॥२३७॥

दिपि दिपियो नन्तानन्तं, लंकृत विन्यान स उत्तं।
सहकार नन्त संजुत्तं, तं समय सिद्धि सम्पत्तं ॥२३॥ तं यहु० ॥
जं तारन तरन सु ममलं, भय पिपिय अमिय रस ममलं।
तं धम सहाव संजुत्तं, तं समय सिद्धि सम्पत्तं ॥२४॥ तं यहु० ॥
सुइ तारन तरन सुहावं, हिययार सहाव सुभावं।
तं न्यान अन्मोय सुभावं, तं समय सिद्धि सं पातं ॥२५॥ त यहु० ॥

अन्वय सहित अर्थ—(जिन दिस्टि इस्टि जिन उत्त) श्री जिनेन्द्रका दर्शन परम इष्ट है ऐसा जिनेन्द्रने कहा है। जिनेन्द्र वास्तवमें आत्माका नाम है। आत्माके शुद्ध स्वरूपका दर्शन ही जिनदर्शन है, वही इष्ट है कल्याणकारी है (जिन समय सहाव स उत्त) उसीको जिन स्वरूप वीतरागी आत्माका स्वभाव कहा गया है अर्थात् वही आत्मीक स्वभावका दर्शन है या आत्मस्वभावमें रमण है (जिन परिनय समय प्रमान) वहां ही वीतराग परिणमन है, वहीं स्वसमयमई सम्यग्ज्ञान रूप प्रमाण है। अर्थात् वही आत्मा आत्मारूप परिणमन करता हुआ निश्चय सम्यग्ज्ञान स्वरूप है (जिन कमल उत्त जिन वयनं) ऐसा कमल स्वरूप श्री जिनेन्द्र द्वारा कथित जिनवाणीका उपदेश है ॥ १ ॥

(जिन लंकृत जिन विन्यान) श्री जिन स्वरूपका यथार्थ ज्ञान है वह जिन स्वरूपसे शोभायमान है। अर्थात् शुद्धात्माके ज्ञानमें तन्मय होना ही जिन विज्ञान है (जिन समय सत्य समान) वही वीतराग आत्मा सत्य स्वभावमई है। अर्थात् आत्माका अपने आत्मीक स्वभावमें रहना ही सत्य स्वभावमें लय होना है जहां परका लेश संसर्ग न हो, रागद्वेष न हो वही सत्य स्वभाव है (जिन नंतानत सु दिस्टी) जिन स्वरूप आत्मामें अनन्त दर्शन है व अनन्तज्ञान है (जिन न्यानमयो परमेस्टी) वे ही जिन ज्ञानमई पदमें हैं व परम पदमें रहनेसे परमेष्टी हैं ॥ २ ॥

(जिन समय सहाव स उत्त) श्री जिनस्वरूप वीतराग आत्माका स्वभाव यह कहा गया है कि (जिन नंत नत अवयास) उनके ज्ञानमें अनन्त अवकाश है, अनन्तानन्त पदार्थोंको एक काल देखने जाननेकी शक्ति है

आत्मानन्द है (जिन समय कम्म तं विलय) ऐसे श्री
(त जिन अन्मोय सु ममलं) वहाँ वीतराग व परम शुद्ध आत्मानन्द है (जिन समय कम्म तं विलय) ऐसे श्री
जिनेन्द्रकी आज्ञासे कर्मोंका क्षय होगया है ॥ ३ ॥

(जिन पिपिय कम्म नवान) श्री जिनेन्द्रने कर्मोंके बन्धनोंको काट डाला है (जिन मुक्ति दिस्टि धुव न्यानं) श्री जिनेन्द्रने मुक्तिका दर्शन कर लिया है, उनका शुद्ध ज्ञान ध्रुव है, अविनाशी है, उसपर कोई ज्ञानावरण कर्मका आवरण नहीं है (जिन जिनवति कम्म उप्पत्ती) श्री जिनेन्द्रने कर्मोंके आस्रवको जीत लिया है। उनकी आत्मामें पूर्ण संवर भाव है (अन्मोय विरोह विलती) उनके आनन्द गुणका विरोधी कर्म क्षय होगया है। कर्मोंके क्षय होनेसे वे नित्य आनन्दका अनुभव करते हैं ॥ ४ ॥

(तं न्यान अन्मोय स उत्तं) उसीको ज्ञानानन्द कहा गया है (ज नत कम्म विलयत) जिस आनन्दानुभवसे अनन्त कर्मोंका क्षय होजावे (ज न्यान अन्मोय विओय) जो ज्ञानानन्दका वियोग है अर्थात् आत्मिक सुखको न पानेसे जो विषयोंके सुखमें रमणता है (त सरनि सहाव मजोय) उससे संसार भ्रमण करानेवाले कर्मोंका संयोग होता है। अर्थात् विषयोंके सुखमें रमण करनेसे भव भ्रमणकारी कर्मोंका बन्ध होता है ॥ ५ ॥

(तं पहु विओय किम सहिये) तब इस ज्ञानानन्दका वियोग कैसे सहन किया जावे ? अर्थात् आत्मानन्दके न पानेसे यह जीव विषयानन्दमें मगन रहता है तब कर्मोंको बांधकर भवभवमें महान् कष्टोंको सहन करता है। इसलिये तारणस्वामी कहते हैं कि हमें उस ज्ञानानन्दका वियोग एक समय भी स्वीकार नहीं है। हम उस परम रक्षक ज्ञानानन्दकी शरण कभी छोड़ना नहीं चाहते हैं (ज ज विओय दुह लहिये) जैसा जैसा आत्मानन्दके वियोगसे दुःख भोगना पडता है उसको विचारते हुए हमें क्षणभर भी आत्मानन्दका वियोग खल रहा है (भय पिपिय मुक्ति समिलिये) आत्मानन्दको पाकर हमारा भय सब दूर होजायगा। हम मुक्ति स्त्रीसे भलेप्रकार मिल जावेंगे (त अमिय रमन सिधि रमिये) और उसके मिलनेसे आनन्दामृतमें रमण करेंगे व आत्मसिद्धिमें रमण करेंगे ॥ ६ ॥

(तं न्यान अन्मोय विओय) वह ज्ञानानन्द ही हमारा प्रीतम है, हमारा प्रेमपात्र है (तं भय पिरनिक सजोय) उसीके मेलसे हमारा सर्व भय मिट जाता है (भय पिपिय रमन अनन्द) तब निर्भय होकर अतीन्द्रिय आनन्दमें रमण होता है (त अमिय विओय विनद) उस अमृतके स्वादको लेते हुए सर्व दुखोंसे वियोग होजाता है। अर्थात् सर्व सांसारिक कष्ट मिट जाते हैं ॥ ७ ॥

ममलपाहुड

(त न्यान अन्मोय अनन्त) वह ज्ञानानन्द अनन्त है–उसका अन्त नहीं होता है, वह आत्माका स्वभाव है कितना भी उसका उपभोग किया जावे वह सदा बना रहता है (तं अमिय रमन रस जुत्तं) उसमें आनन्दामृतमें रमणताका स्वाद आता रहता है (त अमिय रुव आनन्दं) वही अमृतानन्द रूप है (त अमिय विओय विनन्द) वह ऐसा अमृत है जिसके पानसे सर्व निरानन्दका वियोग होजाता है, सर्व आकुलता दूर होजाती है ॥ ८ ॥

(ज जिन अन्मोय पिओय) यह जो वीतरागतामें आनन्द है वही प्रेमके योग्य है (त भय षिपनिक संजोय) इस प्रेमके होते हुए सर्व भयका सयोग दूर होजाता है (भय षिपिय पयोहर नन्द) तब निर्भय आनन्दरूपी मेघोंका या आनन्दरूपी समुद्रका लाभ होजाता है (भय षिपिय विओय विनन्दं) उस सुख–समुद्रमें अवगाहन करनेसे सर्व सांसारिक भय मिट जाता है व सर्व निरानन्द छुट जाता है। अन्तर रहित निरन्तर आनन्दका स्वाद आता है जहां रंचमात्र भी आकुलता नहीं होती है ॥ ९ ॥

(ज न्यान अन्मोय सहावं) जो ज्ञानानन्दका स्वभाव है (तं अमिय रमन रस भाव) वह अमृतमें रमणता होनेसे अपूर्व स्वादका प्राप्त होना है। अर्थात् आत्मानन्दमें रमण करनेसे अनुपम स्वाद आता है (तं अमिय सरूव आनदं) वहीं अमृतानन्द स्वरूपका झलकाव है (त अमिय विओय विनद) उस अमृतके लाभसे सर्व आकुलता मिट जाती है ॥ १० ॥

(अन्मोय न्यान विन्यानं) ज्ञानानन्दमें मगन होना है (भय षिपिय संजोय सवन) वह निर्भय होकर परम शान्त आत्मारूपी चन्द्रमासे मिलता है। यहां आत्माकी उपमा चन्द्रमासे दी है। जैसे चन्द्रमाके दर्शनसे शांतिका लाभ होता है वैसे आत्मानन्दमें मगन होनेसे परम शांतिका लाभ होता है (भय षिपिय सरूव सनन्द) तब निभय स्वरूपमें आनन्द मगनता रहती है (भय षिपिय विओय विनन्द) जिससे सर्व भय दूर होजाता है और सर्व आकुलता मिट जाती है ॥ ११ ॥

(अन्मोय न्यान स सरूवं) ज्ञानानन्दका यह स्वरूप है (ज अमिय रस रमन सुरय) जो अमृतके रसमें ऐसा मगन होजावे कि मदिरा पीनेके समान उसी रसमें उन्मत्त होजावे। जैसे मदिरा पीनेवालेके भीतर ऐसा नशा चढ़ जाता है कि वह उसी रसमें बेहोश होजाता है वैसे ही सच्चा ज्ञानानन्द वहीं है जो निज आत्मीक अमृतमें तन्मय होजावे, संसारके रससे बिलकुल छूटकर स्वात्मीक रसमें मगन होजावे (तं अमिय

क्षयसे शुद्ध होजाता है। वहां अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख प्रगट होजाता है। वहां आत्माका प्रत्यक्ष दर्शन होजाता है। अर्हंत पदमें अपूर्व ज्ञानानन्द है, स्पष्ट है, विशद है, प्रत्यक्ष है। उसके पहले श्रुतज्ञानके द्वारा आत्मानन्द था, अब केवलज्ञानके द्वारा होरहा है। अर्हंतका आत्मा पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशित होता है। परम शांतिमें व आनन्दमें तन्मय है। जो कोई अरहन्तका दर्शन करता है वह स्वयं शांत व आनन्दमय होजाता है। अरहन्तका आत्मा अपने शुद्ध आनन्दमें ऐसा मस्त है मानो मादक पदार्थ सेवनसे कोई उन्मत्त होगया हो। वह स्वरूपमें ही आसक्त हैं, परम वीतराग हैं, वे ही शेष कर्मोंको क्षय करके अयोग गुणस्थानको तप करके सिद्ध गतिको पहुँच जाते हैं। वहां भी निजानन्दमें सदा काल लीन रहते हैं। जैनधर्म आनन्दमई अमृतरसका पान है। जो वर्तमानमें भी सुख देता है व भावी कालमें भी अनन्तसुख देता है।

श्री तारणस्वामी कहते हैं कि जबतक इस ज्ञानानन्दका लाभ नहीं होता है तबतक यह जीव विषयानन्दमें मगन होता हुआ कर्मको बांध चारों गतियोंमें घोर आकुलता व कष्ट भोगता है। सम्यग्दर्शनके प्रकाशसे जब इसके ज्ञानानन्दका लाभ होजाता है तब सर्व आकुलता मिट जाती है, विषयसुखकी श्रद्धा चली जाती है। इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, पीड़ा चिन्तवन व निदानभावका आर्तध्यान नहीं रहता है, सदानन्दमय जीवन होजाता है। श्री तारणस्वामी कहते हैं कि सर्वसे स्नेह त्यागो, मात्र एक ज्ञानानन्दसे प्रेम करो, इसीके रसमें आसक्त होजाओ, तब सर्व दुःखोंका अन्त होजायगा। यह आनन्द आत्माका स्वभाव है। इसके सर्व प्रदेशोंमें आनन्दगुण भरा है उसीतरह जैसे मिश्रीमें सर्वांग मिष्टता है, नीममें सर्वांग कटुकता है, लवणमें सर्वांग खारापन है, सिद्धात्माके भीतर यह आनन्दसागर सदा बहा करता है। आत्मानन्दकी प्रशंसामें श्री नागसेन मुनि तत्वानुशासनमें कहते हैं—

आत्मायत्तं निराबाधमतीन्द्रियमनश्वरं। घातिकर्मक्षयोद्भूतं यत्तन्मोक्षसुखं विदुः ॥ २४२ ॥

यत्तु सांसारिकं सौख्यं रागात्मकमशाश्वतं। स्वपरद्रव्यसंभूतं तृष्णासंतापकारणं ॥ २४३ ॥

यदत्र चक्रिणां सौख्यं यच्च स्वर्गे दिवौकसां। कलयापि न तत्तुल्यं सुखस्य परमात्मनां ॥ २४६ ॥

भावार्थ—मोक्षका सुख आत्माधीन है, स्वाधीन है, बाधा रहित है, अतीन्द्रिय है, अविनाशी है, चार घातीय कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होता है। संसारका विषयजनित सुख रागरूप है, अनित्य है, आप

(त न्यान अन्मोय अनन्त) वह ज्ञानानन्द अनन्त है–उसका अन्त नहीं होता है, वह आत्माका स्वभाव है कितना भी उसका उपभोग किया जावे वह सदा बना रहता है (तं अमिय रमन रस जुत्तं) उसमें आनन्दामृतमें रमणताका स्वाद आता रहता है (त अमिय स्व आनंदं) वही अमृतानन्द रूप है (त अमिय विओय विनन्द) वह ऐसा अमृत है जिसके पानसे सर्व निरानन्दका वियोग होजाता है, सर्व आकुलता दूर होजाती है ॥ ८ ॥

(ज जिन अन्मोय पिओय) यह जो वीतरागतामें आनन्द है वही प्रेमके योग्य है (त मय षिपनिक संजोय) इस प्रेमके होते हुए सर्व भयका सयोग दूर होजाता है (भय पिपिय पयोहर नन्द) तब निर्भय आनन्दरूपी मेघोंका या आनन्दरूपी समुद्रका लाभ होजाता है (भय विपिय विओय विनन्दं) उस सुख–समुद्रमें अवगाहन करनेसे सर्व सांसारिक भय मिट जाता है व सर्व निरानन्द छुट जाता है। अन्तर रहित निरन्तर आनन्दका स्वाद आता है जहां रंचमात्र भी आकुलता नहीं होती है ॥ ९ ॥

(ज न्यान अन्मोय सहावं) जो ज्ञानानन्दका स्वभाव है (तं अमिय रमन रस भाव) वह अमृतमें रमणता होनेसे अपूर्व स्वादका प्राप्त होना है। अर्थात् आत्मानन्दमें रमण करनेसे अनुपम स्वाद आता है (तं अमिय सरूव आनदं) वहीं अमृतानन्द स्वरूपका झलकाव है (त अमिय विओय विनद) उस अमृतके लाभसे सर्व आकुलता मिट जाती है ॥ १० ॥

(अन्मोय न्यान विन्यानं) ज्ञानानन्दमें मगन होना है (भय पिपिय संजोय सवन) वह निर्भय होकर परम शान्त आत्मारूपी चन्द्रमासे मिलता है। यहां आत्माकी उपमा चन्द्रमासे दी है। जैसे चन्द्रमाके दर्शनसे शांतिका लाभ होता है वैसे आत्मानन्दमें मगन होनेसे परम शांतिका लाभ होता है (भय पिपिय सरूव सनन्द) तब निभय स्वरूपमें आनन्द मगनता रहती है (भय पिपिय विओय विनन्द) जिससे सर्व भय दूर होजाता है और सर्व आकुलता मिट जाती है ॥ ११ ॥

(अन्मोय न्यान स सरूव) ज्ञानानन्दका यह स्वरूप है (ज अमिय रस रमन सुरय) जो अमृतके रसमें ऐसा मगन होजावे कि मदिरा पीनेके समान उसी रसमें उन्मत्त होजावे। जैसे मदिरा पीनेवालेके भीतर ऐसा नशा चढ़ जाता है कि वह उसी रसमें वेहोश होजाता है वैसे ही सच्चा ज्ञानानन्द वहीं है जो निज आत्मीक अमृतमें तन्मय होजावे, संसारके रससे विलकुल छूटकर स्वात्मीक रसमें मगन होजावे (तं अमिय

सरूव आनद) वही अमृत स्वरूप आनन्द है (त अमिय अरूव विनद) वह ऐसा अमृत है जहां निरानन्दका भाव जरासा भी नहीं है। अर्थात् वह आनन्द सर्व दुःखोंसे मुक्त है ॥ १२ ॥

ज न्यान भक्ति अन्मोय) जहां शुद्ध ज्ञानकी भक्तिमें आनन्दित हुआ जाता है (भय पिपिय भक्ति सजोय) वहां सर्व भय दूर होजाते हैं, निर्भय भक्ति प्राप्त होजाती है (भय पिपिय भक्ति आनन्दं) जहां भय रहित आत्म-भक्तिमें आनन्दका लाभ होता है (भय पिपिय विमोय विनन्द) वहां सर्व भय क्षय होजाते हैं और सर्व दुःख मिट जाते हैं ॥ १३ ॥

(ज न्यान दिस्टि अन्मोयं) जो ज्ञानके दर्शनमें आनन्द लाभ करना है। अर्थात् ज्ञान स्वरूपमें तन्मय हो, आनन्दमें मगन होना है (तं अमिय रमन सजोय) वहां ही आनन्दामृतमें रमणता है (ज अमिय दिस्टि आनंद) जो इस अमृतके स्वादका आनन्द है (त अमिय अदिस्टि विनन्द) वही सच्चा अमृत है जहां निरानन्दका दर्शन नहीं होता है-सदा आनन्द ही आनन्द है ॥ १४ ॥

(ज न्यान दिस्टि अन्मोय) जो ज्ञान स्वभावके अनुभवमें आनन्द है (भय षिपिनक इस्टि सनोय) वह सर्व भयोंको मेटनेवाला है व अपने इस्ट प्रयोजनको सिद्ध करनेवाला है। आत्माको परमात्मा कर देनेवाला है (अमिइ रस इस्टि आनद) उस परम इष्ट आनन्द अमृतके रसमें जो मगनता है (त इस्टि विओय विनद) वह इष्ट मगनता सर्व निरानन्दको मिटा देनेवाली है ॥ १५ ॥

(ज तारन तरन सहाव) जो आत्माका-श्री अर्हंत परमात्माका तारन तरन स्वभाव है (त दिस्टि इस्टि समभाव) वह अपने इष्ट तत्वका दर्शन है व समभावका लाभ है (भय पिपिय अमिय रस नन्द) तथा निर्भय होकर अमृत-रसका आनन्द लेना है (त इस्टि विओय विनद) उस इष्ट भावके लाभसे सर्व दुःखका नाश होजाता है ॥ १६ ॥

(ज उस्टि सृष्टि सहकार) जब प्रातःकालके उदयके समान केवलज्ञान सूर्यका प्रकाश होता है तब उसके होते ही (अवयास अन्मोय अपार) अनन्त अपार आनन्दमें प्रवेश होजाता है (भय पिपिय अमिय रस नद) तब निर्भय अमृतरसका आनन्द होता है (त दिस्टि विओय विनद) उस आत्म-दर्शनके होनेसे सर्व आकुलता मिट जाती है ॥ १७ ॥

(अन्मोय न्यान सुइ समय) ज्ञानका आनन्द है सो ही आत्माका स्वभाव है। अर्थात् आत्मा स्वयं ही

ज्ञानानन्दमय है (त षिपनिक इष्ट सजोय) वहीं निर्भय इष्ट पदका लाभ है (भय षिपिय अमिय रस नद) निर्भय होकर अमृतरसका आनन्द लेता है (त रमन विओय विनद) वहां आत्म रमणता सर्व दुःखोंको शान्त कर देती है ॥ १८ ॥

(ज षिपक दिस्टि सजोय) जब क्षायिक दर्शनका लाभ होता है अर्थात् घातीय कर्मोंके क्षयसे जब प्रत्यक्ष आत्माका दर्शन होता है (त मुक्ति इस्टि परलोय) तब परम हितकारी मुक्तिका उत्तम दर्शन होजाता है (भय षिपनिक सहज सहाव) वहां सर्व भय रहित सहज आत्माका स्वभाव झलक जाता है (त अमिय रमन रसभाव) वहीं आत्मानन्दरूपी अमृतके रसमें रमणता होती है ॥ १९ ॥

(जं इह सजोय समिलिये) जब ऐसा अपूर्व संयोग मिल जाता है (त मुक्त रमन सवलिये) तब मोक्षमें आनन्द सहित पहुंच जाता है (सहु अंग अमियरस रमनं) आत्माके सर्व प्रदेश आनन्दामृतके रसमें भीजे रहते हैं (भय षिपिय मुक्ति समिलन) और यह आत्मानुभवी अरहन्त परमात्मा उस निर्भय मुक्ति स्त्रीसे जाकर मिल जाता है ॥ २० ॥

(ज न्यान अन्मोय सु ममल) जब परम शुद्ध ज्ञानानन्द प्रगट होता है (ज समल सुभाव सुविलय) तब सर्व अशुद्ध कर्मजनित विभावोंका नाश होजाता है (भय षिपनिक रूव सहाव) और अभय आत्माका स्वभाव प्रगट होजाता है (सहु अग अमिय रसभाव) आत्माके सर्व प्रदेश अमृतरससे पूर्ण होते हैं ॥ २१ ॥

(तं ईय विनोय आनद) जो यह स्वभावके आनन्दमें विनोद प्राप्त करना है (ज तारन तरन स नन्द) जो इस तारणतरण आत्मामें मगन होना है (त जान सहाव स उत्त) उसहीको आत्माका ज्ञानमय स्वभाव कहा गया है (सिहु सयय सिद्ध सपत्त) वह ज्ञानस्वभावी आत्मा स्वयं सिद्धिको प्राप्त कर लेता है ॥ २२ ॥

(दिपि दिपिओ नन्तानन्त) उस ज्ञानस्वभावी आत्मामें अनन्त ज्योतिका प्रकाश है (लकृत विन्यान स उत्त) वह आत्मा शुद्ध ज्ञानसे शोभायमान कहा गया है (सहकार नत सजुत्तं) वह आत्मा अनन्तवीर्य सहित है (त समय सिद्धि सपत्त) वह आत्मा सिद्धिको प्राप्त कर लेता है ॥ २३ ॥

(ज तारन तरन सु ममलं) जो यह आत्मा शुद्धस्वभावी तारणतरण है (भय षिपिय अमिय रस ममलं) वह सर्व भय रहित है, उसमें शुद्ध आनन्दामृतका रस भरा है (तं धर्म सहाव सजुत्त) वही शुद्ध आत्मा धर्मके

स्वभावको रखनेवाला है। अर्थात् शुद्ध आत्मामें ही धर्मका सच्चा स्वभाव प्रगट है (त समय सिद्धि सपत्तं) वही आत्मा सिद्धिको पाता है ॥ २४ ॥

(सुइ तारनतरन सुहाव) सो ही आत्मा तारणतरण स्वरूपका धारी है (हिययार सहाव सुभावं) वही हितकारी स्वभावका धारी है (त न्यान अन्मोय सुभाव) वही ज्ञानानन्द स्वभावका धारी है (त समय सिद्धि सपातं) वही आत्मा सिद्धिको पाता है ॥ २५ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें आत्मानन्दकी स्तुति कीगई है। वास्तवमें जैन सिद्धांतका यही सार है कि जहां आत्मानन्दका या ज्ञानानन्दका अनुभव है वहीं धर्म है। वही आनन्दका अनुभव शुद्धोपयोग रूप है–वीतराग स्वरूप है। उसीमें रत्नत्रयकी एकता है–वही शुद्धात्माका श्रद्धान, ज्ञान व चारित्र है। इसीको ध्यानकी अग्नि कहते हैं जिससे कर्मोंका क्षय होता है। इसीको अमृतरसका पान कहते हैं जो अपूर्व अनुपम स्वादको देनेवाला है। यहीं धर्मध्यान व शुक्लध्यान होता है जब आत्माकी परिणति पूर्ण वैराग्यमय होती है। जब आत्माकी श्रद्धामें सर्व पर परिणति, पर भासती है। इंद्र, अहमिन्द्र, चक्रवर्ती आदिके पद परपद भासते हैं। राग द्वेष मोह कर्मकृत विकार त्यागने योग्य प्रगट होते हैं। जब आत्मा अपनी सम्पत्ति अपने ही शुद्ध ज्ञान दर्शन सुख वीर्यादि गुणोंको समझता है। जब वह संसार, शरीर व भोगोंसे पूर्ण विरक्त होजाता है–विषयानन्द विष है ऐसी श्रद्धा होजाती है, तब वह सम्यग्दृष्टी आत्मा अपने मन वचन कायको निरोधकर प्रथम व्यवहार ध्यान करता है। मंत्रपदोंके द्वारा आत्माका मनन करता है। व्यवहार ध्यान करते २ जब चित्त थम्भ जाता है और अपना उपयोग एक ही आत्मामें ऐसा धुल जाता है जैसा लवण पानीमें धुल जावे। तब स्वसमयरूप एकाग्रता होती है तब ही ज्ञानानन्दका स्वाद आता है, तब ही रत्नत्रय धर्मका झलकाव होता है, तब ही कर्मोंका संवर होता है व पूर्वबद्ध कर्मकी निर्जरा होती है। इसी आत्मानन्दकी ही वृद्धिको ध्यानकी वृद्धि कहते हैं व गुणस्थानकी वृद्धि कहते हैं। आत्मानन्द ही सीधी सड़क है, जो चौथे अविरत सम्यग्दर्शन गुणस्थानसे चलकर देशविरत, प्रमत्त विरत, अप्रमत्त विरत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्म सांपराय, क्षीण मोह गुणस्थानोंको तय करके संयोग केवली जिन गुणस्थान तक चली जाती है। ज्यों २ गुणस्थानकी वृद्धि होती है, कषाय मिटती है, आत्मानन्दका अधिक लाभ होता है। श्री अर्हंत परमात्मा सयोग केवली जिनका आत्मा चार घातीय कर्मोंके

क्षयसे शुद्ध होजाता है। वहां अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख प्रगट होजाता है। वहां आत्माका प्रत्यक्ष दर्शन होजाता है। अर्हंत पदमें अपूर्व ज्ञानानन्द है, स्पष्ट है, विशद है, प्रत्यक्ष है। उसके पहले श्रुतज्ञानके द्वारा आत्मानन्द था, अब केवलज्ञानके द्वारा होरहा है। अर्हंतका आत्मा पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशित होता है। परम शांतिमें व आनन्दमें तन्मय है। जो कोई अरहन्तका दर्शन करता है वह स्वयं शांत व आनन्दमय होजाता है। अरहन्तका आत्मा अपने शुद्ध आनन्दमें ऐसा मस्त है मानो मादक पदार्थ सेवनसे कोई उन्मत्त होगया हो। वह स्वरूपमें ही आसक्त हैं, परम वीतराग हैं, वे ही शेष कर्मोंको क्षय करके अयोग गुणस्थानको तप करके सिद्ध गतिको पहुँच जाते हैं। वहां भी निजानन्दमें सदा काल लीन रहते हैं। जैनधर्म आनन्दमई अमृतरसका पान है। जो वर्तमानमें भी सुख देता है व भावी कालमें भी अनन्तसुख देता है।

श्री तारणस्वामी कहते हैं कि जबतक इस ज्ञानानन्दका लाभ नहीं होता है तबतक यह जीव विषयानन्दमें मगन होता हुआ कर्मको बांध चारों गतियोमें घोर आकुलता व कष्ट भोगता है। सम्यग्दर्शनके प्रकाशसे जब इसके ज्ञानानन्दका लाभ होजाता है तब सर्व आकुलता मिट जाती है, विषयसुखकी श्रद्धा चली जाती है। इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, पीड़ा चिन्तवन व निदानभावका आर्तध्यान नहीं रहता है, सदानन्दमय जीवन होजाता है। श्री तारणस्वामी कहते हैं कि सर्वसे स्नेह त्यागो, मात्र एक ज्ञानानन्दसे प्रेम करो, इसीके रसमें आसक्त होजाओ, तब सर्व दुःखोका अन्त होजायगा। यह आनन्द आत्माका स्वभाव है। इसके सर्व प्रदेशोंमें आनन्दगुण भरा है उसीतरह जैसे मिश्रीमें सर्वांग मिष्टता है, नीममें सर्वांग कटुकता है, लवणमें सर्वांग खारापन है, सिद्धात्माके भीतर यह आनन्दसागर सदा वहा करता है। आत्मानन्दकी प्रशंसामें श्री नागसेन मुनि तत्वानुशासनमें कहते हैं—

आत्मायत्तं निराबाधमतीन्द्रियमनश्वरं। घातिकर्मक्षयोद्भूतं यत्तन्मोक्षसुखं विदुः ॥ २४२ ॥

यत्तु सांसारिकं सौख्यं रागात्मकमशाश्वतं। स्वपरद्रव्यसम्भूतं तृष्णासंतापकारणं ॥ २४३ ॥

यदत्र चक्रिणां सौख्यं यच्च स्वर्गे दिवौकसां। कलयापि न तत्तुल्यं सुखस्य परमात्मनां ॥ २४६ ॥

भावार्थ—मोक्षका सुख आत्माधीन है, स्वाधीन है, बाधा रहित है, अतीन्द्रिय है, अविनाशी है, चार घातीय कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होता है। संसारका विषयजनित सुख रागरूप है, अनित्य है, आप

और पर वस्तुके संयोगसे होता है, तृष्णा व सन्तोषको बढ़ानेवाला है। जो सुख चक्रवर्तीको है व जो सुख स्वर्गमें देवोंको है वह सुख परमात्माके सुखका अंश मात्र भी नहीं है।

अमृतचन्द्राचार्य तत्त्वार्थसारमें कहते हैं—

संसारविषयातीतं सिद्धानामव्ययं सुखं। अव्याबाधमिति प्रोक्तं परमं परमर्षिभिः ॥ ४५–८ ॥

भावार्थ—सिद्धोंको संसारके विषयोंसे अतीत बाधा रहित अविनाशी उत्कृष्ट सहज सुख होता है, ऐसा परम ऋषियोंने कहा है। श्री अमृतचन्द्राचार्य समयसार कलशमें कहते हैं—

यः पूर्वभावकृतकर्मविषद्रुमाणां। भुंक्ते फलानि न खलु स्वत एव तृप्तः।

आपातकालरमणीयमुदर्करम्यं, निःकर्मशर्ममयमेति दशांतरं सः ॥ ॥ ३९–१० ॥

भावार्थ—जो कोई महात्मा पूर्वमें बांधे हुए कर्मरूपी विष–वृक्षोंके फलोंको भोगनेमें रंजायमान नहीं होता है, किन्तु आपमें ही तृप्त रहता है वह कर्म रहित सहज सुखकी ऐसी दशामें पहुँच जाता है जिससे इस जन्ममें भी सुखी रहता है व आगामी भी सुखी रहेगा।

श्री पद्मनन्दि मुनि धर्मोपदेशामृतमें कहते हैं—

ज्ञानज्योतिरुदेति मोहतमसो भेदः समुत्पद्यते, सानंदा कृतकृत्यता च सहसा स्वान्ते समुन्मीलति।

यस्यैकस्मृतिमात्रतोऽपि भगवानत्रैव देहान्तरे, देवः तिष्ठति मृग्यतां स रभसादन्यत्र किं धावति ॥ १४६ ॥

भावार्थ—जब मोहका अन्धकार दूर होजाता है तब ज्ञान–ज्योतिका प्रकाश होता है। उसी समय अन्तरंगमें सहज सुखका अनुभव होता है तथा कृतकृत्यपना झलकता है, जिसके स्मरण मात्रसे ही ऐसी ज्ञान–ज्योति प्रगट होती है। उस भगवान आत्मा देवको तू शीघ्र ही इस देहके भीतर खोज–बाहर और कहां दौड़ता है? श्री शुभचन्द्राचार्य ज्ञानार्णवमें कहते हैं—

नित्यानन्दमयं शुद्धं चित्स्वरूपं सनातनम्। पश्यत्यात्मनि परं ज्योतिरद्वितीयमनव्ययम् ॥ ३५–१८ ॥

भावार्थ—मैं नित्य सहजानन्दमय हूँ, शुद्ध हूँ, चैतन्य स्वरूप हूँ, सनातन हूँ, परम ज्योति स्वरूप हूँ, अनुपम हूँ, अविनाशी हूँ। इसतरह अनुभव करनेसे ज्ञानानन्दका लाभ होता है।

(२९) नन्द मऊ फूलना गाथा ५६९ से ५८२ तक ।

जिन जिनपति जिनय जिनेन्द पऊ, जिन सहजनन्द स सहाउ ।
जिन परमनन्द तं परम जिन, जिन केवल ममल सहाउ ॥ १ ॥
जिन नन्द मऊ आनन्द मऊ, जिन जिनपति कम्म सहाउ ।
जिन उत्त जिनय जिन कमल जिनय जिन, जिन सहजनंद स सहाउ ॥ २ ॥

जिन अमिय रमन तं मुक्ति पऊ (आचरी)

जिन लष्य मऊ अलष्य मऊ, जिन सिद्ध सरूव सहाउ ।
जिन उत्त मऊ वैदिप्ति मऊ, जिन न्यान विन्यान सुभाउ ॥ ३ ॥ जिन० ॥
जिनु अपय रमनु जिन सिद्धि गमनु, जिन भय षिपनिकु स सहाउ ।
जिन न्यानमई विन्यानमई, जिन सिद्धि मुक्ति सभाउ ॥ ४ ॥ जिन० ॥
जिन षिपक मऊ जिन ममल पऊ, जिनरञ्ज सिद्धि स सहाउ ।
जिन अमिय रसं वैदिप्ति सुयं, जिन कमल ममल सुभाउ ॥ ५ ॥ जिन० ॥
जिन राग गलं जिन दोस विलं, जिनु दिप्ति दर्स संजुत्तु ।
जिन कम्म गलं आवर्न विलं, जिनरंज अमिय सम उत्तु ॥ ६ ॥ जिन० ॥
जिन गारगलं जिन मोह विलं, वै दर्स अमिय संजुत्तु ।
जिन घाय गलं जिनरंज समं, भय षिपिय मुक्ति सम्पत्तु ॥ ७ ॥ जिन० ॥
जिन अर्थ सुयं जिनु कांतिमयं, वे दिप्ति कमल कलयन्तु ।
जिन अमिय रसं जिन रञ्जमयं, जिन कम्म कलङ्क विमुक्कु ॥ ८ ॥ जिन० ॥

जिन समय मयं जिन पर्म पयं, जिन लोयालोय दसंतु ।
जिन इस्ट मयं इछन्तु सुयं, वै दर्स रञ्ज जिन उत्तु ॥ ९ ॥ जिन० ॥
जिन यक्ष्य सुयं जिन न्यानमयं, भय षिपनिक भव्व स उत्तु ।
जिन कण्ठ अमिय वै दर्स समिय, जिनरंज मुक्ति सम्पत्तु ॥१०॥ जिन० ॥
जिन चेयमई जिनवेय मई, वेदिसि हियार संजुत्तु ।
जिनहियं ममल जिनरंज रमनु, जिन अर्क अमिय रस उत्तु ॥११॥ जिन० ॥
जिन भय षिपियं जिन अमिय पियं, जिनरंज ममल संजुत्तु ।
जिन धम्म धुरं जिन न्यान सुरं, वै दर्स सिद्धि सम्पत्तु ॥१२॥ जिन० ॥
जिन दिस्टि दर्सु वैदिसि सुरसु, भय षिपिय ममल दसंतु ।
जिनरंज रमन जनरंज गलनु, जिन अमिय सिद्धि सम्पत्तु ॥१३॥ जिन० ॥
जिन सिद्धि सुरं जिन ममल पुरं, जिनरंज अमिय संजुत्तु ।
जिन भय षिपनिकु सुइ तारन तरनमय, वै दर्स सिद्धि सम्पत्तु ॥१४॥ जिन० ॥

अन्वय सहित अर्थ—(जिन जिनयति जिनय जिनेन्द पऊ) श्री जिनेन्द्र कर्मोंको जीतनेवाले हैं, रागादिके विजेता हैं, परमात्मापदमें प्रकाशमान हैं, (जिन सहजनन्द स सहाउ) वे जिनेन्द्र सहजानन्दमई अपने स्वभावमें विराजमान हैं (जिन परमनन्द त परम जिन) वे ही जिनेन्द्र परमानन्दमई हैं, वे ही श्रेष्ठ जिन हैं (जिन केवल ममल सहाउ) वे ही जिन केवली हैं, वे शुद्ध स्वभावके धारी हैं ॥ १ ॥

(जिन नन्द मऊ आनन्द मऊ) वेही जिनेन्द्र स्वरूपमें मगन हैं–आनन्दमई हैं (जिन जिनपति कम्म सहाउ) श्री जिनेन्द्रने कर्मोंके स्वभावको जीत लिया है, वे परम वीतराग हैं (जिन उत्त जिनय जिन कमल जिनय जिन) वे ही वीर जिन हैं, वे ही प्रफुल्लित कमलके समान जिनेन्द्र हैं, ऐसा जिनेन्द्रने कहा है (जिन सहज नन्द स सहाउ) वे ही जिनेन्द्र सहजानन्दमई अपने स्वभावमें हैं ॥ २ ॥

ममलपाहुड ॥२४७॥

रागभावके आनन्दमें रमन करते हैं परन्तु जगतके लोगोंके साथ आनन्द मनानेका भाव वहां नहीं है अर्थात् सांसारिक सुखका प्रपञ्च वहां नहीं रहा है, केवल आत्मिक सुख है (जिन अमिय सिद्धि सन्तु) वे ही जिनेन्द्र अमृत स्वरूप सिद्धिको पालेते हैं ॥ १३ ॥

(जिन सिद्धि सुरं जिन ममल पुर) वे जिनेन्द्र सिद्धिको प्राप्त पूर्ण सूर्य हैं। वे ही जिनेन्द्र शुद्ध भावोंके नगर हैं। वहां पूर्ण शुद्ध स्वभाव है (जिन रज अमिय सजुत्तु) वे जिनेन्द्र आनन्दामृतसे पूर्ण हैं (जिन भय षिपनिक सुइ तारन तरन मय) वे ही निर्भय हैं, वे ही स्वयं तारन तरन स्वरूप हैं (वे दर्स मि द्ध स त्तु) वे आत्मदर्शी सिद्धिको प्राप्त करते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस फूलनामें श्री तारणस्वामीने श्री अरहंत परमेष्टीकी गुणावलीका वारवार मनन किया है। बतलाया है कि वे ज्ञानावरणादि चार घातीय कर्मोंसे रहित, अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्र व अनंत वीर्यके धारी हैं। उनके भीतर रागद्वेष, मोह, मान, माया, अहंकार, कामादि विकार कोई नहीं है। वे इंद्रियजनित सुखसे बाहर हैं। वे निरंतर अतीन्द्रिय स्वाभाविक आनंदको लेते हुए स्वात्मानंदमई अमृतका ही पान करते हैं। वे अपने स्वभावमें तन्मय हैं। विभावोंका वहां पता नहीं है। वहां ही सहजानंद है। वह स्वानुभव कर रहे हैं। उनके आत्मप्रदेशोंमें हर समय पूर्णानन्द प्रकाशमान है। उनकी उपमा सूर्यसे दी जाय तो भी नहीं बनती है। वे सूर्य समान सर्व लोकालोकको प्रकाश करते हुए भी कभी अस्त नहीं होते हैं। वे परम वीतराग हैं, वे ही भव्य जीवोंके लिये आदर्श हैं। जो भव्यजीव उनकी पूजा भक्ति करते हैं, उनका ध्यान करते हैं, उनका आत्मा भी पवित्र होजाता है। वे आनन्दरूपी अमृतके समुद्र हैं। वे निरन्तर उसी आनन्दमें मगन रहते हैं। शरीराश्रित महिमाको भव्यजीव देखकरके उनकी शांत मुद्रा, पद्मासन ध्यानमय आकारको देखकरके, समवसरणादि विभूतिको देखकरके उनके भीतरी गुणोंका अनुमान करते हैं। साक्षात् उन अरहन्त भगवानके गुणोंका अनुभव उसीको होगा जो मन, वचन, कायके विकल्पोंको छोड़कर स्वयं निज आत्माका अनुभव करेगा। जो अपनेको जानता है वही परमात्माको जानता है। आनन्दमई श्री जिनेन्द्रके गुणोंमें मग्न होना आनन्दका कारण है। आप्तस्वरूप ग्रन्थमें अरहन्तकी स्तुति भलेप्रकार की गई है। कहा है—

रागद्वेषादयो येन जिता कर्ममहाभटा । कालचक्रविनिर्मुक्त स जिन परिकीर्तित ॥ २१ ॥

स स्वयम्भु स्वयं भूत सज्ज्ञान यस्य केवलं । विश्वस्य ग्राहक नित्य युगपद्दर्शन तथा । २२ ॥
येनाप्त परमैश्वर्यं परानन्दसुखास्पदम् । बोधरूप कृतार्थोऽसावीश्वर पटुभि स्मृत ॥ २३ ॥
शिव परमकल्याणं निर्वाण शान्तमक्षय । प्राप्त मुक्तिपदं येन स शिव. परिकीर्तित ॥ २४ ॥

भावार्थ—श्री अरहन्त भगवानने रागद्वेषादिको व कर्म महान योद्धाओंको जीता है और कालको भी नाश कर दिया है इसलिये उनको जिन कहते हैं अर्थात् वे अब जन्ममरण न करेंगे । उन्होंने अपनेसे ही सर्व पदार्थोंको एक साथ देखने जाननेवाले केवलदर्शन व केवलज्ञानको पाया है इसलिये वे स्वयम्भू हैं उन्होंने ज्ञानमई परमानन्द सुखामृतरूपी ऐश्वर्यको प्राप्तकर परम कृतकृत्यपना प्राप्त किया है इसीलिये बुद्धिमान लोग उनको ईश्वर कहते हैं । उन्होंने परम कल्याणरूप परम शांत अविनाशी मुक्तिपदको पाया है इसलिये उनहीको शिव कहते हैं ।

---

(३०) इच्छलषु फूलना गाथा ५८३ से ६०० तक ।

जिन दिस्टि इस्टि तं परम पऊ, जिन लषियो सिद्ध सहाउ ।
जिन नन्त लषु अनन्त लषु, जिन नन्त नन्त लषि भाउ ॥ १ ॥
जिन इच्छ लषु इच्छाइ लषु, इच्छन्तो लषु सुभाउ ।
जिन पिच्छ लषु पिच्छाइ लषु, जिन लषिओ न्यान सहाउ ॥ २ ॥
विन्यान समय लषि सिद्धि पऊ (आचरी)
जिन अषय लषु जिन सुरय लषु, जिन विंजन लषिय सुभाउ ।
जिन लषु पयं पद अर्थ सुयं, जिन लष्य कम्म विलयन्तु ॥ ३ ॥ जिन० ॥
जिन अर्थ लषु ति अर्थ लषु, लषन्तो न्यान विन्यान ।
सम अर्थ लषु परमार्थ लषु, जिन लष्यमई विन्यान ॥ ४ ॥ जिन० ॥

जिन परिनै लषु परिमान लषु, जिन लषिय सहाउ संजुत्तु ।
सहकार लपु जिन उत्त लषु, जिन लषिय कम्म गलयन्तु ॥ ५ ॥ जिन० ॥
जिन लष्य धुवं जिन स सरूवं, जिन लष्य अलष अन्मोय ।
अन्मोय लषु तं षिपक लषु, षिपि षिपिय कम्म सुयमेउ ॥ ६ ॥ जिन० ॥
जिन षिपक लपु तं मुक्ति सुषु, जिन अलष लषिय जिन उत्तु ।
जिन कमल लषु जिन रमन लषु, जिन लषियालंकृत उत्तु ॥ ७ ॥ जिन० ॥
जिन लष्य सुद्धु तं नन्त बुद्धु, जिन लषिय विन्यान सहाउ ।
जिन सहज लषु जिन नन्द लषु, जिन लष्य उवन दसंतु ॥ ८ ॥ जिन० ॥
जिन न्यान लषु जिन नन्त लषु, जिन नानाप्रकार सलषु ।
जिन अन्मोय लषु जिन षिपक लषु, जिन लषिय मुक्ति संजुत्तु ॥९॥ जिन० ॥
जिन राग लषु जिन रंज लषु, जिन सल्य राग विलयन्तु ।
कल रंज लषु जिन दोस लषु, जिन लषिय दोस विलयन्तु ॥१०॥ जिन० ॥
जिन गार लषु मन रंज लषु, जिन लषिय कम्म विलयन्तु ।
जिन मोह लषु जिन अंध लषु, जिन लषिय मोह विलयन्तु ॥११॥ जिन० ॥
जिन आवर्न लषु चौ उवन लषु, जिन लषिय घाय विलयन्तु ।
जिन मिच्छ लषु सम मिच्छ लषु, जिन लषिय मिच्छ गलयन्तु ॥१२॥ जिन० ॥
जिन लोह लषु कोहाग्गि लषु, जिन लषियो मान सहाउ ।
जिन माय लषु परजाय लषु, जिन लषि पर्जाव गलन्तु ॥१३॥ जिन० ॥

जिन कम्म लषु अन्यान लषु, जिन लषि अन्यान गलन्तु ।
जिन परुवि लषु पर्जाव लषु, जिन लर्षि पर्जाव विलन्तु ॥१४॥ जिन० ॥
जिन ओत लषु ओताइ लषु, जिन चेय सचेय अलषु ।
जिन लषिय ममल जिन ओत सुयं, जिन प्रिये लषु पिय उत्तु ॥१५॥ जिन० ॥
जिन नन्द लषु आनन्द लषु, जिन लषिय सहज आनंद ।
जिन लष्य तत्तु जिन परम तत्तु, जिन परम तत्तु दर्सतु ॥१६॥ जिन० ॥
जिन लष्य अमिय रस सुइ मिलियं, भय षिपनक लषिय सुभाउ ।
जिन लषिय ममल रे धम्म मूल सुइ, जिन रंज लषिय जिन उत्तु ॥१७॥ जिन० ॥
वै दर्स लषिय जिन न्यान समय, वै दर्सतु जिनुत्तु ।
जिन लषिय अमिय रस अन्मोय न्यान जस, भय षिपिय संपत्तु ॥१८॥ जिन० ॥

अन्वय सहित अर्थ—(जिन दिस्टि इस्टि तं परम पऊ) श्री जिनेन्द्र भगवानने आत्माका जो इष्ट है ऐसे शुद्ध स्वभावरूप परम पदको देख लिया है (जिन लषियो सिद्ध सहाउ) श्री जिनेन्द्रने सिद्धोंके स्वभावको पहचान लिया है, साक्षात् प्रत्यक्ष देख लिया है। आत्मा अमूर्तीक पदार्थ है। उसका प्रत्यक्ष दर्शन केवलज्ञानी ही कर सक्ते हैं—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय ज्ञानी नहीं कर सक्ते (जिन नन्त लषु अनत लषु) श्री जिनेन्द्रने अपने केवलज्ञान द्वारा सात पर्यायोंको तथा द्रव्योंके अनन्त गुणोंको देख लिया है (जिन नन्तानन्त लषि भाव) श्री जिनेन्द्रने अनन्तानन्त प्रकारके भावोंको या पर्यायोंको जान लिया है ॥ १ ॥

(जिन इच्छ लषु इच्छाय लषु इच्छतो लषु सुभाउ) श्री जिनेन्द्रने इच्छाके स्वभावको, जिसकी इच्छा की जावे उस वस्तुको तथा इच्छा करनेवाले रागी आत्माके स्वभावको जान लिया है (जिन पिच्छ लषु पिच्छाइ लषु जिन लषियो न्यान सहाउ) श्री जिनेन्द्रने ज्ञान दर्शनके स्वभावको जाननेयोग्य, देखनेयोग्य वस्तुओंके स्वभावको तथा जानने देखनेवाले आत्माके स्वभावको जान लिया है ॥ २ ॥

(विन्यान समय लषि मिद्ध पउ) श्री जिनेन्द्र सम्यग्ज्ञानमई आत्माको देखते हुए सिद्धपदको प्राप्त कर लेते हैं (जिन अषय लपु जिन सुरय लपु जिन विंजन लषिय सुभाउ) श्री जिनेन्द्र अक्षरोंको, स्वरोंके और व्यंजनोंके स्वभावको जानते हैं जिनसे द्वादशांग वाणीकी रचना होती है। अर्थात् जिनवाणीके द्वारा जो कुछ जाना जाता है वह सब केवलज्ञानीके ज्ञानमें झलक रहा है (जिन लपु पय पद अर्थ सुयं) श्री जिनेन्द्रने स्वर व्यंजनादि अक्षरोंसे बने हुए पदोंके और उन पदोंसे प्रगट पदार्थोंके स्वभावको स्वयं विना किसी मन व इन्द्रियोंकी मददके जान लिया है (जिन लष्य कम्म विलयन्तु) श्री जिनेन्द्रने अपना लक्ष्य या निशाना जिस शुद्धोपयोगकी ओर जमाया है उसके प्रतापसे कर्मोंकी निर्जरा होती है ॥ ३ ॥

(जिन अर्थ लपु तिमर्थ लपु लषंतो न्यान विन्यान) श्री जिनेन्द्रने सर्व जीवादि पदार्थोंको जान लिया है। रत्नत्रयका स्वभाव अनुभव कर लिया है तथा वे अपने शुद्ध ज्ञानको अपने ही ज्ञानसे देख रहे हैं, किसी परकी सहायता नहीं है (सम अर्थ लपु परमार्थ लपु) श्री जिनेन्द्रने समताभावको अनुभव किया है। उन्होंने परमार्थ जो मोक्ष है उसको साक्षात् देख लिया है (जिन लष्यमइ विन्यान) श्री जिनेन्द्रका लक्ष्य ज्ञान है। अर्थात् वे ज्ञान चेतनारूप है या वे ज्ञान स्वभावका ही अनुभव कर रहे हैं ॥ ४ ॥

(जिन परिनै लपु परिमान लपु) श्री जिनेन्द्र परिणमनशील समय समयकी परिणतिको जान रहे हैं तथा जो प्रमाण ज्ञानको या सर्व वस्तुओंके प्रमाणको जान रहे हैं। मति आदि पांच ज्ञान प्रमाण हैं तथा इनका जो विषय है वह भी प्रमाण है। इसतरह सर्व ज्ञान व ज्ञेयको वे जान रहे हैं (जिन लषिय सहज सजुत्तु) जिनेन्द्रका स्वभाव ही देखने जानने मात्र है, वे किसीपर रागद्वेष नहीं करते हैं। जैसे सूर्य सबको प्रकाश करता हुआ वीतरागी रहता है वैसे वे वीतरागी रहते हैं (सहकार लपु जिन उत्त लपु) श्री जिनेन्द्रको परम सहाई जानना चाहिये। श्री जिनेन्द्रने जो कथन किया है उसको जानना चाहिये (जिन लषिय कम्म गलयंतु) श्री जिनेन्द्रके स्वभावको जो जानकर उसीका मनन करते हैं अर्थात् परमात्म स्वभावमें लय होजाते हैं उनके कर्म गल जाते हैं ॥ ५ ॥

(जिन लष्य धुंव जिन स सरूव) श्री जिनेन्द्रका लक्ष्यबिंदु जो आत्मा है वह ध्रुव है—अविनाशी है। श्री जिनेन्द्र अपने निज स्वरूपमें ही हैं, वहां परकृत विभावता नहीं है (जिन लष्य अलष्य अनुमोयं) जिन्होंने इन्द्रियोंके द्वारा जाननेयोग्य मात्र अनुभवगम्य अतीन्द्रिय आनन्द पर अपना लक्ष्य रक्खा है अर्थात् जो

अन्यान गलतु) परन्तु उन्होंने अपने जिन स्वभावको अनुभव करके अज्ञानको गला डाला है (जिन पज्जवि लपि पर्जाव लपु) श्री जिनेन्द्रने पर पदार्थको भी जाना है व पर पदार्थकी पर्यायोंको भी जाना है (जिन लपि पर्जाय विलतु) श्रीजिनेन्द्रने जब अपने जिन स्वभावको प्राप्त कर लिया तब सर्व शरीरोंकी प्राप्तिका कर्म गलगया ॥१४॥

(जिन ओत लपु ओताइ लपु) जिन्होंने सर्व तरफसे सर्व पदार्थोंको जाना है (जिन चेय सचेय अलपु) जिन्होंने अतीन्द्रिय सचेतन पदार्थ आत्माका अनुभव किया है (जिन लपिय ममल जिन ओत सुय) श्री जिनेन्द्रने शुद्ध भावको जाना है तथा वे स्वयं वीतरागतासे ओतप्रोत–पूर्ण है (जिन प्रिय लपु पिय उत्त) श्री जिनेन्द्रने मुक्ति–प्रियाको जाना है वे ही उनकी प्रिया पत्नी कही गई है ॥ १५ ॥

(जिन नद लपु आनंद लपु) श्री जिनेन्द्रने आनन्द नामके गुणको व उसमें रमणताको जाना है (जिन लपिय सहज आनंद) श्री जिनेन्द्रने सहजानन्द आनन्दका अनुभव किया है (जिन लपिय तत्तु जिन परम उत्तु) श्री जिनेन्द्रने सात तत्वोंको जाना है तथा विशेषसे अपने परम तत्व आत्माको जाना है । (जिन परम तत्तु दर्सतु) जिन्होंने परम तत्व निज शुद्धात्माका अनुभव किया है । इसी तत्वको वे भव्यजीवोंको दर्शाते हैं ॥ १६ ॥

(जिन लष्य अमिय रस सुइ मिलिय) श्री जिनेन्द्रने अनुभव करने योग्य अमृत–रसको स्वयं प्राप्त कर लिया है व उस रसके साथ तन्मय होगये हैं (भय पिनिक लपिय सुभाउ) जिन्होंने निर्भय आत्मीक स्वभावको जाना है (जिन लपिय ममल रै धम्म मूल सुइ) श्री जिनेन्द्रने शुद्ध और धारावाही चलनेवाले धर्मको यह माना है । वही मूल पदार्थ आत्मा है या आत्माका स्वभाव है (जिन रज लपिय जिन उत्त) श्री जिनेन्द्रने आनन्द गुणकी मगनताको जाना है जैसा जिनेन्द्रोंने कहा है ॥ १७ ॥

(वै दर्स लपिय जिन न्यान समय) उन्होंने अपने केवलज्ञानकी दृष्टिसे वीतराग विज्ञानमई आत्माको देखा है (वै दर्सतु जिनुत्तु) तथा वे इसी स्वभावको दर्शाते हैं । जैसे जिनेन्द्रने कहा है (जिन लपिय अमिय रस अन्मोय न्यान जस) श्री जिनेन्द्रने अमृतरससे पूर्ण आनन्दको व निर्मल यशस्वी ज्ञानका अनुभव किया है (भय पिपिय सिद्धि सउत्तु) वे सर्व भयोंको नाश करके सिद्ध गतिको पाते है ॥ १८ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें श्री तारणस्वामीने श्री जिनेन्द्र भगवानकी गुणावली गाई है । उनके आत्मीक गुणोंका मनन किया है । श्री अर्हंत भगवानके चार घातीय कर्मोंका अभाव होजानेसे वे अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्त वीर्य, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्र आदि शुद्ध स्वाभाविक भावोंके धारी

या अशुभ राग है (कल रंज लपु जिन दोम लपु) श्री जिनेंद्र शरीरके भीतर रंजायमान होनेवाले रागको तथा शरीर सुखसे विराधक द्वेषभावको जानते हैं वे रागद्वेषके स्वरूपको जानते हैं (जिन लपिय दोस विलयतु) परंतु श्री जिनेंद्रके शुद्ध ज्ञानमें रागद्वेषका बिलकुल अभाव है ॥ १० ॥

(जिन गार लपु मनरंज लपु) श्री जिनेन्द्र गारव या मद व अहङ्कारको तथा मनके रंजायमान होनेवाले परनिंदा पर प्रशंसा आदि भावोंको जानते हैं (जिन लपिय कम्म विलयतु) परन्तु श्री जिनेन्द्रके शुद्धात्मीक प्रकाशसे वे कर्म ही क्षय होगये हैं। जो अहङ्कार या मनरंजक भावोंको उत्पन्न करते–केवलीके मोहनीय कर्मका सर्वथा क्षय होगया है (जिन मोह लपु जिन अन्ध लपु) श्री जिनेन्द्र भगवान मोहके स्वभावको तथा अज्ञानके स्वभावको जानते हैं (जिन लपिय मोह विलयतु) तथापि जिनके आत्मीक ज्ञानसे मोहका बिलकुल अभाव होगया है ॥ ११ ॥

(जिन आवर्न लपु चौ उवन लपु) श्री जिनेन्द्र भगवान कर्मोंके आवरणके स्वभावको जानते हैं। चार प्रकार–प्रकृति, प्रदेश, स्थिति तथा अनुभाग बन्धको जानते हैं (जिन लपिय घाय विलयतु) तथापि श्री जिनेन्द्रने शुद्ध ज्ञान प्रकाशके होते ही चारों घातीय कर्म क्षय होगये हैं (जिन मिच्छ लपु सम मिच्छ लपु) वे जिनेन्द्र मिथ्यात्व कर्मके स्वभावको जानते हैं। दर्शन मोहनीय कर्मके तीन भेद हैं उनको वे जानते हैं कि मिथ्यात्वके उदयसे तत्व श्रद्धान बिलकुल नहीं होता है, सम्यक् मिथ्यात्वके उदयसे सत्य असत्य तत्वोंका मिश्र श्रद्धान होता है सम्यक्त प्रकृतिके उदयसे तत्व श्रद्धान होता है परन्तु कुछ मलीन सातिचार होता है (जिन लपिय मिच्छ गलियतु) परन्तु श्री जिनेन्द्रके भीतर क्षायिक सम्यक्तका प्रकाश है जिससे सर्व मिथ्यात्वभाव क्षय होगया है ॥ १२ ॥

(जिन लोह लपु कोहाग्गि लपु) श्री जिनेन्द्र लोभके स्वभावको व क्रोधकी बातके स्वभावको जानते हैं (जिन लपियो मान सहाउ) वे मान कषायके स्वभावको भी जानते हैं (जिन माय लपु परजाय लपु) जिनेन्द्र मायाचारके स्वभावको तथा इन चारों कषायोंके परिणामोंको जानते हैं (जिन लपि पर्जाय गलंतु) परन्तु जिनेन्द्रके शुद्ध भावरूपी वीतराग लक्ष्यके सामने वे सब कषायोंकी परिणतिएँ गल गई हैं, कषायका कोई भी अंश यहां नहीं है वे पूर्ण वीतराग व निःकषाय हैं ॥ १३ ॥

(जिन कम्म लपु अन्यान लपु) श्री जिनेन्द्र कर्मोंके स्वभावको व अज्ञानके स्वभावको जानते हैं (जिन लपि

अन्यान गलतु) परन्तु उन्होंने अपने जिन स्वभावको अनुभव करके अज्ञानको गला डाला है (जिन परुवि लषि पर्जाव लपु) श्री जिनेन्द्रने पर पदार्थको भी जाना है व पर पदार्थकी पर्यायोंको भी जाना है (जिन लषि पर्जाय विलतु) श्रीजिनेन्द्रने जब अपने जिन स्वभावको प्राप्त कर लिया तब सर्व शरीरोंकी प्राप्तिका कर्म गलगया ॥१४॥

(जिन ओत लपु ओताइ लपु) जिन्होंने सर्व तरफसे सर्व पदार्थोंको जाना है (जिन चेय सचेय अलपु) जिन्होंने अतीन्द्रिय सचेतन पदार्थ आत्माका अनुभव किया है (जिन लषिय ममल जिन ओत सुय) श्री जिनेन्द्रने शुद्ध भावको जाना है तथा वे स्वयं वीतरागतासे ओतप्रोत–पूर्ण हैं (जिन प्रिय लपु पिय उत्त) श्री जिनेन्द्रने मुक्ति–प्रियाको जाना है वे ही उनकी प्रिया पत्नी कही गई है ॥ १५ ॥

(जिन नंद लपु आनंद लपु) श्री जिनेन्द्रने आनन्द नामके गुणको व उसमें रमणताको जाना है (जिन लषिय सहज आनंदं) श्री जिनेन्द्रने सहजानन्द आनन्दका अनुभव किया है (जिन लषिय तत्तु जिन परम उत्तु) श्री जिनेन्द्रने सात तत्वोंको जाना है तथा विशेषसे अपने परम तत्व आत्माको जाना है। (जिन परम तत्तु दर्सतु) जिन्होंने परम तत्व निज शुद्धात्माका अनुभव किया है। इसी तत्वको वे भव्यजीवोंको दर्शाते हैं ॥ १६ ॥

(जिन लष्य अमिय रस सुइ मिलिय) श्री जिनेन्द्रने अनुभव करने योग्य अमृत–रसको स्वयं प्राप्त कर लिया है व उस रसके साथ तन्मय होगये हैं (भय पिनिक लपिय सुभाउ) जिन्होंने निर्भय आत्मीक स्वभावको जाना है (जिन लषिय ममल रै धम्म मूल सुइ) श्री जिनेन्द्रने शुद्ध और धारावाही चलनेवाले धर्मको यह माना है। वही मूल पदार्थ आत्मा है या आत्माका स्वभाव है (जिन रज लषिय जिन उत्त) श्री जिनेन्द्रने आनन्द गुणकी मगनताको जाना है जैसा जिनेन्द्रोंने कहा है ॥ १७ ॥

(वै दर्स लषिय जिन न्यान समय) उन्होने अपने केवलज्ञानकी दृष्टिसे वीतराग विज्ञानमई आत्माको देखा है (वै दर्सतु जिनुतु) तथा वे इसी स्वभावको दर्शाते हैं। जैसे जिनेन्द्रने कहा है (जिन लषिय अमिय रस अन्मोय न्यान जस) श्री जिनेन्द्रने अमृतरससे पूर्ण आनन्दको व निर्मल यशस्वी ज्ञानका अनुभव किया है (भय पिपिय सिद्धि सउत्तु) वे सर्व भयोंको नाश करके सिद्ध गतिको पाते हैं ॥ १८ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें श्री तारणस्वामीने श्री जिनेन्द्र भगवानकी गुणावली गाई है। उनके आत्मीक गुणोंका मनन किया है। श्री अर्हंत भगवानके चार घातीय कर्मोंका अभाव होजानेसे वे अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्त वीर्य, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्र आदि शुद्ध स्वाभाविक भावोंके धारी

या अशुभ राग है (कल रंज लपु जिन दोस लपु) श्री जिनेंद्र शरीरके भीतर रंजायमान होनेवाले रागको तथा शरीर सुखसे विराधक द्वेषभावको जानते हैं वे रागद्वेषके स्वरूपको जानते हैं (जिन लषिय दोस विलयतु) परंतु श्री जिनेंद्रके शुद्ध ज्ञानमें रागद्वेषका विलकुल अभाव है ॥ १० ॥

(जिन गार लपु मनरंज लपु) श्री जिनेन्द्र गारव या मद व अहङ्कारको तथा मनके रंजायमान होनेवाले परनिंदा पर प्रशंसा आदि भावोंको जानते हैं (जिन लपिय कम्म विलयतु) परन्तु श्री जिनेन्द्रके शुद्धात्मीक प्रकाशसे वे कर्म ही क्षय होगये हैं। जो अहङ्कार या मनरंजक भावोंको उत्पन्न करते–केवलीके मोहनीय कर्मका सर्वथा क्षय होगया है (जिन मोह लपु जिन अन्ध लपु) श्री जिनेन्द्र भगवान मोहके स्वभावको तथा अज्ञानके स्वभावको जानते हैं (जिन लषिय मोह विलयतु) तथापि जिनके आत्मीक ज्ञानसे मोहका विलकुल अभाव होगया है ॥ ११ ॥

(जिन आवर्न लपु चौ उवन लपु) श्री जिनेन्द्र भगवान कर्मोंके आवरणके स्वभावको जानते हैं। चार प्रकार–प्रकृति, प्रदेश, स्थिति तथा अनुभाग बन्धको जानते हैं (जिन लषिय घाय विलयतु) तथापि श्री जिनेन्द्रने शुद्ध ज्ञान प्रकाशके होते ही चारों घातीय कर्म क्षय होगये हैं (जिन मिच्छ लपु सम मिच्छ लपु) वे जिनेन्द्र मिथ्यात्व कर्मके स्वभावको जानते हैं। दर्शन मोहनीय कर्मके तीन भेद हैं उनको वे जानते हैं कि मिथ्यात्वके उदयसे तत्व श्रद्धान विलकुल नहीं होता है, सम्यक् मिथ्यात्वके उदयसे सत्य असत्य तत्वोंका मिश्र श्रद्धान होता है सम्यक्त प्रकृतिके उदयसे तत्व श्रद्धान होता है परन्तु कुछ मलीन सातिचार होता है (जिन लषिय मिच्छ गलियतु) परन्तु श्री जिनेन्द्रके भीतर क्षायिक सम्यक्तका प्रकाश है जिससे सर्व मिथ्यात्वभाव क्षय होगया है ॥ १२ ॥

(जिन लोह लपु कोहाग्गि लपु) श्री जिनेन्द्र लोभके स्वभावको व क्रोधकी आगके स्वभावको जानते हैं (जिन लषियो मान सहाउ) वे मान कषायके स्वभावको भी जानते हैं (जिन माय लपु परजाय लपु) जिनेन्द्र मायाचारके स्वभावको तथा इन चारों कषायोंके परिणामोंको जानते हैं (जिन लषि पर्जाय गलंतु) परन्तु जिनेन्द्रके शुद्ध भावरूपी वीतराग लक्ष्यके सामने वे सब कषायोंकी परिणतिएँ गल गई हैं, कषायका कोई भी अंश यहां नहीं है वे पूर्ण वीतराग व निःकषाय हैं ॥ १३ ॥

(जिन कम्म लपु अन्यान लपु) श्री जिनेन्द्र कर्मोंके स्वभावको व अज्ञानके स्वभावको जानते हैं (जिन लषि

अन्यान गलतु) परन्तु उन्होंने अपने जिन स्वभावको अनुभव करके अज्ञानको गला डाला है (जिन दरुवि लगि पर्जाव लपु) श्री जिनेन्द्रने पर पदार्थको भी जाना है व पर पदार्थकी पर्यायोंको भी जाना है (जिन लगि पर्जाय विलतु) श्रीजिनेन्द्रने जब अपने जिन स्वभावको प्राप्त कर लिया तब सर्व शरीरोंकी प्राप्तिका कर्म गलगया ॥१४॥

(जिन ओत लपु ओताइ लपु) जिन्होंने सर्व तरफसे सर्व पदार्थोंको जाना है (जिन चेत सचेत अलपु) जिन्होंने अतीन्द्रिय सचेतन पदार्थ आत्माका अनुभव किया है (जिन लषिय ममल जिन ओत सुइ) श्री जिनेन्द्रने शुद्ध भावको जाना है तथा वे स्वयं वीतरागतासे ओतप्रोत–पूर्ण हैं (जिन प्रिय लपु पिय उत्त) श्री जिनेन्द्रने मुक्ति–प्रियाको जाना है वे ही उनकी प्रिया पत्नी कही गई है ॥ १५ ॥

(जिन नंद लपु आनंद लपु) श्री जिनेन्द्रने आनन्द नामके गुणको व उसमें रमणताको जाना है (जिन लषिय सहज आनंद) श्री जिनेन्द्रने सहजानन्द आनन्दका अनुभव किया है (जिन लषिय तत्तु जिन परम उत्तु) श्री जिनेन्द्रने सात तत्वोंको जाना है तथा विशेषसे अपने परम तत्व आत्माको जाना है। (जिन परम तत्तु दर्सेतु) जिन्होंने परम तत्व निज शुद्धात्माका अनुभव किया है। इसी तत्वको वे भव्यजीवोंको दर्शाते हैं ॥ १६ ॥

(जिन लष्य अमिय रस सुइ मिलिय) श्री जिनेन्द्रने अनुभव करने योग्य अमृत–रसको स्वयं प्राप्त कर लिया है व उस रसके साथ तन्मय होगये हैं (भय विनिक लषिय सुभाउ) जिन्होंने निर्भय आत्मीक स्वभावको जाना है (जिन लषिय ममल रे धम्म मूल सुइ) श्री जिनेन्द्रने शुद्ध और धारावाही चलनेवाले धर्मको यह माना है। वही मूल पदार्थ आत्मा है या आत्माका स्वभाव है (जिन रज लषिय जिन उत्त) श्री जिनेन्द्रने आनन्द गुणकी मगनताको जाना है जैसा जिनेन्द्रोंने कहा है ॥ १७ ॥

(वै दर्स लषिय जिन न्यान समय) उन्होंने अपने केवलज्ञानकी दृष्टिसे वीतराग विज्ञानमई आत्माको देखा है (वै दर्सतु जिनुत्तु) तथा वे इसी स्वभावको दर्शाते हैं। जैसे जिनेन्द्रने कहा है (जिन लषिय अमिय रस अन्मोय न्यान जस) श्री जिनेन्द्रने अमृतरससे पूर्ण आनन्दको व निर्मल यशस्वी ज्ञानका अनुभव किया है (भय विपिय सिद्धि सात्तु) वे सर्व भयोंको नाश करके सिद्ध गतिको पाते हैं ॥ १८ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें श्री तारणस्वामीने श्री जिनेन्द्र भगवानकी गुणावली गाई है। उनके आत्मीक गुणोंका मनन किया है। श्री अर्हंत भगवानके चार घातीय कर्मोंका अभाव होजानेसे वे अनन्त-दर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्त वीर्य, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्र आदि शुद्ध स्वाभाविक भावोंके भारी

हैं। वे परम वीतराग हैं। रत्नत्रय धर्मका फल पाकरके परम कृतकृत्य हैं। यद्यपि वे अपने ज्ञानसे इच्छाके स्वभावको, रागद्वेष मोहके स्वभावको, कर्मोंके बन्धके स्वभावको, क्रोधादि चार कषायोंको आदि सर्व प्रकारकी सर्व पर परिणतियोंको जानते हैं तथापि वे इन सबसे बिलकुल रहित हैं। वे परम शांत हैं, परम निर्विकार हैं, वे ही परम तत्व हैं, वे ही परमानन्दमई हैं। जिस आत्माका दर्शन या अनुभव मन व इंद्रियाँ नहीं कर सक्ती हैं उस आत्माका वे प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं। श्रुतज्ञानी तो आत्माका स्वसंवेदन ज्ञानरूप अनुभव श्रुतकी प्रतीतिके आधारसे करते हैं, साक्षात् अमूर्तीक पदार्थोंको केवलज्ञान ही देख सक्ता है। द्वादशांगवाणीका मूल भगवानका दिव्योपदेश है तौभी जितना पदार्थ उपदेशमें कहा जाता है उसका अनन्तवां भाग द्वादशांगवाणीमें गूँथा जाता है। वह सब ज्ञान केवलज्ञानका एक भाग है।

श्री अरहंत भगवान पूर्ण समतारससे भरपूर हैं। आत्मानन्दके भोगमें रमणतासे ही कर्मोंका क्षय होता है। अतएव आत्मरमणको ही क्षपकभाव कहते हैं, कर्मोंको क्षय करनेवाला भाव कहते हैं। इसी क्षपक भावसे मोहनीय कर्मका फिर तीन शेष घातीय कर्मोंका क्षय होता है व यही स्वात्मानंद भाव केवली अरहंतमें भी जागृत रहता है। उससमय उस आनन्दको अनंतसुख कहते हैं। इसी आनन्दानुभवके प्रतापसे शेष चार अघातीय कर्मोंका भी क्षय होजाता है और श्री अरहंत सर्व कर्मोंसे व सर्व शरीरोंसे रहित होकर सिद्ध परमात्मा होजाते हैं। श्री अरहंत भगवानमें जो आनन्द है वह सहजानंद है, स्वाभाविक आनन्द है। वे कर्मचेतना कर्मफलचेतनासे बिलकुल रहित हो ज्ञान चेतनाका ही स्वाद लेते हैं। वे कार्य समयसाररूप हैं, स्वसमयरूप हैं, ज्ञानानन्द स्वरूप हैं, परम निर्भय हैं, वे आनन्दामृत रसका पान करते हुए कभी अघाते नहीं हैं, सिद्धगतिमें भी जाकर इसी आनन्दामृतका पान करते रहते हैं। जो भव्य जीव श्री अरहंत भगवानका दर्शन, पूजन करते हैं, उनके स्वरूपका विचार करते हैं वे स्वयं अरहंत हो जाते हैं। उनकी वाणीको सुनकर उसका मनन करते रहो। श्री अरहंतके ध्यानसे ही अरहंतपद प्राप्त होता है। जो श्री अरहंतके आत्मीक गुणोंका विचार करता है वह मानो अपने ही आत्मीक गुणोंका विचार करता है। आत्मा व परमात्माके स्वभावमें निश्चयनयसे कोई भी अंतर नहीं है। व्यक्तित्व या सत्ता तो भिन्न२ है परन्तु स्वभाव एक समान है। श्री योगेन्द्रदेव योगसारमें कहते हैं—

जिण सुमिरहु जिण चिंतवहु जिण झायहु सुमणेण। सो झाइतह परमपउ लब्भइ इक्कखणेण ॥ १९ ॥

सुद्धप्पा अरु जिणवरह भेउ म किमपि वियाणि । मोक्खह कारण जोईया णिच्छइ एउ वियाणि ॥ २० ॥
जो जिणु सो अप्पा मुणहु इहु सिद्धतहु सार । इउ जाणेविण जोयइहु छडहु मयाचारु ॥ २१ ॥
जो परमप्पा सो जि हउ जो हउ सो परमप्पु । इउ जाणेविणु जोइआ अण्ण म करहु वियप्पु ॥ २२ ॥

भावार्थ—श्री जिनेन्द्रको स्मरण करो, जिनेन्द्रको चिंतवन करो, जिनेन्द्रको शुद्ध मन करके ध्याओ। उसीके ध्यान करनेसे एक क्षणमें परम पदकी प्राप्ति होती है। अपने शुद्ध आत्मामें और जिनेन्द्रमें कुछ भेद न जानो। यही ज्ञान हे योगी! निश्चयसे मोक्षका कारण जान। जो जिनेन्द्र है सो ही आप है। यही सिद्धांतका सार है। ऐसा जानकर हे योगी! मायाचार छोड़कर उसी रूप अपनेको मान। जो परमात्मा है वही मैं हूं, जो मैं हूं वही परमात्मा है, ऐसा अनुभव कर। हे योगी! और विकल्प या विचार न कर।

(३१) अचष्य दर्सन गाथा ६०१ से ६२७ तक।

अचष्ये दर्सन उत्तं, सद्धं सहकार न्यान विन्यानं ।
अचष्ये अनन्त रूवं, रूवातीतं अचष्य दर्सति ॥ १ ॥
अचष्ये हृदय संजुत्तं, हितमित परिनवइ कोमलंसहियं।
अचष्ये सद्ध सुहावं, ममल सहावेन सब्द विन्यानं ॥ २ ॥
लष्यन जिन उवएसं, लष्यंतो ममल न्यान विन्यानं ।
भय विनस्य भवयनं, परिनामो लष्यनेहि संजुत्तं ॥ ३ ॥
जिनवर उत्तं दिट्ठं, कमल सहावेन पर्याय संजुत्तं ।
कमल कन्द जिन उत्तं, सो अट्ठमि ममल मल मुक्कं ॥ ४ ॥
कमल मुष गिरि सहियं, चौ उववंन साढि संजुत्तं ।
पद्म कमलं तं सहियं, सहसं बत्तीस न्यान मल विलयं ॥ ५ ॥

जिन इस्टि दिस्टि उत्तं, सहसं अठ लक्खने हि ममल न्यानं च ।
चतुष्टै षट् सुभावं, उववन्नं जिनेन्द विंद चौवीसं ॥ ६ ॥
इय सहाव लष्यन यं, जिन दिट्ठ परिनाम लष्यनं उत्तं ।
भय षिपनिक ममल सहावं, धम्म सहकार मुक्ति संदर्सं ॥ ७ ॥
जिह्वा अग्र उवन्नं, दिट्ठं जिनेन्द विंद विन्यानं ।
नन्त चतुष्टै जुत्तं, परिनाम विन्यान न्यान चौसठियं ॥ ८ ॥
चौसठ अर्थ जुत्तं, चतुष्टै सहकार सहज ठिदि ममलं ।
मुक्ति सुभावं ठिदियं, ठिदियं मुक्ति ममल न्यानं च ॥ ९ ॥
जिह्वा कन्द सु ममल, सौ अट्ठमि परिनाम न्यानं च ।
कम्म कलङ्क सु विलयं, विन्यानं सरूव संकलियं ॥ १० ॥
सौ अट्ठंपि स अर्थं, सहकारं उववन्न अष्टांग ।
अप्पं च मुक्ति ठिदियं, मुक्ति विन्यान न्यान ममलं च ॥ ११ ॥
जिह्वा सहाव जुत्तं, परिनामं सहस अट्ठ लष्यनं ममलं ।
चौवीसं तित्थयरं, भय षिपनिक सहकार न्यान ममलं च ॥ १२ ॥
लष्यन दिसि संजुत्तं, लष्यन सहकार विंद विन्यानं ।
भय षिपिय ममल सहावं, धम्म सहाव मुक्ति गमनं च ॥ १३ ॥
लष्यन जिनेन्द विन्दं, तित्थयरं अर्थस्य अर्थ परमर्थं ।
तित्थयर नन्त आचरनं, परिनामं तित्थयर न्यान आयरनं ॥ १४ ॥

ममलपा
॥२६०॥

भय उत्तं च जिनेन्दं, भय षिपियं ति अर्थ ममलं च ।
ति अर्थ भय त्रितीयं, भय षिपिय अभय न्यान सहकारं ॥ १५ ॥

ममल सहावं उत्तं, परिनामं न्यान सुपंच अहंमि ।
नौ सहकार संजुत्तं, नौसै वहत्तरंमि न्यानं च ॥ १६ ॥

ति अर्थ अर्थ सहियं, सो परिनाम न्यान विन्यानं ।
लस्यन जिन उवएसं सहसं अहंमि लष्यनं ममलं ॥ १७ ॥

चौवीसं च संजुत्तं, तित्थयर उववन्न न्यान विन्यानं ।
भय विनस्ट सहकारं ममल सहावेन सिद्धि सम्पत्तं ॥ १८ ॥

लख्यन जिन उवएसं, न्यान विन्यान सहाव ममलं च ।
भय षिपनिक ममल सहावं, धम्म सहाव लष्यनं ममलं ॥ १९ ॥

तारन तरन सु समयं, भय षिपनिक भव्य न्यान विन्यानं ।
अमिय रस रसिय सु ममलं, न्यानं अन्मोय सिद्धि संपत्तु ॥ २० ॥

उव उववन्न सु तरनं, भय षिपनिक हिययार तारनं ममलं ।
अमिय पयो सहकारं, कम्म षिपिऊन निव्वुए जंति ॥ २१ ॥

भय विनस्य भवयनं, अमिय अन्मोय न्यान विन्यानं ।
सह हिययार उवन्नं, तारन रूप सरूव विन्यानं ॥ २२ ॥

भय पिपिय भव्व सहकारं, अमियरस अन्मोय तारनं ममलं ।
तं विओय मुक्लपनं, भय पिपिय अमिय दिस्टि उवसंतं ॥ २३ ॥

ममलपाहुड ॥२६१॥

भय षिपिय अमिय रस खन्नं, तारन अन्मोय परम पिउ जुत्तं।
जं बाधा अषिर अबन्धं, तं रमनं दिस्टि संजोय मिलियं च ॥ २४ ॥
तं विओय किम सहियं, जं अदिस्टं च दिस्टि गलियं च।
भय षिपिय अमिय अन्मोयं, दिस्टि सहकारं नन्त सौख्यं च ॥ २५ ॥
जिन उव सुन्न सुहावं, दिप्ति दिस्टं च उवन ममलं च।
रुइयिउ पर्म परमप्पं तरन विवान मुक्ति गमनं च ॥ २६ ॥
दत्तं पत्त विसेषं, दत्तं जं देइ सुख्य भावेन।
पत्त ममल सहावं, तत्काल संजोय मुक्ति गमनं च ॥ २७ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(अचष्यें दर्सन उत्त) अब अचक्षु दर्शनको कहते हैं। मन द्वारा पदार्थको सामान्यपने जानना अचक्षुदर्शन है अथवा अचक्षुसे प्रयोजन इंद्रियोंसे व मनसे अतीत आत्मासे है। अब अचक्षुदर्शनको अर्थात् आत्माके दर्शनको कहते हैं। मनद्वारा आत्माका मनन होता है। आत्माद्वारा आत्माका ग्रहण अथवा अनुभव होता है (सब्द सहकार न्यान विन्यान शब्दोंकी सहायतासे अभ्यास करनेवालेको ज्ञान तथा भेदविज्ञान होता है, वाच्य वाचक सम्बन्ध होता है। शब्द वाचक है—कहनेवाला है, पदार्थका स्वरूप वाच्य है जो शब्दोंसे कहा जाता है (अचष्यें अनन्तहव) इंद्रियोंसे परे मन द्वारा अनंत स्वभावी आत्माका मनन होता है तथा मनसे भी अतीत आत्मा द्वारा उसी आत्माका अनुभव होता है (रूवातीत अचष्यदर्सीनि) आत्मा रूपातीत श्री सिद्ध भगवानको या शुद्ध आत्माको देख लेता है ॥ १ ॥

(अचष्यें हृदय मं य) मनद्वारा अचक्षु दर्शनसे अर्थात् मनद्वारा आत्माके स्वरूपके मननसे (हितमित परिनवइ कोमल सहिय) मन हितमित भावोंको विचारनेवाला कोमल होजाता है, कठोर मनसे शांतिसे विचार नहीं होसक्ता है। जब तत्वके मननसे कठोरता मिटकर कोमलता आजाती है तब शुद्ध या शुभ भावोंका विचार आगमकी मर्यादापूर्वक होता है (अचष्यें सद्द सुहाव) आत्माके स्मरण करानेवाले शब्दोंकी सहायतासे

आत्माका मनन होता है (ममल सहावेन सब्द वि-यान) निर्मल शांतस्वभाव द्वारा विचार करनेसे शब्दोंके द्वारा आत्मा व अनात्माका भेदविज्ञान उत्पन्न होजाता है ॥ २ ॥

(लष्यन जिन उवएस) श्री जिनेन्द्र भगवानने आत्माका लक्षण चेतना गुण कहा है (लष्यतो ममल न्यान वि-यान) इस लक्षण द्वारा ज्ञान विज्ञान स्वभावधारी आत्माका स्वरूप पुद्गलादि पांच द्रव्योंसे भिन्न जाना जाता है (भय वि-ष्य भवयन) इस आत्माके यथार्थ लक्षणको जान लेनेसे भव्य जीवोंका सर्व भय नाश होजाता है। जन्म मरण जरा रोगादि शरीरमें होते हैं, मेरे आत्मामें नहीं। आत्मा अजन्मा, अजर, अमर, बाधारहित है। जब अपनेको आत्मा ही श्रद्धान कर लिया फिर अविनाशी आत्माके बिगाड़का कोई भय नहीं होसक्ता है (परिनामो लष्यने हि समुत्त) उस आत्मज्ञानी भव्यजीवके सर्व ही परिणाम या भाव आत्माके लक्षणको ध्यानमें लेकर होते हैं अर्थात् सम्यग्ज्ञानीके सर्व ही भाव आत्मज्ञान पूर्वक होते हैं जिनसे सम्यग्दर्शन सुरक्षित रहता है–सम्यग्दर्शनमें कोई बाधा नहीं आती है ॥ ३ ॥

(जिनवर उत्त दिट्ठ) जैसा श्री जिनेन्द्रने कहा है वैसा आत्माको देखना चाहिये (कमल सहावेन पर्याय मजुत्तं) आत्माका स्वभाव कमलके समान प्रफुल्लित है, वह वास्तविक एक द्रव्य है (कमल कंद जिन उत्तं) वही आत्मा अरहन्तरूपी कमलकी जड़ है ऐसा जिनेन्द्रने कहा है अर्थात् आत्मा ही गुणोंके विकाससे परमात्मा होजाता है (सौ अट्ठमि ममल मल मुक्क) एकसौ आठ दफे परमात्माका नाम जपनेसे भाव शुद्ध होजाता है, रागादि मल कट जाता है। ऐसा प्रसिद्ध है कि जीवाधिकरणके १०८ भेद हैं संरंभ (किसी कामका विचार करना), समारंभ (उस कामका प्रबन्ध करना), आरंभ (उस कामको प्रारम्भ कर देना) ये तीनों ही प्रत्येक मन, वचन, काय द्वारा होते हैं अतएव नौ भेद हुए। कृत कारित अनुमोदनासे तीन तरहसे काम होता है इसलिये सत्ताईस भेद हुए। हरएक काम चार कषायोंमेंसे किसी कषायके द्वारा होता है अतएव एकसौ आठ प्रकारके भावै जीवोंके होते हैं जिनके आधारसे कर्मोंका आस्रव होता है। इन ही भावोंसे जो कर्मबन्ध हुआ है उसकी शांतिके लिये १०८ दफे मंत्रोंकी जाप की जाती है ॥ ४ ॥

(कमल मुषगिरि सहिय) श्री अर्हंत परमात्माके मुखसे जो वाणीका प्रकाश होता है (चौ उववन्न साठि सजुत्त) उस वाणीको ६४ अक्षरोंके द्वारा द्वादशांग वाणीमें गूँथा जाता है, इसका कथन इष्ट छन्द (२३) में किया गया है। (षट् कमल त सहियं) छः पत्तेके कमलोंके द्वारा इनका मनन किया जाता है। ऐसा भाव

समझमें आता है कि छः पत्तेका कमल बनावे, उसे हृदयस्थानपर विराजिमान करे, बीचमें गुलाईमें २७ स्वर लिखे। छः पत्तोंपर पांचमें–क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, प वर्गमय अक्षर लिखे। छठे पत्तेपर–य र ल व श ष स ह आठ अक्षर लिखे। चार योग वाह बिलकुल मध्यमें लिखे। इस तरह १४ अक्षरोंका कमल बनाकर ध्यान करे (महस बत्तीस न्यान मल विलय) एक हजार बत्तीस दफे या ३२००० बत्तीस हजार दफे इन अक्षरोंको जप जावे या ध्यान करे तो ज्ञानावरणीय कर्मका मल दूर होता है, ज्ञान प्रगट होता है।

नोट–यहां जो भाव समझमें आया सो लिखा गया है ॥ ५ ॥

(जिन इस्टि सिस्टि उत्त) जिनेन्द्रकी परम हितकारी ज्ञानमई दृष्टि कही गई है। अर्थात् श्री तीर्थंकर केवलीका परमेष्ठीपद ज्ञानमई है (महस अठ लक्खनेहि ममल न्य न च) उनके शरीरमें एक हजार आठ लक्षण होते हैं उनका ज्ञान शुद्ध है। वे केवलज्ञानी हैं (चतुष्टै षट् सुभाव) उनमें अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, ये चार अनन्त चतुष्टय तथा क्षायिक सम्यक्त और क्षायिक चारित्रको भी लेकर छः स्वभाव प्रगट हैं (उवबन जिनेन्द विंद चौबीस) ऐसे श्री तीर्थंकर जिनेन्द्र स्वात्मानुभवी चौबीस हरएक उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी कालमें भरत व ऐरावतमें प्रगट होते रहते हैं ॥ ६ ॥

(इय महाव लष्यनयं) ऐसे स्वभाव और लक्षणोंसे युक्त तीर्थंकर होते हैं (जिन दिष्ठ परिनाम लष्यन उत्त) जैसा जिनेन्द्रने देखा है वैसे तीर्थंकर प्रभुका भाव व लक्षण कहा गया (भय विपनिक ममल सहावं) वे तीर्थंकर भगवान भय रहित हैं व शुद्ध स्वभावके धारी हैं (धम्म सहकार मुक्तिस दर्स) वे प्रभु रत्नत्रय धर्मपर स्वात्मानुभव धर्मके प्रतापसे मुक्तिका दर्शन करते हैं ॥ ७ ॥

(जिह्वा अग्र उवंक) श्री तीर्थंकर भगवानके मुखारविन्दसे प्रगट जिनवाणी है (दिष्ठ जिनंद विंद विन्यान) श्री जिनेन्द्र भगवानने ज्ञानको भलेप्रकार देखा है व अनुभव किया है (नन चतुष्टै जुत्त) वे भगवान् अनन्त चतुष्टय सहित हैं (परिनाम विन्यान न्यान चौसठिय वे अपने शुद्ध ज्ञानमें परिणमन कर रहे हैं, उनका ज्ञान जिनवाणीके चौसठ अक्षरोंसे प्रगट होता है ॥ ८ ॥

(चौसठ अर्थ जुत्त) इस चौसठ अक्षरमय जिनवाणीसे जीवादि पदार्थोंका स्वरूप प्रगट होता है (चतुष्टै महकार महज ठिदि ममल) वे तीर्थंकर भगवान चार अनन्त चतुष्टयके कारण अपने शुद्ध सहज भावमें स्थित हैं, लवलीन हैं, केवलदर्शन व केवलज्ञानसे उन्होंने निज शुद्ध स्वभावको देखा है। अनन्त वीर्यसे वे स्वरू-

पमें स्थिर हैं अनन्त सुखके कारण वे अतींद्रिय आनन्दमें लीन हैं (मुक्ति सुभावं ठिदिय) वे मोक्षके स्वभावमें स्थित हैं निर्मल आत्मस्वभावमें विराजमान हैं (ठिदिय मुक्ति ममल न्यानं च) वे मोक्षके शुद्ध ज्ञानमें स्थित हैं, आत्मानन्दमें तन्मय हैं ॥ ९ ॥

(जिह्वा कन्द सु ममल) अपनी जिह्वाके मूलसे शुद्धताके साथ (सौ अट्ठमि परिनाम न्यान च) एकसौआठ दफे मंत्रोंको जपकर अपने ज्ञान स्वभावमें परिणमन करे। (कम्म कलङ्क सु विलय) इस मंत्रकी जापसे कर्म-कलंक दूर होता है (विन्यान सरूव सकलिय) तथा भेदविज्ञानसे अपने स्वरूपमें स्थिति होती है। एक माला १०८ दानोंकी होती है। किसी भी परमेष्ठी वाचक मंत्रको १०८ दफे जपे। यह विचारता रहे कि मेरा स्वरूप भी निश्चयसे परमात्मारूप है, कर्म आदि मुझसे भिन्न हैं। इनकी निर्जरासे मैं शुद्ध होजाऊँगा। मंत्र श्री द्रव्यसंग्रहजीमें सात प्रकार कहे गये हैं।

पणतीस सोल छ प्पण चदु दुगमेगं च जवह झाएह। परमेट्ठिवाचयाण अण्ण च गुरूवएसेण ॥ ४९ ॥

भावार्थ—पांच परमेष्ठी वाचक पैंतीस अक्षरका मंत्र है। णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। सोलह अक्षरका मंत्र है—

अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः।

छः अक्षरका मंत्र—अरहंत सिद्ध।

पांच अक्षरका मंत्र—असिआउसा।

चार अक्षरका मंत्र—अरहंत।

दो अक्षरका मंत्र—सिद्ध, सोहं, ॐ ह्रीं।

एक अक्षरका मंत्र—ॐ।

और भी मंत्र होसक्ते हैं जैसे—अर्हं, ह्रीं, श्रीं।

इन सब मंत्रोंका जप व ध्यान करना उचित है। एक जाप १०८ दफे जपनेसे होती है ॥ १० ॥

(सौ अट्ठमि स अर्थ) यदि आत्मा पदार्थका लक्ष्य रखकर सम्यग्दर्शन सहित संसार शरीर भोगोंसे वैराग्यभाव रखता हुआ एक सौ आठ दफे मंत्र जपा जावे व उसका ध्यान किया जावे (सहकार उववन्न अष्टांगं) तो इस जप व ध्यानकी सहायतासे आठ गुण सिद्धोंके प्रगट होजाते हैं। ध्यान हीसे सिद्धपद

होता है। आठ कर्मोंके नाशसे अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, सम्यक्त, अनन्तवीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व, अव्याबाधत्व प्राप्त होते हैं। अथवा जप व ध्यानसे सम्यक्तके आठ अंगोंके पालनेकी दृढ़ता होती है। निःशङ्कितांग, निःकांक्षितांग, निर्विचिकित्सितांग, अमूढदृष्टि, उपगूहनांग, स्थितिकरणांग, वात्सल्य व प्रभावनांग (अप्प च मुक्ति ठिदियं) आत्मा इसी जप व ध्यानसे मुक्तिमें जा विराजता है (मुक्त विन्यान न्यान ममल च) मोक्ष होनेपर ज्ञान पूर्ण शुद्ध सदा बना रहता है ॥ ११ ॥

(जिह्वा सहाव जुत्तं) श्री तीर्थंकर भगवानका स्वभाव ही है कि भव्यजीवोंके उपकारके लिये उनकी दिव्यवाणी प्रगट होती है (परिनामं सहस्र अट्ठ लष्यन ममल) तीर्थंकर भगवानके शरीरमें एकहजार आठ लक्षण होते हैं। वे परम शुद्ध हैं (चौबीस तित्थयर) ऐसे चौबीस ऋषभादिसे महावीर पर्यंत तीर्थंकर इस कालमें यहां होगए हैं (भय षिपनिक सहकार न्यान ममऊ च) वे परम निर्भय थे। इसी कारण उनका ज्ञान निर्मल था ॥१२॥

(लष्यन दिति सजुत्त) वे तीर्थंकर १००८ लक्षण व महान शरीरकी दीप्तिको रखनेवाले होते हैं। उनके शरीरमें अपूर्व चमक होती है, जिससे उनके चारोंतरफ भामण्डल बन जाता है। (लष्यन सहकार विंद विन्यान) वे तीर्थंकर इन लक्षणोंके साथ अन्तरंग लक्षण ज्ञानचेतनाको रखते हैं। वे ज्ञानानन्दका निरन्तर अनुभव करते हैं (भय षिपिय ममल सहाव) वे सर्व भय रहित निर्मल स्वभावके धारी हैं (धम्म सहाव मुक्ति गमन च) वे तीर्थंकर आत्मीक धर्मकी सहायतासे मोक्षमें जाते हैं ॥ १३ ॥

(लष्यन जिनंद विंदं) वे जिनेन्द्रके लक्षणको धारते हुए वीतराग विज्ञानका अनुभव करते हैं (तित्थयर अर्थस्य अर्थ परमर्थ) वे तीर्थंकर सर्व पदार्थोंमें सार पदार्थ परमार्थ रूप परमात्मा है (तित्थयर नत आचरनं) वे तीर्थंकर अपने अनन्त ज्ञान स्वरूपमें आचरण करते हैं, परमें रागद्वेष नहीं रखते हैं (परिनाम तित्थयर न्यान आवरन) वे अपने तीर्थंकर पदमें परिणमन करते हैं, धर्म तीर्थका प्रचार करते हैं, तौभी अपने शुद्ध ज्ञानमें मगन हैं, अपने स्वरूपानन्दमें ही तल्लीन हैं ॥ १४ ॥

(भय उत्तं च जिनंदं) श्री जिनेन्द्र भगवानने भयका स्वरूप बताया है-प्राणी मिथ्यात्वके कारण सदा भयभीत रहता है, सम्यक्ती सदा निर्भय रहता है (भय षिपिय तिअर्थं अर्थ ममल च) परंतु वे जिनेन्द्र सर्व भयरहित हैं उनका रत्नत्रयमई स्वभाव परम शुद्ध है (ति अर्थ भय त्रितीय) तीन पदार्थ सम्बन्धी तीन भय होते हैं-मरण भय, रोग भय, परलोकमें दुःखोंका भय, या मरण भय, सम्पत्तिके छूटनेका भय व

परलोक भय (भय पिपिय अभय न्यान सहकारं) श्री जिनेन्द्रने सर्व भयका क्षय कर डाला है क्योंकि उनमें सर्व भय रहित व रागादि रहित वीतराग ज्ञान विद्यमान है ॥ १५ ॥

(ममल सहाव उत्त) आत्माका शुद्ध स्वभाव उसे कहा गया है कि (परिनाम न्यान सुय च अट्ठमि) जो ज्ञानी आत्मा स्वयं आठ गुणरूप परिणमन कर जावे अर्थात् सिद्धोंके आठ गुण आठ कर्मोंके नाशसे प्राप्त हो जावे (नौ सहकार सजुत्त नौसौ बहत्तरमि न्यान च) अर्हंतोंके नौ केवल लब्धियां प्रगट होती हैं—अनन्तज्ञान, अनंत दर्शन, अनन्त लाभ, अनन्तदान, अनन्तभोग, अनन्त उपभोग, अनन्तवीर्य, क्षायिक सम्यक्त और क्षायिक चारित्र; इनकी प्रगटताका उपाय प्रत्येकके लिये १०८ एकसौ आठ दफे परमात्मा वाचक मंत्रोंका जप व ध्यान है तब नौ गुणोंके लिये नौसो बहत्तर जप होजाते हैं।

नोट—इसका जो अर्थ समझमें आया सो लिखा जाता है, विशेषज्ञ विशेष विचारलें। यदि दूसरा अर्थ इससे अच्छा बैठता हो तो उसे ही समझें व प्रगट करें ॥ १६ ॥

(ति अर्थ अर्थ सहियं) रत्नत्रय सहित जो आत्मा पदार्थ है (सो परिनाम न्यान विन्यान) वही शुद्ध केवलज्ञानरूप परिणमन करता है (लष्यन जिन उवएसं) तीर्थंकरोंके बाहरी लक्षण कहे गये हैं (सहस अट्ठमि लष्यनं ममलं) वे शुद्ध एक हजार आठ लक्षण हैं ॥ १७ ॥

(चौवीस च सजुत्तं) श्री ऋषभादि चौवीस तीर्थंकर इन लक्षणोंके धारी थे (तित्थयर उवन्न न्यान विन्यान) उन तीर्थंकरोंको केवलज्ञान प्रगट होगया था (भय विनस्ट सहकार) व उनका सर्व भय विला गया था (ममल सहावेन सिद्धि सम्पत्त) वे तीर्थंकर अपने शुद्ध स्वभावके कारण सिद्धिका लाभ कर चुके हैं ॥ १८ ॥

(लष्यन जिन उवएस) श्री जिनेन्द्रने अर्हंत तीर्थंकरके भीतरी लक्षण कहे हैं (न्यान विन्यान सहाव ममल च) वे केवलज्ञानी होते हैं व स्वभावसे ही शुद्ध या वीतरागी होते हैं (भय षिपनिक ममल सहाव) उनका सर्व भय बिलकुल क्षय होगया है, उनका स्वभाव सर्व दोषोंसे रहित है (धम्म सहाव लष्यन ममल) वे प्रभु रत्नत्रयमई धर्मके स्वभावरूप होगये हैं। अर्थात् उनकी आत्मामें रत्नत्रय धर्म पूर्णरूपसे विद्यमान है ॥ १९ ॥

(तारन तरन सु समय) वे अरहन्त तारन तरन हैं, आप भवसागरसे पार होंगे व बहुतोंको पार करेंगे। वे ही पर समयसे रहित स्वसमय रूप हैं। अर्थात् आपसे आपमें कल्लोल कर रहे हैं (भय पिपनिक भव्य न्यान विन्यानं) वे निर्भय हैं, वे ही भव्य हैं व वे ही केवलज्ञान स्वरूप हैं (अमिय रस रसिय सु ममल) वे अपने आन-

न्दामृत रसका स्वाद लेते हैं व परम निर्मल हैं (न्यान अन्मोय सिद्धि सपत्तु) वे ज्ञानानन्द स्वरूप हैं इसीके प्रतापसे सर्व कर्मरहित सिद्ध होजाते हैं ॥ २० ॥

(उव उववन्न सु तारनं) वे अरहन्त परमेष्ठी सदा प्रकाशमान रहते हैं। वे अपने तारनेको आप ही जहाज हैं (भय षिपनिक हिययार तारन ममल) वे भव्य जीवोंके भयोंको दूर करनेवाले परम हितकारी शुद्ध तारन हैं या जहाज हैं। उनके उपदेशको सुनकर व उनकी भक्ति करके अनेक भव्य जीव संसारसे पार होजाते हैं (अमिय पयो सहकार) वे ही अमृतपदकी प्राप्तिमें सहायक हैं। जो श्री अरहन्तका ध्यान करता है वह स्वयं अरहन्त होजाता है तथा (कम्म षिपिऊन निव्वुए जनि) वे सर्व कर्मोंका क्षय करके निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं ॥२१॥

(भय विनस्य भवयनं) श्री अरहन्त भगवान भव्य जीवोंके भयोंको नाश करनेवाले हैं (अमिय अन्मोय न्यान विन्यान) आनन्दामृतसे मगन हैं व केवलज्ञान स्वरूप हैं (मह हिययार उववन्न) वे परम हितकारी प्रकाशमान हैं (तारन रूव सरूव विन्यान) वे ही भवसागरसे तारनेवाले ज्ञानस्वरूप हैं ॥ २२ ॥

(भय पिपिय भव्य सहकार) भव्योंके संसार भय मेटनेमें श्री अरहन्त भगवान सहकारी हैं (अमिय रस अन्मोय तारनं ममल) वे आनन्दामृत रसमें मगन हैं, वे ही शुद्ध हैं, वे ही तारनेवाले हैं (त विओय मुच्छयन) उनके पास कोई मूर्छा या परिग्रह नहीं है, वे परम निर्ग्रंथ हैं या परम आकिंचन्य धर्मके धारी हैं (भय षिपिय अमिय दिस्टि उवसंत) वे सर्व भयसे रहित हैं व परम शांत आनन्दामृतका अनुभव करते हैं ॥ २३ ॥

(भय षिपिय अमिय रस रमन) वे निर्भय आनन्दामृत रसमें रमन कर रहे हैं (तारन अन्मोय परम पिउ जुत्त) वे ही तारन हैं, वे ही आनन्दमय हैं, वे ही परम प्रिय हैं (ज बावा अपिर भवध) कोई सांसारिक बाधा व उपसर्ग उनको कष्ट नहीं देसक्ता, वे अविनाशी अव्याबाध हैं (त जन दिस्टि सजोय मिलिय च) वे आपमें मगन हैं, उन्होंने अपनी दृष्टि आपके ही भीतर मिलाली है अर्थात् वे ध्यानमग्न हैं ॥ २४ ॥

(त विओय किम सहिय) श्री तारणस्वामी कहते हैं कि उस शुद्ध स्वरूपका वियोग कैसे सहन किया जावे (ज अदिस्ट च दिस्टि गलियं च) जिस शुद्ध स्वरूपके न अनुभव करनेसे सम्यक्त भाव नहीं रहता है। अर्थात् जिस शुद्ध स्वरूपके अनुभव करनेसे सम्यक्त स्थिर रहता है (भय षिपिय अमिय अन्मोयं) व सर्व भय दूर होजाता है व आनन्दामृतमें मगनता होती है (दिस्टि सहकार नत सौख्यं च) उस आत्मदर्शनरूप सम्यग्दर्शनके प्रतापसे ही अनन्तसुखका अनुभव होता है ॥ २५ ॥

(जिन उव सुन्न सुद्द व) श्री जिनेन्द्र शून्य स्वभावी हैं। उनमें सर्व रागादि परभावोंका अभाव है
(दिप्ति दिस्ट च उवन ममल च) उनमें शुद्ध ज्ञान दर्शनका उदय होरहा है (रुइयिउ पर्म परमप्पउ) वे परम
परमात्मामें रुचिवान हैं (तरन विवान मुक्ति गमनं च) वे ही तारनतरन जहाज हैं, वे ही मुक्ति गमन
करते हैं ॥ २६ ॥

(दत्तं पत्त विसेयं) वे अर्हंत तीर्थंकर भगवान दाता भी हैं व पात्र भी हैं (दत्त ज देइ सुख्य भावेन)
जो अपनेको अपने ही भावसे आनन्दका दान करते हैं (पत्त ममल मद्राव) उन्होंने शुद्ध स्वभावको प्राप्त
कर लिया है (तत्काल संजोय मुक्ति गमन च) वे शीघ्र ही मुक्तिद्वीपमें जाकर मुक्तिश्रीसे मिलाप करेंगे ॥ २७ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें बताया है कि शब्दोंकी सहायतासे शुद्धात्माका मनन करना चाहिये।
यद्यपि आत्मा स्वसंवेदन गोचर है, आपसे ही आपको अनुभव करता है तथापि मन द्वारा उसका मनन
करना उचित है। परमेष्ठी वाचक मंत्रोंका जप करना उचित है। एक मालामें १०८ वार मंत्र पढ़ना चाहिये।
वारवार जप करनेसे व गुणोंका मनन करनेसे ध्यान शुद्धात्मामें जमनेके लिये प्रवृत्त होता है। शब्दोंमें
बड़ी शक्ति है। जो दिव्योपदेश श्री जिनेन्द्र भगवान वाणीसे प्रगट करते हैं उसको गणधरदेव अंग प्रविष्ट
व अंग बाह्य श्रुतमें रचना करते हैं। जैसा ऊपर कहा है कि ६४ मूल अक्षरोंके द्वारा जितने अपुनरुक्त
अक्षर बनते हैं उनके द्वारा जिनवाणीके पदोंकी गणना की गई है। जिनवाणीके द्वारा ही शुद्धात्माका
स्वरूप रागादि व कर्मादिसे भिन्न २ झलकता है। मंत्रोंकी सहायतासे मन एक ओर लगता है। मंत्रोंके
द्वारा धर्मध्यान होता है। अतएव मंत्रोंके सहारे साधकको अभ्यास करना चाहिये। तीर्थंकर भगवानकी
स्तुति भी की है। उनके बाहरी लक्षण व अंतरङ्ग लक्षणोंको बताया है। १००८ जो बाहरी लक्षण हैं।
अनन्त ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्य, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्र भीतरी लक्षण हैं।
वे परम वीतराग हैं, परम कृतकृत्य हैं। तौभी उनके द्वारा धर्म तीर्थका प्रचार होता है। वे यथार्थमें तरन-
तारन हैं। अनेक भव्यजीव उनके धर्मोपदेशसे मुक्तिमार्गको पाकर भवसागरसे पार होजाते हैं। वे जीवन
पर्यंत धर्म तीर्थका प्रचार करते हैं, फिर सर्व कर्मोंसे मुक्त होकर सिद्ध परमात्मा होजाते हैं। श्री तीर्थंकर
भगवानको कोई क्षुधा, तृषा, रोगादिकी बाधा नहीं होती है। वे नित्य आनन्दामृतका पान करते रहते हैं।
उनकी महिमा वचन गोचर नहीं है। वे स्वयं दाता हैं व स्वयं पात्र हैं। वे आपसे ही अपनेको आत्मानन्द

प्रदान करते हैं। तीर्थंकर भगवानकी स्तुतिसे परिणाम निर्मल होते हैं। इस आत्मामें स्वयं तीर्थंकर अरहंत व सिद्ध होनेकी शक्ति है। भव्य जीवोंको उचित है कि वे पक्की श्रद्धा प्राप्त करें और श्रद्धा सहित उनकी भक्ति करें, उनका जप करें, उनके गुणोंका ध्यान करें तो मोक्षमार्गका साधन होगा और यह आत्मा उन्नति करते करते कभी न कभी परमात्माके पदपर पहुंच जायगा।

श्री नागसेन मुनिने तत्वानुशासनमें मन्त्रोंके द्वारा जप व ध्यानकी महिमा भी बताई है—

हृत्पंकजे चतु पत्रे ज्योतिष्मंति प्रदक्षिणं। असिआउसाक्षराणि ध्येयानि परमेष्ठिना ॥ १०२ ॥
ध्यायेद इउएओ च तद्वन्मत्रानुदर्निप। मत्यादिज्ञाननामानि मत्यादिज्ञानसिद्धये ॥ १०३ ॥
सप्ताक्षर महमंत्र मुखरंध्रेषु सप्तसु। गुरूपदेशतो ध्यायेदिच्छन् दूरश्रवादिकं ॥ १०४ ॥

भावार्थ—हृदयमें चार पत्रोंका कमल विचारे, उसमें ज्योतिरूप चमकते हुए व घूमते हुए परमेष्ठी-वाचक असिआउसा अक्षरोंको ध्यावे, एकको मध्यमें चारको चार पत्तोंपर विराजमान करे अथवा अ इ उ ए ओ पांच अक्षरोंको चमकता हुवा ध्यावे, मति आदि पांच ज्ञानोंकी सिद्धिके लिये मुखके भीतर, सात द्वारोंपर सप्ताक्षरी मंत्र 'णमो अरहंताणं' लिखकर ध्यावे। दो आंख, दो नाक, दो कान, एक मुख ऐसे द्वार हैं इससे दूर तक सुनने आदिकी शक्ति बढती है।

---

(३२) जिनेन्द विंद छन्द गाथा ६२८ से ६३८।

परम पय परम परम जिननाह हो, परम भाव उवलद्धओ।
परमिस्टि इस्टि सदर्सिओ, अप्पा परमप्प ममल न्यान सहकार हो ॥ १ ॥
जं केवलि नन्त नन्त संदर्सिओ, तं उवएसु नन्त ममल अन्मोयह।
भय विनस्य भव्व नन्त नन्त तं सहिओ, कम्म पय मुक्ति गमन सहकारह ॥ २ ॥
जिनेन्द विंद लोयलोय ऊर्ध सुद्ध उत्तयं, तं न्यान दिस्टि परम इस्टि पर्म भाव जलपियं।
तं कम्म षेउ मोषु हेउ भव्व लोय पोसियं, आनन्द नन्द चेयनन्द परमनन्द नन्दितं ॥ ३ ॥

कम्म ठग ठितं अनिस्ट ममल भाव छिन्नियं, तं सुद्ध न्यान सुद्ध ञान नन्ता नन्त दसियं ।
त राय दोस मिथ्यभाव सल्य भय निकन्दनो, तं पर्मभाव पर्म उत्तु परम भाव लष्यनो ॥ ४ ॥
अनन्त रूव पर अभाव रूवतीत विक्तयं, सरूव रूव विक्त रूव तिक्त भय निरूपियं ।
अन्यान भाव मन सुभाव मिच्छ भय निकन्दनो, तं न्यान रूव ममल दिस्टि समल भय विहंडनो ॥५॥
अन्यान भाव अनिस्टरूप भय विनस्ट दिस्टियं, पर पर्जाय नन्त थान नन्त न्यान दसियं ।
तं विपय इस्ट अनिष्ट दिष्ट ममरु न्यान खण्डनो, तं पर पर्जाव समल चित्त न्यान सहाइ निकन्दनो ॥६॥
अनन्त नन्त न्यान दिस्टि मोहमय विहण्डनो, निसंक रूप ममल भाव कम्म तिविह गालनो ।
सरीर भाव मन सुभाव इन्द्रि भय निकन्दनो, अतिद्रि भाव न्यान दिस्टि कम्म मल विहण्डनो ॥७॥
तं रयन रूव रूव रूव अप्प रूव चेतनो, आनन्द नन्द सुद्ध नन्द परम नन्द नन्दितो ।
अनेय भेय अनिस्ट रूव पर पर्जाव मुक्तयं, तं ममल न्यान ममल ञान सिद्धि सुह सम्पत्त यं ॥८॥
तं देव देव पर्म देव अप्प देव चेतनो, पर सुभाव अनिस्ट रूव अव सहाय निकन्दनो ।
जोराय भेय अप सहाव ति अर्थ अर्थ जोयनं, सो पंच दिप्ति न्यान इस्ट मुक्ति पंथ सोहिनं ॥९॥
अन्मोय न्यान गुन अनन्त सुद्ध पंथ दसियं, ति सुद्ध भाव जिन सहाव विपय राग तिक्तयं ।
सो भव्व लोय न्यान उत्त ममल भाव जुत्तओ, सु कम्मु मुक्कु मुक्ति पथ सिद्धि सुद्ध सम्पत्तओ ॥१०॥

घत्ता—

इय सहाव संजुत्तओ, न्यान मई अनुरत्तओ ।
न्यानेन न्यान आलम्बनओ, परमप्पु सिद्धि सम्पत्तओ ॥ ११ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(परम पय परम परम जिननाह हो) श्री जिनेन्द्र परमपदमें रहनेवाले सब महान् आत्माओंमें महान् हैं। देवाधिदेव महादेव हैं (परम भाव उवलद्धओ) उन्होंने परम शुद्धोपयोगका लाभ कर लिया है (परमिस्टि इरिट संदर्सिओ) वे परमेष्ठी हैं उन्होंने अपने इष्टपद मुक्तिपदका अनुभव कर लिया है (अप्पा परमप्पा ममल न्यान सहकार हो) शुद्ध ज्ञान या स्वसंवेदन ज्ञानकी सहायतासे आत्मा परमात्मा होजाता है ॥१॥

(न केवलि नन नन सदर्सिओ) श्री जिनेन्द्रने केवलज्ञान व केवलदर्शनसे अनन्तानन्त द्रव्य गुण पर्यायोंको देख लिया है (त उवए सुनन ममल अनमोयइ) तथा उन्होंने ऐसा उपदेश किया है जिससे यह आत्मा अनन्तकालके लिये शुद्ध और आनन्दमय होजावे (भय विनस्य भव्व नत नत त सहियो) उस शुद्ध ज्ञानानन्द भावके अनुभवसे भव्योंको सर्व भय और अनन्तानन्त कर्मपुद्गल क्षय होजाते हैं (कम्म षय मुक्तिगमन सहकारइ) जब कर्मोंका पूर्ण क्षय होजाता है तब यह आत्मा मुक्तिमें चला जाता है ॥ २ ॥

(जिनेन्द विन्द कोय लोय ऊर्ध सुद्ध उत्तय) श्री जिनेन्द्र भगवान लोकालोकके ज्ञाता हैं व श्रेष्ठ हैं। उन्होंने शुद्ध स्वरूपका कथन किया है (त न्यान दिस्टि परम इरिट पर्म भाव जलपियं) वे प्रभु ज्ञान दृष्टिको रखनेवाले हैं। भव्यजीवोंके लिये परम प्रिय हैं, वे शुद्धोपयोगरूप आत्मानुभवसे उत्पन्न शांत अमृतमई जलका सदा पान करते रहते हैं (त कम्म खेउ मोख हेउ भव्व लोय पोसियं) उन्होंने कर्मोंके क्षयका व मोक्षमार्गका उपदेश देकर भव्यजीवोंको सन्तोषित किया है (आनद नद चेयनंद परमनदि नंदितं) वे भगवान आत्मानन्दमें मगन हैं, वे चिदानन्दी हैं, वे उत्कृष्ट अतीन्द्रिय सुखमें रमण कर रहे हैं ॥ ३ ॥

(कम्म ठग ठित अनिस्ट ममक भाव छिंसियं) श्री जिनेन्द्रने कर्मरूपी ठगके अशुभ फलको अपने शुद्धभावके द्वारा नाश कर दिया है अर्थात् कर्मोंका क्षय कर दिया है। जिन कर्मोंसे भव भवमें भटकना होता है (त सुद्ध न्यान सुद्ध ज्ञान नन्त नन्त दर्सिय) उन्होंने शुद्ध ज्ञानके द्वारा व शुद्ध आत्मध्यानके द्वारा अनन्तानन्त पदार्थोंको देख लिया है (त राय दोस मिथ्याभाय सल्य भय निकन्दनो) श्री जिनेन्द्र भगवानने रागद्वेष, मिथ्यात्व शल्य व सर्व भय निवारण कर दिया है, वे पूर्ण निःशङ्क व पूर्ण वीतरागी हैं (तं पर्मभाव पर्म उत्तु परमभाव लष्यनो) वे उत्कृष्ट भावमें तल्लीन हैं। वे शुद्धोपयोगका अनुभव करते हैं। उन्होंने इसी शुद्धोपयोगमई अनुभवका कथन किया है ॥ ४ ॥

(अनत रूव पर अभाव रूवातीत विक्तयं) उन श्री जिनेन्द्रके भावोंमें अनन्त पर भावोंका अभाव है । वे रूपातीत हैं ऐसा प्रगट है । वे अमूर्तीक हैं तथा सिद्धरूप है (सरूव स्व विक्तरूव तिक्त भय निरूविय) उन्होंने ऐसा निरूपण किया है कि आत्माका स्वरूप प्रत्यक्ष अनुभवगोचर है तथा पूर्ण भय रहित है, कोई उसका अभाव या उसका नाश या खण्डन नहीं कर सक्ता है । (अन्यान भाव मन सुभाव मिच्छ भय निकंदनो) उन्होंने अज्ञान भाव, मनके संकल्प विकल्प, मिथ्यात्वभाव, व सर्व भय नाश कर दिये हैं (तं न्यान रूव ममल दिस्टि समल भय विहडनो) वे ज्ञान स्वरूपी शुद्ध दृष्टिधारी हैं । वहां पुनः अशुद्ध होनेका भय नहीं रहा है, क्योंकि घातीय कर्मोंका क्षय होगया है ॥ ५ ॥

(अन्यान भाव अनिस्ट रूव भय विनस्ट दिस्टयं) केवलीके अज्ञान भाव जो अहितकारी है उसका सर्व भय विनाश होगया है अर्थात् निर्मल ज्ञान दर्शन प्रगट होगया है (पर पर्जाय नत थान नत न्यान दर्सिय) कर्म जनित पर परिणतिके अनन्त स्थान होते हैं उन सबको श्री जिनेन्द्रके अनंत ज्ञानने देख लिया है (तं विषय इस्ट अनिस्ट दिस्ट ममल न्यान खडनो) पांचों इंद्रियोंके विषय इष्ट हैं या अनिष्ट हैं, इस रागद्वेषकी दृष्टिको शुद्ध ज्ञानने खण्डन कर दिया है अर्थात् सर्व जगतके पदार्थोंको केवली भगवान समभावसे देखते हैं, वे परम वीतरागी हैं (त पर पर्जाव समल चित्त न्यान सहाइ निकंदनो) उन्होंने पर परिणति जो अशुद्ध मनसे होती है उन सबको निर्मल ज्ञानकी सहायतासे दूर कर दिया है ॥ ६ ॥

(अनत नत न्यान दिस्टि मोहमय विहडनो) श्री जिनेन्द्रकी अनन्तानन्त पदार्थोंको जाननेवाली ज्ञान दृष्टिके प्रगट होते ही मोह तथा मदका नाश होगया है (निसक रूव ममल भाव कम्न तिविह गालनो) परम निशङ्क व निर्भय शुद्ध भावके द्वारा वे तीनों ही प्रकारके कर्मोंको द्रव्य कर्म ज्ञानावरणादिको, भाव कर्म रागादिको, नोकर्म शरीरादिको गला देते हैं (सरीर भाव मन सुभाव इन्द्रि भय निकन्दनो) उन भगवानने शरीर सम्बन्धी ममत्व व मन सम्बन्धी संकल्प विकल्प, इंद्रियोंकी इच्छाएँ व सर्व भय नाश कर दिया है (अतिंद्रि भाव न्यान दिस्टि कम्म मल विहण्डनो) उन्होंने अतीन्द्रिय भाव स्वरूप ज्ञान दृष्टिके द्वारा अर्थात् आत्मज्ञानके अनुभवके द्वारा सर्व कर्मका मैल नाश कर दिया है ॥ ७ ॥

(त रयन रूव रूव रूव अप्प रूव चेतनो) श्री जिनेन्द्रने तीन रत्नोंका स्वरूप जिसमें प्रगट है, अर्थात् जहां शुद्धात्माकी प्रतीतिरूप निश्चय सम्यक्त है, शुद्धात्माका ज्ञानरूप निश्चयज्ञान है, व शुद्धात्मामें

ममलपाहुड ॥२७३॥

तन्मयरूप निश्चय सम्यक्चारित्र है ऐसे अभेदरूप आत्माके स्वभावका अनुभव किया है (आनन्द नन्द शुद्ध नन्द परम नन्द नन्दितो) वे जिनेन्द्र आनन्दमें मगन हैं, उनका आनन्द राग रहित शुद्ध वीतराग है। वे परमानन्दमई अनन्त सुखका स्वाद लेरहे हैं (अनेय मेय अनिस्ट रूव प। पर्जाव मुक्तय) अनेक प्रकारके अशुभ फलको उत्पन्न करनेवाली पर परिणतिको या अशुद्ध परिणतिको उन्होंने क्षय कर दिया है (त ममल न्यान ममल ज्ञान सिद्धि सुइ सम्पत्तं) उन्होंने अपने शुद्ध ज्ञानसे, शुद्ध ध्यानसे, परम शुक्लध्यानसे सिद्धिका सुख प्राप्त कर लिया है ॥ ८ ॥

(तं द। देव पर्म देव अप्प देव चेतनो) वे ही देवोंके देव महादेव हैं। वे अपने आत्मारूपी देवका अनुभव कर रहे हैं (पर सुभाव अनिस्ट रूव अप सहाय निकन्दनो) उन्होंने कर्मजनित व अहितकारी विभावभावोंको अपने आत्माकी रमणरूप परिणतिसे नाश कर दिया है (जोएय मेय अप सहाव ति अथ अथ जोयन) जिन्होंने आत्माके स्वभावको परसे भेदरूप–परसे भिन्न अनुभव किया है, तथा जो रत्नत्रयमई आत्मा पदार्थको देख रहे हैं (सो पच दिप्ति न्यान इस्ट मुक्ति पथ सोहनो) उनके भीतर मतिश्रुतादि पांच ज्ञानोंका अभेदरूप ज्ञान जो परम इष्ट है व मोक्षका मार्ग है, सो शोभायमान होरहा है ॥ ९ ॥

(अन्मोय न्यान गुन अनन्त सुद्ध पथ दर्सियं) उन केवली भगवानने परमानन्दमई ज्ञान गुणको जो अनंत है व शुद्ध है व जिसका अनुभव मोक्षका मार्ग है उसको देख लिया है (ति सुद्ध भाव जिन सहाव विषय राग तिक्तय) उन्होंने रत्नत्रयमई शुद्ध भावसे अर्थात् वीतराग विज्ञानमई भावसे पांचों इन्द्रियोंका विषय राग दूर कर दिया है (सो भव्व लोय न्यान उत्त ममल भाव जुत्तओ) इसलिये भव्यजीव ऐसे ऊपर कथित ज्ञानमई शुद्ध भावसे अपनेको युक्त कर या स्वयं शुद्ध ज्ञान स्वभावमें रमण कर (सु कम्म मुक्कु मुक्ति पथ सिद्धि सुद्ध सम्पत्तओ) कर्मोंसे छूटकर स्वानुभवरूप मुक्ति–मार्गके द्वारा मोक्षका अनन्त सुख पालेते हैं ॥ १० ॥

(इय सहाव सजुत्तओ) भव्यजीव ऊपर जैसा कहा है ऐसे शुद्ध स्वभावसे अपनेको युक्त करके (न्यानमई अनुरत्तओ) ज्ञानमई भावमें तल्लीन हो करके (न्यानेन न्यान आलम्बनओ) ज्ञानके ही द्वारा ज्ञानका आलम्बन लेकर (परमप्पु सिद्धि सपत्तओ) परमात्मपदकी सिद्धि पालेते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें भी श्री तारणस्वामीने श्री अरहन्त परमात्मा जिनेन्द्रका गुणगान किया है, उनकी अन्तरंग आत्माकी महिमा बताई है। श्री जिनेन्द्र भगवान देवाधिदेव परम देव है। परम शुद्धो-

पयोगमें तल्लीन हैं। वे मोक्ष भावका स्वयं अनुभव कर रहे हैं। उनके भीतर केवलज्ञान व केवलदर्शन प्रगट है, जिनसे वे एक ही समय अनन्तानन्त द्रव्य गुण पर्यायोंको जान रहे हैं। वे अनन्त सुखमें मगन होते हुए परमानन्दमय अमृतका सदा पान कर रहे हैं। घातीय कर्मोंके क्षय कर देनेसे उनके भीतर राग-द्वेषरूप परिणतिका अभाव है। न कोई वहां मोह है, न मद है, न इच्छा है, न इन्द्रियोंके विषयोंकी चिंता है, न कोई सांसारिक भय है, न कोई मिथ्यात्व है, वे क्षायिक सम्यग्दर्शन व क्षायिक चारित्रके धारी हैं। वे अमूर्तीक आत्माको प्रत्यक्ष ज्ञान दृष्टिसे देख रहे हैं। उनके भीतरसे अज्ञान चला गया है। उनके भीतर कोई विभाव परिणति नहीं होसक्ती है। वे परम समताभावके धारी हैं। उनके भीतर न शरीरका ममत्व है न भाव मनका हलन चलनरूप व्यापार है, न कोई संकल्प विकल्प है। वे अभेद रत्नत्रय स्वरूप आत्माका अनुभव कर रहे हैं, वे परम सुखी हैं, वे निरन्तर परमानन्दका स्वाद लेते हैं। वे ही श्रेष्ठ देव हैं। वे अपने आत्मारूपी देवका दर्शन कर रहे हैं।

ऐसे परमात्मा अरहन्त भगवानका स्वरूप जानना चाहिये। वे आयुके अन्तमें सर्व प्रकार कर्मोंसे मुक्त होकर व पूर्ण शुद्ध होकर शरीर रहित परमात्मा होजाते हैं, परम सिद्धपद पालेते हैं। श्री तारण-स्वामी कहते हैं कि हे भव्यजीवो ! तुम भी इसी स्वभावका मनन करो। राग द्वेष छोडकर आत्माका चिंतवन करो। केवल एक निज स्वभावका अनुभव करो, आपसे आपका ही आलम्बन लो, परका सहारा छोडो। कर्मचेतना व कर्मफलचेतनाको त्यागकर ज्ञान चेतनामें रमण करनेसे स्वानुभव होता है। यही मोक्षमार्ग है। जो स्वानुभव करेगा वह अवश्य उन्नति करते २ परमात्मपदको पालेगा।

श्री नागसेन मुनि तत्वानुशासनमें अर्हत् ध्यानके सम्बन्धमें कहते हैं—

परिणमते येनात्मा भावेन स तेन तन्मयो भवति। अर्हद्ध्यानाविष्टो भावार्हः स्यात्स्वयं तस्मात् ॥ १९० ॥
येन भावेन यद्रूपं ध्यायत्यात्मानमात्मवित्। तेन तन्मयता याति सोपाधि स्फटिको यथा ॥ १९१ ॥
गुरूपदेशमासाद्य ध्यायमानः समाहितैः। अनंतशक्तिरात्मायं मुक्तिं भुक्तिं च यच्छति ॥ १९६ ॥
ध्यातोऽर्हत्सिद्धरूपेण चरमाङ्गस्य मुक्तये। तद्ध्यानोपात्तपुण्यस्य स एवान्यस्य मुक्तये ॥ १९७ ॥

भावार्थ—जिस भावसे आत्मा परिणमन करता है उसी भावसे वह तन्मय होजाता है। जब कोई अर्हतके ध्यानमें लीन होता है तब वह स्वयं उस ध्यानके होनेसे भाव अर्हंत होजाता है। आत्मज्ञानी

जिस भावसे जिस स्वरूप आत्माको ध्याता है वह उसी भावसे तन्मय होजाता है। जैसे जिस रंगकी उपाधि स्फटिक पाषाणके लगेगी वह उस रंग रूप ही झलक जायगा। जो समाधान मन करके गुरुके उपदेशको पाकर आत्माको ध्याते हैं तब यह अनन्त शक्तिका धारी आत्मा ध्याताको मुक्ति तथा भुक्ति दोनों देता है। जो कोई तद्भव मोक्षगामी अर्हंत व सिद्धका ध्यान करेगा वह मुक्त होजायगा। जो चरमशरीरी नहीं है वह उस ध्यानसे पुण्य बांधकर स्वर्गके भोग पाएगा और परम्परा मोक्ष होजायगा।

(३३) पय संजोय छन्द गाथा ६३९ से ६४९ तक।

पय संजोय नन्द आनन्दह, पय परम न्यान संजुत्तओ।
भय षिपिय नन्द आनन्दह, ममल सिद्धि सम्पत्तओ ॥ १ ॥
उवन न्यान ममल ज्ञान, विन्यान विन्द दरसियो।
सु अर्क ओत अय जुत्त, सु मुक्ति पंथ रत्तओ ॥ २ ॥
सु कमल ओत रमन जुत्तु, अमिय रस संजुत्तओ।
सु सल्य तिक्त सल्य मुक्कु, ससंक भय गलंतओ ॥ ३ ॥
सुनन्द नन्द चेयनन्द, सहजनन्द नन्दिओ।
सु परमनन्द परम ओत, सु परम सिद्धि रत्तओ ॥ ४ ॥
सु राग ओत सरनि जुत्तु, भवह भव भमंतओ।
सु भय विनास भव्वु ओत, अमिय रस रसंतओ ॥ ५ ॥
ॐकार विंद सहजनन्द, विन्यान विंद दरसिओ।
सर्वार्थ सिद्धि लोय लोय, सु रमन ओत जुत्तओ ॥ ६ ॥

सु अमिय ओत रमन जुत्तु, विन्यान विंद दरसिओ ।
सु सुर सहाव पद संजुत्तु, परम तत्त रत्तओ ॥ ७ ॥
तं दिस्टि जुत्तु ममल ओत, उत्पन्न इस्ट इस्टिओ ।
तं षिपक दिस्टि मुक्ति इस्टि, सु भय विनस्व भव्वओ ॥ ८ ॥
तं कमल ओत रमन जुत्तु, अमिय रस रसंतओ ।
उवन न्यान ममल ज्ञान, ति अर्थ अर्थ जुत्तओ ॥ ९ ॥
सु रमन ओत कमल रत्तु, सिद्धि सुद्ध सम्पत्तओ ।
तं भय विनस्य भव्वु ओत, ममल सिद्धि सम्पत्तओ ॥ १० ॥

घत्ता—

इय सहाव उववन्नो, परम नन्द तं नन्द मओ ।
भय सल्य संक विलयन्तु, ममल मुक्ति सम्पत्तओ ॥ ११ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(पय सजोए नद आनदह) परमात्मपदके संयोगसे आनन्दमें मगनता होती है। परमात्माके ध्यानसे अतीन्द्रिय आनंदका लाभ होता है (पय परम न्यान सजुत्तओ) वह पद श्रेष्ठ केवलज्ञानसे पूर्ण है (भय पिपिय नद आनदह) उस आनंदके भीतर मगनता होनेसे सर्व संसारका भय क्षय होजाता है (ममल सिद्धि सात्तओ , तथा इसी आत्मानंदमें लय होनेसे ही सर्व कर्ममल कट जाता है और यह आत्मा सिद्धगतिको प्राप्त कर लेता है ॥ १ ॥

(उवन न्यान ममल झ्यान विन्यान विंद दरसिओ) सम्यग्दर्शनके साथ ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान होजाता है व निर्मल आत्मध्यान प्रारंभ होजाता है तब भेद ज्ञानपूर्वक आत्माका अनुभव झलक जाता है (सु अर्क ओत ऊर्द्ध जुत्त सु मुक्ति पथ रत्तओ) तब ज्ञान ज्योतिसे पूर्ण श्रेष्ठ भाव परमात्म रूप निज भावमें आजाता है। परमात्म स्वरूपकी भावना दृढतासे होती है। इस स्वात्मानुभवमें लीन होना ही मोक्षमार्गमें लीन होना है, क्योंकि स्वात्मानुभवमें रत्नत्रयकी एकता है अतएव वही मोक्षमार्ग है ॥ २ ॥

(सु कमल ओत रमन जुत्तु अमिय रस सजुत्तओ) परमात्मारूपी कमल सब तरफसे आत्माकी रमणता सहित और आनन्दामृत रससे पूर्ण है (सुसल्य तिक्त मुक्कु ससक भय गलंतओ) ऐसे परमात्माके स्वभावमें लय होनेसे सर्व शल्यें छूटकर बिलकुल नष्ट होजाती हैं, कोई भी शंका नहीं रहती है न कोई भय रहता है ॥३॥

(सुनद नद चेयनद सहजनंद नदिओ) परमात्मा अरहन्त भगवान परमानंदमें मगन हैं। वे चिदानंद या सहजानन्दमें आनन्दित हैं। वहां कोई इंद्रियजनित सुख नहीं है (सु परम नद परम ओत सु परम सिद्धि रत्तओ) वे परमानन्दसे सर्व तरफसे उत्तम प्रकारसे पूर्ण हैं मानो वे परम सिद्धि जो मुक्ति है उसीमें रमण कर रहे हैं ॥४॥

(सुराग ओत सरनि जुत्त भवह भव भमतओ) जो कोई शुभ या अशुभ रागसे भरे हुए मार्गमें चलते हैं वे भवभवमें भटकते फिरते हैं। कभी पुण्यसे सुगति, कभी पापसे दुर्गति पालेते हैं। उनको शुद्धोपयोग या वीतराग विज्ञानका पता नहीं है जो साक्षात् मोक्षमार्ग है (सु भय विनास भव्वु ओन अमिय रस रसंतओ) भव्यजीव संसारसे उदास हो सर्व सांसारिक भ्रमणके भयसे छूट जाते हैं और अपने भीतर आनन्दामृत रससे पूर्ण होकर उसी रसका स्वाद लेते रहते हैं ॥ ५ ॥

(ॐकार विन्द सहजनन्द विन्यान विन्द रमिओ, ॐ मंत्रके जप व ध्यान द्वारा सहजानन्दसे पूर्ण आत्माका अनुभव वे भेदज्ञान द्वारा करते हैं सर्वार्थ सिद्धि लोय लोय सु रमन ओत जुत्तओ) इसी स्वानुभवसे उनका सर्व मोक्ष पुरुषार्थ सिद्ध होजाता है। वे लोकालोक प्रकाशक ज्ञानमें सर्व तरफसे रमण किया करते हैं ॥ ६ ॥

(सु अमिय ओत रमन जुत्तु विन्यान विन्द रमिओ) भव्यजीव आत्मज्ञानी अमृत रससे पूर्ण आनन्दमें रमण करते हुए ज्ञान स्वरूपका अनुभव करते रहते हैं (सु सुर सहाव पद मजुत्तु परम तत्त रत्तओ) वे उत्तम शांत सूर्यके स्वभावको झलकानेवाले पदको धारकर परमात्मतत्वमें रत होरहे हैं। आत्मा सूर्यके समान स्वपर प्रकाशक होकर भी परम शांत है ॥ ७ ॥

(त दिस्टि जुत्तु ममल ओत उवन्न इस्ट इस्टिओ) भव्यजीव उस आत्मानुभवको करते हुए सब तरफसे कर्म मल रहित होते हुए अपने इष्टपद परमात्मपदका प्रकाश कर देते हैं (त षिपक दिस्टि मुक्ति इस्टि सु भय विनस्य भव्वओ , वे भव्य क्षायिक सम्यग्दर्शनके द्वारा मुक्तिके परम प्रेमी होते हुए सर्व सांसारिक भयोंसे छूट जाते हैं ॥ ८ ॥

(त कमल ओत रमन जुत्तु अमिय रस रसतओ) वे भव्यजीव आनन्दमें सर्व तरफसे रमण करनेवाले कमल

समान परमात्माका स्वभाव मनन करते हुए आनन्दामृत रसके स्वादी बने रहते हैं (उक्त न्यान ममल ज्ञान ति अर्थ अर्थ जुत्तओ) उनको केवलज्ञान प्राप्त होजाता है। वे शुद्ध आत्मध्यानी रत्नत्रय सहित पदार्थका अनुभव करते रहते हैं ॥ ९ ॥

(सु रमन ओत कमल रत्तु सिद्धि सुइ सम्पत्तओ) आत्माज्ञानी भव्यजीव आनन्दकी सर्व तरफसे मगनता रखनेवाले परमात्मारूपी कमलमें भ्रमरके समान लवलीन होकर सिद्ध गतिका सुख प्राप्त करते हैं (तं भय विनस्य भव्वु ओत ममल सिद्धि मम्पत्तओ) वे भव्यजीव सर्व भयोंका क्षय करके पूर्ण सर्व तरफसे कर्मोंके मलसे रहित होकर मुक्ति पालेते हैं ॥ १० ॥

(इय सहाव उववन्नो) इसतरह परमात्मपदके ध्यानसे आत्माका स्वभाव प्रगट होजाता है (परम नंद त नंद मओ) जो परमानन्दमय है, अपने हीमें मगनता रूप है (भय सल्य सक विलयतु) तब सर्व भय, सर्व शंकाएँ विला जाती हैं (ममल मुक्ति मग्गओ) और यह आत्मा कर्ममलसे रहित होकर मुक्तिको अनुभव करता है, संसारसे छूट जाता है ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें परमात्मपदकी महिमा है। परमात्मा चार घातीय कर्मोंसे रहित होते हैं अतएव वे पूर्ण ज्ञानवान, पूर्ण दर्शनवान, परम वीतरागी, परमानन्दमई, अनंतवीर्यके धारी, अपने स्वरूपके आनन्द रसमें मगन रहते हैं। उनके भावोंमें कोई शल्य नहीं रहती है, न कोई भय रहता है, न कोई शंका रहती है। ऐसे परमात्माका सच्चा स्वरूप समझकर जो भव्यजीव अपने आत्माको भी निश्चयसे परमात्माके समान जानता है वह वारवार अपने स्वरूपका मनन करते हुए सम्यग्दर्शनका लाभ कर लेता है। सम्यक्तके प्रकाश होते ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान होजाता है और स्वरूपाचरण चारित्र प्रगट होजाता है, भेदविज्ञानकी कला प्रगट होजाती है। भेदविज्ञानके प्रतापसे अपना आत्मा सर्व विभावोंसे व कर्ममलसे रहित शुद्ध दिखता है। इसी भेदविज्ञानका अभ्यास करनेसे आत्माकी ओर प्रेम बढ़ जाता है तब आत्मानुभव जागृत होजाता है। आत्मानुभवमें मोक्षमार्ग है क्योंकि वहां आत्माका श्रद्धान, ज्ञान, व आचरण तीनों ही हैं।

आत्मानुभव होनेपर स्वरूपानन्दमें मगनता होती है और अपूर्व अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद आता है। इसी आनन्दके अनुभवको ध्यान-अग्निका झलकना कहते हैं। यह अग्नि कर्मोंको जलाती है।

इसीसे क्षायिक सम्यग्दृष्टी भव्यजीव उन्नति करता हुआ साधु होजाता है। इसी स्वात्मानुभवके अभ्यासको करते हुए वह क्षपकश्रेणी चढकर चार घातीय कर्मोंका क्षय करके स्वयं अर्हंत परमात्मा होजाता है। और फिर आयुपर्यंत भव्यजीवोंको दिव्य उपदेशका प्रकाश करता है, अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है। मोक्षमें भी स्वरूपानन्दमें मगन रहता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि बहिरात्मा पदको त्यागो, अन्तरात्मा या सम्यक्ती होजाओ ओर परमात्माके ध्यानसे अपनेको परमात्मपदमें पहुंचाकर अनन्तकालके लिये भवभ्रमणसे छूट जाओ और नित्य ही ज्ञानानन्दका अनुभव करो।

श्री नागसेन मुनि तत्वानुशासनमें कहते हैं—

दृग्बोधसाम्यरूपत्वाज्जानन् पश्यन्नुदासिता। चित्सामान्यविशेषात्मा स्वात्मनैवानुभूयता ॥ १६३ ॥
कर्मजेभ्यः समस्तेभ्यो भावेभ्यो भिन्नमन्वहं। ज्ञस्वभावमुदासीनं पश्येदात्मानमात्मना ॥ १६४ ॥
तदेवानुभवश्चायमेकाग्र्यं परमृच्छति। तथात्माधीनमानन्दमेति वाचामगोचरं ॥ १७० ॥

भावार्थ—यह आत्मा दर्शन, ज्ञान, व साम्यरूपको धरनेवाला है। जो कोई अपने आत्माहीके द्वारा अपने ही चेतना स्वभावधारी दर्शनज्ञान मई आत्माको श्रद्धानमें लाता हुआ, जानता हुआ व सर्वसे वैरागी होकर उसीको ध्याता है वह स्वात्मानुभवको पाता है। ध्याता अपने आत्माके द्वारा अपने आत्माको ऐसा देखे कि यह आत्मा सर्व कर्मोंसे रहित है, सर्व विभावोंसे रहित है, ज्ञानस्वभावी है व उदासीन है वही मैं हूं। इसी ही आत्माका अनुभव करते हुए ध्याता परम एकाग्रताको प्राप्त कर लेता है तब वह वचनोंसे अगोचर स्वाधीन आनन्दको पालेता है। यही मोक्षमार्ग है। इसी आनन्दकी मगनतामें यह स्वयं सिद्ध होजाता है।

---

(३४) सुद्ध वियार या अचष्य दर्सन गाथा ६६० से ६७४ तक।

सव्द वियार संजुत्तं, सव्दं सहकार उवन न्यानं च।
तारन तरन सहावं, भय षिपिय अभय न्यान ममलं च ॥ १ ॥
अचष्यं सव्द स उत्तं, अचष्यं परम तत्त पद विन्दं।

अचष्यं अनन्त नन्तं, अचष्य सहावेन मुक्ति संदर्स ॥ २ ॥
अचष्यं ममल सहावं, ममलं दिट्ठी च अभय भय रहियं ।
भय जिनस्य भवयनं, न्यानं अन्मोय मुक्ति संदर्स ॥ ३ ॥
अचष्यं अरूव रूवं, रूवातीत च विक्त रूवं च ।
पर पर्जय विलयन्ती, न्यान वलेन कम्म गलियं च ॥ ४ ॥
अचष्य सहाव स उत्तं, चष्य सहकार समल विलयन्ती ।
परजय सरनि विमुक्कं, ममल सहावेन मुक्ति सदर्स ॥ ५ ॥
अचष्य षिपनिक रूवं, षिपिओ संसार सरनि मोहंधं ।
पर पर्जायं, षिपनं, न्यान वलेन निव्वुए जंति ॥ ६ ॥
अचष्यं दिस्टि इस्टं, अनिस्ट अन्यान उवन विलयन्ती ।
विलयं मिथ्य सहावं, इस्टं दिस्टं च कम्म संषिपनं ॥ ७ ॥
अचष्य अलष्य लषियं, लषियं विन्यान नन्त सहकारं ।
नन्तं ममल सहावं, भय षिपनिक नन्त कम्म विलयन्ती ॥ ८ ॥
अचष्य दर्सन दर्स, अचष्य रूवेन पर्जाव विलयन्ती ।
जन रंजन सहाव गलियं, गलियं रागं च न्यान विन्यान ॥ ९ ॥
अचष्यं अदिस्ट दिस्टं, दिस्टि सहकार अदिस्ट रूवेन ।
इस्ट सहाव सदिस्टं, अनिस्ट दिस्टं च पर्जाव विलयती ॥ १० ॥
अचष्यं अभेय भेयं, अनेय सहकार लोय अवलोय ।
अचष्य सहाव सुममलं, ममल दिस्टी च पर्जाव विलयंती ॥ ११ ॥

अचष्य चष्य स उत्तं, अदिस्ट दिस्टी च न्यान सहकारं ।
अनन्त नन्त पर्जावं, न्यान दिस्टी च पर्जाव विलयन्ती ॥ १२ ॥
अचष्यं नन्त सहावं, नन्तानन्तं च अनन्त विषयं च ।
विषयं च विसय सल्यं, न्यानं अन्मोय विषय विस विलय ॥ १३ ॥
अचष्यं इन्द्रिय सहियं, आलस परपंच विभ्रम सहिय ।
अन्यान सहाव सदिट्ठं, ममलं अन्मोय सयल विलयन्ती ॥ १४ ॥
आलस सहाव उक्तं, आलस उक्तं च वयन नहु सहियं ।
जिन उवएस भयभीयं, भय षिपनिक सहकार आलसं विलयं॥ १५ ॥
आलस विसेष असुद्धं, जिन उत्तं वयन आलसं उत्तं ।
मिथ्या सहाव विषयं, न्यानं अन्मोय आलसं गलियं ॥ १६ ॥
परपंच नन्त नन्तं, पर्जय सहकार ससंक सल्य च ।
पर्जय संक सहावं, न्यानं अन्मोय संक वलयन्ती ॥ १७ ॥
अचष्य ससंक सहियं, जिन उत्तं भयभीउ ऊसर सर पसरं ।
दिट्ठी चंचल चवलं, भय षिपनिक सल्य संक विलयन्ती ॥ १८ ॥
अचष्य ससंक सहावं, जिन उत्तं वयन अनन्त भय उत्तं ।
दिट्ठी अंग पयत्थं, वंकज रूवेन प्रपच पर्जायं ॥ १९ ॥
वयनं च कम्म सल्यं, उत्पन्नं अनन्त वेयनं उत्तं ।
अन्यान पर्जाय दिट्ठी, न्यानं अन्मोय ससंक विलयन्ती ॥ २० ॥

अचष्यं विभ्रम सहियं, अनन्त रूवेन पर्जाव सक सल्यं ।
विभ्रम नन्त अनन्तं, ममल अन्मोय विभ्रम विलयंती ॥ २१ ॥

अचष्यं विभ्रम सहियं, ज्योतिष कल्राप परपंच दर्स च ।
अनेयं भयभीय, न्यानं अन्मोय भयभीउ विलयन्ति ॥ २२ ॥

अचष्यं सहाव उत्तं, जनरंजन सुभाव ससंक उप्पत्ती ।
जन ओतं जन सहियं न्यानं अन्मोय जनरंजनं विलयं ॥ २३ ॥

अचष्यं विसेष उत्तं, जन सहकार पर्जाव पर पिच्छं ।
अचष्यं ममल सहावं, न्यानं अन्मोय सिद्धि सम्पत्तं ॥ २४ ॥

जन उत्त संक सहियं, कल्पं पर्जाव दिस्टि सदर्सं ।
जिन उत्तं सुध सारं, न्यानं अन्मोय विकल्पं विलयं ॥ २५ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(सव्द विगार सजुत्त) शव्दोंके द्वारा विचार होते हैं (सव्दं सहकार उवन न्यानं च) शव्दोंकी मददसे शास्त्रोंपर विचार करते हुए ज्ञानकी उत्पत्ति होती है (तारन तरन सहावं) जिनवाणीके शव्दोंके मूल प्रकाशक तारण तरण स्वभावधारी श्री अरहन्त परमात्मा हैं (भय विपिय अभय न्यान ममलं च) जिनके वचनोंसे सर्व संसारका भय दूर होजाता है तथा सर्व भयरहित–शंकारहित शुद्ध केवलज्ञान प्राप्त होजाता है ॥ १ ॥

(अचष्य सव्द स उत्त) अचक्षु शव्दका यह भाव कहा गया है (अचष्यं परम तत्त पदविंद) जो अचक्षु अर्थात् मन परमात्मतत्वका मनन करे या अचक्षु अर्थात् आत्मा परमात्म तत्वका अनुभव करे। जहां अपने ही शुद्धात्माका मनन तथा अनुभव है वहीं यथार्थ अचक्षुदर्शन है (अचष्यं नत नंत) अनन्तानन्त पदार्थ इंद्रियगोचर नहीं है-ज्ञान गोचर हैं। शुद्धात्मा इंद्रियातीत होकर सर्व अनन्तानन्त ज्ञेयोंको जानता है (अचष्य सहावेन मुक्ति सदर्सं) जो अपने आत्माको इंद्रियोंसे व मनसे भिन्न स्वाभाविक रूपसे अनुभव करता

है वह इस स्वात्मानुभवके प्रतापसे मुक्तिके स्वभावका अनुभव करता है। क्योंकि मुक्ति भी स्वात्मानुभवरूप है ॥ २ ॥

(अचप्यं ममल सहावं) आत्माका दर्शन शुद्ध स्वभाव रूप है (ममल दिट्ठि च अभय भय रहियं) शुद्ध आत्मदर्शनके होनेसे निर्भयता प्राप्त होजाती है व सर्व संसारका भय मिट जाता है (भय विनस्य भवयनं) आत्मानुभवके लाभसे भव्य जीवोंका भय नाश होजाता है क्योंकि सम्यग्दृष्टी आत्माको सदा अविनाशी व सदानन्दमय अनुभव करता है (न्यान अन्मोय मुक्ति मर्म) ज्ञानानन्दका अनुभव करना ही मोक्षपदका दर्शन करना है ॥ ३ ॥

(अचप्यं अरूव रूवं) आत्मा अमूर्तिक स्वभावधारी है (रूवातीत न विक्त रूव न) वह पुद्गलके स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णमय रूपोंसे भिन्न है तथापि आत्मज्ञानियोंके अनुभवमें प्रगट होता है (पर पर्जय विन्यतो) आत्माकी रमणतासे सर्व रागादि परपरिणति विला जाती है (न्य नवलेन कम्म गलिय च) आत्मज्ञानके बलसे कर्मोंका क्षय होजाता है ॥ ४ ॥

(अचप्य सद्भाव स उत्त) अचक्षु आत्मदर्शन उसे ही कहा गया है (नन्य सहकार ममल विन्यंती) जहां इन्द्रिय व मन सम्बन्धी सर्व अशुद्ध परिणाम विला जाते हैं (पर्जय सरनि विमुक्त) व जहां शरीरादि पर्यायमें परिणामोंकी फिरन छूट जाती है, शरीर भोग संसार सम्बन्धी मोह रागद्वेष नहीं रहता है (ममल सहावेन मुक्ति सदर्श) इस शुद्ध आत्म-स्वभावमें रमण करनेसे मुक्तिका स्वरूप अनुभवमें आता है ॥ ५ ॥

(अचप्य पिपनिक रूव) जब आत्म दर्शन या सम्यग्दर्शन क्षायिक रूप होता है (पिपिओ संसार सरनि मोहधं) जब संसार भ्रमण करानेवाले दर्शनमोह कर्मका सर्वथा क्षय होजाता है (पर पर्जावं पिपनं) जब संसार सम्बन्धी चार गतिरूप पर्यायोंमें भ्रमण करानेवाला कर्म क्षय होजाता है (न्यान बलेन निव्वुए जति) तब शुद्ध केवलज्ञान प्रगट होजाता है और यह आत्मा निर्वाणको पहुँच जाता है। भावार्थ—कोईर क्षायिक सम्यग्दृष्टी उसी भवसे मुक्ति पालेते हैं ॥ ६ ॥

(अचप्य दिस्टि इस्ट) आत्मदर्शन परम हितकारी है (अनिस्ट अन्यान उवन विलयती) जिससे आत्माको अहितकारी अज्ञानका उदय विलय जाता है। अर्थात् सम्यग्दृष्टीके सर्व ही भाव ज्ञानमई होते हैं, मिथ्याज्ञानकी छाया भी नहीं रहती है (विलय मिथ्य सहाव) मिथ्याज्ञान होनेका कारण ऐसा कर्म ही क्षय होजाता

है (इस्टं दिस्ट च कम्म सपिपन) मोक्ष पुरुषार्थको जो देख लेता है। अर्थात् जिसकी गाढ़ रुचि स्वात्माके शुद्ध स्वरूपसे होजाती है उसके अवश्य कर्मोका क्षय होजाता है । ७ ॥

(अचष्य अलष्य लषिय) अचक्षु दर्शन मन व इंद्रियोंसे अगोचर ऐसे आत्माका दर्शन कर लेता है (लषिय विन्यान नत सहकार) उस आत्मदर्शनसे स्वपरका भेदविज्ञान प्रगट रहता है। इस भेदविज्ञानसे आत्माका अनुभव होता है, जो अनन्तज्ञानकी प्रगटताका कारण है (नत ममल सहाव) तथा इस आत्मानुभवसे अनन्त अविनाशी शुद्ध स्वभाव प्रकाशित होजाता है (भय षिपनिक नन्त कम्म विलयती) स्थानकी दृढ़ता व निर्भयता होनेसे अनन्तानन्त कर्म क्षय होजाते हैं ॥ ८ ॥

(अचष्य दर्सन दर्सं) जो आत्माका दर्शन देख लेता है अर्थात् जो आत्मस्वभावी होता है (अचष्य रूवेन पर्जाय विलयती) उसके मनन द्वारा होनेवाले परिणाम मिट जाते हैं (जनरंजन सहाव गलिय) जगतके मानवोंको प्रसन्न करूँ ऐसा भाव भी नहीं रहता है (गलिय राग च न्यान विन्यानं) तथा राग सहित सर्व ज्ञान विज्ञान गल जाता है, वीतराग विज्ञानमय भाव प्रगट होजाता है ॥ ९ ॥

(अचष्य अदिस्ट दिस्ट) यह आत्मदर्शन मन व इंद्रियोंसे न देखने योग्य आत्माका अनुभव कर लेता है (दिस्टि सहकार अदिस्ट रूवेन) इस आत्मानुभवके द्वारा स्वयं आत्मारूप ही परिणमन करता है (इस्ट सहाव सदिस्ट) वह आत्माको हितकारी जो शुद्ध आत्मस्वभाव है उसकी ओर दृष्टि रखता है। अर्थात् वह मोक्षकी ओर दृष्टि लगाए हैं (अनिस्ट दिस्ट न पर्जाव विलयती) इस आत्मानुभवके द्वारा रागद्वेष मोहकी दृष्टिसे जो संसारकी पर्जाएँ होती हैं, वे सव विला जाती हैं अर्थात् संसारका नाश होजाता है ॥ १० ॥

(अचष्य अमेय मेयं) यह आत्मा अनेक भेदरूप है। इसके ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यादि गुण हैं (अनेय सहकार लोय अवलोय) इन अनेक गुणोंके द्वारा वह लोकालोकको विना किसी प्रयत्नके व कष्टके लगातार देखता है व जानता है (अचष्य सहाव सु ममलं) आत्माका स्वभाव परम शुद्ध है (ममल दिस्टी च पर्जाव विलयती) इसी शुद्ध आत्मदृष्टिके प्रतापसे सर्व रागादि परिणति या सर्व सांसारिक पर्जाएँ विला जाती हैं ॥ ११ ॥

(अचष्य चष्य स उत्तं) आत्माकी आंख वही कही गई है (अदिस्ट दिस्टी च न्यान सहकारं) जो ज्ञानकी सहायतासे सर्व ही अदृष्टको देख लेवे। जो प्रत्यक्ष इंद्रियोंके द्वारा नहीं दिखता है ऐसे सर्व तीन काल तीन लोकको देख लेवे (अनत नंत पर्जाव) सर्व विश्वके पदार्थोंकी अनन्तानन्त पर्याएँ ज्ञानमें झलक जावें

(न्यान दिस्टी च पर्जाव विलयं च) ऐसे आत्माकी ओर जो ज्ञानकी दृष्टि है अर्थात् शुद्धात्माका जो अनुभव है उसके प्रतापसे संसारकी पर्याय नाश होजाती है ॥ १२ ॥

(अचष्य नंत सहावं) आत्माका स्वभाव अनन्त शक्तिको धरनेवाला है (नंतानन्त च अनन्त विषय) यह आत्मा अनन्त पदार्थोंकी अनन्तानन्त पर्यायोंको जानता है (विषय च विसय सल्य) जितना इंद्रियोंके विषयोंकी चाहका विष है व माया, मिथ्या, निदान शल्यें हैं (न्यान अन्मोय विसय विस विलयं) यह सर्व विषयोंका विष ज्ञानानन्दमें रमण करनेसे विला जाता है ॥ १३ ॥

(अचष्य इन्द्रिय सहियं) जब मन इंद्रियोंके साथ काम करता है (आलस परपंच विभ्रम सहिय) और आलस्यमें, मायाचारमें तथा भ्रम बुद्धिमें फँस जाता है (अन्यान सहाव सविट्टं) तथा वहां अज्ञान स्वभाव दिखलाई पड़ता हैं (ममल अन्मोय सयल विलयती) इस सर्व विभावको शुद्ध ज्ञानानन्द दूर कर देता है ॥ १४ ॥

(आलस सहाव उत्त) आलस्यका स्वभाव यह कहा गया है (आलस उक्त च वयन नहु सहियं) कि यह प्राणी उस प्रमादके कारण कहे हुए जिन वचनको सुनता ही नहीं है। सभामें बैठा बैठा ऊँघता है या कुछ और सोचता रहता है (जिन उवएस भयभीयं) श्री जिनेन्द्रके उपदेशसे डरता रहता है। यह भाव करता है कि यदि मैं सुनूँगा मुझे नियम व त्याग करना पडेगा (भय विपनिक सहकार आलसं विलय) परन्तु इस आलस्यका वहां नाश होजाता है, जहां भयसे रहित करनेवाला सम्यग्दर्शनका प्रकाश होजाता है या सम्यग्दर्शनके सन्मुख देशनालब्धि प्राप्त होजाती है ॥ १५ ॥

(आलस विसेष असुद्ध) विशेष आलस्य और भी अशुद्ध है (जिन उत्त वयन आलस उत्त) जिसके कारण जिनेन्द्रके कहे हुए वचनोंकी तरफ निरादरकी बात कहता है। वाणी सुनकर उल्टा दोष लगाता है (मिथ्या सहाव विषय) मिथ्यात्व स्वभावके कारण विषयोंमें लीन रहता है (न्यानं अन्मोय आलस गलियं, यह सब आलस्य ज्ञानानन्दकी रुचि होनेपर गल जाता है ॥ १६ ॥

(परपंच नन्त नंत) अनन्तानन्त प्रकारके प्रपंच जालके भाव होते हैं (पर्जव सहकार ससक सल्यं च) शरीर ममत्वके कारण धर्ममें शंका होती है व माया, मिथ्या, निदान शल्ये वर्तती हैं (पर्जय सक सहाव) शंकाशील जितनी परिणतियें हैं (न्यान अन्मोय सक विलयन्ती) वे सब शंकाएँ ज्ञानानन्दमें रुचि आते ही विला जाती हैं ॥ १७ ॥

(अचष्य ससक सहियं) जब मन शंका सहित होता है। धर्ममें शंका रहती है (जिन उत्त भयभीउ ऊपर सर पसर) तब यह प्राणी जिनेन्द्रके उपदेशसे भयभीत रहता है। उसको जितना भी उपदेश दिया जावे वह सब ऊसर भूमिमें सरोवरके जल फैलनेके समान निरर्थक है (विट्ठी चंचल चवल) उसकी दृष्टि चंचल व चपल होती है। इन्द्रियोंके विषयोंमें फँसी रहती है (भय पिउनिक सल्य मक विलयती) परन्तु यह सब शल्य व यह सब शंका निर्भय आत्माकी श्रद्धा आते ही मिट जाती है ॥ १८ ॥

(अचष्य ससक सहिय) जब मनमें धर्मकी ओरसे शंका होती है तब अज्ञानीका ऐसा स्वभाव होजाता है (जिन उत्त वयन अनंत भय उत्तं) कि जिनेन्द्रके उपदेशे हुए वचनोंसे अनन्त भय प्रगट करता है—मानता है कि यदि ऐसा वैराग्यमय उपदेश सुनूंगा, मेरा मौजशौक छूट जायगा। मुझे द्यूतरमण, शिकार, मांसाहार, मद्यपान, चोरी, वेश्यासेवन व परस्त्री सेवन त्यागना पड़ेगा (विट्ठी आग पयत्थ) उसको यदि द्वादशांगवाणीके पदोंका अर्थ समझाया जावे (वकज रूवेन प्रपच पर्जाय) वह सब उपदेश उसके भीतर वक्र या विपरीत भावरूप ही परिणमन करता है। वह इस उपदेशको भी प्रपंचजाल समझ लेता है, मोक्षमार्गको रंच मात्र भी श्रद्धामें नहीं लाता है ॥ १९ ॥

(वयन च कम्म सल्य उत्पन्न अनन्त वेयन उत्त) जिसके भावमें शल्य होती है, उसके वचन शल्य सहित निकलते है व उसकी क्रिया भी शल्य सहित होती है। माया, मिथ्या व निदान सहित होती है। इसतरह मन, वचन, कायकी प्रवृत्तिसे जो कर्मबन्ध होता है उस कर्मके उदयसे अनन्त प्रकारकी वेदना होती है ऐसा कहा गया है (अन्यान पर्जाव दिट्ठी) उसकी दृष्टि या श्रद्धा मिथ्या ज्ञानरूप रहती है (न्यान अन्मोय ससक विलयती) परन्तु ज्ञानानन्दकी रुचि होते ही वह सब शंकाशील परिणाम विला जाते हैं ॥२०॥

(अवष्य विभ्रम सहिय) जब मनमें विपरीत ज्ञान होता है (अनंत रूवेन पर्जाव संक सल्य) तब अनन्त प्रकारके परिणाम शंका व शल्यसे भरे हुए होते हैं (विभ्रम नंत अनंतं) तब अनन्तानन्त प्रकारके मिथ्याभाव होते हैं (ममल अन्मोय विभ्रम विलयंती) परन्तु शुद्ध आत्माके भीतर आनन्द आते ही वह सब भ्रमभाव-विपरीत श्रद्धान विला जाता है ॥ २१ ॥

(अचष्य विभ्रम सहिय) जब मन मिथ्यात्व सहित होता है (ज्योतिष कलाप परपंच दर्स च) तब यह संसारलिप्त प्राणी ज्योतिष सामुद्रिक आदि विकल्पोंके भीतर चित्तको लगाता है (अनेय भयभीय) और रातदिन

ममलपाहुड
॥२८७॥

नानाप्रकार भयोंसे ग्रसित रहता है। ज्योतिषादिसे कुछ बुरा होगा ऐसा जानकर मिथ्यात्वी बहुत घबड़ाता है (न्यानं अन्मोय भयभीउ विलयति) परन्तु जिसकी मगनता ज्ञानानन्दमें है उसको कोई भय नहीं होता है। वह सम्यग्दृष्टी वीर व साहसी होता है। वह जानता है कि यदि ज्योतिषादिकी बात ठीक होगी और मेरे पापकर्मके उदयसे कष्ट आजायगा, मैं उसको समतासे सह लूँगा। कर्मकी निर्जरा होजायगी यह तो मेरे लिये लाभ ही है, हानि कुछ नहीं ॥ २२ ॥

(अचष्य मउाव उत्त) मनका यह भी स्वभाव कहा गया है (जनरजन सु भाव ससक उप्पत्ती) जिससे यह मानवोंके रंजायमान करनेवाले कहानी किस्सोंके सुनने पढ़नेमें लगकर मनमें चोर आदिसे व सिंहादिसे भयभीत रहता है (जन ओत जन सहियं) उसको अपने चारोंतरफ मानवोंका जमघट अच्छा लगता है। सदा उन आदमियोंके साथ विचरता है जो उसकी खुशामद करते हैं, व उसका मन राजी रखते हैं (न्यान अ मोय जनरंजन विलय) परन्तु ज्ञानानन्दकी मगनतासे यह जनतामें रंजायमान होनेका भाव विला जाता है। सम्यग्दृष्टी आत्मानन्दका प्रेमी होजाता है तब उसको इन्द्रिय विषयपोषक रागादिवर्द्धक बातोंके करनेमें आनन्द नहीं आता हैं। वह यथासम्भव स्त्री कथा, भोजन कथा, देश कथासे अपनेको बचाता है ॥ २३ ॥

(अचष्य विसेस उत्त) विशेष ज्ञानी मन उसको कहा गया है (जन सहकार पर्जाव पर पिच्छ) जो जगतके प्राणियोंके साथमें उनके सम्बन्धमें होनेवाले परिणामोंको पर जानता है, अर्थात् उनसे विरक्त रहता है। आत्मीक चर्चाके सिवाय और चर्चाको त्यागने योग्य समझता है (अचष्य ममल सहाव) उसके आत्मामें आत्माका शुद्ध स्वभाव झलक जाता है (न्य नं अन्मोय सिद्धि सम्पत्तं) वह ज्ञानानन्दमें मगन रहता हुआ सिद्धगतिमें पहुँच जाता है ॥ २४ ॥

(जन उत्त सक सहिय) मानवोंकी कही बातोंमें रत होनेसे प्राणी भयभीत व शंकाशील रहता है (कर्त्वं पर्जाव दिस्टि संदर्सं) अनेक प्रकार पर्यायदृष्टिके विकल्पोंको किया करता है। ऐसा किया था, ऐसा ही करूँगा आदि संसारमें फँसा रहता है (जिन उत्त सुध सारं) परन्तु जो कोई जिनेन्द्र कथित शुद्ध सार भावको ग्रहण करके शुद्धात्माका मनन करता है (न्य न अन्मोय विकल्प विलय) वह ज्ञानानन्दमें मगन रहता है। उसके सर्व सांसारिक विचार बन्द होजाते हैं। वह प्रपंचमें नहीं फँसता है ॥ २५ ॥

भावार्थ—अचक्षुसे यहां अर्थ मनका भी है व आत्माका भी है। इस गाथावलीमें मन सम्बन्धी दोषोंको बताया है कि यह मन जब पांचों इंद्रियोंके विषयोंसे फंसा रहता है तब इसका स्वभाव आत्महितकी ओरसे आलसी होजाता है तब उसे जिनवाणी नहीं सुहाती है। वह धर्मोपदेश सुननेसे डरता रहता है। कहीं मुझे कुछ नियम न करना पड़े इस भयसे जिनवाणीको नहीं सुनता है। विशेष प्रमादी होजाता है तब ऐसा मिथ्यात्वभाव होता है कि जिनवाणीके कथनको सुनकर उसका निरादर करता है, उसमें दोष लगाता है, इंद्रियलम्पटी अनेक प्रकार संसारके झगडोंमें फंसा रहता है, उसको धर्मका उपदेश देना ऐसा ही निरर्थक होजाता है जैसे ऊसर भूमिमें पानी व्यर्थ जाता है। इतना ही नहीं, वह ऐसा संसारलिप्त होता है कि उसे कितना भी धर्मोपदेश सुनाया जावे वह उल्टा फलता है। जैसे सर्पको दूध पिलाया जावे तौभी वह विषरूप होजाता है। वह अज्ञानी धर्मकी तरफसे शंकाशील होता है। माया, मिथ्या, निदान तीन शल्योंमें फँसा रहता है। मन, वचन, कायकी ऐसी ही प्रवृत्ति करता है। मेरेको दुःख न हो, सदा सुख बना रहे, इसलिये ज्योतिष सामुद्रिकादिसे अपने भविष्यको मालूम करता है। जब बुरा भविष्य समझता है तब बहुत ही भयभीत होता है और घबड़ाता है। जब सम्यग्दृष्टी ज्ञानी ज्योतिषादिसे भविष्य जानकर समभाव रखता है, शांतिसे सब कुछ सहलूँगा और कर्मोंकी निर्जरा करूँगा ऐसा वीर भाव रखता है। वह मिथ्यात्वी जनताके साथ विकथा व बकवाद करनेमें आनन्द मानता है। उनकी संगतिमें मोही रहता है, उनकी खुशामदका लेही होता है। इत्यादि मलीन भाव मिथ्यात्वी अज्ञानी जीवके होते हैं। किन्तु जब कोई धर्मखोजी जीव श्री जिनेन्द्रकी वाणीको रुचिपूर्वक सुनता है और उसपर मनन करता है और संसार, शरीर, भोगोंके असार स्वरूपको समझकर उनसे वैराग्यभाव लाता है—आत्माके भीतर सच्चा आनन्द है और यह आनन्द आत्माके शुद्ध स्वभावमें रमण करनेसे प्राप्त होता है, तब वह आत्माके स्वभावका मनन करता है। अभ्यास करते २ अनन्तानुबन्धी चार कषाय तथा मिथ्यात्वका जब उपशम होजाता है तब उपशम सम्यक्त प्राप्त होजाता है तब भेदविज्ञान पूर्वक आत्माके स्वाद लेनेकी शक्ति प्रगट होजाती है। फिर उसको यह निश्चय होजाता है कि ज्ञानानन्दसे जो तृप्ति होती है वही यथार्थ है। इंद्रियसुखसे कभी तृप्ति नहीं होसक्ती है, यह असार है। ऐसा सम्यक्ती गृहस्थ हो या साधु, हरएक दशामें ज्ञानानन्दका स्वाद लेता है। वह श्रुतज्ञानके बलसे अपने आत्माको परमात्मारूप देखता

समयप्राभृत
॥२८९॥

है। यही सम्यक्ती क्षयोपशम सम्यक्ती होकर फिर दर्शन मोहनीयकी तीन प्रकृति और चार अनन्तानुबन्धी कषायको क्षय करके क्षायिक सम्यक्ती होजाता है। ऐसा क्षायिक सम्यक्ती उसी भवसे साधु होकर कर्म काट मोक्ष चला जाता है या तीसरे भव या चौथे भव अवश्य मोक्ष प्राप्त करता है। यदि देव आयु बांधी हो तो तीसरे भव, यदि पशु व मनुष्यायु सम्यक्त होनेके पहले बांधी हो तो चौथे भव, यदि सम्यक्तके पहले नर्क आयु बांधी हो तौभी तीसरे भवमें मोक्ष चला जाता है। अतएव बुद्धिमानको उचित है कि इस अनित्य संसारकी मायामें न उलझकर आत्मज्ञान पानेका उपाय करे। और ज्ञानानन्दमें मगन रहनेका पुरुषार्थ करे। इसीसे यह जीवन भी सुखप्रद रहेगा व आगामी भी सुख प्राप्त होगा।

श्री कुलभद्राचार्य सारसमुच्चयमें मिथ्यात्वी व सम्यक्तीकी दशा बताते हैं—

रागद्वेषमयो जीव कामक्रोधवशे गत । लोभमोहमदाविष्ट संसारे संसरत्यसौ ॥ २४ ॥

आर्तध्यानरतो मूढो न करोत्यात्मनो हित । तेनासौ सुमहत् क्लेश प्राप्नोत्यत्र च गच्छति ॥ ३ ॥

अनादिकालजीवेन प्राप्त दुःख पुनः पुन । मिथ्यामोहपरीतेन कषायवशवर्तिना ॥ ४८ ॥

कषयातपतप्ताना विषयामयमोहिनाम् । संयोगायोगखिन्नाना सम्यक्त्व परम हित ॥ ३८ ॥

आर्तरौद्रपरित्यागाद् धर्मशुक्लसमाश्रयात् । जीव प्राप्नोति निर्वाणमनन्तसुखमच्युतं ॥ २२६ ॥

भावार्थ—यह जीव रागद्वेषमयी होता हुआ व काम क्रोधके वशमें पडा हुआ तथा लोभ, मोह तथा मदसे घिरा हुआ संसारमें भ्रमण करता रहता है। आर्तध्यानमें रत मूढ प्राणी अपने आत्माका हित नहीं करता है इसीसे इस जन्म व परजन्ममें घोर कष्ट पाता है। अनादिकालसे यह जीव मिथ्यात्व व मोहके वशमें रहकर कषायोंके आधीन होता हुआ वारवार दुःख उठाता है। जो जीव कषायके आतापसे दुःखी है व जिनको विषयोंकी तृष्णाका राग है व जो इष्ट संयोगके वियोगमें खेदित होते हैं उनके लिये सम्यग्दर्शन परम हितकारी है। यह जीव आर्तध्यान व रौद्रध्यानको त्यागता है तथा धर्मध्यान व शुक्लध्यानका आराधन करता है तब यह जीव निर्वाणको अवश्य प्राप्त कर लेता है।

(३९) सर्वार्थसिद्धि छन्द गाथा ६७९ से ६८८ तक ।

पय उववन्न परम परमेस्टिहि, इस्टि दिस्टि च परम ममल अन्मोयह ।
पय संजोए अलषु तं लषियो, भय षिपनिकु अन्मोय ममल सहकारह ॥ १ ॥
जं उववन्न नन्त अनन्तह, लोयालोय ममल न्यान अन्मोयह ।
त भय षिपिय नन्त जिन उत्तह, पय कलन कमल न्यान सहकारह ॥ २ ॥

उवन नन्त नन्त सिद्धि सुद्ध ममल ओत उत्तओ–
विन्यान न्यान सुद्ध ज्ञान विंद सुद्ध सिद्धि जुत्तओ ॥
कम्मह नह तं अनिस्ट समल चित्त ओत जुत्तओ ।
सु न्यान दिस्टि परम इस्ट, ममल न्यान छिन्नओ ॥ ३ ॥
सर्वार्थसिद्धि लोयलोय अर्थ ओत विंद विंद दर्सिओ ।
विन्यान न्यान सहज रूव परम नन्द नन्दिओ ॥
ओंकार विंद सहज नन्द ममल न्यान उत्तओ ।
सु ममल भाव कमल ओत सिद्धि कमल जुत्तओ ॥ ४ ॥
तं भवह उत्तु भय अनन्तु पर पर्जाव जुत्तओ ।
तं न्यान उत्तु भय विनासु भवह भय विनट्ठिओ ॥
सो भव्वु जानि गुन निहानि ममल भाव जुत्तओ ।
सरूव रूव वित्त रूव परम रूव जुत्तओ ॥ ५ ॥

जं भय विनासु सल्य मुक्कु ससंक भय गलन्तओ ।
निसंक भाव अप सहाव पर परजाव मुक्कओ ॥
तं नन्त न्यान ममल झ्यान कम्म मल विमुक्कओ ।
सो भय विनास भव्वु उत्तु सिद्धि सुद्ध संजुत्तओ ॥ ६ ॥
जं भय विनास भवह मुक्कु अभय दिस्टि दिस्टिओ ।
तं दिस्टि इस्टि रिस्टि उस्टि ममल दिस्टि जुत्तओ ॥
तं दर्सु चष्य लोयलोय दिस्टि इस्टि दरसिओ ।
सु झान दिस्टि परम इस्टि समल दिस्टि विमुक्कओ ॥ ७ ॥
सो दिस्टि सुद्ध न्यान ममल दिस्टि इस्टि दरसिओ ।
सो सुद्ध पंथ नन्त थान भय विनस्ट दिस्टिओ ॥
अलष्यु लष्यु न्यान सुद्ध सहकार न्यान उत्तओ ।
सुयं सुद्ध ममल स्कन्ध सुद्ध न्यान दर्सओ ॥ ८ ॥
दुरिस्ट नस्ट दुख स्कन्ध दुसह भय स उत्तओ ।
सो भय विनास न्यान इस्ट ममल भाव जुत्तओ ॥
सु न्यान रूव रूव रूव नासिका स उत्तओ ।
सहकार न्यान तह विन्यान कमल भाव उत्तओ ॥ ९ ॥
सो कमल कलिय ममल मिलिय न्यान दिस्टि उत्तओ ।
सो कमल उत्त भव विनासु निसंक रूव जुत्तओ ॥

सो विवर मुक्कु मुह विमुक्कु कमल ममल उत्तओ ।
सो वयन सुद्ध जिन स उत्त कमल भय विमुक्कओ ॥ १० ॥
जो ओत सुद्ध परिनै जुत्तु परम निह कलंकओ ।
जो परम भाव जिन सहाव ममल भाव जुत्तओ ॥
सो कम्म मुक्कु सल्य तिक्त मिथ्या भय विरत्तओ ।
सो न्यान दिस्टि इस्टि इस्टि ममल कमल उत्तओ ॥ ११ ॥
जो भय विरत्त षिपक उत्त सो भय विनास भव्वओ ।
सो अभय उत्त ममल चित्त तिविहि कम्म गलंतओ ॥
जो तत्तु उत्तू परम तत्तु उत्पन्न न्यान जुत्तओ ।
सो कमल उत्त मुक्ति-पंथ सिद्धि सुद्द सम्पत्तओ ॥ १२ ॥

घत्ता—

इय विसेष संजुत्तओ, न्यान मह अनुरत्तओ ।
कमल भाव संजत्तओ, ममल मुक्ति सम्पत्तओ ॥ १३ ॥
नाना प्रकार न्यान सहिओ, नन्तानन्त सु ममल पओ ।
भय विनास भवु जू मुनहु, षिपक मुकति सम्पत्तओ ॥ १४ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(पय उवन्न परम परमेस्टि हि) परमात्मा अर्हंत परमेष्टीका पद प्रकाशित हुआ है (इस्टि दिस्टि परम ममल अन्मोयह) जिस पदमें इष्ट जो शुद्धात्म-स्वरूप है सो अनुभवमें आरहा है । वह पद परम शुद्ध व आनन्दमय है (पय सजोए अलपु त लषियो) इस पदके संयोग होनेपर जो आत्मा मन व इंद्रियोंके अगोचर है उसका यथार्थ ज्ञान होजाता है (भय षिपनकु अन्मोय ममक सहकारह) केवली भगवान निर्भय व आनन्दमय शुद्ध ज्ञानकी सहायतासे आत्माको देखते हैं ॥ १ ॥

(जं उववन्न नन्त नन्तइ) जिस पदमें अनन्तानन्त पदार्थोंको जाननेवाला ज्ञान प्रगट हुआ है (लोयालोय ममल न्यान अन्मोण्ह) जो ज्ञान शुद्ध है व लोकालोकको जानता है व आनन्दमय है (तं भय षिपिय नन्त जिन उत्तह) ऐसे अर्हंतको भय रहित व अनन्त गुणधारी जिन या जिनेन्द्र कहा गया है (पय कलन कमल न्यान सहकारह) वे श्री जिन अपने अर्हंतपदका अनुभव अपने शुद्ध ज्ञानके द्वारा लेते हुए कमलके ही समान प्रफुल्लित हैं ॥ २ ॥

(उवन नन्त नन्त सिद्धि सुद्ध ममल ओत उत्तओ) श्री अर्हंत परमात्मामें अनन्तानन्त शक्तिका प्रकाश होगया है। व उन्होंने शुद्ध पदको सिद्ध कर लिया है वे पूर्ण निरंजन कहे गये हैं (विन्यान न्यान शुद्ध झ्यान विंद सुद्ध सिद्धि जुत्तओ) उन्होंने भेदज्ञान पूर्वक शुद्ध शुक्लध्यानके अनुभवसे शुद्ध भावकी सिद्धिको पाया है (कमट्ठ न्ट्ठ त अनिस्ट समल चित्त ओत जुत्तओ) ज्ञानावरणादि आठ कर्म जीवके गुणोंको नष्ट करनेवाले, बुरा करनेवाले, अशुद्ध भावोंमें ओतप्रोत रखनेवाले हैं (सु न्यान दिस्टि परम इस्ट ममल न्यान छिन्नओ) उन कर्मोंको परम हितकारी सम्यग्ज्ञान स्वरूप शुद्ध ज्ञानके द्वारा जिन्होंने नाश कर दिया है। अर्हंतके चार कर्म नाश होगये, शेष चार कर्म अवश्य नष्ट होनेवाले हैं ॥ ३ ॥

(सर्वार्थसिद्धि लोयलोय अर्थ ओत विंद विंद दरसिओ) श्री अर्हंत परमात्माने अपना सर्व पुरुषार्थ सिद्ध कर लिया है। उन्होंने लोकालोकके पदार्थ-समूहको भलेप्रकार जाना है व देखा है (विन्यान न्यान सहज रूव परम नन्द नदिओ) वे भेदविज्ञान पूर्वक अपने सहज आत्माके स्वभावमें भरे हुए परमानन्दमें आनन्दित रहते हैं (ओंकार विंद सहज नन्द ममल न्यान उत्तओ) वे ॐ मन्त्रमेंसे जानने योग्य श्री परमात्माके पदमें तिष्ठकर सहजानन्दमय शुद्ध ज्ञानसे पूर्ण हैं (सु ममल भाव कमल ओत सिद्धि कमल जुत्तओ) वे शुद्धोपयोगधारी पूर्ण कमल-वत् अपने गुणोंको विकसित किये हुए हैं ॥ ४ ॥

(त भवह उत्तु भय अनन्तु पर पर्जाव जुत्तओ) इस संसारमें रागादि पर परिणतिके कारण अनन्त भवोंमें अनन्त प्रकारके भय बने रहते हैं। मरण भय, इष्टवियोग भय, रोग भय आदि २ (तं न्यान उत्तु भय विनासु भवह भय विनट्ठिओ) जब भव्यजीव सम्यग्ज्ञानी होजाता है तब सर्व भयोंसे रहित होजाता है। फिर उसके संसारके भ्रमणका भय भी नाश होजाता है (सो भव्वु जानि गुन निहानि ममल भाव जुत्तओ) वह भव्यजीव गुणोंका निधान है, उसके निर्मल भाव रहते हैं ऐसा जानो। वास्तवमें सम्यग्दृष्टी आत्मज्ञानी होता है

उसको निश्चय होजाता है कि मैं शुद्धात्म स्वरूप हूं। मेरी मुक्ति मेरे ही पास है। इसलिये वह पूर्ण निर्भय रहता है (सरूव रूव विक्त रूव परम रूव जुत्तओ) उसके भीतर शुद्ध आत्माका स्वभाव प्रगट रूपसे झलकता है, वह स्वसंवेदन द्वारा आत्माके शुद्ध स्वभावका अनुभव करता है ॥ ५ ॥

(ज भय विनास सल्य मुक्कु समक भय गलनओ) जब भयका नाश होजाता है व सब तरहकी शल्यें नहीं रहती हैं तब शंका व भयके कारणरूप मोहनीय कर्मका ही क्षय होजाता है (निसक भाव अप सहाव पर पर्जाव मुक्कओ) सम्यग्दृष्टी आत्माके स्वभावका सच्चा श्रद्धावान होता है। वह जानता है कि आत्माका स्वभाव शंका व भय रहित है, उसमें रागादि पर परिणतिका कोई सम्बन्ध नहीं है, वह पूर्ण वीतराग है (त नन्त न्यान ममल ङ्यान कम्म मल विमुक्कओ) उस सम्यक्ती साधुके शुद्ध शुक्लध्यानके प्रतापसे कर्मका मल छूट जाता है और वह अनन्त केवलज्ञानको प्राप्त कर लेता है (सो भय विनास भव्वु उत्तु सिद्धि सुद्ध सम्पत्तओ) ऐसा भव्यजीव परम निर्भय होकर सिद्ध अवस्थाका सुख अनुभव करता है ॥ ६ ॥

(त भय विनास भवइ मुक्कु अभय दिस्टि दिस्टिओ) केवलज्ञानी अर्हत् परमात्माके सर्व भयका नाश हो जाता है। वे संसारसे मुक्त होजाते हैं, वे निर्भय आत्माका दर्शन कर रहे हैं (तं दिस्टि इस्टि रिस्टि उस्टि ममल दिस्टि जुत्तओ) उन्होंने इष्टपदको देख लिया है। वहां सुन्दर प्रभात ही होगया है। वे शुद्धोपयोग व क्षायिक सम्यग्दर्शन सहित हैं (त दर्स चष्यु लोयलोय दिस्टि इस्टि दरसिओ) उनकी ज्ञानकी चक्षुने लोक अलोकको देख लिया है तथा अपना इष्टपद अनुभव कर लिया है (सु झ्यान विस्टि परम इस्टि समल दिस्टि विमुक्कओ) शुक्लध्यानके द्वारा जिन्होंने अपने परमात्म-स्वरूपको देख लिया है। उनके भीतरसे अशुद्धोपयोगकी दृष्टि चली गई है ॥७॥

(सो दिस्टि सुद्ध न्यान ममल दिस्टि इस्टि दरसिओ) श्री अर्हत भगवानमें शुद्ध सम्यग्दर्शन व शुद्ध ज्ञान हैं जिससे वे अपने इष्ट आत्माके स्वभावका अनुभव कर रहे हैं (सो सुद्ध पथ नन्त थान भय विनस्ट दर्सिओ) उन्होंने शुद्धोपयोगके मार्गपर चलकर अनन्त गुणोंके स्थान अर्हतपदको जो सर्व भयको नाश करनेवाला है, देखा है (अलष्यु लष्यु न्यान सुद्ध सहकार न्यान उत्तओ) इंद्रिय व मनसे अगोचर आत्माका अनुभव स्वरूप शुद्ध ज्ञानकी सहायतासे उनका ज्ञान शुद्ध हुआ है ऐसा कहा गया है। अर्थात् स्वानुभवसे ही केवलज्ञानका लाभ होता है (सुय सुद्ध ममल स्कंध सुद्ध न्यान दर्सिओ) आत्माका स्वभाव स्वयं शुद्ध है। वह निर्मलताका समूह है। वहीं शुद्ध ज्ञान दिखलाई पड़ता है ॥ ८ ॥

(दुरिस्ट नस्ट दुख स्कंध दुसह भय स उत्तओ) संसार महा अनिष्ट है, संसार घातक है, संसार दुःखका समूह है, दुःसह है, इसका बड़ा भय कहा गया है (सो भय विनास न्यान इस्ट ममल भाव जुत्तओ) सो सर्व संसारका भय नाश होजाता है, जब ज्ञान दृष्टिसे अपने इष्ट आत्माके शुद्ध भावको प्राप्त किया जाता है (सु न्यान रूव रूव रूव नासिका स उत्तओ) यह सम्यग्ज्ञानका स्वभाव पुद्गल द्रव्योंके सम्बन्धको नाशक अर्थात् कर्मोंका क्षय करनेवाला कहा गया है (सहकार न्यान तह विन्यान कमल भाव उत्तओ) इसी शुद्धोपयोगमई ज्ञानकी सहायतासे केवलज्ञानका प्रकाशरूप कमल समान प्रफुल्लित भाव होता है, ऐसा कहा गया है ॥ ९ ॥

(सो कमल कलिय ममल मिलिय न्यान दिस्टि उत्तओ) श्री अरहन्तका आत्मा कमलके समान प्रफुल्लित शुद्ध भावसे मिला हुआ ज्ञानदृष्टिको रखनेवाला कहा गया है (सो कमल उत्त भय विनासु निसंक रूव जुत्तओ) वह कमल सर्व भयोंसे रहित निःशङ्कभावका रखनेवाला कहा गया है (सो विवर मुक्कु मुद विमुक्कु कमल ममल उत्तओ) वह अरहन्त भगवान दोष रहित हैं, आदि रहित हैं, ऐसे शुद्ध कमल कहे गए हैं। कमलमें छिद्र होता है व उसका आदि है परन्तु अरहन्त भगवानमें कोई छिद्र या दोष नहीं है, व उनके आत्माकी सत्ता अनादि है (सो वयन सुद्ध जिन स उत्त कमल भय विमुक्कओ) श्री अरहन्त भगवानकी दिव्यवाणी शुद्ध है, वे जिनेन्द्र कमल सर्व भय रहित कहे गए हैं ॥ १० ॥

(जो ओत सुद्ध परिनै जुत्त परम निह कलंकओ) वे श्री अरहन्त भगवान सर्व तरफसे शुद्ध परिणामोंमें ही परिणमन करते हैं, वे परम निःकलङ्क हैं (जो परम भाव जिन सहाव ममल भाव जुत्तओ) वे उत्कृष्ट भावोंके धारी हैं; वे ही जिनेन्द्र हैं, वे ही सर्व रागादि मल रहित भावोंके अधिपति हैं (सो कम्म मुक्कु सल्य तिक्त मिथ्या भय विरत्तओ) वे चार घातीय कर्मोंसे मुक्त हैं—सर्व शल्य रहित हैं। उनमें न मिथ्यात्व है, न मद है (सो न्यान दिस्टि इस्टि ममल कमल उत्तओ) उनहीको ज्ञान दृष्टि धारी पमसेष्टी तथा शुद्ध कमल कहा गया है ॥ ११ ॥

(जो भय विरक्त षिपक उत्त सो भय विनास भव्वओ) वे भगवान भय रहित हैं, क्षायिकभाव धारी कहे गए हैं, उनहीकी भक्तिसे भव्य जीवोंके भय नाश होजाते हैं (सो अभय उत्त ममल चित्त तिविह कम्म गलंतओ) वे ही अभय व शुद्ध चेतनस्वरूप कहे गए हैं। वे द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म तीन प्रकार कर्मोंको गलानेवाले हैं (जो तत्तु उत्त परमत तु उत्तन्न न्यान जुत्तओ) उनहीको तत्व कहा गया है, वे ही परम तत्व हैं। वे प्रकाशमान

ज्ञान सहित केवलज्ञानी हैं (सो कमल उत्त मुक्तिपन्थ सिद्धि सुह सपत्तओ) वे श्री अरहन्त कमल कहे गए हैं। वे मोक्षमार्गके द्वारा मोक्षका अनुपम सुख पाते हैं ॥ १२ ॥

(इय विसेष संजुत्तओ) इन ऊपर लिखित गुणोंके धारी अर्हंत (न्यान मह अनुत्तओ) जो ज्ञान चेतनामें लीन हैं (कमल भाव सजुत्तओ) वे ही कमलके समान प्रफुल्लित भाव सहित हैं (ममल मुक्ति सम्पत्तओ) वे ही शुद्ध मोक्षपदको पाते हैं ॥ १३ ॥

(नानाप्रकार न्यान सहियो) अनेक प्रकारके ज्ञेय पदार्थोंकी अपेक्षा ज्ञान नानाप्रकार है (नन्तानन्त सु ममल पओ) ऐसे अनन्तानन्त पदार्थोंको जाननेवाले शुद्ध पदके धारी अर्हंत हैं (भय विनास भवु जू मुनहु) हे भव्य-जीव ! निर्भय होकर उन्हींका मनन करो (पिऊ मुकति सम्पत्तओ) जिससे कर्मोंका क्षय करके मुक्तिका लाभ होसके ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें श्री अर्हंत परमात्माके गुणोंको गाकर यह बताया गया है कि यह संसार दुःखोंसे पूर्ण है, आत्माका महान अनिष्ट करनेवाला है, इस संसारमें पद पदपर भय है। अज्ञानीको इस लोक भय, परलोक भय, रोग भय, अरक्षा भय, अगुप्ति भय, मरण भय, अकस्मात् भय; इन सात भयोंके सिवाय और अनेक प्रकारके भय रहते हैं। जैसे इष्टवियोग भय, अनिष्ट संयोग भय, स्वामी भय, मृत्यु भय, चोर भय, राजा भय आदि। संसारी प्राणी शरीरासक्त, धनासक्त, कुटुम्बासक्त होता है। अतएव उसको रातदिन इनके बने रहनेकी चिंता रहती है व यह भय सदा बना रहता है कि कहीं इनका वियोग न होजावे। यह सर्व भय व संसारकी सर्व आपत्तिका नाश उस सम्यग्दृष्टीको होजाता है जिसने भेदविज्ञान पूर्वक भलेप्रकार निश्चय कर लिया है कि मैं केवल आत्मा हूं, अमूर्तीक हूं, अनादि अनन्त अविनाशी हूं, मेरे द्रव्यके साथ पुद्गलका रंचमात्र भी सम्बन्ध नहीं है। अतएव मैं न तो ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मका धारी हूं, न रागादि भावकर्मोंका धारी हूं, न शरीरादि नोकर्मोंका धारी हूं। मै तो स्वभावकी अपेक्षा श्री अरहन्त या सिद्धकी आत्माके समान हूं, मेरा सच्चा आनन्द मेरा ही स्वभाव है, मैं स्वभावसे सहजानन्दमय हूं, मुझे संसारका सुख कभी तृप्ति नहीं देसक्ता। यह विषके समान घातक है व परिणामोंको रागी द्वेषी रखनेवाला है। ऐसा वैराग्यभाव चित्तमें लाकर सम्यग्दृष्टी यदि गृहस्थमें रहता है तो गृही योग्य सर्व काम नीति व धर्मकी रक्षा करते हुए करता है। आत्मध्यान व स्वाध्याय व जिनभक्तिके

ममलपाहुड
॥२९७॥

लिये समय निकालता है। जितना समय धर्मसाधनमें जाता है उसको वह सफल जानता है। ऐसा सम्यक्ती कोई पुण्यफलकी इच्छा नहीं करता है, वह केवल आत्मोन्नतिका ही भाव दृढतासे रखता है।

यही सम्यक्ती गुणस्थान क्रमसे जब साधु होजाता है तब निर्ग्रन्थ पदमें धर्मध्यानको ध्याता हुआ कर्मोंकी निर्जरा करता है। फिर क्षपकश्रेणीपर चढकर शुक्लध्यानको ध्याता है। चार घातीय कर्मोंका क्षय करके वह केवलज्ञानी अरहन्त परमात्मा होजाता है। इस कमल समान प्रफुल्लित अरहन्त पदकी महिमा गाथामें गाई है। श्री अरहन्त भगवान दिव्यवाणीसे धर्मोपदेश करते हैं जिससे अनेक जीवोंका हित होता है। फिर यही शेष अघातीय कर्मोंका क्षय कर मुक्ति पालेते हैं व स्वयं मुक्त होजाते हैं।

वास्तवमें सम्यक्त ही सर्व दुःखोको मिटानेवाला है जैसा सारसमुच्चयमें कहा है—

पण्डितोऽसौ विनीतोऽसौ धर्मज्ञ प्रियदर्शन । य सदाचारसम्पन्न सम्यक्त्वदृढमानस ॥ ४२ ॥

जरामरणरोगाना सम्यक्त्वज्ञानभेषजै । शमनं कुरुते यस्तु स च वैद्यो विधीयते ॥ ४३ ॥

भावार्थ—वही पण्डित है, वही विनयवान है, वही धर्मज्ञाता है, उसीका दर्शन प्रिय है, जो सदाचार सहित होकर सम्यग्दर्शनमें दृढ़ता रखता है। जो जन्म, मरण, जरा, रोगोंको सम्यग्दर्शन सहित आत्मज्ञानकी औषधि पीकर शांत करता है, वही वैद्य कहा गया है।

---

(३६) अचष्य मनरंजन गाथा ६८९ से ७१८ तक।

अचष्यं सुभाव सहियं, कल सहकार पर्जाव दिस्टं च।
पर्जय सरनि स सल्यं, न्यानं अन्मोय पर्जाव गलियं च ॥ १ ॥
अचष्यं अनन्त विसेषं, कलरञ्जन दोष दिस्टि सहकारं।
जिन उत्त न्यान अन्मोयं, कलरञ्जन दोष नत विलयंती ॥ २ ॥
मनरञ्जन अचष्य रूव, विलय पर्जाव ससंक उप्पत्ती।
पर पर्जय सल्य विनयं, मनरञ्जन गलिय न्यान अन्मोयं ॥ ३ ॥

उत्त च ।
मनरञ्जन च सहावं, अनेय कष्टं च अन्मोय अन्मोयं ॥ ४ ॥
तव क्रियं च पर्जावं, मनरञ्जन गलिय न्यान बन्धानं ।
मनरञ्जन श्रुतं च उत्तं, पर्जावं सहकार विकह पत्तं ॥ ५ ॥
बन्धान रूव विज्ञानं, मनरञ्जन भाव दुग्गए जोयं ।
मनरञ्जन श्रुतं च भेयं, नरकं व्याकरन निरीष्यन वासम्मि ॥ ६ ॥
वेदं अन्यान अनथ, मनरञ्जन सहाव निगोय धम्म स उत्तं ।
मनरञ्जन गारव उत्तं, मय मांस सहकार अन्मोयं ॥ ७ ॥
पर पर्जय स सहावं, मनरंजन गलिय न्यान पिच्छंतो ।
मनरञ्जन न्यान सहावं, पर्जय सहकार समल अन्मोय ॥ ८ ॥
सामुद्रिक कोक पर्जावं, मनरञ्जन विलय न्यान नन्ताई ।
अचष्य सहाव स उत्तं, रु मोहंध नन्त च ॥ ९ ॥
दर्सन अरूव रूवं, मोहंध दिस्टि पर्जाव रूवं समलं ।
दर्सन अनन्त सु ममल, पर्जय सहकार दर्सए च ॥१०॥
दसन मोहंध सु विलयं, न्यानं अन्मोय पर्जाव गलियं संसारे ।
अचष्यं रूव सहिय, न्यानं आवर्न सरनि आवर्नं ॥११॥
जिन उत्त न्यान नहु दिट्ठं, न्यानं अन्मोय गलिय सहकारं ।
अचष्य दर्सन अनिस्ट, दर्सन आवर्न अनिस्ट आवर्नं ॥१२॥
पर पर्जय दसतो, ममल अन्मोय विलय

अचष्यं मोह पर्जाव, मोहन आवर्न न्यान विलयन्ती ।
पर पर्जय मोहधं, भय षिपनं न्यान विलय आवन ॥१३॥
अचष्यं नन्त पर्जावं, पर्जय सहकार अन्तरं न्यानं ।
जदि न्यान अन्मोय सु ममलं, भय पिपनिक नन्त अन्तरं विलयं ॥१४॥
अचष्ये दसन सुद्धं, न्यानं अन्तर विलय नन्तानं ।
सम्यक्दर्सन दर्स, न्यान अन्मोय अंतरं विलयं ॥ १५ ॥
अन्तर अन्यान सहावं, न्यानं भयभीउ सल्य संक उत्तं ।
ममल न्यान अन्मोय, भय षिपियं न्यान अंतरं विलयं ॥ १६ ॥
अचष्य सहाव स उत्तं, सुह असुहं च अन्मोय संदिट्ठं ।
पर्जय सरनि संजुत्तं, न्यानं अन्मोय पर्जाव गलियं च ॥ १७ ॥
अचष्य सहाव सु सवदं, सव्द सहकार पर्जाव सहिय च
सव्द सहाव सु समयं, न्यानं अन्मोय सव्द विलयन्ती ॥ १८ ॥
जिह्वा अग्रं उवनं, दिस्टं जिनेन्द विंद विन्यानं ।
नन्त चतुस्टय जुत्तं, परिनाम विन्यान न्यान चौसठियं ॥ १९ ॥
चौसठि अथ जुत्तं, चतुष्टय सहकार सहज ठिदि ममलं ।
मुक्ति सभावं ठिदिय, ठिदियं मुक्तस्य ममल न्यानस्य ॥ २० ॥
जिह्वाकन्द सु ममलं, सौ अट्ठमि परिनामु न्यानं च ।
कम्म कलंक सु विलयं, विन्यान विंद सरूव संक विलयं च ॥ २१ ॥

सौ अट्ठंमि स अर्थं, सहकारं उववन्न अप्प अष्टांगं ।
अप्पं च मुक्ति संठदियं, मुक्ति विन्यान न्यान ममलं च ॥ २२ ॥
जिह्वा सहाव जुत्तं, परिनाम सहसट्ठ लष्यनं ममलं ।
चौवीसं तित्थयरं, भय षिपनिक सहकार न्यान ममलं च ॥ २३ ॥
लषियो न्यान संजुत्तं, लष्यन सहकार विंद विन्यानं ।
भय षिपनिक ममल सहावं, धम्मं स सहाव मुक्ति गमनं च ॥ २४ ॥
जिह्वा लष्यन सहियं, लष्यन जिनेन्द विंद तित्थयरं ।
अर्थ सो अप परमर्थं, ति अर्थ आयरन परिनाम तित्थयरो ॥ २५ ॥
भय उत्तं च जिनन्दं, भय षिपिय अर्थ अर्थ ममलं च ।
ति अर्थ भय त्रितियं, भय षिपिय अभय न्यान सहकारं ॥ २६ ॥
भय विलयं ममल सहावं, परिनाम न्यान सयं च अट्ठंमि ।
नौ सहकार संजुत्तं, नौसै वहत्तरम्मि न्यानं च ॥ २७ ॥
ति अर्थ अर्थ सहियं, साट्ठ परिनाम न्यान विन्यानं ।
लष्यन जिन उवएसं, सहसं अट्ठंमि न्यान ममलं च ॥ २८ ॥
चौवीसं च संजुत्तं, तित्थयरं उववन्न न्यान विन्यानं ।
भय विनस्ट सहकारं, ममल सहावेन सिद्धि संपत्तं ॥ २९ ॥
लष्यन जिन उवएसं, न्यानं विन्यान सहाव ममलं च ।
भय षिपियं ममल सहावं, धम्मं स सहाव लष्यनं ममलं ॥ ३० ॥

अन्वय सहित अर्थ—(अचष्य सुभाव सहिय) मनका स्वभाव जब प्राणीमें काम करता है (कल सहकार पर्जाव विष्टं च) तब उस मनमें शरीर सम्बन्धी रागकी परिणति देखी जाती है (पर्जय सरनि स सल्य) उन परिणामोंके भीतर माया, मिथ्या, निदान आदि शल्य भी होती है (न्यान अन्मोय पर्जाव गलियं च) परन्तु जब मन आत्मज्ञानके आनन्दमें मगन होता है तब यह शरीरमें रंजित होनेकी परिणति विला जाती है ॥१॥

(अचष्यं अनंत विसेषं) मनके भीतर अनन्त प्रकारके विकल्प होते हैं (कल रजन दोष दिस्ट सहकारं) उनमेंसे एक दोष यह दिखलाई पड़ता है कि यह मन शरीरके रागभावमें उलझा रहता है–शरीरके श्रृङ्गारमें व शोभामें लीन रहता है (जिन उत्त न्यान अन्मोय) परन्तु जब यह मन जिनेन्द्र द्वारा कथित आत्मज्ञानमें मगन होता है (कल रजन दोष नंत विलयती) तब शरीरके भीतर राग करनेसे जो अनन्त दोष होते हैं वे सब विला जाते हैं ॥ २ ॥

(मन रजन अचष्य रूव) मनके अनेक विचारोंको उठाकर रंजित होना यह भी मनका स्वभाव है (विन्य पर्जाव ससक उप्पत्ती , जिससे वह इस वर्तमान शरीररूपी पर्यायके नाशकी शङ्का किया करता है तथा नवीन पर्यायकी उत्पत्तिकी शङ्का करता है ।

भावार्थ—यह विकल्प करता है कि यह शरीर नहीं रहेगा तो क्या करूंगा, सर्व स्त्री पुत्रादिका सम्बन्ध छुट जायगा अथवा यह शरीर जल्दी छूट जावे । मैं बडा दुःखी हूं, तथा मैं मरकर कहीं नर्कमें न पैदा हूँ, कहीं पशुगतिमें न पैदा हूँ, अथवा मै मरकर देव हूँ व धनिक मनुष्य हूँ। इस तरहकी चिंता शरीर सम्बन्धी सुख पानेकी व दुःखसे बचनेकी किया करता है ।

(पर पर्जय सल्य विषय मन रजन गलिय न्यान अन्मोयं) परन्तु जब आत्मज्ञानके आनन्दमें मगनता होती है तब पर परिणति सम्बन्धी सर्व शङ्काएँ व सर्व मनोरंजनके भाव दूर होजाते हैं ॥ ३ ॥

(मन रजन च सहावं) मनके रंजायमान होनेका ऐसा स्वभाव है कि (अनेय कष्ट च अन्मोय उत्त च) कभी तो यह अनेक प्रकार दुःखोंसे पीडाका विचार किया करता है, कभी यह सुखमें मगनता दिखाता है ऐसा कहा गया है (तव क्रियं च पर्जाव) तप पालनेका व क्रियाकांड करनेका परिणाम करके मगन होता है कि मैं बड़ा तपस्वी हूँ, मैं बडा क्रियावान हूँ, उस तप व क्रियाकांडका ही अहंकार कर लेता है। आत्मज्ञानके

विना ऐसी मनकी परिणति हुआ करती है (मन रजन गलिय न्यान अम्मोयं) ऐसी मनकी राग परिणति ज्ञानानन्दमें मगनतासे दूर होजाती है ॥ ४ ॥

(मनरजन श्रुन च उत्त) मनको रंजायमान करनेवाला शास्त्र कहा जाता है (पर्जाव सहकार विकह विन्यानं) जिन पुस्तकोंमें शरीर सम्बन्धी राग होता है व चार विकथाओंमेंसे जिनका समन्ध होता है, उन ग्रन्थोंमें स्त्री कथा, भोजन कथा, देश कथा, व राजा कथाके रागमें उलझानेवाली वाते होती हैं (बन्धान रूव विज्ञान) अथवा उनमें शरीरकी सुन्दरता व लौकिक कला, गान विद्या, चित्र विद्याका सम्बन्ध होता है (मनरजन भाव दुगए पत्त) उन रागवर्द्धक लौकिक कथाओंके पढने व सुननेमें जब मन रंजायमान होजाता है तब इस दुःश्रुति अनर्थदंडके कारण यह प्राणी वृथा तीव्र पापबन्ध कर दुर्गतिका पात्र होता है ॥ ५ ॥

(मनरजन श्रुन च भेय) मनको रंजायमान करनेवाला शास्त्र अनेक भेदरूप है (तरक व्याकरन निरीप्यनं जोय) तर्कशास्त्र या न्यायशास्त्र, व्याकरण शास्त्र, व ज्योतिष देखनेका शास्त्र, इन शास्त्रोंको पढकर अभिमानी होजाता है व इनसे रागवर्द्धक श्रृङ्गाररस पूर्ण शास्त्र बनाता है, व हिंसापोषक ग्रन्थ तैयार करता है व एकांत व हिंसाकारक मत पुष्ट करता है। व ज्योतिष द्वारा प्रसन्न करके व भय दिखाकर स्वार्थसाधन करता है (वेद अन्यान अनर्थ) व ऐसे वेद शास्त्र रचता है व वेदोंका ऐसा अर्थ करता है जिससे अज्ञान व अनर्थकी पुष्टि हो, वृथा पशुओंका होम किया जावे व धर्म माना जावे (मनरजन सहाव निगोय वासमि) जो बहुत ज्ञानी होकर ज्ञानका दुरुपयोग करके जगतमें हिंसा व राग फैलाकर मनको राजी रखते हैं, वे इस अशुभ मनरंजक स्वभावसे तीव्र ज्ञानावरण कर्मको बांधकर एकेन्द्रिय पर्यायमें जाकर निगोद जीव या साधारण वनस्पति जीव होजाते हैं। निगोदमें अनन्तकाल रहना पड़ता है फिर निगोदसे निकलना कठिन होता है ॥६॥

(मनरंजन गारव उत्त) मनको राजी रखनेका अभिमान यह भी कहा गया है (मय मास सहकार धम्म स उत्त) जो अपने मनकी कल्पनासे ऐसे धर्मका उपदेश करे कि जिसमें धर्म क्रिया करते हुए मदिरा पीजावे व मांस खाया जावे व इस मद्य मांसाहारको भी धर्मका अंग माना जावे (पर पर्जव स सहावं) इस धर्ममें आत्मासे भिन्न शरीरकी तरफ ही राग होता है (मनरंजन गलिय न्यान अम्मोयं) परन्तु जब मन आत्मज्ञानके आनन्दमें मगन होता है तब ऐसा अशुभ मनरंजक भाव दूर होजाता है ॥ ७ ॥

(मनरजन न्यान सहावं) मनको रंजायमान करनेवाले ज्ञानका यह भी स्वभाव है (पर्जव सहकार समल

अमलपाहुड ॥३०३॥

निर्ग्रौ) जो शरीर सम्बन्धी अशुभ भावोंकी तरफ ही झुका रहता है (समुद्रिक कोक रचनं) सामुद्रिक शास्त्र बनाकर शरीरके चिन्होंसे अच्छा बुरा बताता है या कोकशास्त्र रचकर कामविकारको पुष्ट करता है। सामुद्रिक व कोकशास्त्रको पढ़कर व सुनाकर उसका दुरुपयोग करके शरीरके सुखमें मगन होजाता है (न्यानंतर विम्य स्यान अन्मेयं) परन्तु जब मन आत्मज्ञानके आनन्दमें मगन होता है तब यह सब मनरंजक भाव दूर होजाता है ॥ ८ ॥

(अचाष्य महाव म उत्तं) मनका यह भी स्वभाव कहा गया है (दर्सन मोहय नन्त नन्ताई) कि यह मन दर्शनमोह या मिथ्यात्वमें व अनन्तानुबन्धी कषायोंमें अन्धा रहता है (दर्सन अरूव रूवं) तब अरूपी आत्माको देखनेवाले सम्यग्दर्शनके सम्बन्धमें (मोहंध दिष्टि पजोय नह न) मोहांध बना रहता है अर्थात् आत्माके स्वभावका रंचमात्र भी श्रद्धान नहीं होता है, शरीर पर्यायमें ही आपा माना करता है। मैं मानव हूं, मैं रूपवान हूं, मैं बलवान हूं, मैं राजा हूं आदि अहंकार किया करता है ॥ ९ ॥

(दर्सन अनन्त सु ममल) सम्यग्दर्शन शुद्ध है, वह अनादि अनन्त अविनाशी आत्माका स्वभाव है (पजय सहकार दर्सन ममटें) परंतु वह स्वभाव शरीरमें व कर्मजनित पर्यायमें तन्मय होनेसे अशुद्ध दिखलाई पड़ता है अर्थात् मिथ्यादर्शनके रूपमें परिणमता हुआ जीवको मिथ्यादृष्टी व अज्ञानी बनाए रखता है (दर्सन मोहय सवित्यं) जब आत्मा और अनात्माके भेदविज्ञानके अभ्याससे दर्शन मोहनीय कर्मका उपशम या क्षय होजाता है (न्यानं अन्मोय पजोय गलियं च) तब आत्मज्ञानके भीतर आनन्द आता है व सांसारिक पर्यायका शनैः २ नाश होजाता है। सम्यग्दर्शनके प्रकाशसे यह जीव शीघ्र ही मोक्षका स्वामी होजाता है ॥ १० ॥

(अचप्यं रूव सहिय) यह मन जब शरीरके भीतर तन्मय होता है (न्यानं आवर्न सरनि संसारे) तब ज्ञानावरण कर्मका विशेष बन्ध होता है जिससे अनेक अज्ञानमई पर्यायोंके भीतर यह जीव संसरण किया करता है (जिन उत्त न्यान नहु दिट्ठं) श्री जिनेन्द्रने जिस सम्यग्ज्ञानका स्वरूप बताया है उस सच्चे तत्वोपदेशकी तरफ दृष्टि नहीं लगाता है तब ज्ञानावरण कर्म बढ़ता ही जाता है (न्यानं अन्मोय गलिय आवर्नं) परन्तु जब आत्मज्ञानका आनन्द आने लगता है तब ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होता रहता है। तथा इसी आत्मज्ञानके अभ्याससे ज्ञानावरणका क्षय होकर केवलज्ञानका प्रकाश होजाता है॥ ११ ॥

(अचष्य दर्सन अनिस्ट) यह मन जब आत्माको अहितकारी पदार्थोंको देखा करता है जिनसे राग,

द्वेष, मोह बढ़े उनकी ओर रंजायमान रहता है (दर्सन आवरन अनिस्ट सहकारं) तब अशुभ दर्शनके कारणसे इसके दर्शनावरण कर्मका बन्ध बढ़ता जाता है। जैसे अशुभ ग्रन्थ देखना, अशुभ मेला तमाशा देखना, वेश्यादिको देखना, नाटक देखना आदि २, इनसे दर्शनावरण कर्म बन्धता है (पर पर्जेव दर्सीतो) आत्माको देखना छोड़कर जहांपर पर्यायको, शरीरको व शरीर सम्बन्धी इष्टवस्तुओंको देखा जाता है वहां दर्शनावरणका बन्ध होता है (ममल अन्मोय विलय आवरनं) जहां शुद्ध ज्ञानमें आनन्द माना जाता है, आत्मदर्शनमें प्रीति की जाती है वहां दर्शनावरण कर्मका क्षयोपशम होता जाता है या विशेष आत्म-दर्शनके अभ्याससे दर्शनावरण कर्मका बिलकुल क्षय होजाता है ॥ १२ ॥

(अचप्यं मोह पर्जाव) मन जब मोहकी परिणतिमें, रागद्वेष मोहमें, क्रोधादि कषायोंमें या मिथ्यात्वमें रमण करता है (मोहन आवर्न न्यान विलयन्ती) तब मोहनीय कर्मका बन्ध बढता है, यथार्थ ज्ञान बिला जाता है, मोह या मिथ्यात्वके कारण बहुतसा शास्त्र ज्ञान भी मिथ्याज्ञान रूप परिणमता है (पर पर्जय मोहध) तब यह प्राणी कर्मजनित पर्यायोंमें अहङ्कार व ममकार करके अंधा बना रहता है। मै शुद्ध आत्मा हूँ यह प्रतीति कभी नहीं आती है (भय पिपन न्याय विलय आवर्नं) परन्तु जब निर्भय आत्मज्ञानका प्रकाश होता है तब मोहनीय कर्मका आवरण भी हटता जाता है, धीरे२ मोहनीय कर्मका भी क्षयोपशम होता जाता है। किसी समय मोहका बिलकुल क्षय होजाता है ॥ १३ ॥

(अचप्यं अनन्त पर्जाव) मनके परिणाम अनन्त प्रकारके होते हैं (पर्जय सहकार अन्तर न्यानं) उन रागादि भावोंमें लीन रहनेसे आत्माके स्वभावका घात करनेसे ज्ञानके प्रकाशमें अन्तराय पड़ रहा है। अंतराय कर्मका बन्ध होता है जो आत्माके अनन्त वीर्यका घातक है। अनन्त वीर्यके साथ ही अनन्तज्ञान प्रगट होता है (जदि न्यान अन्मोय सु ममल) यदि ज्ञानानन्दमें मगन होनेसे आत्माकी विशुद्धता बढ़ती जावे (भय पिपनिक नन्त अतर विश्य) और निःशंक निश्चल आत्मानुभव हो, द्वितीय शुक्लध्यान होजावे तो अन्तराय कर्मकी अनन्त वर्गणाएँ झड़ जावें और अनंत वीर्य प्रगट होजावे ॥ १४ ॥

(अचप्ये दर्सन सुद्धं) यदि परिणामोंमें शुद्ध सम्यग्दर्शनका प्रकाश रहे (न्यानं अन्तर विलय नन्तान) तो ज्ञानमें अन्तराय करनेवाले अनन्तानन्त कर्म झड़ जावे।

भावार्थ—शुद्ध क्षायिक सम्यग्दर्शनके अनुभवसे ही केवलज्ञान प्रगट होता है।

पिच्छंती) जो शरीर सम्बन्धी अशुभ भावोंकी तरफ ही झुका रहता है (सामुद्रिक कोक पर्जाव) सामुद्रिक शास्त्र बनाकर शरीरके चिन्होंसे अच्छा बुरा बताता है या कोकशास्त्र रचकर कामविकारको पुष्ट करता है। सामुद्रिक व कोकशास्त्रको पढ़कर व सुनाकर उसका दुरुपयोग करके शरीरके सुखमें मगन होजाता है (मनरंजन विळय न्यान अन्मोय) परन्तु जब मन आत्मज्ञानके आनन्दमें मगन होता है तब यह सब मनरंजक भाव दूर होजाता है ॥ ८ ॥

(अचष्य सहाव म उत्त) मनका यह भी स्वभाव कहा गया है (दर्सन मोहंध नन्त नन्ताई) कि यह मन दर्शनमोह या मिथ्यात्वमें व अनन्तानुबन्धी कषायोंमें अन्धा रहता है (दर्सन अरूव रूवं) तब अरूपी आत्माको देखनेवाले सम्यग्दर्शनके सम्बन्धमें (मोहंध दिस्टि पर्जाव रूव च) मोहांध बना रहता है अर्थात् आत्माके स्वभावका रंचमात्र भी श्रद्धान नहीं होता है, शरीर पर्यायमें ही आपा माना करता है। मैं मानव हूं, मैं रूपवान हूं, मै बलवान हूं, मै राजा हूं आदि अहंकार किया करता है ॥ ९ ॥

(दर्सन अनन्त सु ममल) सम्यग्दर्शन शुद्ध है, वह अनादि अनन्त अविनाशी आत्माका स्वभाव है (पर्जय सहकार दर्सए समल) परंतु वह स्वभाव शरीरमें व कर्मजनित पर्यायमें तन्मय होनेसे अशुद्ध दिखलाई पड़ता है अर्थात् मिथ्यादर्शनके रूपमें परिणमता हुआ जीवको मिथ्यादृष्टी व अज्ञानी बनाए रखता है (दर्सन मोहंध सविल्य) जब आत्मा और अनात्माके भेदविज्ञानके अभ्याससे दर्शन मोहनीय कर्मका उपशम या क्षय होजाता है (न्यानं अन्मोय पर्जाय गलिय च) तब आत्मज्ञानके भीतर आनन्द आता है व सांसारिक पर्यायका शनैः २ नाश होजाता है। सम्यग्दर्शनके प्रकाशसे यह जीव शीघ्र ही मोक्षका स्वामी होजाता है ॥ १० ॥

(अचष्य रूव सहिय) यह मन जब शरीरके भीतर तन्मय होता है (न्यानं आवर्न सरनि ससारे) तब ज्ञानावरण कर्मका विशेष बन्ध होता है जिससे अनेक अज्ञानमई पर्यायोंके भीतर यह जीव संसरण किया करता है (जिन उत्त न्यान नहु दिट्ठं) श्री जिनेन्द्रने जिस सम्यग्ज्ञानका स्वरूप बताया है उस सच्चे तत्वोपदेशकी तरफ दृष्टि नहीं लगाता है तब ज्ञानावरण कर्म बढ़ता ही जाता है (न्यानं अन्मोय गलिय आवर्न) परन्तु जब आत्मज्ञानका आनन्द आने लगता है तब ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होता रहता है। तथा इसी आत्मज्ञानके अभ्याससे ज्ञानावरणका क्षय होकर केवलज्ञानका प्रकाश होजाता है ॥ ११ ॥

(अचष्य दर्सन अनिस्ट) यह मन जब आत्माको अहितकारी पदार्थोंको देखा करता है जिनसे राग,

ममलपाहुड ॥३०४॥

द्वेष, मोह बढ़े उनकी ओर रंजायमान रहता है (दर्सन आवरन अनिस्ट सहकार) तब अशुभ दर्शनके कारणसे इसके दर्शनावरण कर्मका बन्ध बढ़ता जाता है। जैसे अशुभ ग्रन्थ देखना, अशुभ मेला तमाशा देखना, वेश्यादिको देखना, नाटक देखना आदि २, इनसे दर्शनावरण कर्म बन्धता है (पर पर्जेव दर्सतो) आत्माको देखना छोड़कर जहांपर पर्यायको, शरीरको व शरीर सम्बन्धी इष्टवस्तुओंको देखा जाता है वहां दर्शनावरणका बन्ध होता है (ममलं अन्मोय विलय आवरनं) जहां शुद्ध ज्ञानमें आनन्द माना जाता है, आत्मदर्शनमें प्रीति की जाती है वहां दर्शनावरण कर्मका क्षयोपशम होता जाता है या विशेष आत्म-दर्शनके अभ्याससे दर्शनावरण कर्मका बिलकुल क्षय होजाता है ॥ १२ ॥

(अचष्यं मोह पर्जाव) मन जब मोहकी परिणतिमें, रागद्वेष मोहमें, क्रोधादि कषायोंमें या मिथ्यात्वमें रमण करता है (मोहन आवर्न न्यान विलयन्ती) तब मोहनीय कर्मका बन्ध बढ़ता है, यथार्थ ज्ञान विला जाता है, मोह या मिथ्यात्वके कारण बहुतसा शास्त्र ज्ञान भी मिथ्याज्ञान रूप परिणमता है (पर पर्जय मोहंध) तब यह प्राणी कर्मजनित पर्यायोंमें अहङ्कार व ममकार करके अंधा बना रहता है। मैं शुद्ध आत्मा हूं यह प्रतीति कभी नहीं आती है (मय पिगन न्याय विलय आवर्न) परन्तु जब निर्भय आत्मज्ञानका प्रकाश होता है तब मोहनीय कर्मका आवरण भी हटता जाता है, धीरे २ मोहनीय कर्मका भी क्षयोपशम होता जाता है। किसी समय मोहका बिलकुल क्षय होजाता है ॥ १३ ॥

(अचष्यं अनन्त पर्जाव) मनके परिणाम अनन्त प्रकारके होते हैं (पर्जय सहकार अन्तर न्यानं) उन रागादि भावोंमें लीन रहनेसे आत्माके स्वभावका घात करनेसे ज्ञानके प्रकाशमें अन्तराय पड़ रहा है। अंतराय कर्मका बन्ध होता है जो आत्माके अनन्त वीर्यका घातक है। अनन्त वीर्यके साथ ही अनन्तज्ञान प्रगट होता है (जदि न्यान अन्मोय सु ममल) यदि ज्ञानानन्दमें मगन होनेसे आत्माकी विशुद्धता बढ़ती जावे (मय पिपनिक नन्त भतर विग्य) और निःशंक निश्चल आत्मानुभव हो, द्वितीय शुक्लध्यान होजावे तो अन्तराय कर्मकी अनन्त वर्गणाएँ झड़ जावें और अनंत वीर्य प्रगट होजावे ॥ १४ ॥

(अचष्ये दर्सन सुद्धं) यदि परिणामोंमें शुद्ध सम्यग्दर्शनका प्रकाश रहे (ग्यानं अन्तर विलय अन्तानं) तो ज्ञानमें अन्तराय करनेवाले अनन्तानन्त कर्म झड़ जावें।

भावार्थ—शुद्ध क्षायिक सम्यग्दर्शनके अनुभवसे ही केवलज्ञान प्रगट होता है।

षिपनिक ममल सहावं) उनका स्वभाव सर्व भय रहित है व निरंजन निर्विकार है ([illegible])
वे निश्चय रत्नत्रय स्वरूप आत्मानुभव धर्मके प्रतापसे मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ २४ ॥

(जिह्वा लब्यन सहियं) दिव्यवाणीका प्रकाश गए अर्हंत तीर्थंकरका बाहरी लक्षण है ([illegible]
विन्द तित्थयरं) अन्तरंग लक्षण श्री जिनेन्द्र तीर्थंकरोंका स्वात्मानुभव है ([illegible]) वे यथार्थ आत्म
पदार्थ हैं। वे ही परमात्मा या परमार्थ हैं। उनकी आत्माके घातक कर्म नाश होगये हैं ([illegible]
परिनाम तित्थयरो) रत्नत्रय धर्मके आचरणसे ही वे महापुरुष भव्यजीवोंको संसार-सागरसे उद्धार करनेवाले
तीर्थंकर पदके धारी होते हैं ॥ २५ ॥

(भय उत्त च जिनेन्दं) श्री जिनेन्द्र भगवानने अनेक सांसारिक भय बताए हैं ([illegible]
ममलं च) श्री अर्हंतकी आत्मासे सर्व भय दूर होगये हैं, वे निर्भय आत्मा हैं, वे शुद्ध आत्मा हैं ([illegible]
भय त्रितिय) तीन ही यथार्थ पदार्थ हैं सम्यग्दर्शनादि व तीन ही भय हैं—जन्म जरा मरण, इन तीन रोगोंकी
औषधि भी रत्नत्रय धर्मका आराधन है ([illegible]) [illegible] केवलज्ञानके प्रकाश होते
ही जन्म जरा मरणके तीनों भय दूर होजाते हैं ॥ २६ ॥

(भय विलय ममल सहावं) श्री अर्हंत तीर्थंकर भय रहित हैं व शुद्ध स्वभावके धारी हैं ([illegible]
सय च अट्ठमि) उनका जप व ध्यान एकसौ आठ (१०८) दफे करना चाहिये ([illegible]) केवलज्ञानादि
नौ लब्धियोंको प्राप्त करनेके लिये ([illegible]) नौसौ बहत्तर दफे अर्थात् एकसौ आठके जपको
नौ दफे ज्ञानपूर्वक जपना व ध्याना चाहिये ॥ २७ ॥

(ति अर्थ अर्थ सहियं) श्री अर्हंत तीर्थंकर रत्नत्रयमई धर्मके धारी हैं ([illegible]) उनका
जप व ध्यान भेदविज्ञानपूर्वक एकसौ आठ दफे करना चाहिये ([illegible]) उनका लक्षण जिनेन्द्रोंने
यह कहा है (सहसं अट्ठं मि न्यान ममल च) कि बाहरी लक्षण तो एक हजार आठ हैं व भीतरी लक्षण शुद्ध
केवलज्ञान है ॥ २८ ॥

(चौवीस च सजुत्त तित्थयर उववन्न न्यान विन्यान) गत चतुर्थकालमें ज्ञान विज्ञानसे पूर्ण ऐसे ऋषभादि
महावीर पर्यंत चौवीस तीर्थंकर यहां होगए है (भय विनस्ट सहकार) वे निर्भय हैं व हमारे उद्धारके लिये
सहकारी हैं, वे पूज्यनीय हैं (ममल सहावेन सिद्धि सपत्तं) वे शुद्ध स्वभावके प्रतापसे सिद्धिको प्राप्त करचुके हैं ॥२९॥

है। यह सम्यक्ती परमेष्ठी वाचक मन्त्रोंके द्वारा जप करता है व ध्यान करता है। जप व ध्यानसे भावोंकी निर्मलता होती जाती है तब धीरे२ श्रावक होजाता है, फिर साधु होजाता है। धर्मध्यान व शुक्लध्यानसे अपने बहुत कर्मोंकी निर्जरा करता हुआ मोहनीयकर्मका व शेष तीन घातीय कर्मोंका क्षय करके केवलज्ञानी अर्हंत होजाता है। रत्नत्रयमई मोक्षमार्ग है, व्यवहारनयसे भेदरूप है, निश्चयनयसे अभेदरूप है। जहां अपने शुद्धात्माका अनुभव है वही मोक्षमार्ग है। इसी धर्मके सेवनसे तीर्थंकर पद होता है। तीर्थंकरोंका बाहरी लक्षण शरीरमें १००८ लक्षणोंका होना है। अन्तरंगमें वे परम वीतराग हैं, ज्ञानानन्दमें मगन हैं। वे तीर्थंकर दिव्यवाणीसे भव्योंको धर्मका उपदेश करते हैं। श्री रिषभादि महावीरपर्यंत चौवीस तीर्थंकर जो भरतमें इस कालमें हुए हैं वे इसी आत्मानुभवसे हुए हैं। अतएव हम लोगोंको उचित है कि अहंकारको त्यागकर व गृहस्थका झूठा मोह त्यागकर क्षणिक इंद्रियसुखोंकी आसक्ति दूरकर जो ज्ञानानंद अपने ही आत्माके स्वभावमें है उसका स्वाद लेना चाहिये। यही ज्ञानानन्द सर्व संसारके भयको मिटानेवाला है और जीवको मोक्षद्वीपमें पहुँचानेवाला है। श्री पूज्यपादस्वामी इष्टोपदेशमें कहते हैं:—

> परः परस्ततो दुःखमात्मैवात्मा ततः सुखं। अतएव महात्मानस्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः ॥ ४५ ॥
>
> आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारबहिःस्थितेः। जायते परमानंदः कश्चिद्योगेन योगिनः ॥ ४७ ॥
>
> आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेंधनमनारतं। न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्वचेतनः ॥ ४८ ॥

भावार्थ—आत्मासे भिन्न शरीरादि पर हैं उनके मोहसे दुःख होता है। आत्मा आत्मारूप ही है—परमात्मारूप ही है, उसके ज्ञान व ध्यानसे आनन्द होता है इसलिये महात्मालोग आत्माकी सिद्धिके लिये उद्यम करते रहते हैं। जो व्यवहारके मोहसे बाहर होजाते हैं व आत्माके ध्यानमें मगन होते हैं उन योगियोंको योगाभ्याससे कोई अपूर्व परमानन्द प्राप्त होजाता है। वही आनन्द निरन्तर कर्मोंके ईंधनको जलाता रहता है। उस आनन्दको भोगते हुए योगीको बाहरके दुःखोंकी तरफ लक्ष्य नहीं रहता है। वास्तवमें ज्ञानानन्द ही मोक्षका यथार्थ उपाय है।

षिपनिक ममल सहावं) उनका स्वभाव सर्व भय रहित है व निरंजन निर्विकार है (धम्म स सहाव मुक्ति गमनं च) वे निश्चय रत्नत्रय स्वरूप आत्मानुभव धर्मके प्रतापसे मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ २४ ॥

(जिह्वा लष्यन सहियं) दिव्यवाणीका प्रकाश यह अर्हंत तीर्थंकरका बाहरी लक्षण है (लष्यन जिनेन्द विन्द तित्थपरं) अन्तरंग लक्षण श्री जिनेन्द्र तीर्थंकरोंका स्वात्मानुभव है (अर्थ सो अप परमथ) वे यथार्थ आत्म-पदार्थ हैं। वे ही परमात्मा या परमार्थ हैं। उनकी आत्माके घातक कर्म क्षय होगये हैं (ति अर्थ आवरन परिनाम तित्थयरो) रत्नत्रय धर्मके आचरणसे ही वे महापुरुष भव्यजीवोंको संसार-समुद्रसे उद्धार करनेवाले तीर्थंकर पद्के धारी होते हैं ॥ २५ ॥

(भय उत्त च जिनेन्दं) श्री जिनेन्द्र भगवानने अनेक सांसारिक भय बताए हैं (भय पिपिय अथ अर्थ ममल च) श्री अर्हंतकी आत्मासे सर्व भय दूर होगये हैं, वे निभय आत्मा हैं, वे शुद्ध आत्मा हैं (ति अर्थ भय त्रितियं) तीन ही यथार्थ पदार्थ हैं सम्यग्दर्शनादि व तीन ही भय हैं-जन्म जरा मरण, इन तीन रोगोंकी औषधि भी रत्नत्रय धर्मका आराधन है भय पिपिय अभेय न्यान सहकारं) अभय केवलज्ञानके प्रकाश होते ही जन्म जरा मरणके तीनों भय दूर होजाते हैं ॥ २६ ॥

(भय विलयं ममल सहाव) श्री अर्हंत तीर्थंकर भय रहित हैं व शुद्ध स्वभावके धारी हैं (परिनाम न्यान सय च अट्ठंमि) उनका जप व ध्यान एकसौ आठ (१०८) दफे करना चाहिये (नौ सहकार संजुत्त) केवलज्ञानादि नौ लब्धियोंको प्राप्त करनेके लिये (नौसै बहत्तरमि न्यानं च) नौसे बहत्तर दफे अर्थात् एकसौ आठकी जपको नौ दफे ज्ञानपूर्वक जपना व ध्याना चाहिये ॥ २७ ॥

(ति अर्थ अर्थ सहिय) श्री अर्हंत तीर्थंकर रत्नत्रयमई धर्मके धारी हैं (साढ परिनाम न्यान विन्यान) उनका जप व ध्यान भेदविज्ञानपूर्वक एकसौ आठ दफे करना चाहिये (लष्यन जिन उवएस) उनका लक्षण जिनेन्द्रोंने यह कहा है (सहसं अट्ठं मि न्यान ममल च) कि बाहरी लक्षण तो एक हजार आठ हैं व भीतरी लक्षण शुद्ध केवलज्ञान है ॥ २८ ॥

(चौवीस च सजुत्त तित्थयर उववन्न न्यान विन्यान) गत चतुर्थकालमें ज्ञान विज्ञानसे पूण ऐसे ऋषभादि महावीर पर्यंत चौवीस तीर्थंकर यहां होगए है (भय विनस्ट सहकार) वे निर्भय हैं व हमारे उद्धारके लिये सहकारी हैं, वे पूज्यनीय हैं (ममल सहावेन सिद्धि सपत्त) वे शुद्ध स्वभावके प्रतापसे सिद्धिको प्राप्त करचुके हैं ॥२९॥

(३७) जोगी फूलना छन्द गाथा ७१९ से ७४३ तक ।

जोगी हो जिन मार्ग जोगी, जोयो न्यान विन्यानं ।
नन्द आनन्दह चिदानन्दमय, सहज नन्द स सहाओ ॥ १ ॥
हो जोगी जिन मार्ग जोगी, जोयो नन्तानन्तु ।
नन्त विसेषै दरसै दरसै, वीय सौष्य स उत्तु ॥ २ ॥ (आचरी)
जिन उवएसिउ ममल सरूवे, ममल सिद्धि सभाउ ।
भय षिपनिक हे भव्वु स उत्तु, सहज मुक्ति स सहाउ ॥ ३ ॥ हो जोगी० ॥
जिनियो जिनवर न्यान सरूवे, कम्मु अनन्तानन्तु ।
अमिय पयोहर न्यान विन्यानह, धम्म सहाउ संजुत्तु ॥ ४ ॥ हो जोगी० ॥
जिनियो जिनवर ओत सहजे, मुक्ति पंथ सुभाउ ।
ममल सहावे सिद्धि सरूवे, भय षिपिय सिद्धि स सहाउ ॥ ३ ॥ हो जोगी० ॥
जिनवर उत्तउ ममल सरूवे, उवनो दाता देउ ।
अमिय रसायन धम्मह सहियो, मुक्ति-पंथ दर्सई ॥ ६ ॥ हो जोगी० ॥
देव ऊवनो न्यान सरूवं, दाता देव सहाउ ।
पर्म देव जो पम ऊवनो, ममल सिद्धि स सहाउ ॥ ७ ॥ हो जोगी० ॥
न्यान विन्यानह परम न्यान मय, ऊवनो दाता सोइ ।
भय षिपनिक हे भव्वु उवएसिउ, पर्म देव सम सोइ ॥ ८ ॥ हो जोगी० ॥
अमिय रसियो परम सुभावह, धम्मुति अर्थह जोय ।
देव जु कहियो परम देव सुइ, सिद्धि मुक्ति सम सोय ॥ ५ ॥ हो जोगी० ॥

ऊवंकार उवनू सहियो, उवनउ उवन सहाउ।
ममल सहाव कम्मु जु विलयो, भय पिपिय मुक्ति स सहाउ॥ १० ॥ हो जोगी ॥
उवनो विंद विन्यानह सहियो, परमानन्द सहाउ।
अमिय सरूवे मुक्ति संजोए, धम्म सिद्धि सभाउ ॥ ११ ॥ हो जोगी० ॥
उवनौ नन्तानन्त चतुस्टय, परम इस्टि परमिस्टि।
इस्टि रिस्टि सुइ ममल विन्यानं, भय विनस्य सुइ इस्टि ॥ १२ ॥ हो जोगी० ॥
सिष्टि सहाए उस्टि संजोए, सहकार इस्टि स सहाउ।
अवयास इस्ट तं ममल सरूवे, भय पिपिय मुक्ति सभाउ ॥ १३ ॥ हो जोगी० ॥
अन्मोय इस्टि त अमिय सरूवे, पिपिक इस्टि जिन उत्तु।
धम्म सहावे सिद्धि सरूवे, मुक्ति इस्टि संजुत्तु ॥ १४ ॥ हो जोगी० ॥
जिनवर उत्तो सहज सरूवे, मुक्ति-पंथ सह नन्द।
दिस्टिहि सहियउ ममल सरूवे, भय पिपिय नंद परनन्द ॥ १५ ॥ हो जोगी० ॥
नन्त सौख्य तं अमिय सरूवे, दिस्टि सहाउ स उत्तु।
धम्म सरूवे सिद्धि सहावे, सहजे मुक्ति पहुत्तु ॥ १६ ॥ हो जोगी० ॥
ह्रियंकार हिययार सहावे, अरूह सुभय स उत्तु।
ह्रींकारह सु ममल सुभावे, भय विनस्य सिद्धि संपत्तु ॥ १७ ॥ हो जोगी० ॥
ह्रींकार हिययार सु सहियो, अमिय रमन रस उत्तु।
अर्थति अर्थह न्यान विन्यानह, धम्मह सिद्धि संजुत्तु ॥ १८ ॥ हो जोगी० ॥

(लष्यन जिन उवएस) श्री जिनेन्द्रका ऐसा लक्षण उपदेश किया गया है (न्यानं विन्यान सहाव ममल च) कि वे केवलज्ञानमई सम्यग्ज्ञानके धारी हैं व उनका आत्मीक स्वभाव शुद्ध वीतराग है (भय षिपियं ममल सहाव) वे निर्भय हैं व शुद्ध स्वभावके धारी हैं (धम्मं स सहाव लष्यन ममल) निश्चयनयसे अपने स्वाभाविक धर्मको धारना ही शुद्ध लक्षण है। वे निरन्तर अपने शुद्धात्माके अनुभवमें तल्लीन रहते हैं। यही सच्चा अरहंत परमात्माका लक्षण है। वे परम वीतरागी व कृतकृत्य हैं ॥ ३० ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें यह बताया है कि मिथ्यादृष्टी संसारासक्त प्राणीका मन रातदिन चंचल रहता है। वह शरीर सुखके मोहमें नानाप्रकारके विचार किया करता है। इष्टवियोग व अनिष्ट संयोग व पीड़ा होनेपर आर्तध्यान करता है। भोगोंकी वांछा करके निदान करता है। तपादि भी आगामी भोगाकांक्षासे साधन करता है। मनको रंजायमान करनेवाले श्रृङ्गार शास्त्रको पढता है, विकथाओंमें प्रसन्न रहता है, शरीरकी सुन्दरता व विषयभोगकी कथाएँ करता है, लौकिक न्याय व्याकरण ज्योतिष छन्द शास्त्र पढकर हिंसा पुष्टिकारक व रागवर्द्धक शास्त्र बनाता है। वेदोंका अर्थ अनर्थकारी करता है। मदिरा मांसाहारसे धर्म होता है ऐसा ग्रन्थमें प्रतिपादन करता है, सामुद्रिक शास्त्रसे अच्छा बुरा जानकर मगन होता है या दुःखी होता है, कोक शास्त्र पढ़कर कामवासनामें अधिक लिप्त होजाता है। इस तरह मिथ्यात्व व अज्ञानमें पड़ा हुआ जीव ज्ञानावरणादि आत्मघातक चार कर्मोंका व अशुभ अघातीय कर्मोंका बन्ध करके दुर्गतिमें जाकर दुःख उठाता है—निगोद तकमें चला जाता है जहां लब्ध्यपर्यात्मक अवस्थामें एक श्वासमें अठारह दफे जन्म मरण करता है। ज्ञान बहुत अल्प प्रगट रहता है। दर्शन मोहनीय व अनन्तानुबन्धी कषायोंके उदयसे यह जीव दीर्घकालतक संसारासक्त होता हुआ जन्ममरणादिके कष्ट उठाया करता है। जब यह जीव श्रीगुरुके प्रसादसे व शास्त्रके मननसे आत्मा व अनात्माका भेद समझता है और बारबार बहुत कालतक आत्माके स्वरूपका विचार जप व ध्यानके द्वारा करता है तब इसका दर्शन, मोह, कर्म व अनन्तानुबन्धी कषायका उदय नहीं रहता है और सम्यग्दर्शनका प्रकाश होजाता है। सम्यग्दर्शनके होते ही मनकी रुचि पलट जाती है। अब मन आत्मानन्दका प्रेमी होजाता है, विषयसुखसे विरागी होजाता है। अब इसको तत्वज्ञानकी चर्चा ही अच्छी लगती है। पहले शुभ कामोंसे राग करता था, अब शुभोपयोगको भी बन्धका कारण जानकर पुण्यकी इच्छा नहीं करता है। केवल शुद्धोपयोगका प्रेमी होजाता

है। यह सम्यक्ती परमेष्ठी वाचक मन्त्रोंके द्वारा जप करता है व ध्यान करता है। जप व ध्यानसे भावोंकी निर्मलता होती जाती है तब धीरे२ श्रावक होजाता है, फिर साधु होजाता है। धर्मध्यान व शुक्लध्यानसे अपने बहुत कर्मोंकी निर्जरा करता हुआ मोहनीयकर्मका व शेष तीन घातीय कर्मोंका क्षय करके केवलज्ञानी अर्हत होजाता है। रत्नत्रयमई मोक्षमार्ग है, व्यवहारनयसे भेदरूप है, निश्चयनयसे अभेदरूप है। जहां अपने शुद्धात्माका अनुभव है वही मोक्षमार्ग है। इसी धर्मके सेवनसे तीर्थंकर पद होता है। तीर्थंकरोंका बाहरी लक्षण शरीरमें १००८ लक्षणोंका होना है। अन्तरंगमें वे परम वीतराग हैं, ज्ञानानन्दमें मगन हैं। वे तीर्थंकर दिव्यवाणीसे भव्योंको धर्मका उपदेश करते हैं। श्री रिषभादि महावीरपर्यंत चौवीस तीर्थंकर जो भरतमें इस कालमें हुए हैं वे इसी आत्मानुभवसे हुए हैं। अतएव हम लोगोंको उचित है कि अहँकारको त्यागकर व गृहस्थका झूठा मोह त्यागकर क्षणिक इंद्रियसुखोंकी आसक्ति दूरकर जो ज्ञानानंद अपने ही आत्माके स्वभावमें है उसका स्वाद लेना चाहिये। यही ज्ञानानन्द सर्व संसारके भयको मिटानेवाला है और जीवको मोक्षद्वीपमें पहुँचानेवाला है। श्री पूज्यपादस्वामी इष्टोपदेशमें कहते हैं:—

परः परस्ततो दुःखमात्मैवात्मा ततः सुखं। अतएव महात्मानस्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः ॥ ४५ ॥

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारबहिःस्थितेः। जायते परमानंदः कश्चिद्योगेन योगिनः ॥ ४७ ॥

आनंदो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतं। न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्वचेतनः ॥ ४८ ॥

भावार्थ—आत्मासे भिन्न शरीरादि पर हैं उनके मोहसे दुःख होता है। आत्मा आत्मारूप ही है—परमात्मारूप ही है, उसके ज्ञान व ध्यानसे आनन्द होता है इसलिये महात्मालोग आत्माकी सिद्धिके लिये उद्यम करते रहते हैं। जो व्यवहारके मोहसे बाहर होजाते हैं व आत्माके ध्यानमें मगन होते हैं उन योगियोंको योगाभ्याससे कोई अपूर्व परमानन्द प्राप्त होजाता है। वही आनन्द निरन्तर कर्मोंके ईंधनको जलाता रहता है। उस आनन्दको भोगते हुए योगीको बाहरके दुःखोंकी तरफ लक्ष्य नहीं रहता है। वास्तवमें ज्ञानानन्द ही मोक्षका यथार्थ उपाय है।

हींकार हिययार ऊवनो, हिय उकार संजुत्तु ।
ममल सहावे अर्क विंद है, भय पिपिय सिद्धि संजुत्तु ॥ १९ ॥ हो जोगी० ॥
हींकारह रमनह सहियो, अमिय महारस जुत्तु ।
न्यान सहावे षिपनिक रूवे, धम्मह मुक्ति पहुत्तु ॥ २० ॥ हो जोगी० ॥
हींकारह जु उवन संजुत्तु, सहयारह सम दिट्ठि ।
ममलह ममल सहाव संजुत्तं, भय षिपिय सिद्धि संपत्तु ॥ २१ ॥ हो जोगी० ॥
सहयारह समहाउ संजुत्तउ, अमिय वयन जिन उत्तु ।
हिययारह उववन्न सु सहियो, धम्म रमन सिव पंथु ॥ २२ ॥ हो जोगी० ॥
सहयारह संजोए भवियन, हिययार दिस्टि उवएसु ।
भय विनास तं भव्व ऊवनं, ममल सिद्धि सम्पत्तु ॥ २३ ॥ हो जोगी० ॥
सहयारह संजोगे जोगी, अमिय रमन रस जुत्तु ।
तारन तरन सहावह सहजे, धम्म रमन सिवसंतु ॥ २४ ॥ हो जोगी० ॥
उववन्नह हिययार सहावह, सहयारह ममल सहाउ ।
अर्थति अर्थह ममलह सहियो, पिपक सिद्धि सम्पत्तु ॥ २५ ॥ हो जोगी० ॥

अन्वय सहित अर्थ—(जोगी हो जिन मार्ग जोगी) हे योगी ! जिन मार्गपर चलकर तू योगाभ्यास करता है (जो यो न्यान विन्यान) तू भेदविज्ञानका देखनेवाला है। उसे यह ठीक २ ज्ञान है कि यह आत्मा स्वभावसे शुद्ध ज्ञाता दृष्टा आनन्दमय है। यह द्रव्यकर्म, भावकर्म, व नोकर्मसे भिन्न है (नद आनवह चिदानंदमय सहज न" स सहाओ) तथा यह आत्मा आनन्दमई है, वह आनन्द इन्द्रिय सुख नहीं है किन्तु वह ज्ञानानन्द है। उसीको सहजानन्द व अपना ही स्वभाव कहते हैं ॥ १ ॥

ममलपाहुड
॥३१३॥

(हो जोगी जिन मार्ग जोगी) हे योगी ! तू जिनमार्गपर चलकर योगाभ्यास करनेवाला है (जो यो नत.नंतु) तूने उस आत्माको पहचाना है जो अनन्तानन्त गुण पर्यायोंका धारी है (नत विसेषै दर्सै) जो अनन्त पदार्थोंको देखनेवाला है (दर्सै वीर्य सौख्य म उत्तु) जो अनन्त वीर्य व अनन्त सुखका अनुभव करनेवाला है ॥२॥

(जिन उवएसिउ ममल सरूवे) श्री जिनेन्द्र भगवानने शुद्ध स्वरूपका उपदेश किया है (ममल सिद्धि सभाउ) जो निरंजन है व सिद्ध भगवानके स्वभावके समान स्वभावका धारी है (भय षिपनिक हे भव्वु स उत्तु) उसीको हे भव्य ! सर्व भयोंसे अतीत परम निर्भय कहा गया है। उसे कोई काट नहीं सक्ता है, उसे कोई नाश नहीं कर सक्ता है (सहज मुक्ति स सहाउ) वह स्वभाव हीसे मुक्तरूप है व अपने स्वभावरूप सदा बना रहता है ॥ ३ ॥

(जिनियो जिनवर न्यान सरूवे कम्मु अनन्तानन्तु) श्री जिनेन्द्र उसे कहते हैं जिसने अपने ज्ञान स्वरूपमें रमण करके अनन्तानन्त कर्मोंको जीत लिया है (अमिय पयोहर न्यान विन्यानह) जो आनन्दामृतरूपी जलके मेघ हैं व जो ज्ञानस्वरूप हैं (धम्म सहाव सजुत्तु) निश्चय रत्नत्रयमई आत्मीक धर्मके स्वामी हैं ॥ ४ ॥

(जिनियो जिनवर ओत सहजे) श्री जिनेन्द्रने स्वभाव हीसे सर्वको सर्व तरह जीत लिया है, उनके ऊपर कोई दूसरा स्वामी नहीं है, वे स्वतंत्र लोकालोकके स्वामी है (मुक्ति पन्थ सभाउ) उनका स्वभाव ही मोक्षमार्ग है। भावार्थ—आत्मीक स्वभावमें रमण करना ही मोक्षमार्ग है, इसीमें श्री जिनेन्द्र रमण कररहे हैं (ममल सहावे सिद्धि सरूव) वे कर्ममलरहित स्वभावके धारी हैं, वे ही सिद्ध स्वरूपी हैं (भय षिपिय सिद्धि म सहाउ) वे सर्व भयसे रहित हैं, वे अपने स्वभावको सिद्ध कर चुके हैं ॥ ५ ॥

(जिनवर उत्तउ ममल सरूवे) श्री जिनेन्द्रने कहा है कि यह आत्मा शुद्ध स्वरूपका धारी है (उवनो दाता देउ) यह आत्मा देव है, यही आनन्द दातार है व यही प्रकाशमान है (अमिय रसायन धम्मह सहियो) यह अमृतरूपी रसायनको पिलानेवाले रत्नत्रयमई धर्मको रखनेवाला है (मुक्ति पन्थ देइ) यही मोक्षमार्गका अनुभव करनेवाला है ॥ ६ ॥

(देव उवनो न्यान सरूवे) यह आत्मदेव सदा ज्ञान स्वरूपमें प्रकाशमान है (दाता देव सहाउ) यही आनन्द दातार है, यही पूज्यनीय देव स्वभावका धारी है (धर्म देव जो धर्म उवनो) यही उत्कृष्ट देव है, इसमें श्रेष्ठ गुण प्रकाशमान हैं (ममल सिद्धि स सहाउ) यही सर्व रागादि मलरहित है, यही सिद्धस्वभावधारी है ॥७॥

(न्यान विन्यानह परम न्यानमय उवनो दाता सोई) यही आत्मा निश्चयसे ज्ञान विज्ञानमई है, केवलज्ञानमई है, यही आनन्ददाता प्रकाशमान है (भय षिपिनक हे मन्वु उवएसिउ) हे भव्य! इसीको सर्व भयोंसे रहित उपदेश किया गया है (धर्म देव सम सोइ) यही परमात्मा देवके समान देव है ॥ ८ ॥

(अमिय रसियो परम सुभावह) यही आत्मदेव आनन्दामृतमें मगन है, परमस्वभावका धारी है (धम्म ति अर्थह जोय) इसी हीको रत्नत्रयमई धर्म जानो (देव जु कहियो परम देव सुइ) यही देव है, इसीको परमात्मा देव कहा गया है (सिद्धि मुक्ति सम सोय) यही सिद्ध स्वरूप है, यही मुक्ति स्वरूप है ॥ ९ ॥

(ऊवकार ऊवनो सहियो) ॐ मंत्रका जब ध्यान किया जाता है (उवनउ उवन सहाउ) तब उसके द्वारा परमात्माका स्वभाव ज्ञानमें झलक जाता है (ममल सहावे कम्म जु गलियो) तब शुद्ध भाव होजाता है, शुद्धोपयोगसे कर्मोंकी निर्जरा होने लगती है (भय षिपिय मुक्ति स सहाउ) तब निर्भय भाव होजाता है, साक्षात मुक्तिका स्वभाव ही झलक जाता है ॥ १० ॥

(उवनो वि द विन्यानह सहियो) तब भेदविज्ञान पूर्वक आत्माका अनुभव जग जाता है (परमानन्द सहाउ) परमानन्द स्वभाव प्रगट होजाता है (अमिय सरूवे मुक्ति सजोए) उस आनन्दामृतके भीतर मगन होनेसे मुक्तिका संयोग निकट आता है (धम्म सिद्धि सभाउ) आत्म-धर्मसे जो सिद्धि प्राप्त करनी है वह स्वभाव प्रगट होजाता है ॥ ११ ॥

(उवनो नन्तानन्त चतुस्टय) इसी आत्मानुभवके द्वारा अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य ये चार अनन्त चतुष्टय प्रगट होजाते हैं (परम इस्टि परमिस्टि) तब परमप्रिय अर्हंत परमेष्टी पद प्रगट होजाता है (इस्टि दिस्टि सुइ ममल विन्यान) यही श्रेष्ट इष्टपद है, यही शुद्ध ज्ञानमई पद है (भय विनस्य सुइ इ स्ट) वहां भय क्षय होजाता है, वही उपादेय–गृहणीय पद है ॥ १२ ॥

(सिस्टि सहाए उस्टि संजोए) उस श्रेष्ट स्वभावके व शुद्ध भावके संयोग होनेपर (सहकार इस्टि स सहाउ) अपना ही इष्ट स्वभाव प्रगट होजाता है (अवयास इस्ट त ममल सरूवे) वहां परम इष्ट उस शुद्ध स्वरूपका ही अवकाश होता है, वहां अशुद्धताको स्थान नहीं है (भय षिपिय मुक्ति सभाउ) उसीको ही निर्भय मुक्ति स्वभाव कहते हैं ॥ १३ ॥

(अन्मोय इस्टि त अमिय सरूवे) वहां परमानन्दसे ही हित रहता है। उसी अमृत स्वरूपमें मगनता

अमलपाहुड ॥३१९॥

होती है (पिपक इस्टि जिन उत्तु) उसीको क्षायिक भाव सहित परमप्रिय जिन कहते हैं (धम्म सहावे सिद्धि सरूवे) वहीं धर्मका यथार्थ स्वभाव है, वहीं सिद्धका स्वरूप झलकता है (मुक्ति इस्टि सजुत्तु) ऐसे ज्ञानी ध्यानीको परम उपादेय मुक्तिका लाभ होता है ॥ १४ ॥

(जिनवर उत्तो सहज मरूवे मुक्ति पंथ सह नन्द) श्री जिनेन्द्र भगवानने कहा है कि मोक्षका मार्ग अपने सहज स्वभावमें रमण है, वह आनन्दमई है। स्वाभाविक आनन्दका यहां लाभ है (दिस्टिउ सहियो ममल सरूवे) वहां दृष्टि अपने शुद्ध स्वरूपमें रहती है (भय षिपिय नन्द परनन्द) वहां सर्व भय क्षय होगये हैं, वहां परमानन्दमें मगनता है । १५ ॥

(नन्त सौख्य तं अमिय सरूवे) श्री अर्हंत परमात्मा अपने अमृतमई स्वरूपमें अनन्त सुखका अनुभव करते हैं (दिस्टि सहाउ स उत्तु) उन्होंने अपने स्वभावको देख लिया है, वे स्वरूपके प्रत्यक्षदर्शी कहे गये है (धम्म सहावे सिद्धि सहावे) वहीं धर्मका यथार्थ स्वभाव है वहीं सिद्ध भगवानका स्वभाव है (सहजे मुक्ति पहुत्तु) वे सहज ही स्वभावसे मुक्ति पहुँच जाते हैं १६ ॥

(ह्रियंकार हिययार सहावे) ह्रीं मंत्र भी बड़ा ही उपकारी है (अरुह सभाव स उत्तु) ह्रीं मंत्रके द्वारा जप या ध्यान करनेसे अरहन्तका स्वभाव झलकता है। ऐसा कहा गया है कि ह्रीमें चौवीस तीर्थंकर गर्भित है (ह्रींकारह सु ममल महावे) ह्रीं से आत्माका शुद्ध स्वभाव अनुभवमें आता है (भय विनस्य सिद्धि संपत्तु) इस मंत्रके द्वारा सर्व भय नाश होजाता है और ध्यानी महात्मा अन्तमें सिद्धिको पहुँच जाते हैं ॥ १७॥

(ह्रींकारह हिययार सु सहियो) ह्रीं मंत्र बड़ा ही हित करनेवाला है (अमिय रमन रम उत्तु) इसके द्वारा आनन्दामृतरूपी रसके स्वादमें रमण होजाता है ऐसा कहा गया है (अर्थति अर्थह न्यान विन्यानह) इसके द्वारा ज्ञानमई रत्नत्रय स्वरूप आत्माका दर्शन होता है (सम्मह सिद्धि सपत्तु) रत्नत्रयकी एकता जो स्वात्मानुभवमें होती है उसीसे भव्यजीव सिद्ध गतिको प्राप्त कर लेते हैं ॥ १८ ॥

(ह्रींकार हिययार ऊवनो) ह्रीं मंत्रका प्रकाश बड़ा ही हितकारी है (ह्रिय उकार सजुत्तु) इससे आत्माका बड़ा ही उपकार होता है (ममल महावे अर्क विंद है) इसके द्वारा शुद्ध स्वभावमें सूर्य समान वीतराग विज्ञानमई परमात्माका अनुभव होता है (भय षिपिय सिद्धि सपत्तु) इसी मन्त्रसे सर्व भय नाश होजाते हैं और यह आत्मा सिद्ध गतिको प्राप्त कर लेता है ॥ १९ ॥

(ह्रींकाग्ह रमनहसहियो अमिय महारस जुत्तु) ह्रीं मन्त्रके द्वारा आनन्दामृतमई महान रसके स्वादमें रमण होजाता है इससे इस मंत्रको रमण कह सक्ते हैं (न्यान सहाने षिपनिक रूवे) क्षायिक भाव स्वरूप ज्ञान स्वभावी आत्मामें स्थिरता होजाती है (मम्मह मुक्ति पहुत्तु) ह्रीं मन्त्रसे रत्नत्रय धर्मका पूर्ण लाभ होता है जिसके द्वारा यह भव्यजीव मोक्षपदमें पहुँच जाता है ॥ २० ॥

(ह्रींकाग्ह जु उवन संजुत्तु) ह्रीं मंत्रके द्वारा सम्यग्दर्शन सहित जब जप या ध्यान किया जाता है (सहयाग्ह समदिट्ठि) तब इसकी सहायतासे समदृष्टि, समताभाव, वीतरागभाव प्रगट होजाता है (ममलह ममल सहाव सजुत्तं) भाव कर्म व द्रव्य कर्मसे रहित परम शुद्ध स्वभाव झलक जाता है (भय षिपिय सिद्धि संजुत्तु) इससे सर्व सांसारिक भय मिट जाता है और यह जीव सिद्ध गति पालेता है ॥ २१ ॥

(सहयारह स महाउ संजुत्तउ) ह्रीं मंत्रके द्वारा जब अपना स्वभाव प्रकाश होजाता है तब यह अर्हंत कहलाता है (अमिय वयन जिन उत्तु) तब अमृतमई दिव्यवाणीको प्रकाश करनेवाले वे जिनेन्द्र कहलाते हैं (हियवारह उववन्न जु सहियो) वे भव्यजीवोंके परम हितकारी हैं, उनका उदय परम ज्ञानका दाता है (धम्म रमन मिव प‍थु) उनहीसे मोक्षमार्ग प्रगट होता है जो आत्माके धर्म या स्वभावमें रमणरूप है, स्वात्मानुभव स्वरूप है ॥ २२ ॥

(सहयारह सनोण भविय‌न) श्री अर्हंतकी वाणीकी सहायताके संयोगसे भव्यजन (हियया' दिस्टि उवएसु) हितकारी सम्यग्दर्शनका उपदेश लाभ करते हैं (भय विनास तं भाव ऊवन) तब उनका सर्व भय नाश होजाता है, उनमें भव्यत्व भाव झलक जाता है (ममल सिद्धि सग्तु) वे कर्म रहित होकर सिद्धिको प्राप्त कर लेते हैं ॥ २३ ॥

(सहयारह सजोगे जोगी) इस अर्हंतकी दिव्यवाणीकी सहायतासे योगी–ध्यानी मुनि (अमिय रमन रस जुत्तु) आनन्दामृत–रसमें रमण करते हैं (तारन तरन सहावह रूजे) उनको भी सहज हीमें या स्वभावसे ही तारन तरन स्वभाव प्रगट होजाता है, वे भी अर्हंत परमात्मा होजाते हैं (धम्म रमनु सिव सत्तु) वे अपने आत्मीक धर्ममें रमण करते हुए मोक्षरूप और शांत होजाते हैं ॥ २४ ॥

(उववन्नह हिययार सहावह) उनके भीतर परम हितकारी अर्हंतका स्वभाव झलक जाता है (सहयारह ममल सहाव) जहां शुद्ध स्वभावका प्रकाश है (अर्थति अर्थह ममलह सहियो) वहीं रत्नत्रयमई शुद्ध पदार्थका स्वरूप

ममलपाहुड ॥३१७॥

है (षिप्रक सिद्धि सम्पत्तु) वे शेष अघातीय कर्मोंको भी क्षय करके सिद्ध गतिको प्राप्त कर लेते हैं ॥ २९ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें आत्मानुभवके अभ्यास करनेवाले योगीको आह्वानन करके कहा गया है कि हे योगी! तू परमानन्द स्वभावधारी अनन्तज्ञान, दर्शन, स्वरूप, निर्भय अपने आत्माका अनुभव कर। इसी आत्मानन्दके भीतर मगन होनेसे श्री जिनेन्द्रने भी कर्मोंको विजय करके परमात्मपदका लाभ प्राप्त किया है। सिद्धके समान अपने आत्माके स्वभावका अनुभव करना चाहिये। यही अपना आत्मा निश्चयसे देव है, यही धर्म रूप है, यही रत्नत्रय स्वरूप है, यही दाता है, यही पात्र है, यह अपनेसे अपनेको ज्ञानानन्द रसका दान करता है। अभ्यास करनेवालेको ॐ मन्त्रके द्वारा अपने निज शुद्ध स्वरूपका मनन करना चाहिये। इसी स्वात्ममननसे आत्मा शुद्ध होजाता है। ह्रीं मन्त्र भी वडा ही उपकारी है। यह अरहन्तके स्वरूपका वतानेवाला है। इसके द्वारा भी परमात्माका मनन होता है और आत्मा चार घातीय कर्मोंको काटकर अरहन्त होजाता है और फिर वही सिद्ध होजाता है। तात्पर्य यही है कि धर्म कहीं बाहर नहीं है। आत्माके शुद्ध स्वभावका श्रद्धान, ज्ञान व चारित्र ही धर्म है। इस धर्मको पहचाने विना कभी कल्याण नहीं होसक्ता है। साधकको मन्त्रोंके द्वारा जप व ध्यान करते हुए धीरे २ आत्माके स्वरूपकी रमणतामें पहुँच जाना चाहिये। यह धर्म वर्तमानमें भी सुखदाई है। यह धर्म वास्तवमें वीतराग विज्ञानकी भूमिपर खड़ा है। शास्त्र पढना, भक्ति करना, जप करना, गुण गाना, संयम पालना, तप करना, इन सब क्रियाओंके सेवनका भाव यही है कि शुद्धात्माका मनन हो। शुद्धात्माके मनन विना अन्य सर्व क्रियाकाण्ड जप तप निरर्थक है। मुमुक्षु जीवको इस शुद्धात्मानुभवका ही दृढतासे अभ्यास करना चाहिये।

श्री देवसेनाचार्य योगसारमें कहते हैं—

जो अप्पाण झायदि संवेयण चेयणाइ उवजुत्तं। सो हवइ वीयराओ णिम्मल रयणत्तओ साहू ॥ ४४ ॥

दंसण णाण चरित्त जोई तस्सेह णिच्छयं भणिय। जो वेयइ अप्पाण सचेयण सुद्धभावट्ठं ॥ ४५ ॥

भावार्थ—जो स्वसंवेदन चेतनादि गुणोंसे युक्त आत्माको ध्याता है वही निर्मल रत्नत्रयमई साधु वीतरागी होजाता है। जो कोई आत्माको चेतन स्वरूप व शुद्धात्मामें बिराजित निश्चयसे देखता है या अनुभव करता है उसी जोगीके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र निश्चयसे कहे गये हैं।

(३८) हम गभिवउ फूलना गाथा ७४४ से ७५८ तक ।

जिननन्द नन्द आनन्द मओ, जिन उवनउ सिद्धि सहाउ ।
जिन समय संजुत्तो सरन मऊ, जिन दरसिउ ममल सहाउ ॥ १ ॥
हम गम्य वऊ हम विंदि वऊ, हम परमानन्द सहाउ ।
हम नन्द आनन्दह नन्द मऊ, हम मुक्ति सिद्धि स सहाउ ॥ २ ॥

हम रंजन रमनह परम पऊ (आचरी)

जिन रमनह जोयो रंज मऊ, जिन न्यान विन्यानु संजुत्तु ।
जिन अर्थति अर्थह रमन पऊ, जिन अमिय रमन दर्सतु ॥ ३ ॥ हम गम्य वऊ० ॥
भय षिपिय भव्वु तं रमन मऊ, तं अमिय रमन विहसंतु ।
तं रंजन जोयो ममल पऊ, तं रंज रमन सिधि रत्तु ॥ ४ ॥ हम० ॥
तं न्यान सरूवे रूव मऊ, तं अमिय दिस्टि दर्संतु ।
तं भय विनासु सहकार मऊ, तं रमन रंज सिधि रत्तु ॥ ५ ॥ हम० ॥
उववन उववन्नऊ न्यान मऊ, तं ममल न्यान सुइ उत्तु ।
तं अमिय रसायन रंज मऊ, तं समय सिद्धि सम्पत्तु ॥ ६ ॥ हम० ॥
तं अष्यर सुर विंजन सहिओ, पद पर्म तत्तु दरसन्तु ।
भय षिपिय भव्वु विन्यान मऊ, तं रमन मुक्ति संपत्तु ॥ ७ ॥ हम० ॥
तं पद अर्थह संजुत्त पऊ, तं अर्थति अर्थ संजुत्तु ।
तं अमिय कमल जिन समय मऊ, तं रंज रमन सिव पंथु ॥ ८ ॥ हम० ॥

तं समयह परिनै परिन मऊ, उत्पन् उवएस संजुत्तु ।
भय षिपिय अमिय रस ममल पऊ, तं जय जय रंज रमंतु ॥ ९ ॥ हम० ॥
तं समय सहाव सु ममल पऊ, सहयार न्यान संजुत्तु ।
तं अमिय पयोहर रमन पऊ, तं रंज कमल जिन उत्तु ॥ १० ॥ हम० ॥
अनयासह नन्तानन्त पऊ, तं नन्त न्यान दरसन्तु ।
भय षिपिय नन्त वीरज सहिओ, तं रंज रमन सुह नन्तु ॥ ११ ॥ हम० ॥
अन्मोय न्यान तं कमल पऊ, तं अमिय पयोहर रत्तु ।
तं रिस्टि इस्टि विन्यान पऊ, तं रमन रंज सिव संतु ॥ १२ ॥ हम० ॥
तं षिपिक भाव भय षिपिय मऊ, तं सल्य संक विलयन्तु ।
तं नन्त कम्म विलयन्तु सुइ, तं रमन रंज सिधि रत्तु ॥ १३ ॥ हम० ॥
तं मुक्ति ममल सुइ उवन पऊ, तं अमिय रमन रस जुत्तु ।
तं नन्त कम्मु विलयंतु सुई, तं रमन रंज विहसन्तु ॥ १४ ॥ हम० ॥
तं तारन तरन सहाउ मऊ, तं रमन वियान संजुत्तु ।
भय षिपिय रंज अन्मोय मऊ, सम समय सिद्धि सम्पत्तु ॥ १५ ॥ हम० ॥

अन्वय सहित अर्थ— (जिन [illegible] नन्द आनन्द मओ) श्री जिनेन्द्र भगवान आनन्द स्वरूप हैं व आनन्दमें मगन हैं (जिन उवनउ सिद्धि सहाव) जिनके भीतर सिद्धात्माका स्वभाव प्रकाशित है (जिन समय सजुत्तो सरन मऊ) वे जिनेन्द्र स्वात्म रमणरूप चारित्रके धारी हैं, वे ही शरण स्वरूप हैं। उन्हींकी शरणमें जाना योग्य है (जिन दरसिउ ममल सहाउ) श्री जिनेन्द्रने शुद्ध स्वभावका साक्षात् अनुभव किया है ॥ १ ॥

(हम गम्य वऊ हम विंद वऊ) हम भी श्री जिनेन्द्रके समान ज्ञानगोचर हैं। हम भी स्वानुभवगोचर

हैं (हम परमानन्द सहाउ) हम भी परमानन्द स्वभावके धारी हैं (हम नन्द आनन्दह नन्द मऊ) हम अपने आनन्दमई स्वरूपमें मगन हैं (हम मुक्ति सिद्धि स सहाउ) हम ही मुक्ति स्वरूप हैं, हम ही सिद्ध स्वभावके धारी हैं। इसतरह एक साधकको द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा अपने आत्माका स्वरूप मनन करना चाहिये ॥२॥

(हम रजन रमनह परम पऊ) हम परम पदके भीतर रंजायमान हो रमण कर रहे हैं (जिन रमनह जोयो रज मऊ) श्री जिनेन्द्रने आनन्दमय होकर व अपनेमें रमण कर आपको देखा है (जिन न्यान विन्यानु संजुत्तु) वे जिनेन्द्र केवलज्ञानके धारी हैं (जिन अमिय रमन दर्सेतु) श्री जिनेन्द्र इसी बातको दिखलाते भी हैं कि आनन्दामृतमें रमण करो ॥ ३ ॥

(भय षिपिय भव्वु त रमन मऊ) जब भव्यजीव स्वात्माके स्वभावमें रमण करता हुआ तन्मय होजाता है तब सर्व भय नाश होजाता है (त अमिय रमन विहसतु) उसी आनन्दामृतके भीतर रमण कर प्रफुल्लित हो (त रजन जोयो ममल पऊ) जो निज स्वभावमें रजायमान होता है वह शुद्ध परमात्म-पदको देख लेता है (त रज रमन सिधि रत्त) वही आनन्दमें मगन जीव सिद्ध स्वभावमें रत होजाता है ॥ ४ ॥

(त न्यान सरूवे रूव मऊ) यह आत्मा ज्ञान स्वभावमें मगन है व ज्ञान-स्वरूप है (त अमिय दिस्टि दरसतु) यहीं वह दृष्टि या श्रद्धा दिखलाई पड़ती है जिससे आनन्दामृतका स्वाद आजावे (त भय विनाप सहकार मऊ) वे ही सर्व भय रहित हैं यही अपने उद्धारके लिये सहकारी है (त रमन रज सिधि रत्तु) यही आनन्द मगन होकर सिद्ध स्वभावमें रत हैं, तन्मय हैं। भावार्थ—आत्माका शुद्ध स्वभाव सिद्धके समान है ॥५॥

(उववन रववन्नउ न्यान मऊ) इस आत्मामें निश्चयसे ज्ञानमई प्रकाश झलक रहा है (त ममल न्यान सुइ उत्तु) उसीको शुद्ध केवलज्ञान कहते हैं (त अमिय रसायन रंज मऊ) वह आत्मा निश्चयसे आनन्दामृत रसायनमें मगन रहता है (तं समय सिद्धि सपत्तु) ऐसा ही अनुभव करनेवाला आत्मा सिद्ध गतिको पाता है ॥६॥

(त अष्यर सुइ विंजन सहियो पद पमे तत्तु दरसतु) सुर व्यंजन अक्षरोंसे बनी हुई जिनवाणीके पदोंसे परमात्माका तत्व ही दिखलाया जाता है (भय षिपिय भव्वु विन्यान मऊ) वह तत्व निर्भय स्वरूप ज्ञानमई आदरके योग्य है (तं रमन मुक्ति सपत्त) जो कोई उस परम तत्वमें रमण करता है वह मुक्तिमें पहुँच जाता है ॥ ७ ॥

(त पद अर्थह सजुत्त पऊ) श्री जिनवाणीके पद, पद और अर्थ सहित हैं (त अर्थ ति अर्थ सजुत्तु) उनसे रत्न-

ममलपाहुड ॥३२१॥

मयमई आत्म-पदार्थका बोध होता है (तं अमिय कमल जिन समय मऊ) वह पदार्थ आनन्दामृतमय ह, कालके समान विकसित है, वही जिन स्वरूप है, वही आत्म-स्वरूपमय है (तं रज रमन 'सत्र पउ) वही आनन्दमें मगन स्वरूप है, वही मोक्षका मार्ग है ॥ ८ ॥

(त ममयह परिनै परिनपऊ) वह आत्मा अपने स्वरूपमें परिणमन करता है (उवंन् उवएस सजुत्त) अरहन्त केवलीमें स्वभावसे ही उपदेश होता है (भय षिपिय अमिय रस ममल पऊ) वह शुद्ध आत्मा सर्व भय रहित है, आनन्दामृत-रससे पूर्ण है, वही शुद्धपद है (त जय जय रंज रमंतु) वे अर्हत् अपने आनन्दमें रमण करते हैं इसीसे इन्द्रादिदेव उनकी जय बोलते हैं ॥ ९ ॥

(तं समय सहाव सु ममल पऊ) शुद्धपद आत्माका स्वभाव ही है (सहयार न्यान सजुत्तु) उस पदमें केवलज्ञान शोभायमान है (त अमिय पयोहर रमन पऊ) वही आनन्दामृतका समुद्र ह, वही स्वात्म रमणपद है (त रंज कमल जिन उत्तु) श्री जिनेन्द्रने उसीको प्रफुल्लित कमल कहा है ॥ १० ॥

(अवयासइ नन्तानन्त पऊ) इस परमपदमें अनन्त गुणोंका अवकाश है (त नन्त न्यान दसंतु) वे अनन्त ज्ञानसे देखनेवाले हैं (भय षिपिय नन्त वीरज सहियो) वे निर्भय हैं, वे ही अनन्त वीर्यके धारी हैं (त रंज रमन सुह नन्तु) वे अनन्त सुखके स्वादमें रमण कर रहे हैं। ऐसा शुद्ध अरहन्तकी आत्माका स्वरूप है ॥११॥

(अन्मोय न्यान त कमल पऊ) वे ही ज्ञानानन्दमय हैं, वे ही प्रफुल्लित कमल स्वरूप हैं (तं अमिय पयोहर रत्तु) वे ही आनन्दामृतके समुद्रमें मगन हैं (त रिस्टि इस्टि विन्यान मऊ) वे ही श्रेष्ठ हैं इष्ट हैं व विज्ञानमई हैं (त रमन रज सिव सतु) वे ही आनन्दमें रमण करते हैं, वे ही शिव है या कल्याणरूप हैं, वे ही शांत स्वरूप हैं ॥ १२ ॥

(त पिपिय भाव भय पिपिय मऊ) वे क्षायिक भावोंके धारी हैं, वे परम अभय स्वरूप हैं (त सल्य सक विल्यतु) उनमें न कोई शल्य है न कोई शंकाएँ हैं (तं नन्त कम्म विलपत सुइ) उन्होंने स्वयं अनन्त कर्मोका क्षय कर दिया है (तं रमन रंज सिधि रत्त) वे ही आनन्द मग्न हैं व सिद्ध स्वभावमें रत हैं ॥ १३ ॥

(त मुक्ति ममल सुइ उवन पऊ) वे ही मुक्ति स्वरूप हैं, वे ही रागादि मलरहित हैं, वे स्वयं प्रकाशरूप हैं (त अमिय रमन रस जुत्त) वे आनन्दामृत रसके स्थानमें लवलीन हैं (त नन्त कम्मु विल्यतु हुई) उन्होंने ही अनन्त-कर्मोका क्षय कर दिया है। (त रमन रजविह सतु) हे भव्य ! उसी ही आनन्दकी रमणता करके प्रसन्न हो ॥१४॥

(तं तारन तरन सहाव मऊ) वे अरहन्त परमात्मा तारनतरन स्वभावके धारी हैं (त रमन विवान संजुत) इनके पास स्वात्मरमण रूपी जहाज है (भय पिपिय रज अन्मोय मऊ) वे सर्व भय रहित हैं, वे आनन्दमें मगन हैं (सम समय सिद्धि संपत्तु) वे ही समताभावके धारी आत्मा हैं, वे ही सिद्धिको प्राप्त करते हैं ॥ १९ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें स्वामीने शुद्धात्माके रमणसे जो आनन्द होता है उसीकी महिमा गाई है। आत्माको इसी जीवनमें रहते हुए विकास भावका लाभ होता है। इसीको अरहन्तपद कहते हैं। अरहन्तमें परम तत्व जैसा जिनवाणीने बताया है वैसा झलक रहा है। वे सदा ही निज शुद्ध स्वरूपमें मग्न रहते हैं। वे परम वीतराग हैं। उनकी अपूर्व सुखशांति ही उनके पूर्वबद्ध अनन्तानन्त कर्मोंकी निर्जरा करनेवाली है। उनकी आत्मा कभी मुद्रित नहीं होती है वह ध्रुव कमलके समान सदा ही प्रफुल्लित हैं। वे साक्षात् शिवमार्ग हैं, वे ही एक जहाज हैं, वे अपने उपदेशसे अनेकोंको तारते हैं व आप तर जाते हैं, वे अनन्त गुणोंके धारी हैं, वे अनन्त सुखके समुद्र हैं, वे ही रत्नत्रय स्वरूप हैं। धर्मका वास्तविक लक्षण वहांपर घटित होता है। उन ही अरहन्त परमात्माके समान अपने आत्माको जानना चाहिये। जिनवाणी यह बताती है कि अपने शुद्धात्माको सच्चा श्रद्धान करो, उसीका सच्चा ज्ञान प्राप्त करो, उसीमें रमण करो, स्वात्मरमणता ही मोक्षमार्ग है। जो भव्यजीव इस तत्वको समझते हैं व निश्चिन्त होकर अपने आत्मस्वरूपका मनन करते हैं, वे कर्म काटके अरहन्त परमात्मा फिर सिद्ध परमात्मा होजाते हैं।

धर्म या मोक्षमार्ग कहीं बाहर नहीं है आत्मा हीमें है व आत्मीक अनुभवसे ही वह प्राप्त होता है। योगसारमें श्री योगेन्द्रदेवने कहा है—

अरिहंतु वि सो सिद्ध फुडु सो आयरिउ वियाणि। सो उज्झावो सो जि मुणि णिच्छय अप्पा जाणि ॥ १०३ ॥

वज्जिय सयल वियप्पयह परम समाहि लहंति। ज वेददि साणद फुडु सो सिवसुक्ख भणंति ॥ ९६ ॥

भावार्थ—निश्चयनयसे इसी अपने आत्माको ही अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधुजनो, जो सर्व विकल्प छोड़कर परम समाधिको प्राप्त करते हैं वे साधु हैं। जिस आत्मानन्दका अनुभव करते हैं उसे ही मोक्षका सुख कहते हैं।

ममलपाहुड ॥३२३॥

(३९) न्यान अन्मोय पचीसी ७६९ से ७८४ तक ।

उव उवन उवन पउ, उवनु रमै । उव उवन अन्मोय, स न्यानी समय समय ॥१॥
स्वामी देहाले सुइ सिद्धाले, भेउन रहै । जजाके अन्मोय स न्यानी मुक्ति लहै ॥२॥ (आचरी)
जैसे दिस्टि सहावे न्यानी इस्टि रमै । तैसे विंद विन्यान स न्यानी मुक्ति लहै ॥३॥ स्वामी०॥
जैसे इस्टि संजोए रिस्टि रिस्टि रमै । तैसे कमल अन्मोय स न्यानी मुक्ति गमै ॥४॥ स्वामी०॥
जैसे समय सहावे इस्टि सिस्टि गमै । तैसे विंद रमन न्यानी मुक्ति रमै ॥५॥ स्वामी०॥
जैसे उवन उवन दिस्टि समय समय तैसे तरन विवान अन्मोए मुक्ति रमै ॥६॥ स्वामी०॥
जैसे दिस्टि सहाव न्यानी सहै समय । तैसे तरन विवान अन्मोए मुक्ति रमै ॥७॥ स्वामी०॥
जैसे अवयास दिस्टि स न्यानी नंत गमै । तैसे तरन अन्मोय विंदे मुक्ति गमै ॥८॥ स्वामी०॥
जैसे न्यान अन्मोए दिस्टि षिपकु षिपै । तैसे कमल रमन न्यानी केवल लहै ॥९॥ स्वामी०॥
जैसे षिपक सु इस्टि स न्यानी मुक्ति रमै । तैसे तरन विवान अन्मोए सिद्धि गमै ॥१०॥ स्वामी०॥
जैसे मुक्ति सहावे न्यानी सुष्य रमै । तैसे तरन रमन विंदे मुक्ति गमै ॥११॥ स्वामी०॥
जैसे कमल रमन जिन उत्तु गमै । तैसे विंद रमन न्यानी मुक्ति गमै ॥१२॥ स्वामी०॥
जैसे उवन सहावे न्यानी तत्तु रमै । तैसे तरन अन्मोय स न्यानी अगम गमै ॥१३॥ स्वामी०॥
जैसे रयन रमन न्यानी रयन विलै । तैसे तरन अन्मोय स विंदे कम्मु गलै ॥१४॥ स्वामी०॥
जैसे जोति अन्मोय रमन जोति रमै । तैसे कमल विंद रस न्यानी मुक्ति गमै ॥१५॥ स्वामी०॥
जैसे रमन सहावे न्यानी सुर सुयं रमै । तैसे न्यान अन्मोय स न्यानी मुक्ति गमै ॥१६॥ स्वामी०॥

जैसे जलह सहावे वृषु वृद्ध करै । तैसे न्यान अन्मोय स न्यानी केवल सरै ॥१७॥ स्वामी०॥
जैसे सिद्ध सरूवे सिध सिद्ध गमै । तैसे तरन अन्मोय स न्यानी विंद रमै ॥१८॥ स्वामी०॥
जैसे विंजन रमन सुर सुयं गमै । तैसे विद रमन तारन सहज रमै ॥१९॥ स्वामी०॥
जैसे मुक्ति सुभावे स न्यानी मुक्ति गमै । तैसे कमल रमन स न्यानी केवल रमै ॥२०॥ स्वामी०॥
जैसे ममल अन्मोए म न्यानी सिद्धि गमै । तैसे तरन विवान अन्मोये विंद रमै ॥२१॥ स्वामी०॥
जैसे षिपक सुभावे स न्यानी मुक्ति गमै । तैसे कमल विंद अन्मोये मुक्ति रमै ॥२२॥ स्वामी०॥
जैसे न्यान विन्यान अन्मोए मुक्ति गमै । तैसे तरन अन्मोए स न्यानी विंद रमै ॥२३॥ स्वामी०॥
जैसे समय सहावे न्यानी केवल रमै । तैसे कमल रमन जिनु अगम गमै ॥२४॥ स्वामी०॥
जैसे सुयं रमन जिन अमिय रमै । तैसे तरन अन्मोए स विंदे कमल समय ॥२५॥ स्वामी०॥
जं तारन तरन न्यानी अमिय गमै । तं तरन स विंद कमल जिन सिद्ध रमै ॥२६॥ स्वामी०॥

अन्वय सहित अर्थ—(उव उवन उवन पउ उवन रमै) अब सम्यग्दर्शनका उदय हुआ है उसीमें रमण हो-रहा है (उव उवन अन्मोय स न्यानी समय ममय) ज्ञानी जीव उसी सम्यक्त भावमें आनन्द मान रहे हैं। वे ज्ञानी समय समय उसीमें मगन हैं या सम्यक्तभावमें आनन्द मानना सो ही आत्मीक स्वभावमें आचरण है ॥१॥

(स्वामी देहाले सुइ सिद्धाले भेउ न रहै) जैसे भगवान परमात्मा सिद्धालयमें विराजमान हैं वैसे इस शरीररूपी मंदिरमें आत्माराम देव हैं, कोई भेद निश्चयनयसे नहीं है (ज जाने अन्मोय स न्यानी मुक्ति लहै) जो कोई इस सिद्ध स्वभावी आत्माके रमणमें आनन्द मानता है वही ज्ञानी मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥ २ ॥

(जैसे दिस्टि सहावे न्यानी द्रस्टि रमै) जैसे २ ज्ञानी सम्यग्दर्शनके स्वभावसे अपने इष्ट आत्मीक भावमें रमण करता है (तैसे विंद विन्यान स न्यानी मुक्ति लहै) वैसे २ यह आत्मज्ञानी आत्माका अनुभव करता हुआ मुक्तिकी तरफ बढ़ता जाता है ॥ ३ ॥

ममलपाहुड
॥३२५॥

(जैसे इस्टि सजोए दिस्टि दिस्टि रमै) जैसे २ परम दुष्ट आत्मारामके संयोगसे उत्तम २ प्रकारसे रमण करता जाता है (तैसे कमल अन्मोय स न्यानी मुक्ति गमै) वैसे २ कमल समान प्रफुल्लित आत्मामें आनन्द होता हुआ ज्ञानी मुक्तिकी ओर बढ़ता जाता है ॥ ४ ॥

(जैसे समय सहावे इस्टि सिस्टि गमै) जैसे २ आत्माके स्वभावमें श्रेष्ठ प्रेम बढ़ता जाता है (तैसे विंद रमन न्यानी मुक्ति रमै , वैसे वैसे आत्मानुभवमें रमण करता हुआ ज्ञानी जीव मुक्तिके स्वभावमें रमण करता रहता है ॥ ५ ॥

(जैसे उवन उवन दिस्टि समय समय) जैसे जैसे समय २ आत्मानुभवकी दृष्टि विशेष जमती जाती है (तैसे तरन विवान अन्मोए मुक्ति रमै) वैसे वैसे तारनतरन अरहन्तके स्वभावमें आनन्द अनुभव करता हुआ मुक्तिके भीतर रमण करता है ॥ ६ ॥

(जैसे दिस्टि सहाव न्यानी सहै ममय) जैसे जैसे ज्ञानी आत्मदृष्टिके स्वभाव द्वारा आत्मामें विजय प्राप्त करता जाता है (तैसे तरन विवान अन्मोय मुक्ति रमै) वैसे वैसे तारणतरण अरहन्तके स्वभावमें आनन्दित होता हुआ मुक्तिमें रमण करता है ॥ ७ ॥

(जैसे अवयाम दिस्टि स न्यानी नन्त गमै) जैसे जैसे आकाश समान आत्मामें दृष्टि रखता हुआ ज्ञानी अनन्त गुणधारी आत्माका अनुभव करता है (तैसे तरन अन्मोए विन्दे मुक्ति गमै) वैसे वैसे तारणतरण आत्मामें आनन्दका अनुभव करता हुआ मुक्तिकी ओर बढता जाता है ॥ ८ ॥

(जैसे न्यान अन्मोए दिस्टि षिपक षिपै) जैसे २ आत्मज्ञानमें आनन्द अनुभव करती हुई दृष्टि क्षायिक भावरूप होती हुई कर्मोंको क्षय करती जाती है, क्षायिक सम्यक्तके साथ २ चारित्र बढता जाता है वैसे२ कर्मोंकी अधिक २ निर्जरा होती जाती है (तैसे कमल रमन न्यानी केवल लहै) वैसे वैसे कमल समान विकसित आत्मामें रमण करता हुआ ज्ञानी केवलज्ञानको प्राप्त कर लेता है ॥ ९ ॥

(जैसे षिपक सु इस्टि स न्यानी मुक्ति रमै) जैसे २ क्षायिक भाव धारी ज्ञानी परमप्रिय मुक्तिके स्वभावमें रमण करता है (तैसे तरन वियान अन्मोप सिद्धि गमै) वैसे २ तारणतरण अरहन्त आनन्दमग्न होते हुए सिद्ध-गतिको चले जाते हैं । भावार्थ—अरहन्तपदके रमणसे सिद्धपद होता है ॥ १० ॥

(जैसे मुक्ति सहावे न्यानी सुष्य रमै) जैसे २ ज्ञानी मुक्तिके स्वभावमें ठहरकर आत्मिक सुखमें रमण करता जाता है (तैसे तरन रमन विंदे मुक्ति गमै) वैसे २ तरनेवाला आत्मा आत्मीक स्वभावके रमणसे आनन्द अनुभव करता हुआ मुक्तिका अनुभव करता है॥ ११ ॥

(जैसे कमल रमन जिन उत्त गमै) जैसे२ विकसित कमल समान आत्मामें रमण करता हुआ उस पदको जानता है, जिस शुद्ध पदका माहात्म्य श्री जिनेन्द्रने कहा है (तैसे विंद रमन न्यानी मुक्ति गमै) वैसे २ आत्मानुभवमें रमण करता हुआ ज्ञानी मुक्तिके स्वभावको पहुँचता जाता है ॥ १२ ॥

(जैसे उवन सहावे न्यानी तत्तु रमै) जैसे२ अपने प्रकाशमान स्वभावमें रहकर ज्ञानी जीव आत्म तत्वमें रमण करता है (तैसे तरन अन्मोय स न्यानी अगम गमै) वैसे २ तरण स्वभावी ज्ञानी आनन्द-मग्न होता हुआ इन्द्रिय व मनसे अगोचर आत्माका अनुभव करता है ॥ १३ ॥

(जैसे रयन रमन न्यानी रयन विले) जैसे जैसे ज्ञानी जीव रत्नत्रयमें रमण करता हुआ रत्नत्रय स्वभावी आत्मामें लय होता है अर्थात् निर्विकल्प समाधि भावको प्राप्त कर लेता है (तैसे तरन अन्मोय स विंदे कम्मु गले) वैसे २ तरणस्वभावी आत्मामें आनन्द लेता हुआ आत्मानुभवके प्रतापसे कर्मोंका क्षय करता है ॥१४॥

(जैसे जोति अन्मोय रमन जोति रमै) जैसे२ आत्मज्योतिके आनन्दमें मगन होकर आत्मज्योतिसे तन्मय होजाता है (तैसे कमल विंद रस न्यानी मुक्ति गमै) विकसित कमल समान आत्माका स्वाद लेता हुआ ज्ञानी मुक्तिकी ओर जाता है ॥ १५ ॥

(जैसे रमन सहावे न्यानी सुर सुय रमै) जैसे २ ज्ञानी साधु आत्म-रमण स्वभावी आत्मामें स्वयं स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा रमण करता है (तैसे न्यान अन्मोय स न्यानी मुक्ति गमै) वैसे २ ज्ञानी ज्ञानानन्दमें मगन होता हुआ मुक्तिकी ओर जाता है ॥ १६ ॥

(जैसे जलह सहावे वृषु वृद्ध करै) जैसे पानीका स्वभाव ही ऐसा है कि जब वृक्षमें पड़ेगा तब उसको बढावेगा (तैसे न्यान अन्मोय स न्यानी केवल सरै) वैसे ही ज्ञानानन्दकी मगनता जितनी२ होगी उतना२ ही केवलज्ञानकी तरफ बढ़ता जायगा। ज्ञानावरणीय कर्मका क्षय होकर केवलज्ञानका प्रकाश स्वात्मरमणसे प्राप्त स्वात्मानन्दके भोगसे ही होता है ॥ १७ ॥

(जैसे सिद्ध सरूवे सिध सिद्ध गमै) जैसे सिद्ध भगवान अपने सिद्ध स्वभावसे ही सिद्ध गतिमें विरा-

ममलपाहुड
॥३२७॥

जमान रहते हैं (तैसे तरन अन्मोय स न्यानी विंद रमै) वैसे ही ज्ञानी अपने तरण स्वभावमें आनन्दित होता हुआ स्वात्मानुभवमें रमण करता रहता है ॥ १८ ॥

(जैसे विंजन रमन सुर सुय गमै) जैसे क, ख, ग आदि व्यंजनोंके साथ अ आ आदि स्वर स्वयं मिलकर उसके साथ रम जाते हैं—परस्पर तन्मय होजाते हैं (तैसे विंद रमन तारन सहज रमै) वैसे ही यह तारणतरण आत्मा आप हीमें स्वभावसे रमता हुआ स्वात्मानुभवमें तन्मय होजाता है ॥ १९ ॥

(जैसे मुक्ति सुभावे स न्यानी मुक्ति गमै) जैसे ज्ञानी मुक्ति स्वभावधारी आत्मामें ठहरकर मुक्तिका अनुभव करता है (तैसे कमल रमन स न्यानी केवल रमै) वैसे ही विकसित कमल समान शुद्धात्मामें रमण करता हुआ वह ज्ञानी केवलज्ञानमें रमण करता है ॥ २० ॥

(जैसे ममल अन्मोए स न्यानी सिद्धि गमै) जैसे शुद्धोपयोगमें आनन्द लेता हुआ ज्ञानी मुक्तिका अनुभव करता है (तैसे तरन विवान अन्मोये विंद रमै) वैसे ही तारणतरण आत्मामें आनन्द लेता हुआ ज्ञानस्वभावमें ज्ञानी रमण करता है ॥ २१ ॥

(जैसे षिपक सुभावे स न्यानी मुक्ति गमै) जैसे क्षायिक सम्यक्ती क्षायिक ज्ञानी व क्षायिक चारित्री होकर स्वभावसे ही ज्ञानी मुक्तिका अनुभव करता है (तैसे कमल विंद अन्मोये मुक्ति रमै) वैसे ही ज्ञानी प्रफुल्लित कमल समान आत्मामें मगन होकर आत्मानन्द लेता हुआ मुक्ति स्वभावमें रमण करता है ॥ २२ ॥

(जैसे न्यान विन्यान अन्मोए मुक्ति गमै) जैसे स्वसंवेदन ज्ञानमें आनन्द लेता हुआ ज्ञानी मुक्तिका अनुभव करता है (तैसे तरन अन्मोए स न्यानी विंद रमै) वैसे ही ज्ञानी तरण स्वभावी आत्मामें आनन्द लेता हुआ ज्ञान चेतनामें रमण करता है ॥ २३ ॥

(जैसे समय सद्भावे न्यानी केवल रमै) जैसे ज्ञानी शुद्धात्माके स्वभावमें ठहरकर केवलज्ञानमें रमण करता है (तैसे कमल रमन जिनु अगम गमै) वैसे ही आत्मारूपी कमलमें रमण करता हुआ वीतरागी जिन इंद्रियातीत आत्माका अनुभव करता है ॥ २४ ॥

(जैसे सुयं रमन जिन अमिय रमै) जैसे जिनेन्द्र आपमें रमण करते हुए आनन्दामृतका स्वाद लेते हैं (तैसे तरन अन्मोए स विंदे कमल ममय) वैसे ही तरण स्वभावके आनन्दका अनुभव करता हुआ यह आत्मा कमलके समान विकसित रहता है ॥ २५ ॥

(ज तारनतरन स न्यानी अमिय रमै) जैसे तारणतरण ज्ञानी आनन्दामृतका अनुभव करता है (तं तरन स विंद कमल जिन सिद्ध रमै) वैसे ही तरण स्वभावी कमल समान विकसित जिनेन्द्र ज्ञानका स्वाद लेते हुए सिद्ध स्वभावमें रमण करते हैं ॥ २६ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें स्वामीने यह बात झलकाई है कि सम्यग्दर्शनके प्रकाशसे ही सिद्धावस्था होती है। सम्यक्तका अनुभव वही आत्माका अनुभव है, वही आत्माके आनन्द गुणका अनुभव है। आत्मानुभवकी शक्ति सम्यक्त गुणके प्रगट होते ही होती है। जिससमय सम्यक्ती महात्मा आत्मानुभव करता है उससमय वहां रत्नत्रय धर्म है व मोक्षका मार्ग है। शुद्धात्माका श्रद्धान सम्यक्त है, उसीका ज्ञान सम्यग्ज्ञान है, उसीमें मगन होना सम्यक्चारित्र है। शुद्धात्मानुभवमें सदा ही आनन्दका अनुभव होता है। यह आनन्दानुभव ही वह ध्यानकी ज्वाला है जो कर्मोंको जलाती है। उसी आनन्दानुभव रूपी जलके सिंचनसे धर्मवृक्ष बढ़ता जाता है, बाधक कर्मोंका क्षय होकर आत्माका गुण विकसित होता जाता है। गुणस्थानकी परिपाटीसे भावोंकी शुद्धता बढती जाती है और यह सम्यक्ती साधु होकर धर्मध्यानकी पूर्णता करता है। फिर क्षायिक सम्यक्ती तद्भव मोक्षगामी अन्तरात्मा क्षपकश्रेणीपर आरूढ होकर आत्मानन्दमें रमण करता हुआ मोहका क्षय करता है। फिर शेष तीन घातीय कर्मोंका क्षय कर केवलज्ञानी अरहंत होजाता है। अरहंत भगवान तारणतरण हैं। आप तरेंगे, अनेकोंको भवसमुद्रसे तारेंगे। यह अरहन्त भी स्वात्मानन्दको लेते रहते हैं। अरहन्त अवस्था होनेके पहले श्रुतज्ञानके आधारसे आत्मानन्दका भोग था। अब केवलज्ञानके आधारसे प्रत्यक्ष आत्माका साक्षात्कार होकर अनन्त आनन्द बहुत ही स्वच्छ प्रगट होजाता है। यही अरहन्त इसी आत्मानन्दसे शेष अघातीय कर्मोंका भी क्षय कर सिद्ध परमात्मा होजाते हैं तब भी वे स्वात्मानन्दका भोग करते हैं। वास्तवमें आत्मानन्द मोक्षमार्ग है, आत्मानन्द ही मोक्ष है। अपने ही भीतर अपने आत्माको सिद्ध समान ध्याना योग्य है। जैसा ध्यावे वैसा होजावे। जैनसिद्धांत अमृतकी घूंट है, सदा ही आनन्दप्रद है, इसीका मनन करना एक मुमुक्षुका परम धर्म है।

योगसारमें श्री योगेन्द्रदेव कहते हैं—

जेहउ सुद्ध आयासु जिय तेहउ अप्पा उत्तु । आयासु वि जड जाणि जिय अप्पा चेयणुवन्तु ॥ ५८ ॥

अप्पय अप्पु मुणन्तयहं किंणेहा फलु होइ । केवलणाणु विपरिणवइ सासय सुक्खु लहेइ ॥ ६१ ॥

भावार्थ—जैसे शुद्ध आकाश है वैसा ही यह निर्मल आत्मा कहा गया है। आकाश चेतना रहित जड़ है, आत्मा चेतना सहित जड़ नहीं है। आत्माको आत्मा रूप अनुभव करते हुए वहां क्या क्या अपूर्व फल नहीं प्राप्त होते हैं। अन्तमें केवलज्ञान होजाता है और यह आत्मा अविनाशी अनन्त सुखका लाभ कर लेता है।

(४०) अचष्य सब्द गाथा ७९९ से ८०८ तक।

अचष्यं उवन सहावं, सब्दं सहकार ममल उप्पत्ती।
ममलं ममल स उत्तं, कमल सहावेन केवलं उत्तं ॥ १ ॥
अचष्यं उवन सहावं, उवन संजोय न्यान विन्यानं।
हिययार रमन सर्वन्ये, कमल संजोय ममल न्यानं च ॥ २ ॥
अचष्य सुयं सु उवनं, उववन उववन हियार संजुत्तं।
सिद्धं सिद्ध सरूवं, न्यान विन्यान ममल जिन जिनयं ॥ ३ ॥
अचष्यं अचष्य उवनं, असब्द सहकार सुयं जिन जिनयं।
कमल ममल जिन उत्तं, सिद्ध सहकार उवन धुव ममलं॥ ४ ॥
अचष्यं असब्द सहावं, दिस्टं अदिस्ट उवन सुइ उवनं।
कमल गिरा सिय सहियं, धुव उवनं उवन कमल वयनं च ॥ ५ ॥
अचष्यं इस्टि सु उवनं, इस्टं इस्टति उवन सुइ रमनं।
इस्टं उवन संजोयं, उवन सहावेन सिद्ध धुव वयन ॥ ६ ॥
अचष्यं अदर्सन दर्स, इस्टं दर्सति न्यान सद्भावं।
इस्ट दर्स सुइ उवनं, उवनं संजोय सिद्ध धुव वयनं ॥ ७ ॥

अचष्ये रमन सुइ रमनं, हिय उववन्न रंज जिन रमनं ।
उववन रमन जिन रमनं, सिव धुव संजोय अमिय सुइ वयनं ॥ ८ ॥
अचष्यं उवन सहावं, सिय सहकार धुव वयन ममलं च ।
ममलं उवन उवएसं, सिय सहकार सिद्ध धुव ममलं ॥ ९ ॥
सव्द सुयं सुइ उवनं, रमनं रमिऊन ममल न्यानं च ।
रसिओ सव्द जिनुत्तं, सिय सहकार ममल धुव रमनं ॥ १० ॥
सव्दं कसनि सहावं, कमल सहावेन सिद्धि धुव रमनं ।
कमल कलिय जिन वयनं, धुव सव्दं च कसनि ममलं च ॥ ११ ॥
सव्दं तं तिय अर्थं, तत्वं सहकार उवन उवनं च ।
उवनं उवन स उत्तु, सुइ उवनं कार्ज च कलिय जिन वयनं ॥ १२ ॥
तत्काल सव्द सुइ उवनं, तत्कालं रमन न्यान विन्यानं ।
रंज रमन जिन उत्तं, नंद आनन्द सिद्धि सम्पत्तं ॥ १३ ॥
सव्दं विक्त सरूवं, स्फटिक सुद्ध सुइ उवन ममलं च ।
उवन उवन सुइ रमनं, सिद्ध धुव सहकार मुक्ति गमनं च ॥ १४ ॥
सव्दं सुयं सुइ रमनं, सव्दं विन्यान न्यान उत्तं च ।
जिनपति जिनय सरूवं, सिद्ध धुव परिनामु केवलं उत्तं ॥ १५ ॥
असव्द सव्द स उत्तं, असव्द विलयंति सव्द जिन उत्तं ।
सव्द सुयं सुइ उवनं, सव्दं संजोय ममल न्यानं च ॥ १६ ॥

ममलपाहुड
॥३२१॥

सरं सहाव अचष्यं, सव्दं संजोय कमल जिन उत्तं ।
सव्द विंद सर उवनं, अर्क सव्दं च चष्य अचष्यं ॥ १७ ॥
असव्द सर संजोय, अदिस्ट अनश्रुत सव्द जिन उत्तं ।
गम अगमं सुइ रमनं, रमनं सिय रमन कमल जिन वयनं ॥ १८ ॥
गुपित सव्द जिन उत्तं, गुपितं अन्मोय गुपित सुइ उवनं ।
दिस्ट दिस्टि सुइ सव्दं, सहकारं संजोय सव्द पिउ वयनं ॥ १९ ॥
सव्द समय मम उवनं, उवनं सुर सव्द न्यान विन्यानं ।
न्यान रंज सुइ रमनं, नन्द आनन्द जिनय जिन उवनं ॥ २० ॥
सरं सहाव सु ममलं, ममलं सहकार सुयं सुइ कमलं ।
कमल कलिय जिन उत्तं, कमल सहकार केवलं ममलं ॥ २१ ॥
अचष्यं सुभाव स उत्तं, अचष्ये उव उवन लष्य लष्यं च ।
गम अगम्य जिन वयनं, जिन उत्तं उवन अचष्य ममलं च ॥ २२ ॥
अचष्यं सुयं सुइ उवनं, उवन सहावेन कमल सुइ सुवनं ।
सुयं सुयं सुइ उवनं, जिन उत्तं सहकार मुक्ति गमनं च ॥ २३ ॥
तारन तरन सु रमनं, रंज रमन नन्द रयन संजुत्तं ।
विवान उवन सुइ उत्तं, विवान तरन सिद्धि सम्पत्तु ॥ २४ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(अचष्य उवन सहावं) इंद्रियोंसे अगोचर आत्मा प्रकाश स्वभाव है (सव्द सहकार ममल उप्पची) ॐ ह्रीं आदि शब्दोंके जप व ध्यान द्वारा इस आत्मामें शुद्ध भावका प्रकाश होता है (ममलं ममल स उत्त) जिसमें कोई रागद्वेष मल नहीं है उसको मल रहित शुद्ध करते हैं (कमल सहावेन केवल उवं)

जो आत्मा अपने गुणोंमें पूर्ण प्रकारसे विकसित होता है वह कमलके स्वभावके समान होजाता है। उस अरहन्तको केवली कहते हैं ॥ १ ॥

(अचष्य उवन सहाव) आत्मा प्रकाश स्वभाव है (उवन सजोय न्यान विन्यान) आत्माके प्रकाश या आत्मानुभवके संजोगसे ज्ञान विज्ञानका विकास होता है (हिययार रमन सर्वन्ये) आत्मानुभव हितकारी है इसीसे सर्वज्ञ स्वभावी आत्मामें रमण होता है (कमल सजोय ममल न्यानं च) इसीसे कमलवत् अरहन्त होजाता है। वहां निर्मल शुद्ध ज्ञान विराजता है । २ ॥

(अचष्य ध्रुय च उवन) आत्मा स्वयं ही प्रकाशमान होजाता है। यह स्वयं मिथ्यादृष्टीसे सम्यग्दृष्टी होजाता है (उववन उववन हियार सजुत्त) सम्यग्दर्शनका प्रकाश परम हितकारी है (सिद्ध सिद्ध सरूव) सम्यग्दर्शनके द्वारा आत्माका सिद्ध स्वरूप सिद्ध किया जाता है (न्यान विन्यान ममल जिन जिनय) इसीसे शुद्ध केवलज्ञान होता है। इसीसे कर्ममलरहित होता है। इसीसे कर्मोंको जीतकर जिन होता है ॥ ३ ॥

(अचष्य अचष्य उवन) आत्मासे ही आत्माका प्रकाश होता है (अषण्द सहकार सुयं जिन जिनय) शब्दोंके द्वारा जब शब्द रहित होजाता है, आप आप ही आत्मामें लीन होजाता है तब यह स्वयं कर्मोंको जीतकर जिन होजाता है। भावार्थ—आत्मानुभव हीसे कर्मोंकी निर्जरा होती है (कमल ममल जिन उत्तं) घातीय कर्मोंके क्षयसे यह आत्मा शुद्ध कमलवत् विकसित व जिन कहलाता है (सिद्ध सहकार उवन ध्रुव ममल) फिर यह सिद्ध होजाता है तब सदा ही ध्रुव रूपसे निर्मल या शुद्ध बना रहता है ॥ ४ ॥

(अचष्य अषण्द सहावं) आत्मा शब्दोंके द्वारा नहीं जाना जाता है किन्तु जब शब्दोंका विचार छोड़कर अपने आपमें लीन हुआ जाता है तब ही आत्माका अनुभव या स्वाद आता है (दिस्टं अदिस्ट उवन सुइ उवन) यह आत्मा जो इंद्रियोंसे नहीं दीखता है ज्ञानद्वारा देखनेमें आता है, यह आपसे ही आपको प्रकाश करता है (कमल गिरा सिय सहिय) जब यह कमलवत् अरहंत होजाता है तब उनकी शुद्ध वाणी प्रगट होती है (ध्रुव उवन उवन कमल वयन च) अरहंतका आत्मा ध्रुव रूपसे प्रकाशित होजाता है, कमलके समान झलक जाता है, उसीमें वाणीका प्रकाश होता है ॥ ५ ॥

(अचष्य इस्ट सु उवन) आत्मा परम प्रिय प्रकाश रूप है (इस्टं इस्टंति उवन सुइ रमनं) यह अपने ही इष्ट स्वभावके साथ जब प्रेमी होजाता है तब यह स्वयं अपने प्रकाशमें रमण करने लगता है (इस्ट उवन सजोय)

आत्माका हित अपने ही प्रकाशका संजोग है (उवन सहावेन सिद्ध धुव वयनं) इस अपने ही प्रकाशसे यह आत्मा स्वयं सिद्ध या ध्रुव होजाता है ऐसा जिनेन्द्रका वचन है ॥ ६ ॥

(अचष्ये अदर्सन दर्सं) यह आत्मा अपने आपको देखता है। यह आत्मा इंद्रियोंके द्वारा देखनेमें नहीं आता है (इस्ट दर्सेति न्यान सदभाव) यह अपने हितकारी सम्यग्ज्ञानको या आत्मज्ञानको देखता है (इस्ट दर्स सुइ उवन) अपने इष्टको देखना सो ही आत्माका प्रकाश है (उवन सजोय सिद्ध धुव वयन) उसी आत्म प्रकाशके द्वारा यह सिद्ध या ध्रुव होजाता है ऐसा जिनेन्द्रका वचन है ॥ ७ ॥

(अचष्ये रमन सुइ रमन) आत्मामें रमण करना सो ही आत्मानुभव है (हिय उववन्न रज जिन रमन) आत्मानुभव ही स्वात्म हितका प्रकाश है, यही आनन्दमय जिन स्वभावमें रमण है (उववन रमन जिन रमन) आत्मप्रकाशमें रमना सो ही जिन स्वभावमें रमना है (सिव धुव संजोय असिय सुइ वयन) इसीसे अविनाशी शिवरूप मोक्षका लाभ होता है जो आनन्दमय है ऐसा जिनेन्द्रका वचन है ॥ ८ ॥

(अचष्य उवन सहावं) आत्मा प्रकाश स्वभावका रखनेवाला है (सिव सहकार धुव वयन ममल च) इसीके शुद्ध प्रकाशकी सहायतासे अविनाशी अरहन्त पद प्रगट होता है जिनकी वाणी शुद्ध प्रगट होती है (ममलं उवन उवएसं) उस वाणी द्वारा आत्माकी शुद्धि करनेका उपदेश प्राप्त होता है (सिव सहकार सिद्ध धुव ममल) शुद्धोपयोगके द्वारा ही अविनाशी शुद्ध सिद्धपदका लाभ होता है ॥ ९ ॥

(सब्द सुय सुइ उवनं) श्री अरहन्त भगवानकी वाणी स्वयं ही प्रगट होती है, अरहन्तकी इच्छा विना नामकर्मके उदयसे व भव्य जीवोंके पुण्यके उदयसे वाणीका प्रकाश होता है (रमनं रमिऊन ममल न्यानं च) जिस रमणीक वाणीमें रमण करनेसे ज्ञानकी निर्मलता होती है (रसिओ सब्द जिनुत्तं) जिनेन्द्र द्वारा कथित शब्द अमृतरससे पूर्ण होते हैं (सिव सहकार ममल धुव रमनं) इस शुद्ध वाणीकी सहायतासे शुद्ध व अविनाशी आत्माके स्वभावमें रमण होता है ॥ १० ॥

(सब्द कसनि सहाव) शब्दोंके द्वारा कर्मोंका नाश होता है, जब परमात्मा वाचक शब्दोंके द्वारा मनन करनेसे व ध्यान करनेसे वीतराग भाव पैदा होजाता है तब कर्मोंकी निर्जरा होती है (कमल सहावेन सिद्धि धुव रमन) जब अघातीय कर्मोंके क्षयसे कमल समान अरहन्त पद प्रगट होजाता है तब अरहन्त परमात्मा अविनाशी सिद्ध भावमें रमण करते हैं (कमल कलिय जिन वयनं) कमल समान आत्मामें तल्लीन

श्री जिनेन्द्र द्वारा वाणीका प्रकाश होता है (धुव सव्द न कसनि ममल च) उन शब्दोंके द्वारा कर्मोंका क्षय होता है तब आत्मा कर्ममल रहित होकर अविनाशी भावमें जमा रहता है ॥ ११ ॥

(सव्द त तिय अर्थ) शब्दोंके द्वारा रत्नत्रयमई पदार्थका बोध होता है (तत्व सहकार उवन उवन च) आत्म-तत्वके मनन द्वारा आत्माका प्रकाश होता है (उवन उवन स उत्तु) उसी प्रकाशको तत्वप्रकाश कहते हैं (सुइ उवनं कार्जे च कलिय जिन वयन) उसी आत्म प्रकाशसे स्वयं कारण कार्यरूप होजाता है। अर्थात् आत्मा परमात्मा अरहन्त होजाता है तब उनकी दिव्यवाणीका प्रकाश होता है ॥ १२ ॥

(तस्कान सव्द सुइ उवनं) जिस समय दिव्यवाणीका प्रकाश अरहन्त भगवानके होता है (तत्काल रमन न्यान विन्यान) उस समय भी वे अरहन्त अपने ज्ञानस्वभावमें रमण करते रहते हैं। (रंज रमन जिन उत्त) जिनेन्द्रको आनन्द स्वभावमें रमण करनेवाला कहा गया है (नन्द आनन्द सिद्धि सपत्तं) वे अरहन्त भगवान निजानन्दमें मगन होते हुए सिद्धगतिको प्राप्त कर लेते हैं ॥ १३ ॥

(सव्द विक्त सरूव) भगवानकी वाणीके शब्दोंके द्वारा आत्माका स्वरूप प्रगट होता है। जो वाणीको सुनकर मनन करते हैं उनको आत्माका स्वरूप झलक जाता है (स्फटिक सुद्ध सुइ उवन ममलं च) उनको अनुभवमें आता है कि आत्माका स्वभाव स्फटिकमणिके समान शुद्ध प्रकाशरूप सर्व रागादि मलसे रहित है (उवन उवन सुइ रमन) उसी उदयरूप प्रकाशमें जो स्वयं रमण करते हैं अर्थात् शुद्धात्माका अनुभव करते हैं (सिद्ध धुव सहकार मुक्ति गमन च) वे उस आत्मानुभवके प्रभावसे अविनाशी सिद्ध भावको प्राप्त करके मोक्ष पहुँच जाते हैं ॥ १४ ॥

(सव्द सुयं सुइ रमनं) जिनवाणीका यह उपदेश है कि आपसे ही आपमें रमण करना चाहिये (सव्द विन्यान न्यान उत्त च) जिनवाणी बताती है कि भेदविज्ञानसे आत्मानुभव होता है (जिनपति जिनय सरूव) इसी आत्मानुभवसे कर्मोंको जीतकर आत्मा जिनेन्द्र स्वरूप होजाता है (सिद्ध धुव परिनामु केवल उत्त) तब उसको सिद्ध, ध्रुव, शुद्ध परिणमनशील व केवली कहते हैं ॥ १५ ॥

(असव्द सव्द स उत्त) वह दिव्यवाणी शब्द रहित आत्माको झलकाती है (असव्द विलयति सव्द जिन उत्त) जब शब्द रहित आत्मामें लयता प्राप्त होती है तब जिन कथित वाणीका विचार नहीं रहता है (सव्द सुयं सुइ उवनं) शब्दोंके द्वारा जो भाव है सो स्वयं प्रकाशमान रहता है अथवा शुक्लध्यानमें अबुद्धिपूर्वक

शब्दकी सहायता रहते हुए भी शुद्ध भाव बना रहता है (सब्द संजोय ममल न्यान च) शब्दकी सहायतासे अर्थात् द्वितीय शुक्लध्यानसे जहां शब्दका आलम्बन है या श्रुतज्ञानका आलम्बन है, केवलज्ञानका लाभ होजाता है ॥ १६ ॥

(सरं सहाव अचष्यं) आत्मा सरोवरके समान निर्मल ज्ञान जलसे भरा है (सब्द सजोय कमल जिन उत्त) शब्दोंके आलम्बन द्वारा उसी सरोवरमें श्री जिनेन्द्र कमलका प्रकाश होता है ऐसा कहा गया है। अर्थात् आत्मामें स्वयं ही अरहन्तपद झलक जाता है (सब्द विंद सर उवनं) शब्दोंके द्वारा स्वात्मानुभवरूपी सरोवर प्रगट होजाता है। जब आत्मा आत्मानन्दमें मगन होता है तब धारावाही अमृतका सरोवर ही बन जाता है (अर्क सब्द च चष्य अचष्यं) जिससे आत्मारूपी कमलका विकाश हो वे शब्द-सूर्यके समान हैं। इन इंद्रिय द्वारा ग्राह्य शब्दके द्वारा इंद्रियातीत आत्माका अनुभव होजाता है। भगवानकी दिव्यवाणीकी अपार महिमा है ॥ १७ ॥

(असब्द मा सजोयं) जिनसे शब्द रहित निश्चल निर्मल ज्ञान जलसे पूर्ण आत्मारूपी सरोवरका लाभ होता है (अदिस्ट अश्रुत सब्द जिन उत्त) वे जिनवाणीके शब्द हैं जिनको कभी भाव सहित न सुना गया था न उनका मनन किया गया था। अर्थात् जिनवाणीको जो भाव सहित सुनता है व उसका मनन करता है उसको अवश्य आत्माका लाभ होता है (गम अगम सुइ रमनं) अनुभवगम्य आत्मामें तन्मय होना ही रमण है (रमनं सिय रमन कमल जिन वयन) उसी आत्म-रमणसे शुद्ध भावमें रमण होता है व कमल समान अरहन्तपद प्रगट होता है ऐसा जिन वचन है ॥ १८ ॥

(गुपित सब्द जिन उत्त) जिनेन्द्र कथित वाणीके शब्दोंमें गुप्त रहस्य भरा है (गुपितं अन्मोय गुपित सुइ उवन) उन शब्दोंसे जो गुप्तज्ञान-आत्मज्ञान झलकता है उनमें जो आनन्द सहित लीन होजाते हैं उनका आत्मा स्वयं प्रकाशित होता जाता है (दिप्त दिस्टि सुइ सब्दं) जिनसे आत्मानुभव प्रगटै वे ही यथार्थ शब्द हैं (सहकार सजोय सब्द पि उवनन) ये शब्द सहायकारी हैं, ये शब्द प्रिय वचनरूप हैं। उन्हीं शब्दोंसे परम कल्याणका लाभ होता है ॥ १९ ॥

(सब्द समय मम उवन) आत्मा सम्बन्धी शब्दोंके मननसे अत्मामें समभाव प्रगट होजाता है (उवन सुइ सब्द न्यान विन्यानं) इन्हीं स्वर व्यंजनरूप शब्दोंसे भेदज्ञान पूर्वक आत्मानुभव पैदा होजाता है (न्यान

रंज सुइ रमनं) इन्हींसे ज्ञानमें आनन्द आता है। आत्मा आपसे ही आपमें रमण करता है (नन्द आनन्द
जिनय जिन उवन) तब यह आनन्दमें मगन होजाता है। और यह आत्मा कर्मोंको जीतकर अपने वीतराग
जिन स्वरूपको प्रगट कर देता है ॥ २० ॥

(सर सहाव सु ममलं) आत्मारूपी सरोवरका स्वभाव परम शुद्ध है (ममल सहकार सुय सुइ कमल) इसी
शुद्ध स्वभावमें रमण करनेसे स्वयं ही अरहन्त परमात्मारूपी कमल प्रगट होजाता है (कमल कलिय जिन उत्त)
उसी कमलमें लीन आत्माको जिन कहते हैं (कमल सहकार केवल ममल) इसी कमल समान अरहन्त परमा-
त्मामें निर्मल केवलज्ञान प्रकाशित रहता है ॥ २१ ॥

(अचष्य सभाव स उत्तं) आत्माका स्वभाव ऐसा कहा गया है (अचष्ये उव उवन लष्य लष्य च) जिस
आत्माके मननसे अनुभव करने योग्य आत्माका प्रकाश होजावे (गम अगम्य जिन वयन) जिनेन्द्रकी वाणीसे
इन्द्रियगोचर व अतीन्द्रियगोचर सब पदार्थ प्रगट होते हैं (जिन उत्तं उवन अचष्य ममल च) जैसा जिनेन्द्रने
कहा है–जिनवाणी द्वारा शुद्ध आत्माका प्रकाश होजाता है ॥ २२ ॥

(अचष्य सुय सुइ उवन) यह आत्मा स्वयं ही अपनेसे प्रकाशमान होता है (उवन सहावेन कमल सुइ सुवन)
वही अपने प्रकाशनीय स्वभावसे आप ही कमल रूप सुन्दर कमल वन होजाता है (सुय सुय सुइ उवनं)
यह आपसे आप ही प्रगट होता जाता है (जिन उत्त सहकार मुक्ति गमन च) जिनवाणीकी सहायतासे यह
आत्मा मोक्षमें चला जाता है ॥ २३ ॥

(तारन तरन सु रमनं) तारणतरण स्वरूप श्री अरहन्त भगवान आपमें रमण करते हैं (रंज रमन नन्द
रयन सजुत्त) वे आनन्द स्वभावमें रंजित हैं, रमणशील हैं, वे रत्नत्रय स्वरूप हैं (विवान उवन सुइ उत्त) उन
ही अरहन्तको प्रगट धर्म जहाज कहा गया है (विवान तरन सिद्धि सपत्तु) वही जहाज भव-समुद्रको तरके
सिद्धगतिमें पहुँच जाता है ॥ २४ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें बताया है कि वह आत्मा अपने स्वभावसे ही–परमात्मा होजाता है।
परमात्मा होनेका उपाय शुद्धात्माका अनुभव है। साधकको शब्दोंके आलम्बनसे ध्यानका अभ्यास करना
पड़ता है। यह शब्दका आलम्बन धर्मध्यानमें भी रहता है तथा शुक्लध्यानमें भी बारहवें गुणस्थान तक
रहता है। छठे प्रमत्त गुणस्थान तक बुद्धि-पूर्वक आलम्बन रहता है। आगे अबुद्धिपूर्वक आलम्बन रहता

ममलपाहुड ॥३३७॥

है। श्रुतज्ञान भावश्रुत व द्रव्यश्रुत दो प्रकार है। भावश्रुत आत्मज्ञान है, द्रव्यश्रुत वे शब्द हैं जिनसे आत्मज्ञान होता है। द्रव्यश्रुतका आधार श्री अरहन्त भगवानकी दिव्यध्वनि है, जो इच्छा विना स्वभावसे ही कर्मोंके उदय वश प्रगट होती है। इस वाणीमें गुप्त आत्मज्ञानका परम रमणीक उपदेश होता है।

जो कोई इस उपदेशको सुनकर उसके द्वारा भाव श्रुतका मनन करता है—भेदज्ञान पूर्वक आत्माका शुद्ध स्वभाव ध्यानमें लेता है उसको वीतरागताका लाभ होता है, साथ ही आत्मानन्दमें रमणता होती है। यही रमणता कर्मोंकी निर्जरा करती हुई आत्माका विकास करती है। तब आत्मा आत्मध्यानके बलसे अरहन्त परमात्मा होजाता है। फिर वही सिद्ध होजाता है। यहां मुख्यतासे स्वावलम्बनकी शिक्षा दी है कि यह आत्मा स्वभावसे परमात्मा ही है। कर्मबन्धके संयोगसे अशुद्ध कहलाता है। इस अशुद्धताको लानेवाला भी यही आत्मा है। यह आत्मा राग द्वेष मोहसे कर्मोंका वन्ध करता है तथा वीतरागभावसे कर्मोंकी निर्जरा करता है। यह वीतरागभाव तब ही जागृत होता है जब आपसे आपमें आप ही रमणता होती है। निश्चय रत्नत्रय धर्मका साधन होता है। यहां बताया है कि यह आत्मा आप ही सरोवर है, आप ही उसमें उत्पन्न होनेवाला कमल है। आत्मानन्दके अमृतमें धारावाही मगनता सरोवरके समान है। इसीसे अरहन्तपद कमलके समान होता है। आत्मा स्वयं कारण है, स्वयं कार्य है। आपके ही अनुभवसे यह परमात्मा होता है। श्री अरहन्त भगवान तारणतरण जहाजके समान हैं। वे आप तो भवसागरसे तरते ही हैं परंतु अपनी दिव्यवाणी द्वारा अनेकोंको मोक्षमार्ग बताते हैं। यह अरहन्तपद आत्माको आपसे ही प्राप्त होता है।

अतएव जो अपना आत्महित करना चाहें उनको उचित है कि वे निश्चिन्त होकर नित्यप्रति आगमके द्वारा तत्वज्ञान प्राप्त करके अपने आत्माके चिन्तवन करनेका अभ्यास करें। आत्मारूपी सरोवरमें स्नान करें। इसीसे आत्माका स्वभाव सिद्धरूप होजायगा। श्री योगसारमें योगेन्द्रदेव कहते हैः—

जहिं अप्पा तहिं सयलगुण केवलिराय भणन्ति। तिहिं कारण ए जीव फुडु अप्पा विमल मुणन्ति॥ ८४ ॥

इक्कलउ इन्द्रिय रहिउ मण वय काय ति सुद्धि। अप्पा अप्प मुणेइ तुहुं लहु पावहु सिव सिद्धि॥ ८५ ॥

भावार्थ—जहां आत्माका अनुभव है वहां सर्व गुण हैं ऐसा केवली कहते हैं। इसी कारण ये ज्ञानी

जीव प्रगटपने निर्मल आत्माका मनन करते है। आत्मा अकेला है, इंद्रियोंसे रहित है, जो कोई मन, वचन कायको शुद्ध करके आत्माके द्वारा आत्माका अनुभव करता है वह शीघ्र ही मोक्षकी सिद्धि कर लेता है।

---

(४१) विजौरौ ऊँकार गाथा ८०९ से ८२८ तक।

ऊँवंकार उवन पउ विजौरोदे, उव उवनो न्यान विन्यान विजौरोदे।
विन्यान विद वीरज सहियो विजौरोदे, वीरज ममल सहाउ विजौरोदे ॥ १ ॥
दीजे रमनकी रयन पउ विजौरोदे, कमल रमन जिन उत्तु विजौरोदे ॥ २ ॥ (आचरी)
न्यान डोरि मन राषियो विजौरोदे, अन्मोय न्यान सिद्धि रत्तु विजौरोदे।
न्यानी न्यान सहाव ले विजौरोदे, जं वाधा अवध जुत्तु विजौरोदे ॥ ३ ॥ दीजे रमन०
अष्यर रमनह रयन पउ विजौरोदे, सुर रमनह मुक्ति सहाउ विजौरोदे।
सुर रमनह मान विसेपले विजौरोदे, विन्यान रमन सिधि रत्तु विजौरोदे ॥ ४ ॥ दीजे० ॥
विंजन विन्यान सहिओ विजौरोदे, विन्यान मुक्ति दर्सतु विजौरोदे।
अलष लषिउ सुइ न्यान पउ विजौरोदे, लषियो लोय अलोय विजौरोदे ॥ ५ ॥ दीजे० ॥
लोय अलोयह ममल पउ विजौरोदे, सहयार सरीर सुभाउ विजौरोदे।
अर्थति अर्थह न्यान पउ विजौरोदे, पट् कमलह सुभाउ विजौरोदे ॥ ६ ॥ दीजे० ॥
अंगदि अंगह सुद्ध पउ विजौरोदे, चक्र छत्र जिन उत्तु विजौरोदे।
छत्रत्रय विन्यान मउ विजौरोदे, रयनमई सिद्धि रत्तु विजौरोदे ॥ ७ ॥ दीजे० ॥

न्यान सहाव सु सरीरं मुनि विजौरोदे, परिनामूं नन्तानन्त विजौरोदे ।
जिन उवएसिउ मुक्ति पउ विजौरोदे, अप्पा ममल सहाउ विजौरोदे ॥ ८ ॥ दीजे० ॥
संसार सरनि तं नन्त मुनि विजौरोदे, भमियो द्रष्य सहन्तु विजौरोदे ।
आदि अनादि न जानियो विजौरोदे, न्यान अन्मोय विलंतु विजौरोदे ॥ ९ ॥ दीजे० ॥
जिन उवएसिउ न्यान पउ विजौरोदे, अनादि कम्म विलयन्तु विजौरोदे ।
न्यान पयोहर अमिय रस विजौरोदे, अनन्तु कम्म विलयन्तु विजौरोदे ॥१०॥ दीजे० ॥
न्यान विन्यानह भेउ मुनि विजौरोदे, जन रंजन राग गलन्तु विजौरोदे ।
जनह सहाउ न उत्त जिन विजौरोदे, सह न्यान राग विलयंतु विजौरोदे ॥११॥ दीजे० ॥
कलरञ्जन दोष जु सै गलियो विजौरोदे, पर पर्जय विलयन्तु विजौरोदे ।
पर्जय दिस्टि अनिस्ट मउ विजौरोदे, न्यान अन्मोय गलंतु विजौरोदे ॥१२॥ दीजे० ॥
मनरञ्जन गारो सौ गलिओ विजौरोदे, वय तव क्रिय अन्यान विजौरोदे ।
गारव श्रुत अन्यान पउ विजौरोदे, न्यान अन्मोय विलन्तु विजौरोदे ॥१३॥ दीजे० ॥
दर्सन मोहे अन्ध पउ विजौरोदे, अंधे अंध स उत्त विजौरोदे ।
अंधे चौगइ दुह सहियो विजौरोदे, उत्पन न्यान विलन्तु विजौरोदे ॥१४॥ दीजे० ॥
राग दोष गारव गलियो विजौरोदे, दर्सन मोहध विलन्तु विजौरोदे ।
न्यान उवनं विन्यान मउ विजौरोदे, अन्मोय न्यान सिधि रत्त विजौरोदे ॥१५॥ दीजे० ॥
न्यान आवरनु न पेषियो विजौरोदे, दर्सन मोहंध विलन्तु विजौरोदे ।
न्यान अन्तर न वि उत्तियो विजौरोदे, उत्पन्न न्यान अन्मोय विजौरोदे ॥१६॥ दीजे० ॥

निसंक सहावे न्यान पउ बिजौरोदे, सल्य संक विलयंतु बिजौरोदे ।
भय विनास भवु जू मुनहु बिजौरोदे, अमिय रमन जिन उत्तु बिजौरोदे ॥१७॥ दीजे० ॥
उत्पन दिस्टि उत्पन्न मउ बिजौरोदे, हिय उवयार संजुत्तु बिजौरोदे ।
सहयारह सहियो घनो बिजौरोदे, तिविह कम्मु विलयन्तु बिजौरोदे ॥१८॥ दीजे० ॥
जान ऊपजे जानियो बिजौरोदे, रिजु विपुलह संजुत्तु बिजौरोदे ।
मन पर्जय संजुत्त पद बिजौरोदे, पद विंदह केवल उत्तु बिजौरोदे ॥१९॥ दीजे० ॥
ममल सहावे ममल पउ बिजौरोदे, पद विंदह केवल उत्तु बिजौरोदे ।
न्यान विन्यान सु रमन पउ बिजौरोदे, अन्मोय सिद्धि सम्पत्तु बिजौरोदे ॥२०॥ दीजे० ॥

अन्वय सहित अर्थ—नोट—इस गीतमें विजौरोंके वाक्यका अर्थ जो समझमें आया सो लिखा जाता है। विजौरा एक फल देशी भाषामें प्रसिद्ध है जो मीठा नीबू या चकोतरेके समान होता है। उसकी उपमा अमृतरससे पूर्ण मोक्षफलसे दी है। विजौराके अर्थ जीतनेवाले भावके भी होसक्ते हैं। कर्मोंको जीतनेवाले शुद्धात्मीक भावको ही मोक्ष कहते हैं। अतएव यहां मोक्षकी प्रार्थना अपने ही आत्मदेवसे की गई है। (ऊँवकार उवन पउ) ॐ मंत्रमें परमात्माका पद प्रकाशरूप है (उव उवनो न्यान विन्यान) इस पदमें केवलज्ञानका प्रकाश होरहा है (विन्यान विन्द वीरज सहियो) यहां ज्ञान चेतनाका अनुभव है। यहां अनन्तवीर्य है (वीरज ममल महाउ) इस पदमें शुद्ध आत्मस्वभावका बल है ॥ १ ॥

(दीजे रमनकी रयन पउ) रत्नत्रय पदमें रमण करनेकी शक्ति मुझे प्राप्त हो ऐसी प्रार्थना आत्मदेवसे की गई है (कमल रयन जिन उत्तु) श्री जिनेन्द्र भगवान प्रफुल्लित कमलके समान आत्मामें लीन रहते हैं ऐसा कहा गया है ॥ २ ॥

(न्यान डोरि मन राषियो) हे भव्यजीव ! ज्ञानकी डोर मनमें रक्खो। इसी डोरके सहारे शुद्धात्मारूपी राजाका लाभ होता है। अर्थात् ज्ञान आत्माका लक्षण है, इसके ज्ञान स्वभावके मननसे शुद्धात्माका

ममलपाहुड ॥३४१॥

मनन होता है और केवलज्ञानका प्रकाश होजाता है (अ॰मोय न्यान सिधि रत्तु) ज्ञानानन्दमें रहना वही सिद्ध स्वभावमें रति करना है (न्यानी न्यान सहावले) हे ज्ञानी! ज्ञान स्वभावमई आत्माका श्रद्धान करे। यह आत्मा रागीद्वेषी नहीं है (ज बा॰ा अवध जुत्त) इसके ज्ञान स्वभावका नाश किसी भी बाधासे नहीं हो-सक्ता है। आत्माका स्वभाव अविनाशी है। उसे कोई चेतन व अचेतन पदार्थ नाश नहीं कर सक्ता है ॥३॥

(अष्यर रमनह रमन पउ) रत्नत्रयमई आत्माका अविनाशी पद है उसमें रमण कर (सुर रमनइ मुक्ति महाउ) या सूर्य समान प्रतापशाली मुक्ति स्वभावी आत्मामें रमण कर (सुर रमनइ मान विसेष के) सूर्य समान आत्मामें रमण करनेसे ज्ञानविशेषकी या केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है उसे तू ग्रहण कर। (विन्यान रमन सिधि रत्तु) आत्माके ज्ञानमें रमण करना सो ही सिद्ध स्वभावमें रमण करना है ॥ ४ ॥

(विंजन विन्यान सहियो) आत्माका चिह्न सम्यग्ज्ञान है (विन्यान मुक्ति दर्सतु) सम्यग्ज्ञानरूप आत्म-ज्ञानमें रमण करनेसे मुक्तिका दर्शन होता है (अलष लषिय सुइ न्यान पउ) इंद्रियोंसे अगोचर आत्माका अनु-भव करना सो ही ज्ञानपदमें ठहरना है (लषियो लोय अलोय) जिस ज्ञानपदमें लोकालोक दिखलाई पड़ते हैं ॥५॥

(लोय अलोयह ममल पउ) शुद्ध आत्मीक पदमें लोक व अलोक झलकते हैं (सहयार सरीर सुभाउ) यही आत्माका ज्ञान शरीर है। ज्ञान शरीरी आत्मा दर्पण समान है जिसमें सर्व जानने योग्य पदार्थ झलकते हैं (अर्थति अर्थह न्यान पउ) वही रत्नत्रय स्वरूपी ज्ञानमई पदार्थ है (पद् कमलह सुभाउ) जिसका स्वभाव छः प्रफुल्लित कमल स्वरूपी गुण सहित है अर्थात् आत्माके स्वभावमें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख, क्षायिक सम्यक्त व क्षायिक चारित्र ये छः गुण पूर्ण प्रकारसे विकसित हैं ॥ ६ ॥

(अगदि अगह सुद्ध पउ) जिस आत्माके असंख्यात प्रदेशी अंगमें शुद्ध पद छाया हुआ है-आत्मा परम शुद्ध ज्योतिका धारी है (चक्र छत्र जिन उत्तु) जिनेन्द्र समान आत्माके चक्र व छत्र भी कहे गए हैं (छत्र त्रय विन्यान मउ) उनके तीन लोकका ज्ञान है, यही तीन छत्र हैं (रयनमई सिधि रत्तु) अथवा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तीन रत्नमई तीन छत्र है, व धर्मरूप ही जिनका धर्मचक्र है। जो जगतमें धर्म फैलाते हैं वे जिनेन्द्र समान आत्मा अपने सिद्ध स्वभावमें रत है ॥ ७ ॥

(न्यान महाव सु सरीर मुनि) उस आत्माका शुद्ध शरीर ज्ञान स्वभावमई है ऐसा जानो (परिनाम नन्ता-नन्त) जिस ज्ञान स्वभावमें अनन्तानन्त पदार्थोंकी पर्यायोंकी अपेक्षा अनन्तानन्त परिणमन होते हैं (जिन

उवएसिउ मुक्ति पउ) श्री जिनेन्द्रने जिस मुक्तिपदका उपदेश किया है (अप्पा ममल सहाउ) वह आत्माका शुद्ध स्वभाव ही है ॥ ८ ॥

(संसार सरनि तं नत मुनि) संसारमें अनन्तकालसे जीवका भ्रमण होरहा है ऐसा जानो (भमियो द्रस्य सहतु) यह जीव दु:खोंको सहता हुआ भ्रमण कर रहा है (आदि अनादि न जानियो) यह भ्रमण प्रवाहकी अपेक्षा अनादि है। एक शरीर धारणकी अपेक्षा सादि है ऐसा अज्ञानी नहीं जानता है (न्यान अन्मोय विलतु) उसके ज्ञानानन्दका लोप होरहा है। सम्यक्तके विना ही अनन्त भव-भ्रमण होता है ॥ ९ ॥

(जिन उवएसिउ न्यान पउ) श्री जिनेन्द्रने आत्मज्ञानके पदका उपदेश किया है (अनादि कम्म विलयतु) उस आत्मज्ञानमें रमण करनेसे अनादिकालके कर्मोंका संयोग छूट जाता है (न्यान पयोहर अमिय स) आत्मानन्दरूपी अमृतरससे भरे हुए ज्ञानसमुद्रका लाभ होता है (अनन्त कम्मु विलयन्तु) तब अनन्त कर्मोंका क्षय होजाता है ॥ १० ॥

(न्यान विन्यानह भेउ मुनि) हे भाई! सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञानका भेद समझो। ठीक २ आत्माके स्वरूपका अनुभव होनेसे (जन रजन राग गलन्तु) जनसमूहको प्रसन्न करनेका राग गल जाता है, विकथाओंका राग चला जाता है (जनह सहाउ न उत्त जिन) मानवोंके स्वभावमें रागद्वेष मिल सक्ता है, वीतरागताका भाव नहीं दिखलाई पड़ता है ऐसा कहा गया है (सह न्यान राग विलयंतु) जब आत्मज्ञान होता है तब अवश्य संसारका राग मिट जाता है ॥ ११ ॥

(कलरंजन दोष जु सै गलियो) आत्माका अनुभव होनेसे शरीरको रंजायमान रखनेका सर्व दोष गल जाता है। अर्थात् शरीरका राग चला जाता है, आत्माका प्रेम उमड़ आता है (पर पर्जय विलयतु) तब कर्मजनित रागद्वेष परिणति विला जाती है, वीतरागता बढती जाती है (पर्जय दिस्टि अनिस्ट मउ) शरीरमें अहंबुद्धिमय जो मिथ्यादृष्टि है अर्थात् शरीरको ही आपा मान लेना ऐसा मिथ्याश्रद्धान महान जीवका बुरा करनेवाला है। क्योंकि मिथ्यात्वी आत्मानन्दको पाकर विषयसुखका रागी होकर इष्टवियोग व अनिष्ट संयोगके अकथनीय कष्टको भोगता है (न्यान अन्मोय गलंतु) उसको ज्ञानानन्दका भोग कभी नहीं मिलता है॥१२॥

(मन रजन गारो सौ गलियो) आत्म प्रतीत भई सम्यक्तके होते ही मनको रंजायमान करनेवाला सर्व अभिमान या अहङ्कार या मद गल जाता है (वय तव किय अन्यान) अज्ञानमई, आत्मज्ञान रहित व्रत, तप

समकपाहुड

क्रियाका साधन मिट जाता है (गारव श्रुत अन्यान पउ) शास्त्रोंके जाननेका अहंकारमय जो अज्ञानपद है सो सब (न्यान अम्मोय विलन्तु) ज्ञानानन्दमें मगन होनेसे विला जाता है ॥ १३ ॥

(दर्सन मोहे अध पउ) दर्शनमोहके उदयमें अन्धपद बना रहता है, आत्माका श्रद्धान नहीं होता। सच्चे देव, शास्त्र, गुरुका श्रद्धान नहीं होता, तत्वकी श्रद्धा नहीं होती, अज्ञान अन्धेरा छाया रहता है (अधे अंध स उत्तु) जैसे अन्धा अन्धेको मार्ग बतावे वैसे ही जो देव, शास्त्र, गुरु स्वयं ही अज्ञानरूप हैं उनकी भक्तिसे अज्ञान ही बढेगा कभी भी मोक्षमार्ग नहीं दिख सक्ता है, ऐसा कहा गया है (अधे चउगइ दुह सहियो) यह अन्धा मिथ्यादृष्टी प्राणी पंचमगति मोक्षको न देखता हुआ तृष्णाके वशीभूत हो पाप पुण्यके अनुसार देव, मनुष्य, तिर्यंच व नर्कगतिमें दुःख सहन किया करता है (उपन यान विलतु) जब आत्मज्ञानका उदय होता है तब यह मिथ्या श्रद्धान चला जाता है ॥ १४ ॥

(राग दोष गारव गलियो) आत्मज्ञानके होते ही रागद्वेष व अहङ्कार मिट जाता है (दर्सन मोहष विलन्तु) तथा दर्शन मोहनीय कर्मका क्षय होकर क्षायिक सम्यक्त पैदा होजाता है (न्यान उवनु विन्यान मउ) तब भेदविज्ञान पूर्वक आत्मानुभव जग जाता है (अम्मोय न्यान सिधि रन्तु) तब ज्ञानानन्दकी मगनता होती है, वही सिद्ध स्वभावमें रति करना है ॥ १५ ॥

(ज्ञान आवरनु न पेषियो) तब ज्ञानावरण नहीं देखा जाता है अर्थात् उस ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होजाता है जो आत्मानुभवको रोकनेवाला है (दर्सन मोहन विरन्तु) साथ ही दर्शन मोहनीय कर्मका भी क्षय होजाता है (न्यान अन्र न वि उत्तिओ) वहां वह अन्तराय कर्मका उदय भी नहीं कहा गया है जो आत्मानुभवमें अन्तर डाल सके (उत्पन्न यान अमोय) इसतरह ज्ञानानन्द प्रकाशित रहता है। सम्यग्दृष्टीके भीतर चारों घातीय कर्मोंका बल इतना कम होजाता है जिससे वह अपने ज्ञानानन्दके भोगमें बाधा नहीं पाता है ॥ १६ ॥

(ससक सहावे न्यान पउ) जब सम्यक्ती शुद्ध आत्मज्ञानके पदमें ठहरता है तब इसका स्वभाव निःशंक होजाता है, कोई भय नहीं रहता है (सल्य संक विलयन्तु) सर्व शङ्काएँ व सर्व शल्यें दूर होजाती हैं (भय विनास भवजू सुनहु) हे भव्य जीव ! सर्व भय निवारक अपने शुद्ध आत्मीक पदका मनन करो (अमिय रमन जिन उत्तु) आत्मज्ञानमें रमना आनन्दामृतमें रमण करना है, ऐसा जिनेन्द्रने कहा है ॥ १७ ॥

(उत्पन्न दिस्टि उत्पन्न मउ) जब प्रकाश स्वरूप आत्मदृष्टि पैदा होजाती है (हिय उवयार सजुत्तु) तब यह दृष्टि बड़ी ही हितकारी व उपकार करनेवाली होती है (सहयारह सहियो पनो) इस दृष्टिकी सहायतासे जब यह पूर्णपने आप अपनेमें लीन होजाता है, पूर्ण निर्विकल्प समाधि जग जाती है (तिविहु कम्मु विलयन्तु) तब भाव कर्म रागद्वेषादि, द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादि, नोकर्म शरीरादि सब नाश होजाते हैं ॥ १८ ॥

(जान ऊपजे जानियो) आत्मज्ञानके प्रभावसे ज्ञानका प्रकाश होता जाता है (रिजु विपुलह सजुत्तु) रिजुमति तथा विपुलमति मन पर्ययज्ञान पैदा होजाता है (मन पर्जय सजुत्त पउ पद निंदह केवल उत्तु) विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान होते हुए अरहन्तपदको अनुभव करनेवाला केवलज्ञान होजाता है, ऐसा कहागया है ॥१९॥

(ममल सहावे ममल पउ) शुद्ध स्वभावमें रमण करनेसे शुद्धपद प्रगट होजाता है (सयल कम्मु विलयन्तु) सर्व रागादि मल पैदा करनेवाले कर्म गल जाते हैं (न्यान विन्यान सु रमन पउ) आत्माके शुद्ध ज्ञानमें रमणताका पद अर्थात् वीतरागतामई अरहन्तपद होजाता है (अन्मोय सिद्धि स त्त) वे ही अरहन्त आनन्दमगन रहते हुए सिद्धपदमें पहुँच जाते हैं ॥ २० ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें यह बताया गया है कि यह जीव अनादिकालसे मिथ्यात्व धर्मके अन्धकारसे अन्धा होरहा है। इसका ज्ञान विपरीत होरहा है, इसका चारित्र विपरीत होरहा है, यह विषय-तृष्णाका दास बना हुआ है, शरीरमें ही आपा मान रहा है। स्त्री कथा, भोजन कथा, देश कथा व राजा कथा आदि विकथाएँ जिनसे मनको प्रसन्न किया जावे व रागद्वेष बढाया जावे इस अज्ञानीको रुचती हैं। शरीरके शृंगारमें, पांचों इंद्रियोंके भोगोंमें लगा रहता है। कुदेव, कुशास्त्र व कुगुरुकी मान्यता करता है। अज्ञान तप व व्रत पालता है, मिथ्या क्रियाकाण्ड करता है। भावना यही रहती है कि पांचों इंद्रियोंके मनोहर भोग प्राप्त हों, जगतमें मानको प्राप्त करूँ। इष्टवियोगसे व अनिष्ट संयोगसे दुःखी होता हुआ अशुभ भावोंसे मरकर इस संसारमें बारम्बार जन्म लेकर दुःख उठाया करता है, चारों गतियोंमें भ्रमण किया करता है। मिथ्यात्वके समान कोई कष्टदायक नहीं है। जब तत्व विचारसे व गुरुके उपदेशसे सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। आत्माका स्वभाव कर्मजनित रागादि भावोंसे अलग है ऐसा झलक जाता है तब संसारका, शरीरका व इंद्रिय भोगका राग मिट जाता है, आत्मानन्दका प्रेम उमड़ आता है, तब ज्ञान भी निर्मल होजाता है, आत्म वीर्य भी दृढ़ होजाता है, आत्मानन्दमें मगनता होजाती है, तब सिद्ध स्वभा-

वमें रति बढ जाती है। आत्मानुभवकी कलाके अभ्याससे धीरे२ कर्मोका क्षय होजाता है, अरहन्तपद प्रगट होजाता है। यही सशरीर परमात्माका पद है। फिर शीघ्र ही मोक्षपद प्राप्त होजाता है। भव्यजीवको उचित है कि वह मोक्षफलका प्रेमी होकर आत्मानुभवरूपी धर्मवृक्षकी सेवा करे। रत्नत्रयमई यह धर्म-वृक्ष है। इसकी सेवासे सदा ही ज्ञानानन्दका स्वाद आता है। यही ज्ञानानन्द ध्यानकी अग्नि है, जो कर्मोको जलाती है। सर्व शंका मिटाकर व माया मिथ्या निदान तीन शल्य दूरकर निर्भय भाव रखकर अपने आपको परमात्मारूप ही श्रद्धानमें लाकर वारवार उसीका अनुभव करना चाहिये। ज्ञान डोर आत्मासे ही उठती है। इस डोरके सहारे आत्मारामका ध्यान करना चाहिये। आत्मज्ञान विना शास्त्र-ज्ञान भी बुरा ही करनेवाला है, अहङ्कार पैदा करनेवाला है। परम हितकारी एक आत्मज्ञान है। इसीका स्वाद लेकर मोक्षफलकी भावना भानी चाहिये। कल्लाणालोयणामें कहा है—

इक्को सहाव सिद्धो सोइ अप्पा वियप्पपरिमुक्को। अण्णो ण मज्झ सरण सरण सो एक्क परमप्पा ॥ ३५ ॥

अरस अरुव अगन्धो अव्वावाहो अणन्तणाणमओ। अण्णो ण मज्झ सरण सरण सो एक्क परमप्पा ॥ ३६ ॥

भावार्थ—जो एकरूप है, स्वभावसे सिद्ध है, सर्व संकल्पविकल्प रहित है, ऐसा जो आत्मा है, वही मैं हूँ, वही एक परमात्मारूप है, उसीकी मैं शरणमें जाता हूँ, औरकी शरण नहीं लेता हूँ। वह आत्मा वर्ण रहित है, रस रहित है, गन्ध रहित है, बाधा रहित है, अनन्तज्ञान स्वरूप है। वही एक परमात्म-स्वरूप है, उसीकी शरण लेता हूँ, और किसीकी शरण नहीं लेता है।

---

(४२) जिन आयरो फलना गाथा ८२९ से ८४९ तक।

ऊ वंकार उवनपौ उवन उवन मौ, उव उवन सविद विन्यान पओ।
जिन जिनयति जिनय जिन अरूवी, जिन नन्द सनन्द स उत्तु सुयं जिन आयरो ॥ १ ॥
भय षिपनिक भव्वु स उत्तु नन्द जिन आयरो, अहु कमल रमन रस रसिय पंम जिन आयरो।
दिप दिपिय दिप्ति आयरन सहज जिन आयरो, भय सल्य संक विलयन्तु ममल जिन आयरो ॥

अहु अमिय रमन विषु गलनु सुयं जिन आयरो, अहो तरन विवान जिनय जिन उत्त
समय जिन आयरो ॥ २ ॥ (आचरी)

जिन जिनवर उत्तउ षिपक रमन जिनु, जिन जिनयति जिनय जिनेन्द पऊ ।
षट् रमन कमल रस अर्क विंद पउ, आगन्तु रमन रस रयन परम जिन आयरो ॥ ३ ॥

हिय यार रमन रस रसियो, हुवयार सब्द रैं रमन मऊ ।
तं रयनह रयन सरूव रमन जिनु, उत्पन्न उवन उवन रवरै, उवनु उवन निलय जिन आयरो ॥४॥

उववन इस्टि त इस्टि रिस्टि जिन हिययार रमन रस रयन पऊ ।
सहयार श्री सुइ रमन सहज ि सुइ नन्द आनन्द रमन जिन आयरो ॥ ५ ॥

उव उवन दिस्टि हिययार रमन रयन जिनु, सहयार सहजरै समय मऊ ।
हिययार दिस्टि षट् रमन परमपय, परम नन्द परम जिनय जिन आयरो ॥ ६ ॥

सहयार रमन हिययार रंजु रैं, उववन दिस्टि सम समय मऊ ।
सम समय सजुत्तु विवान परम पउ, सम समय संजुत्तु सुनन्त निलय जिन आयरो ॥ ७ ॥

उत्पन्न रंजु भय षिपिय रमन सुइ, नन्द सुनन्द ममल पऊ ।
हिययार रंजु तं अमिय रमन जिनु, नन्द आनन्द सुनन्द रमन जिन आयरो ॥ ८ ॥

सहयार रंजु वैदिस्ति रमन जिनु, रमिय नन्द चेयानन्द जिनु ।
विन्यान रंज तं रमन जिनय जिनु, सहजनन्द त सहज सुयं तं परम सुयं जिन आयरो ॥ ९ ॥

जिन रंज रमन जिननाथ सुयं जिनु, परम नन्द त परम पऊ ।
तं तारन तरन विवान समय जिनु, सिहु समय संजुत्तु समय मुक्ति जिन आयरो ॥१०॥

जिन जिनयति जिनेन्द जिनय जिनु, नन्द सुनन्द सुयं जिननन्द पऊ ।
नन्द सनन्द नन्द जिन जिनयति, लष्य सलष्य सलष्य अलष जिन आयरो ॥११॥
लष्य सलष्य सलष्य अलष्य रूई, अलष्य सलष्य अलष्य अलष्य परम पय परम पऊ ।
पर्म सुपर्म परम पयड़ी, परम जिन परमानन्द जिन आयरो ॥ १२ ॥
जिन जिनय स उत्तउ जिनय जिनय पउ, उववन उवन जिन उवन उवन पऊ ।
सुइ सहज सरूवे सहज सहावे, सुयं लष्य सुलष्य अलष्य जिन आयरो ॥ १३ ॥
उववन श्री उववन दिस्टिरे, उववन सद्धरै उवन स उवन उवन पऊ ।
उववन उवन उवन इस्ट त इस्ट पऊ, इस्ट सुइस्ट नन्तानन्त रहिउ,
इस्ट सुनन्द सनन्द नन्द जिन आयरो ॥ १४ ॥
हिययार श्री उवन उवन जिनु, उवन सनन्द सनन्द नन्द जिनय जिन परम पऊ ।
परम सु परम सु परम जिन जिनपति, जिनय जिनेन्द जिनय जिन आयरो ॥ १५ ॥
सहयार श्री त सहज रमन पऊ, रमन स रमन रमन स रमन पऊ ।
सहजे सहज सनन्द सनन्द रमन पऊ, तं गुप्ति सगुप्ति स गुहिज रमन रस रमन सनाथ जिनयति
जिन रमन सु रमन जिन आयरो ॥ १६ ॥
उत्पन्न श्री हिययार रमनैरे, रमन स अर्क स अर्क अक जिन विन्यान विंद रस रमन पऊ ।
सहयार श्री त लष्य अलष्य मऊ, श्री समय रमन सु सिद्ध सु सिद्ध मुक्ति पउ आयरो ॥१७॥

अन्वय सहित अर्थ—(नोट-इसका मूल पाठ बहुत विचारसे लिखा है । सम्भव है कि कहीं अधिक अक्षर हो, अन्य शुद्ध-प्रतिसे मिला लेना चाहिये)।

(ॐकार उवनपो उवन उवन मौ) ॐ मत्रमें परमात्माका पद प्रगट है। जो परमात्मा सदा प्रकाश स्वरूप है (उव उवन स विन्द विन्यान पओ) वही स्वानुभव स्वरूप ज्ञानका पद प्रकाशित है (जिन जिनयति जिनय जिन अरुवी) वे ही जिन हैं, वे ही जीतनेवाले हैं, वे ही वीतरागी जिन हैं, वे ही अमूर्तीक आत्मा हैं (जिन नन्द सनन्द स उत्तु सुय जिन आयरो) वे ही जिन आनन्द मगन कहे गये हैं, यह आत्मा स्वयं जिन स्वरूप है। इस आत्मा जिनेन्द्रका आचरण करो। इस अपने परमात्मदेवका ध्यान करो ॥ १ ॥

(भय षिउनिक भव्यु स उत्त नंद जिन आयरो) हे भव्यजीव! वे ही परमात्मा भयोंको क्षय करनेवाले कहे गये हैं, वे ही आनन्दमई जिन हैं उन हीका ध्यान करो (अहु कमल रमन रस रसिय परम जिन आयरो) अहो भाई! शुद्धात्मारूपी कमलमें मगन हो जो आनन्दमई रसके रसिक होरहे हैं, ऐसे परमात्मा वीतराग जिनदेवका ध्यान करो (दिप दिपिय दिप्ति आवरन सहज जिन आयरो) जो दैदीप्यमान ज्ञान ज्योतिमें आचरण कर रहे हैं, ऐसे सहज–स्वाभाविक जिन भगवानका ध्यान करो। वे ज्ञान चेतनामें ही स्वभावसे सदा मगन हैं। उन हीका अनुभव करो (भय सल्य सक विलयन्तु ममल जिन आयरो) जिनके ध्यानसे सर्व भय, सर्व शल्य, सर्व शङ्काएँ विला जाती हैं ऐसे शुद्ध जिन भगवानका ध्यान करो (अहु अमिय रमनु विष गलनु सुय जिन आयरो) अरे भाई! आनन्दामृतमें रमण करनेनाले व विषय सुखके विषको गलानेवाले ऐसे स्वयं अपने आत्मारूपी जिन भगवानका ध्यान करो। यह आत्मा ही निश्चयसे श्री जिनेन्द्र परमात्मा है (अहो तरन विउान जिनय जिन उत्तु समय जिन आयरो) हे भाई! तारणतरण स्वरूप जिनेन्द्र जिन जिनको कहते हैं ऐसे अपने आत्मारूपी जिन भगवानका ध्यान करो। यह आत्मा ही निश्चयसे तारणतरण अरहन्त परमात्मा है ॥ २ ॥

(जिन जिनवर उवउ षिपक रमन भिनु) श्री जिनेन्द्र वीतराग भगवानको ही क्षायिकभावमें रमन करनेवाला जिन कहा गया है, वे नौ क्षायिकलब्धिके स्वामी हैं। क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग, क्षायिक वीर्य, क्षायिक सम्यक्त व क्षायिक चारित्र ये क्षायिक भाव रूप नौ केवल लब्धियें हैं (जिन जिनयति जिनय जिनेंद पऊ) ये जिन कर्म विजयी, रागादि विजयी जिनेन्द्र पदमें शोभायमान है (पद् रमन कमल रस अर्क विंद पउ) वे ही भगवान अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, क्षायिक सम्यक्त, वीतराग चारित्र इन छः गुणोंमें रमण करनेवाले शुद्धात्मारूपी कमलके रसको प्रगट करनेवाले सूर्यके समान परम वीतराग स्यात्मस्वरूपी पदमें तल्लीन हैं। वे ही सूर्य हैं, वे ही

ममलपाहुड

लेता है (सम समय सजुत्तु सुनन्न निलय जिन आयरो) वीतरागमय आत्माके भीतर अनन्त गुणोंका स्थान होजाता है, वे ही जिन होजाते हैं। हे भव्यजीव! उसी जिनका ध्यान करो ॥ ७ ॥

(उत्पन्न रंजु भय विपिय रमन सुइ) जब आत्मामें रंजायमानपना पैदा होता है तब सर्व भय क्षय होजाते हैं वही आत्म रमणभाव है (नंद सुनद सु ममल मऊ) यही आत्मानन्दमें मगनता है, यही शुद्धोपयोग है (ह्रियार रजुत अमिय रमनु जिन) ह्रीं मंत्रके भीतर रंजायमान होना ही आत्मानन्दमें रमना है व जिनपना प्राप्त करना है (नद आनद सुनन्द रमन जिन आयरो) निजानन्दमई परमानन्दमें मगन होकर रमनेवाले वीतराग जिनका ध्यान करो ॥ ८ ॥

(सहयार रजु वे दिप्ति रमन जिन) आत्मामें रंजायमान होनेसे ही ज्ञान ज्योतिमें रमणता होजाती है वही जिनका धर्म है (रमिय मद चेयानद जिनु) श्री जिनेन्द्र चिदानन्दमई आनन्दमें ही रमण करते हैं (विन्यान रज त रमन जिनय जिनु) उसी रमणताको भेदविज्ञानमें रंजायमानपना कहते हैं, उसीको वीतरागतामें रमण करना कहते हैं। यही जिनका धर्म है (सहजनद त सहज सुय त परम सुय जिन आयरो) वहीं सहजानन्द है, वहीं स्वभावसे ही यह आत्मा स्वयं रमण करता हुआ परमात्मा जिन होजाता है, उसीका ध्यान करो ॥९॥

(जिन रज रमन जिननाथ सुय जिनु) श्री जिनेन्द्र भगवान स्वयं ही अपने जिन स्वभावमें रंजायमान होकर रमण करते हैं (परमनन्द तं परम पऊ) वहीं परमानन्द है वहीं परमपद है (त तारनतरन विन्यान समय जिनु) उसी परमपदमें तिष्ठनेवालेको तारणतरण जहाजके समान जिनेन्द्र परमात्मा कहते हैं (सिहु समय सजुत्तु समय मुक्ति जिन आयरो) वे ही स्वरूपाचरण सहित आत्मा हैं, वे ही जिनेन्द्र मुक्ति स्वरूप हैं, उन हीका ध्यान करो ॥ १० ॥

(जिन जिनय ति जिनेन्द्र जिनय जिनु) वे ही जिन हैं, वे ही कर्मोंको जीतनेवाले जिनेन्द्र वीतराग परमात्मा हैं (नद सुनद सुय जिन नद पऊ) वे ही स्वात्मानन्दमें आनन्दित हैं, वे स्वयं वीतराग आनन्दपद स्वरूप हैं (नन्द सनन्द नन्द जिनपति) वे ही आनन्दमें मगन सुखमई जिनेन्द्र जिननाथ हैं (लष्य सलष्य सलष्य अलष जिन आयरो) वे ही अनुभव करने योग्य हैं, वे ही भलेप्रकार लखनेयोग्य है। मनन करने योग्य है, वे ही इन्द्रिय व मनसे लखनेयोग्य नहीं है, आपसे आप ही लखनेयोग्य हैं, ऐसे जिनेन्द्रका ध्यान करो ॥११॥

(लष्य सलष्य सलष्य अलष्य रई) अतीन्द्रिय आत्मा ही लखनेयोग्य है, भलेप्रकार जाननेयोग्य है, भले

ममलपाहुड

प्रकार मनन करने योग्य है, ऐसी रुचि ही सम्यक्त भाव है (अनन्य सनन्य अनन्य परम पय रम पऊ) इसीसे उस परमात्माके परमपदकी प्राप्ति होती है, जो इन्द्रिय व मनसे अगोचर है तथापि भलेप्रकार लखनेयोग्य है अभव्योंको उसका ज्ञान नहीं होता है (पर्म सुपर्म परम पयटी) वही श्रेष्ठमें श्रेष्ठपद है, उसीका श्रेष्ठ स्वभाव है (परम जिन परमानन्द जिन आयरो) वे ही परमात्मा जिनेन्द्र परमानन्दमई वीतराग है उनहीका ध्यान करो॥१२॥

(जिन जिनय स उवउ जिनय जिनय पऊ) उन्हीं जिनेन्द्रको विजयी जिन कहा है, वे ही रागादि व कर्मादिके विजेता परम जिनपदमें हैं (उवन उवन जिन उवन उवन पऊ) उन्हींमें परम प्रकाशित जिनपद सदा उदयरूप है (सुइ महज सरूवे सहज सुभावे) वे ही अपने सहज स्वरूपमें हैं, वे ही अपने सहज-स्वभावमें हैं (सुय लष्य सुलष्य अलष्य जिन आयरो) वे स्वयं ही अनुभवने योग्य हैं, वे भलेप्रकार जाननेयोग्य हैं, वे इंद्रिय व मनसे लखनेयोग्य नहीं हैं ऐसे जिनेन्द्रका ध्यान करो॥ १३ ॥

(उवबन श्री उवबन दिस्टि) प्रकाशमान श्री मंत्रके द्वारा धारावाही आत्मदृष्टिको जगाना चाहिये (उवबन सब्द रे उवन स उवन उवन पऊ) इस श्री शब्दको लगातार ध्यानमें लानेसे वह शुद्धपद धीरे २ उदय होता जाता है (उवबन उवन उवन इस्ट त इस्ट पऊ) परमेष्ठीका परमप्रिय पद धीरे २ उदय होता हुआ पूर्ण प्रकाशित होजाता है (इस्ट सु इस्ट न तानन्त रहिउ) उसी परमेष्ठीपदमें अनन्तानन्त स्वहितकारी गुण प्रगट होजाते हैं (इस्ट सुनन्द सनन्द नन्द जिन आयरो) जो परमेष्ठी जिन अपने आनन्दमई पदमें मगन हैं, उनका ध्यान करो॥ १४ ॥

(हिययार श्री उवन उवन जिनु) हितकारी श्रीं मंत्रके द्वारा जिनपद उदय होता चला आता है (उवन सनन्द सनन्द नंद जिनय जिन परम पऊ) इसीसे आत्मानन्द बढ़ता चला जाता है तब अनन्त सुखरूप वीतराग जिनेन्द्रका परमपद झलक जाता है (परम सु परम सु परम परम जिन जिनपति) वे ही श्रेष्ठ हैं, वे सर्व जगतके श्रेष्ठ पदार्थोंमें श्रेष्ठ पदार्थ हैं, वे ही परमात्मा वीतराग जिन हैं (जिनय जिनेन्द जिनय जिन आयरो) ऐसे विजेता श्री जिनेन्द्र वीतराग भगवानका ध्यान करो॥ १५ ॥

(सहयार श्री त महज रमन पऊ) श्रीं मंत्र सहकारी है उसीके द्वारा आत्माके सहज-स्वभावमें रमण होनेका पद प्राप्त होजाता है (रमन स रमन स रमन पऊ) वही पद आत्म रमणरूप है, भलेप्रकार रमणरूप है, भलेप्रकार आनन्दमें मगन है (सहजे सहज सनर मनर रमन पऊ) वह रमणपद सहज ही उदय होता है जिसमें

स्वाभाविक आनन्दमें मगनता रहती है (त गुप्ति स गुप्ति स गुहिज रमन रस रमन) वहीं मन वचन कायकी गुप्ति है, वहीं भलेप्रकार तल्लीनता है वहीं आत्माकी गुफामें बैठकर आत्मीक आनन्द रसका स्वाद आता है (सनाथ जिनयति जिन रमन सुरमन जिन आयरो) वे ही त्रिलोकीनाथ वीतराग जिन हैं, जो अपने आनन्दमें रमण कर रहे हैं। ऐसे जिनेन्द्रका ध्यान करो ॥ १६ ॥

(उत्पन श्री ह्रिययाए रमनौ) उदयमान श्रीं मंत्र परम हितकारी है उसमें लगातार रमण करना चाहिये (रमन स अर्क स अर्क अर्क जिन विन्यान विन्द रम रयन पऊ) वे ही आत्मामें रमण करनेवाले निर्मल सूर्यके समान निर्मल सूर्यसम तेजस्वी हैं। वे सूर्यसम जिनेन्द्र अपनी ज्ञानचेतनाके रसमें रमण करते हैं (सहयार श्री त लष्य अलष्य मउ) श्रीं मंत्रकी सहायतासे इंद्रियातीत आत्माका अनुभव होजाता है (श्री समय रमन सु सिद्ध सु सिद्ध मुक्ति पउ आयरो) अनन्तज्ञानादि लक्ष्मीके धारी आत्माकी रमणता सोई सिद्धपदकी रमणता है। ऐसे सिद्ध भगवानके मुक्तिपदका ध्यान करो ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस फूलनामें श्री अरहन्त परमात्माके गुण गाकर यह बताया है कि यह आत्मा ही परमात्मा–स्वरूप है, यही शुद्ध स्वरूप है, इसीके भीतर रमण करनेकी रुचि सम्यक्त है। इस सम्यक्त भावको प्राप्त करके अपने परमात्म-स्वरूप आत्मदेवका ध्यान करना चाहिये। ध्यान करनेके लिये ॐ, ह्रीं तथा श्रीं मंत्रकी सहायता उपकार करनेवाली है। इनमेंसे किसी मंत्रके द्वारा परमात्माके स्वरूपका विचार करना चाहिये। जहां आत्माका दृढ़ श्रद्धान होता है वहां आत्मा सम्बन्धी निःशङ्क भाव जागृत होजाता है, सर्व सांसारिक भय मिट जाते हैं। सर्व विषय वांछा मिट जाती है। आत्मानन्दकी रुचि आजाती है। आत्मानन्दरूपी अमृतके स्वादके सामने विषयसुख विषके समान कटुक भासता है। श्रद्धापूर्वक लगातार ध्यान करनेसे सहज–स्वभावकी प्रगटता होती है। यह आत्मा वास्तवमें अनुभवगम्य है। आपसे आप ही जानने योग्य है। इंद्रियोंकी व मनकी वहां पहुँच नहीं होसक्ती है। यद्यपि मनके द्वारा मनन होता है व शब्दोंका आलम्बन लेना पड़ता है। परन्तु जब मन, वचन, काय तीनों थिर होजाते हैं और आत्माका उपयोग आत्माकी गुफामें प्रवेश करके विश्रांति लेता है तब आत्माका अनुभव होता है। आत्मा एक ऐसा शुद्ध सहजानन्द स्वभावका धारी है कि इसकी वार्ता करनेमें ही आनन्द आता है। इसके मननमें भी आनन्द होता है। इसके अनुभवसे तो परमानन्द होता है। आत्मानुभव ही वह मोक्षमार्ग है जिसपर

चलकर आत्माका विकास होता है—आत्मा परमात्मा होता है। बाहरी जप तप व्रत मात्र सहकारी कारण हैं। जो आपको परमात्मारूप ध्याता है वही परमात्मा होजाता है। इसलिये यहां वारवार प्रेरणा की गई है कि शुद्धात्माका ध्यान करो। श्री योगसारमें कहा है—

अप्पा अप्पउ जइ मुणहि तउ णिव्वु णु लहेहि। पर अप्पा जउ मुणिहि तुहुं तहु ससार भमेहिं ॥ १२ ॥

अह पुण अप्पा ण वि मुणहिं पुण्ण वि काइ असेसु। तउ वि णु पावइ सिद्धसुहु पुणु संसार भमेसु ॥ १५ ॥

अप्प दंसण इक्क परु अण्णु ण किं पि वियाणि। मोक्खह कारण जोईया णिच्छइ एहउ जाणि ॥ १६ ॥

भावार्थ—यदि कोई आत्माके द्वारा आत्माको अनुभव करता है तो वह निर्वाणको पाता है तथा जो कोई परको आत्मा मानता है वह संसारमें भ्रमण करता है। जो कोई बहुत पुण्य तो करे परन्तु आत्माका अनुभव न करे तो वह कभी भी सिद्ध सुखको नहीं पासक्ता है। वह संसारमें ही भ्रमेगा। मोक्षका उपाय एक आत्माका दर्शन है, और कोई भी नहीं है ऐसा जानो। हे योगी! निश्चयनयसे आत्माको ही मोक्षका कारण मानो।

---

(४३) अवधिदर्शन गाथा ८४६ से ८७२ तक।

चष्ये चष्य स उत्तं, अचष्यं आकर्न हेय संजुत्तं।
चष्ये रमन सहावं, कमल कलनं च सिद्धि सम्पत्तं ॥ १ ॥
अचष्य सुभाव स उत्तं, अवध्यवयास सरूव सजुत्तं।
उववन निधि सं सुवनं, अवहिं अवयास गुरुव गुरुचरनं ॥ २ ॥
साधु सुयं स उत्तं, सहयार अवयास धुवं धुव उवनं।
दिस दिस्टि सुइ सव्दं, पिउ संजुत्त धुवं धुव निश्रं ॥ ३ ॥
धुव उत्तं धुव कर्न. धुव उवनं अवयास हेय आकर्न।
धुव षिपि धुव सहयारं, धुव सिय कमल कलन निर्वानं ॥ ४ ॥

धुव हिय धुव हिय जुत्तं, धुव अवयास आयरन संजुत्तं ।
धुव विवान विन्यानं, धुव सिय कम्म कलन विन्यानं ॥ ५ ॥

धुव रमनं धुव सुवनं, धुवमय धुव सुवन सव्द संदस ।
धुव लष्य लष्य सुइ उवनं, धुव गम्य अगम्य कमल निर्वानं ॥ ६ ॥

धुव उत्तं धुव सुवनं, धुव रयनं धुव उवन नन्त सुइ न्यानं ।
धुव रयनं धुव गहनं, धुव पद कोड कमल निर्वानं ॥ ७ ॥

धुव गमनं धुव सहन, धुव कलनं रमन हिय रमनं ।
सह रमनं धुव कलनं, आकन च कमल विन्यानं ॥ ८ ॥

जं जं उववन सहियं, उवनं सुइ अक अर्क सुइ रमनं ।
अर्क विंद सहकारं, उवनं आकर्न कमल निर्वानं ॥ ९ ॥

सिय सिय सिय सुइ सुवनं, सिय हिय सिय विय उवन्न सुइ रमनं ।
सिय उवन उवन सुइ गमनं, सिय धुव आकर्न कमल विन्यानं ॥१०॥

सिय धुव उवन सहावं, साहिय साहंति आगम गम रमनं ।
आकर्म समय सम समयं, कमलं आकर्न कमल निर्वानं ॥ ११ ॥

उववन निहि उववन्नं, उववन आकर्न विंद सुइ रमनं ।
साहंति समय सह सुवनं, कमलं आकर्न उवन निर्वानं ॥ १२ ॥

दिप्ति नन्त सुइ दिस्टं, दिस्टं दिस्टी सुइ नन्त दिप्ति सुइ दरसं ।
दिप्ति दिस्टि आयरनं, आकर्न समय कलन विन्यानं ॥ १३ ॥

कमल सब्द नन्तानं, नन्तानन्त सब्द कर्म आकर्नं ।
आकर्नं कलन सुइ कमलं, कमलं सुइ कलिय केवलं न्यानं ॥ १४ ॥
कमल विंद सुइ सब्दं, सब्दं आयरन कर्न विंदानं ।
कर्न विंद सुइ कमलं, कमलं आवर्न कलन निर्वानं ॥ १५ ॥
उववन अवहि निहि सुवन, अवहि महसमै साहु धुव सुइ रमनं ।
सइकारं धुव गमनं, आगम सुइ षिपिय विलय कम्मानं ॥ १६ ॥
उववन निहि सुइ अर्क, अर्क सुइ दिसि सुइ रमनं ।
अर्क सब्द सुइ कर्नं, कर्नं सुइ सब्द कमल कलनं च ॥ १७ ॥
हुवयार अर्क हिययारं, हिययार अर्क विंद विंदानं ।
अनन्त रमन अवयासं, समयं आकर्न कमल निर्वानं ॥ १८ ॥
हिय रमन अर्क सुइ उवनं, उवन हिय गहिर गमन गुरु वचनं ।
गमन गुप्ति सुइ सर्वं, आकर्न कमल कलन निर्वानं ॥ १९ ॥
गुपित अर्क गुरु गुरुवं, गुरुवं गुहिजं च सब्द सुइ सुवनं ।
गुरु गुपितह सुइ सब्दं, सब्दं आकर्न कलन निर्वान ॥ २० ॥
गुपितं गुहिज आकर्नं, सहिय सह समय कमल कलनं च ।
कमल कलन सुइ अर्क, सा हिय सह विंद कन कमलं च ॥ २१ ॥
गुहिज अर्क गम अगमं, जानू पय अर्क नन्त नन्ताई ।
नन्तानन्त सु चरनं, चरनं आयरन अर्क कमलं च ॥ २२ ॥

अवहि उवन निहि सहियं, समयं संमत्त समय सुइ रमनं ।
जिन अर्क कमल सुइ दर्सं, दर्सं सुइ कमल उवन कलनं च ॥ २३ ॥
कलन समय सम समयं, कमलं सम कर्न कमल हिययारं ।
हिययार समय हुवयारं, समयं सह कर्न कलन निर्वानं ॥ २४ ॥
अवहि उवन निहि उवनं, उवनं निहि समय समय अवयासं ।
समय सुइ नन्त अनन्तं, समय आकर्न कमल निर्वानं ॥ २५ ॥
समय समय सुइ समयं, समयं सम दस सब्द आकर्न ।
समय उवन उव उवनं, समयं आकर्न कमल निर्वानं ॥ २६ ॥
नन्त नन्त सुइ उवनं, उवनं सह अवहि उवन निहि कमलं ।
केवल कमलं उवनं, आकर्न कर्न कमल निर्वानं ॥ २७ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(चष्ये चष्य स उत्त) चक्षुसे यहां आत्माका भाव लेना चाहिये, आत्मा उसको कहते हैं (अनष्य आकर्न हेय सजुत्त) जब आत्मामें आत्मा स्थिर होता है तब अनात्मा सम्बन्धी जो कुछ कथन सुना गया है वह सब त्यागने योग्य होजाता है अर्थात् आत्मा अपनेको पुद्गल सम्बन्धी व कर्मजनित सब विकल्पोंसे हटा लेता है, केवल आप आपमें तन्मय होजाता है, वही आत्माका असली स्वभाव है (चष्ये रमन सहाव) आत्माका स्वभाव ही यह है कि वह परसे राग द्वेष छोड़कर अपने ही निज स्वभावमें रमण करे (कमल कलन च सिद्धि सपत्त) प्रफुल्लित कमल समान शुद्धात्मामें रमण करना यही वह उपाय है जिससे सिद्ध गतिका लाभ होता है ॥ १ ॥

(अचष्य स भाव स उत्त) शुद्धात्मासे भिन्न अनात्मा सम्बन्धी स्वभाव उसको कहते हैं (अवध्यवसाय सरूव संजुत्तं) जहां मर्यादा पूर्वक ज्ञानका स्वरूप फैले। आत्माका स्वभाव अनन्त ज्ञान है। मति, श्रुत, , मनःपर्ययमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी मर्यादा रूप पदार्थोंका क्रमपूर्वक ज्ञान होता है। मतिश्रुत तो

परोक्ष ज्ञान हैं, अवधि मनःपर्ययज्ञान रूपी पदार्थोंको ही प्रत्यक्ष मर्यादारूप जानते हैं। इसलिये वे चारों ही ज्ञान क्षयोपशम ज्ञान हैं, विभाव ज्ञान हैं, आत्माका स्वभाव नहीं है। आत्माका स्वभाव तो एक शुद्ध सहज केवलज्ञान है (उवन्न निधि म मुवनं) जहां आत्माके भंडारका निरोध होरहा है वह अनात्मभाव है जहांतक घातीय कर्मोंका उदय है वहांतक आत्माके स्वाभाविक गुणोंका निरोध है (अवहि अवयाम गुरुव गुरु चरन) जहां मर्यादा पूर्वक ज्ञानके साथ भारीसे भारी बाहरी चारित्र है, केवलज्ञान सहित परम यथा ख्यात चारित्र नहीं है, वहांतक अनात्मभाव है, शुद्धात्मीक भावका प्रकाश नहीं है ॥ २ ॥

(साधु सुय स उच) आत्माको निश्चयसे स्वयं साधु या साधनेवाला मोक्षमार्गी कहा गया है (सहयार अवयाम धुव धुवं उवन) आत्मा अविनाशी है, उसका ज्ञान स्वभाव भी अविनाशी है। इसतरह ध्रुव आत्माके ज्ञानके अभ्याससे ही आत्माका ध्रुव स्वभाव प्रगट होता है (दिपि दिप्ति सुइ मन्द) वे ही शब्द या मंत्र कार्यकारी हैं जिनके द्वारा जप या ध्यान करनेसे आत्माका ज्ञान स्वभाव प्रकाशित होजावे, केवलज्ञान प्रगट होजावे (पिउ मजुत्त धुव धुव निश्च) तथा परमप्रिय ध्रुव अविनाशी निश्चय मोक्षपदका लाभ होजावे ॥ ३ ॥

(धुव उच धुव वर्ण) ध्रुव नित्य आत्माका ही वर्णन करना चाहिये। ध्रुव आत्माका ही वर्णन सुनना चाहिये। अर्थात् द्रव्यार्थिक नयसे आत्मा द्रव्यका स्वभाव पुनः पुनः कहना चाहिये व पुनः पुनः सुनना चाहिये जिससे पर्याय दृष्टिका मोह हटकर द्रव्य दृष्टिपर भाव जमे (धुव उवन अवयास हेय आकर्न) इसी अभ्याससे ध्रुव स्वभाव प्रकाशित होजाता है। सुना हुआ और सर्व अध्रुव ज्ञानका विकल्प त्याग दिया जाता है। क्षयोपशम ज्ञानके जितने विकल्प हैं, वे सर्व अध्रुव हैं व त्यागने योग्य हैं (धुव पिपि धुव महकार) ध्रुव आत्माके अनुभवसे ही कर्म पुद्गल जो भी ध्रुव हैं उनका क्षय होजाता है। जगतमें आत्मा द्रव्य भी ध्रुव है व पुद्गल द्रव्य भी ध्रुव है दोनोंका संयोग ही संसार है, जब आत्मा आत्मानुभव करता है तब वीतराग भावोंमें रमण करता है जिससे रागद्वेषसे बांधे हुए द्रव्यकर्म आत्माकी सत्तासे अलग होजाते हैं। अलग होना ही कर्मका नाश है (धुव सिय कमल करन निर्वान) जब अविनाशी शुद्ध कमल समान शुद्ध आत्माका दृढ अनुभव होता है, अयोग गुणस्थानमें निष्काम आत्मा होजाता है तब ही आत्माको निर्वाणका लाभ होजाता है ॥ ४ ॥

(धुव हिय धुव हिय जुष) जब यह आत्मा अपने अविनाशी स्वभावका प्रेमी होकर अपने अविनाशी

आत्माके हितमें या स्वात्मानुभवमें लीन होजाता है (ध्रुव अवयास आवरन सजुत्त) जब यह शुद्ध अविनाशी ज्ञानके आचरणमें तन्मय होजाता है, एक अपनी ज्ञान चेतनाका ही स्वाद लेता है (ध्रुव विवान विन्यानं) तब उसको अविनाशी भवसागरसे तारनेवाला केवलज्ञान प्रगट होजाता है (ध्रुव सिय कमल कलन विन्यान) तब यह परमात्मा अपने ध्रुव शुद्ध कमल समान प्रफुल्लित आत्मामें मगन होता हुआ उसी ज्ञानमें तल्लीन रहता है ॥ ५ ॥

(ध्रुव रमन ध्रुव सुवनं) शुद्धात्म स्वरूपमें सदा ही रमण करना, उसीमें भलेप्रकार उपयुक्त रहना (ध्रुव मय ध्रुव सुवन सब्द संरसं) अविनाशी स्वभाव धारी आत्मामें भलेप्रकार एकाग्र होना, ॐ आदि शब्दोंसे जिस वस्तुस्वरूपका बोध होता है उसको भलेप्रकार देखना (ध्रुव लष्य लष्य सुइ उवन) ऐसे लगातार धारावाही रूपसे जब शुद्धात्मा रूपी लक्ष्यपर ध्यान रक्खा जाता है तब वह स्वयं प्रकाशित होजाता है (ध्रुव गम्य अगम्य कमल निर्वान) तब गम्य-इंद्रिय मन गोचर, अगम्य-इंद्रिय मन अगोचर इन सबका ध्रुव रूपसे ज्ञान प्राप्तकर अर्थात् केवलज्ञानी अरहन्त परमात्मा प्रफुल्लित कमलके समान होकर यह आत्मा निर्वाणको प्राप्त कर लेता है ॥ ६ ॥

(ध्रुव उत्त ध्रुव सुवन) ध्रुव उसीको कहा गया है जहां ध्रुव रूपसे आत्मा आत्मामें ठहर जावे (ध्रुव रयन ध्रुव उवन नत सुइ न्यान) ध्रुव रत्नत्रय स्वभावमें रमन करनेसे ध्रुव अनन्त ज्ञानमई यह आत्मा प्रगट होजाता है (ध्रुव रयनं ध्रुव गहन) तब भी ध्रुव रत्नत्रयमई रहता है, ध्रुव रूपसे आपको ग्रहण किये रहता है (ध्रुवरद कोड कमल निर्वान) परमात्माका ध्रुव पद कमल समान स्वीकार होजाना अर्थात् सदा ही निज स्वभावमें जमे रहना निर्वाण है ॥ ७ ॥

(ध्रुव गमन ध्रुव सहन) ध्रुव रूपसे स्वरूपमें प्राप्त होना ही ध्रुव रूपसे विजय प्राप्त करना है, फिर कभी कर्मोंके वश जीव नहीं होगा (ध्रुव कलन रमन हिय रमन) ध्रुव रूपसे आपसे आपको जानना सो ही अपने हितकारी स्वरूपकी रमणतामें रमण करना है (सह रमनं ध्रुव कलनं) रमण करनेके साथ ध्रुव रूपसे अपनेको जानते रहना (आकर्नं च कमल विन्यान) जैसे कमल स्वरूप आत्माका स्वरूप जिनवाणीमें सुना है उसी-तरह भलेप्रकार आपसे आपको जानते रहना यही निर्वाण है ॥ ८ ॥

(ज ज उववन सहिय) जो कोई भी स्व भावको प्रकाश कर लेता है (उवनं सुइ अर्क अर्क सुइ रमनं) वही

सूर्यके समान प्रकाशित होजाता है और उसी सूर्यमें आप ही रमण करता है (अर्क विंद मह्काए) इस सूर्य समान आत्माका अनुभव बराबर बना रहता है (उवन आर्न्न कमल निर्वान) जैसा जिनवाणीमें सुना था वैसा ही कमल सम आत्माको निर्वाणका लाभ होजाता है ॥ ९ ॥

(मिय मिय मिय मुइ उवन) आत्माका द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मसे रहित होकर परम शुद्ध होना ही आत्माका प्रकाश है (मिय हिय मिय विय उवन मुइ रमन) वही शुद्ध हित है, वही शुद्ध प्रिय वस्तु है, वही निज प्रकाशित स्वभावमें रमण है (मिय उवन उवन मुइ गमन) शुद्ध प्रकाशका सदा बने रहना सोई आपसे आपको जानना है (मिय धुव आर्न्न कमल वि यान) वही शुद्ध ध्रुव कमलसम आत्माका ज्ञान है। जैसा जिन वाणीमें सुना था वैसा शुद्ध ज्ञानका लाभ प्राप्त करना है ॥ १० ॥

(सिय धुव उवन महाव) निर्वाणमें आत्मा शुद्ध ध्रुव प्रकाश स्वभावमें रहता है (महिय माइति अगम गम रमनं) वही निर्वाण साधनेयोग्य है। उसीको जब सिद्ध कर लिया जाता है तब यह अतीन्द्रिय आत्माको यथार्थ जान लेता है व उसीमें रमण करता है (आर्न्न ममय मम समगं) जैसे जिनवाणीमें सुना है वैसा समभावका धारी आत्मा होजाता है (कमल आर्न्न कमल निर्वान) जिस कमलका स्वरूप सुना था वैसा कमलके समान सम्पूर्णपने आत्माका विकास होजाना ही निर्वाण है ॥ ११ ॥

(उववन निहि उववन) जो आत्माकी सम्पत्ति उत्पन्न होने योग्य थी वह निर्वाणमें उत्पन्न होजाती है (उववन आर्न्न विंद मुइ रमन) जैसा जिनवाणीमें सुना था वैसा आत्मानुभव या आत्मामें रमण उत्पन्न होजाता है (माइति ममय मुवन) निर्वाण प्राप्त आत्माएँ अपने आत्मामें भलेप्रकार तल्लीनताको साधन कर लेते हैं (कमल आर्न्न उवन निर्वान) जैसा सुना था वैसा कमल समान प्रफुल्लित आत्माका प्रगट होजाना ही निर्वाण है ॥ १२ ॥

(दिप्ति नंत मुइ दिप्टं) अनन्त ज्ञानका वहां प्रकाश स्वयं रहता है (दिप्त दिप्टी मुइ नंत दिप्ति मुइ दर्सं) वहां क्षायिक सम्यग्दर्शन है व अनन्त वीर्य है व अनन्तदर्शन है (दिप्ति दिप्टि आयरन) वे परमात्मा अनंत ज्ञानके स्वभावमें ही आचरण करते हैं (आर्न्न ममय रुलन निर्वाणं) जैसा सुनाथा वैसा ही आत्मामें रमण सोई निर्वाण है ॥ १३ ॥

(कमल सब्द नन्तानं) कमल शब्द अनन्तानन्त गुणोंके धारी परमात्माका वाचक है (नन्तानन्त सब्द

कर्न आकर्न) अनन्तानन्त शब्द जो कानोंसे सुना है उस शब्दके अनुसार जो अनन्तानन्त गुण पर्यायका धारी है (आकर्न कलन सुइ कमलं) जैसा सुना है वैसा ही आपमें जमना सो ही कमलका स्वरूप है (कमल सुइ कलिय केवलं न्यानं) कमल वही है जहां केवलज्ञानका प्रकाश हो ॥ १४ ॥

(कमल विंद सुइ सव्द) कमलका स्वाद लेना ऐसा जो शब्द है (सव्दं आयरन कर्न विंदान) विंदानं आयरन अर्थात् स्वानुभव पूर्वक जानना ऐसा जो शब्द कानोंसे सुन पड़ता है (कर्न विंद सुइ कमल) कानोंसे जो शब्द सुन पड़ता है वही कमल स्वरूप भावका वाचक है अर्थात् जब आत्मा आपसे आपमें लय होता है तब विंद शब्दकी सफलता है (कमल आकर्न कलन निर्वान) कमल शब्द जो सुन पड़ता है यह अवस्था तब ही होती है जब आत्मा निर्वाणका स्वाद लेता है।

भावार्थ—आत्मा जब अपनेमें ठहरकर अपने गुणोंका आनन्द लेता है वहीं कमल व बिन्दु शब्दोंकी सफलता है ॥ १५ ॥

(उववन अवहि निहि सुवन) जब अवधिज्ञानकी निधिमें प्रतिष्ठापना प्राप्त होता है (अवहि सह समै साहु धुव सुइ रमन) वह अवधिज्ञान सहित आत्मा साधु अपने ध्रुव आतम-स्वभावमें रमण करता है (सहकार धुव गमनं) इस आत्मध्यानकी सहायतासे ध्रुव अवस्थाको या निर्वाणको पहुँच जाता है (अगम सुइ विपिय विलय कम्मान) वहीं अगम्य अर्थात् इंद्रिय व मनसे अगोचर आत्मा क्षायिक भावधारी होजाता है तब उसके सब कर्म क्षय होजाते हैं ॥ १६ ॥

(उववन निहि सुइ अर्क) जब केवलज्ञानकी निधि प्राप्त होजाती है तब यह सूर्य समान वीतरागी व ज्ञानी प्रतापी अरहन्त होजाता है (अर्क सुइ विपि दिस्टि सुइ रमन) इसे सूर्य कहो या स्वयं ज्ञान दर्शनमय कहो या स्वयं चारित्ररूप कहो एक ही बात है (अर्क सव्द सुइ कर्न) अर्क शब्द जो कानोंसे सुना है (कर्न सुइ सव्द कमल कलन च) जैसा कानसे सुना है उस शब्दके अनुसार आत्मा जब अपने कमल समान प्रफुल्लित आत्मामें मगन होता है तब यह सूर्यसम होजाता है ॥ १७ ॥

(हुययार अर्क हिययार) यह आत्मा सूर्य परम उपकारी है व परम हितकारी है, जो इसका ध्यान करता है उस हीका कल्याण होता है (हिययार अर्क विंद विंदान) यह आत्मा सूर्य आत्मानुभव करनेवालोंके लिये हितकारी है। अर्थात् अरहन्त परमात्माको समझकर आपको उसी रूप ध्याना अर्हंतपदका कारण

॥३६१॥

है (अनन्त रमन अनयास) इस आत्मामें अनन्त ज्ञानमें रमण होता है (ममय आकर्नै कमल निर्वा) जैसा सुना है वैसा ही यह आत्मा कमल स्वभावी निर्वाणनाथ होजाता है ॥ १८ ॥

(हिय रमन अर्क सुइ उवनं) अपने परम हितकारी आत्मामें रमण करना सो ही सूर्य समान आत्माके उदयका कारण है (उवन हिय गहिर गमन गुरु वचनं) यह गुरुका वचन है कि तब यह हितकारी आत्मारूपी गुफाके भीतर जाकर बैठ जाता है, यही सूर्यका उदय है (गमन गुप्ति सुइ सर्व) मन, वचन, कायकी गुप्तिके साथ आप आपमें जमना सो ही सर्व कुछ साध लेना है (आकर्नै कमल कलन निर्वान) जैसा जिनवाणीमें सुना है, प्रफुल्लित कमल समान आत्मामें आत्माका तन्मय होना ही निर्वाण है ॥ १९ ॥

(गुपित अर्क गुरु गुरुव) यह आत्मा गुरुओंका गुरु गुप्त सूर्य है (गुरुव गुहिज च स्वद सुइ सुवन) यह बड़ी गम्भीर आत्म गुफासे उदय होता है। ऐसा शब्द कहता है उसीसे इसका पूज्यपना है (गुरु गुपितह सुइ सब्द) अपने गम्भीर आत्मारूपी गुफामें गुप्त होजाना सो ही इन शब्दोंका अर्थ है (सब्द आकर्नै कलन निर्वान) जैसा जिनवाणीमें सुना है वैसा ही यह आत्मा आत्माकी गुफामें ठहरकर निर्वाणका आनन्द लेता है ॥ २० ॥

(गुपित गुहिज आकर्नै) अपनी गुप्त गुफाके भीतरसे प्रगट होना ऐसा जो सुना है (सहिय सह समय कमल कलन) सो यह आत्मा अपनेको साधता हुआ जब कमल समान शुद्धात्मामें मगन होता है तब प्रगट होजाता है (कमल कलन सुइ अर्क) ऐसे शुद्धात्मामें मगन होना ही स्वयं सूर्य समान आत्माका प्रकाश है (सहिय सह विंद कर्नै कमल च) जैसा सुना है वैसा ही यह आत्मा साधन करते हुए आत्मानुभवमें मगन होजाता है ॥ २१ ॥

(गुहिज अर्क गम अगम) अपनी आत्मारूपी गुफामें मगन होनेसे ही सूर्य समान शुद्धात्माका उदय होता है जो इंद्रिय मन गोचर व इंद्रिय मन अगोचर सर्व पदार्थोंको जानता है (जानु पय अर्क नन्त नन्ताई) वह सूर्य सम आत्मा अनन्तानन्त पदार्थोंको जानता है (नन्तानन्त सु चरन) वह अनन्तानन्त गुणोंमें रमण करता है (चरन आवरन अर्क कमलं च) स्वरूपमें आचरण करना ही सूर्य है व वही कमल है ॥ २२॥

(अवहि उवन निहि सहिय) अवधिज्ञानरूपी निधिके उदय सहित साधु (समयं समत्त समय सुइ रमन) शुद्धात्माका श्रद्धान रखता हुआ अपने आप ही अपने आत्मामें रमण करता है (जिन अर्क कमल सुइ दर्स) तब वह सूर्य समान या कमल समान श्री जिनेन्द्र परमात्माका दर्शन करता है (दर्स सुइ कमल उवन कलन च)

ऐसा आत्मदर्शन करते करते वही कमल समान आत्मा होजाता है तब आपसे आपमें रमण करता है॥२३॥

(कमल समय सम समयं) कमल समान शुद्धात्मा ही समभावधारी आत्मा है (कमल सम कर्म कमल हिययार) जैसा सुना है कि समभावकी स्थिरता होना सो ही हितकारी कमल सम विकसित होजाना है (हिययार समय हुवयार) वही शुद्धात्मा हितकारी है, वही उपकारी है (समय सह कर्म करन निर्वान) जैसा सुना है कि इसी आत्माके साथ रमण करना ही निर्वाण है ॥ २४ ॥

(अवहि उवन निहि उवन) तब किसी सम्यक्ती साधुको अवधिज्ञानकी निधि प्राप्त होजाती है (उवन निहि समय समय कवर्यासं) जब ध्यानके अभ्याससे आत्माकी निधि ऐसी प्रगट होजाती है कि उस आत्मामें आकाशके समान अनन्त गुणोंका वास होजाता है (समय सुइ नन्त अनन्तं) तब आत्मा अनन्तानन्त गुणोंका धारी प्रगट होजाता है (समय आकर्न कमल निर्वानं) जैसा सुना है कि ऐसा कमल समान आत्मा ही निर्वाण स्वरूप है ॥ २५ ॥

(समय समय सुइ समय) आत्मा आत्माके ही ध्यानसे स्वयं परमात्मा होजाता है (समय सम दर्स सब्द आकर्न) वह आत्मा समदर्शी या वीतरागी होजाता है जैसा वचन जिनवाणीमें सुना है (समय उवन उव उवन) वह आत्मा प्रकाश होते होते पूर्ण प्रकाश होजाता है (समयं आकर्न कमल निर्वानं) जैसा सुना है वही कमल समान आत्मा निर्वाण स्वरूप है ॥ २६ ॥

(नन्त नन्त सुइ उवनं) तब ही अनन्तानन्त गुण प्रगट होजाते हैं (उवन सह अवहि उवन निहि कमल) इस तरह अवधिदर्शन व अवधिज्ञानके उदय होनेसे कमल समान अरहन्तपदकी निधि प्रगट होजाती है (केवल कमल उवन) वही केवली कमल समान अर्हंत प्रगट हैं (आकर्न कर्न कमल निर्वान) जैसा कानोंसे सुना है वही कमल समान आत्मा निर्वाण स्वरूप है ॥ २७ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीको अवधि दर्शन कहा गया है। अवधि दर्शन सम्यग्दृष्टी हीको होता है। अवधिज्ञानके पहले अवधिदर्शनोपयोग होता है। जो कोई सम्यग्दृष्टी है वही मोक्षका पात्र है। यह सम्यक्ती यद्यपि मति, श्रुत, अवधि तीन विभाव ज्ञानोंका धारी है तथापि इसको अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपका, आत्माके अनन्त गुणोंका, आत्माके अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्र आदि शुद्ध गुणोंका पूर्ण विश्वास है। श्रद्धापूर्वक यह सम्यक्ती अपनेको

शुद्ध अनुभव करता है। शुद्धात्माके ध्यानसे ही यह शुद्ध होकर निर्वाणका नाथ होजाता है। आत्माको सूर्य और कमलकी उपमा दी है। जैसे सूर्य जबतक मेघोंसे छाया होता है पूर्ण प्रकाश नहीं करता है। जब मेघ दूर होजाता है तब स्वयं ही पूर्ण रूपसे चमक जाता है, उसी तरह जबतक आत्मा कर्मोंके आवरणसे ढका है तबतक वह परमात्मा रूप नहीं होता। जब कर्मोंका आवरण स्वात्मध्यानके प्रतापसे हट जाता है तब यह सूर्य सम सदाके लिये अनन्तज्ञानादि गुणोंका प्रगट भोक्ता परमात्मा होजाता है। जैसे कमल मुदित होता है तब उसकी शक्तियां ढकी होती हैं वैसे यह आत्मा जबतक कर्मोंके अंधकारमें है तबतक मुदित है। जब सूर्योदयसे कमल खिल जाता है तब वह कमल अपने पूर्ण विकासको पालेता है। इसी तरह कर्मोंका अंधेरा स्वानुभवरूपी सूर्यके प्रकाशसे जब दूर होजाता है तब अपने सर्व गुणोंको विकसित करने-वाला कमलसम आत्मा प्रकाशित होजाता है। जैसे सूर्य पूर्व दिशासे उदय होता है वैसे यह आत्मा स्वानुभवरूपी गुफासे ही उदय होता है। जब मन, वचन, कायकी तीनों गुप्तियोंको रोककर आत्मा आपसे आपमें विश्राम करता है तब यह स्वयं अरहन्त परमात्मा या सिद्ध परमात्मा होजाता है। जिनवाणीने जैसा मुक्तिका स्वरूप बताया है वैसा ही स्वानुभवके प्रतापसे प्राप्त होजाता है। स्वानुभव तब ही होता है जब उपयोग आत्माके स्वरूपमें ऐसा एकाग्र किया जावे कि वहां न तो कोई मन सम्बन्धी चिन्तवन हो, न वचनके जल्प हो, न कायका हलन चलन हो। मैं आत्मा हूं, ज्ञातादृष्टा हूं, यह विकल्प भी स्वानुभवमें नहीं रहता है, निर्विकल्प समाधि पैदा होजाती है। जैसा द्रव्यसंग्रहमें कहा है—

मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किंचि जेण होइ थिरो। अप्पा अप्पम्हि रओ इणमेव हवे परमज्झाणं ॥ ५६ ॥

अर्थात्—मत कुछ कायकी चेष्टा करो, मत कुछ बोलो, मत कुछ चिंतवन करो जिससे आत्मा थिर होकर आपसे आपमें रत होजावे यही उत्कृष्ट ध्यान है, यही स्वानुभवकी दशा है। इसकी प्राप्तिके लिये साधकको जिनवाणीके शब्दोंपर विश्वास लाकर निर्वाणका व निर्वाण मार्गका श्रद्धान करना जरूरी है। फिर ॐ, ह्रीं, श्रीं आदि मन्त्रोंके आश्रयसे आत्माका मनन करना जरूरी है। मनन करते २ एकाएक स्वानुभव उसी तरह पैदा होता है जिस तरह दूधको विलोते हुए मक्खन पैदा होता है। इंद्रियोंसे व मनसे जो कुछ ग्रहण किया था वह सब विकल्प भाव भी स्वानुभवकी दशामें छोड़ने पड़ते हैं। यहां चक्षुसे मतलब जानने देखनेवाले आत्मासे लिया गया है। आत्मा ध्रुव है, इसी ध्रुवके ध्यानसे ध्रुव सिद्धपद होजाता

है। निर्वाणमें भी ध्रुवरूपसे स्वानुभव व आत्मरमण बना रहता है। वास्तवमें आत्मदर्शनसे ही आत्माका प्रकाश होता है। श्री योगेन्द्रदेव योगसारमें कहते हैं—

जेहउ सुद्ध आयासु जिय तेहउ अप्पा उत्तु। आयासु वि जड जाणि जिय अप्पा चेयणुवंतु ॥ ५८ ॥
णासग्गि अब्भिंतरह जे जोवहि असरीरु। बाहुडि जम्म ण संभवहि पिवहि ण जणणीखीरु ॥ ५९ ॥

भावार्थ—हे जीव! जैसा शुद्ध आकाश है वैसा ही आत्मा है ऐसा जान। आकाश जड़ है तब आत्मा चेतन स्वरूप है। नाशाग्र दृष्टि धारकर जो कोई भीतर शुद्ध आत्माको जो शरीरसे भिन्न है अनुभव करता है, वह स्वानुभव करते करते मुक्त होजाता है, फिर वह जन्म नहीं धारण करता है, फिर वह माताका दूध नहीं पीता है।

---

(४७) सुह गम्य रमन फूलना गाथा ८७३ से ८९३ तक।

जिन उत्त उवन पौ-उवन उवन मौ, जिन न्यान विन्यान संजुत्तु।
उव उवन दिस्टि मौ सब्द सहज लै, तं पदम कमल सुइ उत्तु ॥ १ ॥
सुह गम्य रमन दुह गम्य गलन, सूष्म परिनाम स उत्तु।
सुह गम्य सहज सुइ नन्द अनन्द चौ, सुइ न्यान विन्यान संपत्तु ॥
सजोय चतुस्टं मुक्ति पऊ ॥ २ ॥ (आचरी)
सुइ कंध ममल पौ दुह कंध समल चौ, उत्पन कमल सभाउ।
हिययार रमन मौ, तं अरुह चलन पौ, तं अर्क बिंद स सहाउ ॥
सुह गम्य रमन० ॥ ३ ॥
·आगन्तु अर्थ रुईं, रमन सहज सुईं, हिय हुवयार संजुत्तु।
उव उवन चष्य मौ, दिस्टि इस्टि रै, चष्य अचष्य पउत्तु ॥ ४ ॥ सुह० ॥

सहयार समय सुइ, नन्त ममल मौ, तं गुपित न्यान संजुत्तु ।
तं गुहिज कमल रुई, सहजनद मौ, गुरु गुपित हिययार संजुत्तु ॥ ५ ॥ सुह० ॥
गुरु गुपित दिट्ठ मौ, विवान सहज सुई, पय पद विंद स उत्तु ।
तं अर्थति अर्थह, समय समर्थह, पंचार्थ ममल संजुत्तु ॥ ६ ॥ सुह० ॥
तं परम परम मौ, नन्द आनन्द मौ, चेयन नन्द सहाउ ।
तं सहजनन्द मौ, विन्यान न्यान पौ, परमानन्द सहाउ ॥ ७ ॥ सुह० ॥
तं नन्त न्यान पौ, दर्स दर्स मौ, वीर्यानन्त सभाउ ।
सुह गम्य रमन रस, विन्यान विनय जस, तं नन्त सौष्य स सहाउ ॥ ८ ॥ सुह० ॥
तं ध्यान उत्तु जिन, समय विलय मन, न्यान विन्यान सुभाउ ।
जं कम्म गलिय, सुह गम्य रमन रै, तं परम न्यान स सहाउ ॥ ९ ॥ सुह० ॥
आरतिहि अरति पौ, अनिस्ट संजोय मौ, तं इस्ट विओय सजुत्तु ।
तं पिड़ चिंता मै, वर पर्जय रय, निदान नरय संजुत्तु ॥ १० ॥ सुह० ॥
आरति हिरयन पउ, इस्ट संजोय मउ, न्यान विन्यान सचिंतु ।
तं नन्त सहज रुई, नन्द परम पउ, तं पर पर्जय विलयन्तु ॥ ११ ॥ सुह० ॥
तं रौद्र ध्यान सुइ, सहयार हियार मौ, हिंस नन्द स उत्तु ।
अनृत पर्जय रय, स्तेय अनृत मौ, तं विषय नरय संजुत्तु ॥ १२ ॥ सुह० ॥
तं रौद्र जिनुत्तु कम्मु विलय सुई, न्यान विन्यान सहाउ ।
जिन उत्त नन्द मौ कम्मु गलिय सुई, षिपि कम्म मुक्ति सभाउ ॥ १३ ॥ सुह० ॥

तं धम्मु उत्तु जिनु अन्य विचय मन, अपाय विचय स भाउ।
विपाक विचय सस्थान निचय, तं ममल धम्म स सहाउ ॥ १४ ॥ सुह० ॥
तं धम्म धरन सुई अर्थति अर्थ मउ, लषियो लष्य सु भाउ।
तं रमन न्यान पउ चक्कहर इच्छ मौ, जिन नाथ रमन स सहाउ ॥ १५ ॥ सुह० ॥
तं सुल्क ज्ञान पौ, ममल न्यान मौ, तं नन्तनन्त सुइ उत्तु।
तं कम्म गलिय तं, नन्त नन्त रै, भय षिपिय मुक्ति संपत्तु ॥ १६ ॥ सुह० ॥
पृथक् वित्र करै, विचार ममल मौ, एकत्त वित्रक जिन उत्तु।
विचार न्यान मौ, विन्यान सहज सुइ, सुह गम्य सिद्धि संपत्तु ॥ १७ ॥ सुह० ॥
सुष्यम परिनवै तं ममल सहज रै, सूष्यम सहाउ स उत्तु।
सुइ षिपिय षिपक मौ, नन्त न्यान पौ, तं मुक्ति रमन संजुत्तु ॥ १८ ॥ सुह० ॥
जिनउ क्रांति मौ, उत्पन्न न्यान रै, अर्थति अर्थ संजुत्तु।
प्रतिपाद परम पय, सुहगम्य सहज रै, जिननाथ सिद्धि संपत्तु ॥ १९ ॥ सुह० ॥
विप्रिय भय गलिय, कुमय मय विलय, पर पर्जय विलयंतु।
सुह गम्य रमन सुई, नन्त ममल मय, सुइ सहज सिद्धि सम्पत्तु ॥ २० ॥ सुह० ॥
जं ध्यान उत्तु, जिन न्यान समय गन, तं समय संजुत्तु पउत्तु।
उव उवन उत्तु जिनु, तरन तरन गन, सम समय सिद्धि संपत्तु ॥ २१ ॥ सुह० ॥

अन्वय सहित अर्थ—(जिन उत्त उवन पौ उवन उवन मौ) जिनेन्द्रने जैसा कहा है वैसा परम ज्योतिस्वरूप पद उदय होगया है (जिन न्यान विन्यान संजुत्त) यह पद वीतराग है व केवलज्ञान स्वरूप है (उव उवन दिष्टि मौ)

यह पद प्रकाशित दर्शन स्वरूप है अर्थात् अनंतदर्शनमई है (सब्द सहज ले) यह शब्दोंके द्वारा सहज लय या सहज स्वरूपके ध्यानसे प्रगट होता है (तं पदम कमल सुइ उत्तु) इसी पदको पद्म या कमल स्वरूप अरहन्त कहते हैं ॥ १ ॥

(सुह गम्य रमन) सुखसे अनुभव करने योग्य या सुखस्वरूप अनुभवने योग्य जो आत्मा है उसमें रमण स्वरूप यह परमात्म पद है (दुह गम्य गलन) दुखसे अनुभवने योग्य जो विश्राम भाव है या संसार परिणति है या चतुर्गतिमय अवस्था है उसका वहां क्षय होगया है (सुष्म परिनाम स उत्तु) उस परमात्मपद्में जो शुद्धोपयोग है उसको इंद्रिय व मनसे अगोचर सूक्ष्म परिणाम कहते हैं (सुह गम्य सहज सुह नन्द आनन्द मौ) वही पद सुखसे अनुभव करने योग्य सहज ही परमानन्द्में मगन स्वरूप है (सुइ न्यान विन्यान संजुत्तु) वह पद शुद्ध ज्ञान सहित है (संजोय चतुष्ट मुक्ति पऊ) वहां अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख तथा अनन्त वीर्य, इन चार चतुष्टयका संयोग है वही पद मुक्तिपद है ॥ २ ॥

(सुह कंप ममल पौ) वह पद सुखका समूह है व निर्मल है (दुह कप सयल ची) चार गतिके अशुद्ध पद सब दुःखोंके समूह हैं (उवन कमल सभाउ) परमात्मपद्में कमल स्वभावी आत्माका प्रकाश होजाता है (हिययार रमन मौ) वही पद हितकारी है व स्वात्म-रमणरूप है (त अरुह चलन पौ) वही पद अरहन्त स्वभावमें परिणमन स्वरूप है (तं अर्क विंद स सहाउ) वही सूर्य समान है, वह स्वानुभूतिमई स्वाभाविक है ॥३॥

(आगंतु अर्थ रुई) आनेवाले मोक्ष पदार्थमें गाढ़ रुचि इसी पद्में है, इसी पदसे परमावगाढ़ सम्यक्त कहते हैं (रमन सहज सुई) वही स्वभावमें रमण- स्वरूप पद है (हिय उवयार संजुत्तु) यही पद हितकारी व उपकारी है (उव उवन चष्य मौ) यहां प्रकाशमान आत्मदर्शन होरहा है (दिष्ट इष्टि रै) यहां लगातार दृष्टि अपने इष्ट आत्माकी तरफ है (चष्य अचष्य पउत्तु) इसी पद्में रमण करनेसे इंद्रियगोचर व अतीन्द्रियगोचार ज्ञानका लाभ होजाता है ॥ ४ ॥

(सहयार समय सुइ) वही सहायकारी आत्मीक पद है (नंत ममल मौ) वही पद अनन्त है व शुद्ध है (तं गुपित न्यान संजुत्त) उसी पद्में गुप्त ज्ञान व आत्म ज्ञान है (त गुहिज कमल रुइ) वही आत्मीक गुफासे प्रगट होनेवाले कमल समान परमात्म पद्में गाढ़ रुचि है (सहजनद मौ) वही पद सहजानंद मई है (गुरु गुपित हिययार संजुत्तु) वही पद श्रेष्ठ है, वही गुप्त है, अनुभवगोचर है, वही परम हितकारी है ॥ ५ ॥

(गुरु गुपित विद्द मौ) वही पद श्रेष्ठ है, वही गुप्त सम्यग्दर्शन स्वरूप है या अनुभवगोचर आत्मदर्शन स्वरूप है (विवान सहज सुई) वही पद मोक्षद्वीपमें लेजानेको जहाज है, वही जहाज स्वाभाविक पद है (पय पद विंद स उत्तु) उसी पदको पद विंद या स्वानुभवरूप पद कहते हैं (त अर्थति अर्थइ) वही पद रत्नत्रय स्वरूप पदार्थ है (समय समर्थइ) वही अपने स्वरूपमें रमण करनेकी सामर्थ्य रखता है (पंचार्थ ममल सजुत्तु) उसी पदमें पांच शुद्ध पदार्थ झलकते हैं। भावार्थ—वहीं अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु पांच पद है या वहीं पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल पांच द्रव्योंका यथार्थ झलकाव है व वहीं पांच शुद्ध गुण हैं—अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य, क्षायिक सम्यक्त व क्षायिक चारित्र ॥ ६ ॥

(त परम परम पौ) वही पद सर्व श्रेष्ठपदोंमें श्रेष्ठ है परमात्मपद है (नंद आनद मौ, वही पद आनन्दमय भावमें मगन स्वरूप है (चेयन नंद सहाउ) वही पद चिदानन्द स्वभावरूप है (त सहजनद मौ) वही सहजानन्दमई है (विन्यान न्यान मौ) वही केवलज्ञानमई पद है (परमानद सहाउ) वही परमानन्द स्वभावरूप है ॥ ७ ॥

(त नंन न्यान पौ) वही पद अनन्तज्ञान स्वरूप है (दर्स दर्स मौ) वही क्षायिक सम्यग्दर्शन स्वरूप है तथा अनन्तदर्शनमई है (वीर्यानत समाउ) वही पद अनन्तवीर्य स्वभावरूप है (सुइ गम्य रमन रस) वही पद सुखमें अनुभवने योग्य है, वही स्वात्मीक रसमें रमणता है (विन्यान विनय जस) वही पद ज्ञानमें विनय स्वरूप है, अर्थात् ज्ञानचेतनारूप है। वही पद परम यशस्वी है (त नन्त सौख्य स सहाउ) वही पद अनन्तसुख स्वभावरूप है ॥ ८ ॥

(त ध्यान उत्तु जिन) उसी पदमें यथार्थ ध्यान कहा गया है। क्योंकि वहां लगातार स्वरूप संवेदन है (समय विलय मन) वहां आत्माके रसमें मनका लोप होगया है। अर्थात् मन सम्बन्धी सर्व विकल्प मिट गये हैं (न्यान विन्यान सुभाउ) वही परम ज्ञान स्वभावरूप है (ज कम्म गलिय) उसी ध्यानसे कर्म क्षय होते हैं (सुइ गम्य रमन रै) वहीं सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें लगातार रमणता है (त परम न्यान स सहाउ) वही श्रेष्ठ ज्ञान स्वभाव है ॥ ९ ॥

(आरतिहि अरतियौ) आर्तध्यान दुःख अनुभव स्वरूप पद है (अनिस्ट सजोय मौ) प्रथम आर्तध्यान अनिष्ट वस्तुके संयोगसे उत्पन्न होता है (तं इस्ट विओय संजुत्तु) दूसरा आर्तध्यान इष्टिके वियोगसे होता है

ममलपाहुड
॥३६९॥

(तं पिड़ चिन्ता मौ) तीसरा आर्तध्यान पीड़ा चिन्तवन है (पर पर्जय रय निदान नरय सजुत्त) चौथा आर्तध्यान पर पर्यायमें रत–विषयभोगकी कांक्षारूप निदान भाव रूप है। ये चारों ही आर्तध्यान अति तीव्र होते हैं तौ नर्क आयुको बन्ध कर देते हैं। मध्यम हो तो तिर्यंचायु बांधते है। वे चारों ही ध्यान आर्तस्वरूप दुःखानुभवरूप त्यागने योग्य हैं ॥ १० ॥

(आरतिहि रमन पउ) निश्चयनयसे आरति ध्यान यह है जहां रत्नत्रय पदमें सब तरफसे रति हो प्रेम हो (इस्ट पजोय मउ) जहां परम इष्ट परमात्माके स्वभावका सयोग हो ध्यान वि यान रुचिंतु) जहां भेद-विज्ञानपूर्वक शुद्ध ज्ञान स्वभावका चिन्तवन हो (त नन्त सहज रुई, जहां स्वाभाविक अनन्त गुणमई आत्मामें रुचि हो (नद परम पउ) जहां परमात्माके पदमें आनन्द हो (त पर पर्जय विन्यंतु) जहां रागादि पर परिणतिका लोप होगया हो। निश्चयसे स्वात्मरमणरूप आरति ध्यान है। यह उपादेय है या ग्रहण करनेके योग्य है ॥ ११ ॥

(त रौद्र ध्यान सुह) वही खोटा रौद्रध्यान है (सहयार हिंसा मौ) जो मदको या दुष्ट भावमें उन्मत्तताको सहकारी है व बढ़ानेवाला है (हिंस नन्द स उत्तु) प्रथम रौद्रध्यान हिंसानंदी है जहां हिंसामें आनन्द माना जाता है (अनृत पर्जय रय) दूसरा रौद्रध्यान मिथ्या परिणतिमें रमण रूप मृषानन्दी है (स्तय अनृत मौ) तीसरा रौद्रध्यान मिथ्यारूप चोरीमें आनन्द स्वरूप है (तं विषय नरय संजुत्त) चौथा रौद्रध्यान विषयानन्द स्वरूप है। ये चारों ही रौद्रध्यान नरकायुके बन्धके कारण हैं ॥ १२ ॥

(तं रौद्र जिनुत्त) निश्चयसे जिनेन्द्रने रौद्रभाव या क्रूर भाव उसे ही कहा है जिस भावसे (कम्म विलय सुई) कर्मरूपी शत्रुओंका संहार किया जावे। कर्मोंका हिंसाकारक भाव ही सच्चा स्वात्मरमण रूप रौद्रध्यान है (न्यान विन्यान सभाउ) वह शुद्ध ज्ञान स्वभावरूप है (जिन उत्त नन्द मौ , वह ध्यान आनन्दमई है, परमानन्दमई है ऐसा जिनेन्द्रने कहा है (कम्मु गलिय सुई) उससे सब कर्म क्षय होजाते हैं (षिपि कम्म मुक्ति सभाउ) तथा कर्मोंके क्षय होनेसे मुक्तिका स्वभाव प्रगट होजाता है ॥ १३ ॥

(त धम्म उत्तु जिन) श्री जिनेन्द्रने धर्मध्यानको कहा है (आ य विनय मन) प्रथम धर्मध्यान आज्ञा विचय-रूप है जहां जिनेन्द्रकी आज्ञानुसार तत्वोंका मनन किया जावे (अपाय विचय सभाउ) दूसरा धर्मध्यान अपाय विचय है जहां यह विचार किया जावे कि मेरे रागादि भावोंका व कर्मोंका नाश हो या दूसरे जीवोंके

रागादि भावोंका व कर्मोंका नाश हो (विपाक विचय) तीसरा धर्मध्यान विपाक विचय है, जहां सांसारिक दुख या सुखको देखकर कर्मोंके फलका विचार किया जावे कि यह सर्व सुख दुःख जीवोंके अपने ही बांधे कर्मोंके फल हैं (संस्थान विचय) चौथा धर्मध्यान संस्थान विचय या संस्थान निचय है, जहां श्रद्धापूर्वक छः द्रव्यमई लोकका स्वरूप विचारा जावे या अपने ही आत्माका अमूर्तीक आकार मनन किया जावे (त ममल धम्म स सहाउ) यही शुद्ध धर्मध्यान अपने ही आत्माका स्वभाव है ॥ १४ ॥

(तं धम्म धरन सुइ) निश्चय धर्मध्यानका धारण करना वह है जो (अर्थति अर्थ मउ) रत्नत्रयमई पदार्थमें परिणमन किया जावे (लपियो लष्य सुभाउ) जहां अनुभवनेयोग्य आत्माका स्वभाव अनुभवमें लाया जावे (तं रमन न्यान पउ) जहां निज ज्ञानपदमें रमण किया जावे (चक्कहर इच्छ मो) जहां इच्छा और मदके चक्रको तोड़ा जावे, अनादिकालसे पर पदार्थकी इच्छा व परिणतिमें अहँकारका चक्र चला आया है उसको जहां खण्डन किया जावे, निस्पृह भाव व निरहँकार भावमें रमण किया जावे (जिननाथ रमन स सहाउ) जहां श्री जिनेन्द्र परमात्मामें रमण किया जावे या अपने स्वभावमें रहा जावे ॥ १५ ॥

(त सुलक झान पौ) शुक्लध्यानका पद ऐसा है (ममल न्यान मौ) जो शुद्ध ज्ञान मई है (त नत नत सुइ उत्तु) उसी ज्ञानमई पदको अनन्तानन्त गुणधारी कहा है। अर्थात् वहां अनन्त गुणधारी आत्माका शुद्धानुभव है (त कम्म गलिय) इसीसे कर्मोंका क्षय होता है (त नत नत रै) इसमें अनन्तानन्त गुणधारी आत्मामें धारावाही लीनता होती है (भय पिपिय मुक्ति संपत्तु) इसीसे सर्व भय दूर होकर यह आत्मा मोक्षकी प्राप्ति कर लेता है ॥ १६ ॥

(पृथकवित्र करै विचार ममल मौ) पहला शुक्लध्यान पृथक्त्व वितर्क विचार है, जो शुद्धोपयोगरूप है। इस ध्यानमें अबुद्धिपूर्वक पलटन होती है। एक योगसे दूसरे योगमें, एक शब्दसे दूसरे शब्दमें, एक ध्येय पदार्थसे दूसरेमें द्रव्यको छोड़, पर्यायमें पर्यायको छोड़, गुणमें एक गुणको छोड़ दूसरे गुणमें पूर्व अभ्यासमें उपयोगकी फिरन होजाती है, परन्तु ध्याताको इस पलटनकी खबर नहीं होती है। यह शुक्लध्यान आठवें अपूर्वकरण गुणस्थानसे प्रारम्भ होकर बारहवें क्षीण मोह गुणस्थानके पहले पद तक रहता है। इसीसे सर्व मोहनीय कर्म सर्वथा क्षय होजाता है (एकत्त वितक्क जिन उत्तु) दूसरा शुक्लध्यान एकत्व वितक अविचार है। वहां किसी एक योगमें, किसी एक शब्दमें, किसी एक ध्येयमें एकाग्रता होजाती है, पलटन नहीं होती

॥३७१॥

है। यह बारहवें क्षीण मोह गुणस्थानमें होता है। इससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय तीन घातीय कर्मोंका क्षय होजाता है (विचार न्यान मौ) इन दोनों शुक्लध्यानोंमें ज्ञानमई आत्माका अनुभव है (विन्यान सहज सुइ) यही सहज विज्ञान है (सुइ गम्य सिद्धि संपत्तु) इसीके अनुभवने योग्य आत्मा सिद्धिको पालेता है अर्थात् परमात्मा होजाता है अरहन्त होकर फिर सिद्ध होजाता है ॥ १७ ॥

(सुष्म परिनवै त ममल सहज रै) तीसरा शुक्लध्यान सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति है। जब सयोग केवली जिन तेरहवें गुणस्थानके अन्तमें अपने सहज योगसे सूक्ष्म योगके परिमनमें होते हैं वहां भी शुद्ध सहज भावमें धारावाही रमणता है। यह ध्यान अन्तर्मुहूर्तके लिये होता है। इसकेद्वारा चौदहवें अयोग केवलि जिन गुणस्थानमें आरोहण होता है (सूष्म सहाव स उत्तु) इसको सूक्ष्म योग स्वभाव कहा गया है (सुइ पिपिय विपक मौ) यह क्षायिक भाव है, कर्मोंका क्षय करनेवाला है (नंत न्यान पौ) वहां अनन्तज्ञानका पद रहता है (तं मुक्ति रमन सजुत्तु) इस तीसरे शुक्लध्यानमें आत्मा मुक्तिके स्वभावमें ही रमण करता है ॥ १८ ॥

(जिन उत्काति मै) चौथा शुक्लध्यान व्युपरत क्रिया निवर्ति है जहां सर्व आत्माके प्रदेशोंका सकम्प पना बन्द होजाता है। यह चौदहवे गुणस्थानमें इतनी देर तक रहता है जितनी देरतक अ, इ, उ, ऋ, लृ, ये पांच लघु अक्षर बोले जावे। यह वह अवस्था है जब श्री जिनेन्द्रका आत्मा सर्व कर्मोंसे व सर्व शरीरसे छूटकर ऊर्ध्वगमन करता है। इस शुक्लध्यानसे आयु, नाम, गोत्र, वेदनीय चारों अघातीय कर्म क्षय होजाते हैं। (उत्पन्न न्यान रै) तब शरीर रहित ज्ञान मूर्ति सिद्धावस्था लगातार प्रगट रहती है (अर्थति अर्थ सजुत्तु) श्री सिद्धात्मा रत्नत्रयमई भावोंसे युक्त शुद्ध आत्म-पदार्थ अपनी सत्ताको स्थिर रखते हैं (प्रतिगाद परम पय) परमात्माके पदमें स्थिर होजाते हैं (सुइ गम्य सहजौ) जहां सुखसे अनुभवने योग्य आत्माका सहज ही धारावाही अनुभव होता है (जिननाथ सिद्धि सपत्त) इस तरह श्री जिनेन्द्र सिद्धपदको प्राप्त कर लेते हैं ॥ १९ ॥

(विप्रिय मय गलिय) सिद्धावस्थामें सर्व विपरीत भाव व सर्व भय गल जाते हैं (कुमय मय विलय) कुमति या मद सर्व विला जाते हैं (पर पर्जय विलयन्तु) पर परणति नहीं रहती है (सुइ गम्य रमन रुई) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमणताकी गाढ रुचि रूपी सम्यक्त भाव रहता है (नत ममल मय) वे अनन्त गुणोंके धारी शुद्ध रहते हैं (सुइ सहज सिद्धि सपत्तु) यही सहज सिद्धिका लाभ है ॥ २० ॥

(ज ध्यान उत्तु जिन) जिस ध्यानको श्री जिनेन्द्रने मोक्षका कारण कहा है (न्यान समय गन) वह ज्ञानमई

आत्मोंका अनुभव है (तैं समँव संजुत्तु पउत्तु) वह ध्यान स्वरूपाचरण चारित्र सहित ही पाया जाता है (उव उवन उत्तु जिन) उसीको श्री जिनेन्द्रने सदा उदयरूप कहा है (तरन तरन गन) वही ध्यान भवसागरसे तारने-वाला जहाज है (सम समय सिद्धि संपत्तु) इसी ध्यानसे समभाव सहित आत्मा होकर सिद्धिको पालेता है ॥२१॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें प्रथम ही परमात्मा पदकी महिमा गाई गई है जिसमें दिखाया है कि परमानन्दमई, अनन्त चतुष्टयधारी, सर्व रागादि मलरहित, आत्मामें रमणतारूप, परम सामर्थ्यधारी, अरहंत व सिद्ध पद है। जब इस जीवको यह पद प्राप्त होजाता है तब यह जीव सदाके लिये भवभ्रमणसे छूट जाता है। और परम स्वाधीन होकर नित्य अपनी ही शुद्ध परिणतिमें रमण करता है। हरएक भव्य जीवको इस परमात्म पदका प्रेमी बनना चाहिये और इसकी प्राप्तिका उपाय करना चाहिये। फिर यहां इसका साधन आत्मध्यान बताया है। शुद्धात्माके ध्यानसे ही आत्मा शुद्ध होता है। जैन सिद्धान्तानुसार ध्यानके चार भेद हैं—आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान, और शुक्लध्यान। उनमें दो पहले ध्यान अशुभ हैं, पाप बंधकारक हैं, भावोंको मलीन रखनेवाले हैं, वृथा ही इस भवमें व परभवमें बुरा करनेवाले हैं। अतएव हितकांक्षीको उचित है कि इन दोनों ध्यानोंसे बचे तथा धर्मध्यानका अभ्यास करे व शुक्लध्यानकी भावना भावे। इस पंचमकालमें धर्मध्यान चौथे गुणस्थानसे लेकर सातवें गुणस्थान तक होसक्ता है। शुक्लध्यानके योग्य शरीरका संहनन नहीं है। तीन उत्तम संहननवालोंके ही शुक्लध्यान होता है। ये तीनों प्रकारकी अस्थियां पंचमकालके जन्म प्राप्त मानवोंमें नहीं होती हैं। शुक्लध्यान विना कर्मोंका क्षय नहीं होता है। इसीलिये यहां भरतक्षेत्रमें आज कल कोई जीव सीधा मोक्ष नहीं प्राप्त कर सक्ता है, धर्मध्यानसे स्वर्ग जासक्ता है। स्वामीने बड़ी विद्वत्तासे आरति ध्यानको आत्मध्यान सिद्ध किया है व कर्म-संहारकारी आत्मध्यानको ही सच्चा रौद्रध्यान बताया है। कर्मोंको क्षय करे वही रुद्र है या रौद्र भावधारी है। व्यवहारनयसे मोक्षमार्गमें उपकारी धर्ममय शुक्लध्यान है, निश्चयनयसे एक शुद्धात्मानुभवरूप ही है। ध्यान ही कर्मोंका क्षय कर देता है। यह शुद्धात्मानुभवरूप परिणति सिद्धावस्थामें भी बनी रहती है। सिद्ध भगवान सदा ही अपने आत्माके भीतर ही रमण करते रहते हैं। हम सबको चाहिये कि हम श्रद्धापूर्वक आत्मध्यानका अभ्यास करें। श्री तत्वार्थसारमें श्री अमृतचन्द्राचार्य ध्यानका स्वरूप इस भान्ति कहते हैं—

ममलपाहुड ॥३७३॥

आर्तं रौद्रं च धर्मं च शुक्लं चेति चतुर्विधम् । ध्यानमुक्तं परं तत्र तपोऽङ्गमुभयं भवेत् ॥ ३५ ॥
प्रियभ्रंशेऽप्रियप्राप्तौ निदाने वेदनोदये । आर्तं कषायसंयुक्तं ध्यानमुक्तं समासत ॥ ३६ ॥
हिंसायामनृते स्तेये तथा विषयरक्षणे । रौद्रं कषायसंयुक्तं ध्यानमुक्तं समासतः ॥ ३७ ॥
एकाग्रत्वेऽतिचिन्ताया निरोधो ध्यानमिष्यते । अन्तर्मुहूर्ततस्तच्च भवत्युत्तमसंहते ॥ ३८ ॥
आज्ञापाय विपाकाना विवेकाय च संस्थिते । मनसः प्रणिधान यद्धर्मध्यान तदुच्यते ॥ ३९ ॥
प्रमाणीकृत्य सार्वज्ञीमाज्ञामर्थावधारणम् । गहनाना पदार्थानामाज्ञाविचयमुच्यते ॥ ४० ॥
कथं मार्गं प्रपद्येरन्नमी उन्मार्गतो जनाः । अपायमिति या चिन्ता तदपायविचारणम् ॥ ४१ ॥
द्रव्यादिप्रत्ययं कर्म फलानुभवनं प्रति । भवति प्रणिधानं यद्विपाकविचयस्तु स. ॥ ४२ ॥
लोकसंस्थानपर्यायस्वभावस्य विचारणम् । लोकानुयोगमार्गेण संस्थानविचयो भवेत् ॥ ४३ ॥
शुक्लं पृथक्त्वमाद्यं स्यादेकत्वं तु द्वितीयकम् । सूक्ष्मक्रियं तृतीय तु तुर्यं व्युपरतक्रियम् ॥ ४४ ॥
द्रव्याण्यनेकभेदानि योगैर्ध्यायति यत्त्रिभी. । शान्तमोहस्ततो ह्येतत्पृथक्त्वमिति कीर्तितम् ॥ ४५ ॥
श्रुत यतो वितर्कः स्याद्यत पूर्वार्थशिक्षित । पृथक्त्व ध्यायति ध्यानं सवितर्कं ततो हि तत् ॥ ४६ ॥
अर्थव्यञ्जनयोगाना वीचार सङ्क्रमो मतः । वीचारस्य हि सद्भावात् सवीचारमिदं भवेत् ॥ ४७ ॥
द्रव्यमेक तथैकेन योगेनान्यतरेण च । ध्यायति क्षीणमोहो यत्तदेकत्वमिद भवेत् ॥ ४८ ॥
श्रुत यतो वितर्कः स्याद्यत पूर्वार्थशिक्षित । एकत्वं ध्यायति ध्यानं सवितर्कं ततो हि तत् ॥ ४९ ॥
अर्थव्यञ्जनयोगाना वीचार सङ्क्रमो मत । वीचारस्य ह्यसद्भावादवीचारमिदं भवेत् ॥ ५० ॥
अवितर्कमवीचार सूक्ष्मकायावलम्बनम् । सूक्ष्मक्रिय भवेद्ध्यानं सर्वभावगतं हि तत् ॥ ५१ ॥
काययोगेऽतिसूक्ष्मे तद्वर्तमानो हि केवली । शुक्ल ध्यायति संरोद्धं काययोगं तथाविधम् ॥ ५२ ॥
अवितर्कमवीचारं ध्यानं व्युपरतक्रियम् । पर निरुद्धयोगं हि तच्छैलेस्यमपश्चिमम् ॥ ५३ ॥
तत्पुना रुद्धयोगः सन् कुर्वन् कायत्रयासनम् । सर्वज्ञ परमं शुक्ल ध्यायत्यप्रतिपत्ति तत् ॥ ५४ ॥

भावार्थ—आर्त, रौद्र, धर्म, शुक्ल चार प्रकार ध्यान कहा गया है उनमें पिछले दो ध्यान तपके अङ्ग हैं ॥ ३५ ॥ इष्टके वियोगमें, अनिष्टके संयोगमें, वेदनाके उदयमें, निदान भावमें कषाय सहित ध्यान करना

सो संक्षेपसे आर्तध्यान कहा गया है ॥ ३६ ॥ हिंसामें, असत्यमें, चोरीमें, विषयोंके रक्षणमें कषाय सहित ध्यान करना सो रौद्रध्यान संक्षेपसे कहा गया है ॥ ३७ ॥ एक किसी पदार्थको मुख्य करके उसीमें जमकर और चिन्ताका रोक देना ध्यान है। उत्तम संहननवालोंके यह ध्यान लगातार एक अंतर्मुहूर्त तक होसक्ता है। ४८ मिनटसे कमको अन्तर्मुहूर्त कहते हैं ॥ ३८ ॥ मनको आज्ञामें, अपायमें, विपाकमें व संस्थानके विवेकमें जोड़ देना सो धर्मध्यान चार प्रकारका कहा गया है ॥ ३९ ॥ सर्वज्ञकी आज्ञाको प्रमाण करके सूक्ष्म कठिन पदार्थोंका भाव विचारना वह आज्ञाविचय धर्मध्यान कहा जाता है ॥ ४० ॥ ये जगतके प्राणी कुमार्गसे हटकर किस तरह सुमार्गमें लगे ऐसा विचारना सो अपाय विचय धर्म्मध्यान है ॥ ४१ ॥ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका निमित्त पाकर किसतरह कर्मोंका फल भोगा जाता है ऐसा विचारना विपाक-विचय धर्मध्यान है ॥ ४२ ॥ लोकानुयोग शास्त्रके अनुसार लोकका आकार लोकके भीतर छः द्रव्योंका स्वरूप आदि विचारना सो संस्थानविचय धर्मध्यान है ॥ ४३ ॥ पहला शुक्लध्यान पृथक्त्ववितर्क वीचार है, दूसरा एकत्ववितर्क अवीचार है, तीसरा सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति है, चौथा व्युपरतक्रियानिवर्ति है ॥ ४४ ॥ जहां तीनों योगोंसे अनेक द्रव्योंको ध्याया जावे व जिससे मोहकर्मका क्षय होजावे वह पृथक्त्ववितर्क-वीचार ध्यान है ॥ ४५ ॥ पूर्वोंके द्वारा जाने हुए अर्थको शिक्षाके अनुसार जहां श्रुतका आलम्बन हो उसको वितर्क कहते हैं। श्रुत सहित ध्यानको भिन्न २ करके ध्याया जावे सो पृथक्त्व सवितर्क ध्यान है ॥ ४६ ॥ जहां ध्येय पदार्थका, शब्दका व योगका पलटन हो उसको वीचार कहते हैं। वीचारके होनेसे पहले ध्यानको सवीचार कहते हैं ॥ ४७ ॥ जहां एक किसी योगसे एक द्रव्यको ध्याया जावे वह एकत्व वितर्क अवीचार ध्यान क्षीणमोहीके होता है ॥ ४८ ॥ पूर्वोंके अर्थकी शिक्षाके अनुसार श्रुतको वितर्क कहते हैं। जहां एक ही श्रुतको ध्याया जावे वह सवितर्क दूसरा ध्यान है ॥ ४९ ॥ ध्येय, अर्थ, शब्द व योगकी पलटनको वीचार कहते हैं। जहां वीचार न हो वह अवीचार दूसरा शुक्लध्यान है ॥५०॥ जहां न वितर्क हो न वीचार हो, केवल सूक्ष्म काय योगका आलम्बन हो वह तीसरा सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यान है। यह सर्व शुद्ध भावोंमें तन्मयरूप है ॥ ५१ ॥ जब केवलीका काय योग अति सूक्ष्म रह जाता है तब सर्व काय योगको विरोध करनेके लिये तीसरा शुक्लध्यान केवली ध्याते हैं ॥ ५२ ॥ चौथे शुक्लध्यानमें भी वितर्क व वीचार नहीं है। वह योग रहितके चौदहवें गुणस्थानमें मोक्ष जानेके पहले होता है। इसीलिये उसे व्युपरत क्रिया

समयपाहुड

कहते हैं ॥ ५३ ॥ अयोग केवली सर्वज्ञ औदारिक, तैजस, कार्माण तीनों शरीरोंको क्षय करते हुए इस परम शुक्लध्यानको ध्याते हैं। यह ध्यान निर्विकल्प है ॥ ५४ ॥

---

(४५) सूक्ष्म रासा गाथा ८९४ से ९१५ तक।

जिन जिनवर उत्तउ, सुद्ध परम जिनु, पर परम मुक्ति दरसीजै।
पर परम तत्तु परमप्परु दर्सै, पर परम न्यान सिधि रमिजै ॥ १ ॥
भवियन सूषम सुइ कम्म विलीजै, सुहगम्य रमन सिधि लहिजै।
भवियन सूषम सुइ कम्म विलीजै, भय षिपिय मुक्ति संमिलिजै ॥ २ ॥ (आचरी)
सूषम सुइ षिपिय कम्म सुइ विलयो, सुह गम्य रमन रस तं जिनियं।
तं ममलह ममल सरूव संजुत्तु, पर परम मुक्ति सुइ मिलियं ॥ ३ ॥ भवि० ॥
परिनामू नन्तनन्त सुष्यम सुइ, कमल ममल तं सुइ उवनं।
तं अंगदि अंग अर्थ अर्थ हिओ, सुइ परम परम पय सुइ भुवनं ॥ ४ ॥ भवि० ॥
सूषम सुइ मिलिय अर्थति अर्थह, सुइ समय अर्थ ममल जिन उत्तं।
कमलं तं कलिय कमल भय विलयं, सुह गम्य रमन रस तं मिलियं ॥ ५ ॥ भवि० ॥
कमल कद सो अट्ठ ममल पय, कमल अग्र तं जिन वयनं।
चौसटि वरन तं चरन नन्त मौ, सुह गम्य रमन सिधि रमनं ॥ ६ ॥ भवि० ॥
तं कमल गिरा गिर कंद ममल पौ, परिनाम ममल जिन उत्त सुयं।
सूषम सुइ ममल ममल उवनं, सुह गम्य रमन सिधि रमनं ॥ ७ ॥ भवि० ॥

गिरा अग्र सुई सूषम उवनं, चरन ममल जिन उत्त सुयं ।
नन्तानन्त सु सषम ममलं, सुह गम्य मुक्ति तं सुई रमनं ॥ ८ ॥ भवि० ॥
भव हरित भव हतं भय विनासु है, भय षिपनिकु भवु स उत्तं ।
सहज सूषम परिनाम नन्त रै, सुह गम्य रमन सिधि रतं ॥ ९ ॥ भवि० ॥
भय विलय नन्त परिनै सुई, परिनै भवह सुइ ममल सुयं ।
सुह गम्य रमन तं नन्तनंन्त जिनु, सुकिय सुभाइ मुक्ति मिलनं ॥ १० ॥ भवि० ॥
अर्थति अर्थ भव हरिय ममल मौ, ममल वुद्धि नो भय विलय ।
परिनाम षिपक ममल सुइ षिपनिक, सुह गम्य रमन सिधि मिलियं ॥ ११ ॥ भवि० ॥
सुषम परिनवै नो भवह भय विलय, दिस्टि गलिय सुइ गमन रयं ।
झडप गलिय भव सुयं सहज सुई, परिनाम ममल मुक्ति मिलियं ॥ १२ ॥ भवि० ॥
अर्थति अर्थह जं भव विलयं, परिनामू नन्त ममल मिलियं ।
सूषम षिपिय परम जिन नाह हो, सुह गम्य रमन सुह सिधि मिलियं ॥ १३ ॥ भवि० ॥
अंगदि अंग तह न्यान परम पय, परम परम जिन उत्तं ।
नन्तानन्त चतुस्टे पर्म जिनु, सूषम सुइ कम्मु विलय ॥ १४ ॥ भवि० ॥
कमल कंद मति न्यान परम पय, कंठ ममल तं जिन भनियं ।
सूषम ममल न्यान सुई उवनं, सुह गम्य मुक्ति तं सुइ मिलियं ॥ १५ ॥ भवि० ॥
नो उत्पन्न अष्यर सुइ मिलियं, सूषम परिनवै सुयं ममलं ।
भय षिपनिक श्रुतन्यान सुवन सुइ, अष्यर सुइ अंग अमिय रवनं ॥ १६ ॥ भवि० ॥

ममलपाहुड
॥१७७॥

अवहि न्यान गुरु गुपित रुचिय सुइ, गुरु गुहिजह तं भवहरनं ।
सूषम परिनाम अषय अष्यर सुइ, उलटि गिरा ऊर्ध गमन ॥ १७॥ भवि० ॥
मन पर्जय तं जान सहज सुइ, रिजु विपुलह सजुत्त सुयं ।
उस्ट इस्ट सुह अष्यर रवनं, सूषम परिनाम न्यान मिलिय ॥ १८ ॥ भवि० ॥
अवधौ अष्यर अषय रमन सुइ, सूषम सभाउ भव्वु तं रमनं ।
सुह गम्य हतं परम रमन सुइ, सुकिय सुभाव मुक्ति मिलिय ॥ १९ ॥ भवि० ॥
न्यान विन्यानह सुयं सुइ रमनं, सुइ सूषम भाउ कम्मु गलियं ।
सूषम सुइ नन्त नन्त रमनं, सुह गम्य रमन मुक्ति मिलियं ॥ २० ॥ भवि० ॥
न्यान सरूवं सहज सुभावे, सिद्ध सरूव सुई रमिजै ।
सहज सूषम परिनै पर्म ममल पौ, सुह गम्य रमन सिद्धि जै जैं ॥ २१ ॥ भवि० ॥
नन्द आनन्दह नन्द सु रमनं, सूषम सुइ परमानन्दं ।
तारन तरन सुभाउ सहज मिलि, समय जिन पर्म जिनन्दं ॥ २२ ॥ भवि० ॥

अन्वय सहित अर्थ—(जिन जिनवर उत्तउ सुद्ध परम जिनु) श्री जिनेन्द्र वीतराग भगवानने कहा है कि शुद्ध परम जिनेन्द्र (पर परम मुक्ति दरसीजै) उत्तम व श्रेष्ठ मुक्तिको देखते हैं व प्रगट करते हैं (पर परम तत्त परमप्य दसें) वे श्रेष्ठ व उत्तम परम आत्मीक तत्वको जो अविनाशी है अनुभव करनेवाले हैं (पर परम न्यान सिधि रमिनै) वे श्रेष्ठमें श्रेष्ठ ऐसे ज्ञानकी सिद्धि पाकर रमण कर रहे हैं ॥ १ ॥

(भवियन सूषम सुह कम्म विलीजै) हे भव्यजीवो ! वही अतीन्द्रिय सूक्ष्म स्वरूप है उसीसे कर्मोंका क्षय होता है (सुह गम्य रमन सिधि लहिजै) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमण करनेसे तुम सिद्धपदका लाभ करो (भवियन सूषम सुह कम्म विलीजै) हे भव्यजीवो ! वही सूक्ष्म स्वरूप है उसीसे कर्मोंका क्षय होता है (भव षिपिय मुक्ति सं मिलिजै) तुम सर्व भवोंका क्षय करके उस मुक्तिपदको भलेप्रकार प्राप्त करो ॥ २ ॥

(सूषम सुइ विपिय कम्म सुइ विलयो) वही अतीन्द्रिय सूक्ष्म क्षायिक भाव है उसीसे कर्म स्वयं क्षय होते हैं (सुइ गम्य रमन रस त जिनियं) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमण करनेसे जो आनन्द स्वाद आता है उसीसे कर्मोंका विजय होता है (तं ममलह ममल सरूव सजुत्त) वहां वीतराग निर्मल स्वरूपका संयोग होता है (पर परम मुक्ति सुइ मिलिय) तब ही उत्तम व श्रेष्ठ मुक्तिका लाभ होता है ॥ ३ ॥

(परिनामू नन्त नन्त सूष्यम सुइ) वहां अनन्तानन्त सूक्ष्म परिणामोंका परिणमन है। शुद्धोपयोगमें भी समय समय शुद्ध जलमें तरंगके समान परिणमन अगुरुलघु गुणके द्वारा होता है (कमल ममल तं सुइ उवन) वहीं शुद्ध कमल समान शुद्ध आत्माका प्रकाश है (त अगदि अग अर्थ अर्थहिओ) वहीं द्वादशांगवाणीके सारका ग्रहण है, वहीं सर्व पदार्थोंका सार है (सुइ परम परम पय सुई भुवन) वही श्रेष्ठ परमात्मपदका होजाना है ॥४॥

(सूषम सुइ मिलिय अर्थति अर्थह) उस सूक्ष्म अतीन्द्रिय शुद्ध भावमें रत्नत्रयमई आत्म-पदार्थका मेल है (सुई समय अर्थ ममल जिन उत्तं) वही शुद्ध व आत्म-पदार्थ है, ऐसा श्री जिनेन्द्रने कहा है (कमल तं कलिय कमल भय विलय) कमल समान आत्मा उसी रत्नत्रयधर्मसे पूर्ण है, उस कमलको किसी प्रकारका भय नहीं है। क्योंकि घातीय कर्मोंका क्षय होगया है (सुइ गम्य रमन रस तं मिलिय) सुखसे अनुभवने योग्य आत्माके रमणसे जो आनन्दामृत रस होता है वह उनको प्राप्त होगया है ॥ ५ ॥

(कमल कंद सो अट्ठ ममल पय) इस आत्मारूपी कमलके भीतर आठ शुद्ध पद हैं अर्थात् आठ कर्मोंके क्षयसे जो आठ गुण प्रगट होते हैं वे इस आत्मामें विराजमान हैं। जैसे सम्यक्त, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनतत्व, अगुरुलघुत्व, अव्याबाधत्व। (कमल अग्र त जिन वयन) इस अरहंत कमलके मुखारविंदसे श्री जिनवाणीका प्रकाश होता है (चौसठ वरन त चरन नंत मौ) उस जिनवाणीकी रचना चौसठ वर्णोंसे बने हुए पदोंके द्वारा कीगई है। उस जिनवाणीके अनुसार आचरण करनेसे अनन्त गुणोंकी प्रगटता होजाती है (सुइ गम्य रमन सिधि रमन) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमण करनेसे यह आत्मा सिद्ध स्वभावमें रमण करता है ॥ ६ ॥

(तं कमल गिरा गिर कद ममल पौ) श्री अरहंत कमलसे प्रगट वाणीका सार यही है जो आत्माके शुद्ध पदमें रमण किया जावे (परिनाम ममल जिन उत्त सुयं) तथा अपने भाव शुद्ध होजावें ऐसा ही श्री जिनेन्द्रने स्वयं कहा है (सूषम सुइ गमल ममल उवन) वह शुद्ध भाव एक अति सूक्ष्म अतीन्द्रिय परम शुद्ध भावका

प्रकाश है (सुह गम्य रमन सिषि रमनं) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमण करनेसे सिद्ध भावमें रमण होता है ॥ ७॥

(गिरा अग्र सुई सूपम उवन) श्री जिनवाणीका मुख्य सार यह है कि जो अपने भीतर सूक्ष्म अतींद्रिय भावका प्रकाश हो (चरन ममल जिन उत्त सुय) तथा शुद्ध स्वभावमें आचरण हो ऐसा जिनेन्द्रने स्वयं कहा है (नन्तामन्त सु सूषम ममल) वह आत्मा अनन्तानन्त गुणोंका धारी शुद्ध अतीन्द्रिय सूक्ष्म पदार्थ है (सुह गम्य मुक्ति त सुइ रमन) सुखसे अनुभवने योग्य आत्माकी मुक्ति यही है जो आपसे आपमें रमण किया जावे॥८॥

(भव हरित मवह तं भय विनासु है) शुद्ध स्वभावके लाभ होनेसे संसार छूट जाता है। संसारके कारण कर्मोंका क्षय होजाता है। सर्व सांसारिक भय नाश होजाता है (भव षिपनिकु भ्वु स उत्तं) उसी आत्मरमीको भय रहित भव्य कहा गया है (सहज सूपम परिणाम नत रे) उसमें स्वाभाविक सूक्ष्म अतीन्द्रिय अनंत शुद्ध परिणमन सदा हुआ करते हैं (सुइ गम्य रमन सिद्धि रत) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमण करना सो ही सिद्ध भावमें लीन होना है ॥ ९ ॥

(भय विलय नन्त परिनै सुई) जब कर्मोंके क्षयसे सर्व भय दूर होजाते हैं तब यह आत्मा स्वयं अपने अनन्त गुणोंमें परिणमन करता है (परिनै भवह सुइ कमल सुयं) ऐसा भव्यजीव स्वयं स्वभावमें परिणमन करनेवाला ही स्वयं कमल समान अरहंत है (सु गम्य रमन त नन्त नन्त जिनु) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमण करना सो अनन्तानन्त गुणोंका धारी जिनका स्वभाव है (मुक्तिय सुभाउ मुक्ति मिलन) अपने ही स्वभावमें रमण करनेसे मुक्तिका लाभ होता है ॥ १० ॥

(अर्थति अर्थ भवहरिय ममल मौ) रत्नत्रयमई शुद्ध पदार्थके प्रकाशसे संसार छूट जाता है (ममल बुद्धि नो भय विलय) जब ज्ञान वीतराग होजाता है तब भय नोकषायका नाश होजाता है (परिनाम षिपक ममल सुइ पिपनिक) क्षायिक भावोंको ही शुद्ध भाव कहते हैं, उन्हींसे ही कर्मोंका क्षय होता है (सुह गम्य रमन सिधि मिलियं) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमन करनेसे ही सिद्ध भावका लाभ होता है ॥ ११ ॥

(सुपम परिनवै नो भवह भय विलय) सूक्ष्म अतीन्द्रिय स्वभावमें परिणमन करनेसे भव्य जीवोंका भय नोकषाय विला जाता है (विस्टि गलिय सुह गम्य रयं) मिथ्यादृष्टिका क्षय होजाता है तब स्वयं यह अनुभवने

इन पांच ज्ञानोंका प्रकाश भी कह सक्ते हैं। अभेदनयसे इन पांचों ज्ञानोंको केवलज्ञान ही कहेंगे। स्वात्म-रमण परमानन्द स्वरूप है। अनन्त अविनाशी आनन्दकी प्रगटताका कारण है। हे भव्यजीवो! यदि सिद्ध गतिको प्राप्त करना हो तो अपने आत्मामें ही रमण करो। यही सच्चा सीधा मोक्षमार्ग है। यदि आत्मरमण न होगा तो और अनेक प्रकार जप तप व्रत करते हुए भी कर्मोंका क्षय न होगा, केवल-ज्ञानका लाभ न होगा। जब आत्मामें रमणता होती है तब अवश्य निःशङ्क व निर्भय भाव रहता है। यही भाव भय कषायका क्षय करनेवाला है। केवलज्ञानीकी दिव्यध्वनिसे जो कुछ तत्वज्ञान प्रगट होता है उसका सार यही है कि अपने आत्माको यथार्थ जानकर उसीका ही आचरण करो। उसीका ही ध्यान करो। स्वात्म-रमणतासे ऐसी वीतरागता झलकती है कि संसारके कारणीभूत कर्म सब क्षय होजाते हैं। और अवश्य सिद्धपदका लाभ होता है। योगसारमें श्री योगेन्द्रदेव कहते हैं—

सुद्धु सचेयण बुद्ध जिणु केवलणाणसहाउ। सो अप्पा अणुदिण मुणहु जइ चाहउ सिवलाहु ॥ २६ ॥

जाम ण भावहु जीव तुहुं णिम्मलअप्पसहाउ। ताम ण लब्भइ सिवगमणु जहिं भावहु तहिं जाउ ॥ २७ ॥

जो णिम्मल अप्पा मुणइ वयसंजमुसंजुत्तु। तउ लहु पावइ सिद्ध सुहु इउ जिणणाहहं वुत्तु ॥ ३० ॥

वयतवसंजमुसीलु जिय ए सव्वे अकइच्छु। जाम ण जाणइ इक्क परु सुद्धउभावपवित्तु ॥ ३१ ॥

भावार्थ—यह आत्मा निश्चयसे शुद्ध है, चेतन स्वरूप है, ज्ञानी है, जिन है, केवलज्ञान स्वभावधारी है। हे भव्य! तू मोक्षका लाभ चाहता है तो इसी आत्माका रातदिन ध्यान कर ॥ २६ ॥ हे आत्मन्! जबतक तू निर्मल आत्माके स्वभावकी भावना नहीं करेगा तबतक तू मोक्ष नहीं पासक्ता है, तू चाहे जहां जा ॥ २७ ॥ जो कोई व्रत व संजम सहित होकर शुद्धात्माका अनुभव करता है वह शीघ्र ही सिद्धके सुखको पाता है, ऐसा श्री जिनेन्द्रोंने कहा है ॥ ३० ॥ जबतक आत्माके शुद्ध व धर्म स्वभावका अनुभव हो तबतक व्रत, तप, संयम, शील आदि सब मोक्षकी सिद्धिमें निरर्थक हैं ॥ ३१ ॥

समयपाहुड
॥३८४॥

प्रकाश है (सुह गम्य रमन सिधि रमन) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमण करनेसे सिद्ध भावमें रमण होता है ॥ ७ ॥

(गिरा अग्र सुई सुषम उवन) श्री जिनवाणीका मुख्य सार यह है कि जो अपने भीतर सूक्ष्म अतींद्रिय भावका प्रकाश हो (चरन ममल जिन उत्त सुय) तथा शुद्ध स्वभावमें आचरण हो ऐसा जिनेन्द्रने स्वयं कहा है (नन्तानन्त सु सूषम ममल) वह आत्मा अनन्तानन्त गुणोंका धारी शुद्ध अतीन्द्रिय सूक्ष्म पदार्थ है (सुह गम्य मुक्ति त सुइ रमनं) सुखसे अनुभवने योग्य आत्माकी मुक्ति यही है जो आपसे आपमें रमण किया जावे ॥८॥

(भव हरित भवह तं भय विनासु है) शुद्ध स्वभावके लाभ होनेसे संसार छूट जाता है। संसारके कारण कर्मोंका क्षय होजाता है। सर्व सांसारिक भय नाश होजाता है (भव विपनिकु भवु स उत्त) उसी आत्म-रमीको भय रहित भव्य कहा गया है (सहज सूषम परिणाम नंत रे) उसमें स्वाभाविक सूक्ष्म अतीन्द्रिय अनंत शुद्ध परिणमन सदा हुआ करते हैं (सुइ गम्य रमन सिद्धि रत) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमण करना सो ही सिद्ध भावमें लीन होना है ॥ ९ ॥

(भय विलय नन्त परिनै सुई) जब कर्मोंके क्षयसे सर्व भय दूर होजाते हैं तब यह आत्मा स्वयं अपने अनन्त गुणोंमें परिणमन करता है (परिनै भवह सुइ कमल सुयं) ऐसा भव्यजीव स्वयं स्वभावमें परिणमन करनेवाला ही स्वयं कमल समान अरहंत है (सु गम्य रमन त नन्त नन्त जिनु) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमण करना सो अनन्तानन्त गुणोंका धारी जिनका स्वभाव है (मुक्तिय सुभाउ मुक्ति मिलन) अपने ही स्वभावमें रमण करनेसे मुक्तिका लाभ होता है ॥ १० ॥

(अर्थति अर्थ भवहरिय ममल मौ) रत्नत्रयमई शुद्ध पदार्थके प्रकाशसे संसार छूट जाता है (ममल बुद्धि नो भय विलय) जब ज्ञान वीतराग होजाता है तब भय नोकषायका नाश होजाता है (परिनाम विपक ममल सुइ विपनिक) क्षायिक भावोंको ही शुद्ध भाव कहते हैं, उन्हींसे ही कर्मोंका क्षय होता है (सुइगम्य रमन सिधि मिलियं) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमन करनेसे ही सिद्ध भावका लाभ होता है ॥ ११ ॥

(सुषम परिनवै नो भवह भय विलय) सूक्ष्म अतीन्द्रिय स्वभावमें परिणमन करनेसे भव्य जीवोंका भय नोकषाय विला जाता है (दिस्टि गलिय सुह गम्य रय) मिथ्यादृष्टिका क्षय होजाता है तब स्वयं यह अनुभवने

योग्य आत्मामें रत होजाता है (झडप मलिय मय सुय सहज सुई) अपने सहज स्वभावमें रमण करनेसे संसार शीघ्र ही नाश होजाता है (परिनाम ममल मुक्ति मिलियं) भावोंका शुद्ध होना ही मुक्तिका लाभ होना है ॥१२॥

(अर्थति अर्थह ज भव विलयं) जब आत्मा पदार्थ रत्नत्रय धर्मकी पूर्णताको प्राप्त कर लेता है तब ही संसारका क्षय होजाता है (परिनामू नन्त ममल मिलियं) तब अनन्त शक्तिधारी शुद्ध परिणामोंका लाभ होता है (सूषम षिपिय परम जिननाह हो) सूक्ष्म कर्मोंका क्षय होकर यह परम जिनेन्द्र अरहन्त केवली होजाता है (सुह गम्य रमन सुइ सिधि मिलिय) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमण करना सो ही सिद्धभावको पालेना है ॥१३॥

(अगदि अंग तह न्यान परम मय) द्वादशांगवाणीके ग्रहण करनेका यही फल है जो ज्ञान श्रेष्ठ होजावे। अर्थात् श्रुतज्ञानके ही द्वारा केवलज्ञान होता है (परम परम जिन उत्तं) उसीको श्रेष्ठ ज्ञान परमात्मा जिनेन्द्रने कहा है (नन्तानन्त चतुष्टै पर्म जिन) तब अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य ये चार अनन्त चतुष्टयका धारी परमात्मा जिन होजाता है (सूषम सुइ कम्मु विलय) तब ही सूक्ष्म घातीय कर्मोंका क्षय होजाता है ॥ १४ ॥

(कमल कंद मति न्यान परम मय) श्री अरहन्त कमलमें शुद्ध मतिज्ञान मिलता है। शुद्ध मतिज्ञान भी केवलज्ञान है। मतिज्ञानावरण कर्मका क्षय केवलीके होजाता है तब शुद्ध मतिज्ञान प्रगट होजाता है। यह केवलज्ञानमें गर्भित है (कठ कमल तं जिन भनियं) इसीके द्वारा शुद्ध वाणीका प्रकाश होता है ऐसा जिनेन्द्रने कहा है। अर्थात् केवलज्ञानीके ही सत्य दिव्यवाणी सम्भव है (सूषम ममल न्यान सुइ उवनं) वह शुद्ध ज्ञान इंद्रियोंकी सहायतासे रहित स्वयं प्रगट होता है (सुह मम्य मुक्ति तं सुइ मिलिय) सुखसे अनुभवनेयोग्य आत्माको तब स्वयं मुक्तिका लाभ होजाता है। केवलज्ञानी ही मुक्ति पाते हैं ॥ १५ ॥

(नो उत्पन्न भष्यर सुइ मिलियं) केवलीके नोकर्म अर्थात् भाषा वर्गणाके स्वयं ग्रहणसे वाणीका प्रकाश होता है (सूषम परिनवै सुय ममल) यह वाणी परम शुद्ध स्वयं अति सूक्ष्मरूप होकर परिणमती है। अर्थात् दिव्यवाणीका प्रकाश मेघगर्जनावत् होता है। सब कोई अपनी२ भाषामें उसको सुनते हैं, यह इस दिव्य-वाणीमें अद्भुत शक्ति है, जो वह अनेक भाषारूप परिणमन कर जाती है (भय षिपनिक श्रुत न्यान सुवन सुई) यही भय रहित परम पूजनीय स्वयं श्रुतज्ञान है। अर्थात् केवलीकी दिव्यध्वनिसे जो पदार्थ प्रगट होते हैं उनहीको संग्रह करके द्वादशांगवाणीका निर्माण गणधर करते हैं। यद्यपि केवलीके केवलज्ञान है, परोक्ष

श्रुतज्ञान नहीं है तथापि उनकी दिव्यवाणी श्रुतज्ञानका कारण है। इसलिये केवलीके भी इस अपेक्षासे श्रुतज्ञान कहा है अथवा केवलीके श्रुतज्ञानावरण कर्मका क्षय होता है। इसलिये क्षायिक श्रुतज्ञान पैदा होता है जो केवलज्ञानमें गर्भित है (अष्यर सुइ अग अमिय रयन) अक्षरोंसे द्वादशांगवाणी बनती है, उसका मूल केवलीका दिव्य वचन है जो आनन्दामृत पिलानेवाला है ॥ १६ ॥

(अवहि न्यान गुरु गुपित रुचिय सुई) केवलीके अवधिज्ञान भी प्रगट होता है, वहां गम्भीर गुप्त आत्मपदार्थमें स्वयं रुचि है (गुरु गुहिरह त भव हरनं) वह शुद्ध आत्मज्ञान महान आत्मारूपी गुफासे प्रगट होता है और वही भवका हरनेवाला है (सूषम परिनाम अषय सुइ अष्यर) अवधिज्ञानी केवली सम्यग्दृष्टीके भीतर अविनाशी अतीन्द्रिय सूक्ष्म आत्माका शुद्ध भाव परिणमन करता है जो स्वयं अविनाशी है (उर्ध्वटि गिग ऊर्द्ध गमन) जब केवलीके वाणीका होना बन्द होजाता है, योगोंका हलन चलन नहीं रहता है, तब शुद्धात्मा स्वभावसे ऊपर गमन करके लोकाग्र ठहर जाता है। भावार्थ—केवलीके ही अवधिज्ञानावरण कर्मका क्षय होता है तब क्षायिक अवधिज्ञान प्रगट होजाता है, जो केवलज्ञानमें गर्भित है। यहां शुद्धात्मामें रमण है। ऐसा ज्ञानी ही मुक्ति लाभ करता है ॥ १७ ॥

(मनपर्जय त जान सहज सुइ) उस केवलीके ज्ञानको स्वाभाविक मनःपर्यय ज्ञान भी जानो। क्योंकि केवलीके ही मनःपर्यय ज्ञानावरणका क्षय होता है। इससे क्षायिक मनःपर्यय ज्ञान प्रगट है जो केवलज्ञानमें गर्भित है (रिजु विपुलह सजुत सुयं) वह ज्ञान स्वयं ऋजुमति व विपुलमति सहित है अर्थात् इन दो प्रकारके मनःपर्यय ज्ञानका जो विषय है वह सब केवलज्ञानके विषयमें गर्भित है (उस्ट इस्ट सुइ अष्यर रयन) वही शुद्ध इष्ट अविनाशी ज्ञानका प्रकाश है (सूषम परिनाम न्यान मिलियं) अतीन्द्रिय सूक्ष्म भावोंमें यह ज्ञान मिला हुआ है अर्थात् केवलज्ञानमें यह ज्ञान गर्भित है ॥ १८ ॥

(अवधौ अष्यर अषय रमन सुइ) वह शुद्ध ज्ञान बाधा रहित है अविनाशी है तथा स्वयं अविनाशी आत्मामें रमण स्वरूप है (सूषम सभाउ भव्व तं रमन) भव्यजीव उसी सूक्ष्म अतीन्द्रिय स्वभावमें रमण करते हैं (सुइ गम्यह त परम रमन सुइ) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें उत्तम प्रकारसे वही रमण स्वरूप है (सुकिय सुभाउ मुक्ति मिलिय) अपने ही स्वभावका प्रकाश सो ही मुक्तिका लाभ है ॥ १९ ॥

(न्यान विन्यानह सुय सुइ रमन) जहां स्वयं अपने शुद्ध ज्ञान भावमें रमणता होती है (सुइ सूषम भाव

कम्मु गलिय) उसी सूक्ष्म अतींद्रिय भावसे कर्मोंका क्षय होता है (सूषम सुइ नन्त नन्त रमनं) सूक्ष्म भावको पाना यही है, जो अनन्त गुणोंके धारी आत्मामें रमण किया जावे (सुइ गम्य रमन मुक्ति मिलिय) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमण करना सो ही मुक्तिका लाभ है ॥ २० ॥

(न्यान सरूवे सहज सुभावे) अपने ज्ञान स्वरूपमें अपने सहज स्वभावमें रमना (सिद्ध सरूव सुई रमिजै) वही सिद्ध स्वरूपमें रमना है। हे भव्य ! वहीं तू रमण कर (सहज सुषम परिनै पर्म ममल पौ) जिससे यह आत्मा सहज ही सूक्ष्म अतीन्द्रिय क्षायिक भावमें परिणमन करके परम शुद्ध परमात्मपद प्राप्त करले (सुइ गम्य रमन सिद्धि जै जै) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमण करना सो ही सिद्धि पाना है उसीको जय जय कहना चाहिये ॥ २१ ॥

(नद आनन्दइ नन्द सु रमन) आत्मानन्दमें मगन होना ही भलेप्रकार आनन्दमें रमण करना है (सूषम सुइ परमानन्द) वहीं सूक्ष्म अतीन्द्रिय परमानन्द झलकता है (तारन तरन सुभाउ सहज मिलि) इसीसे तारणतरण अरहन्तका स्वभाव सहजमें प्रगट होजाता है (समयजिन परम जिनद) तब यह आत्मा वीतराग परम जिनेन्द्र होजाता है ॥ २२ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें सूक्ष्म अतीन्द्रिय स्वानुभव या स्वात्म-रमणका माहात्म्य गाया गया है। यह स्वानुभव पूर्णपने अरहन्त तथा सिद्ध परमात्मामें होता है। स्वानुभव स्वरूप, अनन्त चतुष्टय स्वरूप, परमात्माका स्वरूप पहचानकर जो अपने आत्माको उस रूप श्रद्धानमें लाकर व वैसा ही ज्ञान प्राप्त करके उसी शुद्धात्माके भीतर रमण करते हैं, वे ही निश्चय रत्नत्रयमई आत्मा पदार्थको पालेते हैं। इस निर्विकल्प समाधिके प्रगट होते ही मन व इंद्रियोंके सर्व विकल्प बन्द होजाते हैं। कोई प्रकारके विचार नहीं रहते हैं। सूक्ष्म अतीन्द्रिय अनुभवगोचर एक तत्व प्रगट होता है। यही वास्तवमें मोक्षमार्ग है, यही मोक्षका लाभ कराता है। स्वानुभव करते २ कर्मोंकी निर्जरा होती जाती है और यह चार घातीय कर्मोंका क्षय करके केवलज्ञानी होजाता है। फिर उसी स्वात्मरमणरूप भावसे शेष अघातीय कर्मोंका क्षय करके सिद्ध शुद्ध परमात्मा मुक्त होजाता है।

वास्तवमें आत्मा सहज ही सुखसे अनुभवने योग्य है। उसीमें रमण होना मुक्तिमार्गपर आरूढ़ होना है। केवली भगवानके ही पांचों ज्ञानावरणीय कर्मोंका एक साथ क्षय होता है। इसलिये भेदनयसे

इन पांच ज्ञानोंका प्रकाश भी कह सक्ते हैं। अभेदनयसे इन पांचों ज्ञानोंको केवलज्ञान ही कहेंगे। स्वात्म-रमण परमानन्द स्वरूप है। अनन्त अविनाशी आनन्दकी प्रगटताका कारण है। हे भव्यजीवो! यदि सिद्ध गतिको प्राप्त करना हो तो अपने आत्मामें ही रमण करो। यही सच्चा सीधा मोक्षमार्ग है। यदि आत्मरमण न होगा तो और अनेक प्रकार जप तप व्रत करते हुए भी कर्मोंका क्षय न होगा, केवल-ज्ञानका लाभ न होगा। जब आत्मामें रमणता होती है तब अवश्य निःशङ्क व निर्भय भाव रहता है। यही भाव भय कषायका क्षय करनेवाला है। केवलज्ञानीकी दिव्यध्वनिसे जो कुछ तत्वज्ञान प्रगट होता है उसका सार यही है कि अपने आत्माको यथार्थ जानकर उसीका ही आचरण करो। उसीका ही ध्यान करो। स्वात्म-रमणतासे ऐसी वीतरागता झलकती है कि संसारके कारणीभूत कर्म सब क्षय होजाते हैं। और अवश्य सिद्धपदका लाभ होता है। योगसारमें श्री योगेन्द्रदेव कहते हैं—

सुद्धु सचेयण बुद्ध जिणु केवलणाणसहाउ। सो अप्पा अणुदिण मुणहु जइ चाहउ सिवलाहु ॥ २६ ॥

जाम ण भावहु जीव तुहुं णिम्मलअप्पसहाउ। ताम ण लब्भइ सिवगमणु जहिं भावहु तहिं जाउ ॥ २७ ॥

जो णिम्मल अप्पा मुणइ वयसंजमुसंजुत्तु। तउ लहु पावइ सिद्ध सुहु इउ जिणणाहहं वुत्तु ॥ ३० ॥

वयतवसंजमुसीलु जिय ए सव्वे अकइच्छु। जाम ण जाणइ इक्क परु सुद्धउभावपवित्तु ॥ ३१ ॥

भावार्थ—यह आत्मा निश्चयसे शुद्ध है, चेतन स्वरूप है, ज्ञानी है, जिन है, केवलज्ञान स्वभावधारी है। हे भव्य! तू मोक्षका लाभ चाहता है तो इसी आत्माका रातदिन ध्यान कर ॥ २६ ॥ हे आत्मन्! जबतक तू निर्मल आत्माके स्वभावकी भावना नहीं करेगा तबतक तू मोक्ष नहीं पासक्ता है, तू चाहे जहां जा ॥ २७ ॥ जो कोई व्रत व संजम सहित होकर शुद्धात्माका अनुभव करता है वह शीघ्र ही सिद्धके सुखको पाता है, ऐसा श्री जिनेन्द्रोंने कहा है ॥ ३० ॥ जबतक आत्माके शुद्ध व धर्म स्वभावका अनुभव हो तबतक व्रत, तप, संयम, शील आदि सब मोक्षकी सिद्धिमें निरर्थक हैं ॥ ३१ ॥

(४६) केवलदर्शन गाथा ९१६ से ९३४ तक।

चष्यं च तं सहावं, उववन उववन नन्त स सहावं।
अचष्यं नृत आयरन, आयरनं न्यान नन्त नन्ताइ ॥ १ ॥
अवहि उवन उवएसं, गुप्ति आयरन अवहि निहि जुत्त।
तं उवन उवन निहि सहियं, उवनं पनपर्जय केवलं उत्तं ॥ २ ॥
केवलदर्सन उत्तं, केवल सुइ उवन ममल संजुत्तं।
कलन कमल सुइ ममलं, कमल आकर्न कमल सिद्धं च ॥ ३ ॥
केवल कलन सहावं, कलन कमलस्य हेय हुव कन।
तत्काल रमन सुइ दर्से, आकर्न कमल निव्वुए जंति ॥ ४ ॥
कलनं केवल उवनं, उवनं आकर्न कमल उत्तं च।
कमल ममल सुइ रमनं, रमनं तं अर्क विंद सिद्धानं ॥ ५ ॥
सिय धुव सिद्ध सहावं, सिव चरनं नन्त अर्क विंदानं।
नन्त न्यान आयरनं, धुव कर्न उवन कमल सिद्धानं ॥ ६ ॥
केवल चरनं उवन, कलन सहावेन कमल सुइ रमनं।
कमल चरन आकर्नं, धुव सिय धुव सिद्ध विंदानं ॥ ७ ॥
सिय सुह उवन सहावं, उवन उववन्न ममल मल विलयं।
कलन कमल सुइ चरनं, आकर्नं कमल केवलं न्यानं ॥ ८ ॥
अष्यर सुरं विंजनयं, पद अर्थं अर्थं ममल सुइ उवनं।
अष्यर अषय सहावं, सुर रमनं कलन कमल सिद्धानं ॥ ९ ॥

विंजन विनय स उत्तं, विनय विन्यान ममल उववन्नं ।
ममल चरन सुइ कलनं, कर्नं आकर्न कमल सिद्धानं ॥ १० ॥
केवलं दर्सन उत्तं, अष्यर सुर विंजन अष्यरं जुत्तं ।
अर्कं अर्क सुइ उवन, अर्क आकर्न कमल सिद्धान ॥ ११ ॥
सिय सहाउ स उत्तं, सिय नन्तानन्त अर्क ममलं च ।
ममल न्यान सुइ उवनं, साहिय सुइ कर्म कमल धुव सिद्धं ॥ १२ ॥
उव उवन उवन उव उवनं, उवन सुइ सेनि उवन संजुत्तं ।
उव उवन हियार सु ममलं, उवनं सह समय सिद्धि संपत्तं ॥ १३ ॥
अन्मोय सेनि सहयारं, साहिय सह समय कलन सिय रमनं ।
कलन चरन चर चरनं, दिसि दिस्टं च सब्द पिउ कलनं ॥ १४ ॥
सहयार कमल अन्मोयं, दिसि दिस्टं च सब्द सुइ सुवनं ।
विन्यान विस्स सुइ उवनं, कलनं अन्मोय सिद्धि सम्पत्तं ॥ १५ ॥
तस्य उवन उव उवनं, उवनं सुइ सुवन समय संजुत्तं ।
जिन वयनं जिन रमनं, जिन उत्तं कलन सिद्धि सम्पत्तं ॥ १६ ॥
उव उवन उवन उव उवनं, उवन हिय सहजे य ।
उव उवन उवन उव उवन उवन उव उवन पयं ॥
सुइ अर्क सु अर्क सु अर्क, अर्क सुइ अर्क मयं ।
अन्मोय कलन सुइ, सनि कन सुइ सिद्धि जयं ॥ १७ ॥

सुइ मिलन सु मिलन सु मिलन, मिलन सुइ मिलन हियं ।
सुइ रमन सु रमन रमन हिय सहय गयं ॥
सुइ कलन सु कलन सु कलन कर्न सुइ कलनं जयं ।
अन्मोय तरन सुइ कमल कर्न सुइ सिद्धि जयं ॥ १८ ॥
केवल ममल सहावं, ममलं सुइ कर्न सुई उवनं ।
कलन कमल सिय चरनं, अर्क सुइ कमल केवलं न्यानं ॥ १९ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(चष्य च तं सहाव) चक्षु इंद्रियके स्वभावसे जिनवाणीको देखकर व मनन कर (उववन उववन नन्त स सहावं) क्रम क्रमसे अपने आत्माका अनन्त स्वभाव प्रगट होजाता है (अचष्य नृत आयरन) अचक्षु अर्थात् अन्य चार इंद्रिय व मन द्वारा पदार्थोंका यथार्थ स्वरूप जानकर जो सत्य मार्गका आचरण किया जावे (आयरन न्यान नंत नंताइ) तो उस आचरणसे अनन्तानन्त ज्ञानका प्रकाश होजाता है ॥ १ ॥

(अवहि उवन उवएस) जब अवधिदर्शन पूर्वक अवधिज्ञानका प्रकाश होता है तब ऐसा उपदेश है (गुत्ति आयरन अवहि निहि जुत्त) कि अवधिज्ञानकी विधि सहित होकर भी अपने गुप्त आत्मज्ञानका आचरण किया जावे। अर्थात् शुद्धात्माका अनुभव किया जावे (त उवन उवन निहि सहियं) तब इससे क्रम क्रमसे अवधिज्ञानकी निधि बढ़ जाती है। परमावधि व सर्वावधिज्ञानका प्रकाश होजाता है (उवन मनपर्ज केवल उत्तं) तथा मनःपर्ययका उदय होता है। अन्तमें केवलज्ञानका प्रकाश होजाता है ऐसा कहा गया है ॥ २ ॥

(केवल दर्सन उत्त) केवलज्ञानके साथ केवलदर्शन भी कहा गया है (केवल सुइ उवन ममल सजुत्त) जब घातीय कर्ममल दूर होकर आत्मामें शुद्धता होती है तब ही स्वयं केवलज्ञानका प्रकाश होता है (कलन कमल सुइ ममल) केवलज्ञानी अरहंत स्वयं शुद्ध वीतराग होते हुए अपने ही कमल समान आत्माके भीतर चरण करते हैं (कमल आर्क्न कमल सिद्ध च) जैसा कमलका स्वभाव सुना है वैसा कमलसम परमात्मपद होजाता है ॥ ३ ॥

(केवल कलन सहाव) आत्माका स्वभाव केवलज्ञानमें रमण करनेका है (कलन कमलस्य हेय हुव कर्न)

जब कमल समान परमात्मामें रमणता होता है तब सर्व इंद्रिय व मनकी सहायता छूट जाती है (तत्काल रमन सुइ दर्सी) जिससमय आत्माका दर्शन है उसी समय आत्मामें रमण है (आकर्न कमल निव्वुए जंति) जिन-वाणीमें सुना है ऐसा प्रफुल्लित कमल समान आत्मा निर्वाणको प्राप्त कर लेता है ॥ ४ ॥

(कलन केवल उवनं) केवलज्ञानमें रमण करनेवाला पद प्रगट होगया है (उवनं आकर्न कमल उत्तं च) जैसा सुना है व कहा गया है वैसा ही यह कमल समान प्रफुल्लित आत्मा प्रगट हुआ है (कमल ममल सुइ रमनं) शुद्ध कमलका होना ही स्वात्म-रमण है (रमन त अर्क विंद सिद्धानं) स्वरूपमें रमण करना यही सूर्यका प्रकाश है, यही स्वानुभव है, यही सिद्ध स्वभाव है ॥ ५ ॥

(सिय ध्रुव सिद्ध सहावं) शुद्ध, ध्रुव, सिद्ध स्वभावका वहां प्रकाश है (सिय चरनं नन्त अर्क विंदानं) वहीं शुद्ध चारित्र है, वहीं अनन्त ज्योतिस्वरूप सूर्य है, वहीं स्वानुभव है (नन्त न्यान आवरनं) वहीं अनन्तज्ञानमें आचरण है (ध्रुव कर्म उवन कमल सिद्धान) वही ध्रुव परिणामधारी कमलका या सिद्धपदका प्रकाश है ॥६॥

(केवलं चरनं उवन) केवलज्ञानमें आचरण करनेवाला पद प्रगट होगया है (कलन सहावेन कमल सुइ रमन) उसका स्वभाव ही स्वात्मरमण है। इसीसे वह स्वात्म कमलमें रमण कर रहा है (कमल चरन आकर्न) जैसा सुना है वैसा वहां कमल समान आत्मामें आचरण है, स्वरूपाचरण है (ध्रुव सिय ध्रुव सिद्ध विंदानं) वहीं ध्रुव शुद्धता है, वही ध्रुव सिद्धपद है, वही स्वानुभव है ॥ ७ ॥

(सिय सुइ उवन सहावं) वह शुद्ध पद प्रकाश स्वभाव है (उवन उववन ममल मल विलयं) वहां शुद्ध प्रकाश प्रगट होगया है, सर्व कर्म मल विला गया है (कलन कमल सुइ चरनं) स्वात्म–कमलमें रमण करना ही वहां चारित्र है (आकर्न कमल केवल न्यान) जैसा सुना है वही कमल केवलज्ञान स्वरूप है ॥ ८ ॥

(अष्यर सुर विंजनय) वही पद अक्षर है, सुर है, व्यंजन है अर्थात् वह शुद्ध पद अविनाशी है, सूर्यरूप है व स्पष्ट प्रगट है (पद अर्थ अर्थ ममल सुइ उवनं) वही नौ पदार्थोंमें शुद्ध पदार्थ है, वही उदयरूप है (अष्यर अषय सहाव) वह अविनाशी स्वभाव है इसीसे अक्षर है (सुर रमं कलन कमल सिद्धान) वही सूर्य स्वभावमें रमण करनेवाला है, वही कमल स्वभावमें रमनेवाला है, वही सिद्ध स्वरूप है ॥ ९ ॥

(विंजन विनय स उत्त) वह अपने स्पष्ट प्रगट स्वरूपकी ओर ही विनयवान है। अर्थात् अपने शुद्ध स्वभावमें नम्रीभूत है, तन्मय है, ऐसा कहा गया है (विनय विन्यान ममल उववन्न) वही शुद्ध ज्ञानमें तन्मय

है, ऐसा उदयरूप है (ममल चरन सुइ कलनं) शुद्ध चारित्रवान है, यही स्वात्मरमण है (कर्म आकर्न कमल सिद्धानं) जैसा कानोंसे सुना है, यही कमलरूप है व यही सिद्ध स्वरूप है ॥ १० ॥

(केवल दर्सन उत्तं) इसीको केवल दर्शन स्वरूप कहा गया है (अष्यर सुर विंजन अष्यर जुत्तं) यही अविनाशी अक्षर स्वरूप है, यही सूर्य स्वरूप है, यही स्पष्ट प्रगट है, यही अक्षर है, यही ध्यान स्वरूप है (अर्क अर्क सुइ उवन) यही सूर्य है, यही सूर्य समान प्रकट है (अर्क आकर्न कमल सिद्धान) जैसा सुना है यही सूर्य है, यही कमल है, यही सिद्ध है ॥ ११ ॥

(सिय सहाव स उत्त) यही शुद्ध स्वभावी कहा गया है (सिय नन्तानन्त अर्क ममल च) यही शुद्ध अनन्तधारी निर्मल सूर्य है (ममल न्यान सुइ उवनं) यहीं शुद्ध ज्ञानका उदय है (साहिय सुइ कर्न कमल ध्रुव सिद्ध) जैसा सुना है इसीने कमल समान ध्रुव सिद्धपदको साधन कर लिया है ॥ १२ ॥

(उव उवन उवन उव उवनं) यह पद उदय होते होते परम उदय रूप हुआ है। जैसे दोइजका चन्द्रमा पूर्णमासीका चन्द्रमा होजाता है वैसे अविरत सम्यग्दृष्टीका स्वानुभवरूप सम्यग्ज्ञान ही बढ़ते२ शुद्ध वीतराग केवलज्ञान होजाता है (उवन सुइ स्रेनि उवन सजुत्तं) यही उदय होता हुआ क्षपकश्रेणीके द्वारा उदय होकर घातीय कर्मोंका क्षय करता है (उव उवन हियार सु ममलं) इसका प्रकाश होना हितकारी है व परम निर्मल है (उवन सह समय सिद्धि सपत्तं) परम उदय सहित आत्मा ही सिद्ध गतिको पालेता है ॥१३॥

(अन्मोय स्रेनि सहयार) यह पद आनन्दमय श्रेणीसे प्राप्त होता है अर्थात् स्वात्मानन्दमें मगनता ही वह गुणस्थानकी श्रेणी है जिसपर चढ़कर परमात्मपद होता है (साहिय सह समय कलन सिय रमनं) इसी श्रेणीद्वारा आत्मा आपको साधन करके शुद्धात्मानुभवमें रमणता प्राप्तकर लेता है (कलन चरन चर चरन) स्वात्मरमण ही आचरण है, यही स्वचारित्रमें चलना है (दिप्ति दिस्टं च सब्द पिउ कलनं) यहीं ज्ञानकी प्रगटता है, यहीं क्षायिक सम्यक्त है, यहीं परमप्रिय स्वात्मरमण शब्दका वाच्य है ॥ १४ ॥

(सहयार कमल अन्मोय) कमल समान शुद्ध आत्मामें आनन्दित होना ही परमात्मपदका सहकारी है (दिप्ति दिस्ट च सब्द सुइ सुवनं) उसीसे ज्ञानकी दीप्ति होती है, यहीं सम्यक्त भाव है, यहीं अरहन्त रूप पूज्यनीय शब्दकी सफलता है (विन्यान विस्स सुइ उवन) वहीं सर्व लोकालोकके ज्ञानका उदय है (फलनं अन्मोय

सिद्धि संपत्तं) इसी आनन्दकी मगनतासे ही सिद्ध गति प्राप्त होती है। भावार्थ—स्वात्मानन्दका भोग ही मोक्षमार्ग है व यही परमात्मपद है व यही सिद्धपद है ॥ १५ ॥

(तस्य उवन उव उवनं) उस परमात्मपदका उदय ही महान् उदय है (उवन सुइ सुवन समय सजुत्त) वहीं परम पूज्यनीय आत्माका उदय है (जिन वयनं जिन रमन) वहीं जिनवाणीका सार है–वहीं जिन स्वभावमें रमण है (जिन उत्तं कलन सिद्धि संपत्तं) जिनेन्द्रने जैसा कहा है वैसा स्वात्मरमण करनेसे ही सिद्ध गति प्राप्त होती है ॥ १६ ॥

(उव उवन उवन उव उवन उवन हिय सहइ जयं) उदय होते होते परम हितकारी परमात्मपदका उदय हुआ है जो कर्मोंको विजय करनेवाला है (उव उवन उवन उव उवन उवन उव उवन पयं) यह पद चौथे गुणस्थानसे उदय होते होते सातवें तक आया, फिर क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ होकर उदय होते २ सयोगकेवलि जिन तेरहवें गुणस्थानमें प्रगट हुआ है (सुइ अर्क सु अर्क सु अर्क अर्क सुइ अर्क मयं) यही पद सूर्य है, शोभनीक सूर्य है, शांतिमय सूर्य है, परम प्रकाशित सूर्य है, अनन्त गुणरूप किरणोंका धारी सूर्य है (अन्मोय कलन सुइ स्रेनि कर्म सुइ सिद्धि जयं) स्वात्मानन्दकी मगनतासे ही क्षपकश्रेणीके परिणामोंको प्राप्त करके यही केवलज्ञानी होकर सिद्धिको या विजयको प्राप्त कर लेता है ॥ १७ ॥

(सुइ मिलन सु मिलन सु मिलन मिलन सुइ मिलन हियं) उस पदका लाभ चौथे अविरत सम्यक्त गुणस्थानमें हुआ, फिर वही लाभ विशेष होता २ सातवें गुणस्थानमें हुआ, वही फिर क्षपकश्रेणी पर हुआ वही बढ़ते २ परमात्मा अरहन्त पदमें परम हितकारी होगया (सुइ रमन सु रमन सु रमन रमन हिय सहय मयं) वही स्वरूपमें रमण चौथे गुणस्थानमें हुआ, बढ़ते बढते सातवेंमें हुआ, यही रमण क्षपकश्रेणी पर हुआ। परमात्मपदमें परम हितकारी रमण ऐसा हुआ कि वह परम थिरतारूप होगया (सुइ कलन सु कलन सु कलन कर्न सुइ लन जय) वही स्वरूपकी थिरता गुणस्थान क्रमसे बढते बढते क्षपकश्रेणीके कारण परिणामोंमें हुई फिर परमात्मपदमें ऐसी हुई कि उसने सर्व विभावोंको विजय ही कर लिया (अन्मोय तरन सुइ कमल कर्न सुइ सिद्धि जयं) वही आनन्दमय भवसागरसे तरनेवाले कमल समान अरहन्त पदमें तिष्ठकर सिद्धपदको व संसारके विजयको प्राप्त कर लेता है ॥ १८ ॥

केवल ममल सहावं) परमात्माका स्वभाव केवल असहाय व शुद्ध है (कमल सुइ कर्न सुइ उवनं) वही पद

सर्व मल रहित है, वही शुद्ध परिणमन रूप है, वही उदयरूप है (कलन कमल सिय चरनं) वही थिरतारूप है, वही कमलरूप है, वही शुद्ध चारित्ररूप है (अर्क सुइ कमल केवलं न्यान) वही सूर्यरूप है, वही कमलरूप है, वही केवलज्ञान स्वरूप है ॥ १९ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें बताया है कि चक्षु और अचक्षु दर्शनसे चक्षुइन्द्रिय तथा अन्य चार इंद्रिय और मन इनसे सामान्य अवलोकन होकर जगतके पदार्थोंका बोध होता है, उस ज्ञानसे भेदविज्ञानकी प्राप्ति करके ग्रहण करनेयोग्य एक अपने ही शुद्ध आत्माको जानके उसका वारवार मनन करके सम्यग्दर्शनको प्राप्त करना चाहिये। यह सम्यग्दर्शन मोक्षमार्गका मूल है। इसीसे परमात्मपदरूपी फलका लाभ होता है। अवधिदर्शन पूर्वक अवधिज्ञान तो सम्यग्दृष्टीको ही होता है। वह सम्यक्ती अवधिज्ञानकी ऋद्धिमें ममत्व न करके अपने शुद्धात्माका मनन तथा अनुभव करता है। आत्मानुभवके दृढ़ अभ्याससे अवधिज्ञानावरण कर्मका विशेष क्षयोपशम होजाता है तब इसे सर्वावधिज्ञान होजाता है। कदाचित् मनःपर्यय ज्ञान भी होजाता है। फिर इसी स्वात्मानुभवके अभ्याससे केवलदर्शन और केवलज्ञानका लाभ होजाता है। यही स्वात्मानुभव फिर अघातीय कर्मोंका भी क्षय करके आत्माको सिद्ध कर देता है। सिद्धपदमें भी वही स्वात्मानुभव अनन्त कालके लिये बना रहता है। स्वानुभव ही कारण है, स्वानुभव ही कर्म है। स्वानुभवमें सदा अतीन्द्रिय सहज आनन्दका स्वाद आता है। इसी आनन्दसे कर्मोंकी निर्जरा होती है। वास्तवमें चिदानन्दमय ही मोक्षमार्ग है व अनन्त सुखरूप ही मोक्ष है। शुद्ध आत्माको कमल तथा सूर्यकी उपमा देकर महिमा गाई है। जहां स्वानुभव है वहां सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र तीनोंकी एकता है। अतएव मुमुक्षु जीवको उचित है कि सर्व प्रकार प्रयत्न करे, अपने आत्माके स्वभावपर दृढ श्रद्धान लावे और उसीके ध्यानका शांत भावके साथ ध्यान करे। इससे वर्तमान जीवन भी आनन्दप्रद रहेगा व भविष्यमें शुद्धात्मपदका लाभ होजायगा। श्री नागसेन मुनि तत्वानुशासनमें कहते हैं—

धर्मादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं ज्ञानमधिगमस्तेषां । चरणं च तपसि चेष्टा व्यवहाराद् मुक्तिहेतुरयं ॥ ३० ॥
निश्चयनयेन भणितस्त्रिभिरेभिर्यः समाहितो भिक्षुः । नोपादत्ते किंचिन्न च मुञ्चति मोक्षहेतुरसौ ॥ ३१ ॥
यो मध्यस्थः पश्यति जानात्यात्मानमात्मनात्मन्यात्मा । दृगवगमचरणरूपस्स निश्चयान्मुक्तिहेतुरिति जिनोक्तिः ॥३२॥
स च मुक्तिहेतुरिद्धो ध्याने यस्मादवाप्यते द्विविधोऽपि । तस्मादभ्यसतु ध्यानं सुधियः सदाप्यपास्यालस्यं ॥ ३३ ॥

भावार्थ—उत्तम क्षमा आदि दश धर्म व जीवादि तत्वोंका श्रद्धान करना सम्यक्त है, उनहीका जानना सम्यग्ज्ञान है, तप करनेमें उद्योग सो सम्यक्चारित्र है, व्यवहारसे यह रत्नत्रय मोक्षके मार्ग हैं ॥ ३० ॥ निश्चयनयसे मोक्षका मार्ग ऐसा कहा गया है जहां ऊपर कथित तीनोंसे विभूषित निज न तो परको ग्रहण करता है न किसी स्व गुणको त्यागता है, आप आपमें मगन होता है ॥ ३१ ॥ जो कोई वीतरागी आत्मा अपने आत्मामें अपने आत्माके द्वारा अपने आत्माको देखता व जानता है वह स्वयं सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप मोक्षमार्ग है, ऐसा निश्चयसे जिनेन्द्रने कहा है ॥ ३२ ॥ क्योंकि ऐसा दोनों प्रकारका मोक्षमार्ग आत्मध्यानमें मिलता है इसलिये बुद्धिमानोंको उचित है कि आलस्यको त्यागकर सदा ही ध्यानका अभ्यास करें।

---

(४७) तरन विवान विजौरौ गाथा ९३५ से ९६४ तक।

उव उवनौ उवन उवन पऊ, विजौरौदे।
उव उवनो हो न्यान विन्यान, तरन विवान, सु मुक्ति पौ, विजौरौदे ॥ १ ॥
सुइ न्यान विन्यान सु समय पऊ, विजौरौदे।
सम समय स उत्तु जितुत्तु, तरन विवान सु मुक्ति पौ, विजौरौदे ॥ २ ॥
जिन जिनवर उत्तु सु मुक्ति पौ, विजौरौदे।
जिननाथ रमन दसंतु, तरन विवान सु मुक्ति पौ, विजौरौदे ॥ ३ ॥
एक सु एक सु ममल पौ, विजौरौदे।
पद् रमनहि दिस्ति संजुत्तु, तरन विवान सु मुक्ति पौ, निजौरौदे ॥ ४ ॥
सु एक इस्टि परमिस्टि मुनि विजौरौदे।
हिययारह हो हर सि सुनहु, तरन विवान सु मुक्ति पौ, निजौरौदे ॥ ५ ॥

सुइ लषियो अलष सुलष्य मौ, विजौरौदे । सुइ लषियो हो लोय अलोय, तरन विवान० ॥६॥
लष्यन लषिय सु दिप्ति मौ, विजौरौदे । हिय कोड सु नन्द सुनन्द, तरन विवान० ॥ ७ ॥
अस्टंग रमन तं सहज जिनु, विजौरौदे । उव उवन हो कोड सुभाव, तरन विवान० ८ ॥
सुइ कोड उवनो नन्द मौ, विजौरौदे । सुइ नन्द दिप्ति संजुत्तु, तरन० ॥ ९ ॥
सुइ कोड उवनो उवन पौ, विजौरौदे । हर हर सिउ हो दिप्ति संजुत्त, तरन० ॥ १० ॥
जं कोड उवनो जिनय जिनु, विजौरौदे । तं सुयं लब्धि संजुत्तु, तरन० ॥ ११ ॥
सुयं लब्धि नौ उत्त जिनु, विजौरौदे । तं लब्धि हो परमानन्द, तरन० ॥ १२ ॥
दिप दिप्ति उवनो न्यान मऊ, विजौरौदे । दिपि दिपियो हो नन्द आनन्द, तरन० ॥ १३ ॥
दिपिय गमन सुइ नन्त मऊ, विजौरौदे । दिपि दिपियो हो गम्य अगम्य, तरन० ॥ १४ ॥
सुयं रमन सुय दिप्ति मऊ, विजौरौदे । हिययार हो हरसि संजुत्तु, तरन० ॥ १५ ॥
हिययार दिप्ति तं रमन पऊ, विजोरौदे । हिय हरसिउ हो हरसि जिनेन्द्र, तरन० ॥ १६ ॥
तं क्रांति उवनो दिप्ति मऊ, विजौरौदे । दिपि दिपियो हो हरसि विन्यान, तरन० ॥ १७ ॥
तं दिप्ति सितं सांतिमई, विजौरौदे । हिययारह हो हरसि जिनुत्तु, तरन० ॥ १८ ॥
सुइ सित सांति जिन दिप्ति मऊ विजोरौदे । उत्पन्नउ हो हरसि विन्यान, तरन० ॥ १९ ॥
न्यान रमन सुइ दिप्ति मऊ विजौरौदे । हुव हिय हो हरसि आनंदु, तरन० ॥ २० ॥
तं न्यान अर्क सुइ दिप्ति मऊ, विजौरौदे । तं अर्क विन्यान जिनुत्तु, तरन० ॥ २१ ॥
सुयं रमन सुइ नन्द मऊ, विजौरौदे । तं सुयं हरसि जिन उत्तु, तरन० ॥ २२ ॥
रुचि प्रिय दिप्ति सुनन्द जिनु, विजौरौदे । सुइ क्रांति हो हरसि जिनेन्द्र, तरन० ॥ २३ ॥

ममलपाहुड ॥३९३॥

कमल उत्पन सुइ दिप्ति मऊ, विजौरौदे। तं क्रांति हो कलन सुभाउ, तरन० ॥ २४ ॥
रमन कमल सुइ दिप्ति मऊ, विजौरौदे। तत्काल हो मुक्ति सुभाउ, तरन० ॥ २५ ॥
रमन कमल उत्पन्न मऊ, विजौरौदे। उत्पन्नह हो दिप्ति विन्यान, तरन० ॥ २६ ॥
सहकार रमन तं नन्त मुनि, विजौरौदे। तं हरसिउ हो जिनय जिनेन्द, तरन० ॥ २७ ॥
सहज सुभावें परिनवैं, विजौरौदे। तं सहजे हो परमानन्द, तरन० ॥ २८ ॥
दिप दिप्ति दिप्ति उत्पन्न मऊ विजौरौदे। दिपि दिपियो हो हरसि आनन्द, तरन० ॥ २९ ॥
सुइ तारनतरन सहाउ मऊ विजौरौदे। सुइ समय हो मुक्ति पहुत्तु, तरन० ॥ ३० ॥

अन्वय सहित अर्थ—(उव उवनो उवन उवन पऊ विजौरौदे) अब उदय होते होते परम उदयरूप अरहंत पद उदय होगया है। हे अरहंत! मुझे विजौरा फलके समान सर्वको विजय करनेवाला मुक्तिफल प्रदान कर (उव उवनो हो न्यान विन्यान) अब केवलज्ञानका प्रकाश होगया है (तरन विवान सु मुक्ति पऊ) यही तारण-तरण जहाजके समान हैं, अवश्य मुक्ति पहुँचेगे (विजौरौदे) हे अरहंत, मुझे मुक्ति फल दे ॥ १ ॥

(सुइ न्यान विन्यान सु समय पऊ) वे ही अरहन्त ज्ञान स्वरूप हैं, वे अपने आत्मीक पद्में विराजित हैं (सम समय स उत्त जितुत्त) उनहीको समभावधारी आत्मा कहागया है ऐसा ही जिन वचन है ॥ २ ॥

(जिन जिनवर उत्त सु मुक्ति पऊ) वे जिनेन्द्र मुक्तिको अवश्य प्राप्त करते हैं ऐसा श्री जिनेन्द्रने कहा है (जिननाथ रमन दसैंतु) वे ही जिनेन्द्र स्वभावमें रमन कररहे है, ऐसा प्रत्यक्ष प्रगट होरहा है ॥ ३ ॥

(एक सु एक सु ममल पौ) वे अरहन्त एक अकेले अपनी सत्ताको रखनेवाले परम शुद्ध पद्में हैं (षट रमन हि दिप्ति सजुत्तु) वे छः मुख्य गुणोंके प्रकाशको रखनेवाले है—अनन्त ज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, क्षायिक सम्यक्त व क्षायिक चारित्र ॥ ४ ॥

(सु एक इस्टि परमिस्टि मुनि) वे ही अरहन्त परमेष्टी एक परम इष्टपद्में है उनका मनन करो (हिययार हो हरसि सुनन्दु) वे हितकारी हैं, उनके ध्यानसे आत्मीक आनन्दका हर्ष होता है ॥ ५ ॥

(सुइ लषियो अलष्य सु लष्य मऊ) वे ही इंद्रिय मनसे अगोचर आत्माको प्रत्यक्ष देखनेवाले हैं उनका

लक्ष्य एक निज स्वभाव ही है (सुइ लषियो हो लोय अलोय) उन्होंने लोक अलोकको प्रत्यक्ष देख लिया है ॥६॥

(लष्येन लषियं सु दिप्ति मऊ) वे ज्ञान ज्योतिमई लक्षणसे लखने योग्य हैं (हिय कोड सुनन्द सुनन्द) वे हितकारी आत्मीक आनन्दको धारण करके उसीमें मगन होरहे हैं ॥ ७ ॥

(अष्टंग रमन तं सहज जिनु) वे जिनेन्द्र भगवान अपने सहज स्वभावमें ठहर कर आठ गुणोंमें रमण कर रहे हैं–सम्यक्त, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व और अव्याबाधत्व (उव उवन हो कोड सुभाव) वे अपने स्वभावको धारण करे हुए सदा प्रकाशमान हैं ॥ ८ ॥

(सुइ कोड उवनो नन्द मौ) वे ही आनन्दमई प्रकाशको रखनेवाले हैं (सुइ नन्द दिप्ति सजुत्तु) वे ही आनन्दमई ज्योतिके धारी हैं ॥ ९ ॥

(सुइ कोड उवनो उवन पौ) वे ही परम प्रकाशित परमात्मपदके धारी हैं (हर हरसिउ हो दिप्ति सजुत्तु) वे ज्ञान दीप्ति सहित सर्व दुःखोंको हरके परम हर्षमई हैं ॥ १० ॥

(ज कोड उवनो जिनय जिन) वे ही कर्म विजयी जिनपदको धारण करनेवाले हैं (त सुयं लब्धि संजुत्त) वे स्वयं अनेक लाभ व शक्तियोंके धारी हैं ॥ ११ ॥

(सुय लब्धिनौ उत्तु जिनु) उनमें स्वयं नौ क्षायिक लब्धि प्रगट हैं जैसा जिनेन्द्रने कहा है। क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग, क्षायिक वीर्य, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्र (त लब्धि हो परमानन्द) उन्होने अनन्त सुखरूप परमानन्दको भी प्राप्त किया है॥१२॥

(दिप दिप्ति उवनौ न्यान मऊ) उनमें ज्ञानमई दीप्तिका प्रकाश उदय होरहा है (दिपि दिपियो हो नन्द आनन्द) वे परमानन्द स्वभावमें चमक रहे हैं ॥ १३ ॥

(दिपिय गमन सुइ नन्त मऊ) वे ही अनन्तज्ञानमें प्रकाशमान हैं (दिप दिपियो हो गम्य अगम्य) वे इंद्रिय व मन गोचर व इंद्रिय मनसे अगोचर सर्व सूक्ष्म स्थूल पदार्थोंको जान रहे हैं ॥ १४ ॥

(सुय रमन सु दिप्ति मऊ) वे स्वयं अपने ज्योतिमई स्वभावमें रमण कर रहे हैं (हिययार हो हरसि सजुत्तु) वे हितकारी प्रभु आनन्द सहित हैं ॥ १५ ॥

(हिययार दिप्ति त रमन मऊ) वे हितकारी ज्ञान ज्योतिमें रमण करते हुए स्वपदमें विराजित हैं (हिय हरसिउ हरसि जिनेन्द) वे जिनेन्द्र हितकारी परमानन्दमें मगन हैं ॥ १६ ॥

(त काति उवनो दिप्ति मऊ) उनमें दीप्तमान कांतिका प्रकाश है। उनका आत्मा शुद्ध गुणोंसे चमक रहा है (दिपि दिपियो हो हरसि विन्यान) वे ज्ञानानन्दमई ज्योतिसे दीप्तमान हैं ॥ १७ ॥

(तं दिप्ति सित सातिमई) वह ज्योति शुद्ध है व शांतिमई है (हिययारह हो हरसि जिनुत्तु) वे जिनेन्द्र हितकारी हैं व आनन्दमय हैं ऐसा जिनेन्द्रने कहा है ॥ १८ ॥

(सुइ सित साति जिन दिप्ति मऊ) वे जिनेन्द्र वीतराग ज्ञान ज्योतिमय शुद्ध व परम शांत हैं (उत्पन्नउ हो हरसि विन्यान) उनमें आनन्द और ज्ञान गुण दोनो प्रगट हैं ॥ १९ ॥

(न्यान रमन सुइ दिप्ति मऊ) वे ज्ञान ज्योतिमय प्रभु अपनी ज्ञान चेतनामें रमण कर रहे हैं (हुव हिय हो हरसि आनद) जहां हितकारी परमानन्दमें मग्नता होरही है ॥ २० ॥

(तं न्यान मक सुइ दिप्ति मऊ) वे ही परम प्रकाशित ज्ञान सूर्य हैं (त अर्क विन्यान जिनुत्तु) उनको ही ज्ञान सूर्य जिनेन्द्रने कहा है ॥ २१ ॥

(सुय रमन सुइ नंद मऊ) वे स्वयं ही आपमें रमण कर रहे हैं, वे आनन्दमई हैं (त सुय हरसि जिन उत्तु) उनमें आनन्द नामका गुण है, ऐसा जिनेन्द्रने कहा है ॥ २२ ॥

(रुचि प्रिय दिप्ति सुनन्द जिनु) वहां परमप्रिय गाढ़ सम्यग्दर्शनका प्रकाश है, वे जिनेन्द्र आनन्द स्वरूप हैं (सुइ काति हो हरसि जिनेन्द) वे ही उद्योतकारी आनन्दमय जिनेन्द्र हैं ॥ २३ ॥

(कमल उत्पन्न सुइ दिप्ति मऊ) वे ही परम प्रफुल्लित कमल समान प्रकाशित हैं (त काति हो कलन सुभाउ) वे प्रकाशमान होकर भी अपने स्वभावमें तिष्ठनेवाले हैं ॥ २४ ॥

(रमन कमल सुइ दिप्ति मऊ) वे ज्योतिस्वरूप आत्मारूपी कमलमें रमण कर रहे हैं (तत्काल हो मुक्ति सुभाउ) उसी समय वहां मुक्तिका स्वभाव शोभ रहा है। वे जीवन्मुक्त परमात्मा हैं ॥ २५ ॥

(रमन कमल उत्पन्न मऊ) वे उदयस्वरूप स्वरूप रमण कमल हैं (उत्पन्नह हो दिप्ति विन्यान) उनमें ज्ञानका प्रकाश उदयरूप है ॥ २६ ॥

(सहकार रमन तं नत मुनि) उनके भीतर अनन्त गुण रमण कर रहे हैं ऐसा मनन करो (तं हरसिउ हो जिनय जिनेंद) वे श्री वीतराग जिनेन्द्र उनमें मगन होरहे हैं ॥ २७ ॥

(सहज सुभावे परिनवै) वे परमात्मा अपने सहज स्वभावमें परिणमन कर रहे हैं (तं सहजे हो परमानंद) वहां परमानन्द भी सहज ही स्वाभाविक है ॥ २८ ॥

(दिय दिप्ति दिप्ति उत्पन्न मऊ) वे उदयरूप परम ज्योतिमें दीप्तमान हैं (दिपि दिपियो हो हरसि आनद) वे आनन्दकी मगनतामें चमक रहे हैं ॥ २९ ॥

(सुइ तारन तरन सहाउ मउ) वे ही तारण तरण स्वभावरूप हैं (सुइ समय हो मुक्ति पहुत्तु) वे ही परमात्मा मुक्तिमें पहुंच जाते हैं ॥ ३० ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें श्री अरहन्त परमात्माकी स्तुतिका गान है, जिसके गानेसे मन एकाएक अरहन्त परमात्माके शुद्ध गुणोंमें रंजायमान होजाता है, संसारकी परिणतिका मोह दूर होजाता है, मोक्षपदकी प्राप्तिका प्रेम उमड़ आता है। परमात्माका नाम व परमात्माके गुण पुनः पुनः स्मरण करनेसे उपयोगको धारावाही परमात्माके गुणोंमें भिगोए रखते हैं, भावना फलदाई होती है। अरहन्तके गुणोंका मनन अरहन्तके ध्यानमें मग्नता प्राप्तिका कारण है। यह अरहन्त पद आपसे ही, अपने पुरुषार्थसे ही, स्वात्मामें रमण करनेसे ही, धर्मध्यान व शुक्लध्यानसे ही प्राप्त होता है। वे प्रभु चार घातीय कर्मोंके क्षयसे नौ केवल लब्धियोंके स्वामी हैं। वे केवलज्ञान केवलदर्शनसे लोकालोकको देखनेवाले हैं तथापि अपने आपमें मगन हैं। अपने भीतर भरे हुए अनन्त गुणोंका स्वाद ले रहे हैं। उनमें राग द्वेषादिका पूर्णतया अभाव है। वे परम शांत, परम वीतराग हैं, परमानन्दमें मग्न हैं, कभी उनमें कोई खेद, चिंता, दुख, शोक, निर्बलता, इच्छा, द्वेष आदि विभाव भाव नहीं होते हैं, क्योंकि उनमें मोहनीय कर्मका उदय सर्वथा नहीं है। वे ज्ञान ज्योतिमें मुख्यतासे चमकते हैं। सर्व विकारी भावोंसे बाहर हैं। उनको सूर्यकी उपमा इसीलिये दी गई है कि जैसे सूर्य विना रागद्वेषके सर्व कुछ प्रकाश करता है, उस सूर्यकी विना इच्छाके ही सूर्यके तापसे अन्नादि पकते हैं, जगतका बहुत उपकार होता है। कोई सूर्यके प्रकाशसे हानि भी मानलें तथा सूर्यके प्रकाशकी निन्दा करे तौभी सूर्य प्रशंसा करनेवाले पर हर्ष व निन्दा करनेवाले पर द्वेषभाव नहीं करता है।

इसी तरह अरहन्त परमात्मा पूर्ण प्रकाशित हैं, एक ही साथ लोकालोककी अनन्त पर्यायोंको प्रगट कररहे हैं तथापि किसीसे रागद्वेष नहीं करते हैं। जो उनकी भक्ति करे उसपर प्रसन्न नहीं होते हैं। जो

निन्दा करे उसपर द्वेषभाव नहीं करते हैं तथापि भक्तोंको पुण्य बन्ध होकर सुख प्राप्त होजाता है, निंदकोंको पापवन्ध होकर दुःख प्राप्त होजाता है। अरहन्त भगवान न किसीको सुख देना चाहते हैं। दुःख देना चाहते हैं। वे परम वीतराग हैं, समदर्शी हैं।

अरहन्तको कमलकी उपमा इसलिये दी है कि कर्मोंके अंधकारमें यह आत्मारूपी कमल मुद्रित था, इसकी शक्तियां छिपी थीं, जब केवलज्ञान सूर्यका प्रकाश हुआ यह आत्मारूपी कमल विकसित होगया, आत्माके सब गुण प्रगट शोभने लगे। जैसे कमलमें भ्रमर लुब्धायमान होते हैं वैसे अर्हंत परमात्माकी भक्तिमें भक्तजन लुब्धायमान होते हैं। भक्ति करके उसी तरह आत्मीक आनन्दका लाभ करते हैं जैसे भ्रमरोंको सुगन्धका लाभ होता है।

इस स्तुतिमें यह भावना है कि मेरा आत्मा भी अरहन्त होकर मोक्षके मिष्ट फलको प्राप्त करले।

श्री नागसेन मुनिने तत्वानुशासनमें कहा है:—

परिणमते येनात्मा भावेन स तेन तन्मयो भवति। अर्हद्ध्यानाविष्टो भावार्हं स्यात्स्वय तस्मात् ॥ १९० ॥
येन भावेन यद्रूप ध्यायत्यात्मानमात्मवित्। तेन तन्मयता याति सोपाधि स्फटिको यथा ॥ १९१ ॥
ध्यातोऽर्हत्सिद्धरूपेण चरमाङ्गस्य मुक्तये। तद्ध्यानोपात्तपुण्यस्य स एवान्यस्य मुक्तये ॥ १९७ ॥
ज्ञानं श्रीरायुरारोग्य तुष्टिपुष्टिर्वपुर्धृति। यत्प्रशस्तमिहान्यच्च तत्तद्ध्यातु प्रजायते ॥ १९८ ॥

भावार्थ—जिस भावसे आत्मा परिणमन करता है उसी भावके साथ वह तन्मई होजाता है। इसी लिये जो श्री अरहन्त भगवानका ध्यान करता है वह भावमें स्वयं अरहन्तरूप होजाता है ॥१९०॥ आत्मज्ञानी जिस रूप आत्माको जिस भावसे ध्याता है उसी भावसे वह उसी तरह तन्मई होजाता है जैसे जैसी डाकके रंगकी उपाधि स्फटिक पाषाणके लगे वह उसी रंगसे तन्मई होजाता है ॥१९१॥ जो अर्हंतरूप व सिद्धरूप अपने आत्माको ध्याता है, यदि वह चरमशरीरी हो तो उसी जन्मसे मोक्ष पालेता है अन्यथा ध्यानके द्वारा बांधे हुए पुण्यसे वह नानाप्रकार भोग प्राप्त करता है ॥ १९७ ॥ ज्ञान, लक्ष्मी, दीर्घ आयु, आरोग्य, संतोष, बल, शरीरका रूप, धैर्य, इत्यादि और भी जो कुछ उत्तम उत्तम वस्तुएँ हैं सो सब ध्यानीको प्राप्त होजाती हैं ॥ १९८ ॥

(४८) चडो व धाऊ गाथा ९६९ से ९८९ तक।

उव उवनो हो न्यान विन्यानह, सुद्ध सरूवे समय मऊ।
सम समय स उत्तउ, अर्थति अर्थह, पंच दिप्ति परमिस्टि पऊ ॥ १ ॥
परमेस्टिहि सहियो, ममलह ममल सहाऊ मऊ।
जिनवर उत्तउ, सुद्ध सचेयनु, सुद्ध न्यान संसुद्ध पऊ ॥ २ ॥
देव उवन हो दाता होउ तउ, न्यान विन्यानह ममल पऊ।
गुरु गुप्तिहि रुचियो, दिट्ठउ दाता, हो न्यान सरूवे सुद्ध पऊ ॥ ३ ॥
धम्म जु उत्तउ चेयन सहियो, दर्सन दिस्टि सु ममल मऊ।
दर्सन दर्सिउ, लोय अवलोयवि, दर्सिउ अर्थह मल रहिऊ ॥ ४ ॥
तउ उवएसिउ ममल सहावे हो, तत्काल ऊवनउ तउ कहियो।
परम देव परमान सु सहियो, परम ऊवनउ देउ पऊ ॥ ५ ॥
जिनवर जिनियो कम्मु अनन्तुजु, चेयन नन्द सु समय मऊ।
परम जिनेन्दह सूषम जिनियो, मर्म कम्म जिनि ममल पऊ ॥ ६ ॥
परम गुरह परमप्परु उत्तउ, पर्म गुप्ति सव सिद्ध मऊ।
परम धम्म परमप्पइ सहियो, तिविह कम्मु तं सुइ गलिऊ ॥ ७ ॥
तत्तु जिनेन्दह उत्त समय हो, तत्काल ऊवनो न्यान मऊ।
जं जं समइ हो, पुच्छिउ भवियन, तं तं उवनउ ममल मऊ ॥ ८ ॥
तत्तु तत्तु सवुलोय स उत्तउ, तत्तु भेय तुवि जानि पऊ।
भय विनासु तं भवु जु कहियो, तत्तु भेय गुरु जानि पऊ ॥ ९ ॥

ममलपाहुड ॥३९९॥

तत्काल ऊवनो तत्तु जु जानहु, नन्तानन्त सु न्यान मऊ।
न्यान विन्यानह विमल सु निर्मलु, तत्काल ऊवनो तत्तु मुनि ॥ १० ॥
पर्म तत्तु परमप्पह उत्तउ, परम न्यान उत्पन्न समऊ।
परमानन्दह परम सुभाऊ, परम तत्तु परमिस्टि मऊ ॥ ११ ॥
अन्मोय विरोह विजानहु भवियन, कम्मु कलंक स उत्तियउ।
कम्म भाउ कम्मान स उत्तउ, न्यान अन्मोयह विलय गऊ ॥ १२ ॥
जं पुनु कम्मु अनन्तु भव एहो, जनरंजन राग जु ऊपजिऊ।
कलरंजन दोष जु गारौ सहियो, न्यान अन्मोयह गलि गयऊ ॥ १३ ॥
मन रंजन गारी कम्म सदिट्ठो, दर्सन मोह अन्ध तु हू।
न्यान विन्यानह उवसम सहियो, कम्मु विलय सो मुक्ति गऊ ॥ १४ ॥
जं पुन कम्मह भेउ न जानियो, न्यान सरूवे वृद्धियऊ।
मिथ्यामय सो सल्यह सहियो, न्यान अन्मोयह गलि गयऊ ॥ १५ ॥
पर पर्जायह दिट्ठि जु सहियो, पर पर्जय रत्तउ मूढ मई।
कल लंकृत कम्मु जु दिट्ठो समई, न्यान अन्मोयह गलि गयऊ ॥ १६ ॥
जं अबंभह सरनि हि सहियो, मैहुन संन्या संसरिऊ।
जं पुन मान कषाय संजुत्तउ, दर्सन दिस्टिहि विलय गऊ ॥ १७ ॥
मोह मही हर कम्मु ऊपजै, कषयह विषय संजुत्तु समू।
अन्यान दिट्ठि परजावह सहियो, न्यान अन्मोयह गलि गयऊ ॥ १८ ॥

ममलपाहुड

चष्य अचष्यह चष्यह उत्तउ, अवहिहि कम्म जु ऊपजई ।
अन्यान दिस्टि जं कम्मु ऊपजे, न्यान अन्मोयह गलि गयऊ ॥ १९ ॥
जह जह कम्मु उपत्ति सदिट्ठो, जह जह कम्मु जु ऊपजे ।
तह तह कम्मु जु विलयो समई, न्यान अन्मोयह समय मऊ ॥ २१ ॥
अप्पहु अप्पा सुद्धप्पा सउ, परमप्पा परम सु समय मऊ ।
न्यान विन्यानह ममल सुभाउ हो, परम न्यान सो मुक्ति गऊ ॥ २१ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(उव उवनो हो न्यान विन्यानह सुद्ध सरूवे समय मऊ) अब आत्माके शुद्ध स्वरूपमें आत्माका स्वाभाविक केवलज्ञानका उदय हुआ है (स समय स उत्तइ अर्थति अर्थह पंच दिप्ति परमिस्टि मउ) उस शुद्ध स्वरूपी आत्माको स्वसमय, रत्नत्रयमई पदार्थ, पंच ज्ञानमय मतिश्रुत अवधि मनःपर्यय केवल स्वरूप तथा पांच परमेष्ठी पद या अरहन्त परमेष्ठी पद कहते हैं। केवलज्ञानमें अन्य चार ज्ञान तथा आत्मा द्रव्यमें अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु पांचों पद गर्भित हैं, पर्यायकी अपेक्षा अरहन्तकी मुख्यता है ॥ १ ॥

(परमेस्टि हि सहियो ममलह ममल सहाउ मऊ) वे अरहन्त परमेष्ठी रागादि रहित वीतराग व घातीय कर्ममल रहित शुद्ध स्वभावके धारी हैं (जिनवर उत्तउ सुद्ध स चेयनु सुद्ध न्यान ससुद्ध पऊ) वे ही शुद्ध चेतना स्वरूप हैं, शुद्ध ज्ञानमई हैं तथा शुद्ध पदके धारक हैं ॥ २ ॥

(देव उवन हो दाता होउ तउ न्यान विन्यानह ममल पऊ) श्री अरहन्तदेवका उदय हुआ है, यह ज्ञानमई शुद्ध पदके दातार भी हैं अर्थात् जो अरहंतकी भक्ति करता है व अरहंत परमात्माके ध्यानमें तन्मय होता है उसका भी आत्मा शुद्ध केवलज्ञानी होजाता है (गुरु गुपितह रुचियो दिट्ठउ दाता, हो न्यान सरूवे सुद्ध पऊ) वे अरहंत गुप्त आत्मज्ञानकी रुचिके दातार हैं अतएव वे ही गुरु हैं। हे भव्य जीव! अपने ज्ञान स्वरूपमें उनके शुद्ध पदको देखो ॥ ३ ॥

(धम्म जु उत्तउ चेयन सहियो दर्सन दिस्टि सु ममल पऊ) चेतन आत्माके स्वभावको धर्म कहा गया है।

ममलपाहु ॥४०१॥

श्री अरहंत भगवान शुद्ध पदके धारीने उस धर्मको अपने क्षायिक सम्यग्दर्शनसे व अनन्तदर्शन व ज्ञानसे देख लिया है (दर्सन दर्सिउ लोय अवलोययि, दर्सिउ अर्थह मल रहिऊ) उन्होंने अनन्तदर्शन व अनन्तज्ञानसे लोक व अलोकको देख लिया है, वे मल रहित निर्मल हैं, उन्होंने सर्व पदार्थोंको देख लिया है ॥ ४ ॥

(तउ उवएसिउ ममल सहावे हो तत्काल ऊवनउ तउ कहियो) शुद्ध स्वरूपके रमणको तप कहा गया है। श्री अरहन्तमें हरसमय तपका उदय कहा जाता है। वे आत्मामें निरन्तर तप रहे हैं (परम देव परमान सु महियो परम ऊवनउ देवु पऊ) वे ही अरहन्त सर्व देवोंमें श्रेष्ठ महादेव हैं, वे ही उत्कृष्ट ज्ञानके धारी हैं, वही परमात्मदेवका पद उदय हुआ है ॥ ५ ॥

(जिनवर जिनियो कम्मु अनत जु चेयनन्द सु समय मऊ) श्री जिनेन्द्रने अनन्त कर्मोंको जीत लिया है, वे चिदानन्द हैं व स्व समयरूप हैं, स्वात्मरमण स्वरूप हैं (परम जिनेंदह सुषम जिनियो मर्म कम्म जिनि ममल पऊ) उन परमात्म जिनेन्द्र भगवानने सूक्ष्म कर्मोंको व सूक्ष्म रागादि भावोंको जीत लिया है, इसीसे वे शुद्ध पदके धारी जिन हैं ॥ ६ ॥

(परम गुरह परमप्पऊ उत्तउ पर्म गुप्ति सिव सिद्ध मऊ) उनहीको परम गुरु व परम अक्षर या अविनाशी तथा परम गुप्त अर्थात् स्वरूप मगन, शिव अर्थात् कल्याणरूप तथा सिद्ध स्वभावधारी कहा गया है (परम धम्म परमप्पह सहियो तिविह कम्मु त सुइ गलिऊ) वे अरहन्त परम धर्मके व परमात्म-स्वभावके धारी हैं। उनके द्रव्यकर्म, भावकर्म व नोकर्म तीनों ही स्वयं गल गये हैं। तेरहवें गुणस्थानमें जली हुई रस्सीके समान अघातीयकर्म हैं जो शीघ्र ही झड़ जांयगे ॥ ७ ॥

(तत्तु जिनेन्दह उत्त समय हो तत्काल ऊवनो न्यान मऊ) श्री जिनेन्द्रने जो तत्व कहा है वह वही आत्मा है जिसके ज्ञानमई भाव प्रकाशित है। अर्थात् केवलज्ञान स्वरूपी परमात्मा ही यथार्थ तत्व है, सब तत्वोंमें सार है (ज जं समइ हो पुच्छियउ भवियन त तं उवनउ ममल मऊ) जब जब भव्यजीवोंने श्री अरहन्त भगवानसे तत्वका प्रश्न किया है तब तब यही दिव्यध्वनिमें प्रगट हुआ है कि वह तत्व शुद्ध स्वरूपी आत्मा है ॥ ८ ॥

(तत्तु तत्तु सवुलोय स उत्तउ तत्तु भेय नवि जानि पऊ) सर्व लोग तत्व तत्व शब्द कहते हैं, परन्तु तत्वका भेद नहीं जानते हैं (भय विनासु त भवु जु कहियो तत्तु भेउ गुरु जानि पऊ) हे भव्यजीव ! श्रीगुरु महाराज उस तत्वके भेदको जानते हैं, वह तत्व सर्व भयोंका क्षय करनेवाला है ॥ ९ ॥

(तत्काल ऊवनो तत्तु जु जानहु नन्तानन्त सु न्यान मऊ) वह तत्व अनन्त ज्ञानमई अरहन्त परमात्मा है। जिनका प्रकाश घातीय कर्मके क्षयसे उसी समय होता है (न्यान विन्यानह विमल सु निर्मलु तत्काल ऊवनो तस मुनि) श्री अरहन्तका ज्ञान अज्ञान मलसे रहित है व रागादि मलसे रहित है अर्थात् वे वीतराग विज्ञानमई हैं उसी तत्वको इसी समय मनन करो ॥ १० ॥

(पर्म तत्तु परमप्पह उत्तउ परम न्यान उत्पन्न समऊ) परम ज्ञानधारी आत्मा या परमात्माको परम तत्व कहा गया है (परमानन्दह परम सुभाउ परम तत्तु परमिस्टि मऊ) वह परम तत्व परमानन्द स्वभाव धारी अरहन्त परमेष्ठी हैं ॥ ११ ॥

(अन्मोय विरोह विजानहु भवियन कम्मु कलंक स उत्तियउ) हे भव्यजीवो ! अनन्त सुखका विरोधी कर्म कलंकका उदय कहा गया है यह भलेप्रकार जानो (कम्म भाउ कम्मान स उत्तउ न्यान अन्मोयह विलय पऊ) कर्मोंके उदयसे कर्मजनित दुःखमय भाव होते हैं ऐसा कहा गया है, परन्तु जब आत्मज्ञानमें आनन्द आता है तब कर्मोंका क्षय होजाता है ॥ १२ ॥

(ज पुनु कम्म अनंतु भवए हो जनरंजन राग जु उपजिऊ) जो इस जीवके अनन्तानुबन्धी कषायोंका उदय है, जो अनंत भवोंमें रुलानेवाले हैं उनके प्रभावसे जगतके प्राणियोंमें रंजायमान होनेवाला राग उपजता है। अर्थात् अनंतानुबन्धी लोभादिके कारण आत्माके स्वभावमें आनंद नहीं आकर संसार, शरीर, भोग सम्बन्धी बातोंमें व स्त्री पुत्र मित्रादिमें राग भाव तीव्रतासे रहता है, मनकी रंजकता बाहरी पदार्थोंमें रहती है (कलरंजन दोष जु गारौ सहियो न्यान अन्मोयह गलि गयऊ) तथा शरीरमें रंजायमान होनेवाला राग द्वेष व शरीरका अहंकार होता है। कर्मजनित पर्यायोंमें मगनता होती है या अनिष्ट संयोगमें द्वेष होता है सो सब मिथ्यात्वभाव व जनरंजन व कलरंजनभाव व अहंकारभाव आत्मज्ञानमें आनन्द आनेसे गल जाते हैं ॥ १३ ॥

(मन रजन गारौ कम्म सदिट्ठो दर्सन मोहे अंध तु हू) जबतक हे भव्य जीव ! तू दर्शनमोहनीयके उदयसे अंधा है तबतक तेरे उन कर्मोंका उदय दिखलाई पडता है जिनसे तू मनको अहंकार ममकारमें रंजायमान करे (न्यान विन्यानह उवसम सहियो कम्मु विलय सो मुक्ति गऊ) परंतु जब आत्मज्ञानका उदय होता है तब दर्शनमोह आदिका उपशम होता है। उपशम सम्यक्तके होनेपर धीरे २ सर्व कर्मोंका क्षय होजाता है

और यह जीव मुक्ति पहुंच जाता है। मोक्षमार्गका प्रारंभ उपशम सम्यक्तके उदयसे होता है ॥ १४ ॥

(जं पुनु कम्महं भेउ न जानियो, न्यान सरूवे वृद्धि यऊ) जबतक कर्मोंके आस्रव व बंधका भेद नहीं जाना जाता है कि किन २ भावोंसे कर्मोंका बंध होता है तबतक अज्ञान दशामें कर्मोंका संचय पडता जाता है (मिथ्यामय सो सल्यह सहियो न्यान अन्मोयह गलि गयऊ) तथा मिथ्यात्व व मदकी शल्य रहा करती है परंतु आत्मज्ञानमें आनन्द आनेसे यह मिथ्याशल्य व कर्मका संचय गल जाता है ॥ १५ ॥

(पर पर्जायह दिट्ठि जु सहियो पर पर्जय न्तउ मूढ़ मई) मूढ बुद्धि बहिरात्मा आत्मासे भिन्न पर परिणतिमें आपापनेका श्रद्धान रखता हुआ कर्मजनित पर पर्यायोंमें लीन होजाता है। जो शरीर पाता है व कर्मोंके उदयसे जैसी अच्छी व बुरी अवस्था होती है उसीमें तन्मय होजाता है (कर्लकृत कम्मु जु दिट्ठो समई न्यान अन्मोयह गलि गयऊ) उस समय शरीरमें रंजायमान होनेवाली क्रियाएँ ही दीख पडती हैं, परंतु जब आत्मज्ञानमें आनंद आता है तब यह मूढ़ बुद्धि गल जाती है ॥ १६ ॥

(ज अबभह मरनि हि महियो, मेहुन संन्या समरिऊ) जबतक यह प्राणी अब्रह्मके मार्गमें चलता है तबतक मैथुन संज्ञा या कामसेवनका भाव भावोंमें घूमता रहता है (ज पुन मान कषाय सजुत्तउ, दर्सन दिस्टिहि विलय गऊ) तथा जो अब्रह्मभाव मान कषाय सहित होता है अर्थात् जो अब्रह्मभावमें आसक्ति होती है सो सब सम्यग्दर्शनके उदयसे दूर होजाती है। सम्यग्दृष्टीको आसक्ति ब्रह्मभावमें होजाती है, वह अब्रह्मभावसे उदास होजाता है ॥ १७ ॥

(मोह यही हर कम्मु जु ऊान, कषयह विषय सजु सम) विषय व कषायोंके साथ मोहरूपी पर्वतसे कर्मोंकी उत्पत्ति होती है अर्थात् मिथ्यात्वभाव सहित विषय व कषायोंमें रंजायमान होनेसे संसार भ्रमणकारी कर्मोंका बन्ध होता है (अन्यान दिट्ठि परनावह सहियो न्यान अन्मोयह गलि गयऊ) साथमें शरीरमें आसक्ति रखनेवाली अज्ञानदृष्टि रहती है सो सब मिथ्यादृष्टि आत्मज्ञानमें आनन्द आनेसे गल जाती है ॥ १८ ॥

(चष्य अचष्यह चष्यह उत्तउ अवहिहि कम्म जु ऊाजई) चक्षु, अचक्षु व कुअवधि द्वारा जो मिथ्यादृष्टि होती है उनसे कर्मोंका बंध होता है (अन्यान दिट्ठि ज कम्मु ऊपजै न्यान अन्मोयह गलि गयऊ) या अज्ञानदृष्टिसे जितना कर्मबन्ध होता है वह सब आत्मज्ञानमें आनन्द मगन होनेसे क्षय होजाता है ॥ १९ ॥

(जह जह कम्मु उपत्ति सविट्ठो जह जह कम्मु जु ऊपजै) जैसे जैसे कर्मोंका उदय देखा जाता है व जैसे

जैसे कर्मोंका बन्ध होता है (तह तह कम्मु जु विल्यो समई न्यान अन्मोयह समय मऊ) वैसे वैसे आत्मा सम्बन्धी ज्ञानमें आनन्द आनेसे उसी क्षण वे कर्म विला जाते हैं। अर्थात् आत्मानन्दकी मगनतासे रागद्वेष नहीं होते हैं तब नवीन कर्मोंका बन्ध न होकर पुरातनकी विशेष निर्जरा होती है ॥ २० ॥

(अप्पहु अप्पा सुद्धप्पा सउ, परमप्पा परम सु समय मऊ) यह आत्मा आप ही शुद्धात्मा है, आप ही परमात्मा है, आप ही स्वसमय स्वरूप है (न्यान अन्मोयह ममल सुभाउ हो परम न्यान सो मुक्ति गऊ) यही ज्ञानानन्दमय शुद्ध स्वभाव धारी है। इसीके अनुभवसे केवलज्ञान प्रगट होता है और यह आत्मा मुक्तिपदको प्राप्त कर लेता है ॥ २१ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें बताया है कि श्री अरहन्त परमात्मा सच्चे देव हैं, सच्चे गुरु हैं, सच्चे धर्म स्वरूप हैं, वे ही यथार्थ तत्व हैं। अरहन्तके समान अपने आत्माको समझकर भावना करनी चाहिये। श्री अरहन्त परमात्मामें पांचों परमेष्ठी गर्भित हैं। उनके केवलज्ञानमें मति श्रुतादि ज्ञान भी गर्भित हैं। यह जीव अनादिकालसे अनन्तानुबन्धी कषाय और दर्शनमोहके उदय वश आत्मतत्वके ज्ञानसे शून्य होरहा है, पर्याय बुद्धि वर्त रही है। जिस शरीरको पाता है उसीके भीतर रंजायमान होजाता है, विषयोंकी गाढ़ रुचि वर्तती है। इसीसे जगतके साथ बहुत राग रहता है। स्त्री पुत्र मित्रादिसे बड़ा स्नेह रहता है। उनके लिये अन्याय करते हुए व पाप करते हुए शँका नहीं रहती है। संसार सुखमें विशेष मगनता रहती है। मिथ्या शल्य सहित विषयसुखकी चाहसे वह अज्ञानी धर्माचरण भी करता है। जीवन सदा इष्टवियोग, अनिष्ट संयोग, रोगकी वेदना व आगामी भोगाकांक्षाके होनेसे सदा दुःखमय रहता है। इन सब दुःख और चिंताओंको मेटनेवाला सम्यग्दर्शनका लाभ है। सम्यक्तके होते ही आत्मज्ञान व आत्मानुभव होजाता है। इसीसे सर्व रागादि मल दूर होजाते हैं, कर्मोंके वश जल जाते हैं। सम्यग्दर्शन बड़ा उपकारी है। इसके होते ही निर्वाणकी रुचि पैदा होजाती है, अतीन्द्रिय सुखकी श्रद्धा होजाती है, संसार सुखकी रुचि मिट जाती है, सर्व विकथाओंमें रंजायमान होनेका भाव मिट जाता है, पर्याय बुद्धिका अहँकार व ममकार दूर होजाता है। आत्मानन्दका स्वाद ही सम्यक्तीको रुचता है। वह निरन्तर ज्ञानानन्दमें मगन रहता है। इसीसे कर्मोंका क्षय होता जाता है। आत्मज्ञानका अनुभव ही एक दिन आत्माको परमात्मपदमें सुशोभित कर देता है। कर्मोंके नाशकी एक मात्र औषधि आत्मज्ञानकी रमणता है।

ममलपाहुड

श्री योगेन्द्रदेव योगसारमें कहते हैं—

अजरु अमरु गुणगणणिलउ जहिं अप्पा थिर थाई । सो कम्महि ण वि बंधयउ संचियपुव्व विलाइ ॥ ८९ ॥
जो सम्मत्तपहाणु बुहु सो तयलोय पहाणु । केवलणाण वि लहु लहई सासयसुक्खणिहाणु ॥ ९० ॥
जह सलिलेण ण लिप्पियइ कमलणिपत्त कया वि । तह कम्मेण ण लिप्पियइ जइ रइ अप्पसहावि ॥ ९१ ॥
जो समसुक्खणिलीण बुहु पुण पुण अप्प मुणेइ । कम्मक्खउ करि सो वि फुडु लहु णिव्वाण लहेइ ॥ ९२ ॥

भावार्थ—जो कोई आत्मा अजर, अमर, गुणोंके समुदायरूप आत्मामें स्थिर होता है वह कर्मोंको नहीं बांधता है, पूर्व संचित कर्मोंको क्षय करता है ॥ ८९ ॥ जिसके सम्यग्दर्शनका लाभ होगया है वह तीन लोकमें उत्तम है, वही केवलज्ञानको पाता है, वही अविनाशी सुखके भंडारको भोगता है ॥ ९० ॥ जैसे कमलिनीका पत्ता कभी भी पानीसे लिप्त नहीं होता वैसे जो कोई आत्माके स्वभावमें रमण करता है वह कर्मोंसे नहीं बंधता है ॥ ९१ ॥ जो कोई समताभाव सहित आनन्दमें मगन होकर बारबार अपने आत्माको ध्याता है वह कर्मोंका क्षय करके शीघ्र ही मोक्षका अधिकारी होजाता है ॥ ९२ ॥

(४९) विवान अर्क गाथा ९८६ से १०१५ तक।

विवान विन्यान स उत्तं, विवान दिस्टि नन्त संदरसं ।
विवान न्यान विन्यानं, विवानं वीय नन्तनन्ताई ॥ १ ॥
विवान सुक्ख सुइ नन्तं, नन्त चतुस्टं च सुयं सुइ सुवनं ।
नन्तानन्त अनन्तं, अनन्त सुभावेन नन्तं परवंसं ॥ २ ॥
विवान अर्क सुइ अर्क, अर्क सुइ अर्क उवन संदर्स ।
उवन उवन सुइ विलनं, अर्क अर्कस्य मुक्ति गमनं च ॥ ३ ॥
अर्क अर्क अनन्तं, अनन्तं सुभावेन नन्त परवेसं ।
नन्तानन्त सु गमनं, गमनं अगम्य सिद्धि सम्पत्तं ॥ ४ ॥

अर्क अर्क स लष्यं, लष्यं अर्क अलष्य रूवेन ।
अलषं अलष्य लषनं, कर्न कमलस्य सिद्धि सम्पत्तं ॥ ५ ॥
अर्क गमन सहावं, गमनं अर्कस्य अगम रूवेनं ।
दर्सं उवन सहावं, उवनं आकर्न कमल निव्वानं ॥ ६ ॥
अर्कं इस्ट उवन्नं, इस्टं अर्क च उवन सुइ रूवं ।
उवन उवन सुइ उवनं, उवनं सुइ कर्न कमल निव्वानं ॥ ७ ॥
अर्क हिययार स उत्तं, हियार अर्क हुवयार संजुत्तं ।
उवन सुहाइ सु उवनं, उवनं सुइ कलन कर्म उव उवनं ॥ ८ ॥
अर्क मित मित्तानं, मितं प्रवेस मिलन सुइ चरनं ।
चरनं उवन सहावं, उवनं कमलस्य कर्न सुइ रमनं ॥ ९ ॥
अर्क परिनत रूवं, परिनै सहावेन प्रमान दर्संति ।
प्रमानं मुक्ति सरूवं, मुक्ते कमलस्य कर्न मुक्तं च ॥ १० ॥
अर्क कोमल रूवं, कोमल सहकार ललित सुइ सुवनं ।
ललित चरन सिय चरनं, चरनं कमलस्य कर्न निर्वानं ॥ ११ ॥
अर्क ललित उवन्नं, ललित सहावेन ममल रूवेन ।
ममल सियं धुव ममलं, ममलं कमलं च केवलं न्यानं ॥ १२ ॥
ममल उवन सुइ सुवनं, ममलं उवन्न अवयास संजुत्तं ।
अवयास गमल सुइ कलनं, कलनं कमलं च कर्न निर्वानं ॥ १३ ॥

ममलपाहुड
॥४०७॥

विवान समय उव सुवनं, सुवनं हुव हेय सहाव सुवनं य ।
सह अवयास स ममलं, साहिय सुसमय अवयास सिद्धानं ॥ १४ ॥
विवान समय सुइ समयं, समयं उववन्न समय सुइ गमनं ।
समय अगम सुइ गमनं, समयं सह समय मुक्ति ठिदि रमनं ॥ १५ ॥
महुवा अर्क सु समयं, समयं सुइ अर्क सिद्धि ठिदि रमनं ।
समय विवान स चरनं, समय सहावेन महुवा सुइ उवनं ॥ १६ ॥
महुवा अर्क सु समयं, अर्क ममलं च महुवा निर्वानं ।
महुवा अर्क सु समयं, अर्क ममलं च महुवा निर्वानं ॥ १७ ॥
महुव अर्क सुइ साहं, कमलं उववन्न कर्म सुइ समयं ।
समय कलन सुइ उवनं, कलनं कमलं च केवलं न्यानं ॥ १८ ॥
महुव अर्क सम साहं, साहं ससमय विवान समयं च ।
उवनहि यार सहावं, महुव सहावेन प्रहर परमानं ॥ १९ ॥
प्रहरं अर्क सु सहियं, अर्क विवान कमल अवयासं ।
कमल कलन उववन्नं, साहिय सुइ कर्म कलन कमलं च ॥ २० ॥
विवान अक सुइ प्रहरं, प्रहरं सुइ समय उवन निर्वानं ।
प्रहरं सहाव सु उवनं, दुति प्रहरं च अर्क ममलं च ॥ २१ ॥
दुति प्रहरं च विवानं, विवान समय कलन कर्नं च ।
दुति सहाव सुइ अर्कं, दिप्ति उव उवन दिगन्त नन्तानं ॥ २२ ॥

दिप्ति उवन दिपि दिपियं, दिप्ति दिस्टं च दिस्टि दिष्ती च ।
दिस्टि दिप्ति सुइ समयं, कलन कमलं च उवन सुइ उवनं ॥ २३ ॥
कमलं कलन सुचरनं, अर्क सम उवन सहियं कर्मं ।
कमलं कर्म सजोयं, संजोय समय सिद्धि संपत्तं ॥ २४ ॥
दिप्ति अर्क सुइ समयं, रमनं षट् रमन अर्ह सुभावं ।
दिप्तिं अर्थ सुभावं, तीसं महि उवन उवन परमानं ॥ २५ ॥
तस्य समय विवानं, उव उवन पयोग अर्क सुइ सुवनं ।
ति अथ पट् कमलं, उववन पयोग वर्ष सुइ सुवनं ॥ २६ ॥
सो उववन ति अथ, कमलं दह दर्स दिप्ति सुइ सुवनं ।
सै तीनि साढि सुय सुवनं, वर्ष सुइ नन्त काल सिधि रमनं ॥ २७ ॥
विवान समय सुभावं, कलनं सुइ कालय कर्म ममलं च ।
तारन तरन सहावं, कमलं सुइ कर्न सिद्धि सम्पत्तं ॥ २८ ॥
विवान समय सुइ उवनं, उत्तं सुइ उवन केवलं न्यानं ।
तित्थयर रमन सुइ रमनं, उत्तं तित्थयर समय सिद्धानं ॥ २९ ॥
तारन तरन सु ममलं, ममलं सुइ कलन कमल सुइ कर्न ।
समय विवान सु समयं, सह समय सिद्धि सम्पत्तं॥ ३० ॥

अन्वय सहित अर्थ— विवान विन्यान स उत्त) श्री अरहन्त भगवान ज्ञानरूपी जहाज कहे गए हैं (विवान दिस्टि नत सदर्स) इस ज्ञानरूपी जहाजमें अनन्त दर्शन भी देखा जाता है (विवान न्यान विन्य नं) इस जहाजमें केवलज्ञान भी है (विवान वीय नत नताई) इस जहाजमें अनन्तवीर्य भी है ॥ १ ॥

ममलपाहुड

(विवान सुक्ख सुइ नत) इस जहाजमें अनन्त सुख भी है (नं चतुष्टे च सुयं सुइ सुवनं) इसतरह चार अनन्त चतुष्टय यहां स्वयं प्रकाशित हैं इसीसे यह पूज्यनीय हैं (नंन न नत) ये चारों ही स्वभाव अनन्तानन्त शक्तिको धरनेवाले हैं (अनंत सुभावेन अनन्त पावेस) ज्ञानका स्वभाव अनन्त है इसलिये उनमें अनन्त पदार्थोंका स्वरूप व्याप्त होरहा है ॥ २ ॥

(विवान अर्क सुइ अर्क) यह जहाज सूर्य समान है। श्री अरहंत स्वय सूर्य हैं (अर्क सुइ अर्क उवन संदर्सी) यह सूर्य समान तेजस्वी पूर्ण प्रकाशको दिखला रहे हैं अर्थात् श्री अरहन्त वीतरागता सहित ज्ञानदर्शन गुण धारी हैं (उवन उवन सुइ मिलन) उदय होते होते यह सूर्यसम होगए हैं। जब भेदविज्ञान पूर्वक आत्मानुभव होता है तब आत्मा बाल सूर्यके समान होजाता है। जब केवलज्ञान होता है तब पूर्ण तेज स्वरूप सूर्य समान होजाता है (अर्क अर्कस्य मुक्ति गमन च) हरएक अरहन्त सूर्य दूसरे अरहन्त सूर्यके बराबर है, सब ही मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

(अर्क अर्क अनतं) श्री अरहन्त सूर्य अनन्त किरणरूप शक्तियोंके धारी हैं (अनन सुभावेन नत पवेस) अनन्त स्वभाव रखनेके कारण अनन्त लोकालोक उनके ज्ञानमें व्याप्त है (नतानत सुगमन) वे अनन्तानन्त गुण पर्यायोंको भलेप्रकार जान रहे हैं (गमनं अगम्य सिद्धि स च) उन्होंने इंद्रियातीत आत्माको प्रत्यक्ष अनुभव किया है, वे अवश्य सिद्धिको प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

(अर्कं अर्क स लष्यं) इस सूर्यका लक्ष्य स्वयं सूर्य ही है। यह अरहन्त आप आपमें मगन हैं (लष्य अक अलष्य रूवेन) वे स्वाभाविक अतीन्द्रिय ज्ञानसे अपने आत्म सूर्यका अनुभव कर रहे हैं (अलष्यं अलष्य लषन) जिस अतीन्द्रिय आत्माको इंद्रियें व मन नहीं अनुभव कर सक्ते हैं उसका उन्होंने अनुभव किया है (कर्नं कमलस्य सिद्धि स च) यह आत्म सूर्य अपने ही आत्म कमलके विकसित करनेका कारण है। अर्थात् केवलज्ञान होते ही आत्मारूपी कमल अपने स्वभावमें प्रफुल्लित होजाता है फिर अरहन्त सिद्धिको प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥

(अर्क गमन सहावं) यह अरहन्त सूर्य परिणमन स्वभावको धरनेवाले हैं (गमन अर्कस्य अगम रूवेन) इस सूर्यका परिणमन स्वाभाविक बहुत ही सूक्ष्म अगुरु लघु गुणके द्वारा होजाता है जो स्थूल बुद्धिके अगोचर

है (दसै उवन सहावं) वहां उदयरूप स्वभाव दिखलाई पड़ता है (उवन आकर्न कमल निव्वानं) जैसा सुना है यही उदयरूप कमल समान अरहन्त प्रभु निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं ॥ ६ ॥

(अर्क इस्ट उवन्न) यह सूर्य परम इष्ट व कल्याणकारी है, इसका उदय होगया है (इष्ट अर्क च उवन सुइ रूव) यह हितकारी सूर्य स्वयं अपने स्वभावमें उदयरूप हैं (उवन उवन सुइ उवन) यह उदय होते होते उदय हुए हैं (उवन सुइ कर्न कमल निव्वान) यह उदयरूपी कमल स्वयं निर्वाणरूप होजाता है ॥ ७ ॥

(अर्क हिययार स उत्तं) यह सूर्य बडे हितकारी कहे गए हैं (हियार अर्क हुवयार सजुत्त) इस हितकारी सूर्यसे बडा उपकार होता है, दिव्यवाणीका प्रकाश होता है जिससे अनेक जीव मोक्षमार्गका लाभ करते हैं (उवन सहाव सु उवन) यह अपने स्वभावसे उदयरूप है (उवन सुइ कलन कर्न उव उवन) यह उदय होकर अपने स्वभावमें रमण करते हुए उदय रहते हैं ॥ ८ ॥

(अर्क मित मिचान) यह अरहन्त सूर्य असंख्यात प्रदेशी होकर अपने शरीरप्रमाण मर्यादाको रखनेवाले हैं (मित्त पवेस मिलन सुइ चरन) इसी शरीर प्रमाण आकारमें ही स्वयं प्रवेश होकर एकमें एक होकर मिल गए हैं यही स्वरूपमें आचरन है (चरनं उवन सहावं) स्व चारित्र भी उदय स्वभाव है, सदा उदय रहता है (उवन कमलस्य कर्न सुइ रमन) यह सूर्य आत्मारूपी कमलके विकसित करनेका कारण है तथा उसी प्रफुल्लित कमलमें यह आप ही रमण करते हैं ॥ ९ ॥

(अर्क परिनत रूव) यह अरहंत सूर्य परिणमन स्वभाव है (परिनै सहावेन प्रमान दसैति परिणमन करते हुए अपने केवलज्ञान प्रमाणको दिखलाते हैं। केवलज्ञानमें त्रिकालवर्ती ज्ञेयोंका जैसा परिणमन होता है वैसा झलकता है,इस अपेक्षा भी अरहंत सूर्य परिणमनशील है (पमानं मुक्ति सरूव) यह केवलज्ञान प्रमाण परम शुद्ध मुक्त स्वरूप है (मुक्ते कमलस्य कर्म मुक्तं च) यह कमल समान आत्माको मुक्त करके मुक्ति पहुंचा देता है ॥ १० ॥

(अर्क कोमल रूव) यह अरहंत सूर्य परम कोमल मार्दव स्वभावधारी परम शांत हैं (कोमल सहकार ललित सुइ सुवन) अपनी कोमलताके कारण यह बहुत ही ललित हैं, सुन्दर हैं तथा परम पूज्यनीय हैं (ललित चरन सिप चरन) श्री अरहन्तका चारित्र बड़ा ही सुन्दर है, उनका परम शुद्ध आचरण है, वहां शुक्लेश्या है व वीतराग भाव शोभनीक है (चरन कमलस्य कर्न निर्वान) वे अरहन्त सूर्य आत्मकमलको अपने आचरणसे प्रफुल्लित करके निर्वाण पहुंचा देते हैं ॥ ११ ॥

(अर्क ललित उवन्न) यह अरहंत सूर्य बडे सुन्दर रूपमें उदयरूप हैं (ललित सहावेन कमल रूवेन) सुन्दर स्वभाव होते हुए कमलके समान प्रफुल्लित हैं (ममल सिय ध्रुव ममल) यह कममल रहित हैं, शुक्लेश्या धारी हैं, ध्रुव रूपसे शुद्ध हैं फिर कभी अशुद्ध नहीं होंगे (ममल कमल च केवल न्यान) यह शुद्ध कमल अरहन्त केवलज्ञान स्वरूप हैं ॥ १२ ॥

(ममल उवन सुइ सुवन) यह अरहन्त सूर्य शुद्धतासे उदयरूप हैं तथा पूज्यनीय है (ममलं उवन्न अवयास सजुत्त) शुद्ध अरहन्त सूर्यमें बडा भारी अवकाश है, सर्व ज्ञेय ज्ञानमें झलकते हैं (अवयास ममल सुइ कल्न) वे शुद्ध ज्ञानका ही अनुभव कर रहे हैं (कल्न कमलं च कर्न निर्वान) यह अपने कमल स्वभावमें रमण करते हुए निर्वाणको पहुंच जाते हैं ॥ १३ ॥

(विवान समय उव सुवन) यह अरहन्तका आत्मारूपी जहाज, परम पूज्यनीय है (सुवन हुव हेय सहाव सुवन च) उन्होंने पहले घातक कर्मोंको घात करके अपना पूज्यनीय स्वभाव प्राप्त किया है (सह अवयाव स ममल) इसलिये वे अनन्तज्ञान सहित हैं व वीतराग हैं (साहिय सुममय अवयास सिद्धान उन्होंने अपना स्व-समय या स्वरूपाचरण चारित्रको तथा पूर्णज्ञानको पाकरके सिद्धपदका साधन कर लिया है ॥ १४ ॥

(विवान समा सुइ समय) यह अरहन्त आत्मा जहाजके समान तारण तरण हैं सो ही आत्मीक स्वभाव रूप हैं (मनय उववन्न समय सुइ गमनं) वहां आत्माका स्वरूप उदयरूप है। वे अरहन्त आत्मा परिणमनशील हैं, अपनी स्वाभाविक परिणतिमें परिणमन करते हैं (समय अगम सुइ गमनं) उस आत्माका परिणमन अगम्य है, अति सूक्ष्म है, केवलज्ञानगोचर है (समय सह समय मुक्ति ठिदि रमन) वे अरहन्त आत्मा स्वरूपाचरण सहित मुक्तिको पाकर उस मुक्तिमें सदा स्थिर रहते हैं व आनन्दमें रमण करते रहते हैं॥१५॥

(महुवा अर्क सु समय बह अरहन्तका आत्मा महुवाका अर्क है। अर्थात् मदिराके समान है। आत्मानुभव करनेसे जो आनन्दामृत पैदा होता है, उसकी उपमा मदिरासे दी है। जैसे मदिरा पीनेवाला उन होजाता है वैसे अरहन्त परमात्मा अपने आनन्दके मदमें लवलीन हैं (समय सुइ अर्क सिद्धि ठिदि रमन) आत्मा है वही मदिरा है, वही सिद्धि है, वही आत्मस्थिति है, वही स्वरूप रमण है, इन सबका भाव एक ही है। जब आत्मा आत्मामें तन्मय होता है तब ही मदिरा जेसी दशा होती है, तब ही आत्मसिद्धि होती है, तब ही आत्मस्थिति होती है, तब ही स्वरूपमें रमण होता है। (समय विवान स

चान) वही आत्मा जहाज स्वचारित्र रूप है (समय सहावेन महुवा सुइ उवन) वह अपने आत्मीक स्वभावसे ही महुवाकी मदिरारूप होरहे हैं, उनका उपयोग आत्मस्थ है ॥ १६ ॥

(महुवा अर्क सु समय) यह स्वचारित्र रूप आत्मा ही महुवाका अर्क या मदिरा है (अर्क ममल च महुवा निर्वानं) यही सूर्य है, यही शुद्ध है, यही मद्यरूप है, यही निर्वाण स्वरूप है (महुवा अर्क सु समय) यह आत्मा ही मदिरा है (अर्क ममल च महुवा निर्वान) यही सूर्य है, यही शुद्ध है, यही मद्य है, यही निर्वाण है ॥१७॥

(महुव अर्क सुइ साह) मदिराकी ही साधना करनी होती है। स्वात्मानन्दके भावसे ही स्वात्मानन्दकी रमणता रूपी मदिरा बनती है (कमल उववन कर्म सुइ समय) उसी अवस्थाको कमलका विकास कहते हैं, वही मोक्षका कारण है, वही आत्मारूप है (समय कलन सुइ उवन) वही आत्माके भीतर मगनता है, वही उदयरूप भाव है (कलन कमल च केवल न्यान) वही स्वात्मरमण कमलरूप है, वही केवलज्ञान है ॥ १८ ॥

(महुव अर्क सम साह) समताभावकी साधना ही मदिरा है (माहं स समय विशान समय च) वही स्वसमयकी व तारण तरण जहाज सम आत्माकी साधना है (उवन हियार सहाव) तब परम हितकारी स्वभाव प्रगट होजाता है (महुव सहावेन प्रहर परमानं) इस मादक स्वभावसे कर्मोंको भलेप्रकार घात करनेवाला ज्ञान प्रकाशमान होजाता है अर्थात् स्व समाधिकी तल्लीनतासे ही घातीय कर्मोंका घात होता है ॥ १९ ॥

(प्रहर अर्क सु महियं) यह आत्मारूपी सूर्य कर्मोंका घातक है (अर्क विवान कमल अवयासं) यही सूर्य जहाज है, यही कमल है, यही आकाश समान अनन्तज्ञानको अवकाश देनेवाला है (कमल कलन उववन्न) यहां आत्मारूपी कमल अपनेमें तन्मयस्वरूप प्रकाशित है (सहिय सुइ कर्म कलन कमलं च) इसी साधनासे स्वात्मरमणरूप कमलकी साधना की जाती है ॥ २० ॥

(विवान अर्क सुइ प्रहर) जो जहाज है, वही सूर्य है, वही कर्म चूरक वज्र है (प्रहर सुइ समय उवन निर्वान, जो वज्र है, वही आत्मा है। उसीके निर्वाणका उदय होता है (प्रहर सहाव सु उवन) आत्मा वज्रमई स्वभावसे प्रगट होता है (प्रति प्रहर च अर्क ममलं च) इस वज्रकी जो क्रांति है वही निर्मल सूर्यका प्रकाश है॥२१॥

(प्रति प्रहर च विवानं) इस वज्रकी जो क्रांति है अर्थात् स्वानुभव है वही जहाज है (विवान समय कलन कर्न च) यही जहाज आत्मामें रमणरूप है व मोक्षका कारण है (प्रति सहाव सुइ अर्क) इस आत्माका ज्योति-

मय स्वभाव है वही सूर्य है (दिप्ति उव उवन दिगत नतानं) इस ज्ञान ज्योतिकी चमक अनन्त दिशाओंमें व्याप्त है, अर्थात् ज्ञान लोकालोक प्रकाशक है ॥ २२ ॥

(दिप्ति उवन दिपि दिपिय) इस अरहन्त परमात्मामें जो ज्योतिका उदय है वह चारों ओर चमक रहा है (दिप्त दिस्ट च दिस्टि दिप्ती च) यहां क्षायिक सम्यक्तका प्रकाश है व अनन्तदर्शनका प्रकाश है (दिस्टि दिप्ति सुइ समय) ज्ञानदर्शनादि ज्योतिमई ही आत्मा है (कलन कमलं न उवन सुइ उवनं) यही स्वात्मरमणरूप कमल है, यह प्रकाश रूप है ॥ २३ ॥

(कमल कलन सु चरनं) आत्मारूपी कमलमें रमण करना ही स्वचारित्र है (अर्क सम उवन सहिय कर्न) यही सूर्य है, यहीं समभावका उदय है, यहीं मोक्षमार्गकी साधना है (कमल कर्न सजोय) इस कमलमें रत्नत्रयरूपी मोक्षमार्गका संयोग है (सजोय समय सिद्धि सपत्त) रत्नत्रयकी एकतारूपी आत्मा होनेसे ही आत्मा सिद्धिको पालेता है ॥ २४ ॥

(दिप्ति अर्क सुइ समयं) परम ज्योतिरूप सूर्यसमान आत्मा है (रमन षट् रमन अर्ह सुभावं) यही अरहंत स्वभावरूप है और अपने छः शुद्ध रमणीक गुणोंमें रमन कर रहे हैं अर्थात् अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्र (दिप्ति अर्थ सहाव) यह ज्ञान ज्योति आत्मा-रूपी पदार्थका स्वभाव है (तीस महि उवन उवन परमानं) जंबूद्वीप, धातुकी खंड व पुष्करार्द्धमें भरत ऐरावत आदि ३० क्षेत्र हैं अर्थात् ढाई द्वीप भरसे आत्मा केवलज्ञानकी प्राप्ति करके मोक्ष जाता है। विदेह भरत ऐरावतमें तो कर्मभूमि है, मोक्षमार्ग चलता है, भोगभूमिमेंसे उपसर्ग प्राप्त केवली सिद्धगति पाते हैं ॥२५॥

(तस्य समय निव्वान) निर्वाण प्राप्तिका यही समय है (उव उवन पयोग अर्क सुइ सुवनं) जब कभी उपयोग सूर्य समान शुद्ध ज्ञानमय होजावे व पूज्यपना प्रगट होजावे। अर्थात् अर्हंत आयुकर्मके क्षयसे अवश्य मोक्ष प्राप्त करते हैं (ति अर्थ षट् कमल) वे ही रत्नत्रयमई पदार्थ हैं, वे ही ऊपर कहे प्रमाण छः गुणोंके धारी अर्हंत-रूपी कमल हैं (उववन पयोग वर्ष सुइ सुवनं) जिस क्षेत्रमें केवलज्ञानका उपयोग प्रगट होता है, जहां शुद्धोप-योगरूप सिद्ध भाव प्रगट होता है वह क्षेत्र भी माननीय होजाता है अथवा वह वर्ष या समय भी मान-नीय होजाता है। जैसे श्री महावीरका निर्वाण दिवस व उनका निर्वाणक्षेत्र पावापुर ॥ २६ ॥

(सो उववन ति अर्थ) उस सिद्धपदमें रत्नत्रयमई पदार्थ झलक जाता है (कमल दह दर्स दिप्ति सुइ सुवन)

उस कमलमें धर्मके दश लक्षण झलकते हैं। अर्थात् उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य व उत्तम ब्रह्मचर्य, वहीं ज्ञान ज्योति परम पूजनीय हैं (सै तीन साढ़ि सुय सुवन) वे तीनसै साठ ३६० दिन पूज्यनीय हैं (वर्ष सुइ नत काल सिधि रमन) वे सिद्ध भगवान अपने सिद्ध क्षेत्रमें अनन्त काल तक अपने सिद्ध स्वभावमें रमण करते रहते हैं ॥ २७ ॥

(विवान समय सुभाव) अरहन्त आत्माका स्वभाव जहाजके समान है (कलन सुइ कलिय कमल ममल च) वे स्वात्मरमण करते हुए प्रफुल्लित कमलके समान शुद्ध हैं (तारन तरन सहाव) वे ही तारणतरण स्वभावधारी हैं (कमल सुइ कर्न सिद्धि सपत्तं) वे ही कमलके समान आत्मा आप ही सिद्ध होकर निर्वाण प्राप्त करलेते हैं ॥२८॥

(विवान समय सुइ उवनं) वे ही जहाजके समान आत्मा उदयरूप है (उत्त सुइ उवन केवलं न्यानं) वहीं प्रकाशरूप केवलज्ञान कहा गया है (तित्थयर रमन सुइ रमनं) तीर्थंकर भी स्वयं रमण करते हुए तीर्थका प्रचार करते हैं (उत्त तित्थयर समय सिद्धान) वे ही तीर्थंकर आत्मा सिद्ध होजाते हैं ऐसा कहा गया है ॥ २९ ॥

(तारन तरन सु ममल) वे अरहन्त शुद्ध तारणतरण जहाज हैं (ममलं सुइ कलन कमल सुइ कर्न) वे ही कर्म रहित निर्मल हैं, वे ही स्वात्म-रमणरूप कमल हैं, वे ही मोक्षके कारण हैं (समय विवान सु समय) वे ही आत्मा स्वचारित्ररूप जहाज है (सह समय सिद्धि सपत्त) वे ही अपने आत्मीक स्वभावको लिये हुए सिद्धिको प्राप्त कर लेते हैं ॥ ३० ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें श्री अरहन्त परमात्माकी खूब भावसे स्तुति की है। वे स्वयं तारणतरण जहाज हैं। क्योंकि वे स्वयं सिद्ध होंगे व उनके उपदेशसे अनेक भव्यजीव मोक्षमार्गका लाभ प्राप्त करके सिद्धगतिको पावेंगे। वे अरहन्त ही सूर्य समान हैं। क्योंकि वे स्वयं प्रकाशित होते हुए भी परम वीत-राग रहते हैं। वे ही कमल समान प्रफुल्लित हैं। वे ही कर्म-पर्वतोंको चूर्ण करनेके लिये वज्र समान हैं। श्री अरहन्तका आत्मा शुद्ध होगया है व वह स्वयं अपने स्वभावमें ही अनुरक्त हैं। स्वात्मानन्दमें रमण कर रहा है। अब ऐसा कोई कर्म शेष नहीं रहा जो उनकी आत्माको अशुद्ध कर सके। वे अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य व अनन्त सुखके धारी हैं। उन अरहन्त हीमें यह शक्ति है जो वे प्रत्यक्ष अमूर्तीक आत्माका दर्शन कर सके। वे द्रव्य स्वभावको धारण करते हुए अपनी स्वभाव पर्यायमें परिणमन करते हैं। वे नित्य आत्मानन्दका स्वाद लेते हैं। उनका जो कोई ध्यान व पूजन करता है वह भी उनहीके

ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, चार–चतुष्टय स्वरूप आत्मीक भाव स्वरूप है (सिद्ध सहाव सउ चरिना)वही सिद्ध स्वभाव धारी है, उसके समान और किसी द्रव्यका स्वभाव नही है ॥ २ ॥

(पत्तइ दत्त सहाउ मुनी) वे ही मुनि पात्र व दाता दोनों स्वभावके धारी है। वे ही दातार है--अपने ज्ञान स्वभावका लाभ आपको ही देते हैं। वे ही पात्र हैं जो स्वात्म लाभको आपसे ही पाते हैं (दान अनन्त चिन्तुरिना) आत्मा दातार, आत्मा पात्रको अनन्त दान किया करता है। अनन्तकाल तक आत्मीक रसका दान देना रहता है। इस दानके समान और कोई दान नही होसक्ता है (पत्तजु उत्तहु जिनवर हु) श्री जिनेन्द्रने जो पात्र बताया है वह उत्तम पात्र यह ज्ञानी आत्मा है (पत्त जु दत्त संजुत्त रेना , वही पात्र है, वही दातार है। ऐसा संयोग और कही नही है जो आप ही दाता हो व आप ही पात्र हो ॥ ३ ॥

(पत्तइ दत्त विसेष मुनी) यह विशेष आत्मध्यानी मुनि पात्र भी है, दातार भी है (रयन रयन सरूवरिना) यह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रमई रत्नत्रय स्वभावमें रत हैं। इनके ऐसा स्वरूप और नही है (न्यान विन्यान सु समय मउ) वे ही ज्ञान स्वरूप हैं, भेदविज्ञान स्वरूप हैं, वे ही स्वसमय रूप हैं। आप अपने आत्मीक स्वभावमें तल्लीन हैं (पत्त दत्त जिनुचरिना) विषय कषायको जीतनेवाले जिनके समान न कोई पात्र है न कोई दातार है ॥ ४ ॥

(कमल सहावे पत्त जुई) जो पात्र मुनि हैं वे कमलके समान प्रफुल्लित अपने स्वभावमें लीन हैं (सिद्ध सरूव स उत्त रेना) वही सिद्ध भगवानके समान स्वरूप है जिसके समान और कोई रूप नहीं है (कारन कार्ज कमल रुई) अपने आत्मारूपी कमलमें रुचि या प्रीति वही कारण है, वही कार्य है। आत्मरुचिसे ही प्रतीति गाढ होती जाती है। चतुर्थ गुणस्थानमें जो आत्मरुचि रूप सम्यग्दर्शन है वही बढते बढते श्रुतकेवली मुनिके अवगाढ सम्यक्त होजाता है। आत्मरुचि ही दातार है, आत्मरुचि ही पात्र है। आपसे आपको मनन करनेसे आत्माका स्वभाव पुष्ट होता जाता है (दत्त सहाव स उत्तरिना) आत्माकी गाढ रुचिके समान कोई दातार नही है। सम्यग्दर्शन ही आत्माको आत्मानन्द प्रदान करता है। आत्माको पुष्ट करते करते उसको सिद्ध बना देता है ॥ ५ ॥

(रमियो न्यान सहाव रुई) जो ज्ञानी ज्ञान स्वभावको ध्यानमें लेकर उसीमें रमण करते हैं (जिनियो कम्म अनतुरिना) वे ही अनन्त कर्मोंको जीत लेते हैं, उनके समान और विजयी वीर कौन होसक्ता है (मने

रमियो ममल पऊ) वे ज्ञानी रमणीक शुद्ध आत्मीक पदमें रमण करते हैं (तिविह कम्म लयतुरिना) जिससे तीनों प्रकारके कर्म नाश होजाते हैं–रागद्वेषादि भावकर्म, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, व शरीरादि नोकर्म, तीनों ही कर्मोंके कारण कर्मोंकी निर्जरा होती जाती है ॥ ६ ॥

(लंकृत सहियो पत्त जुई) जो मुनि पात्र हैं वे अपने स्वभावमें शोभायमान हैं (लीन सहाव सुदत्तुरिना) वे जब स्वभावमें लीन होते हैं तब जो दान अपने आत्माको देते हैं जो ज्ञानानन्द प्रदान करते हैं उसके समान न कोई दान है न उसके समान कोई दातार है (सुद्धह सुद्ध सहाव गई) शुद्ध भावसे शुद्ध भाव बढता जाता है अर्थात् जितना जितना शुद्ध आत्मध्यान किया जाता है उतना २ शुद्ध भाव अधिक होता जाता है, यही शुद्ध भावका दान है। (मुक्तिपथ दरसतुरिना) इस स्वात्मानुभवमें जहां आप ही दातार होकर आप ही अपने पात्रको ज्ञानानन्द व शुद्ध भावका दान होता है मुक्तिका मार्ग झलक रहा है ऐसा आदर्श मोक्षमार्ग दूसरा कोई और नहीं होसक्ता है ॥ ७ ॥

(जय विन्याय सजुत्त सुई) वे ही ज्ञानी भेदविज्ञान सहित हैं, उनकी जय होरही है (ममल सहाव सुदत्तु-रिना) वे ही निर्मल स्वभावके धारी हैं, उनके समान और कोई उत्तम दाता नहीं है (परिनै सहियो दत्त सुई) वे अपने स्वभावमें स्वरूपमें परिणमन करके आप ही अपनेको आत्मीक रसका दान करते हैं (परमानह केवल दिष्टिरिना) उनकी शुद्ध आत्मदृष्टि स्वाधीन है, उसीमें प्रमाणमयी सम्यग्ज्ञान है। जैसे केवलज्ञान स्वाधीन है वैसे स्वात्म मननरूप ज्ञान स्वाधीन है। इस समान कोई और प्रमाण नहीं है ॥ ८ ॥

(मय मूरत पत्तजु न्यान मऊ) वे ज्ञानी पात्र मानो ज्ञानमई मूर्ति ही हैं वे सर्वांग आत्मरसमें लीन हैं उनके भीतर ज्ञानचेतना विराज रही है, वे ज्ञानका ही स्वाद लेरहे हैं (समय सहाव सुदत्तुरिना) वे ही आत्माके स्वभावमें रत हैं। आप ही अपनेको स्वात्मानन्द रस देरहे हैं। उनके समान कोई उत्तम दातार नहीं है (नंनानत सु पाहु मुनी) वे मुनिराज अनन्तानन्त गुणोंके पात्र हैं। उनकी आत्मामें अनन्त वीर्यादि गुण शोभायमान हैं (सहकारह नंत सुदत्तुरिना) वे ही उत्तम दातार हैं जो अनन्त शक्तिका प्रकाश आपको अपनेसे देते हैं। उनके समान कोई दातार नहीं है ॥ ९ ॥

(नानाप्रकार न्यान सहियो पत्तु जिनेन्द्रह उत्तरिना) नानाप्रकार ज्ञेयोंको जाननेके कारण नानाप्रकार ज्ञानके धारी श्री जिनेन्द्र भगवानके समान और कोई उत्तम पात्र नहीं है (दत्त सहाव विन्यान मउ) जो आपसे

आपको ज्ञान स्वभावका दान करते हैं इससे दातार भी हैं (अवयासह नंत्रा नंतुरिना) उस ज्ञानमें आकाशके समान अनन्तानन्त ज्ञानशक्ति विद्यमान है, उस केवलज्ञानके समान और कोई ज्ञान नहीं है ॥ १० ॥

(दत्तइ पत्त विशेष मुनी) वे विशेष आत्मध्यानी मुनि दातार भी हैं, पात्र भी हैं (अ मोयइ मजुव उत्तगिना) वे जिस आनन्दको भोगते हैं उस आत्मानन्दके समान और कोई आनन्द नहीं है (न्यान विन्यानइ धर्म पऊ) वे स्वात्मानुभवरूप परम पदमें तिष्ठते हैं (सिद्धइ भत्ति सुभावुरिना) मुक्ति स्वभावकी सिद्धिका इससे बढकर दूसरा उपाय नहीं है ॥ ११ ॥

(अन्मोयइ नंत विशेष मुनी) यह विशेष आत्मध्यानी मुनि अनन्त आत्मीक आनंदमें मग्न है (पत्त दत्त सम भावुरिना) वे ही पात्र हैं, वे ही दातार हैं। अपनेसे अपनेको जिस समताभावको प्रदान करते हैं उसके समान समभाव और नहीं है (दिस्ट दिस्ट अन्मोय मऊ) उन्होंने आनन्दमई आत्मदर्शनको देखा है या अनुभव किया है (नंदानंद मंजुत्तरिना) वे जिस आनन्दमें मग्न हो रहे हैं ऐसा आत्मानन्दमें मग्न महात्मा और कोई नहीं है ॥ १२ ॥

(सयनासन समभाव समु) उनके शयनका व बैठनेका स्थान एक समभाव है, जिसके समान कोई और शयनासन हो नहीं सक्ता है (सहजानंद मंजुत्तुरिना) वे सहजानन्दमें मग्न हैं, उनके समान कोई सहजानन्दी संत नहीं है (न्यान विन्यान अन्मोय मऊ) वे आनन्दमय स्वानुभव मई स्वसंवेदन ज्ञान स्वरूप हैं (ममल सुदर्शन दिस्टिरिना) शुद्ध सम्यग्दर्शन जैसा उनके भीतर शोभायमान है वैसा और कहीं नहीं है। वास्तवमें जहां शुद्धात्मानुभव है वहां ही वास्तवमें निश्चय शुद्ध सम्यग्दर्शन है ॥ १३ ॥

(आहार न्यान सो ममल पऊ) वे निर्मल पदमें रहकर आत्मज्ञानका ही आहार करते रहते हैं। वे आत्मीक रसमें तृप्त रहते हैं (मइकाइ संजुत्तुरिना) जिस तरह वे आत्मानुभव करके आत्मरसको वेदते हैं ऐसा आत्मवेदी दूसरा नहीं है (विंजन विन्यानइ महियो) वे प्रगट आत्माके भी विज्ञानको रखनेवाले हैं (दुद्धर धरिउ महाउगिना) जिस आत्माके स्वभावका ग्रहण या अनुभव अति कठिन है उस दुर्द्धर स्वभावको ग्रहण करनेवाला या अनुभव करनेवाला उनके समान दूसरा नहीं है ॥ १४ ॥

(हिदे दरसिउ ममल पऊ) उन्होंने अपने हृदयमें या अपने भीतर निर्मल आत्मीक पदका दर्शन किया है (ममल न्यान मइक्कारुरिना) जो शुद्ध ज्ञान उनके भीतर झलक रहा है उसके समान और कोई कारण

मोक्षका नहीं होसका है (पत्त दत्त विसेष मुनी) वे ही विशेष मुनि पात्र भी हैं, दातार भी हैं (न्यानी न्यान अन्मोयरिना) वे ज्ञानी हैं, ज्ञानके आनन्दको लेनेवाले हैं ॥ १५ ॥

(सिद्ध सरूवे पत्त मुनी) उन मुनियोंने सिद्ध स्वरूपको अपने अनुभवमें पा लिया है इसलिये वे पात्र हैं (न्यान सहावे दत्तरिना) ज्ञान स्वभावी आत्मामें ही स्वानुभवका दान किया है। उसके समान कोई दाता नहीं है (सिद्ध सरूवे सिद्ध पऊ) सिद्ध स्वरूपमें रमण करनेसे सिद्ध पदका लाभ होता है (न्यान सरूवे मुक्तिरिना) ज्ञान स्वरूपी आत्मा ही मुक्ति स्वरूप है, इसके सिवाय और कोई मुक्ति नहीं है ॥ १६ ॥

(अन्मोयह स सहाव मुनी) वे मुनिराज आनन्दमय अपने स्वभावमें मग्न हैं (सिद्धइ मुक्ति सहावुरिना) मुक्तिके सिद्ध करनेका और कोई आत्म-स्वभाव नहीं होसक्ता है अर्थात् स्वात्मानन्दका जहां लाभ है वहीं मुक्तिका उपाय है (कमलह कमल सहाव रुई) उनकी कमल समान आत्माने कमल समान प्रफुल्लित आत्मीक स्वभावको ग्रहण कर लिया है। (अर्थति अर्थ सउत्तुरिना उन्होंने सर्व पदार्थोंमें उत्तम आत्म पदार्थको पालिया है जिसके समान कोई और पदार्थ नहीं है ॥ १७ ॥

(पच न्यान परमेस्टि मऊ) श्री अरहन्त परमेष्ठीमें पांचों ही ज्ञान हैं अर्थात् मुख्यतासे केवलज्ञान है उसीमें चार ज्ञानका विषय भी गर्भित है (न्यान अन्मोय विसेषुरिना) उस केवलज्ञानमें आनन्द अनुभवके समान और कोई आनन्द नहीं है (न्यान न्यान सुवृद्धि पऊ) ज्ञानहीके द्वारा ज्ञानकी वृद्धि होती हुई सर्वोत्कृष्ट केवलज्ञानका पद प्रगट होता है (ममल न्यान परमसुरिना) वही शुद्ध ज्ञान है, वही परमार्थ या निश्चय असल ज्ञान है। उसके समान कोई और ज्ञान नहीं है ॥ १८ ॥

(चष्यह मिलियो दिष्टि मऊ) उनका चक्षुदर्शन आत्मदर्शनमें मिल गया है अर्थात् जो चक्षुसे नहीं देखते हैं अर्द्धोन्मीलित ध्यानमई नेत्र हैं उनके इंद्रियोंके द्वारा व मनके द्वारा दर्शनोपयोग व ज्ञानोपयोग काम नहीं करते हैं, वे अतीन्द्रिय केवलदर्शन व केवलज्ञानके धारी हैं (अचष्यह न्यान सु उत्तरिना) जिनका ज्ञान इंद्रिय रहित अतीन्द्रिय है, जिस ज्ञानके समान कोई ज्ञान नहीं है (अवहि मिलियो गुपित रुई) तथा अवधिदर्शन व अवधिज्ञान गुप्त रुचिमें मिल गया है अर्थात् जो केवलदर्शन व केवलज्ञान छद्मस्थ अवस्थामें गुप्त थे अप्रगट थे जब वे प्रगट होगए तब उनहीमें अवधिदर्शन व ज्ञानका विषय गर्भित है (ममल न्यान सहकारुरिना) जो शुद्ध केवलज्ञान उनमें प्रगट है उसके समान कोई ज्ञान नहीं है ॥ १९ ॥

(पत्तइ दत्त विसेष मुनी) वह विशेष आत्मध्यानी मुनि पात्र भी है व दातार भी है (दान का पत्तु गिता) जो पात्रका लक्षण व स्वभाव है वही दातारका लक्षण व स्वभाव है। दोनोंका एकीभावमें संयोग है। ऐसा स्वभाव कहीं और नहीं है (पत्त जु उत्तः निवाण) उत्तमोत्तम पात्र श्री तीर्थंकर जिनेन्द्र कहे गए हैं (दत्त जु दान मजुत्तुगिता) वेही दातार हैं, वे ही दान हैं, अर्थात् वे अरहन्त भगवान अपनेही आपको ज्ञानानन्दका दान करते रहते हैं। जैसे दातार पात्र व दानका संयोग यहां है वैसा और जगह नहीं है ॥ २० ॥

(पत्तइ दत्त विसेषक) पात्र और दातार दोनों ही यहां विशेष हैं (तित्त गति गतारगिता) जिनमें प्रगटपने संसारके भ्रमणका भाव अब बाकी नहीं रहा है। उनमें कोई ऐसी गति व आयुका बन्ध नहीं है जिससे वे फिर किसी जन्मको धारण करेंगे (रा रत्त गात नु तित मद कलंन दिष्टि गलतुगिता) उनके जनोंको रंजायमान करनेवाला प्रगट राग भाव शरीरमें रागवर्द्धक दृष्टि सब गल गई है अर्थात वे वीतराग हैं व क्षायिक सम्यग्दृष्टी हैं। उनके समान दूसरा कोई छद्मस्थ नहीं है ॥ २१ ॥

(मनरत्त गारव विकलई) दानको गर्जा रखनेवाले घमण्डकी प्रगट रुचि (दर्शनोऽश विमुक्तगिता) तथा दर्शन मोह कर्म जो मिथ्या रुचि पैदा करके अन्धा कर देता है उनसे वे मुक्त हैं। न उनमें कोई प्रकारका अहंकार है, न मिथ्यात्वभाव है। वे मद रहित क्षायिक सम्यग्दृष्टी अपूर्व हैं, उनसा कोई नहीं है (ज्ञान आवरन न देषि पक) ज्ञानावरण कर्म क्षय होगया है इसलिये अब वह उनकी ओर नहीं देखता है। उनका ज्ञान फिर कभी आवरणको नहीं पाता है (दर्शन आल मद तुगिता) जैसा शुद्ध परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन प्रभुमें है वैसा स्वभाव कहीं दूसरेमें नहीं पाया जाता है ॥ २२ ॥

(कम्मउत्त कम्म नु सी गलिय) उनके पुनः शरीरको प्राप्त करानेवाला कर्म स्वयं गल गया है (गलिय गति ससारगिता) तथा संसार भ्रमणका मार्ग भी क्षय होगया है, अब भ्रमण न करेंगे। ऐसा महापुरुष दूसरा अल्पज्ञानी नहीं है (कुज्ञान दृष्टिमय सौ गलिय) उसके मिथ्याज्ञान व मिथ्यादर्शन स्वयं गल गये हैं (तिविह कम्म विरयंतुगिता) तथा तीन प्रकार कर्म भी विला गये हैं न वहां रागादि भाव कर्म है, न ज्ञानावरणादि घातक द्रव्य कर्म है, न ऐसे किसी कर्मका बन्ध है जिससे नया जन्म लेना पड़े। ऐसा अर्हंत परमात्मा दूसरा नहीं है ॥ २३ ॥

(न्यानी न्यान महाव मुनी) ज्ञानी मुनि आत्मीक ज्ञान स्वभावमें रत हैं (न्यान विन्यान मगुवरिता) वे

(ममल ज्ञान अन्मोय लई) उनका शुद्ध ज्ञान
भेदविज्ञान सहित स्वानुभव सहित हैं, उनसा कोई और नहीं है (सब्दे मुक्ति स उवैरिना) उनके स्वभावमें मुक्ति प्रगट है, ऐसा स्वभाव दूसरे आत्मज्ञका
आनन्दमें मग्न है
नहीं होसक्ता है ॥ २८ ॥

(न्यान दान विन्यान मऊ) वे श्री अर्हत भगवान आत्मानुभव रूपी ज्ञानका दान अपनेको करते हैं (आहार न्यान आहार मऊ)
(परम न्यान सजुत्तुरिना) वे श्रेष्ठ ज्ञानके धारी हैं, उनका कोई और अल्पज्ञ नहीं है (ममल भाव सतुष्टिरिना) वे शुद्ध भावमें जैसे
वे अपनेको ज्ञानानन्दका आहार कराते हैं यही आहारदान है
तृप्त हैं व सन्तोषी हैं वैसा कोई दूसरा नहीं है ॥ २९ ॥

(भेषज द न जु जिन कहियो) जिनेन्द्रकथित औषधिदान यह है कि (बाधा रहित सजुत्तुरिना) वे आपको
बाधारहित निराकुलताका दान देते हैं, उनकी आत्मामें कोई क्षोभ कभी उत्पन्न नहीं होता है। ऐसा दान
कहीं नहीं मिल सक्ता है (अभयदान त जिन भनियो) जिनेन्द्र कथित अभयदान यह है कि (भय विनाम त
भवुरिना) उनके सर्व भय नष्ट होगए हैं। न मरणका भय है, न वेदनाका भय है, न अकस्मात भय है, न
अनरक्षा भय है, न अगुप्त भय है, न इसलोकका भय है, न परलोकका भय है। उनके समान भव्य जीव
कोई और नहीं है ॥ ३० ॥

(दान चउ विहि उत्तिमउ) इसतरह वहां चार प्रकार दान कहे गए हैं (अमल भाव जिन दिटठुरिना) वे ही
शुद्ध भावके धारी हैं, उनके समान वीतराग भावका अनुभवी दूसरा नहीं है (पत्तइ दत्त सु अमल मुनि) इस-
तरह शुद्ध भावके धारी मुनि ही पात्र हैं व वे ही दातार हैं (अमल न्यान सिवसतुरिना) वे ही निर्मल ज्ञानके
धारी हैं, मोक्षरूप हैं, आनन्दरूप हैं, तथा वे ही सच्चे सन्त हैं। उनके समान कोई नहीं है ॥ ३१ ॥

भावार्थ—इस कथनमें दातार और पात्रका तथा चार प्रकारके दानका बहुतही मनन योग्य गम्भीर
कथन है। यहां यह बताया गया है कि उत्तम पात्र श्री आत्मध्यानी मुनि हैं जो अपने आत्मीक रसके
पानमें मग्न हैं, आत्मानुभव कर रहे हैं। इनमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र तीनों ही रत्न
विद्यमान हैं। यह ही सच्चे मोक्षमार्गी हैं। यही उत्तम दानके पात्र हैं व यह ही उत्तम दातार हैं। यह ही
दातार अपने आपको ज्ञानानन्दका दान कर हैं। इसीमें चार दान गर्भित हैं। ज्ञानका स्वाद लेना व ज्ञानको
निर्मल करना ज्ञानदान है। आनन्दका रस पिलाना आहारदान है जो परम सन्तोषकारी है। आपको बाधा

रहित निराकुल करना औषधिदान है। अपनेको सप्त भयरहित कर देना अभयदान है। उत्तमोत्तम पात्र श्री अरहन्त भगवान हैं। वे केवलज्ञानी परमावगाढ, क्षायिक सम्यक्ती, अनन्तवीर्यके धारी, वीतरागी, समभावके धारी, इंद्रियोंके ज्ञान व सुखसे मुक्त, अतीन्द्रिय सुखमें मग्न होते हुए उत्तमोत्तम दातार हैं। आपसे आपको चार प्रकारका दान देते हैं।

वे अपनेको ज्ञानचेतनामें रमाते हैं यही ज्ञान दान हैं। अनन्त अतीन्द्रिय आनन्दका भोग कराते हैं व परम सन्तोषित करते हैं यही आहारदान है। सर्व रागादिके क्षोभसे रहित परम वीतराग भावकी निराकुल भूमिकामें आपको जमा रहे हैं यही औषधिदान है। अनन्त वीर्यके कारण आपसे आपको सर्व भाव रहित रखते हैं यही अभयदान है। जो उत्तम पात्र होकर उत्तम दातार भी होते हुए आपको उत्तम चार प्रकारका दान करते हैं, वे ही पुष्ट होते हुए चार घातीय कर्मोंका नाशकर अर्हंत परमात्मा होजाते हैं। अब वे कभी भी संसारमें भ्रमण न करेंगे।

जहां शुद्धात्मानुभव है वहीं मोक्षका उपाय व कारण है व वहीं निश्चय चार दान है। तथा जहां शुद्धात्मानुभव केवलज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष है, वहीं मोक्षका उपाय सिद्ध होगया है, वहीं कार्य होगया है, वहां भी निश्चय चार दान है। इसका फल सिद्ध पदका लाभ है। ऐ भव्यजीवो! यदि भव भ्रमणसे छुट्टी पाना है तो उत्तम पात्र व दातार होकर अपनेको अपनेसे अपने लिये आत्मानुभवका पवित्र दान करो। षट्कारकमय आपको विचार करो। यह आत्मा स्वयं कर्ता या दातार होकर अपनेआप आत्माको स्वयं कर्मरूप करके अर्थात् पात्र बनाकर अपने ही द्वारा करण होकर अपनेही लिये संप्रदान होकर अपनेहीमेंसे अपादान होकर अपनेमें ही आधार होकर स्वात्मानन्दका दान करता है। यह भेदरूप पात्र दाता व दानका विचार है। जहां स्वात्मानुभव है वहां भी षट्कारक हैं। वहां भी दातार पात्र व दान हैं, परन्तु अभेदरूप हैं, वचन व मनके गोचर नहीं हैं। भेदरूप पात्रदान अभेदरूप पात्रदानका कारण है।

श्री नागसेन मुनिने तत्वानुशासनमें यही कहा है—

स्वात्मानं स्वात्मनि स्वेन ध्यायेत्स्वस्मै स्वतो यत । षट्कारकमयस्तस्मात् ध्यानमात्मैव निश्चयात् ॥ ७४ ॥

भावार्थ—अपने आत्माको अपने आत्मामें अपने ही द्वारा अपने ही लिये अपनेहीमेंसे आप ही

ध्यान करे तव यह छः कारक रूप आत्मा ही निश्चयसे ध्यान है। वहीं कहा है कि इसी प्रकारके आत्मानुभवरूपी ध्यानसे संवर व निर्जरा होती है—

पश्यन्नात्मानमैकाग्रयात् क्षपयत्यार्जितान् मलान् । निरस्ताहममीभाव सवृणोत्यप्यनागतान् ॥ १७८ ॥

भावार्थ—जो परमें अहंकार व ममकारको दूर करके एकाग्र होकर आत्माको ही अनुभव करता रहता है वह पूर्वबद्ध कर्मोंकी निर्जरा करता है व नवीन कर्मोंका संवर करता है, यही मुक्तिका इलाज है। स्वहित वांछकको आत्मध्यानका ही अभ्यास करना चाहिये। तीन लोकमें कहीं भी कोई और तरहके न उत्तम पात्र हैं, न उत्तमोत्तम दातार हैं, न उत्तमोत्तम पात्र हैं, न उत्तम दातार हैं, न उत्तम चार दान हैं, न उत्तमोत्तम चार दान हैं। ऐसे दातार, ऐसे पात्र व ऐसा दान यह सब अपूर्व ही है ! इसके सिवाय और कोई मार्ग नही होसक्ता है। भव्यजीवको इसीका आश्रय करके तारणतरण होना चाहिये।

---

(१३) अज्ञानी अज्ञान कथन गाथा २२१ से २३७ तक।

अन्यानी अन्यान मओ, मिथ्या सल्य सजुत्तरिना।
मुक्ति मुक्तिन चिंतवहि, मूढा मुक्तिन होइरिना ॥ १ ॥
मिथ्यादिष्टि हि पर सहिओ, पर पर्जय संजुत्तुरिना।
न्यान उवएस न संपजै, अन्यानी नरय निवासुरिना ॥ २ ॥
जन रंजन राग जु समय मऊ, जनऊ तह नंत विसेसुरिना।
आरति ध्यानह तू सहियो, थावर गय विलसतुरिना ॥ ३ ॥
दर्सन मोहे अंध तु हूं, अदर्सन समय संजुत्तुरिना।
न्यान विन्यान विवर्जियऊ, नरय वीय संजुत्तुरिना ॥ ४ ॥
अन्यानी असमय सहियो, समय सहाउ न दिट्ठुरिना।

ममलपाहुड
॥ ९७ ॥

पर पर्जय दिष्टिहि सहियो, तिरिय गए मजुत्तुरिना ॥ ५ ॥
पत्त विसेप न जानिपऊ, पत्तह भेउ अभेउरिना ।
अन्यानी मिथ्या सहियो, नरय तिरिय भमेडरिना ॥ ६ ॥
कल रंजन दोसह सहियो, पर्जय दिस्टि अनंतुरिना ।
मोह महामय पूरियऊ, भव संसार भमंतुरिना ॥ ७ ॥
मन रंजन गारव सहियो, श्रुत अन्यान भनन्तुरिना ।
न्यान सहाव न चेतियऊ, थावर सरनि सजुत्तुरिना ॥ ८ ॥
पर्जय मोहंधह सहिओ, अप्प महाउ न दिट्ठुरिना ।
ममले सहियो नरय गऊ, सरनि अनन्त भयंतुरिना ॥ ९ ॥
न्यान सहाव न दर्सियऊ, अन्यानह सहकारुरिना ।
पर पंचह पर्जय सहियो, दुक्ख अनन्त सहतुरिना ॥ १० ॥
घाय कम्म संतुष्टपरा, वय तवक्रिय अन्यानुरिना ।
गारव सहियो तव कियउ, नरयह दुक्ख अनंतुरिना ॥ ११ ॥
उवएसिओ अन्यान पऊ, कललंकृत क्रिय संजुत्तुरिना ।
न्यान भेउ नवि जनिपऊ, अन्ध जु कुआ पडंतुरिना ॥ १२ ॥
राय सहिओ गारव सहियो, मिथ्यामय उवएसुरिना ।
अन्मोय विरोहु न जानियऊ, दुग्गइ गमन सहतुरिना ॥ १३ ॥
देव न दिट्ठो अमिय मऊ, परम देव नहु भेउरिना ।
अन्धो वहिरंधो मुनहु, चौगइ दुक्खु सहंतुरिना ॥ १४ ॥

गुरु नवि जानियो गुपित रुई, परम गुरह नहु भेउरिना ।
मिथ्यामय सल्यह सहियो, दुक्ख अनन्त सहंतुरिना ॥ १५॥
धम्मह भेउ न जानियऊ, कम्मह किय उवएखुरिना ।
अन्यानी वय तवं सहियो, भमियो काल अनंतुरिना ॥ १६ ॥
अवकिन मूढा चिंतवही, न्यान सिरी सिहु भेउरिना ।
न्यान विन्यानह समय पऊ, कम्म विसेष गलेदरिना ॥ १७॥

अन्वय सहित अर्थ—(अन्यानी अन्यान मओ) मिथ्याज्ञानी मिथ्याज्ञान सहित होते हैं उनको आत्मा और अनात्माका सच्चा भेद विज्ञान नहीं होता है (मिथ्या सल्य सजुत्तरिना) उनके भीतर मिथ्यात्व भावकी शल्य वर्तती है। शुद्धात्माके यथार्थ द्रव्य गुण पर्यायकी श्रद्धा व पहचानमें भ्रम रह गया है, यही मिथ्यात्वकी शल्य है। इसलिये (मुक्ति मुक्तिन चिंतवहि) मुक्ति हो मुक्ति हो व मैं मुक्तिकी प्राप्तिका यत्न करता हूं, मुझे मुक्ति शीघ्र मिले ऐसा निरन्तर चिन्तवन करते रहते हैं (मुढा मुक्तिन होइरिना) परन्तु उन मिथ्यादृष्टी अज्ञानी जीवोंको मुक्तिका या शुद्धात्माका सच्चा स्वरूप न मालूम होनेसे सम्यग्दर्शनके लाभके विना कभी भी सम्यग्दर्शन व सम्यक्चारित्रको न पाते हुए मोक्षका लाभ नहीं होसक्ता है, जैसे द्रव्यलिंगी जैनके मुनि भी जो बाहरी सर्व चारित्र जैन सिद्धांतानुसार पालते हैं परन्तु आत्मानुभवके लाभ विना उस शुद्ध आत्माके ध्यानसे वंचित रहते हैं जिससे मोक्षमार्गको पासकें ॥ १ ॥

(मिथ्यादृष्टि हि पर सहियो) मिथ्यादृष्टी जीव आत्मासे भिन्न जो शरीर है या रागादि भाव हैं या बाहरी सम्पदा है उनको ही अपना मान लेता है (पर पर्जय सजुत्तरिना) वह पुद्गलकी पर्यायोंमें रत है, कर्मोंके उदयसे प्राप्त नर नारक देव तिर्यंच आदि पर्याय व तत्सम्बन्धी अनेक भाव व अनेक अवस्थाएँ उनहीके भीतर रंजायमान हैं। धन धान्यादिका मोही है, शरीरादिके मोहमें इतना तत्पर है, कि इसे अपने असली आत्मस्वरूपकी कुछ भी खबर नहीं है (न्यान उवएस न सपज्जै) उसको तत्वज्ञानका उपदेश नहीं सुहाता है, आत्मज्ञानकी चर्चा विष तुल्य भासती है। विषयभोगोंमें लिप्त होकर द्युतादि सात व्यसनोंमें रत होकर

घोर हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील व परिग्रह सम्बन्धी पापोंको बांधकर (अन्यानी नरय निवासुरिना) वह अज्ञानी नरकके वासमें चला जाता है ॥ २ ॥

(जनरंजन राग जु समय मऊ) जिस अज्ञानीका आत्मा ऐसे रागमें फँसा रहता है कि मैं जगतके मानवोंको राजी रक्खूं (जनऊ तह नत विसेपुरिना) उस राग सम्बन्धी अंशोंकी अपेक्षा अनन्त भेदोंको पैदा करता रहता है। नानाप्रकारके तीव्र तीव्रतम तीव्रतर राग किया करता है (आरति ध्यानह तू सहियो) जो इष्टवियोग, अनिष्ट संयोग, पीड़ा चिन्तवन तथा निदान ऐसे चार प्रकार आर्तध्यानोंमें ही सन्तोष मानता है, वह तिर्यंच आयु बांध लेता है और (थावर गय विलसतुरिना) एकेन्द्रिय स्थावरोंकी गतिमें पापका फल भोगता है। महान् अज्ञानी व पराधीन होजाता है। साधारण वनस्पति निगोदमें जाकर अनन्तकाल विताता है। पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, प्रत्येक वनस्पतिकायिक, इन पांच स्थावरोंमें भी दीर्घकाल तक कष्ट पाता है ॥ ३ ॥

(दर्सन मोहे अब तु ह) दर्शनमोह नामा कर्मके मोहसे अन्ध होता हुआ (अदर्शन समय सजुत्तुरिना) मिथ्यादर्शन सहित अपने आत्माको कर लेता है अर्थात् मिथ्यात्वभावमें अपनेको परिणमाता रहता है, परमें अहंकार ममकार किया करता है, स्वार्थवश रागी द्वेषी देवोंको मानता है, परिग्रही गुरुकी भक्ति करता है, हिंसामय धर्मको धर्म मान लेता है (न्यान विन्यान विवर्जियऊ) उसको न तत्वोंका ज्ञान है न आत्मा और अनात्माका भेद विज्ञान है। वह मोही विषयासक्त होकर बहु आरंभ व बहु परिग्रहमें फंसा रहता है (नायवीय सजुत्तरिना) और नरक जानेका बीज बोता है अर्थात् नरकगति बांधकर नरकमें चला जाता है ॥ ४ ॥

(अन्यानी असमय महियो) अज्ञानी जीव मिथ्या आगमको मानकर या आत्माके यथार्थ ज्ञानसे रहित होकर (समय महावन दिट्ठुरिना) आत्माके स्वभावको श्रद्धान नहीं करता है। मैं निश्चयसे शुद्ध बुद्ध ज्ञाता द्रष्टा वीतराग आनन्दमई आत्मा हूं, ऐसा विश्वास नहीं कर पाता है (पर पजय दिष्टि हि सहियो) वह शरीरादि पर पुद्गलकी पार्यायोंमें आपा मानकर मिथ्या श्रद्धान रखता हुआ भोगोंकी लालसामें उलझा हुआ अनिष्ट संयोग व इष्ट वियोगमें व रोगादिकी पीड़ामें चिंतित रहता है, शोक करता है, रुदन करता है, इंद्रियोंके भोगोंके लिये आतुर रहता है (तिरिय गय सजुत्तरिना) इससे वह तिर्यंच गति बांधकर एकेन्द्रिय,

द्वेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौंद्रिय व पंचेद्रिय पशुओंमें जन्म धारण कर पराधीनपने व असमर्थपने घोर वेदना सहता है ॥ ५ ॥

(पत्त विसेष न जानियऊ) वह अज्ञानी पात्र विशेषको नहीं समझता है (पत्तइ भेउ अभेउरिना) न पात्रोंके भेद प्रभेदको जानता है। उसको पात्र अपात्रका बोध नहीं होता। पात्र तीन प्रकारके होते हैं—सुपात्र, कुपात्र, अपात्र। जो यथार्थ सर्वज्ञ प्रणीत आगमके अनुसार सम्यग्दर्शन सहित अपनी पदवीके योग्य यथार्थ चारित्र पालते हैं वे सुपात्र हैं। जिनके भीतर आत्मप्रतीति रूप निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं है परन्तु व्यवहारसे तत्वोंका श्रद्धान है व जो जैन आगमके अनुसार यथार्थ व्यवहार चारित्र पालते हैं वे कुपात्र हैं। जिनके न तो निश्चय सम्यक्त है, न व्यवहार सम्यक्त है और न शास्त्रोक्त चारित्र है वे अपात्र हैं। अपात्र धर्मके पात्र नहीं हैं इसलिये वे भक्ति करनेके योग्य नहीं हैं। सुपात्र और कुपात्र धर्मके पात्र हैं अतएव भक्ति करनेके योग्य हैं। कुपात्रको क्षणमात्रमें सम्यक्त होसक्ता है, वह क्षणमें सुपात्र होसक्ता है। अल्पज्ञानी भक्तजन अन्तरंगकी ठीक २ परीक्षा नहीं कर सक्ते हैं अतएव उनके लिये दोनों ही भक्तिके भाजन हैं।

सुपात्रोंमें उत्तम पात्र मुनिराज हैं उनमें तीर्थंकर मुनि सर्वोत्कृष्ट हैं। ऋद्धिधारी मुनि मध्यम हैं व सामान्यसे यथार्थ चारित्रके पालक साधु जघन्य उत्तम पात्र हैं। मध्यम पात्र श्रावक हैं। उनमें दशमी ग्यारहवीं प्रतिमाधारी उत्तम हैं, सातवींसे नौमी प्रतिमावाले मध्यम हैं पहली दर्शन प्रतिमासे छठी रात्रि-भुक्ति त्याग प्रतिमा तक जघन्य हैं, व्रत रहित सम्यग्दृष्टी जघन्य पात्र हैं। उनमें क्षायिक सम्यक्ती उत्तम हैं, उपशम सम्यक्ती मध्यम हैं, वेदक सम्यक्ती जघन्य हैं। इन सब भेदोंको अज्ञानी नहीं समझता है, वह अपात्रोंको ही अपने स्वार्थवश भक्ति करके अपना संसार बढाता है (अन्यानी मिथ्या महियो) अज्ञानी मिथ्या देव गुरु धर्मकी श्रद्धा रखता हुआ (नरय तिरिय ममेइरिना) नरकगति अथवा तिर्यंचगतिमें वारवार जन्म धारकर भ्रमता रहता है, तिर्यंचगतिमें दीर्घकाल विताता है, एकेन्द्रिय अज्ञानी होकर पराधीनपने घोर संकट सहता है ॥ ६ ॥

(कलरनन दोसह सहियो) शरीरमें रंजायमान होनेके दोषके कारण अर्थात् शरीरकी आसक्तिके कारण (पर्जय दिष्टि अनन्तुरिना) पर्यायदृष्टिका प्रवाह अनन्तकालतक चला जाता है। जिस जिस शरीरमें प्राप्त होता है उस उस शरीरमें ही आपापना मान लेता है, अपने यथार्थ स्वरूपसे अनन्तकाल तक बेखबर बना

रहता है (मोह महामय पूरियउ) उनके भीतर मोहरूपी महान मद पूर्णपने भरा रहता है, वे मोहके नशेमें चूर रहते हैं। हम राजा, हम सेठ, हम सुन्दर, हम बलवान, हम धनवान, हम ब्राह्मण, हम क्षत्री, हम वैश्य, हम शूद्र, हम बालक, हम वृद्ध, हम युवा, हम गोरे, हम रोगी, हम निरोगी, हम मानव, हम पशु, हम स्त्री, हम पुरुष, हम मुनि, हम श्रावक, हम दानी, हम तपस्वी इत्यादि मान्यतामें फंसे रहकर मोहके नशेमें बेखबर रहते हैं (भव समार भमतुरिना) जिस कारणसे वे इस संसारके चक्रमें भ्रमण करते रहते हैं। उनका संसार चलता ही रहता है ॥ ७ ॥

(मनरंजन गारव महियो) मनको रंजायमान करनेवाले अहंकारको रखकर (श्रुत अन्यान भवतुरिना) कि मैं बड़ा पंडित हूं, अज्ञानसे मिथ्या कुमार्गको पुष्ट करनेवाले शास्त्रोंको पढ़ता रहा या सुनता रहा (न्यान सहाव न चेतियऊ) परंतु ज्ञान स्वभावी शुद्धात्माका कभी भी अनुभव नहीं किया। इसलिये मिथ्याज्ञानके प्रचारसे तिर्यंच आयु बांध ली और (थावरसनि सजुत्तुरिना) स्थावरोंमें जाकर वारवार जन्म धारण किया। हिंसापोषक मिथ्यात्ववर्द्धक कुमार्गका प्रचार करना बड़ा भारी दोष है ॥ ८ ॥

(पर्जय मोहघह सहिओ) जिस शरीरको पाया उस ही शरीरके मोहमें अन्धा होकर-शरीर व उसके सम्बन्धियोंके मोहमें अपने स्वरूपको न जानकर (अप्प सहाव न दिट्ठुरिना) अपने आत्माके स्वभावका दर्शन नहीं किया-कभी आत्माका अनुभव नहीं किया (समले सहिओ नरय गऊ) तीव्र लोभकी मलीनतासे-बहुत आरंभ व परिग्रह रखनेके कारण नरकमें गया (मगनि अनत भमतुरिना) तथा अनन्त जन्म मरण लेता हुआ एकेन्द्रियादि पर्यायोंमें भ्रमण करता रहा ॥ ९ ॥

(न्यान महाव न दर्सियऊ) जिस मिथ्यादृष्टिने ज्ञान स्वभावी आत्माका श्रद्धान नहीं किया है। जो आत्म श्रद्धानरूप सम्यक्तसे बाहर है (अन्यानह सहकारुरिना) तथा मिथ्याज्ञान सहित है (परपचह पर्जय सहियो) वह जगतके प्रपंचमें फंसा हुआ पर्याय बुद्धि रहता है, वह पापोंको बांधकर (दुक्ख अनंत सहंतुरिना) अनन्त काल तक दुःखोंको सहता है ॥ १० ॥

(घाय कम्म सतुष्टपरा) जो घातीय कर्मोंके उदयमें सन्तोष मानते हैं अर्थात अज्ञानमें, मोहमें, क्रोधादि कषायोंमें व आत्मबलकी कमीमें जो विषयाधीनपना होता है उसमें संतोष मानते हैं (वय तवक्रिय अन्यानरुरिना) तथा जो अज्ञानपूर्वक आत्मज्ञानसे रहित व्रत, तप व क्रियामें लवलीन रहते हैं (गारव सहियो तव

ल्पाहुड

।।१०३।।

क्रियउ) अहंकार सहित तप करते हैं, तप करते हुए हम तपस्वी हैं इस मानसे उद्धत हैं (नर यह दुक्खह भन-
तुरिना) वे मिथ्यादृष्टि अज्ञानी पाप बांधकर नर्क गतिमें जाकर अनन्त दुःखोंको पाते हैं ॥ ११ ॥

(उवएसिओ अन्याणएऊ) कोई२ अज्ञानी गुरु अज्ञान पंद या चारित्रके पालनेका उपदेश देते हैं (कलक कृतक्रिय सज्जुतुरिना) आत्माकी तरफ बिलकुल लक्ष्य न देते हुए शरीरको शोभा देनेवाली या शरीरको सुखानेवाली क्रियाको या कायक्लेशको करते हैं (न्यान भेउ नवि जानियऊ) आत्मज्ञानका गुप्त रहस्य अर्थात् निश्चय सम्यक्त्वको नहीं जानते हैं (अन्जु कुआ पडतुरिना) वे स्वयं अंध होकर संसारकूपमें गिरते हैं व दूसरोंको गिराते हैं—जैसे अन्धी भेड़ आगे चलती हुई एक कुएँमें गिर पड़े, तो उसके पीछेकी सब भेड़ें कुएँमें गिर पड़ती हैं। इसीतरह अज्ञानी गुरु पत्थरकी नावके समान हैं। आप डूबते हैं व औरोंको डुबाते हैं। आत्मानुभवके बिना व्रत, जप, तप सब असार हैं ॥ १२ ॥

(राय सहियो गारव सहियो) रागी और अहंकारी जीव (मिथ्यामय उवएतुरिना) मिथ्या मतका उपदेश करते हैं (अन्मोह विरोहु न जानियऊ) उनको यह ज्ञान नहीं है कि वे आत्मानन्दका विरोध कर रहे हैं अर्थात् आत्मानन्दके मार्गसे स्वयं च्युत हैं व दूसरोंको च्युत करते हैं। आप भी विषयसुखमें मग्न हैं व दूसरोंको भी विषयसुखकी प्राप्तिका मार्ग बताते हैं। ऐसे अज्ञानी जीव (दुगइ गमन सहतुरिना) दुर्गतिमें जाकर दुःख सहन करते हैं ॥ १३ ॥

(देव न दिट्ठो अमिय मऊ) उनको अमृतमई परमात्मदेवका श्रद्धान नहीं होता है, वे वीतराग सर्वज्ञ अर्हंत सिद्ध परमात्माका विश्वास नहीं रखते हैं (परम देव नहु मेउरिना) उनको परमात्मा उत्कृष्ट देवका भेद नहीं मालूम होता है (अन्धो बहिरंधो मुनडु) वे यथार्थ आत्मतत्वके ज्ञानसे अन्ध होकर बहिरात्मा बने रहते हैं (चौगइ दुक्ख सहतुरिना) वे चारों गतियोंमें जाकर दुःख सहते हैं, वे आत्मज्ञान रहित तप करके मन्द कषायसे देवगतिमें भी चले जाते हैं। वहां विषयसुखमें मग्न होकर देवसे तिर्यंच गतिमें आकर जन्म धारण कर लेते हैं ॥ १४ ॥

(गुरु न वि जानियो गुपित रुई) उनको गुप्त रुचि अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शनके धारी गुरुका भी ज्ञान नहीं होता है, वे संसारासक्त मार्गको बतानेवाले गुरुको ही गुरु मान लेते हैं (परम गुरु नहु मेउरिना) वे उत्तम आत्मज्ञानी गुरुका भेद न जानते हुए ऐसे गुरुसे भेट नहीं कर पाते हैं (मिथ्यामय सस्यह सहियो) वे मिथ्या-

मतकी शल्य सहित होते हुए (दुक्ख अनंत सहतुरिना) इस संसारमें अनन्त काल तक दुःख सहते हैं ॥१५॥

(धम्मह मेउन जानियऊ) उनको सत्य आत्मानुभवरूप धर्मका भी भेद नहीं मालूम होता है (कम्म किया उवएसुरिना) वे क्रियाकाण्ड वा बाहरी कर्मको ही धर्मके नामसे उपदेश करते हैं (अन्यानी वय तव सहियो) वे धर्मको न जानते हुए अज्ञानसे व्रत तप पालते हैं (भमियो काल अनतुरिना) इसलिये उनका इस संसारमें अनन्त काल तक भ्रमण बना रहता है ॥ १६ ॥

(अवकिंन मूढा चिंनवहि) हे मूढ पुरुषो ! अब क्यों नहीं विचार करते हो (न्यान सिरी मिहु मेउरिना) आत्मज्ञानकी लक्ष्मीके साथ भेट करना चाहिये व आत्मज्ञानका भेद पाना चाहिये (न्यान विन्यानइ समय पऊ) भेदविज्ञानके द्वारा शुद्धात्माके पदको जानना चाहिये (कम्म विसेष गलेइरिना) जिससे विशेष कर्मोंकी निर्जरा होवे। विशेष निर्जराका कारण आत्मानुभव है, इसीको प्राप्त करना चाहिये ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें मिथ्यात्वकर्म व अनन्तानुबन्धी कषायके उदयसे जो संसारी जीवोंकी अवस्थाएं होती हैं उनको दिखाया है। मिथ्यात्व दो प्रकारका है—एक अग्रहीत, दूसरा ग्रहीत। जो कर्मोंके उदयसे अनादिकालसे चला आया है वह अग्रहीत मिथ्यात्व है। इसके होते हुए जीव जिस शरीरको पाता है उसहीमें आपापना मान लेता है, उसको इस बातका श्रद्धान नहीं होता है कि शरीरसे व पुण्य पापादि कर्मोंसे व रागद्वेष भावोंसे भिन्न कोई शुद्ध बुद्ध ज्ञाता दृष्टा अमूर्तीक परमानन्दमय वीतराग आत्मा है या इंद्रियसुखसे विलक्षण कोई आत्मीक आनन्द है। इस अपूर्व परम सुखदाई आत्माका ज्ञान व श्रद्धान न पाते हुए अज्ञानी जीव जिस शरीरको पाते हैं उसीमें रत होकर रात दिन अपनी इन्द्रियोंकी इच्छाओंकी पूर्तिका उपाय किया करते हैं। इष्ट पदार्थके वियोगमें शोक करते हैं, अनिष्ट पदार्थके संयोगमें रुदन करते हैं, पीडा होनेपर घबड़ाते हैं, आगामी भोगोंके लिये आतुर रहते हैं। अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरोंको कष्ट देकर भी काम बना लेते हैं, घोर हिंसा करते हैं, घोर असत्य बोलते हैं, चोरी लूटपाट कर लेते हैं, परस्त्री व वेश्यागमन करते हैं, शिकार खेलते हैं, मदिरापान करते हैं, मांस खाते हैं, जूआ खेलते हैं, रौद्रध्यान व आर्तध्यानमें रात दिन तन्मय रहते हैं, तृष्णाकी दाहको बढाते रहते हैं, कभी भी शमन नहीं कर पाते हैं। इच्छाओंकी पूर्ति न पाते हुए आयुकर्मकी समाप्ति कर मर जाते हैं, फिर दूसरे शरीरमें जाकर यही इंद्रियोंकी आसक्तिका काम चलता रहता है। एकेंद्रियसे पंचेंद्रिय

तक सर्व ही मिथ्यादृष्टी जीव इस मिथ्यात्वभावसे महान कष्टमय जीवन विताते हैं और तीव्र कर्म बांधकर नर्क निगोद व तिर्यंच गतिमें व अशुभ मानवगति व तुच्छ देवगतिमें वारवार जन्म धारणकर असहनीय दुःख सहते हैं। गृहीत मिथ्यात्व वह है जो देखादेखी मान लिया जावे। कुदेव, कुगुरु तथा कुधर्मकी श्रद्धा होकर कुदेवादिकी भक्ति करके सन्तोष मानना, लौकिक कार्यकी सिद्धिके वश कुगुरुओंके उपदेशसे हिंसादि कर्मको भी धर्म मान लेना, इत्यादि वीपरीत देव गुरु धर्मकी श्रद्धासे वे कभी भी सच्चे देव गुरु धर्मका श्रद्धान नहीं कर पाते है। इन दोनों ही प्रकारके मिथ्यात्वका मद मदिराके मदके समान चढा रहता है जिससे यह संसार वढता ही रहता है, कभी भी इस भयानक संसार-सागरसे उद्धारका मार्ग हाथ नहीं लगता है। अतएव श्रीगुरु वताते हैं कि हे भाई! वड़ी कठिनतासे नरभव पाया है, इंद्रियोंकी पूर्णता पाई है, दीर्घ आयु पाई है, वुद्धि भी ठीक है, अव प्रमाद न करके आत्मज्ञानी सच्चे गुरुकी शरण ग्रहण करो, गुरुके उपदेशको सुनो। इस संसारसे वैराग्यभाव धार करके वीतराग सर्वज्ञ श्री अरहन्त व सिद्ध परमात्मामें, निर्ग्रंथ तपस्वी वीतरागी गुरुमें व अहिंसामय वीतराग विज्ञानमई धर्ममें श्रद्धा लाओ। व्यवहार सम्यक्तको पालते हुए निश्चय सम्यक्तको पानेका पुरुपार्थ करो। आगम द्वारा जीवादि सात तत्वोंको जानकर निज आत्माके शुद्ध स्वभावपर श्रद्धान लाओ। आत्माके अनुभवको ही सच्चा निश्चय रत्नत्रय मई मोक्षमार्ग समझो तथा इसीके लिये पुरुषार्थ करो। इसी आत्मानुभवसे ही कर्मोंका क्षय होता है व सच्चा पुरुषार्थ मिलता है। इसीसे भवसागरसे पार होनेका उपाय सिद्ध होना है। व्यवहार श्रावक मुनिकी क्रियाएं मात्र आत्मानुभवकी प्राप्तिमें निमित्त कारण है। उन क्रियाओंको आत्मानुभवकी प्राप्तिके हेतुसे ही करना चाहिये। केवल उन क्रियाओंसे न मुक्ति होगी न कर्मोंकी निर्जरा होगी। आत्मज्ञान रहित अज्ञान तप व्रत क्रियासे संसारका ही मार्ग वढेगा। द्रव्यलिंगी जैन मुनि आत्मज्ञानके विना पुण्य बांधकर नौमे ग्रैवेयक तक चले जाते हैं परंतु सम्यक्तके विना वे मिथ्यादृष्टी ही रहते हैं। संसारके भ्रमणसे छूटनेका उपाय उनको नहीं मिल पाता है, सम्यक्तके विना व्रत तपादिका मूल्य बहुत ही अल्प है।

श्री आत्मानुशासनमें कहा है—

शमबोधवृत्ततपसा पाषाणस्येव गौरव पुंस । पूज्यं महामणेरिव तदेव सम्यक्तसंजुत ॥

भावार्थ—सम्यक्तके विना शांतभाव, ज्ञान, तप, चारित्रका मूल्य कंकड व पत्थरके समान है, परंतु

जो सम्यक्तके साथ ज्ञान व चारित्र व तप हो तो उनका मूल्य महान रत्नके समान है। अतएव आत्महित बोधकोंको चाहिये कि निजात्माको समझके अपने आत्माके शुद्ध स्वभावपर दृढ श्रद्धान लावे, अनादिके अज्ञानको व मिथ्यात्वको त्यागे, सच्चे वीतरागी देव गुरुको भजे, आत्मानुभवके लिये प्रयास करें, इसीसे कर्मकी निर्जरा होसकेगी व जीव कर्मसे छूटकर मुक्त होजायगा।

(१४) उत्पन्न छन्द गाथा २३८ से २६२ तक।

उव उवनौ उवन सहाव, लई उव उवन भाव संखुद्ध पऊ।
उव उवनौ केवल समय मऊ, सिहु समय सिद्धि संपत्तऊ॥ १ ॥
ऊवंकार जिनुत्त पऊ, न्यान विन्यान संजुत्तऊ।
उव उवन सहावे दरसिऊ, उव उवन सिद्धि संपत्तऊ॥ २ ॥
उवन उवन जुत्तओ, उवन भय गलतओ।
उवन ज्ञान रत्तओ, उवन मिथ्या चत्तओ॥ ३ ॥
उवन पंथ दरसिओ, उवन मल विलन्तओ।
उवन मुक्ति रत्तओ, सुपर्जय रय गलंतओ॥ ४ ॥
उवन सिद्धि पंथओ, कम्मान बन्ध चत्तओ।
उवन व्यक्त रूवओ, सो कम्म षियक सूरओ॥ ५ ॥
उवन लष्य लष्यनो, उवन पय वियष्यनो।
उवन दिष्टि दरसिओ, उवन इस्टि इस्टिओ॥ ६ ॥
उवन ओत जुत्तओ, ससंक भय विलंतओ।

उवन परिनै जुत्तओ, उवन कम्म चत्तओ ॥ ७ ॥
उवन समय सत्तओ, अज्ञान विलय रत्तओ ।
न्यानेन न्यान जुत्तओ, अन्यान भय गलंतओ ॥ ८ ॥
उवन परम इस्टिओ, सुयं सुभाउ दिस्टिओ ।
सहयार सुद्ध साहिओ, अन्मोय इस्ट ग्राहिओ ॥ ९ ॥
उवन रमन रत्तओ, उवन ओत जुत्तओ ।
उवन वयन रत्तओ, उवन समय सत्तओ ॥ १० ॥
संयत्त सुद्ध साहिओ, सम समय दिष्टि राहिओ ।
सो षिपक भाव षिपकओ, सो ममल भाव ममलपौ ॥ ११ ॥
सो अषय रूव रूवओ, सो सुरस दिष्टि सूरओ ।
उवन नन्त दरसिओ, उत्पन्न न्यान सरसिओ ॥ १२ ॥
उवन राग षंडनो, जन रंजन भय विहण्डनो ।
कल रंजन दोष गलिगओ, सो विंद रमन ऊवनपौ ॥ १३ ॥
मोहंध दर्स अदिस्टिओ, उत्पन्न दर्स दर्सओ ।
निसंक रूव रयनपौ, ससंक मय विलंतओ ॥ १४ ॥
न्यानेन न्यान समय मऊ, आवर्न न्यान विलय गउ ।
दर्स अनन्ता दरसिओ, आवरन दर्स गलंतओ ॥ १५ ॥
उत्पन्न मेहा उवन पउ, सो मोयमय विलंतओ ।
विन्यान न्यान समययौ, अन्तर सुभाउ विलयगौ ॥ १६ ॥

सो न्यान वंक अवंकओ, अन्यान वंक अवंकओ ।
सो सरनि भय विरत्तऊ, सो मुक्ति पंथ रत्तऊ ॥ १७ ॥
अवयास यास जुत्तओ, आसा सुभाव विरत्तओ ।
अन्मोय न्यान सत्तओ, अस्नेहमय विलंतओ ॥ १८ ॥
सो राग सर्म चत्तओ, सो लाज भय विलन्तओ ।
सो अलब्धि लब्धि जुत्तओ, सो लब्धि सुह विरत्तओ ॥ १९ ॥
सो अभय भय गलन्तओ, सो भय संक विलन्तओ।
सो न्यान ग्राह वज्जओ, सो गारव भय गलन्तओ ॥ २० ॥
सो न्यान रमन सूरओ, सो आलस सुह गलंतओ।
सो परम तत्त्व दरसिओ, परपंच भय विनासिओ ॥ २१ ॥
विन्यान न्यान विभ्रओ, विभ्रम सुरय विलन्तओ ।
उवन विंद विंदिओ, उवन नन्द नन्दिओ ॥ २२ ॥
सो नन्द नन्द जुत्तओ, सो चेय नन्द जुत्तओ ।
तं सहज नन्द सहज मउ, सो परमानन्द परम पउ ॥ २३ ॥
उवन भाव लषिओ, सो रमन रय परिषिओ ।
सो रमन मुक्ति रमन पउ, सो रमन रयन सिद्ध पउ ॥ २४ ॥

घत्ता—

उव उवन सहाउ सु उवन पउ, उव उवन समय संजुत्तओ ।
सु तरन विमान सु समय मउ, सिद्ध समय सिद्धि संपत्तउ ॥ २५ ॥

ममलपाहुड
॥२०८॥

अन्वय सहित अर्थ—(उव उवनौ उवन सहाव न्ई) अब अपने उद्योतकारी स्वभावको लिये हुए सम्यग्दर्शनका जन्म हुआ है (उव उवन भाव सघुद्ध पऊ) उसके साथ ही परम शुद्ध पद या मोक्षपद प्राप्तिका भाव जग उठा है (उव उवनौ केवल समय मऊ) केवल असहाय आत्मामई शुद्ध भावका अनुभव उत्पन्न होगया है (सिहु समय सिद्धि सपत्तऊ) जिसके द्वारा स्वयं आत्माकी सिद्धि प्राप्त होजायगी ॥ १ ॥

(ऊवकार जिनुत्त पऊ) ॐकारका मंत्रपद जिनेन्द्रने कहा है (न्यान विन्यान सञुत्त पऊ) यह पद ज्ञानका तथा भेदविज्ञानका पैदा करानेवाला है। अर्थात् ॐका अर्थ विचारनेसे परमात्माके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान होता है तथा संसार अवस्था त्यागने योग्य व मुक्तिपद ग्रहण करने योग्य झलकता है (उव उवन सहावे दरसिओ) इस ॐ मंत्रके द्वारा प्रकाशमान आत्माका स्वभाव दर्शा जाता है अर्थात् आत्माका अनुभव होजाता है (उव उवन सिद्धि सपत्तऊ) जिसके द्वारा उदयरूप सिद्धपद प्राप्त होजाता है ॥ २ ॥

(उवन उवन जुत्तओ जव उद्योतमई सम्यग्दर्शन प्रकाशित होजाता है (उवन भय गलंतओ) तब संसारमें उत्पन्न होनेका भय गल जाता है अर्थात् सम्यक्तीको यह दृढ निश्चय होजाता है कि मैं अवश्य मोक्ष प्राप्त कर लूंगा अथवा सम्यक्ती अवश्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है, यह जैनागम है। अथवा सम्यक्तीको निःशंकित अंग प्राप्त होजाता है जिससे वह अपनेको जीवन्मुक्त समझता है और चारों गतियोंके दुःखोंसे निर्भय होजाता है (उवन न्यान रत्तओ ' यह सम्यक्ती आत्मज्ञानमें रत रहता है (उवन मिथ्या चत्तओ) उसके भीतरसे मिथ्यात्वका उदय विला गया है ॥ ३ ॥

(उवन पन्थ दरसिओ) उसने मोक्षमार्गका प्रकाश देख लिया है अर्थात् निश्चय रत्नत्रयमई आत्मानुभवको प्राप्त कर लिया है जोकि साक्षात् मोक्षका मार्ग है (उवन मल विलंतओ) उसके भीतरसे अनन्तानुबन्धी कषाय और मिथ्यात्व सम्बन्धी राग द्वेष मोह सब विला गया है (उवन मुक्ति रत्तओ) वह उद्योतमय मुक्त स्वरूप आत्मामें लवलीन है (सुपर्जय रय गलतओ) उसकी शरीरमें आसक्ति गल गई है–पर्यायबुद्धिका अहंकार मिट गया है ॥ ४ ॥

(उवन सिद्धि पन्थओ) सम्यग्दृष्टीके भीतर आत्मसिद्धिका मार्ग प्रगट होगया है (कम्मान बन्ध चत्तओ) उसके कर्मोंका वन्ध ढ़ीला पड़ गया है। उसके अविपाक निर्जरा प्रारंभ होजाती है अथवा मिथ्यात्वकी जड़ कट जानेसे उसका सर्व कर्मवन्ध मूल रहित वृक्षकी तरह रहजाता है। अर्थात् शीघ्र ही कट जायगा या

सूख जायगा (उवन व्यक्त रूवओ) उसके भीतर आत्माका स्वभाव प्रगट भास रहा है (सो कम्म पिपक सूरओ) वह कर्मोंके क्षय करनेके लिये वीर योद्धा हो जाता है। उसके भीतर यह दृढ़ उमंग हो जाती है कि मैं अवश्य कर्मोंका क्षय कर डालूँगा ॥ ५ ॥

(उवन लष्य लष्यनो) सम्यग्दृष्टीने लखने योग्य, ग्रहण करने योग्य, अनुभव करने योग्य अपने आत्माके स्वभावको अनुभव कर लिया है (उवन पय वियष्यनो) वह आत्मीक पदके भीतर जमनेमें विचक्षण होगया है। भेदविज्ञानकी कलासे सम्यक्तीके भीतर स्वानुभवकी कला जग गई है (उवन दिस्टि दरसिओ) उसने उद्योत रूप आत्म-दर्शनको देख लिया है (उवन इस्टि इस्टियो) तथा प्रकाशमान अपने प्रिय परमात्म स्वभावके प्रगट करनेका प्रेम उसने प्राप्त कर लिया है ॥ ६ ॥

(उवन ओत जुत्तओ) उस सम्यग्दृष्टीके भीतर चारों तरफसे आत्मज्ञानका प्रकाश है (ससक भय विल-तओ) उसके भीतरसे सर्व शकाएं व सर्व भय दूर होगये हैं। उसको तत्वार्थका दृढ़ निश्चय है व उसे किसी प्रकारका ऐसा भय नहीं है जिससे उसका श्रद्धान आत्माके स्वभावसे हट जावे (उवन परिनै जुत्तओ) वह सम्यग्दर्शन रूप ही परिणमन करता है। अर्थात् उसके भीतर दृढ श्रद्धानके अनुसार सम्यग्दर्शनाचार विद्यमान रहता है, वह निःशंकितादि आठ अंगोंको पालता है (उवन कम्म चत्तओ) सम्यक्त भावमें परिणमन करनेसे जो कर्म मिथ्यात्व व अनन्तानुबन्धी कषायोंके उदयसे आते थे उनका आश्रव बन्द होगया है ॥ ७ ॥

(उवन समय सत्तओ) सम्यक्तीके भीतर आत्माकी सत्ताका व स्वभावका बोध प्रगट होगया है (अन्यान विभ्रम रत्तओ) वह अज्ञान रहित भावमें अर्थात् सम्यग्ज्ञानमें या स्वसंवेदन ज्ञानमें रत है (न्यानेन न्यान जुत्तओ) उसका ज्ञान आत्मज्ञानसे युक्त है—आत्माके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान उसके भीतर सदा बना रहता है (अन्यान भय गलतओ) उसके भीतरसे मिथ्याज्ञान व संसार भय सर्व गलगया है ॥ ८ ॥

(उवन परम दस्टिओ) परम इष्ट मोक्षमार्ग उसके भीतर उदय होगया है (सुय सुभाउ दिस्टिओ) उसने अपने स्वभावको स्वयं अनुभव कर लिया है (सहयार सुद्ध साहियो) वह सम्यग्दर्शनकी सहायतासे शुद्ध भावका साधन करता है (अन्मोय इस्ट आडियो उसने आनन्दमय इष्ट निज स्वरूपको ग्रहण कर लिया है ॥९॥

(उवन रमन रत्तओ) वह उद्योत रूप स्वरूपाचरण चारित्रमें रत है (उवन ओत जुत्तओ) वह सर्व तरफसे

आत्माकी रमणतासे युक्त है (उवन वयन रत्तओ) वह प्रकाशित जिन आज्ञामें लवलीन है (उवन समय सत्तओ) उसके भीतर आत्माकी यथार्थ सत्ता झलक गई है ॥ १० ॥

(समत्त सुद्ध साहिओ) उस अन्तरात्माने शुद्ध निश्चय सम्यक्तका साधन कर लिया है (सम समय दिरिट गहिओ) उसमें समताभाव सहित आत्मदृष्टिका स्थान है (सो पिपक भाव पिपकओ) यह सम्यग्दर्शन कर्मोंकी निर्जरा करनेवाला भाव है इसीसे उस सम्यक्तीके कर्मकी निर्जरा होरही है (सो ममल भाव ममलपौ) वह निर्मल भाव है। इसलिये आत्माको निर्मल करनेवाला है। जैसे निर्मल पानी मैले वस्त्रको धोकर साफ कर देता है वैसे निर्मल आत्मीक तत्वका शुद्ध श्रद्धान आत्माके रागादि मैलको धोकर उसे वीतराग कर देता है॥११॥

(सो अषय रूव रूवओ) वह सम्यग्दर्शन अविनाशी आत्मीक स्वभावको दिखलानेवाला है (सो सुरस दृष्टि सूरओ) वह आत्मीक रससे भरी दृष्टिको दिखानेके लिये सूर्य है (उवन नन्त दरसिओ) उसीसे अनन्तदर्शनकी उत्पत्ति होती है (उत्पन्न ज्ञान सरसिओ) उसीसे ज्ञानकी सुन्दरता बढती जाती है ॥ १२ ॥

(उवन राग षडनो) वह सम्यक्त भाव संसारीक रागको खण्डन करनेवाला है (जनरजन भय विहंडनो) वह उस भयको दूर करनेवाला है कि मैं मानवोंको रंजायमान करूँ, नहींतो वे असंतुष्ट होकर मेरा बुरा करेंगे (कल रजन दोस गलिओ) इसके भीतरसे शरीर आसक्तिका दोष गलगया है (सो विन्द रमन उवनपौ) उसने स्वात्म रमण पदको पालिया है॥ १३ ॥

(मोहष दर्स अदिस्टिओ) उसको दर्शन मोहनीय कर्मके उदयका दर्शन नहीं होता है। अर्थात् उसके मिथ्या श्रद्धानका कभी उदय नहीं होता है (उत्पन्न दर्स दर्सओ) उसने प्रकाशमान सम्यग्दर्शनका अनुभव कर लिया है (निसंक रूव रयनपौ) वह निःशंक सम्यग्दर्शनरूपी रत्नको धारे हुए हैं (ससंक मय विलतओ) उसकी सर्व शंकाएँ मिट गई हैं वह निर्भय होगया है ॥ १४ ॥

(न्यानेन न्यान समय मउ) आत्मज्ञानके अभ्याससे आत्माका स्वाभाविक ज्ञान केवलज्ञान प्रगट हो जाता है (आवर्न न्यान विलय गउ) और ज्ञानावरणीय कर्मका क्षय होजाता है (दर्स अनन्ता दरसिओ) तथा अनन्तदर्शन प्रकाशित होजाता है (आवरन दर्स गलतओ) दर्शनावरण कर्म गल जाता है ॥ १५ ॥

(उत्पन्न मैंडा उवन पउ) उदय स्वरूप वीतराग ज्ञानका जब प्रकाश होता है (सो मोह मय विलतओ) तब मोहमयी ज्ञान विला जाता है अर्थात् मोहनीय कर्मके क्षयसे ज्ञानके साथ वीतरागता भी प्रगट होजाती

है (विन्यान न्यान समप्पौ) पूर्ण शुद्ध ज्ञानमई आत्मीक पद झलक जाता है, आत्मा सकलस शरीर परमात्मा होजाता है (अन्तर सुभाउ विलइगौ) कर्मोंके क्षयोपशमसे होनेवाले मध्यम स्वभाव जो केवलज्ञानके होनेके पहले होते थे वे सब विला जाते हैं। अब यहां मति श्रुत अवधि मनः पर्ययज्ञान नहीं हैं न अल्पवीर्य है न मन व इन्द्रिय सम्बन्धी कोई वर्तन है। यहां अतीन्द्रिय ज्ञान व अतीन्द्रिय सुख व अनन्त आत्म-वीर्य प्रगट होजाते हैं ॥ १६ ॥

(सो न्यान वक अवकओ जो पहले इंद्रियजनित परोक्षज्ञान था सो अब प्रत्यक्ष ज्ञान होजाता है (अन्यान वक अवकओ) जो परोक्ष अज्ञान था सो मिटकर प्रत्यक्ष केवलज्ञान होजाता है (सो सरनि भय विलत्तओ) संसारके भ्रमणका भय मिट जाता है। अब अरहन्त परमात्मा जन्म धारण करेंगे (सो मुक्ति पन्थ रत्तउ) वे मोक्षमार्गमें-शुद्धोपयोगमें रत हैं, शीघ्र ही मुक्त होंगे ॥ १७ ॥

(अवयास यास जुत्तओ) वे अनन्त प्रकाश सहित होजाते हैं (आसा सुभाव विरत्तओ) तृष्णा या आशाका कुभाव मिट गया है-अरहन्तके किसी प्रकारकी इच्छा नहीं होती है (अन्मोय न्यान सत्तओ) यहां आनन्दमय ज्ञानकी सत्ता रहती है, अनन्त सुख प्रगट होजाता है (अस्नेह भय विलतओ) सर्व रागभाव तथा भय स्वरूप द्वेषभाव विला जाता है ॥ १८ ॥

(सो राग सर्म चत्तओ) वहां इंद्रिय सुखका राग मिट जाता है (सो लाज भय विलतओ) उनके न किसी प्रकारकी लज्जा है, न किसी प्रकारका भय है क्योंकि हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद इन नौ नोकपायोंका पूर्णतया अभाव है (सो अलब्धि लब्धि जुत्तओ) जो अनन्त दान, अनन्त लाभ, अनन्त भोग, अनन्त उपभोग, अनन्त वीर्य जो पहले प्राप्त न थे सो प्राप्त होजाते हैं, पांच क्षायिक लब्धियां प्रगट होजाती हैं (सो लब्धि सुद्ध विलत्तओ) क्षयोपशम, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य संबन्धी सुखसे श्री अरहन्त भावनाविरक्त हैं ॥ १९ ॥

(सो अभय भय गलतओ) वे अभय होजाते हैं। उनका सर्व भय गल जाता है (सो भय सक विलतओ) सात प्रकारका इस लोक, परलोकादिका भय व अज्ञान जनित कोई शङ्का वहां नहीं रहती है (सो न्यान ग्राह वज्जओ) केवलज्ञान रूपी वज्रका वहां ग्रहण है (सो गारव भय गलतओ) उसके सामने न कोई अहंकार है, न कोई भय है। जैसे वज्रको कोई टेढा व खण्ड नहीं कर सक्ता है वैसे केवलज्ञानमें कोई कषायके उद-

यकी वक्रता नहीं होसक्ती है, न उसके मिट जानेका भय है। वह सदा एकसा अविनाशी रहता है ॥ २० ॥

(सो न्यान रमन सूरओ) वे शुद्ध ज्ञानमें रमन करनेवाले सूर्य समान प्रकाशित हैं (सो आलस सुह गलओ) उनके प्रमादजनित सुख नहीं रहता है। उनका अनन्त सुख सदा धारावाही एकसा प्रकाशमान रहता है (सो परम तत्त दरसिओ) उन्होंने परमात्माके तत्वके प्रत्यक्ष दर्शन कर लिये हैं (परपंच भय विनासिओ) संसार प्रपंचका भय सब नष्ट होजाता है। उनको अब फिर संसारी आत्मा नहीं होना है ॥ २१ ॥

(विन्यान न्यान विभ्रओ) वे शुद्ध ज्ञानसे परिपूर्ण हैं (विभ्रम सुग्य विलओ) मोहरूपी मदिराका मद क्षय होजाता है (उवन विंद विंदिओ) वे स्वात्मानुभवका स्वाद लेरहे हैं (उवन नंद नंदिओ) जिससे उत्पन्न अतीन्द्रिय आनन्दमें मगन हैं ॥ २२ ॥

(सो नंद नंद जुत्तओ) वे आत्मानन्दी आनन्द सहित रहते हैं (सो चेय नंद जुत्तओ , वे चिदानन्दसे या ज्ञानचेतनाके आनन्दसे युक्त हैं (तं सहजनंद महज मउ) वे स्वभावसे उत्पन्न सहजानन्दके भोक्ता हैं (सो परमानंद परम मउ) वे परमात्माके पदमें होनेवाले परमानन्दसे पूर्ण हैं ॥ २३ ॥

(उवन भाव रूपिओ) प्रकाशमान स्वभावकी ओर ही जहां लक्ष्य है (सो रमन रय परिषयो) वे आत्मरमनके उत्साहकी परीक्षा कर चुके हैं अर्थात् वे आत्माकी मगनतामें ही संतुष्ट है (सो रमन मुक्ति रमन पउ) वे परमात्मा मुक्तिके स्वादमें रमण करते हुए आत्मरमण पदसे सुशोभित है (सो रमन रयन सिद्ध पउ) वे रत्नत्रयके रमणसे सिद्धपदको पावेंगे ॥ २४ ॥

(उव उवन सुहाउ सु उवन पउ) वे परमात्मा उदयमान अपने स्वाभाविक अविनाशी पदमें विराजित हैं (उव उवन समय सजुत्तओ) वे प्रकाशमान आत्मीक रूपमें तन्मय हैं (सु तरन विगान सु समय मउ) वे ही तारणतरण परमात्मा है (सिद्ध समय सिद्ध सपत्तउ) वे ही स्वयं सिद्ध आत्मीक पदको या शुद्ध आत्मीक पद निर्वाणको प्राप्त होंगे ॥ २५ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें सम्यग्दर्शनकी स्तुति मननयोग्य की गई है, सम्यग्दर्शनका महात्म्य बताया गया है। जब निकट भव्य सात तत्वोंका मनन करते हुए भेदविज्ञानका वारवार विचार करता है, अपने आत्माको सर्व अन्य आत्माओंसे, पुद्गलोंसे, धर्मास्तिकायसे, अधर्मास्तिकायसे, कालाणुओंसे, आकाश द्रव्यसे, ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंसे वारवार पृथक् देखा करता है तब यकायक

ममलपाहुड ॥११३॥

करणलब्धिकी प्राप्ति होजाती है, परिणाम समय समय अनन्तगुणे विशुद्ध होते जाते हैं, अन्तर्मुहूर्त तक इस क्रियाके होते रहनेसे अनन्तानुबन्धी कषाय और मिथ्यात्वका उदय बन्द होजाता है और सम्यग्दर्शन गुणका प्रकाश होजाता है—मोक्षमार्गका उदय होजाता है। सम्यग्दृष्टी जीव संसारसे पीठ देकर मोक्षके सन्मुख चलने लगता है, उसके भीतर आत्मानुभव करनेकी शक्ति होजाती है, उसको संसार शरीर भोगोंसे पूर्ण वैराग्य होजाता है, वह आत्मीक आनन्दका स्वाद पाने लगता है, उसके विषयसुखसे अरुचि होजाती है, उसके आत्मानुभवके प्रतापसे बहुतसे कर्म समयके पहले शुद्धभावके प्रतापसे गल जाते हैं, उसके भीतरसे संसार सम्बन्धी राग द्वेष मोह चला जाता है, सर्व कर्मोंकी जड कट जाती है, थोडे ही कालमें उसका कर्मरूपी वृक्ष सूख जाता है, वही अरहन्त सिद्ध परमात्माको ठीक २ पहचानता है, उसको संसार–भ्रमणका भय नहीं रहता है। सम्यक्ती सम्यक्त अवस्थामें स्वर्गकी देवायुका ही बन्ध करता है। सम्यक्तके पहले यदि नर्क, मनुष्य या तिर्यंच आयु बांधी हो तब तो उन गतियोंमें सम्यक्तको साथ लेकर जाता है तथा प्रथम नर्कसे आगे नहीं जाता है, भोगभूमिमें ही पशु व मानव होता है। सम्यक्ती देव मरकर स्वरूपवान कुलीन पुण्यात्मा मानव पैदा होता है, विकलांगी दरिद्री नहीं होता है। सम्यक्त यदि लगातार बना रहे तो थोडे ही भवोंमें मुक्त होजाता है। सम्यक्तीका ज्ञान सम्यग्ज्ञान होजाता है और चारित्र सम्यक्चारित्र होजाता है। वह आत्मानन्दका भोग करता रहता है जिससे उसको परम तृप्ति रहती है। उसके भीतर अहंकार नहीं रहा है, वह पुद्गलकर्मजनित अवस्थाओंको क्षणभंगुर मानकर उनमें राग या मद नहीं करता है।

सम्यग्दर्शनके प्रभावसे उसकी कषाय जब निर्बल होजाती है, अप्रत्याख्यानावरणका उदय नहीं रहता है तब वह श्रावकके व्रतोंको पालता हुआ आत्मानुभवका अभ्यास करता है। जब प्रत्याख्यानावरण कषायका भी उदय नहीं रहता है तब वह मुनिके व्रतोंको साधता है। इसी अभ्याससे जब संज्वलन चार कषाय व नौकषाय गल जाते हैं तब क्षीणमोह गुणस्थानमें पहुँच कर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय कर्मोंका भी क्षय करके अर्हंत जीवन्मुक्त परमात्मा होजाते हैं। तब वे अनन्त सुखमें व यथाख्यातरूप चारित्र या वीतरागतामें मगन रहते हैं। उनको निरन्तर आत्म–रमणता रहती है। वे परमात्माका साक्षात्कार सदा करते रहते हैं। उनके अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक-चारित्र व

अनन्त दानादि पात्र लब्धियां ऐसे नौगुण प्रगट होजाते हैं, वे निरन्तर आत्मीक सुखका स्वाद लेते हैं, उनका वर्तन अब केवल आत्मा द्वारा ही होता है। वे पाच इंद्रियोंसे व मनसे काम नहीं रहते हैं। वे संसारको नाशकर चुके हैं, कर्मोंका क्षय कर चुके हैं। अघातीय कर्म जली हुई रस्सीके समान हैं। जब उनका नाश आयुके अन्तमें होजाता है तब वे ही सिद्ध परमात्मा होजाते हैं। अर्हंत परमात्मा परम कृत-कृत्य, सन्तुष्ट व वीतराग बने रहते हैं। उनके दर्शनसे, उनकी भक्तिसे, उनके ध्यानसे, उनकी सहाय-तासे सम्यक्ती आत्माका अनुभव करता है। ॐ, ह्रीं, श्री, आदि मन्त्रोंके द्वारा अर्हंतका ध्यान करता है। इस सविकल्प ध्यानसे निर्विकल्प ध्यान पैदा होजाता है। ऐसा ध्यानी कालान्तरमें स्वयं अर्हंत हो जाता है। मोक्षमार्गमें शिरोमणि यह सम्यग्दर्शनरूपी रत्न है। हरएक भव्यको भेदविज्ञान द्वारा इसकी तृप्ति करनी चाहिये।

गाथा २६३ से २८८ तक।

(१५) चौविहि दर्सन गाथा

चौविहि दर्सन उत्ति यउ, चष्य अचष्य संजुत्तु।
दर्सन चौविहि उत्ति यउ, भय विनास त भव्वु ॥ १ ॥
अवहहि केवल ममल पउ, भय विनास त भव्वु।
अवहहि केवल ममल पउ, उवन न्यान विलयतु।
उवन सुमन भय उत्ति यउ, उवन न्यान विलयतु।
उवन सहावे ममल पउ, भय गलिया सुइ भव्वु ॥ २ ॥
उवन सहावे ममल पउ, पर पर्जय संजुत्तु।
मन विसेष सुइ नन्त मउ, उवन न्यान विलयंतु ॥ ३ ॥
पर्जय रत्त मूढ मइ, भवह सरन संजुत्तु।
मन भय संक सली मउ, उवन न्यान विलयंतु ॥ ४ ॥
सरनि सहावे सरनि गउ, अदिस्ट इस्ट भय उत्तु।
मन भय उवन उपाइ लइ, अदिस्ट इस्ट भय उत्तु।
भय भी पर्जय दिस्टि रमु, न्यान सहाउ विलन्तु ॥ ५ ॥

ममलपाहुड ॥११५॥

मन भय उवन हिया रमउ, सहयार गुपित भय उत्तु ।
भय सहाइ ससंक पउ, निसंक न्यान विलंतु ॥ ६ ॥
मन सहाइ पर्जय रऊ, अभय लब्धि नो उत्तु ।
अस्नेह भय लाज रऊ, न्यान लब्धि विलयंतु ॥ ७ ॥
दिस्टि भयह संजुत्तु सुइ, पर पर्जय रत उत्तु ।
पर सहाव परजय रमन, न्यान दिस्टि विलयंतु ॥ ८ ॥
पर दिस्टिह पर्जय सहिउ, लोभह भय संजुत्तु ।
गारव गुरु लघु दिस्टिपउ, न्यान दिस्टि विलयंतु ॥ ९ ॥
रंजन रागु जु दिस्टि पउ, कलरंजन भय जुत्तु ।
दर्शन मोह भय सहिउ, न्यान दिस्टि विलयंतु ॥ १० ॥
दिस्टि दर्स भय भीउ सुइ, पर्जय दिस्टि रमंतु ।
पर दिस्टि भय भीउ सुइ, न्यान दिस्टि विलयंतु ॥ ११ ॥
उवन दिस्टि भय भीउ सुइ, हिय स्थान भय उत्तु ।
गुप्त दिस्टि हि भय सहिउ, निसल न्यान विलयंतु ॥ १२ ॥
दिस्टि भयह सुइ झडप मउ, दिस्टि न सहै ससंक ।
भय भीयो संसय सहिउ, चौगय दुख्य सहंतु ॥ १३ ॥
उवन दिस्टि सुइ झडप मउ, हिय गुहिज लष्य अलष्य ।
भयह सहावे भमन पउ, अभय न्यान विलयंतु ॥ १४ ॥

कमलह भय संजुत्त मउ, वयन असुद्ध चवंतु ।
विवर सहाव जु भय सहिउ, न्यान सहाउ गलंतु ॥ १५॥

विवरह वयनह भय सहिउ, मीउ वयन सुइ उत्तु ।
जीवह गुन भूली जियहु, न्यान सहाव विलंतु ॥ १६ ॥

भय भीओ पर्जय सहिउ, श्रुतं अनन्तु अनिस्ट ।
इस्ट सहावे भय सहिउ, क्रिया नरय संजुत्तु ॥ १७॥

वय तव श्रुत अन्यान मउ, विवरह मुह बोलंतु ।
भय भीओ पर्जय सहिउ, भव संसार भमंतु ॥ १८ ॥

इस्ट सहाउ न उपजई, अनिस्ट इस्ट दरसंतु ।
संक कंप सुइ मूढ मई, सहिउ नरय संपत्तु ॥ १९ ॥

कमल सहाव स उत्त जिन, सल्य संक विलयंतु ।
पर्जय विलय सरनि विली, न्यान रमन रस उत्तु ॥ २० ॥

भय षिपनक तं अमिय मउ, ममल रमन रस उत्तु ।
कमल सहावे न्यान पउ, विन्यान विंद दरसंतु ॥ २१ ॥

कमलह कलियो न्यान मउ, भय पर्जय विलयंतु ।
पर्जय विलय सुराग मउ, कमल जिनुत्तु संजुत्तु ॥ २२ ॥

मन भय दिस्टि सु झडप मउ, विवर मुखं भय उत्तु ।
जीभ जी भुली भमन मउ, न्यान कमल विलयंतु ॥ २३ ॥

ममलपाहुड
॥११७॥

उवन हिया सहयार मउ, सुक पर्जय रय उत्तु ।
नो भय विलय सुन्यान पउ, न्यान कमल विलसंतु ॥ २४ ॥
कमल कलिय जिन उत्तयउ, न्यान विन्यान संजुत्तु ।
भय षिपनक सुइ अमिय रस, उवन विंद सम उत्तु ॥ २५ ॥
उवन हिया सहयार मउ, उवन उवन संजुत्तु ।
उवन समय सं उवन पउ, विंद सुन्य सम उत्तु ॥ २६ ॥

अन्वय सहित अर्थ—, दर्शन चौविहि उत्तियउ) चार प्रकारका दर्शन कहा गया है (चष्य अचष्य संजुत्तु) चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन (अवहहि केवल ममल पउ) अवधि दर्शन और निर्मल केवल दर्शन (भय विनास तं भन्वु) यह दर्शन भयका दूर करनेवाला है तथा भव्य है—उत्तम है। सम्यक्ती जीवके तीन दर्शन व केवलज्ञानीके केवल दर्शन होते हैं। चक्षुके द्वारा पदार्थोंका सामान्य अवलोकन चक्षुदर्शन है। चक्षुको छोड़कर चार इंद्रिय और मन द्वारा जो सामान्य अवलोकन है वह अचक्षुदर्शन है। अवधिज्ञानके पहले जो होता है वह अवधि दर्शन है। ये तीन दर्शन अल्पज्ञानीके होते हैं। सम्यक्ती छद्मस्थ उनसे पदार्थोंको अवलोकन कर व ज्ञानसे विशेष जानकर उन जाननेयोग्य पदार्थोंमें रागद्वेष नहीं करता है। इसीसे ये दर्शन हितकारी हैं ॥ १ ॥

(उवन सुमन भय उत्तियउ) जिस समय मनमें भय पैदा होजाता है ऐसा कहा जाता है (उवन न्यान विलयतु) उसी समय प्रकाशित आत्मज्ञान विला जाता है। भय एक प्रकारका कषाय है। इस कषाय भावके आते ही आत्मामें रमणता नहीं रहती है (उवन सहावे ममल पउ) जिसके भीतर निर्मल आत्मीक स्वभावका पद प्रकाशित होता है (भव गलिया सुइ भन्वु) उसके सर्व भय गल जाते हैं, वह निर्भय होजाता है, वही प्रशंसनीय सम्यग्दृष्टी है ॥ २ ॥

(मन विमेष सुइ नत मउ) मनके भेदोंके कारण अर्थात् संकल्प विकल्प व अशुद्ध भावोंके कारण पाप बांधकर जीवको अनन्त जन्म संसारमें धारण करने पड़ते हैं। (पर पर्जय सजुत्तु) जहां पर परिणति रहती है। शरीरमें मगन होकर शरीरमें आपा मान जीव मिथ्यादृष्टी बना रहता है (पर्जय रत्तउ मुद मइ) प्राप्त

शरीरमें आसक्त होकर मूढ बुद्धि जीव (उवन न्यान विग्यतु) अपने भीतर प्रकाशित आत्मज्ञानका लोप किये रहता है । उसको सम्यग्दर्शन सहित आत्मज्ञान नहीं प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

(मन भय सक सली मउ मनके भीतर होनेवाले भय, शङ्का व शल्योंके कारण (भवह सरन सजुत्तु) यह जीव संसारमें भ्रमण किया करता है (मगनि महाने मगनि गउ , संकल्प , विकल्प भ्रमण स्वभावधारी हैं । उनके होनेके कारण कर्मको बांध जीव भ्रमण किया करता है (उवन न्यान विलयन्तु) तथा सम्यग्ज्ञानका लोप किये रहता है ॥ ४ ॥

(मन भय उवन उगाइ लइ) मनके भीतर भय या शङ्का उत्पन्न होनेके कारणसे (अदिस्ट इस्ट भय उत्तु) उसको अदृष्ट दृष्ट जो नहीं प्रगट दिखनेवाला परम हितकारी परमात्मपद है उससे भय रहता है ऐसा कहा गया है अर्थात् जो आत्मीकपदकी ओर जानेमें भय व शङ्का करता है उसको अपने आत्माके स्वभावका दृढ निश्चय नहीं होता है (भय भी पर्जय दिस्टिमु) वह धर्ममार्गसे भयभित होकर पर्यायदृष्टी या मिथ्यादृष्टिमें या वर्तमान प्राप्त शरीरके अहंकार तथा मोहमें रमता रहता है, इंद्रिय विषयभोगोंमें तन्मय रहता है (न्यान महाउ विलतु) अपने शुद्ध आत्मज्ञानके स्वभावको नहीं जान पाता है ॥ ५ ॥

(मन भय उवन हिया रमउ) मनमें भय या शङ्का उत्पन्न होनेसे हृदय उसी शंकामें रम जाता है (महयार गुपित भय उत्तु) इसी कारण उसको अपने गुप्तज्ञानकी तरफ भय या शंका कही जाती है अर्थात् उसे अपने गुप्त शुद्ध ज्ञानका निश्चय नहीं होता है (भय सहाइ ससक पउ) भयके कारण निःशंकित पद्को न पाकर सशंकित पद्में जमा रहता है (निसक न्यान विलतु) उसको संशय रहित ज्ञान नहीं होने पाता है । वह संशय मिथ्यादृष्टी बना रहता है ॥ ६ ॥

(मन सहाइ पर्जय रऊ) मनके दोषका कारण वह प्राप्त शरीररूपी पर्यायमें रत होजाता है (अभय लब्धिनो उत्त) उसको निर्भयपनेकी लब्धि नहीं प्राप्त होती है अर्थात् वह निःशंकित सम्यग्दर्शनको नहीं प्रगट कर पाता है ऐसा कहा गया है (अस्नेह भय लाज रऊ) वह जगतके स्नेहमें, भयमें, व लज्जामें रत रहता है । किन्हींसे प्रेम करता है, किन्हींसे भय करता है, किन्हींसे लाज करता है (ज्ञान लब्धि विज्ञयतु) उसको शंका रहित, भय रहित, लाज रहित, राग रहित, व वीतरागता सहित सम्यग्ज्ञानका व स्वसंवेदन ज्ञानका लाभ नहीं होपाता है ॥ ७ ॥

(दिरि मयह सुजुत हुई) वह जीव भयकी या शंकाकी दृष्टि सहित होता हुआ मिथ्यादृष्टि होता है (पर पर्जय रत उत्त) वह अपने आत्माकी शुद्ध परिणतिको छोडकर कर्मजनित परिणतिमें या अशुद्ध रागादि भावोंमें रत होजाता है (पर सहाव पर्जय रमन) वह पर द्रव्यके स्वभावमें या पर परिणतिमें रमण करता रहता है (ज्ञान दिस्टि विन्यतु) उसको सम्यग्ज्ञानकी दृष्टि प्राप्त नहीं होती है ॥ ८ ॥

(पर दिस्टिह पर्जय सहिउ) मिथ्यादृष्टिके कारण वह शरीरको ही आपा मानकर उसी पर्यायदृष्टिका व्यामोह रखता है (लोभय भय सजुत्त) उसको इष्ट पदार्थोंके पानेका व रखनेका व भोगनेका लोभ होता है व अपने परिग्रहके चले जानेका व बिगड़नेका व मरणका भय बना रहता है (गारव गुरु लघु दिष्टि पउ) उसको अहंकार होता है जिमसे वह अपनेको बड़ा व दूसरोंको छोटा देखता है या दूसरोंको बड़ा अपनेको छोटा देखकर मनमें अहंकारसे दुःखी होता है (न्यान दिस्टि विन्यंतु) इसकी सम्यग्ज्ञानकी दृष्टि नहीं खुलती है। सम्यग्दर्शनके अभावसे वह क्रोध, मान, माया, लोभादि कषायोंके भीतर रंजायमान रहता है ॥९॥

(रजन राग जु दिष्टि पउ) उसके भीतर ऐसा राग देखा जाता है जिससे वह मानवोंको राजी रखनेमें प्रसन्न रहता है (कल रंजन भय उत्तु वह मिथ्यादृष्टी शरीरमें व शरीरके क्षणिक सुखमें मगन रहता है तथा शरीरके छुटनेका बडा भय मानता है। (दर्सन मोहे भय सहिउ वह दर्शन मोहनीय कर्मके उदय सहित सदा भयभीत व शंकित रहता है (न्यान दिष्टि विन्यंतु) उसके सम्यग्ज्ञानका प्रकाश नहीं होता है ॥१०॥

(दिष्टि दर्सनय भीउ सुइ , वही मिथ्यादृष्टी सम्यग्दर्शनके प्रकाश करनेसे स्वयं भयभीत बना रहता है, उसको आत्मज्ञानकी वैराग्यमय चर्चाके सुननेका भय रहता है। (पर्जय दिस्टि रमतु) वह शरीरके मिथ्या मोहमें रमन करता रहता है (पर दिष्टि भय भीउ सुइ) वह मिथ्यादृष्टि स्वयं आत्माकी श्रद्धासे विमुख रहता हुआ भयभीत रहता है (न्यान दिष्टि विन्यतु) उसके सम्यग्ज्ञानका प्रकाश नहीं हो पाता है ॥ ११ ॥

(उवन दिष्टि भय भीउ सुइ) प्रकाश करने योग्य सम्यग्दर्शनसे वह स्वयं भयभीत रहता हुआ (हिय स्थान भय उत्तु) हृदयके स्थानमें भयसे पूर्ण रहता है ऐसा कहा गया है (गुप्त दिष्टिह भय सहिउ) गुप्त शुद्ध सम्यग्दर्शनसे भय रखता हुआ (निसल न्यान विन्यंतु) शल्य रहित ज्ञानको लोप किये रहता है। वह मिथ्यादृष्टि आत्मज्ञानकी चर्चा ही नहीं सुनता है। सशंक रहता हुआ आत्मापर श्रद्धा नहीं लाता है। उसका ज्ञान माया, मिथ्या, निदान शल्योंसे रहित नहीं हो पाता है। ॥ १२ ॥

(दिस्टि भयह सुइ झडप मउ) वह भयसे पूर्ण व शंकासे पूर्ण व आकुलतासे पूर्ण दृष्टि रखता है। (नोट झडप कोई संस्कृत शब्द नहीं मालूम होता है। प्रचलित भाषाका शब्द होगा जो ग्रंथकर्ताके समयमें प्रचलित होगा। झडपके अर्थ शीघ्रताके भी है, चंचलताके भी है) या वह मिथ्यादृष्टि ऐसा चंचल होता है कि उसका भाव शीघ्र२ बदलता रहता है, वह थिर बुद्धिवाला नहीं होता है (दिस्टि न मद्दै ससक) उसको सम्यग्दर्शन सहन नहीं होता है अर्थात् वह तत्वज्ञानको पी नहीं सक्ता है, वह शंका रहित होता है (भयभीओ ससय सहिउ) ऐसा भयभीत व संशयसे पूर्ण मिथ्यादृष्टी जीव (चौगइ दुइ सहेतु) चारों गतियोंके दुःख सहता है ॥ १३ ॥

(उवन दिस्टि सह झडप मउ) ऐसी चंचल स्वभावपनेकी दृष्टि जब मिथ्यादृष्टीके भीतर स्वयं उत्पन्न होती है (हिय गुहिज रुच्य अलष्य) तब उसको हृदयमें गुप्त जानने योग्य आत्माके शुद्ध स्वभावका ज्ञान नहीं होपाता है (भयह सहाव भमन पउ) वह भयभीत स्वभाव रखता हुआ भ्रमणके चक्करमें पडा रहता है (अभय ज्ञान विलयन्तु) उसको भय रहित निर्भय सम्यग्ज्ञानका लाभ नहीं हो पाता है ॥ १४ ॥

(कमलह भय सजुत्त मउ) जब मिथ्यादृष्टीका कमलाकार मन, भय व शङ्का सहित होजाता है (वयन असुद्ध ववतु) तब उसके वचन अशुद्ध निकलते हैं। अर्थात् उसकी सर्व कथनी या उसका सर्व उपदेश या उसकी सर्व वार्ताएँ अशुद्ध सदोष मिथ्यात्वपूर्ण व संसार-वर्द्धक निकलती हैं (विवग सहाउजु भय सहिउ) उसका स्वभाव दोष सहित होजाता है व भयपूर्ण होता है (यान सहाउ गलतु) उसका ज्ञान स्वभाव मानो गल जाता है। मिथ्यादृष्टीका मन रागद्वेष भय व शंकासे पूर्ण होता है। उसकी वचन प्रणाली ऐसी ही होती है। उसका वर्तन ऐसा ही होता है। उसको आत्मज्ञानकी तरफ जानेकी बुद्धि ही नहीं रहती है। वह मिथ्यात्वके अंधकारसे व्याप्त होजाता है ॥ १५॥

(वित्राह वयनह भय सहिउ) यह दोष सहित व भय सहित वचनोंको कहता रहता है (भीउ वयन सुइ उत्त) उसके वचनोंको भीरुके वचन या कायरोंके वचन कहते हैं (भीवह गुन भूली जियहु) वह शुद्ध जीव पदार्थके गुणोंको बिलकुल भूले हुए रहता है। वह कभी यह स्मरण नहीं कर सक्ता है कि मैं निश्चयसे परमात्मा सिद्धके समान ज्ञाता दृष्टा अविनाशी आत्मा हूं (न्यान सहाव दिलउ) इसका ज्ञान स्वभाव लुप्त रहता है॥१६॥

(भय भीओ पर्जय सहिउ) वह भयभीत सशंकित प्राणी शरीरके सुख या दुःखमें मग्न रहता है

(श्रुा अनन अनिष्ट) और ऐसी कथनी, व चर्चा व वार्ताओंको सुनता है जिससे उसका बुरा अनंतकाल तक होगा। वह स्त्री कथा, भोजन कथा, देश कथा व राजा कथा आदि श्रृंगार रस कथाओंमें व रागद्वेषवर्धक कथाओंमें रंजायमान होकर घोर पाप बांध लेता है इ ड सहावे भय सहिड) वह अपने हितकारी आत्मस्वभावकी ओर भय सहित व शङ्का सहित रहता है (क्रिया नाय मजुत्त) उसका सर्व क्रियाकाण्ड व आचरण ऐसा होता है जिससे वह नरकायु बांध लेता है। हिंसानन्द, मृषानन्द, चौर्यानन्द, परिग्रहानन्द, रौद्रध्यानमें तन्मय रहनेसे नर्कायुका बन्ध पड़ जाता है ॥ १७ ॥

(दय तव श्रुत अन्यान मउ) वह मिथ्यादृष्टी अज्ञानमई मिथ्या व्रत, तप, व शास्त्रकी ओर लेजानेवाली वार्तोंको (विवाह मुह बोलतु) अपने सदोष मुखसे बोला करता है (भय भीओ पर्जय सहिड) ऐसा धर्मका भीरु व कायर प्राणी, पर्यायमें रत रहता हुआ (भव संसार भमतु) अनेक जन्मोंसे भरे हुए संसारमें भ्रमण किया करता है ॥ १८ ॥

(इष्ट सहाव न उपजई) हितकारी अपने आत्माके स्वभावके ज्ञानको वह मिथ्यादृष्टी नहीं प्राप्त करता है (अनिस्ट इस्ट दरसतु) जिससे आत्माका हित न होकर अहित होगा, ऐसी बातोंको ही अच्छा देखा करता है–विषय कषायोंमें ही सुख मानता है (सक क्ष्य मुह मूढ मइ सहिड नाय सातु) वह विचारा शङ्का, कांक्षा व मूढ बुद्धि सहित रहता हुआ स्वयं नरक प्राप्त कर लेता है ॥ १९ ॥

(कमल सहाव स उत्तजिन) श्री जिनेन्द्र भगवानने कहा है कि यह आत्मा कमलके समान सदा प्रफुल्लित स्वभाव है (सल्य सक विलयतु) न उसमें कोई शल्य है न कोई शंका है (पर्जय विलय सानिविली) जब पर्याय दृष्टि या मिथ्यादृष्टि चली जाती है और आत्मामें आत्माकी सम्यग्दृष्टि पैदा होजाती है तब संसारका भ्रमण विला जाता है (न्यान रमन रस उत्तु) तब आत्मज्ञानकी रमणतासे आनन्द रसका स्वाद आता है, सिद्धावस्थाका आनन्द प्रगट होता है ऐसा कहा जाता है ॥ २० ॥

(भय विपनक त अमिय पउ) वह आत्मीक पद सर्व भय शङ्काओंको मिटानेवाला है, वह अविनाशी अमृतमई पद है (ममक रमन रस उत्तु) वहां शुद्ध स्वभावकी रमणताका स्वाद आता है, ऐसा कहा गया है (कमक सहावे ज्ञान पउ) वह प्रफुल्लित स्वभावधारी ज्ञानमई पद है (ज्ञान विं दासतु वहां ज्ञानका अनुभव या शुद्धात्मानुभव दिख जाता है ॥ २१ ॥

(कमलइ कलियो न्यान पउ) उस कमलसमान आत्मामें ज्ञानमई कलियें या पांखड़ियें विकसित हो-रही हैं (भय पर्नय विलयन्तु) वहां सर्व भयकी अवस्थाएं विला गई हैं (पर्जय विलय सु राग मउ) तथा रागमई अवस्थाएं भी दूर होगई हैं, वैराग्यका प्रकाश होगया है (कमल जिनुत्तु सजुत्तु) ऐसा जिनेन्द्रकथित कमल-समान आत्मा है ॥ २२ ॥

(मन भय दिस्टि जु झडप मउ) मन सम्बन्धी विकल्प, भय व चंचल स्वरूप आकुलतामय दृष्टि (विवर मुख भय उत्तु) सदोष मुखसे भयोत्पादक कथन व (जीभ जी मुली भमन मउ बकबक करके चलनेवाली जबा-नकी चंचलता (ज्ञान कमल विश्यतु) वे सब बातें आत्मज्ञानमय कमलके विकाससे विला जाती हैं अर्थात् जब आत्मा आत्मस्थ होकर आत्मानुभव करता है तब वहां न मनकी चंचलता है, न कोई भय है, न कोई वचनके प्रयोग हैं, न बाहर जल्प है, न अन्तर जल्प है। सर्व मन व वचन सम्बन्धी विकार नाश होजाते हैं ॥ २३ ॥

(उवन हिया सहयार मउ) जब हितकारी व सहकारी सम्यग्दर्शनका भाव पैदा होजाता है (सुक पर्जय रय उत्तु) तब अपनी ही आत्मीक शुद्धावस्थामें रति होजाती है ऐसा कहा गया है (नो भय विलय सु ज्ञान पउ) भय नामका नोकषाय बिलकुल विला जाता है—सम्यग्ज्ञानका पद झलक जाता है (न्यान कमल विकसतु) शुद्ध आत्मज्ञानरूपी कमल प्रफुल्लित होजाता है ॥ २४ ॥

(कमल कलिय जिन उत्त यउ) जिनेन्द्र भगवानने कहा है कि वह ज्ञानमय कमल है (न्यान विन्यान सजुत्त) जो भेदविज्ञानसे या सम्यग्ज्ञानसे पूर्ण है (भय षिपनक हुइ अभिय रस) वह सर्व भयसे रहित है, वही अमृत-रससे पूर्ण है (उवन विंद सम उत्तु) उसे ही प्रगट समभाव सहित ज्ञानानुभव कहते हैं ॥ २५ ॥

(उवन हिया सहयार यउ) वह प्रगट सम्यग्दर्शन परम हितकारी व सहायकारी है (उवन उवन रुजुत्तु) वह उदयरूप अपने प्रकाशको लिये हुए है (उवन समय स उवन पउ) इसीको उदयरूप आत्मा कहते हैं, इसीको सम्यक् प्रकाशित पद कहते हैं। (विंद सुन्य सम उत्तु) इसीको शून्य भाव या निर्विकल्प भावका अनुभव कहते हैं, इसीको समभाव कहते हैं ॥ २६ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें यद्यपि चार प्रकार दर्शनका नाम लिया गया है तथापि इसमें सम्यग्द-र्शनके निःशंकित अंगका ही विस्तारसे कथन किया गया है। सम्यग्दृष्टी तत्वोंमें शंका रहित होता है।

उसको आत्मा और अनात्माका यथार्थ भेदविज्ञान होता है। उसको पूर्ण निश्चय है कि यह आत्मा अपनी सत्ता भिन्न रखता हुआ भी परम शुद्ध एकाकी द्रव्य है, यह ज्ञानदर्शन आनन्दमय परम वीतराग है। यह ज्ञानावरणादि आठों कर्मोंसे, रागद्वेषादि भावकर्मोंसे, शरीरादि नोकर्मोंसे भिन्न है। सम्यक्ती सदा निर्भय रहता है। निश्चयनयसे वास्तवमें जब वह विचार करता है तब भी उसे सात भय नहीं होते हैं। व्यवहारसे विचार करनेपर भी वह सात भयरहित होता है। निश्चयसे वह समझता है कि मेरा लोक मेरा शुद्धात्मा है, मेरा परलोक या उत्कृष्ट लोक मेरा शुद्धात्मा है। अपनेको परमात्मा स्वभावसे काहेका भय ? निश्चयसे मेरेको अपने आत्माके शुद्धस्वरुपकी वेदना है। उसीका अनुभव है। मेरे भीतर अन्य कोई सांसारिक सुख व दुःखकी वेदना ही नहीं है जिसका मुझको भय हो। न मुझे अरक्षा भय है, क्योंकि मेरा स्वरूप अखंड अविनाशी है, इसे रक्षाकी आवश्यक्ता नहीं। न इसे अगुप्तिभय है। यह अपने स्वरूपमें मगन है। इसका ज्ञान-दर्शन सुख वीर्यादि गुण सम्पदा इसीमें है, उसे कोई चुरा नहीं सक्ता, छीन नहीं सक्ता। न इसे मरण भय है। मरण तो आत्माका है ही नहीं, यह सदा ही अपने स्वभावसे अमर है। न इसे अकस्मात्‌भय है। आत्माका कोई नाश कर नहीं सक्ता। इसमें किसी अकस्मात्‌की संभावना नहीं है। इसतरह मैं सातो भयोंसे रहित परम अभय हूं, ऐसा निश्चयनयसे विचार सम्यग्दृष्टीको होता है। व्यवहारनयसे भी वह सातो भयोंसे रहित होता है। वह विचारता है कि मुझे अपने कर्तव्यका पालन निर्भय होकर करना चाहिये। लोगोके कहने सुननेका क्या भय ? इस तरह उसे इस लोक भय नहीं होता है।

परलोकमें मैं अपने कर्मानुसार कहीं भी जन्म धारण करूँ। मै सब सुख दुःख ज्ञाता दृष्टा होकर सहलूंगा। मुझे परलोकका भय नहीं। मै रोग न होनेका यत्न रखता हूँ। यदि कर्मके उदयसे रोग शरीरमें होजायगा, मैं समतासे सहन करूँगा। भय करना व्यर्थ है। मै अपनी आयुकर्मके क्षय विना मर नहीं सक्ता। मेरा पुण्य मेरा रक्षक है, मुझे अनरक्षा भय नहीं है। मै अपनी सम्पदाका योग्यतया रक्षाका प्रबन्ध करता हूँ, ऐसा करते हुए भी यदि सम्पदा चली जावे तो मुझे कोई भय नहीं है। जबतक मेरे पुण्यका उदय है, मेरी सम्पत्ति कहीं जा नहीं सक्ती। मुझे अगुप्तिभय नहीं है। मेरा मरण तब ही होगा जब आयु-कर्म क्षय होगा। आयुकर्मको कोई ले नहीं सक्ता। मुझे मरणका क्या भय ? मै अकस्मात् न होनेका यथा-शक्ति प्रयत्न रखता हूं, फिर भी यदि कोई घटना होजायगी, उसमें मेरे ही पापकर्मका उदय होगा, उसे

मैं सह लूंगा, मुझे अकस्मात् भय नहीं। इसतरह विचारकर वह सम्यक्ती व्यवहारमें भी निभय रहता है। वह साहसी वीर योद्धाके समान संसारमें जीवनयात्रा बिताता है। वह कभी कायर, भयभीत, सशंक नहीं होता है।

मिथ्यादृष्टी सदा ही सशंक व भयभीत रहता है। मिथ्यादृष्टीको अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपकी श्रद्धा नहीं होती है। उसके भीतर यातो विपरीत ज्ञान होता है कि यह शरीर ही आत्मा है या संशय होता है कि आत्मा है या नहीं, नित्य है या अनित्य है, शुद्ध है या अशुद्ध है। उसे मोक्षके अतीन्द्रिय सुखका श्रद्धान ही नहीं होता है। इंद्रियजनित सुखको ही सुख मानता है वा उसको संशय होता है कि अतीन्द्रियसुख है या नहीं। तत्वोंमें शंका सहित होता हुआ वह मोक्षका व मोक्षमार्गका ठीकर निश्चय नहीं कर पाता है।

वह ऐसा विषयसुखका मोही होता है, कुटुम्ब परिवारका मोही होता है। धन सम्पदाका लोभी होता है कि उसको धर्म चर्चा व आत्मचर्चा व वैराग्यकी वात सुननेसे ऐसा भय लगता है कि कहीं सुन लूंगा तो गृहस्थसे उदास होना पड़ेगा, दान धर्म करना पडेगा, विषयसुख त्यागने पड़ेंगे, वह सात प्रकार भयोंसे ग्रसित होता है। जीवनमें सदा ही लोगोंके कहने सुननेका भय करता है। परलोकमें कहीं नरकगतिमें न चला जाऊँ, पशु गतिमें दुःख न उठाऊँ ऐसा भय रखता है। मेरा कोई रक्षक नहीं दीखता, मै कैसे जीवन विताऊँगा ! मेरा धन कोई लेजायगा तो क्या करूँगा। कहीं मरण न आजावें। मरण आजायगा तो सबकुछ छोड़ना पड़ेगा, कहीं छत न गिर पड़े, पानीमें न डूब जाऊँ, गाडीसे न गिर पड़ूँ। इसतरह सात प्रकारके भयोंसे नित्य ग्रसित रहता है। आत्मासे वाहरी पदार्थोंका मोह व उनके चले जानेका भय मिथ्यात्वीको सदा आकुलित रखता है। शंका तथा भय दोषोंके कारण मिथ्यात्वीको न कभी आत्माका विश्वास होता है न कभी वह आत्माका अनुभव कर सक्ता है। स्वात्मानुभव तब ही होता है जब सम्यक्तीके भीतर निःशंक व भय रहित भाव जमा रहता है। भयभीत व सशंकित प्राणी कभी भी आत्माका अनुभव नहीं कर सक्ता है। जिसको शरीरादि पर पदार्थोंका मोह न होगा वह अवश्य निर्भय हो आत्मानुभव कर सकेगा। सम्यक्ती जीव संकल्प विकल्पोंको त्यागकर निर्विकल्प आत्माका ध्यान निश्चित होकर कर सक्ता है जब कि मिथ्यादृष्टी जीवका मन अनेक प्रकारके संकल्प विकल्पोंमें फंसा रहता है। वह रातदिन

विषयोंकी इच्छा करता है। विषय चले न जावें इसका निरन्तर भय रखता है। उसके भीतर मायाचार, मिथ्यात्व व निदान नामकी तीन शल्ये रहती हैं। मिथ्यादृष्टी यदि कोई दान धर्म परोपकारादि काम करता है तौ उसके भीतर मायाचार, मिथ्यात्व या निदानकी शल्य वनी रहती है।

मिथ्यात्वी जीव मनके संकल्प विकल्पोंमें-संसारके मोहमें लिपटा रहता है इसलिये वारवार मिथ्यात्वादि कर्म बांधकर एकेन्द्रियादि अनन्त जन्म धारण करता हुआ जन्म मरणके दुःख सहता है, वह पर्यायबुद्धि होता है, लोकलाजका भय रखता है, तृष्णाके भीतर फंसा रहता है, धनादि होनेपर बड़ा अहंकार करता है, उसको क्रोधादि कषायोंके करनेमें आनन्द भासता है, परको दुःखी करनेमें राजी रहता है। वह अपने किसी कामको सिद्ध करनेके लिये या प्रतिष्ठा पानेके लिये जनताको प्रसन्न करनेवाली बातें या क्रियाएं करता है। अशुद्ध मन रखनेके कारण मिथ्यादृष्टी अशुद्ध ही उपदेश देता है-विषयोंके बढानेकी तरफ झुकता है। उसका उपदेश संसारवर्द्धक होता है, यह भयभीत होता है, इसलिये काय-रोकेसे वचन कहता है। खोटी कथाओंमें मगन रहता है। ऐसा मिथ्यादृष्टी जीव हिंसानन्दी आदि रौद्र ध्यानके कारण नर्क चला जाता है या इष्टवियोगादि आर्तध्यानके कारण पशुगतिमें चला जाता है। मिथ्या-दृष्टी संसारके भीतर चारों ही गतियोंमें भ्रमण कर दुःख उठाता है। सम्यग्दृष्टी आत्मज्ञानी निर्भय व निशंक होकर आत्मानन्दका स्वाद लेता है। उसको भेदविज्ञान होता है, वह मोक्षमार्गी है। उसको अवश्य सिद्धपद प्राप्त होगा। वह साम्यभावमें रमणकर कर्मोंकी निर्जरा करता हुआ परमसंतोषी रहता है-निशं-कित अंगको भलेप्रकार पालकर सुखी रहता है।

---

(१६) कमल छंद गाथा २८९ से ३०२।

कमलं कमल विसेप मुनी, कमल भाव संसुद्ध पओ।
कमलह केवल ओत समु, मुक्ति पंथ सिवसुख मओ॥ १ ॥
कमलं उवनं कमलं सुवनं, कमलं अपयं कमलं सुरयं।
कमलं विन्यान पयोहरहं, कमलं पय पर्मपदं ममलं॥ २ ॥

कमलं पय अर्थ समुच्चियऊ, कमलं समभाउ परिष्ठियऊ ।
कमलं सुइ सयन स उत्तियऊ, अर्थह जि अर्थ ति अर्थ पऊ ॥३॥
सम अर्थ सुयं परमार्थ पऊ, कमलं सम समय संजुत्ति यऊ ।
कमलह सहकार अर्थ ममलो, कललंकृतु कम्म सुयं विलयो ॥४॥
कमलह अवयास स उत्तियऊ, अवयासह नन्तानन्त पऊ ।
कमलह कम्मान वंध विलओ, कमलह सिव सासय पुण्य पओ ॥५॥
कमलह उववभ्रवि रयन पऊ, कमलह कम्मा सौ गलि गयऊ ।
कमलह जिन उत्तो ममल पऊ, कमलह भय सल्य संक विलऊ ॥६॥
कमलह परिनवै सु पर्म पऊ, परमानई नन्ता नंतियऊ ।
कमलह लंकृत तं लीन पऊ, कमलह विन्यान न्यान समऊ ॥७॥
कमलह सम समय सु दिस्टि मऊ, कमलह सहकार सुनन्ति यऊ ।
कललंकृत कम्मु नंत विलओ, कमलह परम पुनंतु मऊ ॥ ८ ॥
कमलह कलियो सुइ न्यान पऊ, नानाप्रकार विन्यान मऊ ।
कमलह अवयास जिनुत्ति पऊ, अन्मोय विरोह विलंति यऊ ॥९॥
कमलह कम्मान न उत्ति यऊ, कमलह परजाय विलन्ति यऊ ।
कमलह परु सयन न उत्ति यऊ, कमलह परिनाम जिनुत्ति यऊ ॥१०॥
कमलह हिय यार स उत्ति यऊ, कमलह परजय विरन्ति यऊ ।
कमलह ववयन संजुत्ति यऊ, कमलह सुइ नंतानन्त पऊ ॥ ११ ॥
कमलह अन्मोय न्यान ममलु, कमलं पर्जाय सुयं विलउ ।

कमलह सुइ सहजानन्द मऊ, कमलह जनरंजन सुय विलऊ ॥ १२ ॥
कमलह अन्मोय सु सिद्धि पऊ, कमलह कम्मान वंधु षिपऊ ।
कमलह सुइ मुक्ति सुपर्म पऊ, भय षिपिय भव्वु सुइ सिद्धि गऊ ॥ १३ ॥

घत्ता—

इय कमलेन सहाओ, पर्म भाव सुइ पर्म मुनी ।
तं परमानन्द सहाओ, ममल मुक्ति संजुत्तु मुनी ॥ १४ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(कमलं कमल विसेष मुनी) कमलसे यहां आत्मासे प्रयोजन है जिसमें सम्यग्दर्शनका प्रकाश होगया है, सम्यग्दृष्टी प्रफुल्लित कमलके समान शोभायमान होता है। उन कमल समान सम्यग्दृष्टी महात्माओंमें मुख्य कमल विशेष आत्मध्यानी साधु महाराज होते हैं (कमल भाव सशुद्ध पयो) जिनके भीतर परमशुद्ध पद्धारी आत्माका आनन्दमय भाव प्रगट होता है (कमलः केवल ओत समु) उनका आत्मा केवल समताभावसे ओतप्रोत भरा होता है। मुक्तिपथ सिवसुखमओ) उनका शुद्धोपयोग भाव मोक्षका मार्ग है, वही मोक्षके आनन्दसे पूर्ण है। अर्थात् जब साधु शुद्धात्मानुभवमें तल्लीन होते हैं तब उनके कर्मोंकी निर्जरा भी होती है व उनको अतीन्द्रिय आनन्दका भी लाभ होता है। जिन्होंने मोक्ष पाई है व पारहे हैं व पावेंगे वे सब स्वात्मानुभवरूपी भोगसे ही पाई है, पारहे हैं व पाएंगे ॥ १ ॥

(कमल उवन कमल सुवन) ऐसा स्वात्मानुभवमें रमण करनेवाला कमल समान प्रफुल्लित आत्मा ही प्रकाशरूप है व यही कमल शोभनीक वन है, जहां आत्मा बड़े प्रेमसे रमण करता है (कमलं अपय कमल सुरय) यही कमल सम आत्मा अविनाशी है व यही सरस मदिरा है जिसका पान कर योगी आत्मामें उन्मत्त होजाते हैं (कमलं विन्यान पयोहरह) यह कमल समान आत्मा ही सम्यग्ज्ञानरूपी मेघ है जिससे आत्मीक अमृतजलकी वर्षा होती है (कमलपय पर्मपदं ममलं) यह कमल सम आत्मीक पद ही शुद्ध श्रेष्ठ पद है जहां मुमुक्षु जीव अपना स्थान जमाते हैं ॥ २ ॥

(कमल पय अर्थ समुच्चियऊ) यही आत्मकमल सर्व पदोंके अर्थोंका समूह है। अर्थात् जहां शुद्धात्माके अनुभवका प्रकाश है वहां द्वादशांगवाणीका सर्वस्व प्राप्त होगया, ऐसा जानना चाहिये क्योंकि आत्मा-

भव कराना ही सब द्वादशांगवाणीके पदोंके अर्थोंका प्रयोजन है। (कमल समभाउ परिछियऊ) इसी आत्मारूपी कमलमें समताभावकी परीक्षा है। अर्थात् जहां स्वात्मानुभव है वहांसे नियमसे रागद्वेषरहित समभाव पाया जाता है। जिसको शुद्धात्माका अनुभव न हो और वह रागद्वेष न करके समभाव रक्खे तौ वह सचा समभाव न होगा। उसका शांतभाव किसी अंतरंग शल्यको लिये हुए होगा। कोई स्वार्थसिद्धिका भाव उसकी जड़में होगा या मान्यता पानेका या आगामी भोग पानेका या किसीको रिझाकर प्रयोजन सिद्ध करनेका, परन्तु जहां सम्यग्दर्शन सहित निजात्माकी तल्लीनता होगी वहां ही सचा वीतरागभाव पाया जायगा (कमलं सुइ सयन सु उत्तियऊ) यह आत्मारूपी कमल स्वयं ही एक शय्या कही गई है, जहां योगीगण निश्चिन्त होकर विश्राम करते हैं। योगियोंको लेटनेकी शय्या निज आत्माका अनुभव है (अर्थह जिअर्थ तिअर्थ पऊ) वही सर्व पदार्थोंमें सार पदार्थ है, वही रत्नत्रयकी एकताका पद है—जहां आत्मा स्वसमयरूप है, समयसार रूप है वही सर्व पदार्थोंका सार है तथा वही निश्चय सम्यग्दर्शन है, निश्चय सम्यग्ज्ञान है व निश्चय सम्यक्चारित्र है ॥ ३ ॥

(सम अर्थ सुय परमार्थ पऊ) वही समतामय पदार्थ है, वही स्वयं परमार्थपद है, इसी पदमें अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु रमण करते हुए परमेष्ठी कहलाते हैं (कमल सम समय सउ व पऊ) यह आत्मारूपी कमल समभाव सहित चारित्रसे पूर्ण है। यही स्वसमयरूप परिणति है, पर समयकी परिणतिका अभाव है (कमलइ सहकार अर्थ ममलो) प्रफुल्लित आत्मानुभव सहित आत्मा ही निर्मल भावधारी पदार्थ है (कमलं हुउ कम्म सुयं विलयो) जिसमें रमण करनेसे शरीरकी शोभा बढानेवाले कर्म स्वयं विला जाते हैं अर्थात् जिन कर्मोंके उदयसे पुन शुभ या अशुभ शरीर प्राप्त हो वे कर्म गल जाते हैं ॥ ४ ॥

(कमलह अवयास स उत्तियऊ) इस प्रफुल्लित आत्मानुभवी कमल समान आत्माको आकाशके समान निर्मल व अनन्त कहा गया है (अवयास नन्तानन्त पऊ) जिसमें अनन्तानन्त पदार्थोंका स्वरूप अवकाश पाजाता है अर्थात् आत्माके ज्ञानमें ऐसी शक्ति है कि लोकालोक सब झलकता है। सर्व ही द्रव्य अपने अनन्त गुणपर्याय सहित प्रकाशित होते है तौभी उसके अवकाशदानकी शक्ति कम नहीं होती है। ऐसे अनन्त लोकालोक हों तौभी आत्माके ज्ञानमें समा सक्ते हैं। (कमलइ वन्धान वन्ध विलओ) इसी आत्मानुभवरूपी कमलके प्रभावसे कर्मोंके वन्ध उसी तरह विला जाते हैं जैसे सूर्यके तापसे पानी भाफ बनकर विला

जाता है । (कमलह पिन सासय सुण्य पओ) यही कमल समान आत्मा ही मोक्षके अविनाशी सुखका स्थान है। जहां आत्माका आत्मामें रमण होता है वहीं मोक्ष-सुखका स्वाद आने लगता है ॥ ५ ॥

(कमलह उववन्नपि रयन पऊ) इसी कमलमें रत्नत्रय पद झलक रहा है निश्चय रत्नत्रय आत्मसमाधि भाव है सो इसमें चमक रहा है (कमलह कम्मा सौ गलि गयऊ) इस आत्मानुभव कमलके प्रभावसे नवीन कर्मोका आस्रव निरोध होजाता है-संवर भावका प्रकाश होता है (कमलह जिन उत्तो ममल पऊ) इसी कमलको जिनेन्द्र भगवानने शुद्ध पद कहा है, शुद्धोपयोग कहा है जो साक्षात् कर्मोके संवर निर्जराका कारण है (कमलह भय सक सल्य विलऊ) इस कमलमें न कोई भय है, न कोई शङ्का है, न कोई शल्य है। यह आत्म-रमणरूपी भाव निर्भय, निःशंक व निःशल्य है ॥ ६ ॥

(कमलह परिनवै सु पर्म पऊ) यही आत्मानुभवरूपी भाव परमपद मोक्षमें परिणमन कर रहा है। अर्थात् इसी शुद्धोपयोगके रमणसे परम शुद्धोपयोगमय मोक्षका लाभ होता है (पामानह नन्तानंत पऊ) इसीसे अनन्तानन्त पदार्थोंका जाननेवाला केवलज्ञानरूपी प्रत्यक्ष प्रमाण प्रगट होजाता है। केवलज्ञानका कारण आत्मज्ञानका रमण है। (कमलह लकृत त लीन पऊ) इसी कमलमें वही आत्मतन्लीनता रूपी पद शोभनीक है। (कमल्ह विन्यान न्यान समऊ) यही कमल ज्ञान विज्ञानसे पूर्ण आत्मा है ॥ ७ ॥

(कमल्ह सम समय सुदिष्टि मऊ) यही कमल समान आत्मा समतासे पूर्ण क्षायिक सम्यग्दर्शन स्वरूप है (कमलह सहकार सुनतिरऊ) यही कमलसम आत्मा अनन्तशक्तिके प्रकाशका कारण है अर्थात् आत्मानुभवके प्रतापसे अनन्तवीर्य प्रगट होता है (कललंकृत कम्मु नत विगओ) इसीके कारण कार्माण शरीरमें बन्धे हुए अनन्त कर्म क्षय होजाते हैं (कमल्ह परम दुनंदु मलो) इसी कमलवत् आत्मामें रमण करना रागादि मलोको हटाकर परम पवित्र कर देता है ॥ ८ ॥

(कमलह कलियो सुह न्यान पऊ) इस आत्मारूपी कमलमें स्वयं ज्ञानमई कलियां हैं या पांखडियां हैं (नानाप्रकार विन्यान मऊ) जो अनेकप्रकार ज्ञानसे पूर्ण हैं अर्थात् एक एक ज्ञानमय पाखडी या किरण अनन्त-प्रकारके ज्ञेय पदार्थोंको झलकानेवाली है (कमलह अवयास जिनुत्ति पऊ इस आत्मीक कमलको आकाशके समान अनन्त पदार्थव्यापी जिनेन्द्रोंने कहा है (अन्मोय विरोह विलति पऊ) इसमेंसे आनन्दका विरोधी सर्व मोहभाव विला गया है ॥ ९ ॥

(कमलह कम्मान न उत्तिपऊ) जहां आत्मा स्वानुभवरूप कमलमय रहता है वहां मन, वचन, कायके कर्म शुभ व अशुभ कोई नहीं कहे गए हैं। वहां त्रिगुप्ति रूप शुद्धोपयोग मय संवर भाव है (कमलह परगय विलति पऊ) इसी कमलमें रमण करनेसे शरीररूपी पर्यायका नाश होजाता है अर्थात् वारवार शरीरका धारण करना मिट जाता है (कमलह परु सयन न उत्तिपऊ) यह आत्मारूपी कमल कभी भी पर पदार्थमें शयन नहीं करता है अर्थात् यह अपने आप जागृत रहता है। यह राग द्वेष परिणतिमें नहीं जाता है। ऐसा कहा गया है (कमलह परिनाम जिनुत्तिपऊ) इसी आत्मिक कमलमें वह शुद्धोपयोग परिणति है, जिसका पाया जाना जिनेन्द्रोंने कहा है ॥ १० ॥

(कमलह हययार स उत्तिपऊ) इसी कमलको या स्वानुभवको मोक्षमार्गमें हितकारी व कार्यकारी कहा गया है (कमलह परजाय विरति पऊ) यह आत्मारूपी कमल शरीरकी पर्यायसे विरक्त है। निजात्म प्रदेशोंमें विश्राम व रति करता है (कमलह उववन संजुत्तिपऊ) यह कमल सदा ही प्रकाशरूप रहता है, यह कभी बन्द नहीं होता है न यह कभी मुरझाता है। इसमें सदा ज्ञानानन्द भरा रहता है कमलह सुइ नतानत पऊ) यही कमल वह पद है जहां अनन्तानन्त ज्ञानादि गुण विराजमान हैं ॥ ११ ॥

(कमलह अन्मोय ज्ञान अमलु) इसी कमलमें शुद्ध आनन्द है व शुद्ध ज्ञान है (कमल परजाय सुय विलऊ) इस कमलकी रमणतासे पर परिणति स्वयं विला जाती है (कमलह सुइ सहज नद मऊ) यह स्वात्मानुभवरूपी कमल सहजानन्दमयी है। यहां स्वाभाविक सुख भरा है (कमलह जन रंजन सुय विलऊ) इस स्वात्मानुभवमें वह ज्ञानका विकल्प नहीं है जिससे जनसमुदायको प्रसन्न किया जावे अर्थात् जनरंजन राग व रागवर्द्धक विकथाओंका भाव इसमेंसे निकल गया है ॥ १२ ॥

(कमलह अन्मोय सु सिद्धि पऊ) यही स्वात्मानुभवमें रमण करनेवाला आत्मा रूपी केवल आनन्द-स्वरूप सिद्धपद है। अर्थात् सिद्धपना यहीं शोभता है। सिद्ध समान शुद्धात्माका ज्ञान यहां विद्यमान है (कमलह कम्मानुबन्ध पिपऊ) इसी कमलके प्रभावसे कर्मोंके बन्ध क्षय होजाते हैं (कमलह सुइ मुक्ति सु पर्म पऊ) यही कमल स्वयं मुक्तिका सुन्दर परम पद है (भय पिपिय भव्वु सुइ सिद्धि गऊ) जो भव्य जीव सर्व भयोंको व शङ्काओंको छोड़कर इस कमलमें विश्राम करता है वह स्वयं सिद्ध गतिको प्राप्त कर लेता है ॥ १३ ॥

(इय कमलेन सहाओ) इस आनन्दमय प्रफुल्लित आत्मानुभव रूपी कमलकी सहायतासे (पर्म भाव

शुद्ध परं मुनी) परम भावको धारण कर स्वयं श्रेष्ठ मुनि होजाता है (न यमानद महाशो समस्त मुक्ति संयुत मुनी) जिसके प्रतापसे परमानन्द स्वभाव धारी सर्व रागादि व कर्मादि व शरीरादि मलोंसे रहित मुक्तिके पदको वे ध्यानी मुनि प्राप्त कर लेते हैं ॥ २४ ॥

भावार्थ—यह आत्मा अपने स्वभावसे कमलके समान प्रफुल्लित परम शोभनीक है जिसमें केवलज्ञानादि लक्ष्मीका निवास है। जबतक मिथ्यादर्शन व अनन्तानुबन्धी कषायका उदय रहता है या मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान व मिथ्याचारित्रका अन्धकार रहता है तबतक यह आत्मारूपी कमल मुद्रित रहता है, प्रमादी रहता है, अशोभनीक रहता है, मानों निद्रित रहता है, मूर्छित रहता है। जब सम्यग्दर्शन रूपी सूर्यका प्रकाश होता है या उसके साथ २ स्वानुभवकी लब्धिरूपी ज्ञानका व स्वरूपाचरण चारित्रका प्रकाश होता है तब ही यह आत्मारूपी कमल खिल जाता है—प्रफुल्लित होजाता है।

सम्यग्दृष्टी आत्माओंमें वे ही वीतराग सम्यग्दृष्टी साधुओंकी आत्मायें साक्षात श्रेष्ठ मोक्षमार्गी हैं जो स्वात्माके स्वरूपमें रमण कररही हों। निश्चयसे स्वात्मानुभव जहां है वहीं निश्चय सम्यग्दर्शन है, वहीं निश्चय सम्यग्ज्ञान है, वही निश्चय सम्यक्चारित्र है। यही भाव मोक्षमार्ग है, यही कर्मोंको क्षय करनेवाला भाव है, यही परमानन्दमय भाव है, यही सहजानन्दमय भाव है, यही शुद्धोपयोग है, यही परमानन्द पद है, यही समभाव है, यही आत्माका आराम या उपवन है जहां ज्ञानी भव्य रमण करता है। यही अविनाशी पद है, यही वह मदिरा है जिसको पीकर अद्वैतभाव, आत्मासक्त भाव जग जाता है, निर्विकल्प समाधि पैदा होजाती है। यही भाव मेघके समान है जिससे आत्मानन्दरूपी अमृतकी वर्षा होती है। इसी भावमें रमना द्वादशांगवाणीका सार पालेना है, यहीं सदा समभाव रहता है, यही ज्ञानीके लेटनेकी शय्या है, इसी शुद्धात्मानुभवमें रमण करनेसे साधुको सच्चा सुख मिलता है।

जैसे२ गुणस्थानोंपर चढ़ता है, नवीन आस्रव बन्ध रुकता जाता है, वीतरागताके प्रभावसे कर्मोंकी विशेष निर्जरा होती है। यही सच्ची सामायिक है। इसी सामायिक चारित्रके प्रतापसे मोहनीय कर्मका क्षय कर दिया जाता है। यही शुक्लध्यान है जिससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तरायका भी क्षय होजाता है और केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त बलका प्रकाश होजाता है। क्षायिक सम्यग्दर्शन व परम वीतरागता झलक जाती है। केवलीके ज्ञानमें आकाशसे भी अनन्तगुणी अनन्त पदार्थोंके प्रकाश करनेकी शक्ति है।

तीसरे चौथे शुक्लध्यानसे नाम, गोत्र, वेदनी, आयु ये चार अघातीय कर्मोंका भी क्षय होजाता है और वह केवली सिद्धपदको प्राप्त कर लेता है जहां वह कमल अपने सम्पूर्ण विकासको प्राप्त कर लेता है। तात्पर्य यह है कि हे भव्यजीवो! अपने आत्मारूपी कमलको विकसित करो। आत्मज्ञान प्राप्त करके आत्मज्ञानके अभ्याससे सम्यग्दर्शनका प्रकाश करो, निर्भय व निःशंक होकर आत्माका अनुभव करो जिससे सिद्ध-पदका यहीं अनुभव होगा और वह सिद्धपद निकट आता जायगा। मोक्षमार्ग भी आपमें ही है, मोक्ष भी आपमें ही है। आपसे ही आपको अपना स्वाभालिक मोक्षपद प्राप्त होता है। आत्मानुभवके सिवाय और कोई उपाय नहीं है। श्री पूज्यपादस्वामीने इष्टोपदेशमें कहा है—

स्वसंवेदनसुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्यय, अत्यंतसौख्यवानात्मा लोकालोकविलोकन ॥ २१ ॥

संयम्य करणग्राममेकाग्रत्वेन चेतस, आत्मानमात्मवान् ध्यायेदात्मनैवात्मनि स्थित ॥ २२ ॥

एकोऽहं निर्मम शुद्धो ज्ञानी योगीन्द्रगोचर बाह्या संयोगजा भावा मत्त सर्वेऽपि सर्वथा ॥ २७ ॥

अभवच्चित्तविक्षेप एकान्ते तत्त्वसंस्थिति, अभ्यस्येदभियोगेन योगी तत्व निजात्मन ॥ ३६ ॥

यथा यथा समायाति संवित्तौ तत्वमुत्तमम्, तथा तथा न रोचन्ते विषया सुलभा अपि ॥ ३७ ॥

आत्म नुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारवहि स्थिते, जायते परमानन्द कश्चिद्योगेन योगिन ॥ ४७ ॥

आनंदो निर्दहत्युद्ध कर्मेन्धनमनारत, न चासौ खिद्यते योगीर्बहिर्दु खेष्वचेतन ॥ ४८ ॥

भावार्थ—यह आत्मा निश्चयनयसे अपने स्वसंवेदन ज्ञानसे या आत्मानुभवसे ही प्रगट होता है। यह अविनाशी है, लोक अलोकका ज्ञाता दृष्टा है, अत्यन्त आनन्दमय है व शरीर मात्र आकारधारी है। इसतरह अपने शरीरके भीतर परमात्मा स्वरूप अपने आपको देखे ॥ २१ ॥

फिर पांचों इन्द्रियोंको व मनको रोककर आत्मज्ञानी आत्माहीके भीतर आत्माहीके द्वारा अपने आत्माको ध्यावै ॥ २२ ॥

ऐसा मनन करे कि मैं एक अकेला हूं, मेरा कोई नहीं है, मैं शुद्ध हूं, ज्ञानी हूं, योगियोंके द्वारा अनुभवगम्य हूं, कर्म व शरीरके संयोगसे पैदा होनेवाले सर्व ही रागादि भाव व शरीरादि पर्याय मेरेसे सर्वथा भिन्न हैं, मैं उनसे रहित शुद्ध हूं ॥ २७ ॥

समलपाहुड ॥१३३॥

जहां चित्तको क्षोभ न पैदा हो, आकुलता न हो, ऐसे एकांतमें बैठकर तत्वज्ञानी योगी आलस्य त्यागकर प्रयत्नपूर्वक अपने आत्माके तत्वका अभ्यास करें ॥३६॥ जैसे जैसे अपने अनुभवमें उत्तम परमात्मतत्व आता जायगा वैसे वैसे सुलभ प्राप्त विषय भी नहीं सुहाएँगे। वह इंद्रियोंके विषयोंसे उदासीन होता जायगा ॥ ३७ ॥

जब परिणाम सर्व व्यवहारसे बाहर होजांयगे व आत्माके ही स्वादमें रम जांयगे तब योगीको ध्यानके प्रतापसे कोई अद्भुत आनन्द प्राप्त होजायगा ॥ ४७ ॥

यही आनन्द वह ध्यानकी अग्नि है जो निरन्तर लगातार जबतक गलती है बराबर कर्मोंके ईंधनको जलाती रहती है, उस समय योगी ध्यानमें ऐसा मस्त होजाता है कि उसे बाहरके दुःखोंके पड़ने पर भी खबर नहीं रहती है न उसे कोई खेद होता है ॥ ४८ ॥

---

(१७) गिरा छंद गाथा ३०३ से ३१७ तक।

कमल गिरा स उत्तजिनु, न्यानेन न्यान सम उत्तियउ।
भय विनास भवु जू मुनहु, ममल न्यान संजुत्तउ ॥ १ ॥
सु जिनह स उत्तउ न्यान पउत्तो, सु न्यान विन्यानह ममल भुवंतु।
सु भय षिपनिक हे भव्वु स उत्तु, सु वानि विसेपह न्यान कुनंतु ॥ २ ॥
सु न्यान विन्यानह भेउ मुनंतु, सु जिह्वा स्वाद अनन्त विलन्तु।
सु विषय सुभाउ पर्जाउ गलंतु, सुन्यान सहावह तत्तु मुनंतु ॥ ३ ॥
सु जिह्वा ममल संजुत्तु थुनंतु, सु मलह सहाव अनन्तु गलन्तु।
सु मिथ्या ससंक सल्य विलयन्तु, सुन्यान सहावह कम्म गलन्तु ॥ ४ ॥
जिह्वा परभाव न उत्तु न जुत्तु, जिह्वा परजायह भाव विलन्तु।

जिह्वा कुन्यानह देस न उत्तु, जिह्वा संसारह सरनि विरत्तु ॥ ५ ॥
जिह्वा संदर्सन मोह विमुक्कु, जन रंजन रागु दोष विलयन्तु ।
जिह्वा कलरंजन भाव विमुक्कु, जिह्वा मनरंजन गार गलन्तु ॥ ६ ॥
जिह्वा आवर्नु न्यान चवंतु, दर्सन आवर्नु न भाउ कलन्तु ।
मोह न आवर्नउ उवन गलन्तु, जिह्वा ज्ञानह अन्तस न चवन्तु ॥ ७ ॥
आसारूप भाव न लेतु थुनंतु, अस्नेह दिस्टि नहु देत भुनंतु ।
लाजहु भय भीउ न संक करंतु, लोभह भय नन्तानन्त गलंतु ॥ ८ ॥
गारव गयंद विहडंतु सिंहु, आलस सुइ गलिय वयन समूहु ।
परपंच पर्जाय न दिस्टियऊ, विभ्रम भय भीउ विलतियऊ ॥ ९ ॥
जिह्वा भय षिपिय कम्मु विलयं, पर पर्जय नन्तनन्त गलियं ।
सकरहिय निसंक सल्य विलयं, भय मोह प्रमान न उत्तु सयं ॥ १० ॥
जिह्वा परमप्पो परम समो, सुइ नन्तानन्त सुन्यान गमो ।
जिह्वा पद अर्थह भेउ मुनंतु, अर्थति अर्थह परमार्थ मुनन्तु ॥ ११ ॥
जिह्वा सहकार सहाव संजुत्तु, उववन अनन्त सो देइ पउत्तु ।
जिह्वा अवयासह अर्थ ममलो, जिह्वा परमत्थ पमास्रवनो ॥ १२ ॥
जिह्वा सम समय दिस्टि ममलो, माया पिपिन कुरुव उत्तु ममलो ।
जिह्वा अन्मोय न्यान सहजै, अन्मोये षिपिय कम्म तिविहे ॥ १३ ॥
जिह्वा परिनामुनन्त विरियं, नानाप्रकार न्यान सुरयं ।
जिह्वा विन्यान नंतु अमलो, भय षिपिय भव्वु तं मुक्ति गओ ॥ १४ ॥

ममलपाहुड
॥१३५॥

घत्ता—

भय पिपिय अभय सभाउ लइ, न्यानमई अत्तुरत्तऊ।
तं तिविह कम्म विलयन्त सुई, ममल सिद्धि संपत्तऊ ॥ १५ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(कमल गिरा स उत्त जिन) श्री जिनेन्द्र द्वारा कथित जो आत्मारूपी कमलकी वाणी या जिनवाणी है या अध्यात्मवाणी है (न्यानेन न्यान सम उत्पिन्ड) वह यह बताती है कि आत्मज्ञानके द्वारा ही समतारूप ज्ञान या वीतराग विज्ञान प्राप्त होता है (भय विनास भवु जु मुनहु) यह वाणी संसारके भयको नाश करनेवाली है। हे भव्यजीव हो ! इस भगवद्वाणीका मनन करो (ममल न्यान संजुत्तउ) यह वाणी शुद्ध सम्यग्ज्ञानसे पूर्ण है ॥ १ ॥

(सु जिनह स उत्तउ न्यान पउत्तो) श्री जिनेन्द्र भगवानने जिस ज्ञानको कहा है वह ज्ञान पवित्र है– स्वयं पवित्र है और दूसरोंको पवित्र करनेवाला है (सुन्यान वि यांनह ममल मुनंतु) उस वाणीके द्वारा सम्यग्ज्ञानका तथा निर्मल भेदविज्ञानका मनन करो, अर्थात् अपने आत्माके शुद्ध स्वभावको सर्व पर पदार्थोंसे जुदा विचार करो (सु भय पिपनिक हे भव्यु स उत्त) यह वाणी सर्व भयोंको क्षय करनेवाली–निर्भय करनेवाली कही गई है। हे भव्य ! ऐसा समझ (सुवानि विसेषह न्यान कुनतु) यह दिव्य भगवद्वाणी विशेष ज्ञानको अर्थात् तत्वज्ञानको पैदा करनेवाली है ॥ २ ॥

(सुन्यान विन्यानह भेउ मुनतु) हे भव्य ! तू सम्यग्ज्ञानका व भेदविज्ञानका भेद मनन कर। भलेप्रकार जीवादि पदार्थोंको निश्चयनय और व्यवहारनयसे समझकर छः द्रव्योंके गुण व पर्यायोंका मनन कर। सबमें सार निज आत्मा है उसीका विशेष मनन कर (सुजिह्वा स्वाद अनत विलतु) श्री जिनेन्द्रकी पवित्र वाणीका मनन करनेसे व उच्चारण करनेसे वचनका अनन्त स्वाद विला जाता है। अर्थात् रागवर्द्धक द्वेषकारक हिंसाकारक असत्य कलहकारक विकथामय आदि अध्यात्मीक रससे भिन्न स्वादमें रमनेवाले वचनोंका प्रयोग बन्द होजाता है। वचनोंको अध्यात्म–रसका स्वाद ही प्रिय लगता है। अध्यात्मरस वर्षानेवाले वचनोंको ही आत्मज्ञानी कहता है। उसकी अध्यात्म चर्चा ही प्रिय लगती है (सुविषय सुभाउ पर्जाउ गलन्तु) पांचों इंद्रियोंके विषयोंके स्वभावमें परिणमन बन्द होजाता है, अर्थात् वह तत्वज्ञानी ऐसी वार्तालाप नहीं करता है

जिससे उसका व दूसरोंका मन पांचों इंद्रियोंके रमणीक विषयोंके स्वादमें रंजायमान हो (झुन्यान सहावह तत्तु मुनतु) सम्यग्ज्ञानके द्वारा आत्मीक तत्वका ही मनसे या वचनोसे हे भव्य ! मनन करो ॥ ३ ॥

(सु जिह्वा ममल संजुत्तु थुनतु) हे भव्य ! अपनी जबानसे शुद्ध भाव सहित वचनको कहो। ऐसे वचनोंको कहो जिनसे शुद्ध आत्मीक भाव प्रकाशित हो। (सुमलह सहाव अनत गलतु) जिनको वचनोंके कहने सुननेसे अनन्त प्रकारके दोषीक भाव गल जावें (सुमिथ्य ससक सल्य विल्यतु) अर्थात् सर्व मिथ्यात्वभाव, सर्व शंकाएँ व सर्व शल्ये विला जावें। सम्यग्ज्ञानपूर्ण आत्माके स्वरूपकी ऐसी चर्चा करनी करनी चाहिये जिसके द्वारा संसारासक्तिका भाव मिट जावे, सर्व संसारका भय मिट जावे व सर्व प्रकारकी निदानादि शल्यें चली जावे-अपने शुद्धात्माकी प्रतीति होजावे व स्वात्मानुभवकी तरफ दृष्टि जम जावे (सुन्यान सहावह कम्म गलंतु) आत्मज्ञानके स्वभावका मनन करनेसे व तत्सम्बन्धी चर्चा करनेसे कर्मोका क्षय होता है, आत्मीक तत्वके मननसे वीतरागता बढती है। यही कर्मोकी निर्जरा करती है ॥ ४ ॥

(जिह्वा पर भाव न उत्त न जुत्तु) तत्वज्ञानी अपने वचनोसे परभावोंको-रागद्वेष वर्द्धक बातोको नही कहते हैं, न अपने भावोंमें ऐसी बातोंके कहनेका विचार करते हैं (जिह्वा परगावह भाव विलंतु) उनके वचनोंके कहने सुननेसे शरीरमें आसक्ति कारक भाव विला जाते हैं–संसारसे वैराग्य व मोक्षसे प्रेम बढ़ जाता है (जिह्वा कुन्यानह देस न उत्त) तत्वज्ञानी अपने मुखसे मिथ्या ज्ञानवर्द्धक उपदेश नहीं कहते हैं। जिन वचनोंसे मिथ्यात्वकी ओर प्रवृत्ति होजावे ऐसे वचनोंको न कहकर सम्यग्दर्शनको दृढ करनेवाले वचनोंको ही उपदेशते हैं (जिह्वा ससारह सरनि विरतु) उनके मुखसे ऐसे वचन खिरते है जिनके सुननेसे संसारके भ्रमणसे वैराग्यभाव आजावे ॥ ५ ॥

(जिह्वा सदसँन मोह विमुक्कु) तत्वज्ञानीके वचनोंके ऊपर ध्यान देनेसे दर्शनमोह मिथ्यात्वभाव दूर होजाता है (उन रजन राग दोष विल्यंतु) तथा साधारण जनता जिन बातोमें राग द्वेप करके राजी होती है उन बातोंकी ओर रागद्वेष विला जाता है। अर्थात् स्त्री कथा, भोजन कथा, देश कथा व राजाओंकी विकथाके कहने सुननेका भाव बुद्धिसे निकल जाता है (जिह्वा कलरजन भाव विमुक्कु) जिनके मुखकी वाणी सुननेसे शरीरके सुखमें रंजायमान होनेवाले भावोंसे विरागभाव आजाता है, शरीरासक्ति मिट जाती है, आत्मानन्दका प्रेम बढ़ जाता है (जिह्वा मनरजन गार गलतु) उनकी वाणीसे ऐसे वचन खिरते हैं जिनसे

मनको राजी रखनेवाला गारव या अहंकार भाव गल जाता है, पर पदार्थमें अहंबुद्धिका भाव निकल जाता है ॥ ६ ॥

(जिह्वा आवर्न ग्यान ववंतु) उस जिनवाणीके सुननेसे ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होकर ज्ञानकी वृद्धि होती है (दर्सन आवर्न न भाव कलंतु) तथा दर्शनावरणके उदयसे होनेवाला भाव न प्रगट होकर दर्शनावरण कर्मका क्षयोपशम होनेसे दर्शनकी शक्ति बढ जाती है (मोहन अवर्न उ उवन गलंतु) मोहनीय कर्मका उदय गल जाता है। मिथ्यात्व व कषायोंका भाव मिट जाता है (जिह्वा ज्ञानह अन्तर न ववंतु) पवित्र जिनवाणीके सुननेसे ज्ञानमें अन्तराय नहीं रहती है, ज्ञानके धारनेकी शक्ति बढ जाती है। भावार्थ–श्री जिनवाणीका मनन करनेसे ज्ञानावरणादि चारों घातीय कर्मोंका क्षयोपशम होता है जिनसे ज्ञानशक्ति, दर्शन शक्ति, वीर्यशक्ति बढती है, सम्यक्त भाव प्रगट होता है या सम्यक्त निर्मल होता है तथा कषायोंका जोर घटकर वीतरागता झलकती है ॥ ७ ॥

(आसा भय भाव न हेतु सुनंतु) तत्वज्ञानी किसी प्रकारकी आशा व तृष्णाका आशय अपने भावोंमें नहीं रखते हैं। इसलिये उनके वचन भी ऐसे ही प्रगट होते हैं जो तृष्णाके मिटानेवाले हों (आनंद दिष्ट नहि देत सुनंतु) जिनके वचनोंसे जगतके स्नेहकी दृष्टि नहीं प्रगट होती है। प्रत्युत जगतसे वैराग्य आजाता है। हे भव्य ! ऐसे वचनोंका मननकर (लाजहु भय भीउ न सक कलंतु) तत्वज्ञानीके वचनोंसे लज्जाजनक भाव, भयजनक भाव व शंकामय भाव सब निकल जाता है (लोभह भय नन नत गलंतु) अनन्तानन्त शक्तिको लिये हुए लोभ कषाय व भय नोकषाय गल जाता है ॥ ८ ॥

(गारव गयंद विहंतु सिंह) जिनके वचन अहंकाररूपी हाथीको भगानेके लिये सिंहके समान होते हैं (आलस सुइग लिय वयन समूह) जिनकी वचनावली सुननेवालोंके प्रमाद भावको दूर कर देती है, उनसे आत्मोन्नति करनेका पुरुषार्थ जग जाता है (पपन पर्जाय न दिष्टियऊ) उन तत्वज्ञान पूर्ण वचनोंसे मायाचारकी कोई परिणति नहीं दिखलाई पडती है (विभ्रम भय भीउ विलयऊ) उनसे भ्रम बुद्धि व भय बुद्धि सब विला जाती है। तत्वोंमें शङ्का या विपरीतभाव या अनध्यवसाय (कुछ होगा) भाव निकल जाता है। मेरी आत्मा अखण्ड है, अजर है, अमर है, ऐसा भाव प्रगट होनेसे सर्व भयका भाव दूर होजाता है ॥९॥

(जिह्वा भय विपिय कम्म गलिय) तत्वज्ञानीके वचनोंको सुननेसे सर्व संसारका भय दूर होजाता है

तथा कर्मोंकी शक्ति गल जाती है, पाप कर्मोंका अनुभाग कम होजाता है (प० पर्जय नतनत गलिय) जिससे पुद्गल कृत अनन्तानन्त पर्यायोंकी प्राप्तिका पाप गल जाता है । जब सम्यक्तभाव प्रगट होजाता है तब सर्व संसारकी दुःखमय पर्यायोके पानेका पाप नहीं रहता है । सम्यक्ती सम्यक्तावस्थामें स्वर्गकी देवायु ही बांधता है (सक रहिय निसक सल्य विलय) निःशंकभाव प्रगट होजाता है, सर्व प्रकारकी तत्वमें शंका व सर्व प्रकारकी शल्यें विला जाती हैं (मय मोह प्रमान न उत्तुपय) तत्वज्ञानी ऐसी वाणी नहीं कहते जिससे ज्ञानका मद या मोह प्रगट हो, न उनकी वाणीसे उनके भीतर ज्ञानका मद है या संसारका मोह है ऐसा झलकता है, न उनकी वाणीसे दूसरोके भीतर मद मोह पैदा होता है ॥ १० ॥

(जिह्वा प०मप्पौ परम समो) तत्वज्ञानियोंकी वाणीसे परमात्माका स्वरूप व परम समताभाव प्रगट होता है (सुइ नतानत सुन्यान गमो) जिस परमात्मामें अनन्तानन्त ज्ञानका उदय होता है अथवा जिस परमात्माके व परम समताभावके अनुभवसे केवलज्ञानका प्रकाश होजाता है (जिह्वा पद अर्थह मेउ मुनतु) तत्वज्ञानीकी वाणीसे जिनवाणीके पदोंका यथार्थ भाव प्रगट होता हैं (अर्थ ति अर्थह परमार्थ मुनतु) तथा नौ पदार्थ व रत्नत्रय धर्म व परमार्थ आत्मतत्वका मनन होता है ॥ ११ ॥

(जिह्वा सहकार सहाव संजुत्तु) जिननाणीके कहने व सुननेकी मददसे यह प्रभाव होता है कि (उवन्न अनन्त सोवेइ पउत्त , पवित्र व अनन्त ज्ञानका उदय होजाता है (जिह्वा अवयास अर्थ मगको) जिनवाणीके सुननेसे यह ज्ञान होता है कि आत्मा शुद्ध पदार्थ है जिसमें आकाशके समान अनन्त पदार्थोंके जाननेकी शक्ति है (जिह्वा परमत्थ पमा सवनो) उस जिनवाणीसे परमार्थ ज्ञान या अध्यात्म तत्वज्ञानका प्रकाश होता है ॥ १२ ॥

(जिह्वा मम ममय दिष्टि ममला) जिनवाणीके सुननेसे शुद्ध समभाव रूप आत्माका अनुभव होजाता है (मय पिपिन कुरूव उत्तु ममलो) वह वाणी बताती है कि आत्माका स्वभाव परम निर्भय तथा सर्व दोष रहित पवित्र है (जिह्वा अन्मोय न्यान सहन) जिनवाणीके सुननेसे व मनन करनेसे सहजानन्दमय ज्ञान प्रगट होता है (अन्मोय पिपिन कम्म तिविह) आत्मानन्दके प्रतापसे द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म तीनो ही कर्मोंका क्षय होता है ॥ १३ ॥

(जिह्वा परिनामनन्त विहिय) जिनवाणीके मननसे ही आत्माका अनन्त वीर्य प्रगट होजाता है (नाना प्रकार न्यान सुयं) व नानाप्रकारके ज्ञान सूर्यका प्रकाश होता है । अर्थात् नानाप्रकारके जाननेयोग्य पदा-

थौंको जाननेवाला ज्ञान प्रगट होजाता है (जिह्वा विन्यान नन्त ममलो) जिनवाणीके मननसे ही रागादि दोष रहित शुद्ध वीतराग व अनन्त केवलज्ञान जग जाता है (भय षिपिय भव्वु तं मुक्ति गओ) तब भव्यजीव सर्व संसारके भयके कारण कर्मोंका क्षय करके मुक्तिमें पहुँच जाते हैं ॥ १४ ॥

(भय षिपिय अभय समाव लइ) तत्वज्ञानी सर्व शंकाभाव रहित निर्भय आत्माके स्वभावको ग्रहण करके (न्यानमई अनुरत्तउ) ज्ञानमई स्वभावमें तल्लीन होजाते हैं (त तिविह कम्म विलयत सुइ) इस आत्म समाधिके प्रतापसे तीनों ही प्रकारके कर्म–द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादि, भावकर्म राग द्वेषादि, नोकर्म शरीरादि नाश होजाते हैं (ममल सिद्धि सपत्तऊ) तब वे सर्व मलसे शुद्ध होकर आत्मसिद्धि या मुक्तिको प्राप्त कर लेते हैं ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें श्री जिनवाणीकी महिमा भलेप्रकार वर्णन की गई है। श्री सर्वज्ञ वीतराग अरहन्त भगवान सयोगकेवली जिन गुणस्थानमें अपनी दिव्य वाणीसे धर्मका प्रकाश करते है, जिनकी वाणी सुननेसे श्रोताओंके मिथ्यात्व मल गल जाते हैं, सम्यग्दर्शनका प्रकाश होजाता है। उसी वाणीके अनुसार तत्वज्ञानी महात्मागण भी अपनी वाणीसे धर्मोपदेशका प्रकाश करते हैं। उस वाणीके सुननेसे व मनन करनेसे तत्वोंका यथार्थ बोध होता है। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष तत्वोंसे यह बोध होता है कि यह जीव निश्चयसे शुद्ध परमात्म–स्वरूप ज्ञाताद्दष्टा वीतराग आनन्दमई है तथापि व्यवहारसे कर्मबन्ध होनेके निमित्तसे अशुद्ध है। इस कर्मबन्धका कर्ता यही जीव है फल भोक्ता भी यही जीव है। निश्चयसे यह जीव अपनी शुद्ध परिणतिका ही कर्ता है और अपने शुद्ध ज्ञानानन्दका भोक्ता है। इस जीवके साथ आठो कर्मका सम्बन्ध व शरीरका सम्बन्ध यह सब पुद्गल अजीवकी सत्तासे है। कर्मरूपी पुद्गलोंका जीवके साथ दूध पानीके समान संयोग सम्बन्ध प्रवाहकी अपेक्षा अनादिकालसे है। नवीन कर्म बन्ध होने व प्राचीन झड़नेकी अपेक्षा सादि सम्बन्ध है। यह जीव अपने मन, वचन, कायके व्यवहारसे अपनी योगशक्तिसे कर्म पुद्गलोका ग्रहण करता है वही आस्रव तत्व है। शुभ योगोंसे पुण्यकर्म, अशुभ योगोंसे पापकर्मका आस्रव होता है। आये हुये कर्म जीवके साथ कुछ कालके लिये ठहर जाते हैं यही बन्ध तत्व है। कषायोके अनुसार ही जीव कर्म व अधिक बन्धको पाता है। जिन भावोंसे कर्मोंका आस्रव होता है उन भावोंका निरोध करना संवर तत्व है। संवर भावसे नवीन कर्म नहीं आते है। पूर्वबद्ध कर्म

तपकेद्वारा समयके पूर्व झड़ जाते हैं यही निर्जरा तत्व है। सर्व कर्मोंसे छूट जानेका नाम मोक्षतत्व है। इन सातों तत्वोंमें निश्चयसे एक अपना शुद्धात्मा ही उपादेय है, सार है, ध्यान करनेके योग्य है। रागादि सब त्यागने योग्य हैं। कर्मोंका वियोग हटाने योग्य है, सिद्धपद प्राप्त करने योग्य है, इस तरहका ज्ञान व श्रद्धान श्री जिनवाणीके प्रतापसे होता है। श्री जिनवाणीके मननसे भेदविज्ञान होता है। भेदविज्ञानसे आत्मज्ञान होता है। आत्मज्ञानसे आत्मानुभव या आत्मध्यान होता है जो साक्षात् मोक्षका उपाय है।

जिनवाणीके मननसे ही सर्व शंकाएँ मिटती हैं, दर्शन मोहका अन्धकार मिटता है। सम्यग्दर्शनका प्रकाश होता है, ज्ञान निर्मल होता है, आत्मबल प्रकाशित होता है। वीतरागताका झलकाव होता है। तृष्णाका भाव मिटता है, प्रमादकी आदत मिटती है। परमात्माका स्वरूप झलक जाता है। समभावका लाभ होता है। आत्मध्यानका विकास होता है। परमागमकी सहायतासे भावोंमें विशुद्धि बढती जाती है, कर्मोंकी स्थिति गलती है, पापका अनुभाग कम होता है, शुद्धात्माका बोध होता है। जो कोई भव्य जीव शुद्धात्माका अनुभव करता है वह क्षपकश्रेणी चढकर चार घातीय कर्मोंका क्षय करके अरहन्त होजाता है। फिर सर्व कर्मोंका क्षय करके सिद्ध होजाता है। जिनवाणी भवसागरसे पार करके सिद्धपदमें पहुंचानेवाली है। जिनवाणीके प्रकाशक तत्वज्ञानी अपने उपदेशमें ऐसा कार्यकारी व हितकारी उपदेश करते हैं जिससे संसारका मोह गल जाता है, आत्मशुद्धिका प्रेम उमड़ आता है, विकथाओंके करनेसे मन हट जाता है, अध्यात्म चर्चा करनेकी ही रुचि होजाती है, अहंकारकी आदत मिट जाती है, जिनवाणीके पान करनेसे विकथाओके कहने सुननेका रस सूख जाता है, अध्यात्मरससे गर्भित वार्तालाप करनेका भाव जग उठता है, इंद्रियविषयोंकी रुचि दूर होजाती है, अतीन्द्रियसुखकी रुचि पैदा होजाती है। भगवद्वाणीका सार यही है जो अध्यात्मज्ञान प्राप्त करके अपने आत्मामें लवलीन होकर स्वरूपानन्द मगनता प्राप्त करना चाहिये। स्वसमयरूप जागृत करना चाहिये, पर समयकी आसक्ति मिटा देनी चाहिये। यह जिनवाणी निःशङ्क निर्भय व शल्य रहित कर देती है व समयसारका अनुभव कराती है। जो आत्मज्ञानी है–आत्मानुभवी है वही परमागमका ज्ञाता कहा जाता है।

श्री समयसारमें श्री कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं:—

जो हि सुएणहिगच्छादि अप्पाणमिणन्तु केवल सुद्ध । त सुदकेवलिमिसिणो भणति लोगप्पईवयरा ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो द्वादशांग जिनवाणीके द्वारा अपने इस आत्माको असहाय केवल शुद्ध अनुभव करते हैं उनहीको सर्वज्ञदेव श्रुतकेवली कहते हैं।

जो पस्सदि अप्पाण अवद्धपुट्ठं अणण्णाय मविसेस। अपदेस सुत्तमज्झ पस्सदि जिणसासण सव्वं ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो अपने इस आत्माको निश्चयसे ऐसा देखता है कि यह कर्मोंसे न वन्धा है न स्पर्शित है, यह सदा एकरूप रहता है। यह अपने गुणोंसे अभेदरूप सामान्य हैं। वह निश्चल है। यह रागादि संयोगसे रहित है ऐसा देखकर जो ऐसा ही अनुभव करता है, वही समस्त जिन शासनको जानता है। आत्मज्ञानका ही परम मनोहर अमृतमई पाठ यह जिनवाणी सिखाती है अतएव मुमुक्षु भव्य जीवका कर्तव्य है कि वह जिनवाणीकी शरण ग्रहण करे, बड़े भावसे उसे पढे पढावे, उनका उपदेश करे, उसका मनन करे, जिससे अपना मिथ्यात्व भी गले और दूसरोंका भी मिथ्यात्व गले। ऐसी परिणति होजावे कि विकथा न सुहावे, वृथा वकवाद न अच्छी लगे, संसारवर्द्धक वचनोंसे उदासीनता आजावे, वैराग्यमई चर्चामें ही प्रेम उत्पन्न होजावे, रातदिन जिनवाणीका सेवन किया जावे। वारम्वार मननसे अज्ञानको मिटाया जावे। कषायोंका वल घटाया जावे, ज्ञानरसका पान किया जावे। ऐसी रुचि पैदा की जावे कि और चर्चा न करके एक अध्यात्म चर्चाका ही व्यवहार किया जावे। परस्पर इसी विषयका प्रश्न किया जावे, आत्माके स्वभाव झलकानेका उत्साह वढाया जावे। नानाप्रकार सांसारिक वार्तालापमें, परकी निन्दा प्रशंसामें अपनी शक्तिको न खर्च किया जावे। तत्व चर्चामें ही अनुरक्त रहा जावे। आत्मीक रसका ही स्वाद लिया जावे। वास्तवमें जिनवाणी परम कल्याणकारिणी है—पढनेसे मनन करनेसे मनका विषाद मिट जाता है, अज्ञान हट जाता है, शांतभाव प्रगट होजाता है, परमात्माका दर्शन ज्ञानचक्षुके सामने होजाता है। मोक्षमार्गको व मोक्षको दर्पणके समान दिखलानेवाली यह जिनवाणी है, आनन्दामृतका स्वाद चखानेवाली है, सहजानन्द प्राप्त करानेवाली है, भव भ्रमण मिटानेवाली है, मोक्ष-द्वीपमें पहुंचानेवाली है। श्री तारणस्वामि कहते हैं—हे भव्यजीवो ! इस पवित्र जलके समान आत्माको पवित्र करनेवाली जिनवाणी गंगाके भीतर स्नान करके आत्माके मल धोकर आत्माको पवित्र कर लो। प्रमाद छोड़कर, लज्जा व भय छोड़कर उत्साही होकर जिनवाणीकी सेवा करो।

(१८) विंदरओ फूलना गाथा ३४८ से ३५२ तक।

जिन जिनयंति जिनंद पओ।
जिन जिनयति नद अनंद परम जिन विंदरओ ॥ १ ॥
विन्यान विंद रस रमनु अमिय रस विप विलओ।
भय षिपनकु हे भवु कमल कलि मुक्ति गओ ॥ २ ॥ (आचरी)
जिन जिनवर उत्तउ जिनय पओ।
जिन जिनियो कम्म अनतु जिनय जिन विंदरओ ॥ ३ ॥ विन्यान०
जं कम्मु अनन्तु अनन्तु भओ।
त न्यान अन्मोय विलन्तु सहज जिन विंदरओ ॥ ४ ॥ विन्यान०
ज कम्म उवन उव्वन्न मओ।
उववन्न न्यान विलयन्तु परम जिन विंदरओ ॥ ५ ॥ विन्यान०
जं चर नह चारिय अनिस्ट मओ।
तं न्यान चरन विलयन्तु नंद जिन विंदरओ ॥ ६ ॥ विन्यान०
जं वय तव क्रिया अनिस्ट मओ।
तं इस्ट दर्स विलयंतु चेय जिन विंदरओ ॥ ७ ॥ विन्यान०।
जन रंजन राग जु रमिय पओ।
जिन रंजन न्यान विलन्तु समय जिन विंदरओ ॥ ८ ॥ विन्यान०
कल रंजन कम्म स उत्त पओ।
तं कमल रमन विलयन्तु सुयं जिन विंदरओ ॥ ९ ॥ विन्यान०

ममलपाहुड
॥१४३॥

मन रंजन गारव कम्म पओ ।
मन रंजन न्यान विलन्तु षिपक जिन विंदरओ ॥ १० ॥ विन्यान०
जं दर्सन मोहे अन्ध पओ ।
सुइ परम इस्टि विलयन्तु ममल जिन विंदरओ ॥ ११ ॥ विन्यान०
जं न्यान आवर्नह कम्म रओ ।
तं न्यान अन्मोय विलन्तु मुक्ति जिन विंदरओ ॥ १२ ॥ विन्यान०
जं दर्सन आवर्नु आदर्स मओ ।
तं दर्सन दिस्टि गलंतु अषय जिन विंदरओ ॥ १३ ॥ विन्यान०
मानापमान आवर्न मओ ।
विन्यान अन्मोय विलन्तु जिनय जिन विंदरओ ॥ १४ ॥ विन्यान०
तं न्यानह अन्तरू समय मओ ।
तं समय विन्यान विलन्तु कमल जिन विंदरओ ॥ १५ ॥ विन्यान०
जं न्यान अन्तरु अन्यान मओ ।
तं न्यान अन्मोय गलन्तु सिद्ध जिन विंदरओ ॥ १६ ॥ विन्यान०
जं न्यान विओय अनिष्ट पओ ।
तं इस्ट अन्मोय गलन्तु अषय जिन विंदरओ ॥ १७ ॥ विन्यान०
जं असमय सहियो कम्म पओ ।
तं समय विन्यान विलन्तु अमिय जिन विंदरओ ॥ १८ ॥ विन्यान०

ममलपाहुड ॥१४४॥

जं दिस्टि अनन्त जु कम्म पओ ।
तं न्यान दिस्टि विलयन्तु सुयं जिन विदरओ ॥ १९ ॥ विन्यान०
जं सुरह सहाउ जु कम्म पओ ।
तं सुरह विन्यान विलन्तु अगम जिन विदरओ ॥ २० ॥ विन्यान०
जं असद्ध स उत्तउ कम्म पओ ।
विन्यान विंद विलयन्तु नन्त जिन विंदरओ ॥ २१ ॥ विन्यान०
अदिस्ट उवन जु कम्म रओ ।
अदिस्टि इस्टि विलयन्तु अभय जिन विंदरओ ॥ २२ ॥ विन्यान०
जं गुप्ति कम्म सुइ अनन्त पओ ।
अन्मोय न्यान विलयन्तु निलय जिन विदरओ ॥ २३ ॥ विन्यान०
सक सल्य संक भय कम्म रंओ ।
सक गलिय न्यान विलयंतु सुद्ध जिन विन्दरओ ॥ २४ ॥ विन्यान०
जं कम्म विसेप अनन्त रुई ।
अन्मोय न्यान विलयन्तु अमल जिन विन्दरओ ॥ २५ ॥ विन्यान०
जं जिनवर उत्तउ अमिय जिनु ।
भय सल्य संक विलयन्तु नन्द जिन विन्दरओ ॥ २६ ॥ विन्यान०
जिन नन्दनन्द आनन्द मओ ।
जिन सहजनन्द स सहाव जिनय जिन विदरओ ॥ २७ ॥ विन्यान०

जिन परमनन्द परमप्प पओ ।
जिन परम इस्टि दरसंतु इस्ट जिन विंदरओ ॥ २८ ॥ विन्यान०
जिन इस्ट सुइस्ट सुइस्ट पओ ।
उववन्न इस्ट दरसन्तु सुयं जिन विंदरओ ॥ २९ ॥ विन्यान०
जिन गम्य अगम्य सु नन्त पओ ।
जिन नंत नंत दसंतु रयन जिन विंदरओ ॥ ३० ॥ विन्यान०
जिन अर्थति अर्थह जिनय पओ ।
जिन उवनो नन्तानन्त उवन जिन विंदरओ ॥ ३१ ॥ विन्यान०
उव उवनहियार सु जिनय पओ ।
सहयार न्यान सुइ उत्तु सुयं जिन विंदरओ ॥ ३२ ॥ वि[illegible]
उववन्नहियार सहयार मओ ।
जिन नन्त चतुष्टय जुत्तु परम जिन विंदरओ ॥ ३३ ॥ विन्यान०
जिन न्यान विन्यान सु समय मओ ।
सिद्ध समय सिद्धि सम्पत्तु समय जिन विंदरओ ॥ ३४ ॥ विन्यान०
जिन तारनतरन विवान मओ ।
सिद्ध समय सिद्धि संपत्तु सिद्ध जिन विंदरओ ॥ ३५ ॥ विन्यान०

अन्वय सहित अर्थ— (जिन जिनयति जिनय जिनेन्द्र पओ) कर्मोंको व रागादि भावोंको जीतनेवाले श्री जिनेन्द्रका पद जयवन्त हो (जिन जिनयति नद नंद परम जिन विंदरओ) वे श्री जिनेन्द्र आत्मीक आनन्दमें मगन रहते हुए परम वीतरागमय ज्ञानभावमें तल्लीन हैं ॥ १ ॥

(विन्यान विंद रस रमनु अमिय रस विष विलओ) वे भेद विज्ञान द्वारा प्राप्त आत्मानुभवके रसमें रमण करते हुए जिस आनन्दामृतका स्वाद पाते हैं उसके प्रतापसे विषयसुखकी तृष्णारूपी विषका वेग नाश होगया है (मय विषनिक हे मवु कमल कलि मुक्ति गओ) हे भाई ! जो भव्य जीव सर्व भयोंको क्षय कर देता है और आत्मारूपी कमलमें रत होजाता है वह मुक्तिको पहुंच जाता है ॥ २ ॥

(जिन जिनवर उत्तउ जिनय पओ) वीतराग जिनेन्द्रभगवानने श्री जिनपद उसे ही कहा है (जिन जिनियो कम्म अनतु जिनय जिन विंदओ) जो वीतरागी होकर अनन्त कर्मोंको जीतते हुए वीतरागमय ज्ञानमें रत होजाते हैं ॥३॥

(ज कम्म अनतु अनतु भओ) जो अनंतकर्मोंका बंध अनन्त जन्मोंके भीतर भ्रमण करानेवाला होता है (त ज्ञान अन्मोय विलतु सहज जिनविंद रओ) वह सर्वकर्म आत्मज्ञानके आनन्दसे विला जाता है। यह आनन्द तब ही अनुभवमें आता है जब सहज वीतरागमई ज्ञानमें तल्लीनता हो ॥ ४ ॥

(ज कम्म उवन उववन्न मओ) जो कर्म उदय होरहे हैं व उदय होनेवाले हैं (उववन्न न्यान विलयतु परमभिन विंद रओ) वे कर्म प्रकाशित सम्यग्ज्ञानके द्वारा दूर होजाते हैं, वह ज्ञान परम वीतरागमय ज्ञानचेतनामें रमणरूप है ॥ ५ ॥

(ज चरनह चरिय अनिष्ट मओ) ज्यों आत्माको अनिष्टकारी–दुखकारी चारित्रका आचरण है। हिंसादि पापोंमें व रागद्वेष भावोंमें वर्तन है (तं न्यान चरन विलयतु नद जिन विंद रओ) वह आत्मज्ञानमें चलनेसे व स्वरूपाचरण चारित्रसे दूर होजाता है। वह स्वरूपाचरण चारित्र आनन्दमय व वीतरागमय ज्ञानचेतनाके रमणरूप है ॥ ६ ॥

(ज वय तव क्रिया अनिष्ट मओ) जो पापबंधकारी या मिथ्यात्वसहित किये जानेवाले व्रत, तप व क्रियाका आचरण है (त इस्ट दर्स विलयतु चेय जिन विंद रओ) वह सर्व आचरण प्रिय सम्यग्दर्शनके प्रतापसे विला जाता है। वह सम्यक्त भाव अनुभवने योग्य वीतरागज्ञानमें रमणरूप है।

भावार्थ—कोई अज्ञानी हिंसाकारी तप पंचाग्नि जलाकर करते हैं व ऐसा व्रत करते हैं जो विपरीत हो, दिनमें न खाकर रात्रिको खाते हैं व ऐसी क्रिया करते हैं जिनसे हिंसा हो जैसे–पशुवलि यज्ञमें व देवदेवीके मठोंपर करना। ये सब क्रिया तो पाप ही बांधनेवाली हैं। कोई२ जैन धर्मके अनुसार शास्त्रोक्त व्रत, तप, आचरण पालते हैं परंतु सम्यक्त रहित मिथ्यात्वभावसे अंतरंग भोगाकांक्षासे पालते हैं, वे पुण्य बांध-

कर देवगतिमें चले जाते हैं। सम्यक्तके विना भोगोंमें मगन होकर वहांसे चयकर एकेन्द्रिय या पंचेन्द्रिय तिर्यंच जन्मते हैं या दीन मानव पैदा होजाते हैं, उनके आत्माका सच्चा हित नहीं होसक्ता है। ये सब व्रत तप क्रियाका अनुष्ठान सम्यग्दर्शनके प्रतापसे दूर होजाता है और तब सम्यक्ती जीव आत्मतल्लीनतारूप व्रत, तप, क्रियाको ही करता है या उसकी सिद्धिके हेतु व्यवहार उपवास, पंचव्रतोंका पालन आदि मुनि या श्रावकके चारित्रको पालता है ॥ ७ ॥

(जनरंजनराग जु 'मिय पओ) जो मानवोंको प्रसन्न करनेवाले रागमें रमणताका पद है (जिन रञ्जन न्यान विलन्तु समय जिन विंदओ) वह सर्व श्री जिनेन्द्रके गुणोंमें रंजायमान होनेवाले ज्ञानसे दूर होजाता है। वह ज्ञान वीतराग आत्माका अनुभव स्वरूप है।

भावार्थ—बहुधा मानवोंके भीतर यह भाव रहता है कि हम लोगोंको प्रसन्न रखे, इस हेतु वे राग-वर्द्धक काम व हास्यजनक वार्तालाप व अनुचित वार्तालाप करते रहते हैं। लोग प्रसन्न रहें इस हेतुसे वे पूजा, पाठ, जप, तप व शास्त्र पठन भी करते हैं। यह सर्व राग संसारका वर्द्धक है। जब तत्वज्ञानी श्री जिनेन्द्रके आत्मिक गुणोंमें तल्लीन होकर अपने आत्माको निश्चयसे जिनेन्द्रके समान पवित्र मानकर निज आत्माका अनुभव राग द्वेष मोहभाव छोडकर करता है तब उसका वह सर्व जनरंजक राग भाव दूर होजाता है ॥ ८ ॥

(कलरंजन कम्म स उत्त पओ) शरीरके मोहमें रंजायमान होनेवाला कर्म जितना कुछ कहा गया है (तं कमल रमन विलयतु सुय जिन विंदओ) वह सब शुद्धात्मारूपी कमलके भीतर रंजायमान होनेसे विला जाता है। यह आत्मरंजक भाव स्वयं वीतराग विज्ञानमें रमणता है।

भावार्थ—जब सम्यक्ती सम्यग्दर्शनके प्रभावसे अपने शुद्धात्मीक आनन्दका रसिक होजाता है तब उसका पूर्ण वैराग्य शरीरकी तरफ होजाता है, वह शरीरके सुखका मोही नहीं रहता है, न वह शरीरकी आसक्तिसे कोई व्यवहार कर्म या भोग करता है। जबतक गृहस्थमें रहता है तबतक पूर्वबद्ध कर्मोंके उदयसे उसे गृहस्थ योग्य सर्व काम व सर्व भोग करने पड़ते हैं, उसको सम्यक्ती कर्मका रोग जानता है। भावना यह घनी रहती है कि कब यह कषायका उदय मिटे जो मैं वीतरागभावमें ही नित्य रमण करूं। वह भीतरसे आत्मरमणताको ही अपना कर्तव्य समझता है। उसे स्वात्मानुभव ही प्रिय लगता है। वह

कर्मचेतना व कर्मफल चेतनासे उदास होजाता है तथा ज्ञानचेतनाका रसिक होजाता है। जहांतक अवसर मिलता है ज्ञानचेतनाका स्वाद लिया करता है। वह सर्व अशुद्ध कार्योंका अपनेको कर्ता व भोक्ता नहीं मानता है। वह शुद्ध भावोंका ही कर्ता भोगता अपनेको निश्चय रखता है ॥ ९ ॥

(मन रजन गारव कम्म पओ) मनको रंजायमान करनेवाला जो गारव या अहंकार भाव है या घमंड है वह सब (मनरंजन न्यान विलतु षिपक जिन विंद रओ) मनको रंजायमान करनेवाले आत्मज्ञानके प्रतापसे दूर होजाता है। यही आत्मज्ञान कर्मोंका क्षय करनेवाला वीतराग विज्ञानकी रमणतारूप है।

भावार्थ—जब सम्यक्तीका मन आत्माके शुद्ध स्वभावके मननमें व अनुभवमें आनन्द मानने लगता है तब उस मनकी वह परिणति नहीं रहती है जिस परिणतिसे मन धनमद, जातिमद, कुलमद, विद्यामद, रूपमद, तपमद, बलमद, अधिकारमद, रसीले भोजन पानेका मद, सुन्दर विषयोंके भोगका मद आदि भौतिक सम्पत्तिके मदमें रम सके, वह सम्यक्ती सांसारिक सम्पदाओंको कर्मजनित व क्षणिक मानकर उनसे भीतरसे कुछ भी राग नहीं करता है तब वह इनके होनेपर अहंकार कैसे कर सक्ता है। वह नियमसे मदरहित होता है। उसको मार्दवभाव ही प्रिय लगता है। जो मार्दवभाव स्वात्मानुभवके द्वारा प्राप्त होता है यही भाव पूर्वबद्ध कर्मोंकी निर्जरा करनेवाला है ॥ १० ॥

(ज दर्पन मोहे अधपओ) दर्शनमोहनीय कर्मके उदयसे जो मिथ्यात्व सहित अज्ञानभावका स्थान है (सुइ परम इस्टि विलयतु ममल जिन विंद रओ) यह सब परम हितकारी सम्यग्दर्शनके प्रभावसे दूर होजाता है। वह सम्यक्तभाव निर्मल वीतराग ज्ञानचेतनामें रमणरूप है।

भावार्थ—जबतक सम्यग्दर्शन व उसीके साथ सम्यग्ज्ञानका प्रकाश नहीं होता है तबतक मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान व मिथ्याचारित्र बना रहता है, तब यह जीव बहिरात्मा होकर शरीरको ही आत्मा मानता है व शरीरके सुखको ही सुख समझता है। इस उल्टी समझसे वह सर्व लौकिक व धार्मिक काम विषयसुखके हेतुसे ही करता है। महान कठिन जैनसाधुका चारित्र भी निदान भाव सहित आगामी इंद्रियसुखके लोभसहित पालता है। यह सब अज्ञानपूर्वक आचरण सम्यग्दर्शनके प्रकाश होनेसे मिट जाता है। सम्यक्तीको यह सच्चा ज्ञान होजाता है कि मैं शुद्ध वीतराग परमात्मारूप हूं, मेरा सुख मेरे ही आत्माका स्वभाव मेरे ही पास है। विषयसुख असत्य और काल्पनिक है। सम्यक्तीके निःकांक्षित अंग प्रगट होजाता है ॥ ११

ममलपाहुड ॥१४९॥

(ज न्यान आवर्नह कम्म रओ) जो ज्ञानावरण कर्मके उदयसे अज्ञानभाव होता है और उस अज्ञान-भावसे जो कार्य किया जाता है अर्थात् अज्ञानमई कार्योंमें जो रति होती है (तं न्यान अन्मोय विलतु मुक्ति जिन विंदओ) वह सब अज्ञानभाव व उसमें रति ज्ञानानन्दके प्रकाशसे दूर होजाते हैं। शुद्ध वीतराग आत्माके ज्ञानमें लीन होना ही ज्ञानानन्दका झलकाव है।

भावार्थ—आत्मोन्नतिसे विरुद्ध कार्योंमें व विषयभोगोंमें रतिभाव अज्ञानमई क्रिया है सो सर्व सम्यग्ज्ञानके प्रकाश होते ही विला जाती है। सम्यग्ज्ञानीको मुक्त शुद्ध आत्माके स्व स्वरूपका यथार्थ ज्ञान होता है अतएव वह उसीके स्वादमें रमन करता है। वह संसारकी रतिको अज्ञान समझता है। चारित्र-मोहके उदयसे गृहस्थी विषयभोगोंके काम यद्यपि करता है तथापि उससे उसे त्यागभाव है—विरागभाव है। उनको रोग जान उनसे छूटना ही चाहता है। ज्ञान वैराग्यसे किया हुआ विषय सेवन संसारवर्द्धक नहीं होता है। ज्ञानीके सर्व ही कार्य चाहे लौकिक हों या पारलौकिक हों ज्ञानमई होते हैं, जब कि अज्ञानीके सर्व धार्मिक कार्य भी अज्ञानमई होते हैं, क्योंकि ज्ञानीके भावोंमें सम्यग्ज्ञान है, अज्ञानीके भावोंमें मिथ्याज्ञान है। श्री समयसार कलशमें कहा है—

ज्ञानिनो ज्ञाननिवृत्ता सर्वे भावा भवन्ति हि। सर्वेऽप्यज्ञाननिर्वृत्ता भवन्त्यज्ञानिनस्तु ते ॥ २२-३ ॥

भावार्थ—ज्ञानीके सर्व ही भाव ज्ञानसे रचे हुए होते हैं जब कि अज्ञानीके सर्व भाव अज्ञानसे बने हुए होते हैं ॥ १२ ॥

(ज दर्सन आवर्नु अदर्समओ) जो दर्शनावरण कर्मके उदयसे अदर्शनमई भाव होते हैं, पदार्थोंका ठीकर सामान्य अवलोकन नहीं होता है वह अदर्शनभाव (त दर्सन दिस्टि गलतु अषए जिन विंदओ) सम्य-ग्दर्शन सहित चक्षु अचक्षु व अवधिदर्शनके प्रकाशसे गल जाता है। सम्यग्दृष्टीका दर्शनोपयोग आत्म सन्मुख रहता है इसलिये वह अविनाशी वीतराग ज्ञानचेतनाकी रमणतामें प्रेरक है।

भावार्थ—अल्पज्ञानियोंके दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है। सम्यग्दृष्टी जीव जब मतिज्ञान द्वारा पदार्थोंको जानता है तब वह जीव अजीव सर्व द्रव्योंको ऐसा जानता है जिस ज्ञानसे उसको कभी मिथ्यात्वभाव नहीं होता है। क्योंकि सम्यग्दृष्टियोंको यह पक्का श्रद्धान है कि इस लोकके सर्व पदार्थोंकी अवस्थाएं छः-द्रव्योंकी पर्यायोंमें गर्भित हैं। सम्यक्तीको किसी भी पदार्थको देखकर आश्चर्य नहीं होता है ॥ १३ ॥

समकपाहुड
॥१५०॥

(मानापमान आवर्न मओ) मान या अपमानका भाव जो मोहनीयकर्मके उदयसे होसक्ता है (विन्यान अन्मोय विलतु जिनय जिन विंद-रओ) वह सब मलीनभाव ज्ञानानन्दकी रमणतासे विला जाता है। वह भाव वीतराग व जितेन्द्रिय स्वरूप ज्ञानकी रमणतारूप है।

भावार्थ—सम्यक्तीके भीतर अनन्तानुबन्धी कषायका उदय नहीं होता है इसलिये उसका तीव्र मोह सांसारिक अवस्थाओंसे नहीं होता है। अतएवं वह इस बातका मान नहीं करता है कि मैं बड़ा हूं? यदि कहीं कोई अपमान हो तो सम्यक्ती उससे परिणामोंको मलीन नहीं करता है, न वह धनादिका घमण्ड करता है। जिसने पर, वस्तुओंको अपनी नहीं समझा है वह कैसे उनके होनेका अहंकार करेगा, गृहस्थ सम्यग्दृष्टी यद्यपि भीतर मद नहीं करते हैं तथापि यदि कोई अन्यायपूर्वक अपमान करता है तो उसका प्रतीकार इसलिये करते हैं कि अन्यायका प्रचार न हो। वीतराग सम्यग्दृष्टी साधुगण मान अपमानमें विलकुल समभाव रखते हैं। वे ज्ञानरसके ही रसिक बने रहते हैं ॥ १४ ॥

(त न्यानह अन्र समय मओ) जो कुछ आत्मा सम्बन्धी ज्ञानमें अन्तर रहता है अर्थात् आत्मज्ञानमें कमी होती है (त मयम विन्यान विन्तु कमऊ जिन विंद रओ) वह सब कभी आत्माके विशेष ज्ञान--यथार्थ ज्ञान होनेसे चली जाती है। सच्चा आत्मज्ञान तब ही होता है जब कमलके समान प्रफुल्लित वीतराग विज्ञानमई भावमें रमणता होती है अर्थात् आत्माका यथार्थ ज्ञान विना स्वात्मानुभव प्राप्त किये नहीं होसक्ता है। केवल शास्त्रोंद्वारा व गुरुद्वारा ज्ञान व केवल वचनसे व मनसे आत्माके गुणोंका मनन कार्यकारी नहीं है। जब मनन इतना किया जायगा कि आत्मा आत्मस्थ होजायगा तब ही आत्माका अनुभव होगा, तब ही आत्माका ज्ञान हुआ ऐसा कहा जायगा ॥ १५ ॥

(ज न्यान अतरु अन्यान मओ) जो ज्ञानके भीतर कुछ भी अज्ञानमई भाव होता है (तं न्याय अन्मोय गलतु सिद्ध जिन विंदओ) वह अज्ञानमई भाव ज्ञानानन्दमें मगनतासे दूर होजाता है वह मगनता सिद्धस्वरूपी वीतरागभावमें रमणरूप है। भावार्थ—आत्मज्ञानमें व द्रव्योंके ज्ञानमें जो कुछ कमी होती है वह सब आत्मानुभव करनेसे दूर होजाती है। आत्मानुभवके कारणसे जो विशुद्धता होती है उससे ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होजाता है, तब जो अज्ञान होता है वह मिट जाता है। आत्मज्ञानानुभवके अभ्यास करते २ श्रुत ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होकर यह जीव श्रुतकेवली होजाता है ॥ १६ ॥

(जं न्यान विओय अनिष्ट पओ) जो आत्मज्ञान व सम्यग्ज्ञानसे रहित अनिष्ट पद है, आत्माको अहितकारी है, विषयभोगोंमें आसक्तिका भाव है (तं इस्ट अमोय गलंतु अपय न्नि विंदओ वह सब भाव उस इष्ट आत्मानन्दके प्रतापसे गल जाता है। यह आनन्द तव ही प्राप्त होता है जब अविनाशी वीतराग ज्ञान स्वरूप आत्मामें रमणता होती है। भावार्थ–आत्मानन्दका जितना २ स्वाद बढ़ता जाता है उतना उतना विषयवासनाका विकार मिटता जाता है ॥ १७ ॥

(ज असमय सहियो कम्म पओ) जो आत्माके अनुभवसे रहित कर्मोके उदयमें उलझा हुआ भाव है (त समय विन्यान विलन्तु अमिय जिन विंदओ) वह सब आत्माके अनुभवसे विला जाता है। वह आत्मानुभव अमृतमई वीतराग विज्ञानकी रमणतारूप है। भावार्थ–रागद्वेष रूप कर्मोके करनेमें तल्लीनताको कर्मचेतना कहते हैं। मैं कर्मोके उदयसे सुख व दुःख होनेपर मैं सुखी व मै दुःखी ऐसा भाव होना उसको कर्मफल-चेतना कहते हैं। ये दोनों ही चेतनाएँ कर्मपद हैं। कर्ममें आसक्ति है सो ज्ञानचेतनासे अर्थात् आत्म–ज्ञानके अनुभवसे विला जाती है ॥ १८ ॥

(ज दिस्टि अनन्त जु कम्म पओ) जो कर्मोके उदयसे होनेवाले अनन्त भावोंमें श्रद्धा है (तं न्यान दिस्टि विलयन्तु सुय जिन विंदओ) वह सब आत्मज्ञानकी श्रद्धा होनेसे विला जाती है, वह श्रद्धा स्वयं वीतराग विज्ञान भावमें रमण रूप है। भावार्थ–कर्मोदयजनित सर्व भाव क्षणभंगुर हैं, आत्माके स्वभाव नहीं है, उनको अपना स्वभाव मानलेना मिथ्या श्रद्धान है। यह मिथ्या श्रद्धान आत्माके यथार्थ श्रद्धानसे दूर हो जाता है ॥ १९ ॥

(जं सुग्ह सहाउ जु कम्म पओ) जो कर्मोके उदयसे होनेवाला शब्दोंका प्रकाश है अर्थात् रागद्वेष मोह-वर्धक शब्दोंका उच्चारण है (त सुग्ह विन्यान विलन्तु अगम जिन विंदओ) वह सब आत्मज्ञानमई शब्दोंके उच्चा-रणसे दूर होजाता है। यह अध्यात्मीक कथन तब ही होता है जब निर्विकल्प वीतरागमई ज्ञानमें रमण हो। भावार्थ—जो सम्यग्दृष्टी स्वात्मानुभवी हैं वे अध्यात्म कथनमें ही राजी रहते हैं इसलिये वे रागद्वेषवर्द्धक कथनीके मोहको दूर कर देते हैं। उनकी सर्व कथनी आत्मानुभवकी ओर प्रेरणा करनेवाली होती है ॥ २० ॥

(ज अमद्द स उत्तउ कम्म मओ) जो शब्द रहित मनमें होनेवाले कर्मोदय जनित रागद्वेषके विकल्प हैं (विन्यान विंद विलयतु नत जिन विंद रओ) वे सब भेदविज्ञानके अनुभवसे विला जाते हैं। इस भेदविज्ञानसे अनंत

वीतराग ज्ञानमें रमणता होती है। भावार्थ—भेदविज्ञानसे ज्ञानीको यह ज्ञान होता है कि शुद्ध आत्मीक वीतरागभाव ही उपादेय है ग्रहण करनेयोग्य है, शेष सर्व ही रागद्वेष मूलक भाव त्यागने योग्य हैं। भेदविज्ञानका अभ्यास करते करते कर्मजनित भावोंसे वैराग्यभाव दृढ होजाता है। यह भेदविज्ञान स्वात्मानुभव करानेवाला है ॥ २१ ॥

(अदिस्ट उवन जु कम्म रओ) मिथ्यादृष्टिके उदयसे जो कर्मोंमें रति होती है-शुभ अशुभ क्रियाओंमें रंजायमानपना होता है या शुभोपयोगमें ही यह बुद्धि होती है कि यही मोक्षका उपाय है। (अदिस्टि इस्टि विलयतु अमय जिन विन्दरओ) वह सब भाव इंद्रियोंसे अगोचर आत्माके प्रेमसे विला जाता है। जहां आत्मप्रेम है वहां निर्भय वीतरागमय ज्ञानमें रमणता होती है।

भावार्थ—सम्यक्तके न होनेपर कोई २ पुण्यबन्धके कारक भावोंको निर्जराका कारण मान लेते हैं जब कि निर्जराका कारण तो शुभ व अशुभ भावोंसे रहित शुद्धोपयोग भाव है। इस मिथ्यात्वका नाश शुद्धात्माकी रमणतासे दूर होजाता है अथवा संसारके भीतर जो मोहभाव होता है, वह सब आत्मानन्दके प्रेमसे विला जाता है ॥ २२ ॥

(ज गुत्ति कम्म सुइ अनत पओ) जो सत्तामें बैठे हुए अनन्तप्रकारके कर्म हैं (अन्मोय न्यान विलयतु विलय जिन विन्दरओ) सो सब कर्म ज्ञानानन्दसे विला जाते हैं। यह ज्ञानानन्द तब ही होता है जब भव्यजीव वीतराग विज्ञानभावकी रमणताको अपना स्थान बनाता है।

भावार्थ—आत्मानुभवकी रमणतामें ठहरनेसे जो धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान होता है वह सत्तामें बैठे हुए कर्मोंकी स्थिति व अनुभागको खण्डन कर देता है—कर्मोंकी निर्जरा कर देता है ॥ २३ ॥

(सक सल्य संक भय कम्म रओ) जो कुछ शङ्का व शल्य व भयका प्रकाश कर्मोंके उदयसे होता है और अज्ञानी जीव उन भावोंमें रमन करके सशङ्कित, भयभीत व शल्य रहित होजाता है (सक गलिय न्यान विलयतु सुद्ध जिन विंद रओ) वह सब कुभाव निःशङ्क आत्मज्ञानसे दूर होजाता है। जहां निःशङ्क आत्मज्ञान होता है वहां शुद्ध वीतरागज्ञानमें रमणता होती है।

भावार्थ—तत्वोंका मनन करते २ जब सम्यक्तभाव उत्पन्न होजाता है और मैं शुद्ध आत्मारूप हूं

यह सम्यक्तभाव प्रगट होजाता है तब तत्वमें सब शङ्काएँ निकल जाती हैं, संसारका भय दूर होजाता है माया मिथ्या निदान शल्यें दूर होजाती हैं, निःशङ्कित अंगका प्रकाश होजाता है ॥ २४ ॥

(ज कम्म विसेष अनंत रई) जो कर्मोंके विशेष उदयसे होनेवाले अनन्त प्रकारके भावोंमें रुचि है (अमोय ग्यान विरयं तु ममल जिन विंद्‌अओ) वह सब मिथ्यारुचि ज्ञानानन्दसे दूर होजाती है, यह ज्ञानानन्द तब ही प्रगट होता है जब मलरहित निर्दोष वीतराग विज्ञानमें रमणता होती है।

भावार्थ—चार गतिकी अपेक्षा देखा जावे तो अनन्त जीवोंकी रुचि अनन्त प्रकारकी होरही है कोई किसी इंद्रियके विषयमें अधिक रुचि रखता है, कोई किसीमें अधिक रुचि रखता है मानवोंको देखा जावे तो मानव भी अनेक रुचिवाले हैं। किसीको गानविद्याकी रुचि है, किसीको तैरनेकी रुचि है, किसीको वन रमणकी रुचि है, किसीको मद्यपानकी रुचि है, किसीको विकथा करनेकी रुचि है। सो सब रुचि आत्मानन्दकी रुचि होते ही दूर होजाती है। जब स्वात्मानुभवसे आत्मानन्द होता है तब सर्व सांसारिक सुखकी तरफ अरुचि होजाती है ॥ २५ ॥

(ज जिनवर उत्तउ अमिय जिनु) श्री जिनेन्द्रभगवानने जिस अमृतमई वीतराग जिनका स्वरूप बताया है (भय सल्य मक विगयत्‌ नद जिन विंद्‌ओ) वह सर्व भय, सर्व शल्य व सर्व शंकाओंसे शून्य है, वह आनन्दमय वीतराग विज्ञानमें रमणता रूप है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीसे लेकर अरहन्त तक सर्व ही आत्माएँ जिन हैं। ये सब ही अपने२ गुणस्थानके अनुसार ज्ञानानन्दमय निज पदका स्वाद लेते हुए आत्ममगन रहते हैं ॥ २६ ॥

(जिन नद नद आनंद मओ) श्री जिनेन्द्रभगवान या सर्व ही सम्यग्दृष्टी आत्माएँ आनन्दमई भावमें परमानन्दित रहते हैं (जिन सहज नंद स सहाव जिनय जिन विन्दओ) वे सर्व ही जिन सहजानन्द आत्मीक स्वभावमें रहनेवाले वीतराग विज्ञानमई भावमें रमण करनेवाले हैं।

भावार्थ—सम्यग्दर्शनके प्रकाश होते ही स्वाभाविक सहजानन्दका स्वाद आने लगता है। चतुर्थ गुणस्थानसे लेकर तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान तक जितना २ स्वानुभवमें अधिक अधिक थिरभाव होता है उतना उतना विशेष सहजानन्दका स्वाद आता है। श्री अरहन्त अनन्त आनन्दके धनी होजाते हैं ॥२७॥

(जिन परम नद परमप्प पओ) श्री जिनेन्द्रका जो परमानन्दमय परमात्मा पद है (जिन परम इस्टि दरसतु

इस्ट जिन विन्दरओ) उस पदमें वे जिनेन्द्र परम प्रिय आत्माको देखते हुए परम प्रिय वीतराग विज्ञानमें रमण करते हैं अर्थात् अरहन्त व सिद्ध परमेष्ठी भी नित्य शुद्धात्मामें रमण करते हुए शुद्धात्मीक भावके सन्मुख बने रहते हैं, निरन्तर आत्मीक रसका पान करते हैं ॥ २८ ॥

(जिन इस्ट सुइस्ट सुइष्ट पओ) श्रीजिनेन्द्रका परमात्मापद जगतके सर्व इष्ट पदोंमें श्रेष्ट इष्ट व ग्रहण करने योग्य पद है। (उववन्न इस्ट दरसतु सुयं जिन विन्दरओ) वे कर्मावरणके क्षयसे प्रकाशित शुद्ध आत्माको प्रत्यक्ष देखनेवाले स्वय वीतराग विज्ञानमें रमणशील हैं।

भावार्थ—पांच परमेष्ठीपद जगतमें इष्ट हैं, उन सबमें उच्च श्री अरहन्त व सिद्धका पद है ॥ २९ ॥

(जिन गम्य अगम्य सु नत पओ) श्री जिन परमात्मा इंद्रियोंसे जाननेयोग्य व इंद्रियोंसे न जाननेयोग्य सर्व अनन्त ज्ञानके धारी हैं (जिन नंत नंत दरसतु रयन जिन विन्दरओ) वे श्री जिनेन्द्र अनन्त दर्शनके धारी हैं तथा रत्नत्रयमई वीतराग विज्ञानमें रमणशील हैं ॥ ३० ॥

(जिन अर्थति अर्थह जिनय पओ) श्री जिनेन्द्रका पद सर्व पदार्थोंमें प्रधान व तीन रत्नमई है (जिन उवनो नन्तानत उवन जिन विन्दरओ) वे श्री जिनेन्द्र अनन्तानन्त ज्ञानमें प्रकाशित रहते हुए वीतराग ज्ञानमें रमणशील हैं ॥ ३१ ॥

(उव उवन हियार सु जिनय पओ) श्री जिनेन्द्रका पद आत्माको परम हितकारी है (सहयार न्यान सुइ उत्तु सुय जिन विंद रओ) उनका केवलज्ञान भव्य जीवोंके लिये मनन करनेको सहकारी ज्ञान कहा गया है। यह ज्ञान स्वयं वीतराग विज्ञानमें रमणरूप है ॥ ३२ ॥

(उववन्नहियार सहयार मइओ) श्री अरहंतका पद प्रकाशित परमहितकारी व भव्य जीवोंके लिये परम सहकारी है (जिन अनत चतुष्टय जुत्तु परम जिन विंदरओ) श्री जिनेन्द्र भगवान अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख, अनंतवीर्य इन चार अनंत चतुष्टय सहित परम वीतराग विज्ञानमें रमणरूप हैं ॥ ३३ ॥

(जिन न्यान विन्यान सुममय मओ) श्री जिनेन्द्र भगवान केवलज्ञान स्वरूप निज आत्मामई स्वसमय रूप है—आप आपमें मगन है (सिद्ध समय सिद्धि संपत्त समय जिन विंदरओ) वे स्वयं आत्मसिद्धिको प्राप्त करके श्री सिद्ध आत्मा वीतराग विज्ञानमें रमणरूप होजाते हैं ॥ ३४ ॥

(जिन तारन तरन वित्रान मओ) श्री अरहन्त जिनेन्द्र भगवान तारण तरण जहाजके समान हैं (सिद्ध

ममलपाहुड
॥१८८॥

समय सिद्धि संपत्तु सिद्ध जिन विंदाओ) वे स्वयं आत्माकी सिद्धिको पाकर श्री सिद्ध भगवान वीतराग विज्ञानमें मगन रहनेवाले होजाते हैं ॥ ३५ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें यह बताया गया है कि मोक्षका मार्ग निश्चय रत्नत्रयमई स्वात्मरमण भाव है। इस भावके जागृत होनेसे सर्व ही अशुद्ध भाव मिट जाते हैं; मिथ्या श्रद्धान, मिथ्या ज्ञान, मिथ्या चारित्र सब विला जाता है, तत्वकी गाढ़ रुचि होजाती है, सिद्ध स्वभाव पानेकी तीव्र उमंग जागृत होजाती है, कर्मोंके उदयसे होनेवाली जितनी भीतरी रागादि भावोंकी कम या अधिक परिणतियें हैं, जितने गुणस्थान सम्बन्धी भाव हैं, मिथ्यात्वसे लेकर अयोगी गुणस्थान पर्यंत उनसे तथा बाहरी जितनी पर्यायें हैं, एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय पर्यंत नारक, तिर्यंच, मानव व देवगतिकी, उन सबसे तीव्र वैराग्य होजाता है। उसको इंद्रपद, चक्रवर्ती पद, नारायण पद कोई भी पद अपद या अग्रहीत भासता है। एक निजपद ही-शुद्धपद ही ग्रहण योग्य झलकता है, उसकी गाढ रुचि आत्मीक रससे होजाती है, उसी रसका रसिक होजाता है। वह सर्व शरीर सम्बन्धी व इंद्रिय विषय विकार सम्बन्धी व मनको रंजायमान करनेवाली कषायोंकी प्रवृत्तियोंसे पूर्ण वैरागी होजाता है। उसके भीतर पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान ऐसा होता है जिससे वह किसी भी संसारकी पर्यायको देखकर आश्चर्य नहीं करता है। जगतको जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल इन छ द्रव्योंका नाटक समझता है। वह कर्मोंके उदयसे होनेवाली अवस्थाओंको अपनाता नहीं। मैं स्वभावसे उनका न तो कर्ता हूँ, न मैं उनका भोक्ता हूँ, ऐसा सच्चा ज्ञान उसके भीतर जागृत रहता है। अनन्तानुबन्धी कषायोंको और मिथ्यात्वको जीत लेनेसे उसके अनन्त भवोंमें भ्रमण करानेवाले कर्म गल जाते हैं, उसका आचरण आत्महितकारी होता है। वह ज्ञानसे विचार कर विवेकपूर्वक व्यवहार करता है। उसका सब जप, तप, व्रत, अनुष्ठान व क्रियाकांड, आत्मोन्नतिकी तरफ लक्ष्य रखनेका होता है। जिन२ क्रियाओंसे आत्माके शुद्ध गुणोंका मनन होसके, उन ही क्रियाओंको वह उसी हेतुसे साधन करताहै। मुनिपद व श्रावकपदका सर्व चारित्र आत्मानुभवके लिये ही पालता है, किसी अन्य कषाय जनित भावके लिये नहीं। वह न तो जनताको प्रसन्न करना चाहता है, न शरीरके सुखोंमें तन्मय होता है, न यह पर पदार्थोंके संयोगका अहंकार करता है उसके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय व मोहनीय कर्म चारों हीका क्षयोपशम दिनपर दिन उन्नति करता जाता है। उसकी सर्व अज्ञानमई चेष्टाएँ

विला जाती हैं। वह समझता है कि शब्दोंके उच्चारणसे व मनके विचार करनेसे आत्मानुभव नहीं हो सक्ता है, जब आत्मा आत्मामें रमता है। मन, वचन, कायसे परे होजाता है तब ही आत्मानुभव होता है। उसकी सत्तामें बैठे हुए कर्मोंकी निर्जरा हुआ करती है। वह निःशंकित अंगोंको रखता हुआ सर्व भय व शंकाओंसे दूर रहता है। ऐसा सम्यग्दृष्टी यही जानता है कि आत्मामें रमणता ही धर्म है, मोक्षमार्ग है। यही दुईजका चन्द्रमा है, जो स्वयं पूर्णिमासीका चन्द्रमारूप परमात्मा होजाता है। सम्यग्दृष्टी चौथे व पांचवे गुणस्थानमें गृहस्थ भी होते हैं, उनको कषायोंके उदयके अनुसार गृहस्थके कर्म भी करने पडते हैं। उनको वह नीतिपूर्वक भलेप्रकार सम्पादन करता है। परन्तु भावना यह होती है कि कब कषायरूपी रोग मिटे कि मै उदास होकर श्री निर्ग्रंथपद धारण करूँ। जब प्रत्याख्यानावरण कषायका उदय नहीं रहता है तब वह साधु होजाता है व तब वह वीतरागभाव हीमें रमण करता है, छठे गुणस्थानमें धर्मोपदेशादि भी करता है। सातवें अप्रमत्त गुणस्थानसे लगातार वह ध्यानस्थ रहता है। सातवेंमें धर्मध्यान फिर आठवेंसे शुक्लध्यानी होजाता है। आत्म-रमणता बड़ी ही उज्वल होजाती है। क्षपकश्रेणीपर चढ़कर वह चारों घातीय कर्मोंका क्षय करके अर्हंत परमात्मा होजाता है, जहां अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख व अनन्त वीर्य, चार चतुष्टय प्रगट होजाते हैं। वे अर्हंत भगवान निरन्तर आत्माको द्रव्यसे देखते हुए उसीके शुद्ध सहजानन्दमें मगन रहते हैं। उनके भीतर अपूर्व वीतरागता-समता प्रगट होजाती है। उनका ज्ञान अनन्तानन्त शक्तिका धारी होजाता है। वे जीवनपर्यंत अर्हंतपदमें रहते हैं। अन्तमें चार अघातीय कर्मोंका भी क्षय करके वे पूर्ण शुद्ध-पूर्ण मुक्त होकर मात्र आत्मारूप ही रह जाते हैं, सूक्ष्म व स्थूल सर्व पुद्गलोंका सम्बन्ध छूट जाता है। सिद्ध भगवान होकर भी वे अपनी सत्ताको खोते नहीं हैं। अनन्तकाल तक वीतराग विज्ञानमें रमण करते रहते हैं। यहां यह तात्पर्य है कि वीतराग विज्ञानमें रमणता ही मोक्षमार्ग है व यही मोक्ष है। उसीका साधन भव्योंको करना योग्य है।

(१९) चषु दर्सन गाथा ३५३ से ३७८ तक ।

भय विनास सुभ वयनं, न्यानी अन्मोय नन्द आनन्दं ।
अन्यान मिच्छ षिपनं, अनिष्ट अन्मोय विरय रूवेन ॥ १ ॥
चष्यै दर्सन उत्तं, चेतन सहकार कम्म सुइ षिपनं ।
भय ससंक षिपि ऊनं, षिपिओ संसार सरनि मोहंधं ॥ २ ॥
मल सुभाव संषिपनं, ममल दिस्टि च कम्म षिपिऊनं ।
भय षिपनक सहकारं, ममल सहावेन ममल न्यानस्य ॥ ३ ॥
ममलं ममल उवन्नं, भय षिपिय ससंक विलयन्तो ।
कम्मं उवन्न विलयं, भय गलिय ममल न्यान सहकारं ॥ ४ ॥
दिस्टि च ममल दिट्टं, दिट्टं इस्टी च इस्ट संजुत्तं ।
ममल सहावे सुद्धं, भय षिपिय ससंक विलयन्ती ॥ ५ ॥
चष्ये दर्सन उत्तं, दर्सन दर्सेइ लोय आलोयं ।
भवहं च भय विनट्ठं, दर्सन चष्ये च ममल रूवेन ॥ ६ ॥
चष्ये दर्सन सहियं, दर्सन न्यानं च ममल स सहावं ।
दर्सति इस्ट इस्टं, भय रहियं ससंक विलयन्ती ॥ ७ ॥
चष्ये च सुद्ध दिट्टं, मल मुक्कं मिथ्या सल्य गलियं च ।
ममलं ममल सहावं, भय षिपिय ससंक विलयन्ती ॥ ८ ॥
दर्सन चष्य विसेषं, विन्यान न्यान दिस्टि संजुत्तं ।

इस्टं च ईर्ज भावं, षिपन सहावेन ममल रूवेन ॥ ९ ॥
चष्ये चेयन रूवं, तारन तरन ममल सहकारं ।
भय विनष्ट संजोय, विलयं कम्मान तिविह जोएन ॥ १० ॥
चष्ये चरंति चरनं, चरनं आचरन ममल दिस्टं च ।
मलं सहाव न दिट्ठं, भय रहिय अभयदान सहकारं ॥ ११ ॥
चष्ये आरूव रूवं, सुर विंजन सरूव संजुत्तं ।
ससंक संक रहियं, भय षिपिय ममल न्यानं जोइत्थं ॥ १२ ॥
चष्ये षिपनक रूवं, षिपिओ संसार सरनि मोहंधं ।
षिपिओ समल उवन्नं, भय षिपिय ममल न्यान सहकारं ॥ १३ ॥
चष्ये दर्सन सुद्धं, सुद्धं स सहाव असुद्ध गलियं च ।
अन्यान मिथ्य गलियं, गलिय अन्यान सल्य गलिय च ॥ १४ ॥
चष्ये दिस्टति इस्टं, अनिस्ट सहकार सल्य विलयन्ती ।
भय षिपनक स सहावं, ममल सहावेन कम्म षिपनं च ॥ १५ ॥
चष्ये ममल सुदिस्टिं, इस्टं संजोय विओय अनिस्टं ।
भय विनास भव अन्तं, ममल सुभावेन कम्म गलियन्ती ॥ १६ ॥
चष्ये रमन सहावं, रमनं रसियं च ममल सहकारं ।
भव षिपनक स सहावं, षिपिओ कम्मान तिविह जोएन ॥ १७ ॥
षिपिओ नन्त विसेषं, भय षिपियं ससंक विलयन्ती ।
विलयं कम्म उवन्नं, ममल सहावेन कम्म षिनं च ॥ १८ ॥

पिपिओ दिस्टि सहावं, दिस्टि सहकार इस्टि संजोयं ।
इस्टं च इस्ट रूवं, अनिष्ट संसार सरनि विलयन्ती ॥ १९ ॥
चष्ये अनन्त दिस्टि, मल मुक्कं सल्य संक विलयन्ती ।
भय विनष्ट संजोयं, ममल दिष्टं च कम्म पिपनं च ॥ २० ॥
चष्ये दिस्टि सुदिस्टिं, पर्जय विलयन्ति नन्त नन्ताए ।
रागं जन रंजनयं, भव षिपिय ममल सुद्ध सहकारं ॥ २१ ॥
पर पर्जय नन्त विसेषं, पर्जय संसर्ग कम्म उप्पती ।
कम्म विसेषं विलयं, भय षिपिय ममल न्यान सद्भावं ॥ २२ ॥
चष्ये च ममल दिस्टि, समलं पर्जाय नन्त षिपिऊनं ।
ससंक कम्म विलयं, ममल दिस्टि च न्यान सहकारं ॥ २३ ॥
पर्जय अनिस्ट रूवं, अन्यान सहकार कम्म उप्पत्ति ।
समल सहावं विलयं, भय षिपनक भव्य न्यान सहकारं ॥ २४ ॥
चष्य सहावं ममलं, वयनं उप्पत्ति कम्म सद्भावं ।
वयनं च ममल रूवं, भय जिनियं नन्त कम्म विलयन्ती ॥ २५ ॥
कमल सहावं उत्तं, कमलं कारन जिनेहि उप्पत्ती ।
कारन काज संजोयं, ममल सहावेन समल भय विलयं ॥ २६ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(भय विनास सुभ वयनं) संसारके भयको नाश करनेवाले ज्ञानीके शुभ वचन होते हैं अर्थात् ज्ञानी ऐसा उपदेश करते हैं जिससे सर्व भयोंका नाश होजावे (न्यानी अन्मोय नंद आनंदं) ज्ञानी आत्मानन्दमें मगन होकर आनन्दित रहते हैं (अन्यान सिंच्छ पिपन) उनके उपदेशसे अज्ञान और मिथ्या-

त्वका क्षय होजाता है (अनिष्ट अ मोय विगय रूवेन) आत्माके अहितकारी विषय कषाय हैं उनमें रंजायमान होनेका भाव छूट जाता है ॥ १ ॥

(चष्ये दर्सन उत्त) ज्ञानी निश्चयनयसे चक्षु दर्शनको कहते है। व्यवहारनयसे आंखके द्वारा पदार्थोंके सामान्य अवलोकनको चक्षु दर्शन कहते हैं, निश्चयनयसे आंखकी दृष्टिको ध्यानावस्थामें भीतर रखते हुए ज्ञानमय दृष्टिसे निज आत्माका अवलोकन करना या अनुभव करना चक्षु दर्शन है उसीका यहां वर्णन है (चेतन महकार कम्म सुइ पिान) जहां चेतन स्वरूप आत्माका दर्शन होता है वहां उस आत्मदर्शनके प्रभावसे कर्म स्वयं क्षय होते जाते हैं। आत्मानुभवके कारणसे कर्मोंकी विशेष निर्जरा होती है। (भय ससंक विपिऊन) जहां आत्माके आनन्दका स्वाद आजाता है, सर्व भय व सर्व शंकाएं दूर हो जाती है (विपिओ संसार सरनि मोःयं) संसारमें भ्रमण करानेवाला दर्शन मोह कर्म या मिथ्यात्वभाव सर्व दूर हो जाता है। सम्यग्दर्शन निश्चयसे आत्माका स्वभाव है। उस स्वभावमें रमण करनेसे संसारकी रमणता दूर होजाती है। सम्यक्त प्रकाश है, मिथ्यात्व अन्धकार है। अन्धकारके दूर होनेसे ही प्रकाश प्रकाशित रहता है ॥ २ ॥

(मल सुभाव संपिानं) रागद्वेषसे जो स्वभावकी मलीनता थी, सो दूर होजाती है, वीतरागता प्रगट होजाती है (ममल दिस्टि च कम्म विपिऊन) जहां मल रहित शुद्ध आत्मदृष्टि होती है वहां कर्मोंका क्षय अवश्य होता है। नोट—ममल शब्दका व्यवहार श्री तारनस्वामीने यत्रतत्र किया है जो अमलके ही अर्थमें है। इसलिये हमने अबतक ममल शब्द ही रखकर उसका अर्थ अमल किया है। दोनों ही शब्दोंका अर्थ एक ही है) (भय पिानक सहकार) आत्मानुभवके समय सर्व भयोंका क्षय होजाता है। इस निर्भय भावके कारण (ममल महावेन ममल न्यानम्य) शुद्धोपयोगके द्वारा ज्ञान निर्मल होता जाता है। अर्थात् इसीसे केवलज्ञानका प्रकाश होता है ॥ ३ ॥

(ममलं ममल उवन्न) निर्मल भावके मननसे ही भावोंकी निर्मलता होती है। शुद्धात्माकी भावना ही से आत्मा शुद्ध होता है (भय पिपिय मसक विलयनो) इसी शुद्ध आत्माकी भावनासे सर्व भय क्षय होजाता है व सर्व शंकामय भाव विलय होजाता है (कम्म उवन्न विलय) तथा नवीन कर्मोंका उपजना बन्ध होजाता है। संवर भावके प्रतापसे नवीन कर्मोंका आस्रव व बन्ध नहीं होता है (भय गलिय ममल भाव सहकार) इस

भाव तारनतरन है। अर्थात् शुद्धोपयोग हीसे यह जीव संसारसे पार होता है व इसीका उपदेश दूसरोंको भी भवसागरसे पार करता है। यही आत्माकी शुद्धिका कारण है (भय विनष्ट मजोय) इस शुद्ध भावके संयोगसे सर्व भय नाश होजाता है (विलय कम्मान तिविह जोएन) जब कोई भव्यजीव मन, वचन, काय, तीनों योगोंको रोककर आत्मध्यान करता है तब उसके कर्मोंकी निर्जरा होती है ॥ १० ॥

(चष्ये चरन्ति चरन) जो इस आत्माके दर्शनके चारित्रमें चलते हैं। अर्थात् जो आत्माका ध्यान करते हैं (चरन आचरन ममल दिस्ट च) वे ही चारित्रको पालते हुए निर्मल श्रद्धाके धारक हैं (मल सहाव न दिट्ठ) वहां कोई दोषमय व रागादिमय स्वभाव नहीं दिखलाई पड़ता है (भय रहिय अभयदान सहकार) वे ही निर्भय हैं, वे ही अपनेको अभयदान देते हैं, आत्माको संसारके भयसे छुड़ाते हैं ॥ ११ ॥

(चष्ये अरुव रूव) यह अन्तरंग चक्षुदर्शन अमूर्तीक आत्माके स्वभावका अनुभव कराता है (सुर विंजन सरूव संजुत्त) यह आत्मानुभव प्रगट सूर्य समान स्वरूपका धारी है। अर्थात् वीतरागताके साथ आत्माका प्रकाशक है (ससक सक रहियं) इसमें कोई भय व शंका नहीं है (भय पिपिय ममल न्यान जोइत्थं) यह भयका नाश करनेवाला है, यह निर्मल ज्ञान ध्यानस्थ महात्माको होता है ॥ १२ ॥

(चष्ये षिपनक रूवं) यह आत्मदर्शन क्षायिक स्वभाव है। अर्थात् इससे कर्मोंका क्षय होता है (षिपिओ ससार सरनि मोहधं) यह भाव संसारमें भ्रमण करानेवाले दर्शन मोह या मिथ्यात्वको क्षय कर देता है (षिपिओ ममल उवन्न) इस आत्मदर्शनके प्रभावसे उदयमें आनेवाला मलीन भाव क्षय होजाता है। अर्थात् रागद्वेष उत्पादक कर्म गल जाता है (भय षिपिय ममल न्यान सहकार) इससे सर्व भय दूर होता है। यही केवलज्ञानका कारण है ॥ १३ ॥

(चष्ये दर्सन सुद्ध) यह अन्तरंग चक्षुदर्शन शुद्ध है (सुद्ध स सहाव असुद्ध गलिय च) यह शुद्ध आत्माका स्वभाव है। इसने अशुद्ध भावको गला दिया है (अन्यान मिथ्या गलिय) इसमें अज्ञान भाव व मिथ्यात्वभाव दूर होगया है (गलिय अन्यान सल्य गलियं च) अज्ञानके नाशके साथ शल्य भी गल गई है ॥ १४ ॥

(चष्ये दिस्टति इस्ट) यह चक्षुदर्शन इष्ट परमात्म पदको देखनेवाला है (अनिस्ट सहकार सल्य विरयती) इसके प्रतापसे हानिकारक सब शल्य-माया मिथ्या निदान दूर होगई हैं (भय षिपनक स सहाव) इससे भय

क्षय होजाता है, यह आत्माका निज स्वभाव है (ममल सहावेन कम्म षिपनं च) इस शुद्ध स्वभावके अनुभवसे ही कर्म क्षय होजाते हैं ॥ १५ ॥

(चष्ये ममल सुदिस्टं) यह अन्तरंग चक्षुदर्शन निर्मल सम्यग्दर्शन है (इस्ट संजोय विओय अनिस्टं) यह इष्ट जो सिद्धपद उसका संयोग कराता है और अनिष्ट जो संसार उसका नाश करता है (भय विनास भव अन्त) इससे भय नाश होजाता है व संसारका ही अन्त होजाता है (ममल सहावेन कम्म गलियन्ती) इसी शुद्ध स्वभावके प्रभावसे कर्म गल जाते हैं ॥ १६ ॥

(चष्ये रमन सहाव) वह अन्तरंग चक्षुदर्शन आत्मरमण स्वभावमय है। अर्थात् स्वात्मानुभवरूप है (रमन रसियं च ममल सहकारं) यह आत्मीक रसमें मगन है व यही निर्मलताका साधक है (भय षिपनक स सहाव) यह भय नाशक आत्माका स्वभाव है (षिपिओ कम्मान तिविः जोएन) इसीके प्रभावसे मन, वचन, काय तीनों योग थिर होजाते हैं, आत्म-समाधि जागृत होती है जिससे कर्मोंका क्षय होता है ॥१७॥

(षिपिओ नन्त विसेषं) इसके प्रभावसे अनन्त भेदोंका विकल्प मिट जाता है (भय षिपिय ससक विलयन्ती) इससे भय क्षय होता है व सशंक भाव विला जाता है (विलय कम्म उवन्न) यह कर्मोंके आस्रवको रोकता है (ममल सहावेन कम्म षिपन च) इसी शुद्ध स्वभावके द्वारा कर्मोंकी निर्जरा होती है ॥ १८ ॥

(षिपिओ दिस्टि सहाव) इसीसे मिथ्यात्व दृष्टिका स्वभाव दूर होजाता है (दिस्टि सहकार इस्ट सजोयं) सम्यग्दर्शनके प्रभावसे इष्ट जो परमात्मपद उसका संयोग होता है (इस्ट च इस्ट रूवं) परमात्म स्वरूपकी ही तरफ प्रेम रहता है (अनिस्ट संसार सरनि विलयन्ती) इससे दुःखदाई संसारका भ्रमण मिट जाता है ॥१९॥

(चष्ये अनत दिस्टी) यह अन्तरंग चक्षुदर्शन अनन्तदर्शनका अनुभव करता है। अर्थात् अनन्तदर्शन-धारी परमात्माका अनुभव करता है (मल मुक्क सल्य संक विलयन्ती) इससे सर्व मल, सर्व शल्य, व सर्व शंकाएँ दूर होजाती हैं (भय विनष्ट संजोय) इसके संयोगसे भयका क्षय होजाता है (ममल दिस्ट च कम्म षिपन च) इसी शुद्ध स्वभावके अनुभवसे कर्मोंका क्षय होजाता है ॥ २० ॥

(चष्ये दिस्टि सु दिस्टं) इस अन्तरंग आत्मदर्शन रूप चक्षुदर्शनके अनुभव करनेसे (पर्ज विग्यंति नन्त नन्ताए) अनन्तानन्त शरीरोंमें प्राप्त करानेवाला कर्म क्षय हो जाता है (रंग जनरंजनय) जनोंके मनको प्रसन्न

करनेवाला राग विला जाता है (भय पिपिय ममल सुद्ध सउकार) व सर्व भय दूर होजाता है। परम शुद्ध भावका यह साधक है ॥ २१ ॥

(पर पर्जय नन्त विसेपु) अनन्त प्रकारकी पर परिणतियें होती हैं। स्वात्म रमणकी परिणतिसे विरुद्ध सांसारिक परिणतियें अनन्त प्रकारकी होती हैं (पर्जय ससर्ग कम्म उप्पत्ती) इन्हीं अशुद्ध रागद्वेष मोह रूप परिणतिके संयोगसे कर्मोका बन्ध होता है (कम्म विसेषं गलियं भय पिपिय ममल न्यान सद्भाव) सो सर्व कर्म भयरहित शुद्ध ज्ञानके कारण दूर होजाते हैं ॥ २२ ॥

(चष्येय ममल दिस्टि) इस अन्तरंग चक्षुदर्शनकी शुद्ध दृष्टिके प्रतापसे (समलं पर्याय नन्त पिपिऊनं) मल सहित अशुद्ध परिणाम सब क्षय होजाते हैं (ससंक कम्म विलय) शंकाको व भयको पैदा करनेवाला कर्म विला जाता है (ममल दिस्टि च न्यान सहकार) यही निर्मल आत्मदृष्टि केवलज्ञानको उत्पन्न करती है ॥२३॥

(पर्जय अनिष्ट रूव) अहितकारी संसारवर्द्धक जो परिणाम है या अवस्था है (अन्यान सहकार कम्म उप्पत्ती) उस अज्ञानमई भावके कारण कर्मोका बन्ध होता है (समल सहाव भय पिपनक भव्व न्यान सहकारं) वह सब अशुद्ध भाव भयरहित निर्मल प्रशंसनीय ज्ञानके प्रतापसे विला जाता है ॥ २४ ॥

(चष्य सहाव ममल) आत्माका दर्शन शुद्ध है (वयन उप्पत्ति कम्म सद्भावं) जहां वचनोंका प्रकाश है अर्थात् वचन द्वारा विकल्प है, स्तुति है या जप है वहां कर्मोका आस्रव है (वयनं च ममल रूवं) परन्तु जहां वचनोंके द्वारा जप या मनन करते हुए आत्माका शुद्ध स्वभाव झलक जाता है (भय जिनिय नन्त कम्म विलयती) वहां भय सब जीतलिया जाता है व अनन्त कर्म क्षय होजाते हैं ॥ २५ ॥

(कमल सहावं उत्त) इसतरह कमलके समान प्रफुल्लित आत्माका स्वभाव कहा गया (कमल कारन जिनेहि उप्पत्ती) यही शुद्धात्माका अनुभव ही श्री जिनेन्द्र पदकी उत्पत्तिका कारण है (कारन काज सजोय) जैसा कारण होता है वैसा कार्य होता है। शुद्ध स्वभावका ध्यान ही शुद्ध भावका प्रकाशक है। केवल स्वरूप आत्माका अनुभव ही केवलज्ञानका कारण है (ममल सहावेन समलं भय विलयं) शुद्ध स्वभावके झलकावसे दोष सहित सर्व भय विला जाता है ॥ २६ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें स्वामीने अन्तरंग ज्ञानचक्षु द्वारा जो शुद्धात्माका दर्शन होता है अर्थात् शुद्धात्माका अनुभव होता है, उसीकी महिमा व स्तुति रमणीक शब्दोंमें की है व वारंवार कहा है कि यही

ममलपाहुड
॥२६५॥

शुद्धात्मानुभव सर्व संसारके भयोंका मेटनेवाला है, यही निःशंक करनेवाला है। कोई शङ्का आत्मानुभवमें नहीं रहती है। न सम्यग्दृष्टीके पास माया, मिथ्या, निदान कोई शल्य ही रहती है। जहां शुद्धात्मानुभव है वहीं निर्मल सम्यग्दर्शन है, वहीं सम्यग्ज्ञान है, वहीं सम्यक्चारित्र है, यही आत्मामें रमणता है, यही धर्मध्यान है व यही शुक्लध्यान है। चौथे अविरत सम्यग्दर्शन गुणस्थानसे इस अन्तरंग चक्षु दर्शनका प्रकाश होजाता है। इसीके प्रकाशसे मिथ्यात्व भाव चला जाता है। इसके रहते हुए बहुत कर्मोंका आस्रव रुकता है व बहुत कर्मोंकी निर्जरा होती है। मोक्षमार्ग ही वास्तवमें स्वात्मानुभव है, इसके लाभके विना बाहरी जप तप व्रत उपवास मुनि व श्रावकके व्रत मोक्षमार्ग नहीं होसक्ते। सरागभावसे कर्मका बंध होता है, निर्जरा नहीं। निर्जराका कारण तो मात्र एक शुद्धोपयोग है, एक निर्मल भाव है, वीतराग विज्ञानमय भाव है। इसी भावके द्वारा ही गुणस्थानके द्वारा आत्माकी उन्नति होती है। इसी आत्मीक शुद्ध भावसे घातिय कर्मोंका क्षय होता है व केवलज्ञान व केवलदर्शन प्रगट होता है। परमात्मपदका कारण एक यही शुद्धात्मानुभव है इसीसे सर्व कर्म क्षय होजाते हैं व यह आत्मा परमात्मा पद या सिद्ध पद पालेता है। जहां शुद्धात्मानुभव है वहां मन, वचन, काय तीनोंका विकल्प नहीं रहता है। तत्वज्ञानी महात्माओंका कर्तव्य है कि वे ऐसा ही उपदेश करें जिससे यह चक्षुदर्शन भव्यजीवोंके भीतर प्रकाशमान होजावे और वे संसारसागरके पार पहुंच जावें।

(२०) वैराग्य फूलना ३७९ से ३९९ तक।

उव उवनउ हो न्यान महावं, विंद सजोए विंद पओ।
लोयह हो लोय प्रमानु, नन्तानन्त विन्यान पओ ॥ १ ॥
अर्थह हो ति अर्थ सजुत्तु, अर्थति अर्थह पूरिउयो।
मइ सुइ हो अवहि सहाओ, पंच न्यान पद विंद मओ ॥ २ ॥
न्यानी हो न्यान संजुत्तु, दर्सन दिस्टिहि दिस्टिओ।

दसन हो दरसिउ लोया, सम्यक्‌दर्सन समय पओ ॥ ३ ॥
अनन्तह हो दर्सन दिस्टि, लोयालोय सु न्याय मओ ।
अर्थह हो तिअर्थ संजुत्तु, पंच दिप्ति परमिस्टि मओ ॥ ४ ॥
दसिओ हो ममल सहाओ, न्यान विन्यान सुदिस्टि मओ ।
अप्पा हो अप्प सहाओ, सहजनन्द चेयन सहिओ ॥ ५ ॥
वीरह हो पयोग संजुत्तु, न्यान अन्मोयह ममल पओ ।
न्यानी हो न्यान सहाओ, भय विनास भवु जु मुनहु ॥ ६ ॥
मसंकह हो रहियो निसंकु, कंष्या रहित सु ममल पओ ।
जोइ पहो जोउ सु इस्टु, अनिस्टह सरनि विमुक्कु परो ॥ ७ ॥
पर परजय हो दिस्टि न देइ, न्यान अन्मोय सु ममल पओ ।
परिनय हो न्यान सहाओ, अवयासह नन्तानन्त पओ ॥ ८ ॥
जोई हो जोउ अनन्तु, दर्सन दिस्टि सुन्यान मओ ।
विंदिओ हो लोय अलोय, नन्तानन्त सु ममल सरो ॥ ९ ॥
दर्सन हो चौविहि उत्तु, चष्यह दर्सउ मल रहिओ ।
कम्मह हो उवन सहाओ, दिस्टि हि विलियो कम्म सुओ ॥ १० ॥
कम्म जुहो तस्कर उत्तु, चेयन दिस्टि गलि गलियो ।
अचष्यह हो दिस्टि अनन्तु, कम्म कलंक विवज्जियो ॥ ११ ॥
कम्म जुहो बन्धु संजुत्तु, घायक कम्म सुजिन भनिओ ।
आवर्नह हो न्यान सहाओ, न्यान अन्मोयह गलि गयओ ॥ १२ ॥

ममलपाहुड ॥१६७॥

अवहिहि हो दिस्टि सहाओ, गुरु गुतिह रुत्तियो न्यान समो ।
अन्यानह हो अन्मोय संजुत्तु, परजय रत्तउ सरनि परो ॥ १३ ॥
विरोह हो चेयन दिस्टि, अन्मोय मंजोए न दिस्टि यऊ ।
कम्मह हो कम्म सहाओ, न्याम अन्मोयह विलय गओ ॥ १४ ॥
त्रिविधि हो कम्म उपत्ति, न्यान अन्मोयह अर्थ परा ।
अर्थह हो ति अर्थ संजोओ, न्यान अन्मोयह पिपि गयओ ॥ १५ ॥
वैरागह हो, उवनउ भाओ, संसारह सरनि विमुक्त परा ।
सरीरह हो सरड सहाओ, न्यान दिस्टि विलयन्तु परा ॥ १६ ॥
भोगह हो भोउ उवभोओ, कलंकृत कम्म जु ऊपजे ।
कम्मह हो कम्म सहाओ, न्यान अन्मोयह गलि गयओ ॥ १७ ॥
अवहि हो देसा उत्तु, न्यान अन्मोयह परिनवे ।
न्यानी हो न्यान-अन्मोय, पर्म अवहि सो ममल मुनी ॥ १८ ॥
मन पर्जय हो अंकुर उत्तु, रिजुमति विपुल उवन्न सुई ।
वैरागह हो तिविह संजुत्तु, ग्रन्थ मुक्तु निर्ग्रन्थ मुनी ॥ १९ ॥
छदमस्तह हो घाय विमुक्तु, केवल सहियो सो मुनहु ।
ध्यानह हो ध्यान निमित्तु, न्यानी न्यान अन्मोय मओ ॥ २० ॥
केवल हो दिस्टि सुदिस्टि, न्यान अन्मोय सु ममल पओ ।
तारन् हो तरन समर्थ, ममल न्यान सुमुक्ति गओ ॥ २१ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(उव उवनउ हो न्यान सहावं विंद संजोए विंद पओ) अब ज्ञान स्वभावी आत्माका प्रकाश हुआ है, जो आत्मज्ञान सहित है व स्वानुभव स्वरूप है (लोयह हो लोय प्रमानु नन्तानन्त विन्यान पओ) उस ज्ञान स्वभावमें लोकालोक प्रमाण अनन्तानन्त ज्ञानमई पदको देखो । अनन्त ज्ञानधारा आत्माका दर्शन करो ॥१॥ (अर्थह हो तिअर्थ सजुत्तु अर्थति अर्थह पुरिउयो) यह आत्मा तीन स्वभाव सहित है, रत्नत्रय सहित है, यह आत्म पदार्थ आत्मा आदि नौ पदार्थोंके निश्चयसे परिपूर्ण है (मइ सुइ हो अवहि सहाओ) तत्वज्ञानी साधुकी आत्मा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान तथा अवधिज्ञान सहित है (पच न्यान पद विंद मओ) सो पांचों ज्ञान पदको रखनेवाले एक केवलज्ञानमई पदको अनुभव कर रहा है ॥ २ ॥

(न्यानी हो न्यान सजुत्तु) यह ज्ञानी महात्मा तत्वज्ञानसे पूर्ण हैं (दर्सन दिस्टिः दिस्टियो) इन्होंने आत्मदर्शनकी दृष्टिका दर्शन कर लिया है । यह आत्मानुभवी हैं (दर्सन हो ⁻सिउ लोश) इनका आत्मदर्शन लोकालोकको देखनेवाला है । अर्थात् अनन्तदर्शन स्वरूप आत्माका अनुभव यह कर रहे है (सम्यक्त दर्सिन समय मओ) यह ज्ञानी सम्यग्दर्शन सहित स्वसमयरूप है। अर्थात् अपने आत्मामें रमण कर रहे है (अनन्तह हो दर्सन दिस्टि) उस आत्मामें अनन्तदर्शन दीख रहा है (लोयालोय सु ॰य न मओ, यह आत्मा लोक अलोकको जाननेवाला है (अर्थह हो तिअर्थ संजुत्त) यह आत्मा रत्नत्रयसे पूर्ण पदार्थ है (पच दिसि परमेस्टि मओ) यही पांच पदका प्रकाशक परमेष्टी स्वरूप है । अर्थात् यही आत्मा साधु है, यही आचार्य है, यही उपाध्याय है, यही अर्हत है, यही सिद्ध है । इन पांचों पदोंके प्रकाशकी शक्ति इस आत्मामें है ॥ ४ ॥

(दर्सिओहो ममल सहाओ) तत्वज्ञानी साधु महात्माने शुद्ध स्वभावधारी आत्माका दर्शन या अनुभव किया है (न्यान विन्यान सु दिस्टि मओ) वह आत्मा ज्ञान विज्ञान व सम्यग्दर्शनसे पूर्ण हैं (अप्पा हो अप्प सहाओ) यह आत्मा अपने आत्मीक स्वभावमें है (सहजनंद चेयन सहिओ) इसमें स्वाभाविक आनन्द है व यह शुद्ध ज्ञान चेतना सहित है । इसका स्वभाव शुद्ध ज्ञान भावके अनुभव करनेका है ॥ ५ ॥

(वीरह हो पयोग संजुत्त) यह साधु महात्मा बड़े वीर हैं, यह शुद्ध उपयोगके धारी हैं (न्यान अ मो ह ममल पओ) यह ज्ञानमें आनन्दित होरहे हैं, शुद्ध पदमें विराजित हैं (न्य नी हो न्यान सहाओ) यह आत्मज्ञानी हैं, ज्ञान स्वभावमें रत हैं (भय विनास भवुजु मुनहु) इसी स्वात्मानुभवसे संसारका भय नाश होजाता है । हे भव्यजीव ! तुम भी इसी शुद्धात्माका अनुभव करो ॥ ६ ॥

ममलपाहुड
॥१६९॥

(ससंकह हो रहियो निसंक) हे शङ्का सहित प्राणी ! तू शङ्का छोड दे। आत्माके शुद्ध स्वभावका निश्चय कर (इच्छा रहित सु ममल पओ) और किसी बातकी इच्छा न करके, सर्व विषयोंकी वाञ्छा छोड़कर उस शुद्ध पदका मनन कर (जोइ पहो जोउ सु इष्टु) हे योगी ! तू उस परम इष्ट परम प्यारे आत्माकी तरफ लौ लगा (अनिस्टह सरनि विमुक्कु परो) और आत्माके लिये अनिष्ट-त्यागनेयोग्य ऐसे संसारके मार्गसे वैराग्यवान हो। अर्थात् संसार असार है, दुःखमय है, जन्ममरण सहित है, वास योग्य नहीं है, ऐसी वैराग्य भावना भा ॥ ७ ॥

(पर परजय हो दिस्टि न देइ) हे योगी ! तू निज आत्माकी शुद्ध परिणतिको छोडकर और किसी पर परिणतिमें या पुद्गलकृत-कर्मकृत पर्यायमें अपनी दृष्टि न दे। केवल एक शुद्धात्मा हीकी तरफ देख (न्यान अन्मोय सु ममल पओ) वहीं ज्ञान है, वहीं आनन्द है, वही वीतराग पद है (परिनय हो न्यान सह ओ) हे योगी ! तू इस ज्ञान स्वभावमें परिणमन कर (अवयासह नतानंत पओ) इस ज्ञान पदमें अनन्तानन्त पदार्थोंको जाननेकी शक्ति है ॥ ८ ॥

(जोई हो जोउ अनंतु दर्सन दिस्टि सु न्यान मओ) हे योगी ! अनन्तदर्शनकी दृष्टि रखनेवाले, सम्यग्ज्ञानमई आत्माकी ओर लौ लगा। उसीके आश्रय योगाभ्यास कर (विंदिओ हो लोगालोय नंतानंत सु ममल सओ) और उसीका अनुभव कर, जो लोकालोकके अनन्तानन्त पदार्थोंको जाननेवाला शुद्ध स्वरूपका धारी है ॥९॥

(दर्सन हो चौविहि उत्तु) दर्शनोपयोग चार प्रकार कहा गया है-चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन (चष्यह दर्सउ मल रहिओ) उनमें चक्षुदर्शन मल रहित है। यहां निश्चयनय प्रधान कथन है। अपनी दृष्टिको सर्व पर पदार्थोंसे हटाकर अंतरंग आत्माको देखना यही चक्षुदर्शन है। इसमें कोई रागादि मल नहीं है (कम्मह हो उवन सहाओ) कर्मोंका स्वभाव उदयरूप है। बन्ध प्राप्त कर्म अपनी स्थिति पूर्ण होनेपर उदय आते हैं (दिस्टि हि विलियो कम्म सुओ) सम्यग्दर्शनके प्रभावसे अर्थात् आत्मदर्शनके महात्म्यसे वे कर्म स्वयं झड़ जाते हैं। ज्ञानी कर्मोंके उदयसे प्राप्त सुख या दुःखमें रंजायमान नहीं होता है। ज्ञाता दृष्टा होकर देखता जानता मात्र है अतएव वे कर्म झड़ जाते हैं। वैराग्यभावनाके बलसे तब नवीन आस्रव व बंध नहीं होता है ॥ १० ॥

(कम्म जुहो तस्कर उत्तु) कर्मोंको चोर या डाकूके समान कहा गया है (चेयन विस्टि गलि गलियो) यह कर्म

उदयमें आकर रागद्वेष पैदा करके आत्माको मोक्षमार्गसे हटानेवाले हैं। ज्ञान दर्शन चारित्र सम्यक्त सुख आदि धनको लूटनेवाले हैं। इन कर्मरूपी चोरोंको आत्मज्ञानकी दृष्टि भगा देती है। आत्मानुभवके सामने इनका साहस नहीं होता है कि ये आक्रमण कर सकें–ये भाग जाते हैं (अचष्यइ हो दिस्टि अनन्तु) निश्चय अचक्षु दर्शन वह है जहां मनको रोककर अनन्तदर्शन धारी आत्माको देखा जावे (कम्म कलंक विवज्जियो) जो आत्मा अपने स्वभावकी अपेक्षा निश्चयसे कर्मकलंकसे रहित है ॥ ११ ॥

(कम्म जुत्तो बन्धु संजुत्तु) बन्धमें प्राप्त जो कर्म हैं (घायक कम्म सुजिन भनिओ) उनमेंसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय व मोहनीय इन चार कर्मोंको श्री जिनेन्द्रने घातीय कर्म कहा है। क्योंकि ये आत्माके ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सम्यक्त और चारित्र गुणको घात करते हैं, रोकते हैं (आवर्नह हो न्यान सहाओ) ज्ञान स्वभावको ढकनेवाला जो ज्ञानावरण कर्म है (न्यान अन्मोयह गलि गयओ) वह कर्म आत्मज्ञानमें आनन्दित होनेसे गलता जाता है ॥ १२ ॥

(अवहिहि हो दिस्टि सहाओ) अवधिदर्शन भी आत्माके दर्शन स्वभावको रखनेवाला है। सम्यग्दृष्टीको ही अवधिदर्शन होता है। यहां निश्चय प्रधान कथन है। सम्यग्दृष्टी अपने आत्माकी ओर लौ लगाता है। उसकी अवधि या देखनेकी मर्यादा आत्माकी है और तरफ वह दृष्टिपात नहीं करता (गुरु गुत्तिहि रुचियो न्यान समै) गुरु महाराजने जिस गुप्त रुचिको ज्ञानमई आत्माकी रुचि कहा है उस यथार्थ निश्चय आत्मरुचिमें या निश्चय सम्यक्तमें वह तन्मय है (अन्यानह हो अन्मोह सजुत्त) जो मिथ्या ज्ञानमें आनन्द मानता है, हिंसानन्द, मृषानन्द, चौर्यानन्द, परिग्रहानन्द रौद्रध्यानमें मगन रहता है (परजय रचउ सरनि परो) वह शरीरमें रति करानेवाला भव भवमें भ्रमण करानेवाला है। ज्ञानी इस अज्ञानके आनन्दको त्याग करदेते हैं ॥१३॥

(विरोह हो चेयन दिस्टि) ज्ञान चेतनाके अनुभवसे विरोध रूप जो कर्म या कर्मफल चेतनाका अनुभव है (अन्मोय सजोए न दिस्टि यऊ) सो ज्ञानानन्दकी मगनतामें नहीं दिखलाई पड़ता है। तत्वज्ञानी महात्मा संसारसे वैरागी होते हैं। अतएव न तो वे रागद्वेष पूर्वक कर्म करनेमें मगनता मानते हैं न सुख दुःख रूप कर्मके फलमें रत होते हैं, उनकी आसक्ति एक ज्ञानचेतना हीमें होती है (कम्मह हो कम्म सहाओ) कर्मोंका स्वभाव तो कर्मरूपमें उलझाना है (न्यान अन्मोयह विलय गओ) वे कर्म ज्ञानानन्दके प्रतापसे क्षय होजाते हैं ॥१४॥

(त्रिविधि हो कम्म उप्पत्ति) तीन प्रकार कर्मोंका उदय है। द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादिका उदय, उनमेंसे

घातीय कर्मोंके उदयसे रागादि भाव कर्मोका उदय तथा अघातीय कर्मोंके उदयसे शरीरादि नोकर्मोंका उदय (न्यान अन्मोयह अर्थ परा) तब आत्माका ज्ञानानन्दमय आत्मीक पदार्थमें ही लवलीन रहता है (अर्थ हो तिअर्थ संजोओ) वह आत्मा पदार्थ रत्नत्रय सहित है (न्यान अन्मोयह षिपि गयओ) ऐसे ज्ञानानन्दमें तन्मय होनेसे वे तीनों ही प्रकारके कर्म क्षय होजाते हे ॥ १५ ॥

(वैरागह हो उवनउ भाओ) हे भाई ! वैराग्यको उत्पन्न करके उसीकी भावना करो। संसार शरीर भोगोंसे वैराग्यका चिंतवन करो (संसारह सरनि विमुक्क परा) जिससे संसारके भ्रमणसे छूटनेका भाव दृढ हो जावे, संसार वाससे उदासीनता होजावे (सरीःह हो सरविई सहाओ) यह शरीर चलन स्वभाव है। क्षण क्षणमें बदलता है या आयुकर्मके क्षयसे नाश होरहा है, एक दिन अवश्य छूट जायगा (न्यान दिस्टि विलयत परा) आत्मज्ञानके अनुभवसे जब यह शरीर भी नाश होजायगा तब आत्मा फिर कभी शरीर न धारण करके सदा पवित्र रहेगा ॥ १३ ॥

(भोगह हो भोउ उपभोओ) भोग दो प्रकारके होते हैं। (१) भोग–जो एक दफे भोगे जासकें। जैसे भोजनपान माला चन्दनादि, उपभोग–जो वारम्वार भोगे जासकें, जैसे वस्त्र आभूषण मकानादि (कललकृत कम्म जु काजे) शरीर द्वारा भोग व उपभोग करनेसे कर्मोंका बन्ध होता है (कम्मह कम्म सहाओ) उन बांधे हुए कर्मोंके उदयके कारण (न्यान अन्मोयह गलि गयओ) ज्ञानानन्द स्वभाव छिप गया है। अथवा भोगोपभोग करनेसे जो कर्म बन्धते हैं उन कर्मोंकी निर्जरा ज्ञानानन्दमें रमण करनेसे होजाती है ॥१७॥

(अवहि हो देसा उत्तु) देश अवधिज्ञान सम्यग्दृष्टीके पैदा होना कहा गया है (न्यान अन्मोयह परिनवै) ऐसा अवधिज्ञानी सम्यग्दृष्टी ज्ञानानन्द स्वभावमें परिणमन करता है, ज्ञानानन्दका स्वाद लेता है (न्यानी हो न्यान अन्मोय) ऐसा अवधिज्ञानी आत्मज्ञानकी अनुमोदना करता रहता है (पर्म अवहि सो ममल मुनी) उसीके प्रभावसे शुद्ध वीतराग मुनिको परम अवधिज्ञानकी प्राप्ति होजाती है। जो उसी भवसे मुक्तिमें पहुँचा देता है ॥ १८ ॥

(मन पर्जय हो अकुर उत्तु) आत्मज्ञानी व आत्मध्यानी साधुके मनःपर्यय ज्ञानका अंकुर उत्पन्न हो जाता है (रिजुमति विपुल उत्पन्नमई) ऋजुमति तथा तद्भव मोक्षगामीको विपुलमति मनःपर्यय-ज्ञान होजाता है (वैरागह हो तिविहि संजुत) उन साधुको संसार, शरीर, भोगोंसे ऐसा तीन तरहका वैराग्य रहता है (ग्रन्थ

मुक्कु निर्ग्रंथ मुनी) वे अंतरंग मिथ्यात्वादि १४ प्रकार व बाहर क्षेत्र मकानादि १० प्रकारके परिग्रहको त्यागकर निर्ग्रंथ मुनि होते हैं ॥ १९ ॥

(छदमस्तह हो घाय विमुक्कु) जबतक केवलज्ञान न हो तबतक साधुको छद्मस्थ या अल्पज्ञ कहते हैं। छद्मस्थ अवस्थामें श्री मुनिमहाराजने क्षपकश्रेणी आरूढ़ होकर बारहवें गुणस्थानतक चार घातीय कर्मोंको नाश करके (केवल सहियो सो मुनहु) केवलज्ञानको प्राप्त किया। उन अरहंत परमात्माका मनन करो (ध्यानह हो ध्यान निमित्त) ध्यानके अभ्याससे ही ध्यानकी वृद्धि होती है। धर्मध्यानसे उन्नति करके शुक्लध्यान होता है (न्यायी न्यान अन्मोय मओ) उसी शुक्लध्यानीके केवलज्ञानका लाभ होता है। केवलज्ञानी ज्ञानानन्दमई भावमें रत रहते हैं ॥ २० ॥

(केवल हो दिरिट सुदिस्टि) वे केवलज्ञानी केवलदर्शनके द्वारा पदार्थोंको देखते हैं (न्यान अन्मोय सु ममल पओ) श्री अरहंत परमात्माका शुद्ध पद ज्ञानानंदमई है (तारन हो तरन समर्थु) वे श्री अरहंत भगवान भव्य जीवोंको तार करके आप स्वयं तरनेको समर्थ हैं (ममल न्यान सु मुक्ति गओ) उस निर्मल केवलज्ञानको पाकर श्री अरहंत परमात्मा शेष कर्मोंको भी नाशकर मोक्ष पहुंच जाते हैं ॥ २१ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें स्वामीने भव्य जीवोंको प्रेरणा की है कि वे ज्ञान स्वभावी शुद्धात्माका अनुभव करे। यह स्वानुभव रत्नत्रय स्वरूप है, सहजानन्दमई है, आत्माके भीतर अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, क्षायिक सम्यग्दर्शन, अनंतवीर्य भरा हुआ है। इसी आत्मामें अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु पांचों पदोंके प्रकाशकी शक्ति है। भव्य जीवोंको उचित है कि वे आत्माके शुद्ध स्वभावमें किसी तरहकी शङ्का न रखके निःशङ्क भाव रखके शुद्धात्माका ध्यान करे। इसी आत्मध्यानसे सं रके मार्गका नाश होजाता है, कर्मोंका क्षय होजाता है। यहां चक्षुदर्शन व अचक्षुदर्शनको निश्चयनयसे घटाकर कहा है कि अन्तरंग ज्ञानचक्षु द्वारा आत्माको देखना ही चक्षुदर्शन है। मन द्वारा आत्माका मनन करके ही आत्माका अनुभव करना अचक्षुदर्शन है। आत्माके भीतर रमण करके आत्मासे बाहर नहीं जाना सो अवधिदर्शन है। इन्हीं तीन दर्शनोके द्वारा अनुभव करते२ परम साधु उन्नति करके मनःपर्यय ज्ञानको प्राप्त कर लेते हैं। विपुल मनःपर्यय ज्ञान व परम अवधि व सर्वावधि ज्ञान जिस साधुको प्राप्त होजाता है वह उसी भवसे मोक्ष प्राप्त कर लेता है। स्वात्मानुभव हीके अभ्याससे चार घातीय कर्म क्षय होजाते

ममलपाहुड
॥१७३॥

हैं। अर्हंतपद प्रगट होजाता है तब केवलज्ञान दर्शनका प्रकाश होजाता है। अरहन्त ही फिर सिद्ध हो जाते हैं। भव्यजीवोंको उचित है कि संसार शरीर भोगोंसे वैराग्यभाव धारण करें।

संसारको अनित्य, दुःखोंका घर व असार विचारे, शरीरको अपवित्र व नाशवंत सोचे व इन्द्रिय-भोगोंको क्षणभंगुर व अतृप्तिकारी जानें। संसारकी सर्व पर्यायें त्यागने योग्य हैं। केवल एक शुद्ध आत्माकी परिणति ही ग्रहण करनेयोग्य है। ऐसा वैराग्य जिसको होगा वही मोक्ष-प्राप्ति करनेका प्रेमी होगा। संसारके भ्रमणका कारण कर्म है। कर्मोंके ही उदयसे रागद्वेषादि भाव होते हैं व कर्मोंके ही उदयसे शरीरादि प्राप्त होते हैं। जब सर्व कर्म क्षय होजाते हैं तब भावकर्म, नोकर्म व द्रव्यकर्म तीनोंसे रहित आत्मा शुद्ध सिद्ध परमात्मा होजाता है। भव्य जीवोंको उचित है कि अपने ही आत्माको परमात्मारूप अरहंत व सिद्धरूप अनुभव करें। शुद्धात्माका अनुभव ही आत्माकी शुद्धिका कारण है।

---

(२१) जकडी गाथा ४०० से ४१७ तक।

ऐ जिन उत्तु भवियन हो, न्यान विन्यान सहाउ।
जिहि सहाइ भय विनसै, अभय मुक्ति सभाउ ॥ १ ॥
ऐ यहु अभय मुक्ति सभाउ स उत्तु, कम्म मुक्कु जिन देउ।
जोतिय लोयह अर्थति अर्थह, समय मुक्ति संजुत्तु ॥ २ ॥ (आचरी)
ऐ जिन जिनवर उत्तो, जं जिनियो कम्मु अनंतु।
ऐ अन्यान जु सहिओ, सो न्यान दिस्टि विलयन्तु ॥ ३ ॥ ऐ यहु अभय०
ऐ जिन उत्तो भविय हो, ममलह ममल सहाउ।
ऐ यहु न्यान दिस्टि सो उपजिऊ, सुद्धह सुद्ध सहाउ ॥ ४ ॥ ऐ यहु०

ऐ जह जह कम्म जु ऊपजै, समल दिस्टि समाउ ।
ऐ तह तह कम्म जु विलयो, ममलह ममल सहाउ ॥ ५ ॥ ऐ।यहु०
ऐ यहु आदि जु उपजिओ, भय विनास हे भव्वु ।
ऐ यहु न्यान सहावे, सहियो नन्तानन्तु ॥ ६ ॥ ऐ०
ऐ यहु ममल सहावह, अनादि कम्म विलयन्तु ।
ऐ यहु समय संजुतु, कम्म मुक्कु जिन उत्तु ॥ ७ ॥ ऐ०
ऐ यहु उत्तउ जिनु हे, जं जिनियो कम्मु अनन्तु ।
ऐ यहु लोयालोय विसुद्धो, न्यान दिस्टि सम उत्तु ॥ ८ ॥ ऐ०
ऐ यहु अप्प सहावह, पर पर्जय विलयंतु ।
ऐ यहु ममल सरूवह, मुक्ति पंथ दरसंतु ॥ ९ ॥ ऐ०
ऐ यहु सिद्ध सरूवे पिच्छै, अर्थति अर्थह भेउ ।
ऐ यहु न्यान सहावह, उवनो दाता देउ ॥ १० ॥ ऐ०
ऐ यहु पंच दिसि परमिस्टि हि, परम भाव उवलद्धु ।
ऐ यहु समय संजुत्तु, समय सरनि जिन उत्तु ॥ ११ ॥ ऐ०
ऐ यहु चष्य अचष्यह, ममल भाव दर्संतु ।
ऐ यहु समलु न पिच्छै, अन्यानह विलयंतु ॥ १२ ॥ ऐ०
ऐ यहु न्यान जु सहियो, सिद्ध सरूव स उत्तु ।
ऐ यहु अवहि विन्यानी, तिविहि कम्म विलयंतु ॥ १३ ॥ ऐ०

ऐ यह विमल जु केवल, पद विंदह संजुत्तु ।
ऐ यहु उवनु जु दाता, देव सहाउ संजुत्तु ॥ १४ ॥ ऐ०
जह जह कम्म जु उपजे, समल सहाउ संजुत्तु ।
ऐ यहु तह तह विलयो, सुद्ध सहाव संजुत्तु ॥ १५ ॥ ऐ०
ऐ यहु कम्मु अनन्तु जु, अन्यानह संजुत्तु ।
ऐ यहु न्यान अन्मोयह, कम्म उपत्ति विलयन्तु ॥ १६ ॥ ऐ०
ऐ यहु कम्म जु ऊपजे, नन्तानन्त भवन्तु ।
ऐ यहु न्यान सहावह, अनादि कम्म विलयन्तु ॥ १७ ॥ ऐ०
ऐ यहु अन्यान जु सहियो, अन्मोय विरोह संजुत्तु ।
ऐ यहु अन्तर्मुहुर्त, अन्मोय न्यान विलयन्तु ॥ १८ ॥ ऐ०
ऐ यहु ममल सहावह, कम्म उवन विलयन्तु ।
ऐ यह भय विनास है, ममल सिद्धि संपत्तु ॥ १९ ॥ ऐ०

अन्वय सहित अर्थ–[नोट–इस जकड़ीमें दो पुरानी पुस्तकोंमें गाथा ४१७ तक है । कुल गाथाएं १८ आती हैं । परन्तु पाठमें १९ ठीक जचती है । इसलिये न० ४१७ कायम रखके गाथाए १९ देदी है] (ऐ जिन उत्तु भवियन हो) हे भव्य जीवो ! श्री जिनेन्द्र भगवानने कहा है (न्यान विन्यान सहाउ) कि भेद विज्ञानका स्वभाव ऐसा है अर्थात् आत्माको सर्व पर पदार्थ, पर गुण, पर पर्यायसे भिन्न शुद्ध ज्ञानानन्दमय अनुभव करना ऐसा मार्ग है (जिहि सहाइ भय विनसै) जिसकी सहायतासे सर्व संसारका भय नाश होजाता है (अभय मुक्ति सभाउ) वही निर्भय मुक्तिके स्वभावको झलकानेवाला है या जिसके अनुभवसे अभय मुक्तिका लाभ होता है । भावार्थ— भेदविज्ञानके द्वारा शुद्धात्मानुभव ही मोक्षका मार्ग है ॥ १ ॥

(ऐयह अमय मुक्ति सहाउ स उत्तु) उसी स्वानुभवको भयरहित मोक्षका स्वभाव कहा गया है। अर्थात् मोक्ष भी स्वानुभव रूप है व मोक्षमार्ग भी स्वानुभव रूप है (कम्मु मुक्कु जिनदेउ) इसी स्वानुभवसे कर्मोंसे मुक्त होकर जिनदेव (अरहन्त व सिद्ध) होजाता है (जो तिन लोयह अर्थति अर्थह) यह जिनपद तीनलोकके सर्व पदार्थोंमें मुख्य पदार्थ है (समय मुक्ति सजुत्तु) यही आत्मा मुक्ति सहित है ॥ २ ॥

(ऐ जिन जिनवर) हे भाई ! श्री जिनेन्द्र भगवानने (ज जिनियो कम्म अनन्तु उत्तो) जिन्होंने अनन्त कर्मोंको जीत लिया है, जो कर्म विजयी वीर हैं ऐसा कहा है ए अन्यान जु महिओ) कि अज्ञान सहित भाव है (सो न्यान दिस्टि विग्यतु) सो सम्यग्ज्ञानकी दृष्टिसे विला जाता है। अर्थात् जब सम्यग्दर्शन स्वरूप आत्माकी सच्ची प्रतीति होजाती है व उसी समय ज्ञान सम्यग्ज्ञान होजाता है तब अज्ञानका अन्धेरा विला जाता है ॥ ३ ॥

(ऐ जिन उत्तो भविय हो) हे भव्यजीवो ! श्री जिनेन्द्रने कहा है (ममलह नमल सहाउ) कि जो आत्माका स्वभाव परम निर्मल हो, शुद्ध हो, रागद्वेष रहित हो (ऐ यहु न्यान दिस्ट सो उपजिऊ) वही सम्यग्ज्ञानकी दृष्टिका प्रकाश होना है (सुद्धह सुद्ध सहाउ) वही परम शुद्ध स्वभाव है। भावार्थ–परम शुद्ध आत्माका श्रद्धान, ज्ञान व अनुभव यही निश्चय रत्नत्रय स्वरूप मोक्षमार्ग श्री जिनेन्द्रोंने कहा है ॥ ४ ॥

(ऐ जह जह कम्म जु ऊवजे ममल दिस्टि मभाउ) हे भाई ! मलीन दृष्टि या मिथ्यादृष्टिमय स्वभावसे या रागद्वेष मोहसे जैसे २ कर्मोंका बन्ध होता था (ऐ तह तह कम्म जु वग्या ममलह ममल सहाउ) वैसे २ वे सब कर्म परम शुद्ध आत्माके स्वभावके अनुभवसे दूर होजाते हैं। भावार्थ–मिथ्यादर्शनकी मलीनतासे बांधे-हुए कर्म सम्यग्दर्शन सहित शुद्धात्माके अनुभवसे क्षय होजाते हैं ॥ ५ ॥

(ए यह अदि जु उपजिओ) हे भाई ! अनादि मिथ्यादृष्टी जीवको जब पहले पहल उपशम सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है (भय विनास हे भव्वु) हे भव्य जीव ! उसीके प्रगट होनेसे सर्व संसारका भय नाश होजाता है यह नियम है। जिसको सम्यक्त होजायगा वह अवश्य निर्वाण प्राप्त करेगा। ए यहु न्यान सहावे सहियो नतानतु) यह सम्यक्तभाव अनन्त ज्ञान सहित आत्माका अनुभव कर लेता है ॥ ६ ॥

(ए यहु ममल महावह) हे भाई ! इसी शुद्ध स्वभावके अनुभवसे अनादि कम्म विलयतु) अनादिकालसे प्रवाहरूप आए हुए मिथ्यात्व व अनन्तानुवन्धी कषाय सम्बन्धी कर्म दूर होजाते हैं (ऐ यहु समय सजत्त कम्म

पुक्कु जिन उत्तु) उस सम्यग्दृष्टीको आत्माका अनुभव करनेवाला कहा गया है, उसे ही कर्मरहित जिन कहा गया है अर्थात् सम्यक्ती सम्यक्तके बाधक कर्मोंको जीत लेता है इसलिये वह जिन कहा जाता है ॥ ७ ॥

(ए यहु उत्तउ जिनहे) हे भाई ! सम्यग्दृष्टीको जिन इसलिये कहा गया है (जं जिनियो कम्म अनतु) क्योंकि उसने आत्माके घातक व सम्यक्तके विरोधक अनन्तानुबन्धी कषायके व मिथ्यात्वके कर्मोंको जीत लिया है (ऐ यहु लोयालोय विसुद्ध न्य न निस्टि मम उत्तु) उसके भीतर लोकालोकको जाननेवाले शुद्ध ज्ञानकी ओर दृष्टी होगई है, वही समभाव कहा गया है। सम्यक्ती, आत्माको अनन्त ज्ञानमय व वीतराग-मय व समताभावमय अनुभव करता है ॥ ८ ॥

(ऐ यहु अप्प सहावह) हे भाई! सम्यक्ती, आत्माके स्वभावको अनुभव करता है (पर परजय विलयतु) जिसमें कर्मकृत परिणतिका अभाव है अथवा शुद्धात्माके अनुभवसे पर परिणति–राग द्वेषमय परिणति विला जाती है (ऐ यहु ममल वह मुक्तिपन्थ दरसतु यही सम्यक्ती निर्मल स्वभावमयी या शुद्धोपयोगमय मोक्षके मार्गको अनुभव करता है ॥ ९ ॥

(ऐ यह सिद्ध सरूवे पिच्छै) सम्यग्दृष्टी सिद्ध परमात्माके स्वरूपको देखता है (अर्थति अर्थह भेउ) पदार्थोंके भेदोंको निश्चयसे जानता है अथवा रत्नत्रयके भेदको जानता है, व्यवहार तथा निश्चय रत्नत्रयके साधनमें तत्पर है (ऐ यहु न्यान सहावउ वह ज्ञानस्वभावी आत्माका अनुभव करता है (उवनो दाता देव) वही अपनेको आत्मीक रसका दान करता है इससे दातार है वही निश्चयसे परमात्मा देव है ॥ १० ॥

(ऐ यहु पंच दिप्ति प मेस्टि) उसीके भीतर पांचो परमेष्ठी पदोंका प्रकाश होता है। वही उन्नति करते करते साधु, उपाध्याय, आचार्य, अरहंत तथा सिद्ध होजाता है (परम भाउ उवनउ) वह श्रेष्ठ भावको या शुद्धोपयोगको प्राप्त कर लेता है (ऐ यहु समय सजुत्तु) वही आत्मतत्वको अनुभव करता है (समय सगनि जिन उत्तु) उसीको आत्माके मार्गमें चलनेवाला जिन या जितेन्द्रिय या वीतराग कहा गया है ॥ ११ ॥

(ऐ यहु चष्य अचष्यह ममल भाव दर्सतु) वही निश्चयनयसे आत्मीक चक्षु द्वारा या मनके आलम्बनसे अचक्षु द्वारा शुद्ध भावको देखता है (ऐ यहु समल न पिच्छै) वह अशुद्ध आत्माका अनुभव नहीं करता है (अन्यानहं विलयतु) उसका मिथ्याज्ञान दूर होगया है ॥ १२ ॥

(ऐ यहु न्यान जु सहियो सिद्ध सरूप स उत्तु) वही तत्वज्ञान सहित है, वह मानो सिद्धस्वरूप रूप है,

सिद्ध भावमें तन्मय होगया है ऐसा कहा गया है (ऐ यहु अवहि विन्यानी) वही अवधिज्ञानी होजाता है या उसका ज्ञान ज्ञानके यथार्थ स्वरूपको अनुभवता है (तिविह कम्म विग्यतु) उसी आत्मानुभवीके तीनों ही प्रकारके कर्म, द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म क्षय होजाते हैं ॥ १३ ॥

(ऐ यहु विमल जो केवल पद विंदह सजुत्तु) वही शुद्ध वीतराग केवलज्ञानीके पदको अनुभव करता है (ऐ यहु उवनु जु दाता) वही अपनेको स्वात्मानन्द देनेवाला दातार होजाता है (देव सहाउ सजुत्तु) उसीमें परमात्मदेवका स्वभाव झलक जाता है ॥ १४ ॥

(जह जह कम्म जु ऊपजे समल सहाउ सजुत्तु) अशुद्ध स्वभावके कारण जैसे जैसे कर्मोंका बंध होता था (ऐ यहु तह तह विल्यो सुद्ध सहाव संजुत्तु) शुद्ध स्वभावके अनुभवसे वैसे वैसे उन कर्मोंका क्षय होता जाता है। रागद्वेष मोह वन्ध करते है, जबकि वीतराग विज्ञानमय भाव वन्धको छोड़ देते हैं ॥ १५ ॥

(ऐ यहु कम्म अनन्त जु अन्यानह सजुत्तु) मिथ्याज्ञान या अज्ञानके कारण अनन्तकर्मवर्गणाओंका वन्ध होता है (ऐ यहु न्यान अन्मोयह कम्म उवति विलयतु) ज्ञानानन्द भावमें रमनेसे कर्मोंका वंध रुक जाता है॥१६॥

(ऐ यहु कम्म जु ऊपजे नन्तानन्त भवतु) हे भाई ! अनंतानंत भवोंमें जिन कर्मोंका बंध किया था (ऐ यहु न्यान सहावह अनादि कम्म विलयतु) उन सब प्रवाह अपेक्षा अनादिकालके कर्मोंको आत्मज्ञानके स्वभावमें लय होनेसे दूर कर दिया जाता है ॥ १७ ॥

(ऐ यहु अन्यान सहियो) अज्ञान सहित होनेपर (अन्मोह विरोह सजुत्तु) अनन्त आनन्दका लाभ नहीं होता है (ऐ यहु अतर्मुहूर्त अन्मोय न्यान विल्यतु) एक अन्तर्मुहूर्त भी ज्ञानानन्दमें एकत्वभावसे लय होनेसे अर्थात् एकत्ववितर्क अवीचार शुक्लध्यानके प्रभावसे सर्व अज्ञान नाश होकर केवलज्ञान पैदा होजाता है ॥ १८ (अ) ॥

(ऐ यहु ममल सहावे कम्म उवन विलयतु) इस शुद्ध स्वभावके भीतर रमनेसे अयोग गुणस्थानमें योगोंके अभावमें कर्मोंका आश्रव बन्द होजाता है (ऐ यहु भय विनास है) तब सर्व संसारभ्रमणका भय जाता रहता है (ममल सिद्धि सपत्तु) तब सर्व कर्मसे शुद्ध होकर सिद्धगतिकी प्राप्ति होजाती है ॥ १८ (आ) ॥

भावार्थ—इस जकड़ीमें सम्यग्दर्शनका महात्म्य वर्णन किया गया है। जीवादि सात तत्वोंका ज्ञाता भेदविज्ञानके द्वारा जब अपने आत्माको सर्व पर पदार्थोंसे भिन्न, रागादि भावोंसे जुदा, आठ कर्म रहित

व सर्व प्रकारके शरीर रहित शुद्ध वीतराग द्रव्यस्वरूप मनन करता है–तब इस शुद्धात्माके मननके प्रतापसे अनन्तानुबन्धी चार कषाय और मिथ्यात कर्मके अनन्त कर्म पुद्गल उपशम होजाते हैं, तब अनादि मिथ्यादृष्टी जीवको प्रथम उपशम सम्यक्तका लाभ होजाता है। सम्यक्तके होते ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान होजाता है व स्वरूपाचरण चारित्रका प्रकाश होजाता है अर्थात् रत्नत्रय स्वरूप मोक्षमार्ग प्रगट होजाता है। वह नियमसे मोक्षका पात्र होजाता है। उसके भीतर स्वात्मानुभवकी शक्ति प्रगट होजाती है।

इस स्वात्मानुभवमें वह सिद्धपदको अनुभव करता है। मुक्तिके शुद्ध पदका ध्यान करनेसे जैसे२ भाव शुद्ध होते हैं वैसे वैसे कर्मोंके आवरण दूर होजाते हैं, वह वेदक सम्यक्ती होकर फिर क्षायिक सम्यक्ती होजाता है। कषायोंके उपशमसे श्रावक फिर साधु होजाता है। साधुपदमें स्वानुभवका विशेष अभ्यास करता है तब क्षपकश्रेणी चढकर पहले मोहनीयकर्मको फिर बारहवे गुणस्थानमें शेष तीन घातीय कर्मोंको एक अंतर्मुहूर्तमें क्षय करके अरहंत परमात्मा होजाता है। फिर वही शेष चार अघातीय कर्मोंको भी क्षय करके सिद्ध परमात्मा होजाता है। तब आत्मा द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादि, भावकर्म रागद्वेषादि, नोकर्म शरीरादिसे भिन्न होजाता है, अनंतकालके लिये परमात्मा होजाता है। इसलिये हे भव्य जीवो ! पुरुषार्थ करके आत्माकी प्रतीति रूप सम्यग्दर्शनका प्रकाश करो। निरतर तत्वोंका मनन करके मिथ्या ज्ञानको दूर करो। सम्यग्दर्शनके समान कोई भी उपकारी नहीं है।

(२२) कमल विसेष गाथा ४१८ से ४४५ तक।

कमल सुभावं सहियो, अष्यर सुर विंजनस्य पद सहियं।
ममल सहाव संजोयं, भय पिपियं अभय दिस्टि ममलं च॥ १ ॥
कमलं सहज सरूवं, अष्यर रमनं च अषय पद सहियं।
भय षिपनक सुरं च सुरयं, विंजन विन्यान ममल सहकारं॥ २ ॥
कमल संजोय सदिट्ठं, पद दरसं यमं तत्तु पद विन्दं।

सर्वन्यं ममल सहावं, भय षिपिय भव्वु कम्म संषिपनं ॥ ३ ॥
कमलं कमल सहावं, पद अर्थं परम अर्थ संदर्सं ।
अर्थंति अर्थं ममलं, भय षिपिय ति अर्थं दिस्टि ममलं च ॥ ४ ॥
कमलं कमल उपंत्ती, सम अर्थं समय सुद्ध संदिस्टि ।
हित मित परिनै ममलं, ममलं सहकार अर्थं संदर्सं ॥ ५ ॥
कमल सहाव अवयासं, अवयासं अर्थं न्यान अवयासं ।
अवयास नन्त नन्तं, भव षिपिय भव्वु न्यान विन्यानं ॥ ६ ॥
कमलं सहाय रमियं, रमियं समयं च न्यान विन्यानं ।
न्यानं ममल सहावं, न्यान सहावेन संक भय षिपियं ॥ ७ ॥
कमल लंकृत सहियं, न्यान विन्यान सुद्ध सहकारं ।
अन्यान समय विलय, भय षिपियं ममल न्यान सद्भावं ॥ ८ ॥
कमल विन्यान संजुत्तं, कमलं कलियं च अप्प सुद्धप्पा ।
परमप्पं परम पदं, ममल सहावेन कम्म संषिपनं ॥ ९ ॥
कमलं न्यान सहावं, अन्यान सहकार सकल विलयन्तो ।
भय विनास भव अंतं, ममल दिस्टि च सल्य विलयं च ॥ १० ॥
कमल नन्त विसेषं, कमलं षिपिऊन नन्त बन्धानं ।
कमल सहावं सुद्धं, भय षिपियं भव्वु कम्म विरयंति ॥ ११ ॥
कमल अन्मोय सहियं, अन्मोय न्यान कम्म षिपिऊनं ।
षिपिऊ समल विसेषं, ममल सहावेन कम्म गलियं च ॥ १२ ॥

ममलपाहुड
॥१८१॥

कमल संजोयं सुद्धं, उत्त जिन उत्त परम सद्भावं ।
ससंक कंष्य विलयं, भय पिपियं समल कम्म विलयंती ॥ १३ ॥
कमलं सहज सरूवं, सद्धं सहकार न्यान विन्यानं ।
सद्धं वियार संजुत्तं, भय षिपिय समल सद्ध विलयंती ॥ १४ ॥
कमलं न्यान विन्यानं, न्यानं विन्यान सब्द विंदन्ती ।
विंदन्ति वेद वेदं, वेदन्तो मन वयन काय विलयं च ॥ १५ ॥
कमलं कंष्य विमुक्कं, आसा अस्नेह सयल विलयन्ती ।
ममल सहाव सु समयं, भय पिपिनक भव्वु कम्म गलयंती ॥ १६ ॥
कमलं कलंक रहियं, कललंकृत कम्म भाव गलियं च ।
जं पर्जाव विसेषं, ममल सहावेन पर्जाव विलयन्ती ॥ १७ ॥
कमल कल न पिच्छंतो, लाजं लोभं च षिपिय उप्पत्ती ।
कम्म पर्जाव विमुक्कं, भय पिपिनक लोभ लाज विलयंती ॥ १८ ॥
कमलं सरनि न उत्तं, सरीर सहकार भय च भय मुक्कं ।
गारव गयंद गलियं, सीह सहावेन ममल सहकारं ॥ १९ ॥
कमलं सीह सहावं, नन्द आनन्द चेयनानन्दं ।
सरीरं न्यान विन्यानं, आलस पर्जाव सयल विलयन्ती ॥ २० ॥
कमल सरूवं रूवं, सरीरं सरनि न्यान विन्यानं ।
पर्जय प्रपंच विलयं, पर्जय भय षिपिय न्यान दिस्टं च ॥ २१ ॥
कमलं क्रान्ति सहावं, विभ्रम पर्जाव सयल गलियं च ।

ममलपाहुड
॥१८२॥

ममलं ममल स उत्तं, भय षिपनक भव्वु विभ्रमं गलियं ॥ २२ ॥
कमलं षिपनति जिनियं, जनरंजन राग सयल विलयन्ती ।
कललंकृत दोष गलियं, ममल सहावेन भव्वु भय षिपनं ॥ २३ ॥
कमलं मल विलयन्तो, मनरंजन गारवेन षिपनं च ।
दर्सन मोहंध मुक्कं, भय षिपियं ममल न्यान संदि ॥ २४ ॥
कमलं दिप्ति उपत्ती, न्यान आवरन अन्ध विलयन्ती ।
दिप्ति दर्सन नन्तं, आवरन विलय ममल सहकारं ॥ २५ ॥
कमलं मोह सन्यानं, मोहन विलयन्ति सरनि परज ं ।
भय षिपनक अन्तर विलयं, आवरनं तिक्त ममल न्यानं च ॥ २६ ॥
हितकारं कमल सहावं, हितमित परिनवै कोमलं दरमं ।
हित ह्रींकार सु ममलं, भय षिपनक भव्वु कम्म षिपनं च ॥ २७ ॥
हितकारं ह्रींकारं, कमल सहावेन नन्त ममलं च ।
भय विमुक्क भय रहियं, हित सहकार न्यान ममलं च ॥ २८ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(कमल सुभावं सहिय) प्रफुल्लित कमलके समान आत्माके स्वभावको प्रगट करने-वाले (अष्यर सुर विंजनस्य पद सहियं) स्वर व्यंजन अक्षरोंसे बने हुए पदके द्वारा (ममल सहाव संजोयं) शुद्ध स्वभावधारी आत्माका संयोग या अनुभव होता है [illegible]) उस आत्मानुभवसे संसारका भय दूर होजाता है। निर्भय शुद्ध सम्यग्दर्शनका प्रकाश रहता है।

भावार्थ—शब्दोंका भाव ज्ञानके साथ वाचक वाच्य सम्बन्ध है। [illegible] का बोध होता है। कमल शब्दसे शुद्ध आत्माका बोध होता है। कमल शब्द वाचक है, आत्मा [illegible] है। शास्त्रके मननसे

ही सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, तब निःशंकभाव पैदा होजाता है, सम्यक्ती निर्भय वीर होता है ॥ १ ॥

(कमल सहज सरूव) आत्मारूपी कमल जब अपने सहज स्वभावमें झलकता है तब ही कमलस्वरूप है (अप्पर रमन च अपय पद सहिय) तब यह अपने अविनाशी ब्रह्म स्वभावमें रमण करता है। इसका लक्ष्य अविनाशी मोक्षपद पर रहता है (भय विपनक सुर च सुरय च) यही आत्मारूपी कमल सर्व भयोंको मिटाने-वाला है, यह सूर्य समान प्रकाशित है, यही एक मदिरा है जिसके पानमें आत्मा लवलीन होजाता है (निंजन विन्यान ममल मन्कार) वहां प्रगट रूपसे निर्मल भेदविज्ञानकी सहायता है।

भावार्थ—भेदविज्ञानके प्रभावसे सूर्य समान शुद्धात्माका अनुभव होता है। जब स्वात्मानुभव होता है तब एक प्रकारका आत्मरसमें लीनताका भाव मदिरापानके समान होजाता है ॥ २ ॥

(कमल सजोय सदिट्ठ) जब कमलके समान शुद्ध आत्माका अनुभव भलेप्रकार प्रगट होता है (पद दरस परम तत्तु पद विंद) तब परमात्मतत्वका पद दिख जाता है, आत्मीकपदका वेदन होजाता है, आत्मीक रसका स्वाद आजाता है (सर्वन्य ममल सहाव) यह आत्मारूपी कमल सर्वज्ञ है व शुद्ध स्वभावधारी है (भय विपिय मन्तु कम्म सविपन) इसके भीतर लय होनेसे सर्व भय मिट जाते हैं—भव्यजीवके कर्म क्षय होजाते हैं ॥३॥

(कमलं कमलसहाव) यह आत्मारूपी कमल कमलके समान प्रफुल्लित स्वभावका धारी है (पद अर्थ परम अर्थ संदर्सं) इस आत्मारूपी पदार्थमें परमार्थ तत्वका या शुद्ध मुक्त आत्मतत्वका भलेप्रकार दर्शन होता है (अर्थति अर्थ ममल) वहां मलरहित पदार्थका निश्चय है (भय विपिय तिअर्थ दिस्टि ममल च) वहां निर्भय या शङ्कारहित तीन रत्नोंकी सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रकी शुद्ध दृष्टि है। अर्थात् तीनोंका शुद्ध अनुभव है ॥ ४ ॥

(कमल कमल उत्ती) कमलवत् विकसित शुद्धात्माके ध्यानसे शुद्ध कमलकी या अरहंत कमलकी प्रग-टता होजाती है (सम अर्थ समय मद्ध सदिस्टि) जहां समताभावमय पदार्थ तथा शुद्ध आत्मरूपी पदार्थका अनुभव आता है (हित मित परिनै ममल) वहां परम हितकारी शुद्ध परिणमन अपने द्रव्यकी मर्यादाके भीतर होरहा है। हरएक द्रव्य अगुरुलघु सामान्य गुणके रखनेके कारण अपनी मर्यादाको उल्लंघन नहीं करता है। जितने गुण सम्भव है उतने ही गुण रहते हैं व एक एक गुणकी जितनी अनंतपर्यायें संभव हैं वे ही पर्यायें होती हैं। एक गुणका परिणमन भी अन्य गुणरूप नहीं होता है। ज्ञानका परिणमन सुखरूप न

होगा, चारित्रका परिणमन ज्ञान रूप नहीं होगा (ममल सहकार अर्थ सदर्स) शुद्ध भावकी मददसे ही आत्मपदार्थका भले प्रकार दर्शन होता है ॥ ५ ॥

(कमल सहाव अवयास) आत्मारूपी कमलका स्वभाव आकाशके समान है (अवयास अर्थ न्यान अवयास) आकाश पदार्थके समान ज्ञानमें अनंत अवगाहन शक्ति है (अवयास नत नत) इस आत्माके शुद्ध ज्ञानमें अनंतानंत पदार्थ झलक सक्ते हैं (भय षिपिय भ तु न्यान विन्यान) यहां रमण करनेसे सर्व भय मिट जाता है, भव्य जीवका ज्ञान सम्यग्ज्ञान रूप रहता है ॥ ६ ॥

(कमल सहाव रमियं) कमल समान आत्माका स्वभाव अपने ही स्वभावमें रमण करनेका है (रमिय समय च न्यान वि-यान) वहां स्वात्मरमन या ज्ञानमें रमण होता है (न्यान ममल सहाव) ज्ञान निर्मल स्वभावरूप होता है (न्याय सहावेन सक भय षिपिय) उस ज्ञान स्वभावी शुद्धात्मामें रमण करनेसे सर्व शंकाएं मिट जाती हैं व सर्व भय क्षय होजाते हैं ॥ ७ ॥

(कमल लकृत सहिय) यह आत्मारूपी कमल परम शोभायमान है (न्यान विन्याय सुद्ध सहकार) यहां शुद्ध ज्ञानकी शोभा होरही है (अन्यान समय विश्य) इसके प्रभावसे अज्ञानमय आत्माकी परिणति विला गई है। यहां रागद्वेष मोहादि अशुद्ध भावोंका झलकाव नहीं है (भय षिपियं ममल न्यान सद्भाव) इस आत्माकी शुद्ध परिणतिसे सर्व भय क्षय होगए हैं। यहां शुद्ध ज्ञानका ही सद्भाव है ॥ ८ ॥

(कमल वि-यान सजुत्त) इस आत्मारूपी कमलमें स्वपरका भेदविज्ञान भरा है। (कमल कलि पंच अप्प सुद्धप्पा) यह कमलवत् आत्मा शुद्धात्माका ही अनुभव कर रहा है (परमप्प परम पद) यही परमात्माका परमपद विराजित है (ममल सहावेन कम्म सषिपन) इस शुद्धोपयोगके प्रतापसे कर्मोंका क्षय होरहा है।

भावार्थ—जब आत्मा अपने ही परमात्म स्वभावमें तन्मय होता है तब वीतरागता सहित स्वानुभूति झलकती है जिससे प्रचुर कर्मोंकी निर्जरा होजाती है ॥ ९ ॥

(कमल न्यान सहाव) यह आत्मारूपी कमल ज्ञान स्वभावमय है (अन्यान सहकार सकल विलयतो) इसके सामने अज्ञान सम्बन्धी सर्व भाव विला जाते हैं। (भय विनास भव अंत) इस ज्ञानस्वभावमें रमनेसे भय दूर होजाता है व संसारका अंत आजाता है (ममल दिस्ट च सल्य विलय च) इस शुद्ध आत्मीक दर्शनसे सर्व शल्यें दूर होजाती हैं ॥ १० ॥

ममलपाहुड
॥१८५॥

(कमल नन्त विसेयं) कमल स्वरूप आत्मामें अनन्तगुण हैं (कमल विपऊन नन्त बन्धन) इस कमलमें भ्रमरके समान रमण करनेसे अनन्त कर्मोंके बन्धन कट जाते हैं (कमल सहाव सुद्ध) कमल स्वरूप आत्माका स्वभाव रागादिसे रहित शुद्ध है (भय विपिय भवु कम्म विलयती) इस कमल सम आत्मामें लवलीन होनेसे भव्यजीवका सर्व भय दूर होजाता है और कर्मोंका क्षय होजाता है ॥ ११ ॥

(कमल अन्मोय सहिय) यह आत्मारूपी कमल आनन्द सहित है (अन्मोय न्यान कम्म विपऊन) ज्ञानानन्दके प्रभावसे ही कर्मोंका क्षय होता है (विपिऊ सयल विसेय) इसीसे सर्व मलीन रागादि मल जो वैभाविक परिणामोंकी अवस्थाएँ हैं वे दूर होजाती हैं (ममल सहावेन कम्म गलिय च) शुद्ध स्वभावके रमणसे कर्म गल जाते हैं, उनकी स्थिति घट जाती हैं, उनका अनुभाग घट जाता है। पुण्य कर्म अनुभागकी वृद्धि पाकर शीघ्र उदय होकर क्षय होजाते हैं ॥ १२ ॥

(कमल सजोयं सुद्ध) इस आत्मारूपी कमलका संयोग शुद्ध स्वरूप (उच जिन उत्तु परम सद्भाव) कहा गया है। इसीमें वह शुद्धोपयोग व श्रेष्ठ भाव है जिसे जिनेन्द्रने मोक्षमार्ग कहा है (ससंक कंप्य विलय) इसी शुद्ध स्वरूपमें रमनेसे सर्व शङ्काएँ व सर्व कांक्षाएँ दूर होजाती हैं। मैं शुद्धात्मा हूँ, ज्ञानानन्दमय हूँ, इस भावमें कोई शङ्का नहीं रहती है। तथा सर्व ही विषयोंकी इच्छाएँ, इंद्रादि, अहमिंद्रादि, चक्रवर्ती आदि पदोंकी चाहनाएँ नष्ट होजाती हैं (भय विपिय सयल कम्म विलयती) इसीसे सर्व भय दूर होजाता है। और अशुद्ध कर्म-अर्थात् रागादि सहित मन, वचन, कायकी क्रियाएँ बन्द होजाती है। स्वात्मामें रमण करनेसे मन, वचन, काय निश्चल होजाते हैं ॥ १३ ॥

(कमल सहज सरूव) यह आत्मारूपी कमल अपने सहज स्वभावमें शोभता है (सब्दं सहकार न्यान विन्यानं) मन्त्रोंके जापकी सहायतासे इसका भेदविज्ञान पूर्वक ज्ञान होता है (सब्द वियार सजुत्त) शब्दोंके द्वारा आत्मा व अनात्माका भिन्न २ स्वरूप विचार किया जाता है (भय विपिय ममल सब्द विलयति) तब सर्व भय जाता रहता है व रागादि सहित अशुद्ध शब्दोंका कहना बन्द होजाता है।

भावार्थ—जब तत्वज्ञानीका उपयोग आत्मामें एकाग्र नहीं होता है तब वह ॐ ह्रीं श्री आदि शब्दोंके द्वारा आत्माका मनन करते हैं। शब्दोंके जप करनेसे अन्य रागादिवर्द्धक शब्दोंका कहना बन्द होजाता

है तब उपयोग अशुभोपयोगमें जानेसे रक्षित रहता है। मन्त्रोंका जप शुभोपयोग है। इसके सहारेसे फिर आत्मा आत्मस्थ होकर शुद्धोपयोग प्राप्त कर सक्ता है ॥ १४ ॥

(कमल न्यान विन्यान) यह आत्मारूपी कमल सम्यग्ज्ञानसे पूर्ण है (न्यान विन्याय सब्द विंदती) शब्दोंके द्वारा इसके ज्ञानमय स्वभावका मनन होता है (विंदति वेद वेद) तब आत्मज्ञानका अनुभव होजाता है (वेदतो मन वयन काय विलयं च) जिस समय स्वात्मानुभव जागृत होता है उस समय मन वचन कायकी क्रियाएँ नहीं रहती हैं।

भावार्थ—आत्माभ्यासी साधु " ज्ञानस्वरूपोऽहं " इत्यादि मन्त्रोंके द्वारा ज्ञानस्वभावी आत्माका मनन करते करते जब यकायक आपसे आपमें थिर होजाता है तब इसे आत्मज्ञानका अनुभव होजाता है उस समय परम अद्वैतभाव-एकाग्रभाव या आत्मसमाधिभाव प्रगट होजाता है ऐसी दशामें मनके विचार, वचनोंके प्रयोग और कायकी चेष्टाएँ बन्द होजाती हैं ॥ १५ ॥

(कमल कंप्य विमुक्त) इस आत्मारूपी कमलमें किसी प्रकारकी इच्छा नहीं होती है, यह बिलकुल निस्पृह है-कृतकृत्य है (आसा अस्नेह सयल विलयंती) न इसमें कोई आशा तृष्णा है न कोई जातिका किसीसे स्नेह है, यह परम वीतरागी है (ममल सहाव सु समय) यही दोषरहित निर्मल स्वभाव धारी स्वसमय रूप है-आपसे आपमें रमण रूप है (भय षिपिनक भव्वु कम्म गलयंती) इसीकी रमणतासे भव्यजीवके सर्व भय दूर होजाते हैं व सब कर्म गल जाते हैं ॥ १६ ॥

(कमल कलक रहिय) यह आत्मारूपी कमल सर्व कलंक या दोषोंसे रहित है (कललकृत कम्म भाव गलिय च) इसमें शरीर सम्बन्धी सर्व ही कर्म व सर्व ही भाव नहीं हैं। भावार्थ—आत्माके न कोई पुद्गलकृत शरीर है, न शरीर सम्बन्धी कोई कर्म है, न कोई मोहरूप भाव हैं (ज पर्जाव विसेष) जितने वैभाविक या औपाधिक राग विशेष हैं वे सब (ममल सहावेन पर्जाव विलयंती) परिणाम शुद्ध स्वभावमें रमण करनेसे ही दूर होजाते हैं ॥ १७ ॥

(कमल कल न विच्छती) यह आत्मारूपी कमल शरीरकी ओर दृष्टिपात नहीं करता है। यह शरीरसे अत्यन्त उन्मुख है (लाज लोभ च षिपिय उप्पत्ती) इस कारण न वहां शरीरके सुख पहुँचानेका कोई लोभ पैदा होता है और न वहां कोई लज्जाका भाव आसक्ता है कि हम नग्न हैं। भावार्थ-निर्ग्रंथ दिगम्बर साधु

ममलपाहुड
॥१८७॥

भावलिंग स्वरूप जो शुद्धात्माका अनुभव है उसमें लीन रहते हुए शरीर सम्बन्धी मर्व लज्जा व लोभसे विरक्त रहते हैं (कम्म पजांव विमुकं) तत्वज्ञानी कर्मोंके उदयसे होनेवाली परिणतियोंसे विरक्त रहते हैं (भय पिपनक लोभ लाज विल्यंती) इसलिये उनके न कोई भय है न लोभ है और न लज्जाका भाव है ॥ १८ ॥

(कमलं सरनि न उत्त) इस आत्मारूपी कमलका संसारमें भ्रमण नहीं कहा गया है। अथवा जो इस आत्मारूपी कमलमें भ्रमरवत् मगन हैं उन महात्माओंका संसार नहीं रहता है (मरीर महकार भय च भय मुक) उनको इस शरीर सम्बन्धी कोई भय नहीं है कि यह रोगी होजायगा या मर जायगा तो क्या होगा और न कोई दूसरा ही भय है। यह आत्माको अविनाशी जानते हैं, इससे इसके मरणका भय भी नहीं रखते हैं (सीह सहावेन ममल महकार गारव गयद गलिय) उनके शुद्ध स्वभावरूपी सिंहके सामने अहंकाररूपी हाथी भाग गया है। अर्थात् निर्ग्रंथ साधु परम वीतराग शुद्ध स्वभावका जब मनन या अनुभव करते हैं तब उनके भावोंमें कोई गारव या मद या अहङ्कार नहीं रहता है। वे सम्यग्दृष्टी जाति, कुल, रूप, बल, विद्या, अधिकार, धन, तप, इन आठों मदोंको जीत चुके हैं। साधुओंको ऋद्धिकी प्राप्तिका मद, प्रतिष्ठा पानेका मद आदि कोई गारव भाव नहीं होता है ॥ १९ ॥

(कमलं सीह सहाव) तत्वज्ञानी साधुका आत्मा सिंह स्वभावका धारी परम वीर साहसी होता है (नन्द आनन्द चेयनानन्द) वह ज्ञानानन्द स्वभावमें मगन होकर सदा आनन्दित रहता है (मरीर न्यान विन्यान) इस सिंहसमान आत्माका शरीर सम्यग्ज्ञान है (आलस पजांय सयल विन्य तीं) यहां आलस्य या प्रमादकी कोई परिणति नहीं है।

भावार्थ—आत्मानुभवमें तल्लीन साधुका आत्मा सिंहके समान पराक्रमी व अप्रमादी है, ज्ञानमय शरीरका धारी है व सदा ज्ञानानन्दमें मगन है। अपने सिंह स्वभावको कभी त्यागता नहीं है। परम साहस व उद्योग करके यह ज्ञानी सिंह कर्मोंका संहार करता है ॥ २० ॥

(कमल सरूव रूव) इस आत्माका स्वभाव कमलके समान प्रफुल्लित है (सरीर मानि न्यान विन्याय) इसका शरीर ज्ञानमय भावमें परिणमन है (पर्भय प्रपच विलय) इसमें जड शरीर पर्याय सम्बन्धी कोई प्रपंच, कोई विकल्प, कोई चिन्ता नहीं है (पर्जय भय पिपिय न्यान विन्यान) इसमें कोई शरीर सम्बन्धी भय नहीं है, इसमें तो ज्ञान विज्ञान पूर्ण है ॥ २१ ॥

(कमल काति सहावं) यह आत्मारूपी कमल परम कांतिकारी–परम रमणीक है (विभ्रम पर्जाय सयल गलिय च) इसके भीतरसे मिथ्यात्व व रागद्वेष सम्बन्धी सर्व परिणति विला गई है (ममलं ममल स उत्तं) यह वीतराग है व कर्ममलसे रहित कहा गया है (भय पिपनक भव्वु विभ्रम गलिय) भव्यजीव इस आत्मारूपी कमलमें तन्मय होकर सर्व भयको दूर कर सर्व मोह प्रपंचको गला डालते हैं ॥ २२ ॥

(कमल पिपनति जिनय) यह आत्मारूपी कमल ही क्षपणक है, कर्मको क्षय करनेवाला साधु है तथा वही कर्मोंको जीतनेसे जिन है (जनरजन राग सयल विल्यती) इसके भीतर लोगोंको रंजायमान या प्रसन्न करनेका रागभाव नहीं है, यह परम विरक्त है (कललकृत दोष गलियं) इसके भीतरसे शरीर सम्बन्धी सर्व दोष गल गए हैं । (ममल सहावेन भव्वु भय पिपन) इस भव्य ज्ञानीके शुद्ध स्वभावके कारण सर्व भय दूर होगए हैं ।

भावार्थ—जो साधु शुद्धात्मारूपी कमलमें मगन होते हैं वे राग द्वेष भय रहित परम वीतरागी होजाते हैं ॥ २३ ॥

(कमल मल विलयन्तो) इस आत्मारूपी कमलमें लय होनेसे सर्व रागादि मल दूर होजाते हैं (मनरजन गारवेन पिपन च) मनको राजी रखनेवाला अहंकार भाव वहांसे दूर होजाता है । संसारी प्राणी धन, कुटुंब, मान आदि पानेपर प्रसन्न होते हैं । यह प्रसन्नता कपाय विजयी साधुओंके नहीं होती है (दर्सन मोहंध मुक्क) यह निर्ग्रंथ साधु दर्शनमोह कर्मसे या मिथ्यात्वभावसे विलकुल मुक्त हैं (भय पिपिय ममल न्यान सदिट्ठं) उनके कोई भय नहीं रहा है । इन्होंने निर्मल ज्ञानका भलेप्रकार अनुभव किया है ॥ २४ ॥

(कमलं दिप्त उपत्ती) इस निर्ग्रंथ साधुके आत्मारूपी कमलमें विशेष प्रकाश झलक गया है (न्यान आवरण अध विल्यती) यहांसे ज्ञानावरण कर्मका अन्धकार विला गया है । केवलज्ञान प्रगट होगया है (दिप्ति दर्सन नत) अनन्त दर्शनकी ज्योति भी प्रगट होगई है (आवरन विल्य ममल सहकारं) शुद्धोपयोगकी सहायतासे दर्शनावरण कर्म क्षय होगया है ॥ २५ ॥

(कमल मोह सन्यान) यह आत्मारूपी कमल केवलज्ञानमें मगन है । उसीमें आसक्त है । अतएव (मोहेन विलयती सरनि पर्जाय) इसने मोहनीय कर्मका भी क्षय कर दिया है । जो भव २ की पर्यायोंमें भ्रमण करानेवाला है (भय पिपनक अंतर विल्यं) यह सर्व भयसे रहित होगया है । क्योंकि इसने अन्तराय कर्मका

ममलपाहुड
॥१८९॥

भी क्षय कर दिया है (आवरन तिक्त ममल न्यानं च) इस अरहंत स्वरूप कमलका सर्व आवरण हट गया है, शुद्ध ज्ञान ज्योतिका यहां प्रकाश होरहा है ॥ २६ ॥

(हितकारं कमल सहाव) यह कमल स्वभावधारी आत्मा परम हितकारी है (हितमित परिनवै कोमलं ५रस) जो कोमल भावसे इसको देखता है व परम प्रेमसे व मर्यादा पूर्वक इस रूपमें परिणमन करता है (हित ह्रींकार सुममल) ह्रीं नामके हितकारी व शुद्ध मंत्रका सहारा लेता है (भय षिपनक भव्वु कम्म षिपनं च) वह भव्यजीव सर्व भयसे छूटकर कर्मोंका क्षय कर डालता है।

भावार्थ–जो भव्य आत्मा शुद्धात्माका प्रेमी होकर मंत्रोंके द्वारा मनन करके उसीमें लय होता है वह कर्मोंको क्षयकर अरहंत व सिद्ध होजाता है ॥ २७ ॥

(हितकार ह्रींकार) यह ह्रीं मंत्र जो २४ तीर्थंकरोंका वाचक है, परम हितकारी है (कमल सहावेन नत ममल च) इसके सहारेसे अनन्त गुणधारी शुद्ध कमलस्वभावी आत्माका मनन होता है (भय विमुक्कु भय रहिय) इसीके अनुभवसे भय छूट जाता है–भव्य जीव भय रहित होजाता है (हित सहकार न्यान ममल च) इसीकी मददसे शुद्ध ज्ञानका लाभ होजाता है जो परम हितकारी है।

भावार्थ—ह्री मन्त्रके द्वारा जो कोई अरहन्त स्वरूप आत्माका मनन या अनुभव करता है वह स्वयं चार घातीय कर्मोंको क्षय कर अरहन्त होजाता है–जैसा भावै तैसा होजावै ॥ २८ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें आत्माको कमलकी उपमा देकर आत्मध्यानकी व आत्मानुभवकी महिमा गाई है, आत्माकी स्तुति करके भावपूजा की है। वास्तवमें शास्त्रोंके जाननेका सार यही है जो अपने आत्माका दृढ़ निश्चय किया जावे, पक्का ज्ञान किया जावे कि यह आत्मा स्वभावसे परमात्मारूप, वीतरागी, अनन्त ज्ञानी, अनन्त बली, अमूर्तीक, अनन्तदर्शन गुणधारी है। इसमें न तो ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म हैं, न रागद्वेषादि भावकर्म हैं, न शरीरादि नोकर्म हैं। इसकी सत्ता अन्य आत्माओंसे सदा भिन्न रहती है। यही आत्मा सूर्य है क्योंकि यह सर्वको जैसाका तैसा जानते हुए भी सूर्यके समान किसीपर रागद्वेष नहीं करता है, समभाव रखता है। इस आत्मामें आनन्दमय रस ऐसा मधुर है–उसमें इतना नशा है कि जो भव्यजीव आत्मरसको पान करता है वह मदिरा पीनेवालेके समान स्वरूप रमणमें उन्मत्त होजाता है। यह आत्मा सिंहके समान है। इसका जो अनुभव करता है उसके भीतरसे परको

आपा माननेका अहंकार व पर पदार्थ सम्बन्धी मान सब गल जाता है। इस तरह अपने आत्माका मनन शब्दोंके द्वारा व मनके द्वारा करते करते एक समय आता है जब मिथ्यात्व कर्म व अनन्तानुबन्धी कषायोंके उपशम होनेपर सम्यग्दर्शन प्रगट होजाता है। आत्माके स्वरूपकी भक्ति, आत्माके स्वरूपका स्वाध्याय, आत्माके स्वरूपका समभावके साथ विचार, आत्मस्वरूपकी जाप ये ही साधन हैं जिनके प्रतापसे सम्यक्त होता है।

भेदविज्ञानका मनन देवपूजा, गुरुभक्ति, स्वाध्याय, सामायिक द्वारा करते रहना चाहिये। जैसे कृषक धान्यमें चावलको छिलकेसे अलग जानता है, तेली तिलोंमें तेलको भूसीसे अलग देखता है, सर्राफ मलीन सोनेमें सुवर्णको मैलसे अलग जानता है, वैसे भेदविज्ञानके बलसे आत्माको परसे भिन्न जान लेना चाहिये। इतना दृढ़ अभ्यास करना चाहिये कि एक वृक्षके भीतर भी आत्मा परसे भिन्न दिखाई दे व अपने भीतर भी दिखाई दे। जब आत्माका साक्षात्कार होता है तब ही सम्यग्दर्शनका प्रकाश होता है। तब आत्मानन्दका स्वाद आता है। श्री समयसार कलशमें कहा है—

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया। तावद्यावत् पराच्च्युत्वा ज्ञान ज्ञाने प्रतिष्ठते ॥ ५-६ ॥

भावार्थ—कि भेदविज्ञानकी भावना लगातार वहांतक करते रहो जहांतक ज्ञान परसे छूटकर ज्ञानमें प्रतिष्ठित न होजावे। सम्यग्दर्शनके प्रभावसे तत्वज्ञानीको निरन्तर अपने ही भीतर परमात्माका दर्शन होजाता है। उसी आत्मदर्शनका जितना २ अभ्यास सम्यक्ती करता है उतनी २ अधिक कर्मोंकी निर्जरा होती है। स्वात्मानुभव करने हीसे गुणस्थानोंमें उन्नति होती है। सातवें गुणस्थानमें जाकर निर्ग्रंथ साधु परम वैरागी होजाता है, धर्मध्यानकी पूर्णताको पाकर क्षपकश्रेणी चढकर प्रथम शुक्लध्यानके प्रतापसे मोहनीय कर्मका क्षय करके फिर द्वितीय शुक्लध्यानसे शेष घातीय कर्मोंका क्षय करके अर्हंत परमात्मा होजाता है तब अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य व अनन्त सुख ये चार चतुष्टय प्रगट होजाते हैं। अर्हंत परमात्मा परमानन्दमें मगन रहते हैं। यही शेष कर्मोंको काट फिर सिद्ध मुक्त होजाते हैं। कमल स्वभावी आत्माके मननसे तथा अनुभवसे ही यह कमल स्वभावी अर्हंत परमात्मा होजाता है।

ममलपाहुड ॥१९१॥

(२३) इष्ट छन्द गाथा ४४६ से ४६४ तक ।

जिन जिनवर उत्तो जिनय पऊ, इस्ट उवन संसुद्ध पऊ ।
अन्मोय न्यान सुर समय मऊ, मुक्ति पंथ सिव सुष्य मऊ ॥ १ ॥
जिन इस्ट इस्ट इस्टिओ, उवन इस्टि उवन पओ ।
जिन इस्ट न्यान सु उवन पओ, उत्पन्न न्यान सुइ मुक्ति गओ ॥ २ ॥
जिन इस्ट लष्य लष्यनो, उत्पन्न इस्ट सु अलष मओ ।
जिन लष्य अलष्य सु न्यान मओ, परिनाम लष्य सु सिद्धि पओ ॥ ३ ॥
जिन चौसठ वरन सु वरन मओ, लष्यन सुभाउ मु ममल पओ ।
जिन इस्ट विन्यान सुन्यान मओ, अन्मोय न्यान सुइ मुक्ति पओ ॥ ४ ॥
जिन इस्ट गम्य सुइ गमन मओ, जिन अगम इस्ट सुइ अगम मओ ।
गम अगम दिस्टि सुइ समय पओ, तं दिष्ति अमियरस मुक्ति पओ ॥ ५ ॥
जिन इस्ट कमल सुइ कमल मओ, उत्पन्न कमल सुइ रमन पओ ।
जिन कलन न्यान सुइ रमन मओ, सुइ कम्म विलय सुइ मुक्ति पओ ॥ ६ ॥
जिन इस्ट रमन सुइ ममल पओ, उत्पन्न रमन सुइ कम्म पओ ।
उववन्न उवन सुइ रमन मओ, भय पिपिय अमिय रस सिद्धि पओ ॥ ७ ॥
जिन इस्ट सु लंकृत लीन मओ, लंकृत उववन्न सु सिद्धि पओ ।
पर्जय पर्जाव सु विलय मओ, जिन न्यान रमन सुर मुक्ति पओ ॥ ८ ॥

ममलपा
॥१९२॥

विन्यान न्यान सुइ इस्ट पओ, अन्मोय सहाव उवन्न मओ ।
मय मूरति न्यान सु इस्ट पओ, मै उवन सहाउ सु उवन पओ ॥ ९ ॥
जिन नेय नेय सु इष्ट मओ, उववन अन्मोय सु ममल पओ ।
जिन न्यान रमन सु अनेय मओ, जिन नेय उवन सु मुक्ति पओ ॥ १० ॥
जिन समय उवन सु इस्ट मओ, उववन्न समय उववन्न पओ ।
जिन ऋतु सुयं सु न्यान मओ, जिन नन्तानन्त सु इस्ट पओ ॥ ११ ॥
जिन वयनु जिनुत्त सु इस्ट मओ, जिन रमन आलाप सुजिनय पओ ।
जिन सव्द इष्ट सुइ न्यान मओ, जिन सव्द विचार सु दिष्टि मओ ॥ १२ ॥
जिनुत्त सु न्यान जिनुत्त मओ, जिन सव्द सहाउ सु ममल पओ ।
जिन उत्तु सव्द उत्पन्न मओ, जिन दिस्टि सव्द सुई सिद्धि पओ ॥ १३ ॥
जिन उत्तु न्यान सुइ परिनमओ, जिन परिनइ जिनयति कम्म पओ ।
जिनु न्यान अन्मोय सु अषय पओ, जिन न्यान न्यान सुइ मुक्ति पओ ॥१४॥
जिन उत्तु सव्द सुइ परम पओ, जिन उत्तु समय परमान मओ ।
जिन उत्तु दिसि सुइ दिष्टि मओ, जिन सव्द प्रिये सुइ मुक्ति गओ ॥ १५ ॥
जिन रज उवन हिययार मओ, भय पिपिय अमिय रम रमन पओ ।
जिन रंज सहाव विन्यान मओ, वै दिसि रमन जिन रमन पओ ॥ १६ ॥
जिन जिनय रज सुइ ममल पओ, जिननाथ रमन सुइ सिद्धि पओ ।
जिन नन्द सुयं परमानंदो, अन्मोय अवलि वलि मुक्ति पओ ॥ १७ ॥

ममलपाहुड
॥१९३॥

जिन रंज रमन मुइ नन्द मओ, अन्मोय अवलि विषु विलय पओ।
जिन तारन तरन सहाउ मओ, सिद्ध समय स उत्तु सु मुक्ति पओ ॥ १८ ॥

घत्ता।

जिन जिनपति कम्म उव्वन्न पओ, उववन न्यान विलसतु।
जिन अथति अर्थ सुसमय मऊ, आयरन सिद्धि सपत्तु ॥ १९ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(जिन जिनवर उत्तो जिनय पऊ) श्री वीतराग जिनेन्द्रने जिनपदका महात्म्य वर्णन किया है (इष्ट उवन सशुद्ध पऊ) वही परम हितकारी प्रकाशमान शुद्ध पद है (अन्मोय न्यान सुइ समय मऊ) वही ज्ञानानन्दमय है, वही आत्मामयी है या आत्मारूप है (मुक्तिपन्थ सिव सुष्य भऊ) वही मोक्ष सुखदाई मोक्षका मार्ग है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी अनन्तानुबन्धी कषाय व मिथ्यात्वको विजय कर लेनेसे जिन कहलाता है। उसके भावोंमें शुद्धात्माका स्वरूप जो ज्ञानानन्दमय है वह अनुभवमें आजाता है। इसी स्वात्मानुभवको ही मोक्षमार्ग कहते हैं। इसीसे परम सुखदाई मोक्षपदका लाभ होता है।

(जिन इष्ट इस्ट इष्टियो) सम्यग्दृष्टीको परम हितकारी वीतरागी आत्मा ही प्रिय भासता है, वह सम्यक्ती शुद्धात्माका प्रेमी होजाता है (उवन इस्टि उवन पओ) उसके भीतर इष्ट सम्यक्तका व इष्ट जिनपदका प्रकाश होगया है (जिन इस्ट न्यान सु उवन पओ) उसके भीतर परम हितकारी आत्मज्ञानमई वीतराग सम्यग्ज्ञानका प्रकाश होगया है (उत्पन्न न्यान सुइ मुक्ति गओ) उसी आत्मज्ञानके अनुभवसे केवलज्ञान प्रगट होजाता है और यह आत्मा मुक्त होजाता है ॥ २ ॥

(जिन इष्ट लष्य लष्यनो) उस जिन सम्यक्तीने परम प्रिय अनुभवने योग्य निजात्माका अनुभव प्राप्त कर लिया है (उत्पन्न इष्ट सु अलष मओ) उसके भीतर परम प्रिय आत्माका प्रकाश होगया है जो पांच इंद्रिय तथा मनके विकल्पोंसे नहीं जाना जासक्ता है। आत्माका सच्चा ज्ञान इंद्रिय व मनसे परे अतीन्द्रिय है—आपसे ही आप अनुभव करने योग्य है। (जिन लष्य अलष्य सु न्यान मओ) उसका ज्ञान ऐसा प्रगट होजाता है कि उसमें लक्ष्य अलक्ष्य सब भासने लगता है। इंद्रियगोचरको लक्ष्य व इंद्रिय अगोचरको अलक्ष्य कहते हैं।

(परिनाम लष्य सु सिद्धि पत्रो) जिसका परिणमन अनुभवने योग्य आत्मारूप होजाता है वही सिद्धपदको प्राप्त कर लेता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—शुद्धात्माका ग्रहण मन व इंद्रियोंसे नहीं होसक्ता, जब आप आत्मासे ही अपने ही आत्माको ग्रहण किया जाता है–स्वसंवेदन ज्ञान प्राप्त किया जाता है तब ही स्वानुभव होता है। इसीसे केवलज्ञान प्रगट होता है और वह जीव सिद्ध होजाता है ॥ ३ ॥

(जिन चौसठ वरन सु वरन मत्रो) जिनवाणीमें चौसठ अक्षर हैं, उनहीसे सर्व द्वादशांगवाणीकी रचना है। ज्ञानमार्गणा–श्री गोम्मटसारमें कहा है—

गाथा—तेतीस वेंजणाई, सत्तावीसा सरा तहा भणिया। चत्तारिय जोग वहा, चउसट्ठी मूलवण्णाओ ॥ ५१५ ॥

भावार्थ—जिनवाणीके ६४ अक्षरोंमें ३३ व्यंजन सत्ताईस स्वर व चार योगवाह गर्भित हैं–क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ये तेतीस व्यंजन हैं। अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ, इन नौ स्वरोंको ह्रस्व, दीर्घ, लुप्त तीन शब्दके भेदोंके द्वारा विभाजित करनेसे २७ स्वर होजाते हैं। जैसे—अ आ आ, इ ई ई, उ ऊ ऊ, ऋ ॠ ॠ, लृ लृ लृ, ए ए ए, ऐ ऐ ऐ, ओ ओ ओ, औ औ औ। एक मात्रावालेको ह्रस्व, दो मात्रवालेको दीर्घ, तीन मात्रावालेको लुप्त कहते हैं। चार योगवाह अक्षर हैं। अनुस्वार (ं) विसर्ग (ः) जिह्वामूलीय (ᳵक) उपध्मानीय (ᳶप)।

गाथा—चउसट्ठिपद, विरलिय–दुग च दाऊण संगुणं किच्चा–रूऊण चकरा पुण–सुदणाणस्सक्खरा होंति।

भावार्थ—इनको फैलाकर २ का अङ्क ६४ जगह लिखकर परस्पर गुणा करनेसे जो एक ही प्रमाण अक्षर आएंगे उनमें १ घटानेसे कुल पुनरुक्त अक्षर जिनवाणीके हैं उनमें द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी आदि चौसठ संयोगी तक अपुनरुक्त अक्षर हैं।

(२×२)–१ =१८४४६७४४०७३७०९५५१६१५। इनका विशेष कथन गोम्मटसारसे जानना योग्य है।

(लष्यन सुभाव सु ममल पत्रो) उस द्वादशांगवाणीके द्वारा शुद्ध आत्मीक पदका लक्षण व सुभाव

ममलपाहुड
॥१९८॥

जाना जाता है (जिन इस्ट विन्यान सु न्यान मओ) तब परम प्रिय वीतरागी आत्माका भेदविज्ञान प्राप्त होता है जो सम्यग्ज्ञान स्वरूप है (अन्मोय न्यान सुइ मुक्ति पओ) जो इस आत्मज्ञानमें आनन्दित होजाता है वही मुक्तिको पाता है ॥ ४ ॥

(जिन इष्ट गम्य सुइ गमन मओ) जो वीतरागी प्रिय आत्मा जानने योग्य है उसे जब जान लिया जाता है (भिन अगम इस्ट सुइ अगम मओ) उसका जो स्वरूप आत्मज्ञानी द्वारा नहीं जानने योग्य है वही परम प्रिय अगम्य आत्मपद है जो केवलज्ञानगम्य है (गम अगम दिस्टि सुइ समव पओ) आत्माका स्वभाव यही है जो गम्य अगम्य सबको स्वयं देखनेवाला है (त दिप्ति अमिय रस मुक्ति पओ) ऐसा केवलज्ञान जिसको प्रगट होजाता है वह आनन्दामृत रसका पान करता हुआ मुक्त होजाता है।

भावार्थ—छद्मस्थको परोक्ष रूपसे आत्माका ज्ञान श्रुतज्ञान द्वारा होता है यद्यपि वह ज्ञान यथार्थ है तथापि पूर्ण व विशद व प्रत्यक्ष आत्माका वह ज्ञान नहीं है। पूर्ण विशद प्रत्यक्ष आत्माको जाननेवाला केवलज्ञान है। श्रुतज्ञान अपूर्ण है, आत्मद्रव्यकी कुछ गुण व पर्यायोंको जान सक्ता है, आत्माके अनन्त गुण व अनन्त पर्याएँ श्रुतज्ञानकी अपेक्षा अगम्य हैं। जब आत्मा ज्ञानावरण कर्मका क्षय करके केवलज्ञानी होजाता है तब उसके ज्ञानमें सर्व ज्ञान गर्भित है, श्रुतज्ञानका विषय भी उसमें गर्भित है। केवलज्ञानी परमात्मा आनन्दामृतका सदा पान करते हैं व मुक्त होजाते हैं ॥ ५ ॥

(जिन इस्ट कमल सुइ कमल मओ) कमलके समान प्रफुल्लित आत्मा राग द्वेष रहित, जिन स्वरूप व शुद्धात्मस्वरूप शुद्ध कमलके समान झलकता है (उत्पन्न कमल सुइ रमन पओ) ऐसा कमल जब सम्यग्दृष्टीके भावमें पैदा होजाता है तब वह सम्यक्ती स्वयं अपनी आत्मामें मगन होजाता है (जिन कलन न्यान सुइ रमन मओ) उस समय वह आत्मज्ञानी जिन स्वरूपका अभ्यास करता है, उसका ज्ञान ज्ञानमें रमण करता है (सुइ कम्म विलय सुई मुक्ति पओ) इसी शुद्धोपयोगसे कर्म क्षय होजाते हैं और यह जीव स्वयं मुक्तिको प्राप्त कर लेता है ॥ ६ ॥

(जिन इष्ट रमन सुइ ममल पओ) परम प्रिय जिन स्वभावमें रमन करना ही स्वयं एक निर्मल शुद्धात्मीक पद है (उत्पन्न रमन सुइ कम्म पओ) जब स्वात्मामें रमणता झलक जाती है, कर्मोंका क्षय होजाता है (उववन्न उवन सुइ रमन पओ) तब यह आत्मा स्वयं आत्मीक रमणतामय केवलज्ञान पदको पैदा कर लेता है

(मय विपिय अमिय रस सिद्धिपओ) तब सर्व संसार-भ्रमणका भय दूर होजाता है। यह परमात्मा आनन्दामृत रसका पान करता हुआ सिद्धपदको पालेता है ॥ ७ ॥

(जिन इस्ट सुलन्कृत लीन मओ) यह सम्यक्ती तत्वज्ञानी महात्मा परम प्रिय वीतरागभावसे शोभित होता हुआ उसी जिन स्वभावमें लीन होजाता है (लकृत उववन्न सु सिद्धि पओ) इस शोभनीक आत्मानुभवसे सिद्ध पदका प्रकाश होजाता है (पर्जय पर्जाय सु विलय मओ) तब सर्व सांसारिक पर्यायोंकी परिणतिये विला जाती हैं (जिन न्यान रमन सुइ मुक्ति पओ) वीतरागता सहित शुद्ध ज्ञानमें रमन करना ही स्वयं मुक्तिका प्राप्त करना है ॥ ८ ॥

(विन्याय न्यान सुइ इष्ट पओ) भेदज्ञान पूर्वक आत्मानुभव ही हितकारी मोक्षका मार्ग है (अन्मोय सहाउ उवन्न मओ) यही प्रकाशमान आनन्दमई स्वभाव है (मय मुरति न्यान सु इस्ट पओ) यह परमप्रिय आत्मज्ञान अपने स्वरूपमें मगन होता हुआ आनन्द मूर्तिसा होजाता है (मय उवन सहाव सु उवन पओ) जब आत्मानन्दका स्वभाव झलक जाता है वही आत्माका प्रकाशित पद है। अर्थात् आत्माके स्वभावमें तल्लीन होनेसे परमानन्दमई एक उन्मत्त भाव प्रगट होजाता है, जहां आत्मरसके सिवाय दूसरे रसका स्वाद नहीं आता है ॥ ९ ॥

(जिन नेय नेय सुइष्ट मओ) परमप्रिय हितकारी वीतराग भावको मनन करते हुए (उववन अन्मोय सु ममल पओ) आनन्दमय शुद्ध पदका प्रकाश होता है (जिन न्यान रमन सु अनेय मओ) इस अभ्यासको करते२ आत्मीक ज्ञानमें ऐसी रमणता होती है कि फिर मनन नहीं रहता है, थिरता होजाती है (जिन नेय उवन सु मुक्ति पओ) जब जिनेन्द्रपदका प्रकाश होजाता है तब यह आत्मा मुक्त होजाता है ॥ १० ॥

(जिन समय उवन सुइष्ट पओ) वीतराग आत्माका प्रकाश होना ही इष्ट हितकारी पद है (उववन्न समय उववन्न पओ) वही प्रकाशित आत्मा है, वही प्रकाशित पद है। अर्थात् जहां आत्मा अपने ही आत्मामें मगन होता है वही मोक्षका मार्ग है, वही आत्माका शुद्ध स्वरूप है वही आत्मीक पद है (जिन ऋतु सुय सुन्यान मओ) यही जिनेन्द्रका सत्य धर्म है, यही स्वयं ज्ञानस्वरूप है (जिन नतानंत सु इस्ट पओ) वही अनन्तानन्त गुण पर्यायोंका ज्ञाता परम हितकारी पद है ॥ ११ ॥

(जिन वयनु जितुच सु इस्ट मओ) श्री जिनेन्द्र द्वारा प्रकाशित श्री जिन वचन परम हितकारी हैं (जिन

ममलपाहुड
॥१९७॥

रमन आलाप सु जिनय पओ) उसका यही उपदेश है कि वीतराग भावमें रमन करना तल्लीन होना वही कर्मोंको जीतनेका उपाय है (जिन सव्द इस्ट सुइ न्यान मओ) जिन शब्द परम हितकारी है। यही शब्द ज्ञान स्वरूपी शुद्ध आत्माका वाचक है। जो सर्व परको जीते वही जिन है, आत्मा है, वीतराग विज्ञानमय भावका स्वामी है (जिन सव्द वियार सु दिस्टि मओ) जिन शब्दका विचार सम्यग्दर्शन सहित व श्रद्धा सहित स्वात्म-रमणका कारण है ॥ १२ ॥

(जिनुत्त सु न्यान जिनुत्त मओ) जिनेन्द्रने जिस आत्मज्ञानका उपदेश किया है वह वैसा ही श्रद्धान करनेयोग्य है जैसा जिनेन्द्रने कहा है (जिन सव्द सहाउ सु ममल पओ) जिन शब्दका स्वभाव अर्थात् जिन शब्दसे जो अर्थ या भाव झलकता है वही निर्मल शुद्ध पद या उपाय है (जिन उत्तु सव्द उत्पन्न मओ) जिसके अन्तरंगमें जिनोक्त शब्दोंका प्रकाश है अर्थात् जो जिनेन्द्र कथित मंत्रों द्वारा जप या ध्यान करता है। वे मंत्र हैं—णमोकार मंत्र, अ सि आ उ सा, अरहंत सिद्ध, ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ ह्रीं, सोहं, ह्रीं, श्रीं, ॐ इत्यादि (जिन दिस्टि सव्द सुइ सिद्धि पओ) तथा जिन शब्दके द्वारा जो वीतराग आत्माका अनुभव करता है वही सिद्धपदको पाता है। ध्यानकी प्रारंभिक अवस्थामें मंत्रोंके आश्रयकी जरूरत पड़ती है। उनके द्वारा शुद्धात्माका अद्वैत व एकाग्र व सहज समाधि रूप अनुभव ही मोक्षको पहुँचानेवाला है ॥ १३ ॥

(जिन उत्तु न्यान सुइ परिनमओ) जिनेन्द्रने जो सम्यग्ज्ञानका उपदेश दिया है उस रूपमें अपनेको परिणमाना चाहिये। अर्थात् शुद्धात्मामें रमण करना चाहिये (जिन परिनय जिनपति कम्म पओ) इस जिनके स्वभावमें परिणमन करनेसे कर्मोंके पदोंको या कर्मोंके स्थानोंको जीता जाता है। कर्म जीतनेका उपाय स्वात्म रमण है (जिन न्यान अन्मोय सु अवय पओ) उस वीतराग भावमें आनन्दमय होजाना ही अविनाशी पद है या अविनाशी पदका कारण है (जिन न्यान न्यान सुइ मुक्ति पओ) जिनका ज्ञान है सोई आत्मज्ञान है, सोई मोक्षका मार्ग है। आत्माको ही जिन कहते हैं, यही कर्म विजयी वीर हैं। इसीमें एकतानता पाना ही मुक्तिपद है, यही मोक्षमार्ग है व यही मोक्ष है ॥ १४ ॥

(जिन उत्त सद्ध सुइ परम पओ) जिनेन्द्र कथित शब्दोंके मनन करनेसे परम पदका लाभ होता है (जिन उत्तु समय परमान मओ) जिनेन्द्र कथित आगम ही प्रमाणरूप है, यथार्थ मानने योग्य शास्त्र है (जिन उत्तु दिप्ति सुइ दिस्टि मओ) जिनेन्द्र कथित आत्मज्ञानका प्रकाश सो ही अनुभव करने योग्य है (जिन सव्द प्रिये

सुई मुक्ति गओ) जिसको जिन शब्द प्यारा है, जो जिन शब्दके द्वारा जिन स्वभावी आत्माका अनुभव करता है वही मुक्तिमें पहुँच जाता है ॥ १५ ॥

(जिन रज उवन हिययार मओ) जिन स्वभावी आत्मामें रंजायमान होना यही हितकारी मार्गका उदय है। अर्थात् जिसने आत्माके स्वरूपमें रमण कर आनन्द लाभ किया, उसीको हितकारी मोक्षमार्ग मिलगया (भय विपिय अमिय रस रमन पओ) उसका सर्व संसारमें पतनका भय दूर होगया, उसका आत्मानन्दरूपी अमृतरसमें रमण होगया (जिन रन सहाउ विन्यान मओ) जिनमें रंजायमान होना सो ही सम्यग्ज्ञानका स्वभाव है (वै दिप्ति रमन जिन रमन पओ) वही आत्म-ज्योतिमें रमण है-वही जिन भगवानमें रमण है ॥ १६ ॥

(जिन मिनय रन सुइ ममल पओ) राग द्वेष विषयी व कर्मविजयी आत्मामें मगन होना ही शुद्धोपयोग है (जिननाथ रमन सुइ सिद्धि पओ) वही श्री जिनेन्द्रमें रमन है, वही परमात्मामें रमण है, वही सिद्धि पद है, वही आत्मसिद्धिका उपाय है या वही सिद्ध स्वरूप है। (जिन नद सुय परमानदो) श्री जिनेन्द्रके गुणोंमें आनन्दित होना ही परमानन्दमय होजाना है (अन्मोय अवलि बलि मुक्ति पओ) यही आनन्दमय वलि है, या पूजा है, या यज्ञ है जिसके समान और कोई वलि नहीं होसक्ती। अपने सर्व इंद्रिय विषयोंको व कषायोंके कर्मोंको जिसमें बलि किया जावे-क्षय किया जावे ऐसा यह निरुपम यज्ञ आनन्दमय आत्मामें रमण है, वही मोक्षमार्ग है ॥ १७ ॥

(जिन रंज रमन सुइ नंद मओ) जिनके स्वभावमें रंजायमान होकर रमण करना सोई आनन्दमय भाव है (अन्मोय अवलि विदु विलय पओ) इस आनन्दभावमें रमण करना सो ही निरुपम वलिदान है या यज्ञ है, अथवा जहां आनन्दमय भावका विनाश नहीं है, प्रवाह रूपसे धारावाही आनन्दानुभव है वहां सर्व विषयसुखकी तृष्णाका विष दूर होजाता है या मोहनीय कर्मका विष क्षय होजाता है (जिन तारन तरन सहाउ मओ) तब फिर वह श्री अरहन्त परमात्मा जिन होजाता है। अरहन्त भगवानका स्वभाव तारणतरण है, वे भव्य जीवोंको धर्मोपदेश देकर संसारसे पार करते हैं व आप भी भवसागरसे पार होजाते हैं (सिद्धु समय स उत्तु सु मुक्ति पओ) वे ही शुद्ध आत्मा हैं, वे ही मुक्तिके पदमें विराजित परमात्मा कहे गए हैं ॥१८॥

(जिन जिनयति कम्म उवन पओ) बन्ध प्राप्त व उदय प्राप्त कर्मोंको जीतनेवालेको जिन कहते हैं (उवन्न

·यान विरसतु) वे जिनेन्द्र ज्ञानावरणके क्षयसे प्रकाशित केवलज्ञानका विलास करते हैं, वे केवलज्ञानमें मगन हैं (जिन अर्थति अय सु समय मऊ) वे ही जिन यथार्थ आत्म पदार्थ है, वे ही रत्नत्रय स्वरूप हैं, वे ही स्व-समय रूप हैं (आयरन सिद्धि सपत्) वे ही स्व चारित्र रूप हैं, वे ही सर्व कर्मक्षयकर सिद्धगतिको पाते हैं ॥१९॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें श्री तारणस्वामीने प्रत्येक पदमें अपने आत्मानुभव पूर्ण शब्दोंके द्वारा स्वात्मानुभव करनेका उपाय स्वात्ममननको झलकाया है। यह एक प्रकारका आत्माका स्तवन है, यही जिन स्तुति है। जिन आत्माको ही कहते हैं, यही अपने पुरुषार्थसे-स्वात्मरमणसे कषायोंको व कर्मोंको जीत लेता है। सम्यक्ती भव्यजीवको उचित है कि निज आत्माको शुद्ध निश्चयनयसे निश्चय ज्ञान चेतनाका स्वामी, शुद्ध ज्ञान व दर्शनोपयोगका धारी, अमूर्तीक, स्वात्म परिणतिका ही कर्ता, स्वात्मानन्दका भोक्ता, अपने ही शरीराकार विराजित सिद्ध समान परम शुद्ध वीतरागमय जाने, माने वैसा ही वारवार देखे अनुभवे, उसीमें तन्मय होकर सहज समाधि प्राप्त करे। सहज समाधि ही आत्मानन्दका प्रकाश करती है तथा वीतराग भाव झलका कर कर्मोंका संहार करती है। साधकको शब्दोंके द्वारा ही मनन करना चाहिये। ॐ, ह्रीं, श्रीं, सोहं आदि मंत्रोंके द्वारा या जिन शब्दके द्वारा शुद्धात्माका मनन करना चाहिये। मनन करते२ जब परिणाम थिर होजाते हैं तब शुद्धोपयोग प्रगट होजाता है। यही भाव सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी एकतारूप है। यही स्वसमयरूप है। यही जिन स्वरूप है। द्वादशांग वाणीका सार ही यह है जो स्वात्म रमणरूप मोक्षमार्गको पाया जावे। इसी मार्गके सेवनसे सदा ही आनन्दका लाभ होता है। जितना २ अधिक परमानन्द झलकता है उतना २ अधिक कर्मोंका संवर व कर्मोंका क्षय होता है। आत्मामें ध्यानकी अग्नि जलाकर राग द्वेषोंकी व कर्मोंकी वलि चढाना यही सच्चा यज्ञ है, यही सच्ची जिनेन्द्रकी पूजा है। इस आत्मयज्ञसे यह आत्मा उसी तरह शुद्ध होता है जैसे अग्निद्वारा राखसे निकाला हुआ सोना शुद्ध होता है। सिद्धपदका उपाय निजात्माका अनुभव ही है। यही मोक्ष है व यही मोक्षका उपाय है। भव्य जीवोंको यह पक्का श्रद्धान करके निजात्माका अनुभव करना चाहिये। यही वह अमोघ मन्त्र है जो मोहनीय कर्मरूपी सर्पके विषको दूर कर देता है। जिससे क्षीणमोही होकर यह शेष घातीय कर्मोंका भी क्षय करके अरहन्त परमात्मा होजाता है। अरहन्त भी स्वात्मरमण रूप हैं, परम वीतराग हैं, परमानन्दमय हैं, अनन्त सुखी हैं, अनन्त ज्ञानी हैं, अनन्त बली हैं, वे ही अरहन्त अन्तमें कर्मोंसे

छूटकर मोक्षपद पालेते हैं। मुक्तिका मार्ग कहीं बाहर नहीं है, भीतर ही है। शुद्धात्माका श्रद्धान ज्ञान-चारित्ररूप ही है। वह कथन योग्य नहीं है, मनन योग्य नहीं है, केवल मात्र अनुभव करने योग्य है। जहांतक अनुभव न हो आगमका पढ़ना, तत्वोंका मनन, अर्हंत भक्ति, जप, पाठ, तप आदि सर्व सहायक हैं। परन्तु विना आत्मानुभवके ये मोक्षमार्ग नहीं होसकते। क्योंकि मोक्ष भी स्वात्मानुभवगम्य है। अतएव उसका मार्ग भी स्वानुभवगम्य है। जैसा समयसार कलशमें कहा है—

क्लिश्यतां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्मभिः। क्लिश्यतां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरं ॥
साक्षान्मोक्ष इदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं। ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपि प्राप्तुं क्षमन्ते न हि ॥ १०–७ ॥

भावार्थ—मोक्षमार्गसे विरोधी कठिन२ कार्योंसे कष्ट उठाओ तो उठाओ या महाव्रत व तपका भार वहकर चिरकाल तक खेद उठाकर दुःख भोगो। मोक्ष तो साक्षात अविनाशी पद स्वानुभवगम्य आप ही है, ज्ञान स्वरूप है, सो आत्मज्ञानके विना कभी भी प्राप्त नहीं होसकता है। आत्मज्ञान सहित श्री जिनेन्द्र कथित तपादि व महाव्रतादि मोक्षमार्ग हैं। आत्मज्ञान विना नहीं।

(२४) इष्ट उत्पन्न छन्द गाथा ४६९ से ४७९ तक।

जिन जिनवर उत्तउ जिनय जिनु, जिनु वयनु सब्द सहकार मओ।
जिन दिप्ति दिस्टि सुइ सब्द रओ, जिनु इस्ट दर्स दर्सतओ ॥ १ ॥
जिन इस्ट सुयं सुइ दस मओ, जिन इस्ट दर्स सुइ लष्य रओ।
जिन इस्ट अलापो अलप मओ, जिन नन्तानन्त सुय सुरओ ॥ २ ॥
जिन इस्ट गम्य सुइ न्यान मओ, जिन इस्ट अगम सुइ अगम रओ।
जिन इस्ट अषय सुइ रमन मओ, जिन सुयं रमन गुड उवन पओ ॥ ३ ॥
जिन इस्ट विन्यान सु रमन पओ, जिनु विंद विन्यान सु उवन पओ।
पय विंद इस्ट सुइ सुन्य मओ, उववन्न नन्त जिन समय मओ ॥ ४ ॥

ममलपाहुड
२०१॥

जिन इस्ट कमल सुइ कमल मओ, जिन कमल इस्ट जिन उत्त पओ ।
जिन उत्तु सु उत्तु सु परिनैमो, जिन इस्ट प्रमान सु उवन मओ ॥ ५ ॥
जिन भय विनासु सु अभय मओ, जिन सल्य संक विलयन्त पओ ।
जिन इस्ट दर्स दर्संति पओ, अनिस्ट भाउ सु वि॰य पओ ॥ ६ ॥
जिन उवन इस्ट उत्पन्न मओ, उववन्न हियार सु रमन पओ ।
जिन सह सहयार सु दर्स मओ, जिन समय सहाव सु दिस्टि मओ ॥ ७ ॥
जिन दिप्ति दिस्टि सुइ रमन मओ, जिन दिप्ति इस्टि सुइ दिप्ति मओ ।
जिन सब्द प्रियो उवरमन मओ, जिन उवन सहाव सु मुक्ति पओ ॥ ८ ॥
जिन दिप्ति दिस्टि रै रमन मओ, जिन इस्ट सब्द सुइ मुक्ति पओ ।
जिन लषन कमल सु दर्स मओ, उत्पन्न दर्स जिन दर्स मओ ॥ ९ ॥
जिन अर्क दर्स सुइ सुयं मओ, जिन अर्थति अर्थ सु उवन मओ ।
जिन समय सहाउ सु रमन मओ, सहयार उवन अवयास पओ ॥ १० ॥
जिन दर्स इस्ट उत्पन्न मओ, जिन नन्तानन्त सु दिप्ति पओ ।
अन्मोय इस्ट उत्पन्न मओ, जिन षिपक दर्स सुइ न्यान पओ ॥ ११ ॥
जिन भय षिपनक सुइ अमिय मओ, जिन विंद रमन सुइ ममल पओ ।
जिन कमल सु केवल दर्स मओ; जिन कम्म विलय सुइ मुक्ति पओ ॥ १२ ॥
जिन तारनतरन सु दिप्ति रओ, जिन दिप्ति दर्स सुइ दर्स पओ ।
जिन इस्ट दर्स उत्पन्न मओ, अन्मोय तरन जिन सिद्ध पओ ॥ १३ ॥

सुइ इस्ट दर्स जिन अगम मओ, उत्पन्न दर्स जिन उवन पओ।
भय षिषिय अमिय रस ममल पओ, अन्मोय विंद रस मुक्ति पओ ॥ १४ ॥

घत्ता—

इय दर्स इस्ट सुइ ममल पओ, उत्पन्न अमिय रस दर्स मओ।
सुइ न्यान विन्यान सु घम पओ, विष विलय अमिय रस मुक्ति गओ ॥ १५ ॥

अन्वय सहित अर्थ—' जिन जिनवर उत्तउ जिनय जिनु) श्री वीतराग जिनेन्द्रने कहा है कि जो आत्माके वैरियोंको जीतता है वही जिन है (जिनु वयन सव्द सहकार मओ) यह जिनपना जिनेन्द्रके द्वारा कथित शब्दोंके ऊपर विचार करनेसे प्राप्त होता है (जिन दिपि दिस्टि सुइ सव्द रओ) जिन स्वरूप आत्माका प्रकाश देख लेना सो ही शब्दोंमें रत होना है अर्थात् शब्दोंके भावमें लीन होनेसे–पुनः पुनः मनन करनेसे वीतराग विज्ञानमय आत्माका ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त होजाता है (जिन इस्ट दर्स नमितओ) तब श्री जिनेन्द्रको इष्ट जो सम्यग्दर्शन है उसका झलकाव होजाता है। अर्थात् श्री जिनेन्द्रने कहा है कि मोक्षमार्गमें सम्यग्दर्शन परम हितकारी है, यही जड़ है, इसके विना मोक्षमार्ग हो ही नहीं सक्ता। वह सम्यक्त आत्मज्ञानके होनेपर होजाता है। जब भेदविज्ञानके द्वारा आत्माको पर पदार्थोंसे भिन्न मनन किया जाता है तब मनन करते २ करणलब्धिके परिणामोंके द्वारा जब अनन्तानुवन्धी कषाय और मिथ्यात्वका उपशम होता है तब स्वानुभव दशा होती है। उस समय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व स्वरूपाचरण चारित्रका एक साथ प्रकाश होजाता है–मोक्षमार्ग हाथ लग जाता है ॥ १ ॥

(जिन इस्ट सुय सुइ दर्स मओ) जिनेन्द्र भगवान द्वारा जो उपयोगी बताया गया है वह स्वयं प्रकाशित आत्मदर्शन या सम्यग्दर्शन है (जिन इस्ट दर्स सुइ लष्य रओ) इस जिनेन्द्र द्वारा कहे गये उपयोगी सम्यग्दर्शनके भीतर रत होना सो ही अनुभवने योग्य आत्मामें या मोक्ष स्वरूप आत्मामें रत होना है (जिन इस्ट भलापो अलप मओ) जिनेन्द्र भगवानने जो हितकारी वचन कहा है वह इन्द्रिय व मनसे अतीत आत्माका ज्ञान प्राप्त करना है (जिन नन्तानन्त सुय मुणओ) जो आत्मा जिन है या वीतराग है तथा अनन्तानन्त ज्ञानको रखनेवाला स्वयं प्रकाशित सूर्य है।

भावार्थ—जिनेन्द्रके उपदेशका लाभ यही है जो अपने आत्माका स्वभाव सर्वज्ञ वीतराग परमात्माके समान सूर्यके सदृश जान लिया जावे। सूर्यमें जैसे विना रागद्वेषके प्रकाशितपना है वैसे आत्मामें प्रकाशपना है ॥ २ ॥

(जिन इस्ट गम्य सुइ स्यान मओ) जिनेन्द्र भगवानने जिसे उपयोगी अनुभवने योग्य बताया है वह ज्ञान स्वरूप आत्मा है (जिन इस्ट अगम सुइ अगम रओ) जिनेन्द्र कथित उपयोगी पद मन व इन्द्रियोंसे अगोचर स्वयं अतीन्द्रिय ज्ञानमें रमणरूप है। अर्थात् अतीन्द्रिय ज्ञानमें रमण करनेसे आत्मज्ञान होता है। (जिन इस्ट अयय सुइ रमन पओ) जिनेन्द्रको इस्ट ऐसा वह अविनाशी आत्मा स्वयं आत्माके स्वभावमें रमणरूप है (जिन सुय रमन सुइ उवन मओ) वही आत्मीक पद जिन है। स्वयं अनुभव रूप है व स्वयं प्रकाशरूप है, उसे परकी सहायताकी जरूरत नहीं है ॥ ३ ॥

(जिन इस्ट विन्यान सु रमन पओ) वही परम प्रिय भेदविज्ञानसे प्राप्त स्वयं आत्मरमण रूप पद है अर्थात् जब भेदविज्ञानका मनन किया जाता है तब ही उस आत्माका दर्शन होता है (जिनु जिन विन्यान सु उवन पओ) वही वीतराग विज्ञानमय उदयरूप पद है (पय जिद इस्ट सुइ सुन्न मओ) वही पद स्वानुभवगम्य उपादेय व सहज समाधिरूप शून्य पद है अर्थात् जिसमें संकल्प विकल्प नहीं है—राग द्वेषके विकार नहीं है। (उववन नन जिन मयय मओ) वह पद उदयरूप अनन्तशक्तिमई परम वीतराग व स्वसमयरूप है—स्वात्मामें रमणरूप है ॥ ४ ॥

(जिन इस्ट कमल सुइ कमल मओ) वही जिनेन्द्र द्वारा कथित उपादेय कमलपद है। अर्थात् वही स्वयं प्रफुल्लित कमलके समान विकसित आत्मस्वरूप है (जिन कमल इस्ट जिन उन पओ) वही वीतराग विकसित कमल समान हितकारी पद है जैसा जिनेन्द्रने कहा है (जिन उत्तु म उत्तु परिनेमी) वही जिनेन्द्र कथित पद स्वस्वरूपमें परिणमनशील है (जिन इस्ट प्रमान सु उवन मओ) वही वीतराग विज्ञानमय सम्यग्ज्ञान स्वरूप प्रकाशित पद है ॥ ५ ॥

(जिन भय विनासु सु अभय मओ) वही जिन पद सर्व भयोंको दूर करनेवाला एक सुन्दर अभय पद है जिसमें रमण करनेसे निःशङ्क भाव होजाताहै। जैसे कोई सुरक्षित किलेमें बैठकर अपनेको अभय समझे वैसे ही इस अभय आत्मामें तिष्ठनेसे निर्भय भाव प्राप्त होजाता है (जिन सहज सह विन्यन पओ) उस पदमें

ममलपाहुड

न कोई माया, मिथ्या, निदान शल्य है न कोई शंका है। पूर्ण निश्चय है कि मैं परमात्माके समान शुद्ध आत्म द्रव्य हूं (जिन इस्ट दर्स दमैंति पओ) वही वीतराग उपादेय सम्यग्दर्शन द्वारा देखनेयोग्य पद है अर्थात् सम्यग्दृष्टी ही उस शुद्ध आत्मपदका अनुभव करते हैं (अनिस्ट भाव सु विलय पओ) आत्माके अनुभवके विरोधी सर्व ही रागादि भावोंका वहां पता नहीं है। स्वानुभवमें एक अनुपम अद्वैत भाव झलकता है, वहां कोई और विकल्प या विचार नहीं रहते हैं ॥ ६ ॥

(जिन उवन इस्ट उत्पन्न मओ) जहां श्री वीतराग हितकारी पद प्रकाशित है (उववन्न हियार सु रमन पओ) वह पद उत्पन्न रूप व हित स्वात्म रमण रूप है (जिन सह सहयार सु दर्स मओ) वह पद श्री जिनेन्द्रकी सहायतासे भलेप्रकार देखा जाता है। अर्थात् जो श्री जिनेन्द्रके वीतराग सर्वज्ञ पदको पहचानता है, वही स्वात्माके स्वरूपको पहचानता है (जिन समय सहाव सु दिस्टि मओ) वही जिनदेवका स्वाभाविक आत्मीक पद है, वही आत्मदर्शनमय है ॥ ७ ॥

(जिन दिप्ति दिस्टि सुइ रमन मओ) उस पदको श्री जिनेन्द्रने अपने केवलज्ञानकी ज्योतिसे देखा है, वह स्वात्मरमण रूप है (जिन दिप्ति इस्ट सुइ दिप्ति मओ) वही पद वीतराग ज्योतिस्वरूप, उपादेय व स्वयं ज्ञानमय है (जिन सब्द प्रियो उव रमन मओ) जिन शब्द जिनको प्रिय है वे भव्यजीव जिन शब्दके द्वारा वीतराग विज्ञानमें रमण करते हैं (जिन उवन सहाव सु मुक्ति पओ) इसीसे आत्माका वीतराग जिनमई स्वभाव पूर्ण प्रगट होजाता है और उसे मुक्तिपद प्राप्त होजाता है ॥ ८ ॥

(जिन दिप्ति दिस्टि रै रमन मओ) इस वीतराग विज्ञानमई दृष्टिमें धारावाही रमण करनेरूप ही यह पद है (जिन इस्ट सब्द सुइ मुक्ति पओ) उस पदका जो प्रेमी है उसे जिन शब्द इष्ट लगता है, वह जिन शब्दकी सहायतासे वीतराग सर्वज्ञमय पदको पाकर मुक्त होजाता है (जिन लषन कमल सुदर्स मओ) श्री जिनेन्द्रका लक्षण प्रफुल्लित कमल समान शुद्ध सम्यग्दर्शन रूप है (उत्पन्न दर्स जिन दर्स मओ) वहीं श्री जिनेन्द्रको देखनेवाला दर्शन प्रगट रहता है अर्थात् जब आत्माका स्वभाव शुद्ध होजाता है तब साक्षात् प्रत्यक्ष आत्माका दर्शन होजाता है ॥ ९ ॥

(जिन अर्क दर्स सुइ सुय मओ) जहां श्री जिनेन्द्ररूपी सूर्यका दर्शन है वहीं निज आत्माका दर्शन है। क्योंकि अपना आत्मा भी स्वभावसे श्री जिनेन्द्र सूर्यके समान है (जिन अर्थति अर्थ सु उवन मओ) श्री

ममलपाहुड ॥२०५॥

जिनका स्वभाव वही यथार्थ आत्म पदार्थ है, वही प्रकाशित रत्नत्रयमई भाव है (जिन समय सहाव सु रमन मओ) वही वीतराग आत्माका स्वभाव स्वात्म रमणरूप है (सहयार उवन अवयास मओ) उसीकी सहायतासे आकाशके समान अनन्त ज्ञानधारी अर्हंतपद प्रगट होता है ॥ १० ॥

(जिन दर्स इस्ट उत्वन्न मओ) श्री जिनेन्द्रमें परम प्रिय स्वाभाविक सम्यग्दर्शन परम अवगाढ़रूप झलक जाता है (जिन नन्तानन्त सु दिप्ति मओ) श्री जिनेन्द्र अनन्त ज्ञानमई ज्योतिस्वरूप है (अन्मोय इस्ट उत्वन्न मओ) वहीं प्रकाशित परमप्रिय आनन्द होरहा है (जिन षिपक दर्स सुइ न्यान पओ) श्री जिनेन्द्र क्षायिक दर्शन व क्षायिक ज्ञानपदके धारी हैं। अर्थात् चार घातीय कर्मोंके क्षयसे अर्हंत परमात्माके अनन्त दर्शन, अनंत ज्ञान, अनन्त सुख व अनन्त वीर्य प्रगट होते हैं ॥ ११ ॥

(जिन मय षिपनक सुइ अमिय मओ) श्री जिनेन्द्रके सर्व सांसारिक भयका नाश होगया है। वे परमामृतका स्वाद लेरहे हैं (जिन विन्द रमन सुइ ममल पओ) वे जिनेन्द्र ज्ञान चेतनामें रमण कर रहे हैं। वे ही शुद्ध परमात्मपद हैं (जिन कमल सु केवल दर्स मओ) श्री जिनेन्द्र प्रफुल्लित कमलके समान केवलदर्शनके धारी हैं (जिन कम्म विलय सुइ मुक्ति पओ) श्री जिनेन्द्र सर्व कर्मोंको क्षय करके मुक्तिपद प्राप्त करेंगे ॥ १२ ॥

(जिन तारनतरन सु दिप्ति रओ) श्री जिनेन्द्र आत्मज्योति मय तारणतरण हैं। आप भी भवसागरसे पार होंगे व बहुतोंको भवसागरसे पार करेंगे (जिन दिप्ति दर्स सुइ दर्स पओ) श्री जिनेन्द्रमें आत्मदर्शन चमक रहा है। वे स्वयं आत्मदर्शन या सम्यक्त स्वरूप हैं (जिन इस्ट दर्स उवन्न मओ) श्री जिनेन्द्रकी आत्मामें परम हितकारी आत्मदर्शन प्रत्यक्ष प्रगट होगया है (अन्मोय तरन जिन सिद्ध पओ) वे आनन्दमई हैं, वे भवसागरसे पार होकर श्री सिद्ध जिन परमात्मा पद प्राप्त करेंगे ॥ १३ ॥

(सुइ इस्ट दर्स जिन अगम मओ) वे ही उपादेय दर्शनके धारी श्री जिनेन्द्र अतीन्द्रिय पदमें शोभायमान हैं, उनकी आत्माका दर्शन इंद्रिय व मनसे नहीं होसक्ता है (उत्वन्न दर्स जिन उवन पओ) वहां ही वीतराग सम्यग्दर्शन प्रकाशरूप झलक रहा है (भय षिपिय अमिय रस ममल पओ) वहां सर्व भय क्षय होगया है, वे आनन्दामृत रसको पान कर रहे हैं व शुद्धपदमें विराजित हैं (अन्मोय विंद रस मुक्ति पओ) वे आनन्द रसका स्वाद लेते हुए मुक्ति प्राप्त करेंगे ॥ १४ ॥

(इय दर्स इस्ट सुइ ममल पओ) यही आत्मदर्शन परम उपादेय है व यही शुद्ध पद है (उत्पन्न अमिय रस

दर्स मओ इसमें आनन्दामृत रसका झलकाव नित्य अनुभवमें आरहा है (सुई न्यान विन्यान सु पर्म मओ) वही केवलज्ञानमई परमात्मपद है (विष विन्य अमिय रस मुक्ति गओ) वे अरहन्त सर्व कर्मरूपी विषको नाश करके आनन्दामृत रसका पान करते हुए मुक्ति पदको पहुँच जाते हैं।

भावार्थ—इस गाथावलीमें श्री तारणस्वामीने अरहन्त पदके लिये जिस अभ्यासकी आवश्यक्ता है उसको बताया है। भव्य जीवको उचित है कि जिनवाणी द्वारा तत्वोंको जानकर अपने आत्माके निश्चय स्वरूपपर विश्वास लावे। पूर्ण व पक्का निश्चय करे कि मेरी आत्मा सर्व रागादि दोषोंसे रहित, कर्मोंके फन्देसे रहित परम वीतराग सर्वज्ञ स्वरूप है। आत्मा और परमात्माके स्वरूपमें कोई भिन्नता नहीं है। साधकको मन्त्रपदोके द्वारा अपने ही शुद्ध स्वरूपका मनन करना चाहिये। संसार, शरीर व भोगोंसे वैराग्यवान होकर उसे मुक्तिका प्रेमी होना चाहिये। स्वतंत्रताका पुजारी बनकर वह एकांतमें बैठकर दिन-प्रतिदिन आत्माको परसे भिन्न विचार करे। उसी आत्ममननसे सम्यग्दर्शनके बाधक कर्मोंका उपशम होकर सम्यग्दर्शन प्रगट होजाता है। सम्यग्दर्शन प्रगट होते ही अपनी आत्माका साक्षात्कार होजाता है—शुद्धात्माका अनुभव होजाता है, जिस आत्माका अनुभव होता है उसका द्रव्य स्वभाव अनन्तज्ञानरूप परम वीतराग है। जैसे सूर्य वस्तुओंको दिखलाते हुए भी किसीपर राग द्वेष नहीं करता है वैसे आत्माका स्वभाव सर्व जानते हुए भी निर्विकार है। वही अविनाशी है, वही इष्ट पद है, वही स्वसमयरूप है, वही सर्व पर भावोंसे शून्य स्वरूप है, वही कमल स्वरूप है, सदा ही विकसित है, वह अपने ही स्वरूपमें परिणमनशील है, वही सम्यग्ज्ञान प्रमाणका धारी है, वही सर्व भयोंको मिटानेवाला निर्भय पद है। उसके भीतर कोई अनिष्ट भाव नहीं है, उसका स्वभाव ज्योतिके समान सदा प्रकाशरूप है। ध्याता ऐसे शुद्धात्माका मनन जिन शब्दों द्वारा या अन्य ह्रीं आदि मन्त्र द्वारा करते हैं। इसतरह शुद्धात्माके ध्यानसे शुद्धोपयोगका प्रकाश होजाता है। इसीको धर्मध्यान कहते हैं व अति शुद्ध परिणतिको शुक्लध्यान कहते हैं। इसीसे कर्मोंकी निर्जरा होजाती है और यह आत्मा अरहन्त भगवान होजाता है। तब जैसे सूर्य बादलोंमें छिपा है, बादल हटनेसे प्रगट होजावे वैसे ही यह आत्मा प्रगट होजाती है। अरहन्त भगवान मोह रहित हैं, परम वीतराग हैं, अपने स्वरूपमें मगन होकर आत्मानन्दरूपी अमृतरसका सदा पान करते हैं। वे अनन्त वीर्यधारी हैं, कभी उनको खेद या चिंता या भय या इच्छा या बाधा नहीं होती

है। रत्नत्रय धर्मका फल प्राप्त करके वे परम कृतकृत्य हैं, अनन्तज्ञान व अनन्तदर्शन स्वरूप हैं।

क्षायिक परमावगाढ सम्यक्तके धारक हैं। वे ही तारणतरण जहाज समान आप तरते हैं व भव्यजीवोंको तरनेका मार्ग बताते हैं। वे ही प्रभु सर्व कर्मरूपी विषको स्वात्म रमणरूपी ध्यानके बलसे उतार कर परम निर्विष निजानन्दमई अमृतका स्वाद लेनेवाले सदा बने रहते हैं। शरीरसे रहित मुक्त होजाते हैं, सिद्ध परमात्मा होजाते हैं। तात्पर्य यह है कि इस मानवजन्मको सफल करना चाहो तो भव्यजीवोंको आत्म–सिद्धिका पुरुषार्थ करना योग्य है, अपने इष्टपदको अपनेमें प्रकाश करना योग्य है। मोक्ष स्वभाव यह अपना स्वरूप ही है व मोक्षमार्ग भी आप ही है। आप हीसे आप शुद्ध होता है। जैसे वृक्ष स्वयं रगडकर अग्नि होजाते हैं। समयसार कलशमें कहा है—

एको मोक्षपथो य एष नियतो दृग्ज्ञप्तिवृत्यात्मक । तत्रैव स्थितिमेति यस्तमनिशं ध्यायेच्च तं चेतति ॥
तस्मिन्नेव निरतं विहरति द्रव्यान्तराण्यस्पृशन् । सोऽवश्यं समयस्य सारमचिरान्नित्योदयं विन्दति ॥ ४७–१० ॥

भावार्थ—मोक्षका मार्ग सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी एकतारूप निश्चयसे एक रूप ही है। जो कोई अन्य द्रव्योंकी तरफसे उदासीन होकर उसीमें जम जाता है, उसीको रात दिन ध्याता है उसीका अनुभव करता है, उसीमें सदा विहार करता है, वह अवश्य नित्य उदयरूप समयसार या शुद्धात्माको शीघ्र ही अनुभव करता है।

(२९) ताल्ह या ताल छन्द गाथा ४८० से ४९६ तक।

जिन उवएसिउ ममल पउ, परमानन्द सहाउ।
परम निरञ्जन परम पउ, भय पिपनक ममल सहाउ ॥ १ ॥
तारन तरन सु समय मउ, न्यान विन्यान स उत्तु।
ममल सहावे ममल पउ, भय पिपनक सिद्धि संपत्तु ॥ २ ॥

तत्काल उवनउ न्यान विन्यानं, सु सुद्ध स चेयन भव्व पमानं ।
तरुवा तं तरनइ भेउ संजुत्तु, सु भय षिपनक हे भव्व स उत्तु ॥ ३ ॥
तरुवा तं उवनह उवन सहाउ, सु अष्यर अषयह भेउ सुभाउ ।
ॐकार ऊवनो विद सहाउ, विन्यान विंद सह नन्द सुभाउ ॥ ४ ॥
सुपद अर्थह परमप्प स उत्तु, सु ममल सहावे सिद्धि संपत्तु ।
सु अर्थह दर्सिउ अर्थ समर्थु, तरुवा तत्कालह कम्म गलन्तु ॥ ५ ॥
तं कमल कलं तउ कलिय स उत्तु, तं कारन कार्जह न्यान उवन्नु ।
जं उत्तउ जिनवर ममल सहाउ, तं भय षिपनक हे भव्व सुभाउ ॥ ६ ॥
समत्तह सहियो न्यान विन्यातु, समत्तह गलियो कम्म उवन्नु ।
संसार निवारन संसय मुक्कु, निसंक सहावे कम्म गलन्तु ॥ ७ ॥
तरुवा तं नन्तानन्त नियन्तु, सु ममल सहावे कम्म गलंतु ।
जं जिनवर उत्तउ भव्वु स उत्तु, तं भय विनास हे कम्म जिनन्तु ॥ ८ ॥
तरुवा तं कमल सहाव संजुत्तु, तं रमनह रमियो जिनह पउत्तु ।
जं जिनवर लंकृत न्यान सहाउ, तं परिनै जुत्तउ भव्व सुभाउ ॥ ९ ॥
तरुवा तं तरनह सरनि विमुक्कु, सुन्यान सहावे ममल मुनन्तु ।
आसा अस्नेह सुभाव गलन्तु, सो लाज लोभ भय गारव गलंतु ॥ १० ॥
विभ्रम विमोह सभाव गलंतु, जनरंजन राग दोस विलयन्तु ।
कलरंजन पर्जव दिस्टि गलंतु, मनरंजन गारव सरनि विमुक्कु ॥ ११ ॥

ममलपाहुड
॥२०९॥

दर्सन मोहह मय अन्ध विलंतु, तं न्यान सहावे दोस गलतु ।
सुन्यान विन्यानह जिनह स उत्तु, सु भय षिपनक है भव्वु स उत्तु ॥ १२ ॥
अप्पापर आनिउ न्यान विन्यान, पर पर्जव गलियो कम्म उवन्नु ।
न्यानेन न्यान विलयन्ति कम्मु, तं सहजै उपजै परम धम्मु ॥ १३ ॥
परमप्पह परम सहाव संजुत्तु, पदमर्थह परम तत्तु जिन उत्तु ।
सु जिनवर उत्तउ जिनय पउत्तु, सु ममल सहावे कम्म गलंतु ॥ १४ ॥
सु न्यान आवर्न न दर्सियउ, पर पर्जय सरनि न पेसियऊ ।
तरुवा तं तरनह न्यान सहाउ, सु भय पिपनक है ममल सुभाउ ॥ १५ ॥
तरुवा तं सइयो रूव अरूव, उत्पन्न हियार सहयार पुनन्तु ।
सु न्यान विन्यानह समय स उत्तु, अन्मोय संजुत्तउ मुक्ति पहुत्त ॥ १६ ॥

घत्ता ।

इय तरुव संजुत्तउ, न्यान विन्यान सु ममल पऊ ।
तत्काल उवन्न सहाउ, भय षिपिय भव्व सो मुक्ति गऊ ॥ १७ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(जिन उवएसिउ ममल पउ) श्री जिनेन्द्र भगवानने शुद्ध पद या मार्गका उपदेश किया है—मोक्षमार्गका शुद्ध स्वरूप झलकाया है, जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रकी एकता स्वरूप स्वानुभव है (परमानद सहाउ) वही परमानन्द स्वभावका धारी है (परम निरंजन परम पउ) वही परम शुद्ध रागादि अंजनोंसे रहित निरंजन परम पद है (भय षिपनक ममल सहाउ) वही सर्व संसारके भयोंको क्षय करनेवाला है, वही शुद्ध स्वभाव है ॥ १ ॥

(तारन तरन सु समय मउ) वही स्वानुभव स्वसमय रूप है, शुद्धात्मामें रमण रूप है, यही वह जगह है जिसपर चढकर भव्यजीव संसारसे पार होजाता है व यही वह आदर्श है जिसे पाकर दूसरे भी भव

सागरसे पार होते हैं इसलिये यही तारनतरन है (न्यान विन्यान स उत्तु) इसीको सम्यग्ज्ञान या भेदविज्ञान कहते हैं। जहां स्वानुभव होता है वहां आप ही अपनेको सर्व पर विभावोंसे भिन्न देखता है (ममल सहावे ममल पउ) इसी शुद्ध आत्मीक स्वभावमें रमण करनेसे शुद्ध परमात्माका पद प्रगट होता है (भय षिपनक सिद्धि सपत्तु) तब सर्व भय क्षय होजाता है और यह आत्मा निर्भय सिद्धिको पालेता है-मुक्त होजाता है॥२॥

(तत्काल उवनउ न्यान विन्यानं) शास्त्र मनन व गुरुके उपदेशका मनन करते करते जब करणलब्धिका समय होता है, समय२ विशुद्ध परिणाम अनन्तगुणे अधिक होते जाते हैं, तब ही यकायक सच्चा भेदविज्ञान पैदा होजाता है-अनुभवमें पर परिणतिसे भिन्न आत्मा झलक जाता है (सु सुद्ध सु चेयन भव्यु पमान) वह आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप परम शोभनीक सम्यग्ज्ञानमय प्रकाश होजाता है (तरुवा तं तरनह मेउ सजुत्तु) यही आत्मानुभव वह जहाज है जो भव्यजीवको अवश्य भवसागरसे तार देता है (सु भय षिपनक हे भव स उत्त) यह जहाज निर्भय है, इसे कोई डुबा नहीं सक्ता, जला नहीं सक्ता, ऐसा अपूर्व जहाज यह कहा गया है ॥३॥

(तरुवा तं उवनह उवन सहाउ) यह जहाज सदा प्रकाशमय स्वभावको झलकाता है। अर्थात् आत्मानुभवरूपी जहाजमें सदा आत्माका तेज झलक रहा है (सु अव्यय अवयह भेय सुभाउ) यही अविनाशी है, इसका स्वभाव ही अविनाशी है व अभेद है। इसमें कोई गुण गुणीके भेदोंका भेद नहीं है (ॐकार उवनो विंद सहाउ) ॐ मंत्रके ध्यान करनेसे सिद्धके समान आत्माका स्वभाव अनुभवमें आगया है (विन्यान विंद सह नन्द सुभाउ) यही ज्ञानका अनुभव है यही आनन्द स्वभावका प्रकाश है ॥ ४ ॥

(श्रुपद अर्थह परमप्प स उत्तु) आत्मीक पदार्थको ही परमात्मा कहा गया है। आत्माका मूल स्वभाव परमात्मारूप है (सु ममल महावे सिद्धि सपत्तु) इसी आत्माके शुद्ध स्वभावमें रमण करनेसे सिद्धि प्राप्त होती है (सु अर्थह दर्सिउ अर्थ समर्थु) आत्म पदार्थ ही आत्माके स्वरूपको देखनेको समर्थ है। मन, वचन, कायकी वहां पहुँच नहीं है। आत्मा स्वसंवेदन गोचर है (तरुवा तत्कालह कम्म गलतु) यही आत्मानुभवरूपी जहाज क्षण मात्रमें या एक अन्तर्मुहूर्तमें सर्व कर्मोंका क्षय कर डालता है ॥ ५ ॥

(त कमल कलनउ कलिय स उत्तु) उसी आत्माको अपनी ज्ञानरूपी कलियोंसे पूर्ण कमलकी उपमा दी गई है। आत्मा प्रफुल्लित कमलके समान सर्वांग प्रकाशित है (त कारन कार्जह न्यान स उत्तु) उसी आत्माको या आत्मानुभवको कारण ज्ञान व कार्य ज्ञान कहा गया है। अर्थात् आत्मा ही साधक है, आत्मा ही साध्य

है। स्वात्मानुभव ही करते करते पूर्ण स्वात्मानुभव प्रगट होता है, आपसे ही आपका प्रकाश होता है! इसलिये आत्मा ही कारण है, आत्मा ही कार्य है (त उत्तउ जिनवर ममल सहाउ) इसी शुद्ध आत्माको या शुद्धात्मानुभवको श्री जिनेन्द्रने शुद्ध स्वभावरूप कहा है (त भव पिपनक हे भव्व सुभाउ) वही निर्भय स्वभाव है। हे भव्य! उसीकी भलेप्रकार भावना कर ॥ ६ ॥

(सम्मत्तइ सहियो न्यान विन्यान) सम्यग्दर्शन सहित ज्ञान ही सच्चा भेदविज्ञान है (सम्मत्तइ गलियो कम्म उवन्न) सम्यग्दर्शनके प्रतापसे बन्ध प्राप्त कर्म गल जाते हैं (ससार निवारन ससय मुक्कु) वह सम्यग्दृष्टी संसा-रका अभाव कर चुका है। वह बहुत शीघ्र मुक्त होगा। उसको अपनी मुक्तिमें कोई संशय नहीं है (निसक सहाव कम्म गलतु) सम्यग्दृष्टीकी निज आत्मामें शंका रहित प्रतीति ही कर्मोंकी निर्जरा करनेवाली है ॥७॥

(तरुवा त नतानंत नियंतु) आत्मानुभवरूपी जहाजपर बैठनेसे अनन्तानन्त कर्मवर्गणाओंका नियंत्रण होजाता है। अर्थात् उन कर्मोंका आना रुक जाता है (सु ममल सहावे कम्म गलतु) शुद्ध स्वभावके प्रतापसे कर्मोंका क्षय होजाता है (ज जिनवा उत्तउ भव्व स उत्त) उसी सम्यग्दृष्टी ज्ञानीको श्री जिनेन्द्र भगवानने भव्यजीव कहा है (त भय विनास है कम्म जिनतु) उसका सर्व सांसारिक भय नाश होजाता है। वह कर्मोंको जीत लेता है ॥ ८ ॥

(तरुवा तं कमल सहाव सजुत्तु) वह आत्मानुभवरूपी जहाज प्रफुल्लित कमलके समान विकसित रहता है (तं रमनइ रमियो जिनइ पउत्तु) वह अपने आनन्दमें मगन रहता है, वही पवित्र जिन है (ज जिनवर लकृत न्यान सहाउ) उसकी आत्मा श्री जिनेन्द्र परमात्माके ज्ञान स्वभावसे शोभायमान है। अर्थात् उसके भीतर परमात्माके स्वभावका यथार्थ श्रद्धान तथा ज्ञान है (त परिनै जुत्तउ भव्व सुभाउ) तथा वह उसी स्वभावमें परिणमन भी कर रहा है, वही भव्य स्वभावधारी है ॥ ९ ॥

(तरुवा तं तरनइ सरनि विमुक्कु) यह आत्मानुभवरूपी जहाज तरनेवाला है। यह संसारके भ्रमणसे मुक्त होगया है (सुन्यान सहावं ममल मुनतु) उसको अपने ज्ञान स्वभावमें धारकर इसके शुद्ध स्वरूपका मनन करो (आसा असनेह सुभाव गलतु) जिससे तृष्णा व स्नेहमई विभाव भाव गल जावे (सो लाज लोभ भय गार गलंतु) तथा जगतसे लज्जाका भाव, लोभ, भय, अहङ्कार सब निकल जावे ॥ १० ॥

(विभ्रम विमोह स भाव गलतु) आत्मानुभव करते हुए सर्व विपरीत श्रद्धान व अनध्यवसान

ज्ञानके लाभमें आलस्य, ये सब कुभाव गल जाता है (जनरंजन रागदोस गलयतु) वे सब रागद्वेष दूर होजाते
हैं जिनमें जगतके प्राणी अपना मन प्रसन्न रखते हैं। परकी निन्दा प्रशंसामें राजी होनेका स्वभाव मिथ्या-
दृष्टीका होता है, सम्यग्दृष्टी इस भावसे मुक्त होजाता है (फलरंजन पर्जय दिस्टि गलतु) प्राप्त शरीरमें प्रसन्न
होनेवाली पर्याय दृष्टि या शरीरमें आपा माननेका मोह सब गल जाता है (मनरंजन गारव सरनि विमुक्कु)
मनको राजी रखनेके लिये जो अहङ्कार या घमण्ड किया जाता है। उसका मार्ग भी छूट जाता है सम्यक्ती
परवस्तुके संयोगमें न प्रसन्न होता है न कोई अहंकार भाव रखता है उसकी दृष्टि समभावरूप रहती है ॥११॥

(दर्सन मोहह भय अघ विलतु) आत्मानुभवके ही प्रभावसे दर्शन मोहनीय कर्मका क्षय होजाता है!
क्षायिक सम्यक्त प्राप्त होजाता है (त न्यान सहावे दोस गलंतु) उस आत्मज्ञानके स्वभावमें रमण करनेसे सर्व
दोष मिल जाते हैं। (सुन्यान विन्यानह जिनह स उत्त) उसीके सम्यग्ज्ञान या सच्चा भेदविज्ञान श्री जिनेन्द्रने
कहा है (सुभय विपनक हे भव्व स उत्तु) उसीको हे भव्य! सर्व भयको क्षय करनेवाला कहा है ॥ १२ ॥

(अप्पा पर आनि उन्यान विन्यान) वह भेदविज्ञान आत्माको और पर अनात्माको यथार्थपने जानता
है (पर पर्जय गलियो कम्म उवनु) पर परिणति रखनेसे अर्थात् राग द्वेष मोहभाव रखनेसे जो कर्मोंका
बन्ध होता है सो बन्ध बन्द होजाता है (न्यानेन न्यान विलयति कम्मु) आत्मज्ञानके द्वारा ज्ञानका अनुभव
करनेसे कर्म क्षय होजाते हैं (त सहज उपजै परम धम्मु) तब सहज ही स्वभावसे ही परम धर्म या परमात्म-
स्वभाव प्रगट होजाता है ॥ १३ ॥

(परमप्पउ परम भाव सजुत्तु) वह परमात्मा उसी परम स्वभावको रखनेवाला है (पद अर्थह परम तत्तु जिन
उत्तु) वही नौ पदार्थोंमें परम पदार्थ है, वही सात तत्वोंमें परम तत्व है, ऐसा जिनेन्द्रने कहा है (सु जिनवर
उत्तउ जिनय पउत्तु) उसीको जिनेन्द्र भगवानने पवित्र जिन कहा है (सु ममल सहावे कम्म गलतु) इसी शुद्ध स्वभावके
प्रभावसे सर्व कर्म क्षय होजाते हैं ॥ १४ ॥

(सु न्यान आवर्न न दरसियउ) इस अरहन्त स्वरूप परमात्मपदमें ज्ञानावरण कर्म नहीं दिखलाई
पडता है, ज्ञानावरण कर्मका क्षय होगया है (पर पर्जय मरनि न पेमियउ) अब वहां पर परिणतिके मार्गका
प्रवेश नहीं है अर्थात् मोहनीय कर्म भी क्षय होगया है, इसलिये श्री अरहन्त भगवान परम वीतराग हैं व
अपने स्वरूपमें ही मगन हैं (तरुवा त तरनह न्यान सहाउ) वे ही अरहन्त यथार्थ जहाज हैं, जो ज्ञानस्वभावी

होकर भवसागरसे पार होगए हैं (सु भय विपनक है ममल सुभाउ) उनका सर्व भय क्षय होगया है, वे अभय शुद्ध स्वभावमई होगए हैं ॥ १५ ॥

(तरुवा तं सइयो रूव अरुव) यह अरहन्तरूपी जहाज अमूर्तीक ज्ञानस्वभावी रूपमें रुचिवन्त हैं, परमावगाढ सम्यक्तमें मगन हैं (उपन्न हियार सहयार थुनंतु) श्री अरहन्तरूपी जहाजका प्रकाश हितकारी है व सहकारी है। उनकी स्तुति करनी चाहिये। श्री अरहन्त भगवानके गुणानुवाद गानेसे परिणाम शुद्ध होजाते हैं (सु न्यान विन्यानह समय स उत्तु) वे ही शुद्ध ज्ञानमय आत्मा कहे जाते हैं (अन्मोय स गुत्तउ मुक्ति पहुत्त) वे ही आनन्दमय है। इन गुणोंको लिये हुए वे ही मुक्तिमें पहुंच जाते हैं ॥ १६ ॥

(इय तरुव मजुत्तउ न्यान विन्यान सु ममल पउ भव्व) ऐसा यह आत्मारूपी जहाज ज्ञानस्वरूपी शुद्ध पदका धारी भव्य (तत्काल उवन्न सहाउ) एक ही समयमें अपने प्रकाशमान स्वभावको लिये हुए (भय विपिय भव्व सु मुक्ति गऊ निर्भय मुक्तिमें चला जाता है ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें रत्नत्रयकी एकतामें परिणमन करनेवाले सम्यग्दृष्टी आत्माके व श्री अर्हंत परमात्माके गुणानुवाद गाये गये हैं। सम्यग्दृष्टीका आत्मा जहाजके समान है। उसीको तरुवा या तरनेवाला कहा गया है। वह अवश्य संसारसे पार होगा। उसके भीतर आत्माका मूल स्वभाव जो ज्ञानमय, दर्शनमय, वीर्यमय, आनन्दमय, अमूर्तीक, अखण्ड, सर्व रागद्वेष रहित निरंजन निर्विकार है वह भलेप्रकार चमक रहा है। वह स्वात्मानुभव करनेवाला स्वयं मोक्षका कारण है, व स्वयं मोक्षरूपी कार्य है। जैसा कारण होता है वैसा ही कार्य होता है। उपादान या मूल कारण पूर्व क्षणमें कारण है, उत्तर क्षणमें कार्य होजाता है। सुवर्ण अग्निके तापके निमित्तसे स्वयं शुद्ध होता जाता है, उसके पूर्व समयकी शुद्धता उत्तर समयकी शुद्धताके लिये कारण है। मुक्त स्वभाव भी स्वात्मानुभवरूप है। वह पूर्ण है जब कि साधक स्वात्मानुभव अपूर्ण है। सम्यग्दर्शनके प्रकाशके समय स्वात्मानुभव दोयजके चन्द्रमाके समान है। वही अर्हंत भगवान या सिद्ध महाराजके पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान होजाता है। सम्यक्तीका स्वात्मानुभव भी आनन्दरूप है व अर्हंत व सिद्धका स्वात्मानुभव भी अनन्त आनन्द स्वरूप है। इसी स्वात्मानुभवसे नवीन कर्मोंका संवर होता है और बन्ध प्राप्त कर्मोंकी निर्जरा होती है। यही सच्चा तप है।

स्वात्मानुभवका प्रारम्भ उपशम सम्यग्दृष्टीके होता है। इसीके अभ्याससे वह वेदक सम्यक्ती होकर

क्षायिक सत्यग्दृष्टी होजाता है। इसीके प्रभावसे वह क्षपकश्रेणी चढकर चारों घातीय कर्मोंको क्षय करके अरहन्त होजाता है। अरहन्त तारनतरन हैं। आप भी तरते हैं व अनेक भव्योंको धर्मोपदेश देकर तारते हैं। फिर वे ही शेष चार अघातीय कर्मोंके क्षयसे सिद्ध परमात्मा होकर एक समयमें सिद्धक्षेत्रमें लोकाग्र पहुंच जाते हैं। सर्व संसारके भ्रमणके भयसे मुक्त होजाते हैं। श्री जिनेन्द्रभगवानने स्वात्मानुभवको ही तरुवा तारक कहा है, यही जहाज है। इस जहाजका निर्माण स्वयं होता है। मन वचन काय दूर रह जाते हैं। स्वात्मानुभव ही सम्यग्दर्शन है। इसके विना ज्ञान कुज्ञान है, चारित्र कुचारित्र है। इसके साथ ज्ञान व चारित्र सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र हैं। सम्यक्तके प्रभावसे अविपाक निर्जरा होती है। भवभवके बांधे कर्म विना फल दिये हुए क्षय होजाते हैं। स्वात्मानुभव प्रगट होते ही सर्व सांसारीक विषयोंकी तृष्णा मिट जाती है। जगतका स्नेह मिटकर शिवसुन्दरीका प्रेम जम जाता है। जगतसे लाज माननेका भाव, इस लोक परलोक आदि सात प्रकारका भय व सर्व प्रकारका मद या अहङ्कार दूर होजाता है। संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय तीन ज्ञानके दोष हैं सो मिट जाते हैं। निःशङ्क शुद्ध सत्य सम्यग्ज्ञानका प्रकाश होजाता है। रागद्वेष मोह चला जाता है। जगतको प्रसन्न करनेका भाव व मनको पर पदार्थमें रमण करनेका रंजायमान भाव विला जाता है। इसी स्वात्मानुभवके प्रतापसे सहज स्वभाव झलक जाता है, परमात्माका पद प्राप्त होजाता है। श्री अर्हंत व सिद्ध परमात्माका गुणानुवाद व उनके गुणोंका विचार व उनकी पूजा यह सब परम हितकारी है व सहकारी है कि भव्यजीवको निज आत्माका यथार्थ ज्ञान हो सके। भव्योंको चाहिये कि परमात्माकी भक्तिके द्वारा अपने ही आत्माकी भक्ति करें। वारवार आत्माके शुद्ध गुणोंका मनन करे। मनन करते करते स्वात्मानुभव होता है। जैसे दूधको विलोते विलोते मक्खन निकलता है। मानव जन्मको सफल करनेका उपाय इस स्वात्मानुभव रूपी जहाजपर चढकर मुक्तिद्वीपमें यात्रा करना है। आप ही जहाज है, आप ही जहाजके चलनेका सागर है, आप ही मुक्तिद्वीप है।

आपमें ही मोक्ष है, आपमें ही मोक्षमार्ग है। यह भेद भी व्यवहारनयसे है। निश्चयनयसे आप ही सदा शुद्ध एक स्वभाव ज्ञाता दृष्टा अविनाशी परम ब्रह्म है। न वहां संसार है, न आश्रव है, न बन्ध है, न वहां संवर है, न निर्जरा है, न वहां मोक्ष है, न वहां पुण्य है, न वहां पाप है। निश्चयसे वह गुण गुणीके भेदोंसे भी रहित है, वह वचन अगोचर है, मनके विचारोंसे भी परे है। यद्यपि मन द्वारा विचारते

विचारते उस आत्मारामकी ओर झुकाव होता है तथापि जब वह आत्माराम ध्यानमें आकर उपयोगरूपी भूमिकामें आ विराजता है तब मनका कहीं पता नहीं चलता है। संकल्प विकल्प रूपी मन उस समय न मालूम कहां लुप्त होजाता है। वास्तवमें आत्मा सर्व विभाव रहित, कर्म रहित व शरीर रहित है। यही परमात्मा है। आत्माको जाने सो परमात्माको जाने। परमात्माको जाने सो आत्माको जाने। परमात्मा पूजा आत्मपूजा है। आत्मपूजा परमात्मा पूजा है। परात्मा स्तुति आत्मस्तुति है। आत्मस्तुति परमात्मा स्तुति है।

---

(२६) कण्ठ छन्द गाथा ४९७ से ५०१ तक।

कमल कण्ठ जिन उत्तयउ, उव उवन उवन दसंतओ।
उव उवन सहावे विंद रऊ, सो कमल विंद सिधि रत्तओ॥ १ ॥
भय पिपनक अभय उवन पऊ, उव उवन हियार संजुत्तओ।
सहयार तरन सुइ उवन मऊ, तं अर्क विंद सुइ सिद्धओ॥ २ ॥
सो कण्ठ रमन जिन उवन सहाओ, भय पिपनक रस अमिय संजुत्तु।
सो कमल कण्ठ सुइ न्यान उवनू, सुइ सुद्ध सरूवे ममल पउत्तु॥ ३ ॥
सो कमल ऊवनो केवल उत्तु, सो उत्त जिनुत्तउ उवन संजुत्तु।
सो उवन उवन हिययार पउत्तु, सो उवनो ममल सहयार संजुत्तु ॥ ४ ॥
सो अर्थति अर्थह रमन संजुत्तु, सो न्यान विन्यानह जान जिनुत्तु।
सु अपय रमन सुइ रमन संजुत्तु, सु समय विंद रस कमल जिनुत्तु॥ ५ ॥
सु कमलह कलियो अलषु सु लषु, सुगम अगम पय अर्थ संजुत्तु।
सो उत्त सहावे पयडि संजुत्तु, सो पय अगम्य सुइ नन्त स उत्तु ॥ ६ ॥

सो पथ अर्थंह पद परम सहाओ, पद अर्थ सु अथ तिअर्थ सुभाओ ।
सु अर्थंह अर्थ सुयं जि उत्तु, स अर्थ सहावे समय संजुत्तु ॥ ७ ॥
सो समय सहावे सहज जिनेन्द, अवयास अर्थ सुइ पत्त आनन्द ।
सु न्यान अन्मोयह दिप्ति सजुत्तु, सुइ दिस्टि सव्द पिउ सिद्धि संयत्तु ॥ ८ ॥
जिन जिनय संजुत्तउ न्यान विन्यानु, सो कमल सहावे विद रयन्नु ।
सुइ अर्क सु अर्क अर्क स उत्तु, सो कमल विंद रस रमन संजुत्तु ॥ ९ ॥
सो कमल कलिय जिन उत्त स उत्तु, सु इस्ट इस्ट सुइ उवन स उत्तु ।
सो दर्सिउ इस्ट सु इस्ट संजुत्तु, उव उवन दर्स सुइ ममल संजुत्तु ॥ १० ॥
सु कमल कलंतो कण्ठ सुभाउ, सुकमल ठंकारे मुक्ति सहाउ ।
सु कमल अक जिन अर्क सु अर्क, सु अर्क कलिय जिन समय सुअक ॥११॥
सो अर्क सुभावे कलिय जिनुत्तु, सु तरन पयप्पय ममल मुनन्तु ।
सो कमल विन्द रस रमन कलन्तु, सु न्यान अन्मोय सम सिद्धि सम्पत्तु ॥१२॥

घत्ता—

इय कमल कंठ जिन उत्तियउ, मुक्ति ठंकार संजुत्तु ।
भय षिपनक सुइ भव्य मुनी, सुइ अमिय रमन सिधि रत्तऊ ॥१३॥

अन्वय सहित अर्थ—(कमल कण्ठ जिन उत्तयउ) श्री अर्हंत् परमेष्ठीने, जो प्रफुल्लित कमलके समान हैं, अपनी दिव्यवाणीसे प्रकाशित किया है (उव उवन उवन दर्सतओ) उस वाणीमें प्रथम ही सम्यग्दर्शनके उदयको दिखलाया है (उव उवन सहावे विंद रऊ) उसी सम्यग्दर्शनके प्रतापसे ज्ञान स्वभावमें रमणता होती है (सो कमल विंद सिधि रतओ) सो ही कमल समान परमात्माका अनुभव है सो ही सिद्ध भगवानमें रमणता है ॥१॥

(भय पिनक अभय उवन पऊ) वही सम्यक्त सर्व भयोंको दूर करनेवाला है, निर्भय पदको उत्पन्न करनेवाला है (उव उवन हियार सजुत्तओ) यह सम्यक्तका प्रकाश हितकारी संयोग है (महयार तरन सुइ उवन गऊ) यही भवसागरसे तरनेको सहकारी उदयरूप पद है (त अर्क विंद मुइ सिद्धआ) इसीसे ज्ञान सूर्यका अनुभव होता है, वही ज्ञान सूर्य सिद्धपदमें पहुँच जाता है ॥ २ ॥

(सो कण्ठ रमन जिन उवन सहाओ) यह सम्यक्त जिनवाणीमें रमण करनेवाला सदा प्रकाशित स्वभाव है (भय पिनक रस अमिय सजुत्तु) यही भयोंका क्षय करनेवाला है, यही आत्मानन्दरूपी अमृत रसका अनुभव करनेवाला है (सो कमल कण्ठ सुइ न्यान ऊवनु) उसी अर्हत् कमलकी वाणीसे आत्मज्ञान उदय होजाता है (सुइ सुद्ध मल्र्ये ममल पउत्तु) सो ही शुद्ध आत्माका स्वरूप है, वही निर्मल है, वही पवित्र है ॥ ३ ॥

(सो कमल ऊवनो केवल उत्तु) सम्यग्दृष्टीकी आत्मामें केवल शुद्ध कमल समान आत्माका झलकाव होजाता है ऐसा कहा गया गया है (सो उत्त जिनुत्तउ उवन संजुत्त) वह जिनेन्द्र कथित यथार्थ ज्ञानके उदय सहित है। अर्थात् सम्यग्दर्शनके साथ सम्यग्ज्ञानका भी प्रकाश होता है (सो उवन उवन डिययार पउत्तु) वह सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान हितकारी है व पवित्र है (सो उवनो ममल सहयार सजुत्तु) सो ही शुद्ध ज्ञानके उदयको सहकारी है। अर्थात् उन्हींके द्वारा आत्मानुभव करनेसे केवलज्ञानका उदय होता है ॥ ४ ॥

(सो अर्थति अर्थह रमन सजुत्तु) वह सम्यग्दर्शन आत्मा पदार्थमें या रत्नत्रयमें रमण स्वरूप है अर्थात् उसके साथ स्वरूपाचरण चारित्र भी है। सम्यक्तीके भीतर जब आत्मानुभव होता है तब वहां शुद्धात्माका श्रद्धान भी है, ज्ञान भी है, चारित्र भी है। तीनों स्वरूप एक अभेद आत्माका ही प्रकाश है (सो न्यान विन्यानह जान जिनुत्तु) वही भेदविज्ञान है। जैसा जिनेन्द्रने कहा है वैसा ही सम्यग्ज्ञान है। आत्मा व अनात्माका यथार्थ विवेक है (सु अपय रमन सुइ रमन सजुत्तु) वहीं अविनाशी स्वरूपमें रमण है, वहीं स्वचारित्र है (सु समय विंद रस कमल जिनुत्तु) वहीं आत्माका स्वाद आरहा है, वही आनन्द रससे पूर्ण कमल समान आत्मा है ऐसा जिनेन्द्रने कहा है ॥ ५ ॥

(सु कमलह कलियो अलपु मु रुपु) वहां आत्मारूपी कमल अपने ही आत्माका अनुभव कर रहा है जो इंद्रियोंसे व मनसे अगोचर है। केवल स्वयं ज्ञानगोचर है (सुगम अगम पय अर्थ सजुत्तु) वहां सहज ही अनुभवगम्य पदार्थका प्रकाश है (सो उच सहावे पयडि सजुत्तु) वह उस स्वभावमें अपने स्वभावसे ही स्थिर है।

आत्माका स्वभाव ही आत्मस्वभावमें स्थिर रहनेका है (सो पय अगमय सुइ नन्त स उत्तु) वही आत्मानुभव-रूपी पद अनुभवगोचर अनन्तज्ञानका अनुभव कहा गया है। आत्मज्ञानी श्रुतज्ञानके बलसे केवलज्ञान स्वरूपी आत्माका अनुभव करता है ॥ ६ ॥

(सो पय अर्थह पद परम सहाओ) उस अनुभवमें आत्मा पदार्थ परम स्वभावके पदका ही स्वाद लेरहा है (पद अर्थ सु अर्थति अर्थ सुभाओ) वह पदार्थ ही यथार्थ द्रव्य है व वही रत्नत्रय स्वभाव रूप है (सु अर्थह अर्थ सुय जिन उत्तु) वही सब पदार्थोंमें सार पदार्थ है, ऐसा श्री जिनेन्द्रने स्वयं कहा है। नौ पदार्थोंमें एक आत्मा ही सार है (स अर्थ सहावे समय सजुत्तु) वही आत्मा पदार्थ अपने स्वभावमें रमण करता हुआ स्वसमयरूप है ॥७॥

(सो समय सहावे सहज जिनेंद) वहां आत्मा अपने सहज स्वभावमें मगन होता हुआ मानों साक्षात् जिनेन्द्र है या अरहंत स्वरूप है (अवयास अर्थ सुइ पत्त आनन्द) वह आकाशके समान निर्मल पदार्थ है उसको आत्मानन्दका लाभ होरहा है (सु न्यान अन्मोयह दिप्ति सजुत्तु) वही ज्ञानानन्द ज्योतिका प्रकाश है (सुइ दिस्टि सब्द पिउ सिद्धि संपत्तु) सो ही सम्यग्दृष्टि शब्दोंके द्वारा प्रिय भासती है। अर्थात् ज्ञानी जब मंत्रोंके द्वारा व अन्य पदोंके द्वारा विचार करते हैं तब वहां आत्मदृष्टिका ही प्रकाश होता है। ध्यानके अभ्यासमें शब्दका आलम्बन दूसरे शुक्लध्यान तक रहता है। इसी आत्मदृष्टिसे, इसी स्वात्मानुभवसे सिद्ध गतिकी प्राप्ति होती है ॥ ८ ॥

(जिन जिनय सजुत्तउ न्यान विन्यान) आत्मानुभवमें आत्मा जिन है, कषायोंका विजयी है, उसका ज्ञान भेदविज्ञान सहित है। अर्थात् आत्माका अनुभव परके अनुभवसे रहित शुद्ध है (सो कमल सहावे विंद रहत्तु) सो ही कमल स्वभावी आत्माका स्वाद लेता हुआ रमणीक भास रहा है (सुइ अर्क सु अर्क अर्क स उत्तु) सो ही सूर्य समान अपूर्व सूर्य अपनी किरणोंके साथ प्रकाशित है। अर्थात् अनुभवमें कोटि सूर्यसे भी अधिक तेजस्वी श्री अरहन्त परमात्माका अनुभव होरहा है (सो कमलविंद रस रमन सजुत्तु) वहां आत्मारूपी कमलके स्वादमें आत्मानन्दरूपी रसका रमण होरहा है। अर्थात् आत्मा आत्मामें मगन होकर आत्मा-नन्दरूपी अमृतका पान कर रहा है ॥ ९ ॥

(सो कमल कलिय जिन उत्त स उत्तु) सो ही आत्मारूपी कमलमें मगन जिन स्वरूप है ऐसा कहा गया है (सु इस्ट इस्ट सुइ उवन स उत्तु) वहीं परमेष्टीपदका उदय कहा गया है (सो दसिंउ इस्ट सु इस्ट संजुत्तु) उसने

अपने इस्ट मोक्ष स्वभावको देख लिया है, वह अपने इष्ट पद सहित है (उव उवन दर्स सुइ ममल सजुत्तु) वहीं आत्मदर्शनका प्रकाश है वही सर्व रागादि मल रहित है ॥ १० ॥

(सुइ मल कलतो कण्ठ सुभाउ) शुद्ध आत्मारूपी कमलका मनन करनेके लिये शब्दोंका विचार करो (सुकमल ठकारे मुक्ति सहाउ) उन शब्दोंसे मुक्ति स्वरूप आत्मारूपी कमलका बोध होता है (सु कमल अक जिन अर्क सु अर्क) शुद्धात्मारूपी कमल सूर्य सम है, वह वीतराग सूर्य होनेसे शांतमई सूर्य है, तापमई सूर्य नहीं है, अर्थात् शुद्धात्माके भीतर केवलज्ञानका प्रकाश है जो रागद्वेषसे रहित है (सु अर्क कलिय जिन समय सु अर्क) वही अनुपम सूर्य है, उसीका अनुभव स्वासमानुभवमें होता है तब वही जिन स्वरूप आत्मा उत्तम सूर्य सम भासता है ॥ ११ ॥

(सो अर्क सुभावे कलिय जिनुत्तु) स्वात्मानुभवमें सूर्य समान आत्माके स्वभावका अनुभव है ऐसा जिनेन्द्रने कहा है (सु तरन पयपय ममल सुनतु) वही संसार तारक पदार्थ आत्मा शुद्ध स्वरूप है ऐसा मनन करो (सो कमल विंद रमन फलतु) स्वात्मानुभवमें आत्मारूपी कमलके स्वादमें रमण करो (सु न्यान अन्मोय सम सिद्धि सपत्तु) वहीं यथार्थ ज्ञान व आनन्द है, वहीं समभाव है उसीसे सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १२ ॥

(इय कमल कठ जिन उत्ति पउ) इस प्रकार श्री अरहंत भगवान कमलकी दिव्यवाणीमें कहा गया है (मुक्ति ठकार मजुतु) उस वाणीमें मोक्ष प्राप्त करनेकी प्रेरणा है (भय पिपनक सुइ भव्व मुनी) जो स्वात्मानुभव करता है वही सर्व भयोंसे रहित भव्य साधु है (सुइ अमिय रमन मिधि ताऊ) सो ही आनन्दामृतमें रमन करता है तथा वही आत्मसिद्धिमें रत हो सिद्ध होजाता है ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें श्री अरहंत भगवानसे प्रकाशित दिव्यवाणीकी महिमा गाई है। उस वाणी द्वारा मोक्षका व मोक्षके मार्गका सच्चा स्वरूप प्रगट होता है। मोक्षका मार्ग रत्नत्रय स्वरूप है, उन तीनोंमें सम्यग्दर्शन मुख्य है। निश्चय सम्यग्दर्शन अपने ही आत्माका शुद्ध श्रद्धान करना है। जहां यह शुद्धात्मप्रतीति होगी वहीं आत्मा अपने आत्माका यथार्थ ज्ञान रखता हुआ अपने स्वरूपमें आचरण करता है। स्वात्मानुभवरूप होजाता है। सिद्ध भगवानके स्वरूपका दर्शन इस स्वात्मानुभवमें होता है। सम्यग्दृष्टी जिनवाणीका मनन करता रहता है। उसकी सहायतासे उपयोग आत्मीक रसके स्वादमें चला जाता है। शुद्धात्माका अनुभव ही मोक्षमार्ग है, इसीसे कर्मोंका क्षय होता है व केवलज्ञानका प्रकाश

होता है। यदि बाहरी क्रियाकाण्ड हो परन्तु शुद्धात्माका अनुभव न हो तो मोक्षमार्गका लाभ न होगा, केवल पुण्य बन्ध होगा, जिससे संसारका भ्रमण दूर नहीं होगा। जब सम्यग्दृष्टीके भीतर स्वात्मानुभवका प्रकाश होता है तब आत्मानन्द रसका अपूर्व स्वाद आता है। अमृतसे इसकी उपमा दी गई है। वही आनन्द आत्माको अमर कर देता है। वास्तवमें आत्मा मन, वचन, कायके विकल्पोंसे दूर सहज एक अनुभवगोचर पदार्थ है। यद्यपि श्रुतज्ञानी केवलज्ञानीके समान प्रत्यक्ष आत्माका विशद ज्ञान नहीं रखता है तथापि श्रुतज्ञानके बलसे उसके भीतर श्रद्धा सहित शुद्धात्मा या सिद्धपदका या अर्हंतपदका या ज्ञान सूर्यका ही अनुभव आता है। भेदविज्ञान पूर्वक जब शुद्धात्माका अनुभव किया जाता है तब ही शुद्ध अनुभव होता है, रागद्वेषका अशुद्ध स्वाद नहीं आता है, वीतराग भावका ही स्वाद आता है। जिनवाणीने बताया है कि जैसे मोक्षका मार्ग परमानन्दमय है स्वात्मरमणरूप है वैसे मोक्ष भी परमानन्दमय है व स्वात्मरमनरूप है। जो मुनि स्वात्मरमण करता है वही कर्मोंका क्षय करके अरहंत व सिद्ध होजाता है। भव्य जीवोंको उचित है कि इस छन्दकी शिक्षाको ग्रहणकर संसार शरीर भोगोंसे वैराग्यभाव रक्खें। यदि गृहका त्याग होसके और इंद्रियोंपर विजय प्राप्त होसके तो एकांत सेवन करना चाहिये। नदीतट व वन आदि निराकुल स्थानमें रहकर अध्यात्म शास्त्रका मनन करते हुए ध्यानका अभ्यास करना चाहिये। समताभावको जागृत करना चाहिये। उपसर्ग व परीषहोंको सहना चाहिये। कष्ट पानेपर भी उत्तम क्षमाको विकारी न बनाना चाहिये। संतोषपूर्वक आहारपान करते हुए आत्मानन्दके रसको पीना चाहिये। यदि गृहत्याग न होसके तौ गृहस्थीमें ममतारहित रहना चाहिये। अपनी लगन शुद्धात्मापर ही रखना चाहिये। त्रिकाल सामायिक, अरहंतभक्ति, स्वाध्याय, संयम, दान, गुरुसेवा आदि उपायोंसे आत्माका चिंतवन करना चाहिये। व्यवहारमें न्यायपूर्वक वर्तना चाहिये, परोपकारमें अपने तन, मन, धनका उपयोग करना चाहिये। मोक्षमार्ग आत्मामें ही है, इस विश्वासको दृढतासे रखना चाहिये। श्री अमृतचंद्राचार्य पुरुषार्थ सिद्ध्युपायमें कहते हैं —

इति रत्नत्रयमेतत् प्रतिसमयं विकलमपि गृहस्थेन। परिपालनीयमनिशं निरत्ययां मुक्तिमभिलषिता ॥ २०९ ॥
बद्धोद्यमेन नित्यं लब्ध्वा समयं च बोधिलाभस्य। पदमवलम्ब्य मुनीनां कर्तव्यं सपदि परिपूर्णम् ॥ २१० ॥

भावार्थ—गृहस्थको उचित है कि अविनाशी मुक्तिकी भावना रखके एकदेश रत्नत्रय धर्मको रात-

दिन पाले फिर नित्य उद्यम करते हुए जब विशेष वैराग्य आजावे तब मुनिका पद धारण करके मोक्ष-मार्गको पूर्णरूपसे साधन करे।

(२७) ह्रींकार गाथा ५१० से ५४३ तक।

ह्रींकारं नन्त विसेषं, कोमल परिनाम कमल सहकारं।
ह्रींकारं भय विलयं, ममल सहावेन कम्म विलयंती ॥ १ ॥
ह्रींकारं हित सहियं, ह्रींकारं समल दिस्टि विलयन्ती।
कोमल न्यान सु कमलं, पर्जय षिपिऊन ममल सहकारं ॥ २ ॥
ह्रींकारं अरुह विसेषं, हृदयं दर्संति लोय अवलोयं।
ममल सहावं सहियं, भय षिपिय अरुह कमल ममलं च ॥ ३ ॥
अरुहं अरुह स उत्तं, ह्रींकार हियकार कोमलं वयन।
कठिन कठोर सु विलयं, भय विनसिय समल कठिन विलयंती ॥ ४ ॥
ह्रियं च अरुहं सहियं, महिय सहकार न्यान विन्यानं।
अन्यान मिच्छ गलियं, ममल सहावेन कम्म गलयन्ती ॥ ५ ॥
हृदयं अलष्य लष्यं, लष्यन्तो सरूव सुद्ध सहकारं।
ममल सहावं विलय, भय षिपनक भव्व कम्म विलयन्ती ॥ ६ ॥
हृदयं अनेय रूवं, रूवं अरूव विक्त रूवं च।
ममल सहावं सहियं, मल मुक्कं नन्त दर्सनं ममलं ॥ ७ ॥

अंकुरं ममलं ।
हृदयं क्रांति संजुत्तं, ह्रींकारं न्यान अंकुरं ममलं ।
अंकुर वृद्धि सहावं, भय षिपनिक नन्त कम्म षिपनं च ॥ ८ ॥
हृदयं दिस्टि स उत्तं, हृदयं ममलं च कम्म षिपनं च ।
भय षिपनिक स सहावं, पिपिऊ संसार सरनि उववन्नं ॥ ९ ॥
ह्रींकारं अर्थति अर्थं, अर्थति अथ ममल उववन्नं ।
संसार कम्म षिपनं, पिपन पर्जाव सरनि मोहंधं ॥ १० ॥
ह्रिय च सहज सरूवं, सहजानन्द कम्म षिपनं च ।
भव विनस्ट भव वनं, ममल सहावेन कम्म गलियं च ॥ ११ ॥
हृदयं दिस्टि स दिस्टं, हृदयं सहकार कम्म षिपनं च ।
पर्जय समल न पिच्छं, भय पिपनिक तिविह कम्म विलयंती ॥ १२ ॥
हृदयं नंद आनन्द, चेयन आनन्द कम्म संषिपन ।
न्यान सुहाव सु सुरयं, ममल दिस्टिं च कम्म विलयंती ॥ १३ ॥
हितं च हेयिं सु समयं, हेयिं अबगहुइ न्यान स सरूवं ।
अन्यान सल्य रहिय, भय षिपियं अभय न्यान विमलं च ॥ १४ ॥
हित च सासुत रूवं, अनृत असासुतं च विरयंति ।
ऋतं ति ममलं रयनं, भय षिपिय समल कम्म विलयंती ॥ १५ ॥
हितं च परम सरूवं, परमं परमप्प परम जोएन ।
पर्जय सल्य विमुक्कं, भय षिपियं सल्य संक विलयन्ती ॥ १६ ॥

हितं च चरन संजुत्तं, अन्यान चरन दोस गलियं च ।
मिथ्या सल्य विमुक्कं, भय षिपियं ममल सुद्ध सहयारं ॥ १७ ॥
हितं च दर्सन चरनं, दर्सन अन्यान पाप गलियं च ।
पर्जय पप विलयन्तो, ममल सहावेन सरनि मुक्कं च ॥ १८ ॥
हितं च न्यानं चरनं, हितकार वीर्ज विन्यान उववन्नं ।
अन्यानं विलयतो, भय षिपियं अनिस्ट दोस विलयन्ती ॥ १९ ॥
ह्रियं च तत्तु विसेषं, तत्काल उववन्न न्यान विन्यानं ।
तव उववन्न सहावं, चरन तव विषय दिस्टि विलयन्ती ॥ २० ॥
हियं च चरन सुचरनं, चरनं पिपिऊन पर्जाव समलं च ।
षिपिओ कम्म विसेषं, भय षिपियं ममल न्यान सहकारं ॥ २१ ॥
हियं च उववन सहियं, अन्या सम्मत्त वेदक सहकारं ।
अन्मोय विरोह न पिच्छै, भय गलियं ममल सुद्ध सहकारं ॥ २२ ॥
हियं च उवसम सहियं, षिपनिक पिपिऊन कम्म बन्धानं ।
पिपि अन्यान विसेषं; भय षिपनिक भव्व सुद्ध सम्मत्तं ॥ २३ ॥
हियं च पद संजुत्तं, पदं च परम तत्तु संदर्सं ।
पर पर्जय विलयन्तो, ममल सहावेन संक भय षिपनं ॥ २४ ॥
हियं च उवन उवेसं, जिन उत्त उज्झाय पयडि जुत्त च ।
भय पिपिनक अनन्त चरनं, भय षिपिय तिविह कम्म विलयंती ॥२५॥

ह्रियं च सुद्ध सहावो, अरहं ह्रींकार न्यान विन्यानं ।
समल कम्म विलयन्तो, ममल दिस्टी च पर्जयं विलयं ॥ २६ ॥
ह्रींकारं दर्सन दिट्ठी, दर्सन दर्सेइ कम्म गलियं च ।
विकहा सरनि विमुक्कं, भय षिपियं ममल न्यान सहकारं ॥ २७ ॥
अर्हं च उवन उवएसं, तारन तरनं च ममल सहकारं ।
सल्य संक भय षिपनं, कम्मं विलयन्ति मुक्ति गमनं च ॥ २८ ॥
कमल सहाव उपत्ती, केवल उववन्न षिपन स सरूवं ।
षिपियं कम्म उवन्नं, उववन सहकार मुक्ति मंदर्सं ॥ २९ ॥
दर्संति लोय अवलोयं, न्यान विन्यान उवन कमलं वा ।
सहकारं उववन्नं, तारनतरनं च मुक्ति सुइ मिलियं ॥ ३० ॥
संसर्ग कम्म षिपनं, सारं तिलोय न्यान विन्यानं ।
रुचियं ममल सुभावं, संसारं तरन्ति मुक्ति गमनं च ॥ ३१ ॥
सहकारं न्यान विन्यानं, रीनं कम्मान तिविह विलयन्ति ।
रुचियं ममल सहावं, तारन सहकार जंति निर्वानं ॥ ३२ ॥
विन्यान न्यान सुद्ध, षिपिओ कम्मान तिविह जोएन ।
इस्ट संजोय सुममलं, नन्दं आनन्द मुक्ति गमनं च ॥ ३३ ॥
संसार सरीर सुविपयं, ममल सहावेन समल विलयन्ती ।
तारन तरन सुसमयं, न्यान वलेन निव्वुए जन्ति ॥ ३४ ॥

अन्वय सहित अर्थ–(ह्रींकार नत विसेष) ह्रीं मन्त्रमें अनन्त गुण है। यह मन्त्र चौवीस तीर्थंकरोका

वाचक है, र से २, ह से ४ लेना योग्य है। इस मन्त्रको जपनेसे व इसका ध्यान करनेसे अनन्त लाभ है। ह्रीं मन्त्रको नासिकाके अग्रभागपर, दोनों भौहोंके बीच, हृदयकमलके मध्यमें, नाभिकमलके मध्यमें, मस्तकपर, कण्ठपर, मुहकमलपर विराजमान करके ध्याना चाहिये कोमल परिनाम कमल सहकार) इस मन्त्रसे भाव कोमल होजाते हैं–आत्मारूपी कमल प्रफुल्लित होजाता है (ह्रीं।ा भय विलिय) ह्रीं मन्त्रके ध्यानसे सर्व भय विला जाते हैं (ममल सहावेन कम्म विलयती) शुद्ध स्वभाव आत्माका झलक जाता है–शुद्धोपयोग प्रगट होजाता है, जिसके प्रतापसे पूर्वबद्ध कर्म क्षय होजाते हैं ॥ १ ॥

(ह्रींकार हित सहिय) आत्मप्रेमके साथ या सम्यग्दर्शनके साथ ह्रीं मन्त्रका ध्यान करना योग्य है (ह्रींकार समल दिस्टि विलयती) इस ह्रीं के ध्यानसे अशुद्धोपयोग या मिथ्यादृष्टि भाव सब दूर होजाते हैं। (कोमल न्यान सुकमल) इससे ज्ञानमें कोमलता या मृदुता आजाती है तथा आत्मा विकसित होजाता है (ममल सहकार पर्वेय विपिऊन) शुद्ध भावके प्रतापसे जन्म मरणका नाश होजाता है ॥ २ ॥

(ह्रींकार अरुह विसेयं) ह्रींके ध्यानसे श्री अर्हत परमेष्ठीका स्मरण होता है (हुन्य दर्सति लोय अवलोय) यह मन लोक अलोकके ज्ञाता अर्हतका स्वरूप जान लेता है ममल महाव महिय , तब शुद्धोपयोग प्रगट हो जाता है (भय विपिथं अरुह कमल विमल च) सर्व संसारका भय विला जाता है। निर्मल अर्हत भगवानरूपी कमलका प्रकाश अपने भावोंमें प्रगट होजाता है, अर्थात् अर्हत परमात्माके गुणोंमें मन तन्मय होजाता है ॥३॥

(अरुहं अरुह स उत्त) श्री अर्हत भगवानको ही पूजने योग्य, स्तवन योग्य, ध्यान योग्य कहा गया है (ह्रींकार हियकार कोमल वयनं) हितकारी ह्रींके ध्यानसे या सम्यक्त पूर्वक ह्रींके ध्यानसे वचन कोमल मद रहित पर्याय बुद्धिके अहङ्कार रहित निकलते हैं (कठिन कठोर सु विलय) कठिन भाव व कठोर वचन दूर होजाते हैं, भावोंमें मृदुता आजाती है, वचन भी मद रहित, विनययुक्त व परम मिष्ट हितकारी निकलते हैं (भय विनसिय समल कठिन विलयन्ती) सात भय नाश होजाते हैं, मानके कठोर भाव या रागद्वेष सहित अशुद्ध भाव विला जाते हैं ॥ ४ ॥

(ह्रिय च अरुह सहिय) ह्रीं मंत्रसे अर्हत परमात्माके स्वरूपको विचारते हुए ध्याना चाहिये (सहिय सहकार न्यान विन्यान) भेदविज्ञानके संयोगका यह उपाय है। ह्रीं मंत्रद्वारा अर्हत परमात्माका स्वरूप ध्यानेसे भेदविज्ञान उपज जाता है, अपना आत्मा भी परमात्मा है और सर्व रागादि, आठ कर्म समूह व शरी-

रादिसे भिन्न है, ऐसा भाव आजाता है (अन्यान मिच्छ गलिय) उसीके विचार करनेसे अज्ञान तथा मिथ्यात्व गल जाता है (ममल सहावेन कम्म गल्यंती) शुद्ध आत्मीक स्वभावके झलक जानेसे कर्म गल जाते हैं ॥ ६ ॥

(हृदय अलष्य लष्य) मनका ध्यान अलक्ष्यको देखनेकी तरफ झुक जाता है, मनमें शुद्धात्माके गुणोंका मनन होता है जो इंद्रियोंके द्वारा व मनके द्वारा अनुभवमें नहीं आसक्ता है। केवल आत्मा हीके द्वारा आत्माका अनुभव किया जाता है (लष्यतो सरूव सुद्ध सहकार) शुद्ध आत्मस्वरूपके प्रकाशका यही उपाय है जो ह्रीं मंत्रका ध्यान किया जावे (समल सहावं विलय) इसीसे अशुद्ध स्वभाव दूर होजाता है (भय विपनक भव्व कम्म विलयती) भय रहित एकाग्र होकर जो भव्य ह्रीं मंत्रको ध्याता है उसके कर्म क्षय होजाते हैं ॥ ६॥

(हृदयं मनेय रूवं) मनमें ह्रीं मन्त्रके द्वारा अनेक प्रकार अरहन्तके गुण स्मरणमें आते हैं कि वे अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्यके धारी हैं। क्षुधा, तृषा, क्रोधादि, जन्म मरण आदि अठारह दोषोंसे रहित हैं (रूवं अरूव विक्त रूवं च) ह्रीं मन्त्रके द्वारा अरहन्तकी आत्माका अमूर्तिक स्वभाव ध्यानमें आता है तथा प्रगट मूर्तीक स्वभाव भी ध्यानमें आता है कि वे पद्मासन परम सौम्या-कार, कोटि सूर्यकी दीप्तिको जीतनेवाले, सिंहासनादि आठ प्रातिहार्य सहित, बारह सभायुक्त, अन्तरीक्ष, वीतराग ध्यानमय मुद्राको झलकाते हुए शोभायमान हैं (ममल सहाव सहिय) तथा अपना भाव रागादि दोष रहित वीतराग होजाता है (मल मुक्कं नंत दर्सन ममल) तब दर्शनावरण कर्म रहित अनन्तदर्शन वीत-रागता सहित ध्यानमें झलक जाता है अर्थात् अनन्त दर्शनधारी वीतराग अरहन्त प्रभुका मानो साक्षा-त्कार होजाता है ॥ ७ ॥

(हृदय क्रांति सजुत्त) ह्रीं के मननसे मनमें एक ज्योति चमक जाती है—आत्माका प्रकाश छाजाता है (ह्रींकार न्यान अकुर ममल) ह्रीं के ध्यानसे शुद्ध आत्मज्ञानका अंकुर उग उठता है, आत्मानुभवरूपी वृक्षका प्रारंभ होजाता है, आत्मानुभवरूपी वृक्षका अंकुर फूट निकलता है (अकुर वृद्धि सहाव) वह अंकुर बढता ही रहता है, उसका स्वभाव बढनेका है। जितना२ आत्मानुभवका अधिक अभ्यास किया जाता है उतना उतना अधिक निर्मल व अधिक काल तक ठहरनेवाला आत्मानुभव होता जाता है (भय विपनिक नंत कम्म षिपन च) आत्मानुभवसे सर्व भय मिट जाता है। निःशङ्कपने मैं अजर अमर आत्मा हूं ऐसा प्रतीतिमें आजाता है तथा अनन्त कर्मोंकी निर्जरा होने लगती है ॥ ८ ॥

(हृदयं दिस्टि स उत्तं) मनमें आत्माका दर्शन होना वही कहा जाता है (हृदयं ममल च कम्म षिपनं च) जहां मन सर्व विकारोंसे शून्य होजावे। मनमें निर्विकारता छाजावे और कर्मोंका क्षय होना प्रारम्भ होजावे (भय षिपिनक स सहावं) अभय आत्मीक स्वभाव झलक जावे (पिपिऊ मसार सरनि उववन्न) तथा संसार भ्रमणकारी कर्मोंका आस्रव बन्द होजावे ॥ ९ ॥

(ह्रींकार अर्थति अर्थ) ह्रींकारके ध्यानसे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमई आत्माका अनुभव होता है (अर्थति अर्थ ममल उववन्न) इसी आत्मारूपी पदार्थके मननसे शुद्ध परमात्म-पदार्थका प्रकाश होता है (ससार कम्म षिपन) संसारमें भ्रमण करानेवाले कर्मोंका क्षय होता है (षिपनं पर्जाव मरनि मोह्य) भिन्न २ शरीरोंमें भ्रमण करानेवाले मोहनीय कर्मका क्षय होता है। मोहनीय कर्मसे ही सर्व कर्मोंमें स्थिति व अनुभाग पड़ता है। जब मोहका क्षय होजाता है तब सिवाय सातावेदनीयके जो एक समय स्थिति रखती है और किसी कर्मका आस्रव नहीं होता है ॥ १० ॥

(ह्रिय च सहज सरूव) ह्रीं के ध्यानसे आत्माका सहज या स्वाभाविक स्वरूप अनुभवमें आता है सहजानन्द कम्म षिनं च) सहजानन्दका स्वाद आता है। इसी आनन्दमई ध्यानाग्निसे कर्मोंका नाश होता (भवयन भव विनस्ट) भव्यजीवोंका संसार भ्रमण दूर होजाता है (ममल सहावेन कम्म गलियं च) शुद्ध स्वभावके रमणसे कर्म गल जाते हैं ॥ ११ ॥

हृदयं दिस्टि मदिष्ठ) मनमें यथार्थ हितकारी मोक्षकी तरफ दृष्टि जम जाती है (हृदय सहकार कम्म षिपन च) इस मोक्षमें प्रेम करनेवाले मनके परिणमनके कारण कर्मोंका क्षय होता है। क्योंकि वहां शुद्धोपयोग गर्भित शुभ भाव होते हैं (पर्जव समल न पिच्छ) अशुद्ध परिणाम नहीं दिखलाई पड़ते हैं (भय षिपनिक तिविह कम्म विलयन्ती) सर्व भय दूर होजाता है और अन्तमें तीनों ही प्रकारके कर्म विला जाते हैं। अर्थात् भाव कर्म रागादि, द्रव्य कर्म ज्ञानावरणादि, नोकर्म शरीरादि सब क्षय होजाते हैं और वह आत्मा सिद्ध परमात्मा होजाता है ॥ १२ ॥

(हृदय नन्द आनन्दं) मन आनन्दमें मगन होजाता है (चेयन आनन्द कम्म स षिपन) उस ज्ञानानन्द भावसे कर्मोंका क्षय होजाता है (न्यान सहाव सु सुराय) ज्ञान स्वभावी केवलज्ञान सूर्यका प्रकाश होजाता है (ममल दिस्टि च कम्म विलयन्ती) शुद्ध आत्मदर्शनके प्रभावसे कर्म विला जाते हैं ॥ १३ ॥

(हितं च हेयि सु समयं) हितकारी स्वात्मरमणरूप ज्ञान जब होता है (हेयिं अवगाह न्यान स सरूवं) तब यह ज्ञान, ज्ञान–स्वरूपमें प्रवेश कर जाता है। अर्थात् ज्ञान शुद्ध ज्ञानका मनन करता है (मन्यान सल्य रहिय) तब सर्व अज्ञान व तीन शल्य विला जाती हैं (भय षिपियं अभय न्यान विमलं च) सर्व भय दूर होजाता है और निर्भय और शुद्ध ज्ञान प्रगट होजाता है ॥ १४ ॥

(हित च सासुत रूवं) अपना हितकारी आत्माका अविनाशी स्वभाव है (अनृत असासुत च विरयति) जहां मिथ्या व अनित्य संसारसे विरक्त भाव रक्खा जावे (ऋतं ति अमल रयन) यथार्थ व सत्य मार्ग शुद्ध या निश्चय रत्नत्रय धर्म है (भय षिपिय अमल धम्म विलयती) इसी धर्ममें लीन होनेसे सर्व भय दूर होजाता है व मलीनता करनेवाले कर्मोंका क्षय होजाता है ॥ १५ ॥

(हित च परम सरूव) अपना हितकारी आत्माका श्रेष्ठ स्वरूप है (परम परमप्प परम जोएन) उत्तम योगाभ्याससे श्रेष्ठ परमात्माका ध्यान होता है (पर्जव सल्य विमुक) जहां माया, मिथ्या, निदान तीन शल्यकी परिणतिको त्याग किया जावे (भय षिपिय सल्य सक विलयती) वहां सर्व भय मिट जाते हैं और सर्व ही शल्य व सर्व ही शंकाएँ भी विला जाती हैं, निःशंक निःशल्य निर्भय आत्मानुभव जागृत होजाता है ॥ १६ ॥

(हित चरन सजुत्त) अपना हित सम्यक्चारित्रके पालनेसे होता है (मन्यान चरन दोस गलिय च) सम्यक्चारित्रके प्रभावसे मिथ्या व अज्ञानमई चारित्रका दोष दूर होजाता है (मिथ्या सल्य विमुक्क) मिथ्यात्वका शल्य छूट जाता है (भय षिपिय ममल शुद्ध सहकार) भय क्षय होजाता है व दोष रहित शुद्ध भावका लाभ होजाता है। सम्यग्दर्शन सहित श्रावक व मुनिका चारित्र पालनेसे मिथ्या चारित्र विलय होजाता है, रागद्वेष भाव घटता है, वीतराग शुद्ध भाव बढता है ॥ १७ ॥

(हितं च दर्सन चरनं) आत्माका हित सम्यग्दर्शनका आचरण है। अर्थात् श्रद्धापूर्वक आत्माका अनुभव है (दर्सन मन्यान पाप गलियं च) इस दर्शनाचारसे मिथ्या श्रद्धानसे जो पापका बन्ध हुआ था, सो पाप क्षय होजाता है (पजेय पप विलयन्तो) शरीरका पक्ष कि मैं शरीररूप हूँ विला जाता है (कमल सहावेन सरनि मुक्कं च) शुद्ध स्वभावका प्रकाश होजाता है, जिससे संसारका भ्रमण छूट जाता है ॥ १८ ॥

(हित च न्यानं चरन) सम्यग्ज्ञानका आचरण करना आत्माका हित है (हितकारं बीजं विन्यान उववन्नं) इस ज्ञानाचारसे व ज्ञानके अभ्याससे हितकारी सम्यग्ज्ञानकी शक्ति उत्पन्न होती जाती है, ज्ञानावर-

(हृदयं दिस्टि स उत्तं) मनमें आत्माका दर्शन होना वही कहा जाता है (हृदयं ममल च कम्म षिपनं च) जहां मन सर्व विकारोंसे शून्य होजावे। मनमें निर्विकारता छाजावे और कर्मोंका क्षय होना प्रारम्भ होजावे (भय षिपिनक स सहावं) अभय आत्मीक स्वभाव झलक जावे (पिपिऊ ससार सरनि उववन्न) तथा संसार भ्रमणकारी कर्मोंका आस्रव बन्द होजावे ॥ ९ ॥

(ह्रींकार अर्थति अर्थं) ह्रींकारके ध्यानसे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमई आत्माका अनुभव होता है (अर्थति अर्थं ममल उववन्न) इसी आत्मारूपी पदार्थके मननसे शुद्ध परमात्म-पदार्थका प्रकाश होता है (ससार कम्म षिपन) संसारमें भ्रमण करानेवाले कर्मोंका क्षय होता है (षिपनं पर्जाय सरनि मोहंच) भिन्न २ शरीरोंमें भ्रमण करानेवाले मोहनीय कर्मका क्षय होता है। मोहनीय कर्मसे ही सर्व कर्मोंमें स्थिति व अनुभाग पड़ता है। जब मोहका क्षय होजाता है तब सिवाय सातावेदनीयके जो एक समय स्थिति रखती है और किसी कर्मका आस्रव नहीं होता है ॥ १० ॥

(ह्रिय च सहज सरूव) ह्रीं के ध्यानसे आत्माका सहज या स्वाभाविक स्वरूप अनुभवमें आता है सहजानन्द कम्म षि'न च) सहजानन्दका स्वाद आता है। इसी आनन्दमई ध्यानाग्निसे कर्मोंका नाश होता (भवयन भव विनस्ट) भव्यजीवोंका संसार भ्रमण दूर होजाता है (ममल सहावेन कम्म गलिय च) शुद्ध स्वभावके रमणसे कर्म गल जाते हैं ॥ ११ ॥

हृदय दिस्टि सदिष्ट) मनमें यथार्थ हितकारी मोक्षकी तरफ दृष्टि जम जाती है (हृदय सहकार कम्म षिपन च) इस मोक्षमें प्रेम करनेवाले मनके परिणमनके कारण कर्मोंका क्षय होता है। क्योंकि वहां शुद्धोपयोग गर्भित शुभ भाव होते हैं (पर्जव समल न पिच्छ) अशुद्ध परिणाम नहीं दिखलाई पड़ते हैं (भय षिपनिक तिविह कम्म विलयन्ती) सर्व भय दूर होजाता है और अन्तमें तीनों ही प्रकारके कर्म विला जाते हैं। अर्थात् भाव कर्म रागादि, द्रव्य कर्म ज्ञानावरणादि, नोकर्म शरीरादि सब क्षय होजाते हैं और वह आत्मा सिद्ध परमात्मा होजाता है ॥ १२ ॥

(हृदय नन्द आनन्दं) मन आनन्दमें मगन होजाता है (चेयन आनन्द कम्म सषिपन) उस ज्ञानानन्द भावसे कर्मोंका क्षय होजाता है (न्यान सहाव सु सुरय) ज्ञान स्वभावी केवलज्ञान सूर्यका प्रकाश होजाता है (ममल दिस्टि च कम्म विलयन्ती) शुद्ध आत्मदर्शनके प्रभावसे कर्म विला जाते हैं ॥ १३ ॥

(हितं च हेयि सु समयं) हितकारी स्वात्मरमणरूप ज्ञान जय होता है (हेयिं अवगाह न्यान स सरूवं) तब यह ज्ञान, ज्ञान-स्वरूपमें प्रवेश कर जाता है। अर्थात् ज्ञान शुद्ध ज्ञानका मनन करता है (अन्यान सल्य रहिय) तब सर्व अज्ञान व तीन शल्य विला जाती हैं (भय पिपियं अभय न्यान विमल च) सर्व भय दूर होजाता है और निर्भय और शुद्ध ज्ञान प्रगट होजाता है ॥ १४ ॥

(हित च सासुत रूवं) अपना हितकारी आत्माका अविनाशी स्वभाव है (अनृत असासुत च वियति) जहां मिथ्या व अनित्य संसारसे विरक्त भाव रक्खा जावे (ऋतं ति अमल रयन) यथार्थ व सत्य मार्ग शुद्ध या निश्चय रत्नत्रय धर्म है (भय पिपियं ममल कम्म विन्यती) इसी धर्ममें लीन होनेसे सर्व भय दूर होजाता है व मलीनता करनेवाले कर्मोंका क्षय होजाता है ॥ १५ ॥

(हित च परम सरूव) अपना हितकारी आत्माका श्रेष्ठ स्वरूप है (परम परमप्प परम जोएन) उत्तम योगाभ्याससे श्रेष्ठ परमात्माका ध्यान होता है (पर्जंत सल्य विमुक्क) जहां माया, मिथ्या, निदान तीन शल्यकी परिणतिको त्याग किया जावे (भय पिपिय सल्य सक विन्यती) वहां सर्व भय मिट जाते हैं और सर्व ही शल्य व सर्व ही शंकाएँ भी विला जाती हैं, निःशंक निःशल्य निर्भय आत्मानुभव जागृत होजाता है ॥ १६ ॥

(हित चरन सजुत्त) अपना हित सम्यक्चारित्रके पालनेसे होता है (अन्यान चरन दोस गलिय च) सम्यक्चारित्रके प्रभावसे मिथ्या व अज्ञानमई चारित्रका दोष दूर होजाता है (मिथ्या सल्य विमुक्क) मिथ्यात्वका शल्य छूट जाता है (भय पिपिय ममल सुद्ध सहकार) भय क्षय होजाता है व दोष रहित शुद्ध भावका लाभ होजाता है। सम्यग्दर्शन सहित श्रावक व मुनिका चारित्र पालनेसे मिथ्या चारित्र विलय होजाता है, रागद्वेष भाव घटता है, वीतराग शुद्ध भाव बढता है ॥ १७ ॥

(हितं च दर्सन नान) आत्माका हित सम्यग्दर्शनका आचरण है। अर्थात् श्रद्धापूर्वक आत्माका अनुभव है (दर्सन अन्यान पाप गलियं च) इस दर्शनाचारसे मिथ्या श्रद्धानसे जो पापका बन्ध हुआ था, सो पाप क्षय होजाता है (पजय पप विलयन्तो) शरीरका पक्ष कि मैं शरीररूप हूँ विला जाता है (कमल सहावेन सरनि मुक्कं च) शुद्ध स्वभावका प्रकाश होजाता है, जिससे संसारका भ्रमण छूट जाता है ॥ १८ ॥

(हितं च न्यान चरन) सम्यग्ज्ञानका आचरण करना आत्माका हित है (हितकारं बीजं विन्यान उववन्नं) इस ज्ञानाचारसे व ज्ञानके अभ्याससे हितकारी सम्यग्ज्ञानकी शक्ति उत्पन्न होती जाती है, ज्ञानावर-

होजाता है (भय विपनक भव्व सुद्ध सम्मत) तब परम निर्भय शुद्ध सम्यक्त

विसेषं) जब विशेष अज्ञानका क्षय होजाता है। आज्ञा सम्यक्त, (२) उपशम सम्यक्त, (३)

होजाता है। भावार्थ—सम्यग्दर्शनके यहां पांच भेद बताए हैं—(१) आज्ञा सम्यक्त, (२) उपशम सम्यक्त, (३) के मन्त्रके द्वारा पांचों ही सम्यक्त प्रगट हो

वेदक सम्यक्त, (४) क्षायिक सम्यक्त, (५) शुद्ध सम्यक्त। ह्रीं के मन्त्रके द्वारा आज्ञा सम्यक्त है। इसको व्यवहार

सक्ते हैं। श्री जिनागमकी आज्ञानुसार सात तत्वोंका श्रद्धान करना आज्ञा सम्यक्त है। इसको व्यवहार

सम्यक्त भी कहते हैं। अनन्तानुबन्धी चार कषाय और दर्शनमोहनीयकी एक मिथ्यात्व प्रकृति या मिथ्यात्व,

मिश्र तथा सम्यक्त प्रकृति, इन तीनोंके उपशमसे अर्थात् पांच या सात प्रकृतियोंके उपशमसे जो सम्यक्त

हो उसको उपशम सम्यक्त कहते हैं। इसकी स्थिति एक अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं है। फिर उपशम सम्य-

क्तीके जब सम्यक्त मोहनीयका उदय आजाता है, शेष छः का उदय नहीं होता है तब वेदक या क्षयोपशम

सम्यक्त होजाता है। वेदक सम्यक्ती जब सातों प्रकृतियोंका क्षय कर डालता है तब उसके क्षायिक सम्यक्त

होजाता है। क्षायिक सम्यक्तको ही सातवे गुणस्थानसे लेकर आगे सर्व गुणस्थानोंमें या सिद्धपदमें शुद्ध

सम्यक्त या वीतराग सम्यक्त कहते हैं। इसीको श्रुत केवलीकी अपेक्षासे अवगाढ सम्यक्त व अर्हंत केव-

लीकी अपेक्षा परमावगाढ सम्यक्त कहते हैं ॥ २३ ॥

(पद च परम तत्त सदर्म) उस पदसे परमात्माका

(ह्रिय च पज सजुत्त) ह्रीं पदके सहारेसे ध्यान करनेसे (ममल सहावेन मक भय

स्वभाव मननमें आता है (पर पर्जाव विलयन्ती) रागद्वेषरूप पर परिणति विला जाती है (ममल सहावेन मक भय

पिलन) शुद्ध स्वभाव प्रगट होजाता है तब सर्व शंकाएँ व सर्व भय दूर होजाते हैं ॥ २४ ॥

(ह्रिय च उवन उवएस) ह्रींकारके द्वारा ध्यान करनेका उपदेश देना योग्य है (जिन उत्त उज्झाय पयडि जुत)

श्री जिनेन्द्रने कहा है कि ह्रीं मन्त्रमें उपाध्याय परमेष्ठीका स्वभाव गर्भित है। जैसे उपाध्याय तत्वज्ञान

सिखाते हैं वैसे ही मन्त्रके विचारसे तत्वज्ञान पैदा होजाता है (भय पिपनिक अनन्त चरनं) तथा निर्भय

चारित्र पैदा होजाता है जिसकी सन्तान अनन्तकाल तक जाती है। जो स्वात्मानुभव साधक अवस्थामें

होता है वही सिद्ध अवस्थामें भी बना रहता है (भय पिपिय तिविह कम्म विलयन्ती) जब निःशङ्क, निर्भय,

निर्विकल्प समाधिका प्रकाश होजाता है, या शुक्लध्यान जग उठता है तब द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म सब

कर्म गल जाते हैं और यह आत्मा परमात्मा होजाता है ॥ २५ ॥

(हियं च सुद्ध सहावो) ह्रींके ध्यानसे आत्माका शुद्ध स्वभाव अनुभवमें आता है (अरहं ह्रींकार न्यान विन्यानं) ह्रीं मंत्रसे अर्हंतपद तथा केवलज्ञान पैदा होजाता है (समल कम्म विल्यन्तो) घातीय चार कर्म नाश होजाते हैं (ममल दिस्टी च पर्जय विलय) फिर शुद्ध आत्मदर्शन या तृतीय और चतुर्थ शुक्लध्यानसे शरीर पर्याय भी क्षय होजाती है और यह आत्मा सिद्ध होजाता है ॥ २६ ॥

(ह्रींकार दर्सन दिट्ठी) ह्रीं से सम्यग्दर्शनका अनुभव होता है (न्यान दर्सइ कम्म गलिय च) यह सम्यग्दर्शन आत्माका दर्शन करता है तब सर्व कर्म शिथिल होजाते हैं, कर्मकी जड कट जाती है (विकहा सरनि विमुक) स्त्री, भोजन, राष्ट्र व राजा आदि विकथाओंमें परिणमन छूट जाता है। सम्यग्दृष्टी रागवर्द्धक कथाएँ न करके उपयोगी धर्मकथाएँ व हितकारी कथाएँ करता है। श्री मुनिराज तो मात्र निश्चयधर्मवर्द्धक वार्तालाप ही करते हैं (भय विपिय ममल न्यान सहकार) इस सम्यक्तके प्रकाशसे संसारका भय मिट जाता है और शुद्ध ज्ञान प्रगट होजाता है ॥ २७ ॥

(आइ च उवन उवाय) श्री अरहन्त परमात्मा सम्यक्तकी उत्पत्तिका उपाय उपदेश करते हैं (तारन तरन च ममल सहकार) वे अरहन्त तारनतरन हैं, आप तरेंगे व दूसरोंको तरनेका मार्ग बतावेंगे। उनके सहकारसे भव्य जीवोंके भाव निर्मल होते हैं (सल्य सङ्क भय विलन) सम्यक्तके प्रकाशसे शल्य, शङ्का व भय सब दूर होजाते हैं (कम्म विलयति मुक्तिगमन च) कर्म नाश होजाते हैं और यह जीव मुक्तिपदमें पहुंच जाता है।

भावार्थ—मोक्षका उपाय एक सम्यग्दर्शनका लाभ है ॥ २८ ॥

(कमल सहाव उवत्ती) सम्यग्दर्शनके ही प्रभावसे आत्माका कमलके समान प्रफुल्लित परमात्माका स्वभाव झलक जाता है (केवल उववन्न विलन स रूवं) तथा क्षायिक स्वरूप प्रकाश होजाता है (विपिय कम्म उवन्न) सर्व कर्मबन्ध जो सत्तामें था सो क्षय होजाता है (उववन सहकार मुक्ति संदर्सं) इसी सम्यक्तके उदयसे यह जीव मोक्षका दर्शन कर लेता है ॥ २९ ॥

(दर्सति लोय अवलोय) परमात्मा भगवान लोक अलोकको क्रम रहित देखते हैं (न्यान विन्यान उवन कमल च) उनके भीतर केवलज्ञानका प्रकाश है जिससे वे अरहन्त प्रफुल्लित कमलके समान हैं (सहकारं उववन्न) सम्यग्दर्शनका उदय जीवके लिये सहकारी है (तारनतरन च मुक्ति सुइ मिलिय) वे अरहंत तारनतरन हैं, फिर वे ही स्वयं मुक्तिको प्राप्त कर सिद्धक्षेत्रमें सिद्धोंकी अवगाहनामें भिन्न रूपसे मिले रहते हैं ॥३०॥

ममलपाहुड
॥२३२॥

(संसर्ग कम्म विपन) ह्रीं मन्त्रद्वारा ध्यान करनेसे वीतराग सम्यक्तके प्रभावसे जितने कर्मोका सम्बन्ध है वह सब नाश होजाता है (सार तिलोय न्यान विन्यानं) तीनलोकमें सार ऐसा शुद्ध ज्ञान प्रगट होजाता है। (रुचियं ममल सहावं) उनको शुद्ध स्वभाव ही रुचता है (ससार तरन्ति मुक्ति गमन च) ऐसे अरहन्त परमेष्टी संसारसे तरकर मोक्ष पहुंच जाते हैं ॥ ३१ ॥

(सहकार न्यान विन्यान) आत्मा और अनात्माका भेदविज्ञान ही परम सहकारी है-मोक्षमार्गमें सहायक है (रीन कम्मान तिविह विलयन्ती) इसीके द्वारा ध्यानकी वृद्धि होनेसे तीनों ही प्रकारके कर्म शिथिल होकर क्षय होजाते हैं। द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्म सब चले जाते हैं (रुचिय ममल सहाव) शुद्ध स्वभावमें ही मगनता होजाती है (तारन सहकार जति निर्वान) भव्यजीव अरहन्त पदके द्वारा निर्वाणमें जाकर सिद्ध हो जाते हैं ॥ ३२ ॥

(विन्यान न्यान सुद्ध) शुद्ध आत्मज्ञानका प्रकाश जब होता है (पिपिओ कम्मान तिविह जोएन) तब मन, वचन, काय तीनों योगोंकी एकता होनेपर सर्व कर्म क्षय होजाते हैं (इस्ट सजोय सु ममलं) शुद्ध इष्ट पदका संयोग होजाता है (नद आनद मुक्ति गमन च) वे निजानन्दमें आनन्दरूप होते हुए मोक्ष चले जाते हैं ॥३३॥

(ससार सरीर सु विषय) संसार, शरीर और भोगोंसे वैराग्य होजाता है (ममल सहावेन समल विलयन्ती) शुद्ध स्वभावके द्वारा सर्व मलीन भाव विला जाते हैं (तारनतरन सु समय) तारणतरण स्वस्वरूपमय अरहंत पद प्रगट होजाता है (न्यान बलेन निव्वुए जंति) वे अरहन्त केवलज्ञानके बलसे निर्वाण पहुँच जाते हैं ॥ ३४ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें ही मन्त्रका महात्म्य बताया है। पदस्थ ध्यानमें मन्त्रोंको विराजमान करके उनके द्वारा परमात्मा या आत्माका स्वरूप विचार किया जाता है। ह्रीं मन्त्रसे अरहंत परमात्माका मुख्यतासे बोध होता। श्री अरहंत भगवानके शुद्ध स्वभावको विचारते हुए ह्रीं द्वारा ध्यान करना चाहिये। अरहन्तके अन्तरङ्ग व बहिरङ्ग गुणोंको विचारना चाहिये। मुख्य लक्ष्य अन्तरङ्ग गुणोंपर देना चाहिये और अपने आत्माका स्वरूप भेदविज्ञानके द्वारा परमात्माके समान विचारना चाहिये।

ह्रीं मंत्र द्वारा अपने आत्मामें परमात्माके स्वरूपका वारवार मनन करनेसे सम्यग्दर्शनके बाधक कर्म उपशम होजाते हैं और उपशम सम्यक्त प्राप्त होजाता है, तब मोक्षप्राप्तिका बीज बो दिया जाता है। धर्मकी जड़ सम्यक्त है। सम्यक्तीके यहीं धर्मका अंकुर फूटने लगता है। भावोंमें ऐसी निर्मलता

होजाती है कि संसार शरीर और भोगोंसे वैराग्य होजाता है। संसारकी तरफसे अरुचि होजाती है। मोक्षकी तरफसे रुचि होजाती है। सम्यक्तीके शङ्काभाव नहीं रहता है। निशंकभावसे तत्वोंकी रुचि करता है। उसको विषयोंकी वांछा नहीं रहती है, न वह पर पदार्थमें अहंकार करता है। उसको यह दृढ विश्वास है कि सिवाय मेरी आत्मीक ज्ञानादि सम्पदाके और कोई परमाणुमात्र मेरा नहीं है। यह आत्मीक आनन्दका प्रेमी होजाता है। उस सम्यक्तके प्रभावसे ज्ञान, चारित्र, तप, जप सर्व ही सम्यक् यथार्थ नाम पाते हैं। सम्यक्तके विना ज्ञान कुज्ञान है, चारित्र कुचारित्र है, तप कुतप है। सम्यग्दर्शनसे ही आत्माका अनुभव होता है। सम्यक्तीके कर्मोंकी निर्जरा शुरू होजाती है। आत्मानुभवके प्रतापसे वह श्रावक या मुनिका चारित्र पालता है, गुणस्थान क्रमसे चढता चला जाता है। चार घातीय कर्मोंका क्षय करके अरहन्त होजाता है। फिर शेष चार अघातीय कर्मोंका भी क्षय करके सिद्ध होजाता है। ह्रींके द्वारा ध्यान करनेसे परिणामोंकी कठोरता मिट जाती है, कोमलता पैदा होजाती है, वचन भी सम्यक्तीके कोमल निकलते हैं, उसके भीतर विकथाओंके कहनेका राग निकल जाता है। ह्रींके द्वारा ध्यान करनेसे जैसे सम्यग्दर्शन पैदा होता है वैसे ही सम्यग्दर्शन होजानेपर भी ह्रींका ध्यान उपकारी है। इसके द्वारा सहज आत्मस्वरूप झलक जाता है, शुद्धात्माका अनुभव होजाता है, तब सहजानंदका स्वाद आता है, इसीको चेतनानन्द या ज्ञानानन्द कहते हैं। यही वह अग्नि है जो कर्मोंको जलाती है। इसीके अनुभवसे केवलज्ञान सूर्यका प्रकाश होजाता है, आत्मानुभवसे ही पूर्ण श्रुतज्ञान होजाता है, अवधि व मनःपर्यय ज्ञान भी प्रगट होजाता है। इसी आत्मानुभवसे सराग चारित्रसे वीतराग चारित्र होजाता है। ह्रीं मत्रके द्वारा ध्यानका अभ्यास परम तत्वका प्रकाश कर देता है। यह मन्त्र उपाध्यायके समान तत्वज्ञानकी वृद्धिमें प्रेरक है। जो भव्यजीव अपना सच्चा हित करना चाहे उनको उचित है कि ह्रीं मन्त्रके द्वारा अरहंत स्वरूपको नीचे प्रमाण ध्यानमें विचारे। श्री नागसेन मुनि तत्त्वानुशासनमें कहते हैं—

तथाद्यमाप्तमाप्तानां देवानामधिदैवतं। प्रक्षीणघातिकर्माणं प्राप्तानंतचतुष्टयं ॥ १२३ ॥

दूरमुत्सृज्य भूभागं नभस्तलमधिष्ठितं। परमौदारिकस्वांगप्रभाभर्त्सितभास्करं ॥ १२४ ॥

चतुस्त्रिंशन्महाश्चर्यैः प्रातिहार्यैश्च भूषितं। मुनितिर्यङ्नरस्वर्गिसभाभिः सन्निषेवितं ॥ १२५ ॥

जन्माभिषेकप्रमुखप्राप्तपूजातिशायिनं। केवलज्ञाननिर्णीतविश्वतत्त्वोपदेशिनं ॥ १२६ ॥

प्रभाम्वलक्षणाकीर्णसम्पूर्णोदग्रविग्रहं । आकाशस्फटिकातस्थज्वलज्ज्वालानलोज्वल ॥ १२७ ॥

तेजसामुत्तम तेजो ज्योतिषा ज्योतिरुत्तम। परमात्मानमर्हंत ध्यायेन्निःश्रेयसाप्तये ॥ १२८ ॥

भावार्थ—सर्व वक्ताओंमें मुख्य वक्ता आप्त श्री अरहंत भगवान हैं, वे ही देवोंके स्वामी महादेव हैं। उन्होंने चार घातीयकर्म क्षय करके अनन्तचतुष्टय–अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, अनन्तसुख प्राप्त कर लिया है। केवलज्ञान होते ही वे आकाशमें बिराज जाते हैं, उनके शुद्ध परमौदारिक शरीरकी शोभाका मण्डल या भामण्डल बन जाता है। वे ३४ अतिशय व ८ प्रातिहार्यसे शोभायमान है। मुनि, पशु, मनुष्य व देवोंकी १२ सभाओंसे सुशोभित हैं। जिनके गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण पांच कल्याणक हुए हैं, जिन्होंने केवलज्ञान द्वारा निर्णय करके समस्त तत्वोंका उपदेश दिया है, जिनका प्रभावशाली शरीर परम प्रभासे व्याप्त है। जैसे निर्मल स्फटिकके भीतर अग्नि जलती हुई शोभती हो ऐसा शोभायमान है, सर्व तेजोंसे अधिक तेजस्वी है, सर्व ज्योतियोंमें उत्तम ज्योतिस्वरूप है, ऐसे अर्हंत परमात्माको मोक्षके लाभके लिये ध्यावे।

---

(२८) अन्मोय चौबीसी गाथा ५४७ से ५६८ तक।

जिन दिस्टि इस्टि जिन उत्तं, जिन समय सह व स उत्तं।
जिन परिनय समय प्रमानं, जिन कमल उत्त जि., वयनं ॥ १ ॥
जिन लंकृत जिन विन्यानं, जिन समय ऋत्य समानं।
जिन नन्तानन्त सु दिस्टी, जिन न्यान पयो परमेस्टी ॥ २ ॥
जिन समय सहाव स उत्तं, जिन नन्त नन्त अवयासं।
तं जिन अन्मोय सु ममलं, जिन समय कम्म तं विलयं ॥ ३ ॥
जिन पिपिय कम्म वंधानं, जिन मुक्ति दिस्टि धुव न्यानं।
जिन जिनयति कम्म उपत्ती, अन्मोय विरोह विलन्ती ॥ ४ ॥

तं न्यान अन्मोय स उत्तं, जं नन्त कम्म विलयंतं ।
जं न्यान अन्मोय विओयं, तं सरनि सहाव संजोयं ॥ ५ ॥
तं यहु विओयं किम सहिये, ज जं विओय दुह लहिये ।
भय षिपिय मुक्ति सं मिलिये, तं अमिय रमन सिधि रमिये ॥ ६ ॥ (आचरी)
तं न्यान अन्मोय पिओयं, तं भय षिपनिक संजोयं ।
भय षिपिय रमन आनन्दं, तं अमिय विओय विनन्दं ॥ ७ ॥ तं यहु० ॥
तं न्यान अन्मोय अनन्तं, तं अमिय रमन रस जुत्तं ।
तं अमिय रूव आनन्दं, तं अमिय विओय विनन्दं ॥ ८ ॥ तं यहु० ॥
जं जिन अन्मोय विओय, तं भय षिपनिक संजोय ।
भय षिपिय पयोहर नन्दं, भय षिपिय विओय विनन्द ॥ ९ ॥ तं यहु० ॥
जं न्यान अन्मोय सहावं, त अमिय रमन रस भावं ।
तं अमिय सरूव आनन्दं, त अमिय विओय विनन्दं ॥१०॥ तं यहु० ॥
अन्मोय न्यान विन्यानं, भय पिपिय सजोये सवन ।
भय षिपिय सरूव सनन्दं, भय षिपिय विओय विनन्दं ॥११॥ तं यहु० ॥
अन्मोय न्यान स सरूवं, जं अमिय रस रमन सुखं ।
तं अमिय सरूव आनन्दं, त अमिय अरूव विनन्दं ॥१२॥ तं यहु० ॥
जं न्यान भक्ति अन्मोयं, भय षिपिय भक्ति संजोयं ।
भय षिपिय भक्ति आनन्दं, भय षिपिय विओय विनन्दं ॥१३॥ तं यहु० ॥

जं न्यान दिस्टि अन्मोयं, तं अमिय रमन संजोयं ।
जं अमिय दिस्टि आनन्दं, तं अमिय अदिस्टि विनन्दं ॥१४॥ तं यहु० ॥
जं न्यान दिस्टि अन्मोयं, भय षिपनिक इस्टि संजोय ।
अमिय रस इस्टि आनंदं, तं इस्टि विओय विनद ॥१५॥ तं यहु० ॥
जं तारन तरन सहावं, तं दिस्टि इस्टि सम भावं ।
भय षिपिय अमिय रस नंदं, तं इस्टि विओय विनन्दं ॥१६॥ तं यहु० ॥
जं उस्टि सृस्टि सहकारं, अवयास, अन्मोय अपारं ।
भय षिपिय अमिय रस नन्दं, तं दिस्टि विओय बिनन्दं ॥१७॥ तं यहु० ॥
अन्मोय न्यान सुइ समयं, त पिपनिक इस्ट संजोयं ।
भय षिपिय अमिय रस नन्दं, तं रमन विलोय विनन्दं ॥१८॥ तं यहु० ॥
जं षिपक दिस्टि संजोयं, तं मुक्ति इस्टि परलोय ।
भय पिपनिक सहज सहावं, तं अमिय रमन रस भावं ॥१९॥ तं यहु० ॥
जं इह संजोय सं मिलिये, तं मुक्ति रमन संचलिये ।
सहु अङ्ग अमिय रस रमनं, भय षिपिय मुक्ति संमिलनं ॥२०॥ तं यहु० ॥
जं न्यान अन्मोय सु ममलं, जं समल सुभाव सुविलयं ।
भय षिपनिक रुव सहावं, सहु अङ्ग अमिय रस भाव ॥२१॥ तं यहु० ॥
तं ईय विनोय आनन्दं, जं तारन तरन सनन्दं ।
तं जान सहाव स उत्तं, सिद्ध समय सिद्धि सम्पत्तं ॥२२॥ तं यहु० ॥

दिपि दिपियो नन्तानन्तं, लंकृत विन्यान स उत्तं।
सहकार नन्त संजुत्तं, तं समय सिद्धि सम्पत्तं ॥२३॥ तं यहु० ॥
जं तारन तरन सु ममलं, भय पिपिय अमिय रस ममलं।
तं धम सहाव संजुत्तं, तं समय सिद्धि सम्पत्तं ॥२४॥ तं यहु० ॥
सुइ तारन तरन सुहावं, हिययार सहाव सुभावं।
तं न्यान अन्मोय सुभावं, तं समय सिद्धि सं पातं ॥२५॥ त यहु० ॥

अन्वय सहित अर्थ—(जिन दिस्टि इस्टि जिन उत्त) श्री जिनेन्द्रका दर्शन परम इष्ट है ऐसा जिनेन्द्रने कहा है। जिनेन्द्र वास्तवमें आत्माका नाम है। आत्माके शुद्ध स्वरूपका दर्शन ही जिनदर्शन है, वही इष्ट है कल्याणकारी है (जिन समय सहाव स उत्त) उसीको जिन स्वरूप वीतरागी आत्माका स्वभाव कहा गया है अर्थात् वही आत्मीक स्वभावका दर्शन है या आत्मस्वभावमें रमण है (जिन परिनय समय प्रमान) वहां ही वीतराग परिणमन है, वहीं स्वसमयमई सम्यग्ज्ञान रूप प्रमाण है। अर्थात् वही आत्मा आत्मारूप परिणमन करता हुआ निश्चय सम्यग्ज्ञान स्वरूप है (जिन कमल उत्त जिन वयनं) ऐसा कमल स्वरूप श्री जिनेन्द्र द्वारा कथित जिनवाणीका उपदेश है ॥ १ ॥

(जिन लंकृत जिन विन्यान) श्री जिन स्वरूपका यथार्थ ज्ञान है वह जिन स्वरूपसे शोभायमान है। अर्थात् शुद्धात्माके ज्ञानमें तन्मय होना ही जिन विज्ञान है (जिन समय सहत्य समान) वही वीतराग आत्मा सत्य स्वभावमई है। अर्थात् आत्माका अपने आत्मीक स्वभावमें रहना ही सत्य स्वभावमें लय होना है जहां परका लेश संसर्ग न हो, रागद्वेष न हो वही सत्य स्वभाव है (जिन नंतानत सु दिस्टी) जिन स्वरूप आत्मामें अनन्त दर्शन है व अनन्तज्ञान है (जिन न्यानपयो परमेस्टी) वे ही जिन ज्ञानमई पदमें हैं व परम पदमें रहनेसे परमेष्ठी हैं ॥ २ ॥

(जिन समय सहाव स उत्त) श्री जिनस्वरूप वीतराग आत्माका स्वभाव यह कहा गया है कि (जिन नंत नत अवयास) उनके ज्ञानमें अनन्त अवकाश है, अनन्तानन्त पदार्थोंको एक काल देखने जाननेकी शक्ति है

(त जिन अन्मोय सु ममलं) वहीं वीतराग व परम शुद्ध आत्मानन्द है (जिन समय कम्म तं विलय) ऐसे श्री जिनेन्द्रकी आज्ञासे कर्मोंका क्षय होगया है ॥ ३ ॥

(जिन पिपिय कम्म नवान) श्री जिनेन्द्रने कर्मोंके बन्धनोंको काट डाला है (जिन मुक्ति दिस्टि धुव न्यानं) श्री जिनेन्द्रने मुक्तिका दर्शन कर लिया है, उनका शुद्ध ज्ञान ध्रुव है, अविनाशी है, उसपर कोई ज्ञानावरण कर्मका आवरण नहीं है (जिन जिनवति कम्म उप्पत्ती) श्री जिनेन्द्रने कर्मोंके आस्रवको जीत लिया है । उनकी आत्मामें पूर्ण संवर भाव है (अन्मोय विरोह विलती) उनके आनन्द गुणका विरोधी कर्म क्षय होगया है । कर्मोंके क्षय होनेसे वे नित्य आनन्दका अनुभव करते हैं ॥ ४ ॥

(तं न्यान अन्मोय स उत्तं) उसीको ज्ञानानन्द कहा गया है (ज नत कम्म विऌयत) जिस आनन्दानुभवसे अनन्त कर्मोंका क्षय होजावे (ज न्यान अन्मोय विओय) जो ज्ञानानन्दका वियोग है अर्थात् आत्मिक सुखको न पानेसे जो विषयोंके सुखमें रमणता है (त सरनि सहाव मजोय) उससे संसार भ्रमण करानेवाले कर्मोंका संयोग होता है । अर्थात् विषयोंके सुखमें रमण करनेसे भव भ्रमणकारी कर्मोंका बन्ध होता है ॥ ५ ॥

(तं पहु विओय किम सहिये) तब इस ज्ञानानन्दका वियोग कैसे सहन किया जावे ? अर्थात् आत्मानन्दके न पानेसे यह जीव विषयानन्दमें मगन रहता है तब कर्मोंको बांधकर भवभवमें महान् कष्टोंको सहन करता है । इसलिये तारणस्वामी कहते हैं कि हमें उस ज्ञानानन्दका वियोग एक समय भी स्वीकार नहीं है । हम उस परम रक्षक ज्ञानानन्दकी शरण कभी छोड़ना नहीं चाहते हैं (ज ज विओय दुह लहिये) जैसा जैसा आत्मानन्दके वियोगसे दुःख भोगना पडता है उसको विचारते हुए हमें क्षणभर भी आत्मानन्दका वियोग खल रहा है (भय पिपिय मुक्ति समिलिये) आत्मानन्दको पाकर हमारा भय सब दूर होजायगा। हम मुक्ति स्त्रीसे भलेप्रकार मिल जावेंगे (त अमिय रमन सिधि रमिये) और उसके मिलनेसे आनन्दामृतमें रमण करेंगे व आत्मसिद्धिमें रमण करेंगे ॥ ६ ॥

(तं न्यान अन्मोय विओय) वह ज्ञानानन्द ही हमारा प्रीतम है, हमारा प्रेमपात्र है (तं भय विरनिक सजोय) उसीके मेलसे हमारा सर्व भय मिट जाता है (भय पिपिय रमन आनन्द) तब निर्भय होकर अतीन्द्रिय आनन्दमें रमण होता है (त अमिय विओय विनद) उस अमृतके स्वादको लेते हुए सर्व दुखोंसे वियोग होजाता है । अर्थात् सर्व सांसारिक कष्ट मिट जाते हैं ॥ ७ ॥

(त न्यान अन्मोय अनन्त) वह ज्ञानानन्द अनन्त है—उसका अन्त नहीं होता है, वह आत्माका स्वभाव है कितना भी उसका उपभोग किया जावे वह सदा बना रहता है (तं अमिय रमन रस जुत्तं) उसमें आनन्दामृतमें रमणताका स्वाद आता रहता है (त अमिय रुव आनन्दं) वही अमृतानन्द रूप है (त अमिय विओय विनन्द) वह ऐसा अमृत है जिसके पानसे सर्व निरानन्दका वियोग होजाता है, सर्व आकुलता दूर होजाती है ॥ ८ ॥

(ज जिन अन्मोय पिओय) यह जो वीतरागतामें आनन्द है वही प्रेमके योग्य है (त मय षिपनिक संजोय) इस प्रेमके होते हुए सर्व भयका सयोग दूर होजाता है (भय षिपिय पयोहर नन्द) तब निर्भय आनन्दरूपी मेघोंका या आनन्दरूपी समुद्रका लाभ होजाता है (भय षिपिय विओय विनन्दं) उस सुख-समुद्रमें अवगाहन करनेसे सर्व सांसारिक भय मिट जाता है व सर्व निरानन्द छुट जाता है। अन्तर रहित निरन्तर आनन्दका स्वाद आता है जहां रंचमात्र भी आकुलता नहीं होती है ॥ ९ ॥

(ज न्यान अन्मोय सहावं) जो ज्ञानानन्दका स्वभाव है (तं अमिय रमन रस भाव) वह अमृतमें रमणता होनेसे अपूर्व स्वादका प्राप्त होना है। अर्थात् आत्मानन्दमें रमण करनेसे अनुपम स्वाद आता है (तं अमिय सरूव आनंदं) वहीं अमृतानन्द स्वरूपका झलकाव है (त अमिय विओय विनद) उस अमृतके लाभसे सर्व आकुलता मिट जाती है ॥ १० ॥

(अन्मोय न्यान विन्यानं) ज्ञानानन्दमें मगन होना है (भय षिपिय संजोय सवन) वह निर्भय होकर परम शान्त आत्मारूपी चन्द्रमासे मिलता है। यहां आत्माकी उपमा चन्द्रमासे दी है। जैसे चन्द्रमाके दर्शनसे शांतिका लाभ होता है वैसे आत्मानन्दमें मगन होनेसे परम शांतिका लाभ होता है (भय षिपिय सरूव सनन्द) तब निर्भय स्वरूपमें आनन्द मगनता रहती है (भय षिपिय विओय विनन्द) जिससे सर्व भय दूर होजाता है और सर्व आकुलता मिट जाती है ॥ ११ ॥

(अन्मोय न्यान स सरूवं) ज्ञानानन्दका यह स्वरूप है (ज अमिय रस रमन सुरय) जो अमृतके रसमें ऐसा मगन होजावे कि मदिरा पीनेके समान उसी रसमें उन्मत्त होजावे। जैसे मदिरा पीनेवालेके भीतर ऐसा नशा चढ़ जाता है कि वह उसी रसमें बेहोश होजाता है वैसे ही सच्चा ज्ञानानन्द वहीं है जो निज आत्मीक अमृतमें तन्मय होजावे, संसारके रससे विलकुल छूटकर स्वात्मीक रसमें मगन होजावे (तं अमिय

क्षयसे शुद्ध होजाता है। वहां अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख प्रगट होजाता है। वहां आत्माका प्रत्यक्ष दर्शन होजाता है। अर्हंत पदमें अपूर्व ज्ञानानन्द है, स्पष्ट है, विशद है, प्रत्यक्ष है। उसके पहले श्रुतज्ञानके द्वारा आत्मानन्द था, अब केवलज्ञानके द्वारा होरहा है। अर्हंतका आत्मा पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशित होता है। परम शांतिमें व आनन्दमें तन्मय है। जो कोई अरहन्तका दर्शन करता है वह स्वयं शांत व आनन्दमय होजाता है। अरहन्तका आत्मा अपने शुद्ध आनन्दमें ऐसा मस्त है मानो मादक पदार्थ सेवनसे कोई उन्मत्त होगया हो। वह स्वरूपमें ही आसक्त हैं, परम वीतराग हैं, वे ही शेष कर्मोंको क्षय करके अयोग गुणस्थानको तप करके सिद्ध गतिको पहुँच जाते हैं। वहां भी निजानन्दमें सदा काल लीन रहते हैं। जैनधर्म आनन्दमई अमृतरसका पान है। जो वर्तमानमें भी सुख देता है व भावी कालमें भी अनन्तसुख देता है।

श्री तारणस्वामी कहते हैं कि जबतक इस ज्ञानानन्दका लाभ नहीं होता है तबतक यह जीव विषयानन्दमें मगन होता हुआ कर्मको बांध चारों गतियोंमें घोर आकुलता व कष्ट भोगता है। सम्यग्दर्शनके प्रकाशसे जब इसके ज्ञानानन्दका लाभ होजाता है तब सर्व आकुलता मिट जाती है, विषयसुखकी श्रद्धा चली जाती है। इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, पीड़ा चिन्तवन व निदानभावका आर्तध्यान नहीं रहता है, सदानन्दमय जीवन होजाता है। श्री तारणस्वामी कहते हैं कि सर्वसे स्नेह त्यागो, मात्र एक ज्ञानानन्दसे प्रेम करो, इसीके रसमें आसक्त होजाओ, तब सर्व दुःखोंका अन्त होजायगा। यह आनन्द आत्माका स्वभाव है। इसके सर्व प्रदेशोंमें आनन्दगुण भरा है उसीतरह जैसे मिश्रीमें सर्वांग मिष्टता है, नीममें सर्वांग कटुकता है, लवणमें सर्वांग खारापन है, सिद्धात्माके भीतर यह आनन्दसागर सदा वहा करता है। आत्मानन्दकी प्रशंसामें श्री नागसेन मुनि तत्वानुशासनमें कहते हैं—

आत्मायत्तं निराबाधमतीन्द्रियमनश्वरं। घातिकर्मक्षयोद्भूतं यत्तन्मोक्षसुखं विदुः ॥ २४२ ॥

यत्तु सांसारिकं सौख्यं रागात्मकमशाश्वतं। स्वपरद्रव्यसंभूतं तृष्णासंतापकारणं ॥ २४३ ॥

यदत्र चक्रिणां सौख्यं यच्च स्वर्गे दिवौकसां। कलयापि न तत्तुल्यं सुखस्य परमात्मनां ॥ २४६ ॥

भावार्थ—मोक्षका सुख आत्माधीन है, स्वाधीन है, बाधा रहित है, अतीन्द्रिय है, अविनाशी है, चार घातीय कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होता है। संसारका विषयजनित सुख रागरूप है, अनित्य है, आप

(त न्यान अन्मोय अनन्त) वह ज्ञानानन्द अनन्त है—उसका अन्त नहीं होता है, वह आत्माका स्वभाव है कितना भी उसका उपभोग किया जावे वह सदा बना रहता है (तं अमिय रमन रस जुत्तं) उसमें आनन्दामृतमें रमणताका स्वाद आता रहता है (त अमिय रूव आनन्दं) वही अमृतानन्द रूप है (त अमिय विओय विनन्द) वह ऐसा अमृत है जिसके पानसे सर्व निरानन्दका वियोग होजाता है, सर्व आकुलता दूर होजाती है ॥ ८ ॥

(ज जिन अन्मोय पिओय) यह जो वीतरागतामें आनन्द है वही प्रेमके योग्य है (त मय षिपनिक संजोय) इस प्रेमके होते हुए सर्व भयका सयोग दूर होजाता है (भय षिपिय पयोहर नन्द) तब निर्भय आनन्दरूपी मेघोंका या आनन्दरूपी समुद्रका लाभ होजाता है (भय षिपिय विओय विनन्दं) उस सुख–समुद्रमें अवगाहन करनेसे सर्व सांसारिक भय मिट जाता है व सर्व निरानन्द छुट जाता है। अन्तर रहित निरन्तर आनन्दका स्वाद आता है जहां रंचमात्र भी आकुलता नहीं होती है ॥ ९ ॥

(ज न्यान अन्मोय सहावं) जो ज्ञानानन्दका स्वभाव है (तं अमिय रमन रस भाव) वह अमृतमें रमणता होनेसे अपूर्व स्वादका प्राप्त होना है। अर्थात् आत्मानन्दमें रमण करनेसे अनुपम स्वाद आता है (तं अमिय सरूव आनंदं) वहीं अमृतानन्द स्वरूपका झलकाव है (त अमिय विओय विनंद) उस अमृतके लाभसे सर्व आकुलता मिट जाती है ॥ १० ॥

(अन्मोय न्यान विन्यानं) ज्ञानानन्दमें मगन होना है (भय षिपिय संजोय सवन) वह निर्भय होकर परम शान्त आत्मारूपी चन्द्रमासे मिलता है। यहां आत्माकी उपमा चन्द्रमासे दी है। जैसे चन्द्रमाके दर्शनसे शांतिका लाभ होता है वैसे आत्मानन्दमें मगन होनेसे परम शांतिका लाभ होता है (भय षिपिय सरूव सनन्द) तब निभय स्वरूपमें आनन्द मगनता रहती है (भय षिपिय विओय विनन्द) जिससे सर्व भय दूर होजाता है और सर्व आकुलता मिट जाती है ॥ ११ ॥

(अन्मोय न्यान स सरूव) ज्ञानानन्दका यह स्वरूप है (ज अमिय रस रमन सुरय) जो अमृतके रसमें ऐसा मगन होजावे कि मदिरा पीनेके समान उसी रसमें उन्मत्त होजावे। जैसे मदिरा पीनेवालेके भीतर ऐसा नशा चढ़ जाता है कि वह उसी रसमें वेहोश होजाता है वैसे ही सच्चा ज्ञानानन्द वहीं है जो निज आत्मीक अमृतमें तन्मय होजावे, संसारके रससे विलकुल छूटकर स्वात्मीक रसमें मगन होजावे (तं अमिय

सरूव आनद) वही अमृत स्वरूप आनन्द है (त अमिय अरूव विनद) वह ऐसा अमृत है जहां निरानन्दका भाव जरासा भी नहीं है। अर्थात् वह आनन्द सर्व दुःखोंसे मुक्त है ॥ १२ ॥

ज न्यान भक्ति अन्मोय) जहां शुद्ध ज्ञानकी भक्तिमें आनन्दित हुआ जाता है (भय पिपिय भक्ति सजोय) वहां सर्व भय दूर होजाते हैं, निर्भय भक्ति प्राप्त होजाती है (भय पिपिय भक्ति आनन्दं) जहां भय रहित आत्म-भक्तिमें आनन्दका लाभ होता है (भय पिपिय विमोय विनन्द) वहां सर्व भय क्षय होजाते हैं और सर्व दुःख मिट जाते हैं ॥ १३ ॥

(ज न्यान दिस्टि अन्मोयं) जो ज्ञानके दर्शनमें आनन्द लाभ करना है। अर्थात् ज्ञान स्वरूपमें तन्मय हो, आनन्दमें मगन होना है (तं अमिय रमन सजोय) वहां ही आनन्दामृतमें रमणता है (ज अमिय दिस्टि आनंद) जो इस अमृतके स्वादका आनन्द है (त अमिय अदिस्टि विनन्द) वही सच्चा अमृत है जहां निरानन्दका दर्शन नहीं होता है-सदा आनन्द ही आनन्द है ॥ १४ ॥

(ज न्यान दिस्टि अन्मोय) जो ज्ञान स्वभावके अनुभवमें आनन्द है (भय पिपिनक इस्टि सनोय) वह सर्व भयोंको मेटनेवाला है व अपने इस्ट प्रयोजनको सिद्ध करनेवाला है। आत्माको परमात्मा कर देनेवाला है (अमिः रस इस्टि आनद) उस परम इष्ट आनन्द अमृतके रसमें जो मगनता है (त इस्टि विओय विनद) वह इष्ट मगनता सर्व निरानन्दको मिटा देनेवाली है ॥ १५ ॥

(ज तारन तरन सहाव) जो आत्माका-श्री अर्हंत परमात्माका तारन तरन स्वभाव है (त दिस्टि इस्टि सममाव) वह अपने इष्ट तत्वका दर्शन है व समभावका लाभ है (भय पिपिय अमिय रस नन्द) तथा निर्भय होकर अमृत-रसका आनन्द लेना है (त इस्टि विओय विनद) उस इष्ट भावके लाभसे सर्व दुःखका नाश होजाता है ॥ १६ ॥

(ज उस्टि सृष्टि सहकार) जब प्रातःकालके उदयके समान केवलज्ञान सूर्यका प्रकाश होता है तब उसके होते ही (अवयास अन्मोय अपार) अनन्त अपार आनन्दमें प्रवेश होजाता है (भय पिपिय अमिय रस नद) तब निर्भय अमृतरसका आनन्द होता है (त दिस्टि विओय विनद) उस आत्म-दर्शनके होनेसे सर्व आकुलता मिट जाती है ॥ १७ ॥

(अन्मोय न्यान सुइ समय) ज्ञानका आनन्द है सो ही आत्माका स्वभाव है। अर्थात् आत्मा स्वयं ही

ज्ञानानन्दमय है (त षिपनिक इस्ट सनोय) वहीं निर्भय इष्ट पदका लाभ है (भय षिपिय अमिय रस नद) निर्भय होकर अमृतरसका आनन्द लेता है (त रमन विओय विनद) वहां आत्म रमणता सर्व दुःखोको शान्त कर देती है ॥ १८ ॥

(ज षिपक दिस्टि सजोय) जब क्षायिक दर्शनका लाभ होता है अर्थात् घातीय कर्मोंके क्षयसे जब प्रत्यक्ष आत्माका दर्शन होता है (त मुक्ति इस्टि परलोय) तब परम हितकारी मुक्तिका उत्तम दर्शन होजाता है (भय षिपनिक सहज सहाव) वहां सर्व भय रहित सहज आत्माका स्वभाव झलक जाता है (त अमिय रमन रसभाव) वहीं आत्मानन्दरूपी अमृतके रसमें रमणता होती है ॥ १९ ॥

(जं इह सनोय समिलिये) जब ऐसा अपूर्व संयोग मिल जाता है त मुक्त रमन सवलिये) तब मोक्षमें आनन्द सहित पहुंच जाता है (सहु अंग अमियरस रमनं) आत्माके सर्व प्रदेश आनन्दामृतके रसमें भीजे रहते हैं (भय पिपिय मुक्ति समिलन) और यह आत्मानुभवी अरहन्त परमात्मा उस निर्भय मुक्ति स्त्रीसे जाकर मिल जाता है ॥ २० ॥

(अ न्यान अन्मोय सु ममल) जब परम शुद्ध ज्ञानानन्द प्रगट होता है (ज समल सुभाव सुविलय) तब सर्व अशुद्ध कर्मजनित विभावोंका नाश होजाता है (भय षिपनिक रूव सहाव) और अभय आत्माका स्वभाव प्रगट होजाता है (सहु अग अमिय रसभाव) आत्माके सर्व प्रदेश अमृतरससे पूर्ण होते हैं ॥ २१ ॥

(तं ईव विनोय आनद) जो यह स्वभावके आनन्दमें विनोद प्राप्त करना है (ज तारन तरन स नन्द) जो इस तारणतरण आत्मामें मगन होना है (त जान सहाव स उत्त) उसहीको आत्माका ज्ञानमय स्वभाव कहा गया है (सिहु सयय सिद्ध सपत्त) वह ज्ञानस्वभावी आत्मा स्वयं सिद्धिको प्राप्त कर लेता है ॥ २२ ॥

(दिपि दिपिओ नन्तानन्त) उस ज्ञानस्वभावी आत्मामें अनन्त ज्योतिका प्रकाश है (लकृत विन्यान स उत्त) वह आत्मा शुद्ध ज्ञानसे शोभायमान कहा गया है (सहकार नत सजुतं) वह आत्मा अनन्तवीर्य सहित है (त समय सिद्धि सपत्त) वह आत्मा सिद्धिको प्राप्त कर लेता है ॥ २३ ॥

(ज तारन तरन सु ममलं) जो यह आत्मा शुद्धस्वभावी तारणतरण है (भय पिपिय अमिय रस ममलं) वह सर्व भय रहित है, उसमें शुद्ध आनन्दामृतका रस भरा है (तं धर्म सहाव सजुत्त) वही शुद्ध आत्मा धर्मके

स्वभावको रखनेवाला है। अर्थात् शुद्ध आत्मामें ही धर्मका सच्चा स्वभाव प्रगट है (त समय सिद्धि सपत्तं) वही आत्मा सिद्धिको पाता है ॥ २४ ॥

(सुइ तारनतरन सुहाव) सो ही आत्मा तारणतरण स्वरूपका धारी है (हिययार सहाव सुभावं) वही हित-कारी स्वभावका धारी है (त न्यान अन्मोय सुभाव) वही ज्ञानानन्द स्वभावका धारी है ('त समय सिद्धि सपातं) वही आत्मा सिद्धिको पाता है ॥ २५ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें आत्मानन्दकी स्तुति कीगई है। वास्तवमें जैन सिद्धांतका यही सार है कि जहां आत्मानन्दका या ज्ञानानन्दका अनुभव है वहीं धर्म है। वही आनन्दका अनुभव शुद्धोपयोग रूप है–वीतराग स्वरूप है। उसीमें रत्नत्रयकी एकता है–वही शुद्धात्माका श्रद्धान, ज्ञान व चारित्र है। इसीको ध्यानकी अग्नि कहते हैं जिससे कर्मोंका क्षय होता है। इसीको अमृतरसका पान कहते हैं जो अपूर्व अनुपम स्वादको देनेवाला है। यहीं धर्मध्यान व शुक्लध्यान होता है जब आत्माकी परिणति पूर्ण वैराग्यमय होती है। जब आत्माकी श्रद्धामें सर्व पर परिणति, पर भासती है। इंद्र, अहमिन्द्र, चक्रवर्ती आदिके पद परपद भासते हैं। राग द्वेष मोह कर्मकृत विकार त्यागने योग्य प्रगट होते हैं। जब आत्मा अपनी सम्पत्ति अपने ही शुद्ध ज्ञान दर्शन सुख वीर्यादि गुणोंको समझता है। जब वह संसार, शरीर व भोगोंसे पूर्ण विरक्त होजाता है–विषयानन्द विष है ऐसी श्रद्धा होजाती है, तब वह सम्यग्दृष्टी आत्मा अपने मन वचन कायको निरोधकर प्रथम व्यवहार ध्यान करता है। मंत्रपदोंके द्वारा आत्माका मनन करता है। व्यवहार ध्यान करते २ जब चित्त थम्भ जाता है और अपना उपयोग एक ही आत्मामें ऐसा धुल जाता है जैसा लवण पानीमें धुल जावे। तब स्वसमयरूप एकाग्रता होती है तब ही ज्ञानानन्दका स्वाद आता है, तब ही रत्नत्रय धर्मका झलकाव होता है, तब ही कर्मोंका संवर होता है व पूर्वबद्ध कर्मकी निर्जरा होती है। इसी आत्मानन्दकी ही वृद्धिको ध्यानकी वृद्धि कहते हैं व गुणस्थानकी वृद्धि कहते हैं। आत्मानन्द ही सीधी सड़क है, जो चौथे अविरत सम्यग्दर्शन गुणस्थानसे चलकर देशविरत, प्रमत्त विरत, अप्रमत्त विरत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्म सांपराय, क्षीण मोह गुणस्थानोंको तय करके संयोग केवली जिन गुणस्थान तक चली जाती है। ज्यों २ गुणस्थानकी वृद्धि होती है, कषाय मिटती है, आत्मानन्दका अधिक लाभ होता है। श्री अर्हंत परमात्मा सयोग केवली जिनका आत्मा चार घातीय कर्मोंके

क्षयसे शुद्ध होजाता है। वहां अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख प्रगट होजाता है। वहां आत्माका प्रत्यक्ष दर्शन होजाता है। अर्हंत पदमें अपूर्व ज्ञानानन्द है, स्पष्ट है, विशद है, प्रत्यक्ष है। उसके पहले श्रुतज्ञानके द्वारा आत्मानन्द था, अब केवलज्ञानके द्वारा होरहा है। अर्हंतका आत्मा पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशित होता है। परम शांतिमें व आनन्दमें तन्मय है। जो कोई अरहन्तका दर्शन करता है वह स्वयं शांत व आनन्दमय होजाता है। अरहन्तका आत्मा अपने शुद्ध आनन्दमें ऐसा मस्त है मानो मादक पदार्थ सेवनसे कोई उन्मत्त होगया हो। वह स्वरूपमें ही आसक्त हैं, परम वीतराग हैं, वे ही शेष कर्मोंको क्षय करके अयोग गुणस्थानको तप करके सिद्ध गतिको पहुँच जाते हैं। वहां भी निजानन्दमें सदा काल लीन रहते हैं। जैनधर्म आनन्दमई अमृतरसका पान है। जो वर्तमानमें भी सुख देता है व भावी कालमें भी अनन्तसुख देता है।

श्री तारणस्वामी कहते हैं कि जबतक इस ज्ञानानन्दका लाभ नहीं होता है तबतक यह जीव विषयानन्दमें मगन होता हुआ कर्मको बांध चारों गतियोमें घोर आकुलता व कष्ट भोगता है। सम्यग्दर्शनके प्रकाशसे जब इसके ज्ञानानन्दका लाभ होजाता है तब सर्व आकुलता मिट जाती है, विषय-सुखकी श्रद्धा चली जाती है। इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, पीड़ा चिन्तवन व निदानभावका आर्तध्यान नहीं रहता है, सदानन्दमय जीवन होजाता है। श्री तारणस्वामी कहते हैं कि सर्वसे स्नेह त्यागो, मात्र एक ज्ञानानन्दसे प्रेम करो, इसीके रसमें आसक्त होजाओ, तब सर्व दुःखोका अन्त होजायगा। यह आनन्द आत्माका स्वभाव है। इसके सर्व प्रदेशोंमें आनन्दगुण भरा है उसीतरह जैसे मिश्रीमें सर्वांग मिष्टता है, नीममें सर्वांग कटुकता है, लवणमें सर्वांग खारापन है, सिद्धात्माके भीतर यह आनन्दसागर सदा बहा करता है। आत्मानन्दकी प्रशंसामें श्री नागसेन मुनि तत्वानुशासनमें कहते हैं—

आत्मायत्तं निराबाधमतीन्द्रियमनश्वरं। घातिकर्मक्षयोद्भूतं यत्तन्मोक्षसुखं विदुः ॥ २४२ ॥

यत्तु सांसारिकं सौख्यं रागात्मकमशाश्वतं। स्वपरद्रव्यसम्भूतं तृष्णासंतापकारणं ॥ २४३ ॥

यदत्र चक्रिणां सौख्यं यच्च स्वर्गे दिवौकसां। कलयापि न तत्तुल्यं सुखस्य परमात्मनां ॥ २४६ ॥

भावार्थ—मोक्षका सुख आत्माधीन है, स्वाधीन है, बाधा रहित है, अतीन्द्रिय है, अविनाशी है, चार घातीय कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होता है। संसारका विषयजनित सुख रागरूप है, अनित्य है, आप

और पर वस्तुके संयोगसे होता है, तृष्णा व सन्तोषको बढ़ानेवाला है। जो सुख चक्रवर्तीको है व जो सुख स्वर्गमें देवोंको है वह सुख परमात्माके सुखका अंश मात्र भी नहीं है।

अमृतचन्द्राचार्य तत्त्वार्थसारमें कहते हैं—

संसारविषयातीतं सिद्धानामव्ययं सुखं। अव्याबाधमिति प्रोक्तं परमं परमर्षिभिः ॥ ४५–८ ॥

भावार्थ—सिद्धोंको संसारके विषयोंसे अतीत बाधा रहित अविनाशी उत्कृष्ट सहज सुख होता है, ऐसा परम ऋषियोंने कहा है। श्री अमृतचन्द्राचार्य समयसार कलशमें कहते हैं—

य पूर्वभावकृतकर्मविषद्रुमाणा। भुंक्ते फलानि न खलु स्वत एव तृप्त।
आपातकालरमणीयमुदर्करम्य, नि कर्मशर्ममयमेति दशातर म ॥ ॥ ३९–१० ॥

भावार्थ—जो कोई महात्मा पूर्वमें बांधे हुए कर्मरूपी विष–वृक्षोंके फलोंको भोगनेमें रंजायमान नहीं होता है, किन्तु आपमें ही तृप्त रहता है वह कर्म रहित सहज सुखकी ऐसी दशामें पहुँच जाता है जिससे इस जन्ममें भी सुखी रहता है व आगामी भी सुखी रहेगा।

श्री पद्मनन्दि मुनि धर्मोपदेशामृतमें कहते हैं—

ज्ञानज्योतिरुदेति मोहतमसो भेदः समुत्पद्यते, सानंदा कृतकृत्यता च सहसा स्वांते समुन्मीलति।
यस्यैकस्मृतिमात्रतोऽपि भगवानत्रैव देहान्तरे, देवः तिष्ठति मृग्यतां स रभसादन्यत्र किं धावति ॥ १४६ ॥

भावार्थ—जब मोहका अन्धकार दूर होजाता है तब ज्ञान–ज्योतिका प्रकाश होता है। उसी समय अन्तरंगमें सहज सुखका अनुभव होता है तथा कृतकृत्यपना झलकता है, जिसके स्मरण मात्रसे ही ऐसी ज्ञान–ज्योति प्रगट होती है। उस भगवान आत्मा देवको तू शीघ्र ही इस देहके भीतर खोज–बाहर और कहां दौड़ता है? श्री शुभचन्द्राचार्य ज्ञानार्णवमें कहते हैं—

नित्यानन्दमयं शुद्धं चित्स्वरूपं सनातनम्। पश्यत्यात्मनि परं ज्योतिरद्वितीयमनव्ययम् ॥ ३५–१८ ॥

भावार्थ—मैं नित्य सहजानन्दमय हूँ, शुद्ध हूँ, चैतन्य स्वरूप हूँ, सनातन हूँ, परम ज्योति स्वरूप हूँ, अनुपम हूँ, अविनाशी हूँ। इसतरह अनुभव करनेसे ज्ञानानन्दका लाभ होता है।

(२९) नन्द मऊ फूलना गाथा ५६९ से ५८२ तक ।

जिन जिनपति जिनय जिनेन्द पऊ, जिन सहजनन्द स सहाउ ।
जिन परमनन्द तं परम जिन, जिन केवल ममल सहाउ ॥ १ ॥
जिन नन्द मऊ आनन्द मऊ, जिन जिनपति कम्म सहाउ ।
जिन उत्त जिनय जिन कमल जिनय जिन, जिन सहजनंद स सहाउ ॥ २ ॥

जिन अमिय रमन तं मुक्ति पऊ (आचरी)

जिन लष्य मऊ अलष्य मऊ, जिन सिद्ध सरूव सहाउ ।
जिन उत्त मऊ वैदिप्ति मऊ, जिन न्यान विन्यान सुभाउ ॥ ३ ॥ जिन० ॥
जिनु अपय रमनु जिन सिद्धि गमनु, जिन भय पिपनिकु स सहाउ ।
जिन न्यानमई विन्यानमई, जिन सिद्धि मुक्ति सभाउ ॥ ४ ॥ जिन० ॥
जिन षिपक मऊ जिन ममल पऊ, जिनरञ्ज सिद्धि स सहाउ ।
जिन अमिय रसं वैदिप्ति सुयं, जिन कमल ममल सुभाउ ॥ ५ ॥ जिन० ॥
जिन राग गलं जिन दोस विलं, जिनु दिप्ति दर्स संजुत्तु ।
जिन कम्म गलं आवर्न विलं, जिनरंज अमिय सम उत्तु ॥ ६ ॥ जिन० ॥
जिन गारगलं जिन मोह विलं, वै दर्स अमिय संजुत्तु ।
जिन घाय गलं जिनरंज समं, भय षिपिय मुक्ति सम्पत्तु ॥ ७ ॥ जिन० ॥
जिन अर्थ सुयं जिनु कांतिमयं, वे दिप्ति कमल कलयन्तु ।
जिन अमिय रसं जिन रञ्जमयं, जिन कम्म कलङ्क विमुक्कु ॥ ८ ॥ जिन० ॥

जिन समय मयं जिन पर्म पयं, जिन लोयालोय दर्संतु ।
जिन इस्ट मयं इछन्तु सुयं, वै दर्स रञ्ज जिन उत्तु ॥ ९ ॥ जिन० ॥
जिन यक्ष्य सुयं जिन न्यानमयं, भय षिपनिक भव्व स उत्तु ।
जिन कण्ठ अमिय वै दर्स समिय, जिनरंज मुक्ति सम्पत्तु ॥१०॥ जिन० ॥
जिन चेयमई जिनवेय मई, वेदिति हियार संजुत्तु ।
जिनहियं ममल जिनरंज रमनु, जिन अर्क अमिय रस उत्तु ॥११॥ जिन० ॥
जिन भय षिपियं जिन अमिय पियं, जिनरंज ममल संजुत्तु ।
जिन धम्म धुरं जिन न्यान सुरं, वै दर्स सिद्धि सम्पत्तु ॥१२॥ जिन० ॥
जिन दिस्टि दर्सु वैदिति सुरसु, भय षिपिय ममल दर्संतु ।
जिनरंज रमन जनरंज गलनु, जिन अमिय सिद्धि सम्पत्तु ॥१३॥ जिन० ॥
जिन सिद्धि सुरं जिन ममल पुरं, जिनरंज अमिय संजुत्तु ।
जिन भय षिपनिकु सुइ तारन तरनमय, वै दर्स सिद्धि सम्पत्तु ॥१४॥ जिन० ॥

अन्वय सहित अर्थ—(जिन जिनयति जिनय जिनेन्द पऊ) श्री जिनेन्द्र कर्मोंको जीतनेवाले हैं, रागादिके विजेता हैं, परमात्मापदमें प्रकाशमान हैं, (जिन सहजनन्द स सहाउ) वे जिनेन्द्र सहजानन्दमई अपने स्वभावमें विराजमान हैं (जिन परमनन्द त परम जिन) वे ही जिनेन्द्र परमानन्दमई हैं, वे ही श्रेष्ठ जिन हैं (जिन केवल ममल सहाउ) वे ही जिन केवली हैं, वे शुद्ध स्वभावके धारी हैं ॥ १ ॥

(जिन नन्द मऊ आनन्द मऊ) वेही जिनेन्द्र स्वरूपमें मगन हैं–आनन्दमई हैं (जिन जिनपति कम्म सहाउ) श्री जिनेन्द्रने कर्मोंके स्वभावको जीत लिया है, वे परम वीतराग हैं (जिन उत्त जिनय जिन कमल जिनय जिन) वे ही वीर जिन हैं, वे ही प्रफुल्लित कमलके समान जिनेन्द्र हैं, ऐसा जिनेन्द्रने कहा है (जिन सहज नन्द स सहाउ) वे ही जिनेन्द्र सहजानन्दमई अपने स्वभावमें हैं ॥ २ ॥

ममलपाहुड
॥२४७॥

रागभावके आनन्दमें रमन करते हैं परन्तु जगतके लोगोंके साथ आनन्द मनानेका भाव वहां नहीं है अर्थात् सांसारिक सुखका प्रपञ्च वहां नहीं रहा है, केवल आत्मिक सुख है (जिन अमिय सिद्धि सउत्तु) वे ही जिनेन्द्र अमृत स्वरूप सिद्धिको पालेते हैं ॥ १३ ॥

(जिन सिद्धि सुरं जिन ममल पुर) वे जिनेन्द्र सिद्धिको प्राप्त पूर्ण सूर्य हैं। वे ही जिनेन्द्र शुद्ध भावोंके नगर हैं। वहां पूर्ण शुद्ध स्वभाव है (जिन रज अमिय सजुत्तु) वे जिनेन्द्र आनन्दामृतसे पूर्ण हैं (जिन भय षिपनिक सुइ तारन तरन मय) वे ही निर्भय हैं, वे ही स्वयं तारन तरन स्वरूप हैं (वं दर्स मि द्ध स त्तु) वे आत्मदर्शी सिद्धिको प्राप्त करते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस फूलनामें श्री तारणस्वामीने श्री अरहंत परमेष्टीकी गुणावलीका वारवार मनन किया है। बतलाया है कि वे ज्ञानावरणादि चार घातीय कर्मोंसे रहित, अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्र व अनंत वीर्यके धारी हैं। उनके भीतर रागद्वेष, मोह, मान, माया, अहंकार, कामादि विकार कोई नहीं है। वे इंद्रियजनित सुखसे बाहर हैं। वे निरंतर अतीन्द्रिय स्वाभाविक आनंदको लेते हुए स्वात्मानंदमई अमृतका ही पान करते हैं। वे अपने स्वभावमें तन्मय हैं। विभावोंका वहां पता नहीं है। वहां ही सहजानंद है। वह स्वानुभव कर रहे हैं। उनके आत्मप्रदेशोंमें हर समय पूर्णानन्द प्रकाशमान है। उनकी उपमा सूर्यसे दी जाय तो भी नहीं बनती है। वे सूर्य समान सर्व लोकालोकको प्रकाश करते हुए भी कभी अस्त नहीं होते हैं। वे परम वीतराग हैं, वे ही भव्य जीवोंके लिये आदर्श हैं। जो भव्यजीव उनकी पूजा भक्ति करते हैं, उनका ध्यान करते हैं, उनका आत्मा भी पवित्र होजाता है। वे आनन्दरूपी अमृतके समुद्र हैं। वे निरन्तर उसी आनन्दमें मगन रहते हैं। शरीराश्रित महिमाको भव्यजीव देखकरके उनकी शांत मुद्रा, पद्मासन ध्यानमय आकारको देखकरके, समवसरणादि विभूतिको देखकरके उनके भीतरी गुणोंका अनुमान करते हैं। साक्षात् उन अरहन्त भगवानके गुणोंका अनुभव उसीको होगा जो मन, वचन, कायके विकल्पोंको छोड़कर स्वयं निज आत्माका अनुभव करेगा। जो अपनेको जानता है वही परमात्माको जानता है। आनन्दमई श्री जिनेन्द्रके गुणोंमें मग्न होना आनन्दका कारण है। आप्तस्वरूप ग्रन्थमें अरहन्तकी स्तुति भलेप्रकार की गई है। कहा है—

रागद्वेषादयो येन जिता कर्ममहाभटा । कालचक्रविनिर्मुक्त स जिन परिकीर्तित ॥ २१ ॥

स स्वयम्भु स्वयं भूत सज्ज्ञान यस्य केवलं । विश्वस्य ग्राहक नित्य युगपद्दर्शन तदा । २२ ॥
येनाप्त परमैश्वर्यं परानन्दसुखास्पदम् । बोधरूप कृतार्थोऽसावीश्वर पटुभि स्मृत ॥ २३ ॥
शिव परमकल्याणं निर्वाण शान्तमक्षय । प्राप्त मुक्तिपदं येन स शिव. परिकीर्तित ॥ २४ ॥

भावार्थ—श्री अरहन्त भगवानने रागद्वेषादिको व कर्म महान योद्धाओंको जीता है और कालको भी नाश कर दिया है इसलिये उनको जिन कहते हैं अर्थात् वे अब जन्ममरण न करेंगे। उन्होंने अपनेसे ही सर्व पदार्थोंको एक साथ देखने जाननेवाले केवलदर्शन व केवलज्ञानको पाया है इसलिये वे स्वयम्भू हैं उन्होंने ज्ञानमई परमानन्द सुखामृतरूपी ऐश्वर्यको प्राप्तकर परम कृतकृत्यपना प्राप्त किया है इसीलिये बुद्धिमान लोग उनको ईश्वर कहते हैं। उन्होंने परम कल्याणरूप परम शांत अविनाशी मुक्तिपदको पाया है इसलिये उनहीको शिव कहते हैं।

---

(३०) इच्छलषु फूलना गाथा ५८३ से ६०० तक।

जिन दिस्टि इस्टि तं परम पऊ, जिन लषियो सिद्ध सहाउ।
जिन नन्त लषु अनन्त लषु, जिन नन्त नन्त लषि भाउ ॥ १ ॥

जिन इच्छ लषु इच्छाइ लषु, इच्छन्तो लषु सुभाउ।
जिन पिच्छ लषु पिच्छाइ लषु, जिन लषिओ न्यान सहाउ ॥ २ ॥

विन्यान समय लषि सिद्धि पऊ (आचरी)

जिन अषय लषु जिन सुरय लषु, जिन विंजन लषिय सुभाउ।
जिन लषु पयं पद अर्थ सुयं, जिन लष्य कम्म विलयन्तु ॥ ३ ॥ जिन० ॥
जिन अर्थ लषु ति अर्थ लषु, लषन्तो न्यान विन्यान।
सम अर्थ लषु परमार्थ लषु, जिन लष्यमई विन्यान ॥ ४ ॥ जिन० ॥

जिन परिनै लषु परिमान लषु, जिन लषिय सहाउ संजुत्तु ।
सहकार लषु जिन उत्त लषु, जिन लषिय कम्म गलयन्तु ॥ ५ ॥ जिन० ॥
जिन लष्य धुवं जिन स सरूवं, जिन लष्य अलष अन्मोय ।
अन्मोय लषु तं षिपक लषु, षिपि षिपिय कम्म सुयमेउ ॥ ६ ॥ जिन० ॥
जिन षिपक लषु तं मुक्ति सुषु, जिन अलष लषिय जिन उत्तु ।
जिन कमल लषु जिन रमन लषु, जिन लषियालंकृत उत्तु ॥ ७ ॥ जिन० ॥
जिन लष्य सुद्धु तं नन्त बुद्धु, जिन लषिय विन्यान सहाउ ।
जिन सहज लषु जिन नन्द लषु, जिन लष्य उवन दसंतु ॥ ८ ॥ जिन० ॥
जिन न्यान लषु जिन नन्त लषु, जिन नानाप्रकार सलषु ।
जिन अन्मोय लषु जिन षिपक लषु, जिन लषिय मुक्ति संजुत्तु ॥९॥ जिन० ॥
जिन राग लषु जिन रंज लषु, जिन सल्य राग विलयन्तु ।
कल रंज लषु जिन दोस लषु, जिन लषिय दोस विलयन्तु ॥१०॥ जिन० ॥
जिन गार लषु मन रंज लषु, जिन लषिय कम्म विलयन्तु ।
जिन मोह लषु जिन अंध लषु, जिन लषिय मोह विलयन्तु ॥११॥ जिन० ॥
जिन आवर्न लषु चौ उवन लषु, जिन लषिय घाय विलयन्तु ।
जिन मिच्छ लषु सम मिच्छ लषु, जिन लषिय मिच्छ गलयन्तु ॥१२॥ जिन० ॥
जिन लोह लषु कोहाग्नि लषु, जिन लषियो मान सहाउ ।
जिन माय लषु परजाय लषु, जिन लषि पर्जाव गलन्तु ॥१३॥ जिन० ॥

जिन कम्म लषु अन्यान लषु, जिन लषि अन्यान गलन्तु ।
जिन परुवि लषु पर्जाव लषु, जिन लषि पर्जाव विलन्तु ॥१४॥ जिन० ॥

जिन ओत लषु ओताइ लषु, जिन चेय सचेय अलषु ।
जिन लषिय ममल जिन ओत सुयं, जिन प्रिये लषु पिय उत्तु ॥१५॥ जिन० ॥

जिन नन्द लषु आनन्द लषु, जिन लषिय सहज आनंद ।
जिन लष्य तत्तु जिन परम तत्तु, जिन परम तत्तु दर्संतु ॥१६॥ जिन० ॥

जिन लष्य अमिय रस सुइ मिलियं, भय षिपनक लषिय सुभाउ ।
जिन लषिय ममल रे धम्म मूल सुइ, जिन रंज लषिय जिन उत्तु ॥१७॥ जिन० ॥

वै दर्स लषिय जिन न्यान समय, वै दर्संतु जिनुत्तु ।
जिन लषिय अमिय रस अन्मोय न्यान जस, भय षिपिय संपत्तु ॥१८॥ जिन० ॥

अन्वय सहित अर्थ—(जिन दिस्टि इस्टि तं परम पऊ) श्री जिनेन्द्र भगवानने आत्माका जो इष्ट है ऐसे शुद्ध स्वभावरूप परम पदको देख लिया है (जिन लषियो सिद्ध सहाउ) श्री जिनेन्द्रने सिद्धोंके स्वभावको पहचान लिया है, साक्षात् प्रत्यक्ष देख लिया है। आत्मा अमूर्तीक पदार्थ है। उसका प्रत्यक्ष दर्शन केवलज्ञानी ही कर सक्ते हैं–मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय ज्ञानी नहीं कर सक्ते (जिन नन्त लषु अनत लषु) श्री जिनेन्द्रने अपने केवलज्ञान द्वारा सात पर्यायोंको तथा द्रव्योंके अनन्त गुणोंको देख लिया है (जिन नन्तानन्त लषि भाव) श्री जिनेन्द्रने अनन्तानन्त प्रकारके भावोंको या पर्यायोंको जान लिया है ॥ १ ॥

(जिन इच्छ लषु इच्छाय लषु इच्छतो लषु सुभाउ) श्री जिनेन्द्रने इच्छाके स्वभावको, जिसकी इच्छा की जावे उस वस्तुको तथा इच्छा करनेवाले रागी आत्माके स्वभावको जान लिया है (जिन पिच्छ लषु पिच्छाइ लषु जिन लषियो न्यान सहाउ) श्री जिनेन्द्रने ज्ञान दर्शनके स्वभावको जाननेयोग्य, देखनेयोग्य वस्तुओंके स्वभावको तथा जानने देखनेवाले आत्माके स्वभावको जान लिया है ॥ २ ॥

(विन्यान समय लपि मिद्ध पउ) श्री जिनेन्द्र सम्यग्ज्ञानमई आत्माको देखते हुए सिद्धपदको प्राप्त कर लेते हैं (जिन अषय लपु जिन सुरय लपु जिन विंजन लषिय सुभाउ) श्री जिनेन्द्र अक्षरोंको, स्वरोंके और व्यंजनोंके स्वभावको जानते हैं जिनसे द्वादशांग वाणीकी रचना होती है। अर्थात् जिनवाणीके द्वारा जो कुछ जाना जाता है वह सब केवलज्ञानीके ज्ञानमें झलक रहा है (जिन लपु पय पद अर्थ सुयं) श्री जिनेन्द्रने स्वर व्यंजनादि अक्षरोंसे बने हुए पदोंके और उन पदोंसे प्रगट पदार्थोंके स्वभावको स्वयं विना किसी मन व इन्द्रियोंकी मददके जान लिया है (जिन लष्य कम्म विलयन्तु) श्री जिनेन्द्रने अपना लक्ष्य या निशाना जिस शुद्धोपयोगकी ओर जमाया है उसके प्रतापसे कर्मोंकी निर्जरा होती है ॥ ३ ॥

(जिन अर्थ लपु तिमर्थ लपु रुषंतो न्यान विन्यान) श्री जिनेन्द्रने सर्व जीवादि पदार्थोंको जान लिया है। रत्नत्रयका स्वभाव अनुभव कर लिया है तथा वे अपने शुद्ध ज्ञानको अपने ही ज्ञानसे देख रहे हैं, किसी परकी सहायता नहीं है (सम अर्थ लपु परमार्थ लपु) श्री जिनेन्द्रने समताभावको अनुभव किया है। उन्होंने परमार्थ जो मोक्ष है उसको साक्षात् देख लिया है (जिन लष्यमइ विन्यान) श्री जिनेन्द्रका लक्ष्य ज्ञान है। अर्थात् वे ज्ञान चेतनारूप है या वे ज्ञान स्वभावका ही अनुभव कर रहे हैं ॥ ४ ॥

(जिन परिनै लपु परिमान लपु) श्री जिनेन्द्र परिणमनशील समय समयकी परिणतिको जान रहे हैं तथा जो प्रमाण ज्ञानको या सर्व वस्तुओंके प्रमाणको जान रहे हैं। मति आदि पांच ज्ञान प्रमाण हैं तथा इनका जो विषय है वह भी प्रमाण है। इसतरह सर्व ज्ञान व ज्ञेयको वे जान रहे हैं (जिन लषिय सहज सजुत्तु) जिनेन्द्रका स्वभाव ही देखने जानने मात्र है, वे किसीपर रागद्वेष नहीं करते हैं। जैसे सूर्य सबको प्रकाश करता हुआ वीतरागी रहता है वैसे वे वीतरागी रहते हैं (सहकार लपु जिन उत्त लपु) श्री जिनेन्द्रको परम सहाई जानना चाहिये। श्री जिनेन्द्रने जो कथन किया है उसको जानना चाहिये (जिन लषिय कम्म गलयंतु) श्री जिनेन्द्रके स्वभावको जो जानकर उसीका मनन करते हैं अर्थात् परमात्म स्वभावमें लय होजाते हैं उनके कर्म गल जाते हैं ॥ ५ ॥

(जिन लष्य धुंव जिन स सरुव) श्री जिनेन्द्रका लक्ष्यबिंदु जो आत्मा है वह ध्रुव है—अविनाशी है। श्री जिनेन्द्र अपने निज स्वरूपमें ही हैं, वहां परकृत विभावता नहीं है (जिन लष्य अलष्य अनुमोयं) जिन्होंने इन्द्रियोंके द्वारा जाननेयोग्य मात्र अनुभवगम्य अतीन्द्रिय आनन्द पर अपना लक्ष्य रक्खा है अर्थात् जो

अन्यान गलतु) परन्तु उन्होंने अपने जिन स्वभावको अनुभव करके अज्ञानको गला डाला है (जिन परुवि लपि पर्जाव लपु) श्री जिनेन्द्रने पर पदार्थको भी जाना है व पर पदार्थकी पर्यायोंको भी जाना है (जिन लपि पर्जाय विलतु) श्रीजिनेन्द्रने जब अपने जिन स्वभावको प्राप्त कर लिया तब सर्व शरीरोंकी प्राप्तिका कर्म गलगया ॥१४॥

(जिन ओत लपु ओताइ लपु) जिन्होंने सर्व तरफसे सर्व पदार्थोंको जाना है (जिन चेय सचेत्र अलपु) जिन्होंने अतीन्द्रिय सचेतन पदार्थ आत्माका अनुभव किया है (जिन लपिय ममल जिन ओत सुय) श्री जिनेन्द्रने शुद्ध भावको जाना है तथा वे स्वयं वीतरागतासे ओतप्रोत-पूर्ण हैं (जिन प्रिय लपु पिय उत्त) श्री जिनेन्द्रने मुक्ति-प्रियाको जाना है वे ही उनकी प्रिया पत्नी कही गई है ॥ १५ ॥

(जिन नद लपु आनंद लपु) श्री जिनेन्द्रने आनन्द नामके गुणको व उसमें रमणताको जाना है (जिन लपिय सहज आनंद) श्री जिनेन्द्रने सहजानन्द आनन्दका अनुभव किया है (जिन लपिय तत्तु जिन परम उत्तु) श्री जिनेन्द्रने सात तत्वोंको जाना है तथा विशेषसे अपने परम तत्व आत्माको जाना है। (जिन परम तत्तु दर्सतु) जिन्होंने परम तत्व निज शुद्धात्माका अनुभव किया है। इसी तत्वको वे भव्यजीवोंको दर्शाते हैं ॥ १६ ॥

(जिन लष्य अमिय रस सुइ मिलिय) श्री जिनेन्द्रने अनुभव करने योग्य अमृत-रसको स्वयं प्राप्त कर लिया है व उस रसके साथ तन्मय होगये हैं (भय पिनिक लपिय सुभाउ) जिन्होंने निर्भय आत्मीक स्वभावको जाना है (जिन लपिय ममल रै धम्म मूल सुइ) श्री जिनेन्द्रने शुद्ध और धारावाही चलनेवाले धर्मको यह माना है। वही मूल पदार्थ आत्मा है या आत्माका स्वभाव है (जिन रज लपिय जिन उत्त) श्री जिनेन्द्रने आनन्द गुणकी मगनताको जाना है जैसा जिनेन्द्रोंने कहा है ॥ १७ ॥

(वै दर्स लपिय जिन न्यान समय) उन्होंने अपने केवलज्ञानकी दृष्टिसे वीतराग विज्ञानमई आत्माको देखा है (वै दर्सतु जिनुत्तु) तथा वे इसी स्वभावको दर्शाते हैं। जैसे जिनेन्द्रने कहा है (जिन लपिय अमिय रस अन्मोय न्यान जस) श्री जिनेन्द्रने अमृतरससे पूर्ण आनन्दको व निर्मल यशस्वी ज्ञानका अनुभव किया है (भय पिपिय सिद्धि सउत्तु) वे सर्व भयोंको नाश करके सिद्ध गतिको पाते हैं ॥ १८ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें श्री तारणस्वामीने श्री जिनेन्द्र भगवानकी गुणावली गाई है। उनके आत्मीक गुणोंका मनन किया है। श्री अर्हंत भगवानके चार घातीय कर्मोंका अभाव होजानेसे वे अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्त वीर्य, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्र आदि शुद्ध स्वाभाविक भावोंके धारी

या अशुभ राग है (कल रंज लपु जिन दोम लपु) श्री जिनेंद्र शरीरके भीतर रंजायमान होनेवाले रागको तथा शरीर सुखसे विराधक द्वेषभावको जानते हैं वे रागद्वेषके स्वरूपको जानते हैं (जिन लषिय दोस विलयतु) परंतु श्री जिनेद्रके शुद्ध ज्ञानमें रागद्वेषका बिलकुल अभाव है ॥ १० ॥

(जिन गार लपु मनरज लपु) श्री जिनेन्द्र गारव या मद व अहङ्कारको तथा मनके रंजायमान होनेवाले परनिंदा पर प्रशंसा आदि भावोंकी जानते हैं (जिन लषिय कम्म विलयतु) परन्तु श्री जिनेन्द्रके शुद्धात्मीक प्रकाशसे वे कर्म ही क्षय होगये हैं। जो अहङ्कार या मनरंजक भावोंको उत्पन्न करते–केवलीके मोहनीय कर्मका सर्वथा क्षय होगया है (जिन मोह लपु जिन अन्ध लपु) श्री जिनेन्द्र भगवान मोहके स्वभावको तथा अज्ञानके स्वभावको जानते हैं (जिन लषिय मोह विलयतु) तथापि जिनके आत्मीक ज्ञानसे मोहका बिलकुल अभाव होगया है ॥ ११ ॥

(जिन आवर्न लपु चौ उवन लपु) श्री जिनेन्द्र भगवान कर्मोंके आवरणके स्वभावको जानते हैं। चार प्रकार–प्रकृति, प्रदेश, स्थिति तथा अनुभाग बन्धको जानते हैं (जिन लषिय घाय विलयतु) तथापि श्री जिनेन्द्रने शुद्ध ज्ञान प्रकाशके होते ही चारों घातीय कर्म क्षय होगये हैं (जिन मिच्छ लपु सम मिच्छ लपु) वे जिनेन्द्र मिथ्यात्व कर्मके स्वभावको जानते हैं। दर्शन मोहनीय कर्मके तीन भेद हैं उनको वे जानते हैं कि मिथ्यात्वके उदयसे तत्व श्रद्धान बिलकुल नहीं होता है, सम्यक् मिथ्यात्वके उदयसे सत्य असत्य तत्वोंका मिश्र श्रद्धान होता है सम्यक्त प्रकृतिके उदयसे तत्व श्रद्धान होता है परन्तु कुछ मलीन सातिचार होता है (जिन लषिय मिच्छ गलियतु) परन्तु श्री जिनेन्द्रके भीतर क्षायिक सम्यक्तका प्रकाश है जिससे सर्व मिथ्यात्वभाव क्षय होगया है ॥ १२ ॥

(जिन लोह लपु कोहग्गि लपु) श्री जिनेन्द्र लोभके स्वभावको व क्रोधकी बातके स्वभावको जानते हैं (जिन लषियो मान सहाउ) वे मान कषायके स्वभावको भी जानते हैं (जिन माय लपु परजाय लपु) जिनेन्द्र मायाचारके स्वभावको तथा इन चारों कषायोंके परिणामोंको जानते हैं (जिन लषि पर्जाय गलंतु) परन्तु जिनेन्द्रके शुद्ध भावरूपी वीतराग लक्ष्यके सामने वे सब कषायोंकी परिणतिएँ गल गई हैं, कषायका कोई भी अंश यहां नहीं है वे पूर्ण वीतराग व निःकषाय हैं ॥ १३ ॥

(जिन कम्म लपु अन्यान लपु) श्री जिनेन्द्र कर्मोंके स्वभावको व अज्ञानके स्वभावको जानते हैं (जिन लषि

अन्यान गलतु) परन्तु उन्होंने अपने जिन स्वभावको अनुभव करके अज्ञानको गला डाला है (जिन परुवि लषि पर्जाव लपु) श्री जिनेन्द्रने पर पदार्थको भी जाना है व पर पदार्थकी पर्यायोंको भी जाना है (जिन लपि पर्जाय विलतु) श्रीजिनेन्द्रने जब अपने जिन स्वभावको प्राप्त कर लिया तब सर्व शरीरोंकी प्राप्तिका कर्म गलगया ॥१४॥

(जिन ओत लपु ओताइ लपु) जिन्होंने सर्व तरफसे सर्व पदार्थोंको जाना है (जिन चेय सचेय अलपु) जिन्होंने अतीन्द्रिय सचेतन पदार्थ आत्माका अनुभव किया है (जिन लषिय ममल जिन ओत सुय) श्री जिनेन्द्रने शुद्ध भावको जाना है तथा वे स्वयं वीतरागतासे ओतप्रोत-पूर्ण है (जिन प्रिय लपु पिय उत्त) श्री जिनेन्द्रने मुक्ति-प्रियाको जाना है वे ही उनकी प्रिया पत्नी कही गई है ॥ १५ ॥

(जिन नंद लपु आनंद लपु) श्री जिनेन्द्रने आनन्द नामके गुणको व उसमें रमणताको जाना है (जिन लषिय सहज आनंदं) श्री जिनेन्द्रने सहजानन्द आनन्दका अनुभव किया है (जिन लषिय तत्तु जिन परम उत्तु) श्री जिनेन्द्रने सात तत्वोंको जाना है तथा विशेपसे अपने परम तत्व आत्माको जाना है। (जिन परम तत्तु दर्सेतु) जिन्होंने परम तत्व निज शुद्धात्माका अनुभव किया है। इसी तत्वको वे भव्यजीवोंको दर्शाते हैं ॥ १६ ॥

(जिन लष्य अमिय रस सुइ मिलिय) श्री जिनेन्द्रने अनुभव करने योग्य अमृत-रसको स्वयं प्राप्त कर लिया है व उस रसके साथ तन्मय होगये हैं (भय पिनिक लपिय सुभाउ) जिन्होंने निर्भय आत्मीक स्वभावको जाना है (जिन लषिय ममल रै धम्म मूल सुइ) श्री जिनेन्द्रने शुद्ध और धारावाही चलनेवाले धर्मको यह माना है। वही मूल पदार्थ आत्मा है या आत्माका स्वभाव है (जिन रज लपिय जिन उत्त) श्री जिनेन्द्रने आनन्द गुणकी मगनताको जाना है जैसा जिनेन्द्रोंने कहा है ॥ १७ ॥

(वै दर्स लपिय जिन न्यान समय) उन्होंने अपने केवलज्ञानकी दृष्टिसे वीतराग विज्ञानमई आत्माको देखा है (वै दर्सेतु जिनुत्तु) तथा वे इसी स्वभावको दर्शाते हैं। जैसे जिनेन्द्रने कहा है (जिन लपिय अमिय रस अन्मोय न्यान जस) श्री जिनेन्द्रने अमृतरससे पूर्ण आनन्दको व निर्मल यशस्वी ज्ञानका अनुभव किया है (भय पिपिय सिद्धि सउत्तु) वे सर्व भयोंको नाश करके सिद्ध गतिको पाते हैं ॥ १८ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें श्री तारणस्वामीने श्री जिनेन्द्र भगवानकी गुणावली गाई है। उनके आत्मीक गुणोंका मनन किया है। श्री अर्हंत भगवानके चार घातीय कर्मोंका अभाव होजानेसे वे अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्त वीर्य, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्र आदि शुद्ध स्वाभाविक भावोंके धारी

या अशुभ राग है (कल रंज लपु जिन दोस लपु) श्री जिनेंद्र शरीरके भीतर रंजायमान होनेवाले रागको तथा शरीर सुखसे विराधक द्वेषभावको जानते हैं वे रागद्वेषके स्वरूपको जानते हैं (जिन लषिय दोस विलयतु) परंतु श्री जिनेंद्रके शुद्ध ज्ञानमें रागद्वेषका विलकुल अभाव है ॥ १० ॥

(जिन गार लपु मनरज लपु) श्री जिनेन्द्र गारव या मद व अहङ्कारको तथा मनके रंजायमान होनेवाले परनिंदा पर प्रशंसा आदि भावोंको जानते हैं (जिन लषिय कम्म विलयतु) परन्तु श्री जिनेन्द्रके शुद्धात्मीक प्रकाशसे वे कर्म ही क्षय होगये हैं। जो अहङ्कार या मनरंजक भावोंको उत्पन्न करते—केवलीके मोहनीय कर्मका सर्वथा क्षय होगया है (जिन मोह लपु जिन अन्ध लपु) श्री जिनेन्द्र भगवान मोहके स्वभावको तथा अज्ञानके स्वभावको जानते हैं (जिन लषिय मोह विलयतु) तथापि जिनके आत्मीक ज्ञानसे मोहका विलकुल अभाव होगया है ॥ ११ ॥

(जिन आवर्न लपु चौ उवन लपु) श्री जिनेन्द्र भगवान कर्मोंके आवरणके स्वभावको जानते हैं। चार प्रकार—प्रकृति, प्रदेश, स्थिति तथा अनुभाग बन्धको जानते हैं (जिन लषिय घाय विलयतु) तथापि श्री जिनेन्द्रने शुद्ध ज्ञान प्रकाशके होते ही चारों घातीय कर्म क्षय होगये हैं (जिन मिच्छ लपु सम मिच्छ लपु) वे जिनेन्द्र मिथ्यात्व कर्मके स्वभावको जानते हैं। दर्शन मोहनीय कर्मके तीन भेद हैं उनको वे जानते हैं कि मिथ्यात्वके उदयसे तत्व श्रद्धान विलकुल नहीं होता है, सम्यक् मिथ्यात्वके उदयसे सत्य असत्य तत्वोंका मिश्र श्रद्धान होता है सम्यक्त प्रकृतिके उदयसे तत्व श्रद्धान होता है परन्तु कुछ मलीन सातिचार होता है (जिन लषिय मिच्छ गलियतु) परन्तु श्री जिनेन्द्रके भीतर क्षायिक सम्यक्तका प्रकाश है जिससे सर्व मिथ्यात्वभाव क्षय होगया है ॥ १२ ॥

(जिन लोह लपु कोहाग्नि लपु) श्री जिनेन्द्र लोभके स्वभावको व क्रोधकी घातके स्वभावको जानते हैं (जिन लषियो मान सहाउ) वे मान कषायके स्वभावको भी जानते हैं (जिन माय लपु परजाय लपु) जिनेन्द्र मायाचारके स्वभावको तथा इन चारों कषायोंके परिणामोंको जानते हैं (जिन लषि पर्जाय गलंतु) परन्तु जिनेन्द्रके शुद्ध भावरूपी वीतराग लक्ष्यके सामने वे सब कषायोंकी परिणतिएँ गल गई हैं, कषायका कोई भी अंश यहां नहीं है वे पूर्ण वीतराग व निःकषाय हैं ॥ १३ ॥

(जिन कम्म लपु अन्यान लपु) श्री जिनेन्द्र कर्मोंके स्वभावको व अज्ञानके स्वभावको जानते हैं (जिन लषि

अन्यान गल्तु) परन्तु उन्होंने अपने जिन स्वभावको अनुभव करके अज्ञानको गला डाला है (जिन दरुवि लवि पर्जाव लपु) श्री जिनेन्द्रने पर पदार्थको भी जाना है व पर पदार्थकी पर्यायोंको भी जाना है (जिन रुपि पर्जाव विल्तु) श्रीजिनेन्द्रने जब अपने जिन स्वभावको प्राप्त कर लिया तब सर्व शरीरोंकी प्राप्तिका कर्म गलगया ॥१४॥

(जिन ओत लपु ओताइ लपु) जिन्होंने सर्व तरफसे सर्व पदार्थोंको जाना है (जिन चेत सचेत अलपु) जिन्होंने अतीन्द्रिय सचेतन पदार्थ आत्माका अनुभव किया है (जिन लषिय ममल जिन ओत सुय) श्री जिनेन्द्रने शुद्ध भावको जाना है तथा वे स्वयं वीतरागतासे ओतप्रोत–पूर्ण हैं (जिन प्रिय लपु पिय उत्त) श्री जिनेन्द्रने मुक्ति–प्रियाको जाना है वे ही उनकी प्रिया पत्नी कही गई है ॥ १५ ॥

(जिन नंद लपु आनंद लपु) श्री जिनेन्द्रने आनन्द नामके गुणको व उसमें रमणताको जाना है (जिन लषिय सहज आनंदं) श्री जिनेन्द्रने सहजानन्द आनन्दका अनुभव किया है (जिन लषिय तत्तु जिन परम उत्तु) श्री जिनेन्द्रने सात तत्वोंको जाना है तथा विशेषसे अपने परम तत्व आत्माको जाना है। (जिन परम तत्तु दर्सेतु) जिन्होंने परम तत्व निज शुद्धात्माका अनुभव किया है। इसी तत्वको वे भव्यजीवोंको दर्शाते हैं ॥ १६ ॥

(जिन लब्ध अमिय रस सुइ मिलिय) श्री जिनेन्द्रने अनुभव करने योग्य अमृत–रसको स्वयं प्राप्त कर लिया है व उस रसके साथ तन्मय होगये हैं (भय विनिक लषिय सुभाउ) जिन्होंने निर्भय आत्मीक स्वभावको जाना है (जिन लषिय ममल रै धम्म मूल सुइ) श्री जिनेन्द्रने शुद्ध और धारावाही चलनेवाले धर्मको यह माना है। वही मूल पदार्थ आत्मा है या आत्माका स्वभाव है (जिन रज लषिय जिन उत्त) श्री जिनेन्द्रने आनन्द गुणकी मगनताको जाना है जैसा जिनेन्द्रोंने कहा है ॥ १७ ॥

(वै दर्म लषिय जिन न्यान समय) उन्होंने अपने केवलज्ञानकी दृष्टिसे वीतराग विज्ञानमई आत्माको देखा है (वै दर्सतु जिनुत्तु) तथा वे इसी स्वभावको दर्शाते हैं। जैसे जिनेन्द्रने कहा है (जिन लषिय अमिय रस अन्मोय न्यान जस) श्री जिनेन्द्रने अमृतरससे पूर्ण आनन्दको व निर्मल यशस्वी ज्ञानका अनुभव किया है (भय विपिय सिद्धि सात्तु) वे सर्व भयोंको नाश करके सिद्ध गतिको पाते हैं ॥ १८ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें श्री तारणस्वामीने श्री जिनेन्द्र भगवानकी गुणावली गाई है। उनके आत्मीक गुणोंका मनन किया है। श्री अर्हंत भगवानके चार घातीय कर्मोंका अभाव होजानेसे वे अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्त वीर्य, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्र आदि शुद्ध स्वाभाविक भावोंके धारी

हैं। वे परम वीतराग हैं। रत्नत्रय धर्मका फल पाकरके परम कृतकृत्य हैं। यद्यपि वे अपने ज्ञानसे इच्छाके स्वभावको, रागद्वेष मोहके स्वभावको, कर्मोंके बन्धके स्वभावको, क्रोधादि चार कषायोंको आदि सर्व प्रकारकी सर्व पर परिणतियोंको जानते हैं तथापि वे इन सबसे विलकुल रहित हैं। वे परम शांत हैं, परम निर्विकार हैं, वे ही परम तत्व हैं, वे ही परमानन्दमई हैं। जिस आत्माका दर्शन या अनुभव मन व इंद्रियाँ नही कर सक्ती हैं उस आत्माका वे प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं। श्रुतज्ञानी तो आत्माका स्वसंवेदन ज्ञानरूप अनुभव श्रुतकी प्रतीतिके आधारसे करते हैं, साक्षात् अमूर्तीक पदार्थोंको केवलज्ञान ही देख सक्ता है। द्वादशांगवाणीका मूल भगवानका दिव्योपदेश है तौभी जितना पदार्थ उपदेशमें कहा जाता है उसका अनन्तवां भाग द्वादशांगवाणीमें गूँथा जाता है। वह सब ज्ञान केवलज्ञानका एक भाग है।

श्री अरहंत भगवान पूर्ण समतारससे भरपूर हैं। आत्मानन्दके भोगमें रमणतासे ही कर्मोंका क्षय होता है। अतएव आत्मरमणको ही क्षपकभाव कहते हैं, कर्मोंको क्षय करनेवाला भाव कहते हैं। इसी क्षपक भावसे मोहनीय कर्मका फिर तीन शेष घातीय कर्मोंका क्षय होता है व यही स्वात्मानंद भाव केवली अरहंतमें भी जागृत रहता है। उससमय उस आनन्दको अनंतसुख कहते हैं। इसी आनन्दानुभवके प्रतापसे शेष चार अघातीय कर्मोंका भी क्षय होजाता है और श्री अरहंत सर्व कर्मोंसे व सर्व शरीरोंसे रहित होकर सिद्ध परमात्मा होजाते हैं। श्री अरहंत भगवानमें जो आनन्द है वह सहजानंद है, स्वाभाविक आनन्द है। वे कर्मचेतना कर्मफलचेतनासे विलकुल रहित हो ज्ञान चेतनाका ही स्वाद लेते हैं। वे कार्य समयसाररूप हैं, स्वसमयरूप हैं, ज्ञानानन्द स्वरूप हैं, परम निर्भय हैं, वे आनन्दामृत रसका पान करते हुए कभी अघाते नही हैं, सिद्धगतिमें भी जाकर इसी आनन्दामृतका पान करते रहते हैं। जो भव्य जीव श्री अरहंत भगवानका दर्शन, पूजन करते हैं, उनके स्वरूपका विचार करते हैं वे स्वयं अरहंत हो जाते हैं। उनकी वाणीको सुनकर उसका मनन करते रहो। श्री अरहंतके ध्यानसे ही अरहंतपद प्राप्त होता है। जो श्री अरहंतके आत्मीक गुणोंका विचार करता है वह मानो अपने ही आत्मीक गुणोंका विचार करता है। आत्मा व परमात्माके स्वभावमें निश्चयनयसे कोई भी अंतर नहीं है। व्यक्तित्व या सत्ता तो भिन्न२ है परन्तु स्वभाव एक समान है। श्री योगेन्द्रदेव योगसारमें कहते हैं—

जिण सुमिरहु जिण चिंतवहु जिण झायहु सुमणेण। सो झाइतह परमपउ लब्भइ इक्कखणेण ॥ १९ ॥

सुद्धप्पा अरु जिणवरह भउ म किमपि वियाणि । मोक्खह कारण जोईया णिच्छइ एउ वियाणि ॥ २० ॥
जो जिणु सो अप्पा मुणहु इह सिद्धतहु सारु । इउ जाणेविण जोयइहु छडहु मायाचारु ॥ २१ ॥
जो परमप्पा सो जि हउ जो हउ सो परमप्पु । इउ जाणेविणु जोइआ अण्ण म करहु वियप्पु ॥ २२ ॥

भावार्थ—श्री जिनेन्द्रको स्मरण करो, जिनेन्द्रको चिंतवन करो, जिनेन्द्रको शुद्ध मन करके ध्याओ। उसीके ध्यान करनेसे एक क्षणमें परम पदकी प्राप्ति होती है। अपने शुद्ध आत्मामें और जिनेन्द्रमें कुछ भेद न जानो। यही ज्ञान हे योगी! निश्चयसे मोक्षका कारण जान। जो जिनेन्द्र है सो ही आप है। यही सिद्धांतका सार है। ऐसा जानकर हे योगी! मायाचार छोड़कर उसी रूप अपनेको मान। जो परमात्मा है वही मैं हूं, जो मैं हूं वही परमात्मा है, ऐसा अनुभव कर। हे योगी! और विकल्प या विचार न कर।

(३१) अचष्य दर्सन गाथा ६०१ से ६२७ तक।

अचष्ये दर्सन उत्तं, सद्दं सहकार न्यान विन्यानं।
अचष्ये अनन्त रूवं, रूवातीतं अचष्य दर्सति ॥ १ ॥
अचष्ये हृदय संजुत्तं, हितमित परिनवइ कोमलंसहियं।
अचष्ये सद्द सुहावं, ममल सहावेन सव्द विन्यानं ॥ २ ॥
लष्यन जिन उवएसं, लष्यंतो ममल न्यान विन्यानं।
भय विनस्य भवयनं, परिनामो लष्यनेहि संजुत्तं ॥ ३ ॥
जिनवर उत्तं दिट्टं, कमल सहावेन पर्याय संजुत्तं।
कमल कन्द जिन उत्तं, सो अट्ठमि ममल मल मुक्कं ॥ ४ ॥
कमल मुष गिरि सहियं, चौ उववंन साढि संजुत्तं।
पद्द कमलं तं सहियं, सहसं बत्तीस न्यान मल विलयं ॥ ५ ॥

जिन इस्टि दिस्टि उत्तं, सहसं अठ लक्खने हि ममल न्यानं च ।
चतुष्टै षट् सुभावं, उववन्नं जिनेन्द विंद चौवीसं ॥ ६ ॥
इय सहाव लष्यन यं, जिन दिट्ठं परिनाम लष्यनं उत्तं ।
भय षिपनिक ममल सहावं, धम्म सहकार मुक्ति संदर्सं ॥ ७ ॥
जिह्वा अग्र उवन्नं, दिट्ठं जिनेन्द विंद विन्यानं ।
नन्त चतुष्टै जुत्तं, परिनाम विन्यान न्यान चौसठियं ॥ ८ ॥
चौसठ अर्थ जुत्तं, चतुष्टै सहकार सहज ठिदि ममलं ।
मुक्ति सुभावं ठिदियं, ठिदियं मुक्ति ममल न्यानं च ॥ ९ ॥
जिह्वा कन्द सु ममल, सौ अट्ठमि परिनाम न्यानं च ।
कम्म कलङ्क सु विलयं, विन्यानं सरूव संकलियं ॥ १० ॥
सौ अट्ठंपि स अर्थं, सहकारं उववन्न अष्टांग ।
अप्पं च मुक्ति ठिदियं, मुक्ति विन्यान न्यान ममलं च ॥ ११ ॥
जिह्वा सहाव जुत्तं, परिनामं सहस अट्ठ लष्यनं ममलं ।
चौवीसं तित्थयरं, भय षिपनिक सहकार न्यान ममलं च ॥ १२ ॥
लष्यन दिसि संजुत्तं, लष्यन सहकार विंद विन्यानं ।
भय षिपिय ममल सहावं, धम्म सहाव मुक्ति गमनं च ॥ १३ ॥
लष्यन जिनेन्द विन्दं, तित्थयरं अर्थस्य अर्थ परमर्थं ।
तित्थयर नन्त आचरनं, परिनामं तित्थयर न्यान आयरनं ॥ १४ ॥

भय उत्तं च जिनेन्दं, भय षिपियं ति अर्थ ममलं च ।
ति अर्थ भय त्रितीयं, भय षिपिय अभय न्यान सहकारं ॥ १५ ॥

ममल सहावं उत्तं, परिनामं न्यान सुपंच अष्टंमि ।
नौ सहकार संजुत्तं, नौसै वहत्तरंमि न्यानं च ॥ १६ ॥

ति अर्थ अर्थ सहियं, सो परिनाम न्यान विन्यानं ।
लस्यन जिन उवएसं सहसं अष्टंमि लष्यनं ममलं ॥ १७ ॥

चौवीसं च संजुत्तं, तित्थयर उववन्न न्यान विन्यानं ।
भय विनस्ट सहकारं ममल सहावेन सिद्धि सम्पत्तं ॥ १८ ॥

लख्यन जिन उवएसं, न्यान विन्यान सहाव ममलं च ।
भय षिपनिक ममल सहावं, धम्म सहाव लष्यनं ममलं ॥ १९ ॥

तारन तरन सु समयं, भय षिपनिक भव्य न्यान विन्यानं ।
अमिय रस रसिय सु ममलं, न्यानं अन्मोय सिद्धि संपत्तु ॥ २० ॥

उव उववन्न सु तरनं, भय षिपनिक हिययार तारनं ममलं ।
अमिय पयो सहकारं, कम्म षिपिऊन निव्वुए जंति ॥ २१ ॥

भय विनस्य भवयनं, अमिय अन्मोय न्यान विन्यानं ।
सह हिययार उवन्नं, तारन रूप सरूव विन्यानं ॥ २२ ॥

भय पिपिय भव्व सहकारं, अमियरस अन्मोय तारनं ममलं ।
तं विओय मुच्छपनं, भय पिपिय अमिय दिस्टि उवसंतं ॥ २३ ॥

भय षिपिय अमिय रस खन्नं, तारन अन्मोय परम पिउ जुत्तं।
जं बाधा अषिर अबन्धं, तं रमनं दिस्टि संजोय मिलियं च ॥ २४ ॥
तं विओय किम सहियं, जं अदिस्टं च दिस्टि गलियं च।
भय षिपिय अमिय अन्मोयं, दिस्टि सहकारं नन्त सौख्यं च ॥ २५ ॥
जिन उव सुन्न सुहावं, दिप्ति दिस्टं च उवन ममलं च।
रुइयिउ पर्म परमप्पं तरन विवान मुक्ति गमनं च ॥ २६ ॥
दत्तं पत्त विसेषं, दत्तं जं देइ सुख्य भावेन।
पत्त ममल सहावं, तत्काल संजोय मुक्ति गमनं च ॥ २७ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(अचष्यें दर्सन उत्त) अब अचक्षु दर्शनको कहते हैं। मन द्वारा पदार्थको सामान्यपने जानना अचक्षुदर्शन है अथवा अचक्षुसे प्रयोजन इंद्रियोंसे व मनसे अतीत आत्मासे है। अब अचक्षुदर्शनको अर्थात आत्माके दर्शनको कहते हैं। मनद्वारा आत्माका मनन होता है। आत्माद्वारा आत्माका ग्रहण अथवा अनुभव होता है (सब्द सहकार न्यान विन्यान शब्दोंकी सहायतासे अभ्यास करनेवालेको ज्ञान तथा भेदविज्ञान होता है, वाच्य वाचक सम्बन्ध होता है। शब्द वाचक है—कहनेवाला है, पदार्थका स्वरूप वाच्य है जो शब्दोंसे कहा जाता है (अचष्यें अनन्तत्व) इंद्रियोंसे परे मन द्वारा अनंत स्वभावी आत्माका मनन होता है तथा मनसे भी अतीत आत्मा द्वारा उसी आत्माका अनुभव होता है (रूवातीत अचष्यदर्सनि) आत्मा रूपातीत श्री सिद्ध भगवानको या शुद्ध आत्माको देख लेता है ॥ १ ॥

(अचष्यें हृदय मंयि) मनद्वारा अचक्षु दर्शनसे अर्थात् मनद्वारा आत्माके स्वरूपके मननसे (हितमित परिनवइ कोमल सहिय) मन हितमित भावोंको विचारनेवाला कोमल होजाता है, कठोर मनसे शांतिसे विचार नहीं होसक्ता है। जब तत्वके मननसे कठोरता मिटकर कोमलता आजाती है तब शुद्ध या शुभ भावोंका विचार आगमकी मर्यादापूर्वक होता है (अचष्यें सद्द सुहाव) आत्माके स्मरण करानेवाले शब्दोंकी सहायतासे

आत्माका मनन होता है (ममल सहावेन सव्द वि'यान) निर्मल शांतस्वभाव द्वारा विचार करनेसे शब्दोंके द्वारा आत्मा व अनात्माका भेदविज्ञान उत्पन्न होजाता है ॥ २ ॥

(लप्यन जिन उवएस) श्री जिनेन्द्र भगवानने आत्माका लक्षण चेतना गुण कहा है (लप्यतो ममल न्यान वि'यान) इस लक्षण द्वारा ज्ञान विज्ञान स्वभावधारी आत्माका स्वरूप पुद्गलादि पांच द्रव्योंसे भिन्न जाना जाता है (भय वि-स्य भवयन) इस आत्माके यथार्थ लक्षणको जान लेनेसे भव्य जीवोंका सर्व भय नाश होजाता है। जन्म मरण जरा रोगादि शरीरमें होते हैं, मेरे आत्मामें नहीं। आत्मा अजन्मा, अजर, अमर, बाधारहित है। जब अपनेको आत्मा ही श्रद्धान कर लिया फिर अविनाशी आत्माके विगाड़का कोई भय नहीं होसक्ता है (परिनामो रुप्यने हि समुत्त) उस आत्मज्ञानी भव्यजीवके सर्व ही परिणाम या भाव आत्माके लक्षणको ध्यानमें लेकर होते हैं अर्थात् सम्यग्ज्ञानीके सर्व ही भाव आत्मज्ञान पूर्वक होते हैं जिनसे सम्यग्दर्शन सुरक्षित रहता है–सम्यग्दर्शनमें कोई बाधा नहीं आती है ॥ ३ ॥

(जिनवर उत्त दिट्ठ) जैसा श्री जिनेन्द्रने कहा है वैसा आत्माको देखना चाहिये (कमल सहावेन पर्याय मजुत्तं) आत्माका स्वभाव कमलके समान प्रफुल्लित है, वह वास्तविक एक द्रव्य है (कमल कंद जिन उत्तं) वही आत्मा अरहन्तरूपी कमलकी जड़ है ऐसा जिनेन्द्रने कहा है अर्थात् आत्मा ही गुणोंके विकाससे परमात्मा होजाता है (सौ अट्ठमि ममल मल मुक्क) एकसौ आठ दफे परमात्माका नाम जपनेसे भाव शुद्ध होजाता है, रागादि मल कट जाता है। ऐसा प्रसिद्ध है कि जीवाधिकरणके १०८ भेद हैं संरंभ (किसी कामका विचार करना), समारंभ (उस कामका प्रबन्ध करना), आरंभ (उस कामको प्रारम्भ कर देना) ये तीनों ही प्रत्येक मन, वचन, काय द्वारा होते हैं अतएव नौ भेद हुए। कृत कारित अनुमोदनासे तीन तरहसे काम होता है इसलिये सत्ताईस भेद हुए। हरएक काम चार कषायोंमेंसे किसी कषायके द्वारा होता है अतएव एकसौ आठ प्रकारके भाव जीवोंके होते हैं जिनके आधारसे कर्मोंका आस्रव होता है। इन ही भावोंसे जो कर्मबन्ध हुआ है उसकी शांतिके लिये १०८ दफे मंत्रोंकी जाप की जाती है ॥ ४ ॥

(कमल मुषगिरि सहिय) श्री अर्हत परमात्माके मुखसे जो वाणीका प्रकाश होता है (चौ उववन्न साठि सजुत्त) उस वाणीको ६४ अक्षरोंके द्वारा द्वादशांग वाणीमें गूँथा जाता है, इसका कथन इष्ट छन्द (२३) में किया गया है। (पट् कमल त सहियं) छः पत्तेके कमलोंके द्वारा इनका मनन किया जाता है। ऐसा भाव

समझमें आता है कि छः पत्तेका कमल बनावे, उसे हृदयस्थानपर विराजिमान करे, बीचमें गुलाईमें २७ स्वर लिखे। छः पत्तोंपर पांचमें–क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, प वर्गमय अक्षर लिखे। छठे पत्तेपर–य र ल व श ष स ह आठ अक्षर लिखे। चार योग वाह बिलकुल मध्यमें लिखे। इस तरह ४४ अक्षरोंका कमल बनाकर ध्यान करे (महस बत्तीस ग्यान मल विलय) एक हजार बत्तीस दफे या ३२००० बत्तीस हजार दफे इन अक्षरोंको जप.जावे या ध्यान करे तो ज्ञानावरणीय कर्मका मल दूर होता है, ज्ञान प्रगट होता है।

नोट–यहां जो भाव समझमें आया सो लिखा गया है ॥ ५ ॥

(जिन इस्टि सिस्टि उत्त) जिनेन्द्रकी परम हितकारी ज्ञानमई दृष्टि कही गई है। अर्थात् श्री तीर्थंकर केवलीका परमेष्टीपद ज्ञानमई है (महस अठ लक्खनेहि ममल न्य न च) उनके शरीरमें एक हजार आठ लक्षण होते हैं उनका ज्ञान शुद्ध है। वे केवलज्ञानी हैं (चतुष्टै षट् सुभाव) उनमें अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, ये चार अनन्त चतुष्टय तथा क्षायिक सम्यक्त और क्षायिक चारित्रको भी लेकर छः स्वभाव प्रगट हैं (उवबन जिनेन्द विंद चौवीस) ऐसे श्री तीर्थंकर जिनेन्द्र स्वात्मानुभवी चौवीस हरएक उत्सपिणी व अवसर्पिणी कालमें भरत व ऐरावतमें प्रगट होते रहते हैं ॥ ६ ॥

(इय महाव लष्यनयं) ऐसे स्वभाव और लक्षणोंसे युक्त तीर्थंकर होते हैं (जिन दिट्ठ परिनाम लष्यन उत्त) जैसा जिनेन्द्रने देखा है वैसे तीर्थंकर प्रभुका भाव व लक्षण कहा गया (भय षिपनिक ममल सहावं) वे तीर्थंकर भगवान भय रहित हैं व शुद्ध स्वभावके धारी हैं (धम्म सहकार मुक्तिस दर्सं) वे प्रभु रत्नत्रय धर्मपर स्वात्मानुभव धर्मके प्रतापसे मुक्तिका दर्शन करते हैं ॥ ७ ॥

(जिह्वा अग्र उवंक) श्री तीर्थंकर भगवानके मुखार्विन्दसे प्रगट जिनवाणी है (दिट्ठ जिनंद विंद विन्यान) श्री जिनेन्द्र भगवानने ज्ञानको भलेप्रकार देखा है व अनुभव किया है (नन चतुष्टै जुत्त) वे भगवान् अनन्त चतुष्टय सहित हैं (परिनाम विन्यान ग्यान चौसठिय वे अपने शुद्ध ज्ञानमें परिणमन कर रहे हैं, उनका ज्ञान जिनवाणीके चौसठ अक्षरोंसे प्रगट होता है ॥ ८ ॥

(चौसठ अर्थ जुत्त) इस चौसठ अक्षरमय जिनवाणीसे जीवादि पदार्थोंका स्वरूप प्रगट होता है (चतुष्टै महकार महज ठिदि ममल) वे तीर्थङ्कर भगवान चार अनन्त चतुष्टयके कारण अपने शुद्ध सहज भावमें स्थित हैं, लवलीन हैं, केवलदर्शन व केवलज्ञानसे उन्होंने निज शुद्ध स्वभावको देखा है। अनन्त वीर्यसे वे स्वरू-

पमें स्थिर हैं अनन्त सुखके कारण वे अतींद्रिय आनन्दमें लीन हैं (मुक्ति सुभावं ठिदिय) वे मोक्षके स्वभावमें स्थित हैं निर्मल आत्मस्वभावमें विराजमान हैं (ठिदिय मुक्ति ममल न्यानं च) वे मोक्षके शुद्ध ज्ञानमें स्थित हैं, आत्मानन्दमें तन्मय हैं ॥ ९ ॥

(जिह्वा कन्द सु ममल) अपनी जिह्वाके मूलसे शुद्धताके साथ (सौ अट्ठमि परिनाम न्यान च) एकसौआठ दफे मंत्रोंको जपकर अपने ज्ञान स्वभावमें परिणमन करे। (कम्म कलङ्क सु विलय) इस मंत्रकी जापसे कर्म-कलंक दूर होता है (विन्यान सरूव सकलिय) तथा भेदविज्ञानसे अपने स्वरूपमें स्थिति होती है। एक माला १०८ दानोंकी होती है। किसी भी परमेष्ठी वाचक मंत्रको १०८ दफे जपे। यह विचारता रहे कि मेरा स्वरूप भी निश्चयसे परमात्मारूप है, कर्म आदि मुझसे भिन्न हैं। इनकी निर्जरासे मैं शुद्ध होजाऊँगा। मंत्र श्री द्रव्यसंग्रहजीमें सात प्रकार कहे गये हैं।

पणतीस सोल छ प्पण चदु दुगमेगं च जवह झाएह। परमेट्ठिवाचयाण अण्णं च गुरूवएसेण ॥ ४९ ॥

भावार्थ—पांच परमेष्ठी वाचक पैंतीस अक्षरका मंत्र है। णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइ-रियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। सोलह अक्षरका मंत्र है—

अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः।

छः अक्षरका मंत्र—अरहंत सिद्ध।

पांच अक्षरका मंत्र—असिआउसा।

चार अक्षरका मंत्र—अरहंत।

दो अक्षरका मंत्र—सिद्ध, सोहं, ॐ ह्रीं।

एक अक्षरका मंत्र—ॐ।

और भी मंत्र होसक्ते हैं जैसे—अर्ह, ह्रीं, श्रीं।

इन सब मंत्रोंका जप व ध्यान करना उचित है। एक जाप १०८ दफे जपनेसे होती है ॥ १० ॥

(सौ अट्ठमि स अर्थं) यदि आत्मा पदार्थका लक्ष्य रखकर सम्यग्दर्शन सहित संसार शरीर भोगोंसे वैराग्यभाव रखता हुआ एक सौ आठ दफे मंत्र जपा जावे व उसका ध्यान किया जावे (सहकार उववन्न अष्टागं) तो इस जप व ध्यानकी सहायतासे आठ गुण सिद्धोंके प्रगट होजाते हैं। ध्यान हीसे सिद्धपद

होता है। आठ कर्मोंके नाशसे अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, सम्यक्त, अनन्तवीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व, अव्याबाधत्व प्राप्त होते हैं। अथवा जप व ध्यानसे सम्यक्तके आठ अंगोंके पालनेकी दृढ़ता होती है। निःशङ्कितांग, निःकांक्षितांग, निर्विचिकित्सितांग, अमूढदृष्टि, उपगूहनांग, स्थितिकरणांग, वात्सल्य व प्रभावनांग (अप्प च मुक्ति ठिदियं) आत्मा इसी जप व ध्यानसे मुक्तिमें जा विराजता है (मुक्त विन्यान न्यान ममल च) मोक्ष होनेपर ज्ञान पूर्ण शुद्ध सदा बना रहता है ॥ ११ ॥

(जिह्वा सहाव जुत्तं) श्री तीर्थंकर भगवानका स्वभाव ही है कि भव्यजीवोंके उपकारके लिये उनकी दिव्यवाणी प्रगट होती है (परिनामं सहस्र अट्ठ लष्यन ममल) तीर्थंकर भगवानके शरीरमें एकहजार आठ लक्षण होते हैं। वे परम शुद्ध हैं (चौवीस तित्थयर) ऐसे चौवीस ऋषभादिसे महावीर पर्यंत तीर्थंकर इस कालमें यहां होगए हैं (भय पिपनिक सहकार न्यान ममल च) वे परम निर्भय थे। इसी कारण उनका ज्ञान निर्मल था ॥१२॥

(लष्यन दिप्ति सजुत्त) वे तीर्थंकर १००८ लक्षण व महान शरीरकी दीप्तिको रखनेवाले होते हैं। उनके शरीरमें अपूर्व चमक होती है, जिससे उनके चारोंतरफ भामण्डल बन जाता है। (लष्यन सहकार विंद विन्यान) वे तीर्थंकर इन लक्षणोंके साथ अन्तरंग लक्षण ज्ञानचेतनाको रखते हैं। वे ज्ञानानन्दका निरन्तर अनुभव करते हैं (भय षिपिय ममल सहाव) वे सर्व भय रहित निर्मल स्वभावके धारी हैं (धम्म सहाव मुक्ति गमन च) वे तीर्थंकर आत्मीक धर्मकी सहायतासे मोक्षमें जाते हैं ॥ १३ ॥

(लष्यन जिनंद विंदं) वे जिनेन्द्रके लक्षणको धारते हुए वीतराग विज्ञानका अनुभव करते हैं (अर्थस्य अर्थ परमर्थं) वे तीर्थंकर सर्व पदार्थोंमें सार पदार्थ परमार्थ रूप परमात्मा है (तित्थयर तीर्थंकर अपने अनन्त ज्ञान स्वरूपमें आचरण करते हैं, परमें रागद्वेष नहीं रखते हैं (तित्थयर नत आचरनं) वे आवरन) वे अपने तीर्थंकर पदमें परिणमन करते हैं, धर्म तीर्थका प्रचार करते हैं, तौभी अपने शुद्ध ज्ञानमें (परिनाम तित्थयर न्यान मगन हैं, अपने स्वरूपानन्दमें ही तल्लीन हैं ॥ १४ ॥

(भय उत्त च जिनंदं) श्री जिनेन्द्र भगवानने भयका स्वरूप बताया है-प्राणी मिथ्यात्वके कारण सदा भयभीत रहता है, सम्यक्ती सदा निर्भय रहता है (भय षिपिय तिअर्थं अर्थ ममल च) परंतु वे जिनेन्द्र सर्व भयरहित हैं उनका रत्नत्रयमई स्वभाव परम शुद्ध है (ति अर्थ भय त्रितीय) तीन पदार्थ सम्बन्धी तीन भय होते हैं-मरण भय, रोग भय, परलोकमें दुःखोंका भय, या मरण भय, सम्पत्तिके छूटनेका भय व

परलोक भय (भय पिपिय अभय न्यान सहकारं) श्री जिनेन्द्रने सर्व भयका क्षय कर डाला है क्योंकि उनमें सर्व भय रहित व रागादि रहित वीतराग ज्ञान विद्यमान है ॥ १५ ॥

(ममल सहाव उत्त) आत्माका शुद्ध स्वभाव उसे कहा गया है कि (परिनाम न्यान सुय च अट्ठमि) जो ज्ञानी आत्मा स्वयं आठ गुणरूप परिणमन कर जावे अर्थात् सिद्धोंके आठ गुण आठ कर्मोंके नाशसे प्राप्त हो जावे (नौ सहकार सजुत्त नौसौ बहत्तरमि न्यान च) अर्हतोंके नौ केवल लब्धियां प्रगट होती हैं—अनन्तज्ञान, अनंत दर्शन, अनन्त लाभ, अनन्तदान, अनन्तभोग, अनन्त उपभोग, अनन्तवीर्य, क्षायिक सम्यक्त और क्षायिक चारित्र; इनकी प्रगटताका उपाय प्रत्येकके लिये १०८ एकसौ आठ दफे परमात्मा वाचक मंत्रोंका जप व ध्यान है तब नौ गुणोंके लिये नौसो बहत्तर जप होजाते हैं।

नोट—इसका जो अर्थ समझमें आया सो लिखा जाता है, विशेषज्ञ विशेष विचारलें। यदि दूसरा अर्थ इससे अच्छा वैठता हो तो उसे ही समझें व प्रगट करे ॥ १६ ॥

(ति अर्थ अर्थ सहियं) रत्नत्रय सहित जो आत्मा पदार्थ है (सो परिनाम न्यान विन्यान) वही शुद्ध केवलज्ञानरूप परिणमन करता है (लष्यन जिन उवएसं) तीर्थंकरोंके बाहरी लक्षण कहे गये हैं (सहस अट्ठमि लष्यनं ममलं) वे शुद्ध एक हजार आठ लक्षण हैं ॥ १७ ॥

(चौवीस च सजुत्तं) श्री ऋषभादि चौवीस तीर्थंकर इन लक्षणोंके धारी थे (तित्थयर उववन्न न्यान विन्यान) उन तीर्थंकरोंको केवलज्ञान प्रगट होगया था (भय विनस्ट सहकार) व उनका सर्व भय विला गया था (ममल सहावेन सिद्धि सम्पत्त) वे तीर्थंकर अपने शुद्ध स्वभावके कारण सिद्धिका लाभ कर चुके हैं ॥ १८ ॥

(लष्यन जिन उवएस) श्री जिनेन्द्रने अर्हत तीर्थंकरके भीतरी लक्षण कहे हैं (न्यान विन्यान सहाव ममल च) वे केवलज्ञानी होते हैं व स्वभावसे ही शुद्ध या वीतरागी होते हैं (भय षिपनिक ममल सहाव) उनका सर्व भय विलकुल क्षय होगया है, उनका स्वभाव सर्व दोषोंसे रहित है (धम्म सहाव लष्यन ममल) वे प्रभु रत्नत्रयमई धर्मके स्वभावरूप होगये हैं। अर्थात् उनकी आत्मामें रत्नत्रय धर्म पूर्णरूपसे विद्यमान है ॥ १९ ॥

(तारन तरन सु समय) वे अरहन्त तारन तरन हैं, आप भवसागरसे पार होंगे व बहुतोंको पार करेंगे। वे ही पर समयसे रहित स्वसमय रूप हैं। अर्थात् आपसे आपमें कल्लोल कर रहे हैं (भय षिपनिक भव्य न्यान विन्यानं) वे निर्भय हैं, वे ही भव्य हैं व वे ही केवलज्ञान स्वरूप हैं (अमिय रस रसिय सु ममल) वे अपने आन-

न्दामृत रसका स्वाद लेते हैं व परम निर्मल हैं (न्यान अन्मोय सिद्धि सपत्तु) वे ज्ञानानन्द स्वरूप हैं इसीके प्रतापसे सर्व कर्मरहित सिद्ध होजाते हैं ॥ २० ॥

(उव उववन्न सु तारनं) वे अरहन्त परमेष्ठी सदा प्रकाशमान रहते हैं। वे अपने तारनेको आप ही जहाज हैं (भय षिपनिक हिययार तारन ममल) वे भव्य जीवोंके भयोंको दूर करनेवाले परम हितकारी शुद्ध तारन हैं या जहाज हैं। उनके उपदेशको सुनकर व उनकी भक्ति करके अनेक भव्य जीव संसारसे पार होजाते हैं (अमिय पयो सहकार) वे ही अमृतपदकी प्राप्तिमें सहायक हैं। जो श्री अरहन्तका ध्यान करता है वह स्वयं अरहन्त होजाता है तथा (कम्म षिपिऊ निव्वुए जंति) वे सर्व कर्मोंका क्षय करके निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं ॥२१॥

(भय विनस्य भवयनं) श्री अरहन्त भगवान भव्य जीवोंके भयोंको नाश करनेवाले हैं (अमिय अन्मोय न्यान विन्यान) आनन्दामृतसे मगन हैं व केवलज्ञान स्वरूप हैं (मह हियया उववन्न) वे परम हितकारी प्रकाशमान हैं (तारन रूव सरूव विन्यान) वे ही भवसागरसे तारनेवाले ज्ञानस्वरूप हैं ॥ २२ ॥

(भय षिपिय भव्य सहकार) भव्योंके संसार भय मेटनेमें श्री अरहन्त भगवान सहकारी हैं (अमिय रस अन्मोय तारनं ममल) वे आनन्दामृत रसमें मगन हैं, वे ही शुद्ध हैं, वे ही तारनेवाले हैं (त विओय मुच्छयन) उनके पास कोई मूर्छा या परिग्रह नहीं है, वे परम निर्ग्रंथ हैं या परम आकिंचन्य धर्मके धारी हैं (भय षिपिय अमिय दिस्टि उवसंत) वे सर्व भयसे रहित हैं व परम शांत आनन्दामृतका अनुभव करते हैं ॥ २३ ॥

(भय षिपिय अमिय रस रमन) वे निर्भय आनन्दामृत रसमें रमन कर रहे हैं (तारन अन्मोय परम पिउ जुत्त) वे ही तारन हैं, वे ही आनन्दमय हैं, वे ही परम प्रिय हैं (ज बाधा अपिउ भव ध) कोई सांसारिक बाधा व उपसर्ग उनको कष्ट नहीं देसक्ता, वे अविनाशी अव्याबाध हैं (त जन दिस्टि सजोय मिलिय च) वे आपमें मगन हैं, उन्होंने अपनी दृष्टि आपके ही भीतर मिलाली है अर्थात् वे ध्यानमग्न हैं ॥ २४ ॥

(त विओय किम सहिय) श्री तारणस्वामी कहते हैं कि उस शुद्ध स्वरूपका वियोग कैसे सहन किया जावे (ज अदिस्ट च दिस्टि गलियं च) जिस शुद्ध स्वरूपके न अनुभव करनेसे सम्यक्त भाव नहीं रहता है। अर्थात् जिस शुद्ध स्वरूपके अनुभव करनेसे सम्यक्त स्थिर रहता है (भय षिपिय अमिय अन्मोयं) व सर्व भय दूर होजाता है व आनन्दामृतमें मगनता होती है (दिस्टि सहकार नत सौख्यं च) उस आत्मदर्शनरूप सम्यग्दर्शनके प्रतापसे ही अनन्तसुखका अनुभव होता है ॥ २५ ॥

(जिन उव सुन्न सुद्द व) श्री जिनेन्द्र शून्य स्वभावी हैं। उनमें सर्व रागादि परभावोंका अभाव है
(दिप्ति दिस्ट च उवन ममल च) उनमें शुद्ध ज्ञान दर्शनका उदय होरहा है (रुइयिउ धर्म परमप्पउ) वे परम
परमात्मामें रुचिवान हैं (तरन विवान मुक्ति गमनं च) वे ही तारनतरन जहाज हैं, वे ही मुक्ति गमन
करते हैं ॥ २६ ॥

(दत्तं पत्त विसेयं) वे अर्हंत तीर्थंकर भगवान दाता भी हैं व पात्र भी हैं (दत्त ज देइ सुख्य भावेन)
जो अपनेको अपने ही भावसे आनन्दका दान करते हैं (पत्त ममल महाव) उन्होंने शुद्ध स्वभावको प्राप्त
कर लिया है (तत्काल संजोय मुक्ति गमन च) वे शीघ्र ही मुक्तिद्वीपमें जाकर मुक्तिश्रीसे मिलाप करेंगे ॥ २७ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें बताया है कि शब्दोंकी सहायतासे शुद्धात्माका मनन करना चाहिये।
यद्यपि आत्मा स्वसंवेदन गोचर है, आपसे ही आपको अनुभव करता है तथापि मन द्वारा उसका मनन
करना उचित है। परमेष्ठी वाचक मंत्रोंका जप करना उचित है। एक मालामें १०८ वार मंत्र पढ़ना चाहिये।
वारवार जप करनेसे व गुणोंका मनन करनेसे ध्यान शुद्धात्मामें जमनेके लिये प्रवृत्त होता है। शब्दोंमें
बड़ी शक्ति है। जो दिव्योपदेश श्री जिनेन्द्र भगवान वाणीसे प्रगट करते हैं उसको गणधरदेव अंग प्रविष्ट
व अंग बाह्य श्रुतमें रचना करते हैं। जैसा ऊपर कहा है कि ६४ मूल अक्षरोंके द्वारा जितने अपुनरुक्त
अक्षर बनते हैं उनके द्वारा जिनवाणीके पदोंकी गणना की गई है। जिनवाणीके द्वारा ही शुद्धात्माका
स्वरूप रागादि व कर्मादिसे भिन्न २ झलकता है। मंत्रोंकी सहायतासे मन एक ओर लगता है। मंत्रोंके
द्वारा धर्मध्यान होता है। अतएव मंत्रोंके सहारे साधकको अभ्यास करना चाहिये। तीर्थंकर भगवानकी
स्तुति भी की है। उनके बाहरी लक्षण व अंतरङ्ग लक्षणोंको बताया है। १००८ जो बाहरी लक्षण हैं।
अनन्त ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्य, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्र भीतरी लक्षण हैं।
वे परम वीतराग हैं, परम कृतकृत्य हैं। तौभी उनके द्वारा धर्म तीर्थका प्रचार होता है। वे यथार्थमें तरन-
तारन हैं। अनेक भव्यजीव उनके धर्मोपदेशसे मुक्तिमार्गको पाकर भवसागरसे पार होजाते हैं। वे जीवन
पर्यंत धर्म तीर्थका प्रचार करते हैं, फिर सर्व कर्मोंसे मुक्त होकर सिद्ध परमात्मा होजाते हैं। श्री तीर्थंकर
भगवानको कोई क्षुधा, तृषा, रोगादिकी बाधा नहीं होती है। वे नित्य आनन्दामृतका पान करते रहते हैं।
उनकी महिमा वचन गोचर नहीं है। वे स्वयं दाता हैं व स्वयं पात्र हैं। वे आपसे ही अपनेको आत्मानन्द

प्रदान करते हैं। तीर्थंकर भगवानकी स्तुतिसे परिणाम निर्मल होते हैं। इस आत्मामें स्वयं तीर्थंकर अरहंत व सिद्ध होनेकी शक्ति है। भव्य जीवोंको उचित है कि वे पक्की श्रद्धा प्राप्त करें और श्रद्धा सहित उनकी भक्ति करें, उनका जप करें, उनके गुणोंका ध्यान करें तो मोक्षमार्गका साधन होगा और यह आत्मा उन्नति करते करते कभी न कभी परमात्माके पदपर पहुंच जायगा।

श्री नागसेन मुनिने तत्वानुशासनमें मन्त्रोंके द्वारा जप व ध्यानकी महिमा भी बताई है—

हृत्पङ्कजे चतु पत्रे ज्योतिर्ष्मंति प्रदक्षिणं। असिआउसाक्षराणि ध्येयानि परमेष्ठिना ॥ १०२ ॥
ध्यायेद इउएओ च तद्वन्मत्रानुदर्निप। मत्यादिज्ञाननामानि मत्यादिज्ञानसिद्धये ॥ १०३ ॥
सप्ताक्षर महं मंत्र मुखरध्रेषु सप्तसु। गुरूपदेशतो ध्यायेदिच्छन् दूरश्रवादिकं ॥ १०४ ॥

भावार्थ—हृदयमें चार पत्रोंका कमल विचारे, उसमें ज्योतिरूप चमकते हुए व घूमते हुए परमेष्ठी-वाचक असिआउसा अक्षरोंको ध्यावे, एकको मध्यमें चारको चार पत्तोंपर विराजमान करे अथवा अ इ उ ए ओ पांच अक्षरोंको चमकता हुवा ध्यावे, मति आदि पांच ज्ञानोंकी सिद्धिके लिये मुखके भीतर, सात द्वारोंपर सप्ताक्षरी मंत्र 'णमो अरहंताणं' लिखकर ध्यावे। दो आंख, दो नाक, दो कान, एक मुख ऐसे द्वार हैं इससे दूर तक सुनने आदिकी शक्ति बढती है।

---

(३२) जिनेन्द विंद छन्द गाथा ६२८ से ६३८।

परम पय परम परम जिननाह हो, परम भाव उवलद्धओ।
परमिस्टि इस्टि सदर्सिओ, अप्पा परमप्प ममल न्यान सहकार हो ॥ १ ॥
जं केवलि नन्त नन्त संदर्सिओ, तं उवएसु नन्त ममल अन्मोयह।
भय विनस्य भव्व नन्त नन्त तं सहिओ, कम्म पय मुक्ति गमन सहकारह ॥ २ ॥
जिनेन्द विंद लोयलोय ऊर्ध सुद्ध उत्तयं, तं न्यान दिस्टि परम इस्टि पर्म भाव जलपियं।
तं कम्म षेउ मोषु हेउ भव्व लोय पोसियं, आनन्द नन्द चेयनन्द परमनन्द नन्दितं ॥ ३ ॥

कम्म ठग ठितं अनिस्ट ममल भाव छिन्नियं, तं सुद्ध न्यान सुद्ध ज्ञान नन्ता नन्त दसियं ।
त राय दोस मिथ्यभाव सल्य भय निकन्दनो, तं पर्मभाव पर्म उत्तु परम भाव लष्यनो ॥ ४ ॥
अनन्त रूव पर अभाव रूवतीत विक्तयं, सरूव रूव विक्त रूव तिक्त भय निरूपियं ।
अन्यान भाव मन सुभाव मिच्छ भय निकन्दनो, तं न्यान रूव ममल दिस्टि समल भय विहंडनो ॥५॥
अन्यान भाव अनिस्टरूप भय विनस्ट दिस्टियं, पर पर्जाय नन्त थान नन्त न्यान दसियं ।
तं विषय इस्ट अनिष्ट दिष्ट ममल न्यान खण्डनो, तं पर पर्जाव समल चित्त न्यान सहाइ निकन्दनो ॥६॥
अनन्त नन्त न्यान दिस्टि मोहमय विहण्डनो, निसंक रूप ममल भाव कम्म तिविह गालनो ।
सरीर भाव मन सुभाव इन्द्रि भय निकन्दनो, अतिद्रि भाव न्यान दिस्टि कम्म मल विहण्डनो ॥७॥
तं रयन रूव रूव रूव अप्प रूव चेतनो, आनन्द नन्द सुद्ध नन्द परम नन्द नन्दितो ।
अनेय भेय अनिस्ट रूव पर पर्जाव मुक्तयं, तं ममल न्यान ममल ज्ञान सिद्धि सुह सम्पत्त यं ॥८॥
तं देव देव पर्म देव अप्प देव चेतनो, पर सुभाव अनिस्ट रूव अव सहाय निकन्दनो ।
जोराय भेय अप सहाव ति अर्थ अर्थ जोयनं, सो पंच दिसि न्यान इस्ट मुक्ति पंथ सोहिनं ॥९॥
अन्मोय न्यान गुन अनन्त सुद्ध पंथ दसियं, ति सुद्ध भाव जिन सहाव विषय राग तिक्तयं ।
सो भव्व लोय न्यान उत्त ममल भाव जुत्तओ, सु कम्मु मुक्कु मुक्ति पथ सिद्धि सुद्ध सम्पत्तओ ॥१०॥

घत्ता—

इय सहाव संजुत्तओ, न्यान मई अनुरत्तओ ।
न्यानेन न्यान आलम्बनओ, परमप्पु सिद्धि सम्पत्तओ ॥ ११ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(परम पय परम परम जिननाह हो) श्री जिनेन्द्र परमपदमें रहनेवाले सब महान् आत्माओंमें महान् हैं। देवाधिदेव महादेव हैं (परम भाव उवलद्धओ) उन्होंने परम शुद्धोपयोगका लाभ कर लिया है (परमिस्टि इरिट संदर्सिओ) वे परमेष्ठी हैं उन्होंने अपने इष्टपद मुक्तिपदका अनुभव कर लिया है (अप्पा पामप्पा ममल न्यान सहकार हो) शुद्ध ज्ञान या स्वसंवेदन ज्ञानकी सहायतासे आत्मा परमात्मा होजाता है ॥१॥

(न केवलि नन नन सदर्सिओ) श्री जिनेन्द्रने केवलज्ञान व केवलदर्शनसे अनन्तानन्त द्रव्य गुण पर्यायोंको देख लिया है (त उवए सुनन ममल अनमोयह) तथा उन्होंने ऐसा उपदेश किया है जिससे यह आत्मा अनन्तकालके लिये शुद्ध और आनन्दमय होजावे (भय विनस्य भव्व नत नत त सहियो) उस शुद्ध ज्ञानानन्द भावके अनुभवसे भव्योंको सर्व भय और अनन्तानन्त कर्मपुद्गल क्षय होजाते हैं (कम्म षय मुक्तिगमन सहकारह) जब कर्मोंका पूर्ण क्षय होजाता है तब यह आत्मा मुक्तिमें चला जाता है ॥ २ ॥

(जिनेन्द जिन्द कोय लोय ऊर्ध सुद्ध उत्तय) श्री जिनेन्द्र भगवान लोकालोकके ज्ञाता हैं व श्रेष्ठ हैं। उन्होंने शुद्ध स्वरूपका कथन किया है (त न्यान दिस्टि पाम इरिट पर्म भाव जलपियं) वे प्रभु ज्ञान दृष्टिको रखनेवाले हैं। भव्यजीवोंके लिये परम प्रिय हैं, वे शुद्धोपयोगरूप आत्मानुभवसे उत्पन्न शांत अमृतमई जलका सदा पान करते रहते हैं (त कम्म खेउ मोख्ख हेउ भव्व लोय पोसियं) उन्होंने कर्मोंके क्षयका व मोक्षमार्गका उपदेश देकर भव्यजीवोंको सन्तोषित किया है (आनद नद चेयनंद परमनदि नंदितं) वे भगवान आत्मानन्दमें मगन हैं, वे चिदानन्दी हैं, वे उत्कृष्ट अतीन्द्रिय सुखमें रमण कर रहे हैं ॥ ३ ॥

(कम्म ठग ठित अनिस्ट ममक भाव छिंसियं) श्री जिनेन्द्रने कर्मरूपी ठगके अशुभ फलको अपने शुद्धभावके द्वारा नाश कर दिया है अर्थात् कर्मोंका क्षय कर दिया है। जिन कर्मोंसे भव भवमें भटकना होता है (त सुद्ध न्यान सुद्ध ज्ञान नन्त नन्त दर्षिय) उन्होंने शुद्ध ज्ञानके द्वारा व शुद्ध आत्मध्यानके द्वारा अनन्तानन्त पदार्थोंको देख लिया है (त राय दोम मिथ्याभाय सल्य भय निकन्दनो) श्री जिनेन्द्र भगवानने रागद्वेष, मिथ्यात्व शल्य व सर्व भय निवारण कर दिया है, वे पूर्ण निःशङ्क व पूर्ण वीतरागी हैं (तं पर्मभाव पर्म उत्तु परमभाव लष्यनो) वे उत्कृष्ट भावमें तल्लीन हैं। वे शुद्धोपयोगका अनुभव करते हैं। उन्होंने इसी शुद्धोपयोगमई अनुभवका कथन किया है ॥ ४ ॥

(अनत रूव पर अभाव रूवातीत विक्तयं) उन श्री जिनेन्द्रके भावोंमें अनन्त पर भावोंका अभाव है। वे रूपातीत हैं ऐसा प्रगट है। वे अमूर्तीक हैं तथा सिद्धरूप है (सरूव स्व विक्तरूव तिक्त भय निरूविय) उन्होंने ऐसा निरूपण किया है कि आत्माका स्वरूप प्रत्यक्ष अनुभवगोचर है तथा पूर्ण भय रहित है, कोई उसका अभाव या उसका नाश या खण्डन नहीं कर सक्ता है। (अन्यान भाव मन सुभाव मिच्छ भय निकंदनो) उन्होंने अज्ञान भाव, मनके संकल्प विकल्प, मिथ्यात्वभाव, व सर्व भय नाश कर दिये हैं (तं न्यान रूव ममल दिस्टि समल भय विहडनो) वे ज्ञान स्वरूपी शुद्ध दृष्टिधारी हैं। वहां पुनः अशुद्ध होनेका भय नहीं रहा है, क्योंकि घातीय कर्मोंका क्षय होगया है ॥ ५ ॥

(अन्यान भाव अनिस्ट रूव भय विनस्ट दिस्टयं) केवलीके अज्ञान भाव जो अहितकारी है उसका सर्व भय विनाश होगया है अर्थात् निर्मल ज्ञान दर्शन प्रगट होगया है (पर पर्जाय नत थान नत न्यान दर्सिय) कर्म जनित पर परिणतिके अनन्त स्थान होते हैं उन सबको श्री जिनेन्द्रके अनंत ज्ञानने देख लिया है (तं विषय इस्ट अनिस्ट दिस्ट ममल न्यान खडनो) पांचों इंद्रियोंके विषय इष्ट हैं या अनिष्ट हैं, इस रागद्वेषकी दृष्टिको शुद्ध ज्ञानने खण्डन कर दिया है अर्थात् सर्व जगतके पदार्थोंको केवली भगवान समभावसे देखते हैं, वे परम वीतरागी हैं (त पर पर्जाव समल चित्त न्यान सहाइ निकंदनो) उन्होंने पर परिणति जो अशुद्ध मनसे होती है उन सबको निर्मल ज्ञानकी सहायतासे दूर कर दिया है ॥ ६ ॥

(अनत नत न्यान दिस्टि मोहमय विहडनो) श्री जिनेन्द्रकी अनन्तानन्त पदार्थोंको जाननेवाली ज्ञान दृष्टिके प्रगट होते ही मोह तथा मदका नाश होगया है (निसक रूव ममक भाव कम्म तिविह गालनो) परम निशङ्क व निर्भय शुद्ध भावके द्वारा वे तीनों ही प्रकारके कर्मोंको द्रव्य कर्म ज्ञानावरणादिको, भाव कर्म रागादिको, नोकर्म शरीरादिको गला देते हैं (सरीर भाव मन सुभाव इन्द्रि भय निकन्दनो) उन भगवानने शरीर सम्बन्धी ममत्व व मन सम्बन्धी संकल्प विकल्प, इंद्रियोंकी इच्छाएँ व सर्व भय नाश कर दिया है (अतिंद्रि भाव न्यान दिस्टि कम्म मल विहण्डनो) उन्होंने अतीन्द्रिय भाव स्वरूप ज्ञान दृष्टिके द्वारा अर्थात् आत्मज्ञानके अनुभवके द्वारा सर्व कर्मका मैल नाश कर दिया है ॥ ७ ॥

(त रयन रूव रूव रूव अप्प रूव चेननो) श्री जिनेन्द्रने तीन रत्नोंका स्वरूप जिसमें प्रगट है, अर्थात् जहां शुद्धात्माकी प्रतीतिरूप निश्चय सम्यक्त है, शुद्धात्माका ज्ञानरूप निश्चयज्ञान है, व शुद्धात्मामें

ममलपाहुड ॥२७३॥

तन्मयरूप निश्चय सम्यक्‌चारित्र है ऐसे अभेदरूप आत्माके स्वभावका अनुभव किया है (आनन्द नन्द सुद्ध नन्द परम नन्द नन्दितो) वे जिनेन्द्र आनन्दमें मगन हैं, उनका आनन्द राग रहित शुद्ध वीतराग है। वे परमानन्दमई अनन्त सुखका स्वाद लेरहे हैं (अनेय मेय अनिस्ट रूव प्र पर्जाव मुक्तय) अनेक प्रकारके अशुभ फलको उत्पन्न करनेवाली पर परिणतिको या अशुद्ध परिणतिको उन्होने क्षय कर दिया है (त ममल न्यान ममल ज्ञान सिद्धि सुइ सम्पत्तं) उन्होंने अपने शुद्ध ज्ञानसे, शुद्ध ध्यानसे, परम शुक्लध्यानसे सिद्धिका सुख प्राप्त कर लिया है ॥ ८ ॥

(तं द। दव पर्म देव अप्प देव चेतनो) वे ही देवोंके देव महादेव हैं। वे अपने आत्मारूपी देवका अनुभव कर रहे हैं (पर सुभाव अनिस्ट रूव अप सहाय निकन्दनो) उन्होंने कर्मजनित व अहितकारी विभावभावोंको अपने आत्माकी रमणरूप परिणतिसे नाश कर दिया है (जोएय मेय अप सहाव ति अथ अथ जोयन) जिन्होने आत्माके स्वभावको परसे भेदरूप-परसे भिन्न अनुभव किया है, तथा जो रत्नत्रयमई आत्मा पदार्थको देख रहे हैं (सो पच दिसि न्यान इस्ट मुक्ति पथ सोइनो) उनके भीतर मतिश्रुतादि पांच ज्ञानोंका अभेदरूप ज्ञान जो परम इष्ट है व मोक्षका मार्ग है, सो शोभायमान होरहा है ॥ ९ ॥

(अन्मोय न्यान गुन अनन्त सुद्ध पथ दर्सियं) उन केवली भगवानने परमानन्दमई ज्ञान गुणको जो अनंत है व शुद्ध है व जिसका अनुभव मोक्षका मार्ग है उसको देख लिया है (ति सुद्ध भाव जिन सहाव विषय राग तिक्तय) उन्होंने रत्नत्रयमई शुद्ध भावसे अर्थात् वीतराग विज्ञानमई भावसे पांचों इन्द्रियोंका विषय राग दूर कर दिया है (सो भव्व लोय न्यान उत्त ममल भाव जुत्तओ) इसलिये भव्यजीव ऐसे ऊपर कथित ज्ञानमई शुद्ध भावसे अपनेको युक्त कर या स्वयं शुद्ध ज्ञान स्वभावमें रमण कर (सु कम्म मुक्कु मुक्ति पथ सिद्धि सुद्ध सम्पत्तओ) कर्मोंसे छूटकर स्वानुभवरूप मुक्ति-मार्गके द्वारा मोक्षका अनन्त सुख पालेते हैं ॥ १० ॥

(इय सहाव सजुत्तओ) भव्यजीव ऊपर जैसा कहा है ऐसे शुद्ध स्वभावसे अपनेको युक्त करके (न्यान मई अनुरत्तओ) ज्ञानमई भावमें तल्लीन हो करके (न्यानेन न्यान आलम्बनओ) ज्ञानके ही द्वारा ज्ञानका आलम्बन लेकर (परमप्पु सिद्धि सपत्तओ) परमात्मपदकी सिद्धि पालेते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें भी श्री तारणस्वामीने श्री अरहन्त परमात्मा जिनेन्द्रका गुणगान किया है, उनकी अन्तरंग आत्माकी महिमा बताई है। श्री जिनेन्द्र भगवान देवाधिदेव परम देव है। परम शुद्धो-

पयोगमें तल्लीन हैं। वे मोक्ष भावका स्वयं अनुभव कर रहे हैं। उनके भीतर केवलज्ञान व केवलदर्शन प्रगट है, जिनसे वे एक ही समय अनन्तानन्त द्रव्य गुण पर्यायोंको जान रहे हैं। वे अनन्त सुखमें मगन होते हुए परमानन्दमय अमृतका सदा पान कर रहे हैं। घातीय कर्मोंके क्षय कर देनेसे उनके भीतर राग-द्वेषरूप परिणतिका अभाव है। न कोई वहां मोह है, न मद है, न इच्छा है, न इन्द्रियोंके विषयोंकी चिंता है, न कोई सांसारिक भय है, न कोई मिथ्यात्व है, वे क्षायिक सम्यग्दर्शन व क्षायिक चारित्रके धारी हैं। वे अमूर्तीक आत्माको प्रत्यक्ष ज्ञान दृष्टिसे देख रहे हैं। उनके भीतरसे अज्ञान चला गया है। उनके भीतर कोई विभाव परिणति नहीं होसक्ती है। वे परम समताभावके धारी हैं। उनके भीतर न शरीरका ममत्व है न भाव मनका हलन चलनरूप व्यापार है, न कोई संकल्प विकल्प है। वे अभेद रत्नत्रय स्वरूप आत्माका अनुभव कर रहे हैं, वे परम सुखी हैं, वे निरन्तर परमानन्दका स्वाद लेते हैं। वे ही श्रेष्ठ देव हैं। वे अपने आत्मारूपी देवका दर्शन कर रहे हैं।

ऐसे परमात्मा अरहन्त भगवानका स्वरूप जानना चाहिये। वे आयुके अन्तमें सर्व प्रकार कर्मोंसे मुक्त होकर व पूर्ण शुद्ध होकर शरीर रहित परमात्मा होजाते हैं, परम सिद्धपद पालेते हैं। श्री तारण-स्वामी कहते हैं कि हे भव्यजीवो! तुम भी इसी स्वभावका मनन करो। राग द्वेष छोडकर आत्माका चिंतवन करो। केवल एक निज स्वभावका अनुभव करो, आपसे आपका ही आलम्बन लो, परका सहारा छोडो। कर्मचेतना व कर्मफलचेतनाको त्यागकर ज्ञान चेतनामें रमण करनेसे स्वानुभव होता है। यही मोक्षमार्ग है। जो स्वानुभव करेगा वह अवश्य उन्नति करते २ परमात्मपदको पालेगा।

श्री नागसेन मुनि तत्वानुशासनमें अर्हत् ध्यानके सम्बन्धमें कहते हैं—

परिणमते येनात्मा भावेन स तेन तन्मयो भवति। अर्हद्ध्यानाविष्टो भावार्हः स्यात्स्वय तस्मात् ॥ १९० ॥

येन भावेन यद्रूपं ध्यायत्यात्मानमात्मवित्। तेन तन्मयता याति सोपाधि स्फटिको यथा ॥ १९१ ॥

गुरूपदेशमासाद्य ध्यायमानः समाहितैः। अनंतशक्तिरात्मायं मुक्तिं भुक्तिं च यच्छति ॥ १९६ ॥

ध्यातोऽर्हत्सिद्धरूपेण चरमाङ्गस्य मुक्तये। तद्ध्यानोपात्तपुण्यस्य स एवान्यस्य मुक्तये ॥ १९७ ॥

भावार्थ—जिस भावसे आत्मा परिणमन करता है उसी भावसे वह तन्मय होजाता है। जब कोई अर्हतके ध्यानमें लीन होता है तब वह स्वयं उस ध्यानके होनेसे भाव अर्हत होजाता है। आत्मज्ञानी

जिस भावसे जिस स्वरूप आत्माको ध्याता है वह उसी भावसे तन्मय होजाता है। जैसे जिस रंगकी उपाधि स्फटिक पाषाणके लगेगी वह उस रंग रूप ही झलक जायगा। जो समाधान मन करके गुरुके उपदेशको पाकर आत्माको ध्याते हैं तब यह अनन्त शक्तिका धारी आत्मा ध्याताको मुक्ति तथा भुक्ति दोनों देता है। जो कोई तद्‌भव मोक्षगामी अर्हंत व सिद्धका ध्यान करेगा वह मुक्त होजायगा। जो चरमशरीरी नहीं है वह उस ध्यानसे पुण्य बांधकर स्वर्गके भोग पाएगा और परम्परा मोक्ष होजायगा।

(३३) पय संजोय छन्द गाथा ६३९ से ६४९ तक।

पय संजोय नन्द आनन्दह, पय परम न्यान संजुत्तओ।
भय षिपिय नन्द आनन्दह, ममल सिद्धि सम्पत्तओ ॥ १ ॥
उवन न्यान ममल झ्यान, विन्यान विन्द दरसियो।
सु अर्क ओत अय जुत्त, सु मुक्ति पंथ रत्तओ ॥ २ ॥
सु कमल ओत रमन जुत्तु, अमिय रस संजुत्तओ।
सु सल्य तिक्त सल्य मुक्कु, ससंक भय गलंतओ ॥ ३ ॥
सुनन्द नन्द चेयनन्द, सहजनन्द नन्दिओ।
सु परमनन्द परम ओत, सु परम सिद्धि रत्तओ ॥ ४ ॥
सु राग ओत सरनि जुत्तु, भवह भव भमंतओ।
सु भय विनास भव्वु ओत, अमिय रस रसंतओ ॥ ५ ॥
ॐकार विंद सहजनन्द, विन्यान विंद दरसिओ।
सर्वार्थ सिद्धि लोय लोय, सु रमन ओत जुत्तओ ॥ ६ ॥

सु अमिय ओत रमन जुत्तु, विन्यान विंद दरसिओ ।
सु सुर सहाव पद संजुत्तु, परम तत्त रत्तओ ॥ ७ ॥
तं दिस्टि जुत्तु ममल ओत, उत्पन्न इस्ट इस्टिओ ।
तं षिपक दिस्टि मुक्ति इस्टि, सु भय विनस्व भव्वओ ॥ ८ ॥
तं कमल ओत रमन जुत्तु, अमिय रस रसंतओ ।
उवन न्यान ममल ज्ञान, ति अर्थ अर्थ जुत्तओ ॥ ९ ॥
सु रमन ओत कमल रत्तु, सिद्धि सुद्ध सम्पत्तओ ।
तं भय विनस्य भव्वु ओत, ममल सिद्धि सम्पत्तओ ॥ १० ॥

घत्ता—

इय सहाव उववन्नो, परम नन्द तं नन्द मओ ।
भय सल्य संक विलयन्तु, ममल मुक्ति सम्पत्तओ ॥ ११ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(पय सजोए नद आनदह) परमात्मपदके संयोगसे आनन्दमें मगनता होती है। परमात्माके ध्यानसे अतीन्द्रिय आनंदका लाभ होता है (पय परम न्यान सजुत्तओ) वह पद श्रेष्ठ केवलज्ञानसे पूर्ण है (भय पिपिय नद आनदह) उस आनंदके भीतर मगनता होनेसे सर्व संसारका भय क्षय होजाता है (ममल सिद्धि सात्तओ) तथा इसी आत्मानंदमें लय होनेसे ही सर्व कर्ममल कट जाता है और यह आत्मा सिद्धगतिको प्राप्त कर लेता है ॥ १ ॥

(उवन न्यान ममल इयान विन्यान विंद दरसिओ) सम्यग्दर्शनके साथ ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान होजाता है व निर्मल आत्मध्यान प्रारंभ होजाता है तब भेद ज्ञानपूर्वक आत्माका अनुभव झलक जाता है (सु अर्क ओत ऊर्द्ध जुत्त सु मुक्ति पथ रत्तओ) तब ज्ञान ज्योतिसे पूर्ण श्रेष्ठ भाव परमात्म रूप निज भावमें आजाता है। परमात्म स्वरूपकी भावना दृढतासे होती है। इस स्वात्मानुभवमें लीन होना ही मोक्षमार्गमें लीन होना है, क्योंकि स्वात्मानुभवमें रत्नत्रयकी एकता है अतएव वही मोक्षमार्ग है ॥ २ ॥

ममलपाहु
॥२७७॥

(सु कमल ओत रमन जुत्तु अमिय रस सजुत्तओ) परमात्मारूपी कमल सब तरफसे आत्माकी रमणता सहित और आनन्दामृत रससे पूर्ण है (सुसल्य तिक्त मुक्कु ससक भय गलंतओ) ऐसे परमात्माके स्वभावमें लय होनेसे सर्व शल्यें छूटकर बिलकुल नष्ट होजाती हैं, कोई भी शंका नहीं रहती है न कोई भय रहता है ॥३॥

(सुनद नद चेयनद सहजनंद नदिओ) परमात्मा अरहन्त भगवान परमानंदमें मगन हैं। वे चिदानंद या सहजानन्दमें आनन्दित हैं। वहां कोई इंद्रियजनित सुख नहीं है (सु परम नद परम ओत सु परम सिद्धि रत्तओ) वे परमानन्दसे सर्व तरफसे उत्तम प्रकारसे पूर्ण हैं मानो वे परम सिद्धि जो मुक्ति है उसीमें रमण कर रहे हैं॥४॥

(सुराग ओत सरनि जुत्त भवह भव भमतओ) जो कोई शुभ या अशुभ रागसे भरे हुए मार्गमें चलते हैं वे भवभवमें भटकते फिरते हैं। कभी पुण्यसे सुगति, कभी पापसे दुर्गति पालेते हैं। उनको शुद्धोपयोग या वीतराग विज्ञानका पता नहीं है जो साक्षात् मोक्षमार्ग है (सु भय विनास भव्वु ओत अमिय रस रसंतओ) भव्यजीव संसारसे उदास हो सर्व सांसारिक भ्रमणके भयसे छूट जाते हैं और अपने भीतर आनन्दामृत रससे पूर्ण होकर उसी रसका स्वाद लेते रहते हैं ॥ ५ ॥

(ॐकार विन्द सहजनन्द विन्यान विन्द रमिओ, ॐ मंत्रके जप व ध्यान द्वारा सहजानन्दसे पूर्ण आत्माका अनुभव वे भेदज्ञान द्वारा करते हैं सर्वार्थ सिद्धि लोय लोय सु रमन ओत जुत्तओ) इसी स्वानुभवसे उनका सर्व मोक्ष पुरुषार्थ सिद्ध होजाता है। वे लोकालोक प्रकाशक ज्ञानमें सर्व तरफसे रमण किया करते हैं ॥ ६ ॥

(सु अमिय ओत रमन जुत्तु विन्यान विंद रमिओ) भव्यजीव आत्मज्ञानी अमृत रससे पूर्ण आनन्दमें रमण करते हुए ज्ञान स्वरूपका अनुभव करते रहते हैं (सु सुर सहाव पद मजुत्तु परम तत्त रत्तओ) वे उत्तम शांत सूर्यके स्वभावको झलकानेवाले पदको धारकर परमात्मतत्वमें रत होरहे हैं। आत्मा सूर्यके समान स्वपर प्रकाशक होकर भी परम शांत है ॥ ७ ॥

(त दिस्टि जुत्तु ममल ओत उवन्न इस्ट इस्टिओ) भव्यजीव उस आत्मानुभवको करते हुए सब तरफसे कर्म मल रहित होते हुए अपने इष्टपद परमात्मपदका प्रकाश कर देते हैं (त पिपक दिस्टि मुक्ति इस्टि सु भय विनस्य भव्वओ , वे भव्य क्षायिक सम्यग्दर्शनके द्वारा मुक्तिके परम प्रेमी होते हुए सर्व सांसारिक भयोंसे छूट जाते हैं ॥ ८ ॥

(त कमल ओत रमन जुत्तु अमिय रस रसतओ) वे भव्यजीव आनन्दमें सर्व तरफसे रमण करनेवाले कमल

समान परमात्माका स्वभाव मनन करते हुए आनन्दामृत रसके स्वादी बने रहते हैं (उत्तम ध्यान ममल ज्ञान ति अर्थ अर्थ जुत्तओ) उनको केवलज्ञान प्राप्त होजाता है। वे शुद्ध आत्मध्यानी रत्नत्रय सहित पदार्थका अनुभव करते रहते हैं ॥ ९ ॥

(सु रमन ओत कमल रत्तु सिद्धि सुह सम्पत्तओ) आत्मज्ञानी भव्यजीव आनन्दकी सर्व तरफसे मगनता रखनेवाले परमात्मारूपी कमलमें भ्रमरके समान लवलीन होकर सिद्ध गतिका सुख प्राप्त करते हैं (तं भय विनस्य भव्वु ओत ममल सिद्धि मम्पत्तओ) वे भव्यजीव सर्व भयोंका क्षय करके पूर्ण सर्व तरफसे कर्मोंके मलसे रहित होकर मुक्ति पालेते हैं ॥ १० ॥

(इय सहाव उववन्नो) इसतरह परमात्मपदके ध्यानसे आत्माका स्वभाव प्रगट होजाता है (परम नद त नद मओ) जो परमानन्दमय है, अपने हीमें मगनता रूप है (भय सल्य मक्क विलयतु) तब सर्व भय, सर्व शंकाएँ विला जाती हैं (ममल मुक्ति मग्गओ) और यह आत्मा कर्ममलसे रहित होकर मुक्तिको अनुभव करता है, संसारसे छूट जाता है ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें परमात्मपदकी महिमा है। परमात्मा चार घातीय कर्मोंसे रहित होते हैं अतएव वे पूर्ण ज्ञानवान, पूर्ण दर्शनवान, परम वीतरागी, परमानन्दमई, अनंतवीर्यके धारी, अपने स्वरूपके आनन्द रसमें मगन रहते हैं। उनके भावोंमें कोई शल्य नहीं रहती है, न कोई भय रहता है, न कोई शंका रहती है। ऐसे परमात्माका सच्चा स्वरूप समझकर जो भव्यजीव अपने आत्माको भी निश्चयसे परमात्माके समान जानता है वह वारवार अपने स्वरूपका मनन करते हुए सम्यग्दर्शनका लाभ कर लेता है। सम्यक्तके प्रकाश होते ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान होजाता है और स्वरूपाचरण चारित्र प्रगट होजाता है, भेदविज्ञानकी कला प्रगट होजाती है। भेदविज्ञानके प्रतापसे अपना आत्मा सर्व विभावोंसे व कर्ममलसे रहित शुद्ध दिखता है। इसी भेदविज्ञानका अभ्यास करनेसे आत्माकी ओर प्रेम बढ़ जाता है तब आत्मानुभव जागृत होजाता है। आत्मानुभवमें मोक्षमार्ग है क्योंकि वहां आत्माका श्रद्धान, ज्ञान, व आचरण तीनों ही हैं।

आत्मानुभव होनेपर स्वरूपानन्दमें मगनता होती है और अपूर्व अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद आता है। इसी आनन्दके अनुभवको ध्यान-अग्निका झलकना कहते हैं। यह अग्नि कर्मोंको जलाती है।

समयपाहुड ॥२७९॥

इसीसे क्षायिक सम्यग्दृष्टी भव्यजीव उन्नति करता हुआ साधु होजाता है। इसी स्वात्मानुभवके अभ्यासको करते हुए वह क्षपकश्रेणी चढकर चार घातीय कर्मोंका क्षय करके स्वयं अर्हंत परमात्मा होजाता है। और फिर आयुपर्यंत भव्यजीवोंको दिव्य उपदेशका प्रकाश करता है, अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है। मोक्षमें भी स्वरूपानन्दमें मगन रहता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि बहिरात्मा पदको त्यागो, अन्तरात्मा या सम्यक्ती होजाओ और परमात्माके ध्यानसे अपनेको परमात्मपदमें पहुंचाकर अनन्तकालके लिये भवभ्रमणसे छूट जाओ और नित्य ही ज्ञानानन्दका अनुभव करो।

श्री नागसेन मुनि तत्वानुशासनमें कहते हैं—

दृग्बोधसाम्यरूपत्वाज्जानन् पश्यन्नुदासिता। चित्सामान्यविशेषात्मा स्वात्मनैवानुभूयताम् ॥ १६३ ॥
कर्मजेभ्यः समस्तेभ्यो भावेभ्यो भिन्नमन्वहं। ज्ञस्वभावमुदासीनं पश्येदात्मानमात्मना ॥ १६४ ॥
तदेवानुभवश्चायमेकाग्र्यं परमृच्छति। तथात्माधीनमानन्दमेति वाचामगोचरं ॥ १७० ॥

भावार्थ—यह आत्मा दर्शन, ज्ञान, व साम्यरूपको धरनेवाला है। जो कोई अपने आत्माहीके द्वारा अपने ही चेतना स्वभावधारी दर्शनज्ञान मई आत्माको श्रद्धानमें लाता हुआ, जानता हुआ व सर्वसे वैरागी होकर उसीको ध्याता है वह स्वात्मानुभवको पाता है। ध्याता अपने आत्माके द्वारा अपने आत्माको ऐसा देखे कि यह आत्मा सर्व कर्मोंसे रहित है, सर्व विभावोंसे रहित है, ज्ञानस्वभावी है व उदासीन है वही मैं हूं। इसी ही आत्माका अनुभव करते हुए ध्याता परम एकाग्रताको प्राप्त कर लेता है तब वह वचनोंसे अगोचर स्वाधीन आनन्दको पालेता है। यही मोक्षमार्ग है। इसी आनन्दकी मगनतामें यह स्वयं सिद्ध होजाता है।

---

(३४) सुद्ध वियार या अचष्य दर्सन गाथा ६५० से ६७४ तक।

सव्द वियार संजुत्तं, सव्दं सहकार उवन न्यानं च।
तारन तरन सहावं, भय षिपिय अभय न्यान ममलं च ॥ १ ॥
अचष्यं सव्द स उत्तं, अचष्यं परम तत्त पद विन्दं।

अचष्यं अनन्त नन्तं, अचष्य सहावेन मुक्ति संदर्स ॥ २ ॥
अचष्यं ममल सहावं, ममलं दिष्टी च अभय भय रहियं ।
भय जिनस्य भवयनं, न्यानं अन्मोय मुक्ति संदर्स ॥ ३ ॥
अचष्यं अरूव रूवं, रूवातीत च विक्त रूवं च ।
पर पर्जय विलयन्ती, न्यान वलेन कम्म गलियं च ॥ ४ ॥
अचष्य सहाव स उत्तं, चष्य सहकार समल विलयन्ती ।
परजय सरनि विमुक्कं, ममल सहावेन मुक्ति सदर्स ॥ ५ ॥
अचष्य षिपनिक रूवं, षिपिओ संसार सरनि मोहंधं ।
पर पर्जायं, षिपनं, न्यान वलेन निव्वुए जंति ॥ ६ ॥
अचष्यं दिस्टि इस्टं, अनिस्ट अन्यान उवन विलयन्ती ।
विलयं मिथ्य सहावं, इस्टं दिस्टं च कम्म संषिपनं ॥ ७ ॥
अचष्य अलष्य लपियं, लपियं विन्यान नन्त सहकारं ।
नन्तं ममल सहावं, भय षिपनिक नन्त कम्म विलयन्ती ॥ ८ ॥
अचष्य दर्सन दर्स, अचष्य रूवेन पर्जाव विलयन्ती ।
जन रंजन सहाव गलियं, गलियं रागं च न्यान विन्यान ॥ ९ ॥
अचष्यं अदिस्ट दिस्टं, दिस्टि सहकार अदिस्ट रूवेन ।
इस्ट सहाव सदिस्टं, अनिस्ट दिस्टं च पर्जाव विलयती ॥ १० ॥
अचष्यं अभेय भेयं, अनेय सहकार लोय अवलोय ।
अचष्य सहाव सुममलं, ममल दिस्टी च पर्जाव विलयंती ॥ ११ ॥

अचष्य चष्य स उत्तं, अदिस्ट दिस्टी च न्यान सहकारं ।
अनन्त नन्त पर्जावं, न्यान दिस्टी च पर्जाव विलयन्ती ॥ १२ ॥
अचष्यं नन्त सहावं, नन्तानन्तं च अनन्त विषयं च ।
विषयं च विसय सल्यं, न्यानं अन्मोय विषय विस विलय ॥ १३ ॥
अचष्यं इन्द्रिय सहियं, आलस परपंच विभ्रम सहिय ।
अन्यान सहाव सदिट्ठं, ममलं अन्मोय सयल विलयन्ती ॥ १४ ॥
आलस सहाव उक्तं, आलस उक्तं च वयन नहु सहियं ।
जिन उवएस भयभीयं, भय षिपनिक सहकार आलसं विलयं॥ १५ ॥
आलस विसेष असुद्धं, जिन उत्तं वयन आलसं उत्तं ।
मिथ्या सहाव विषयं, न्यानं अन्मोय आलसं गलियं ॥ १६ ॥
परपंच नन्त नन्तं, पर्जय सहकार ससंक सल्य च ।
पर्जय संक सहावं, न्यानं अन्मोय संक वलयन्ती ॥ १७ ॥
अचष्य ससंक सहियं, जिन उत्तं भयभीउ ऊसर सर पसरं ।
दिट्ठी चंचल चवलं, भय षिपनिक सल्य संक विलयन्ती ॥ १८ ॥
अचष्य ससंक सहावं, जिन उत्तं वयन अनन्त भय उत्तं ।
दिट्ठी अंग पयत्थं, वंकज रूवेन प्रपच पर्जायं ॥ १९ ॥
वयनं च कम्म सल्यं, उत्पन्नं अनन्त वेयनं उत्तं ।
अन्यान पर्जाय दिट्ठी, न्यानं अन्मोय ससंक विलयन्ती ॥ २० ॥

अचष्यं विभ्रम सहियं, अनन्त रूवेन पर्जाव सक सल्यं ।
विभ्रम नन्त अनन्तं, ममल अन्मोय विभ्रम विलयंती ॥ २१ ॥
अचष्यं विभ्रम सहियं, ज्योतिष कलाप परपंच दर्स च ।
अनेयं भयभीय, न्यानं अन्मोय भयभीउ विलयन्ति ॥ २२ ॥
अचष्यं सहाव उत्तं, जनरंजन सुभाव ससंक उप्पत्ती ।
जन ओतं जन सहियं न्यानं अन्मोय जनरंजनं विलयं ॥ २३ ॥
अचष्यं विसेष उत्तं, जन सहकार पर्जाव पर पिच्छं ।
अचष्यं ममल सहावं, न्यानं अन्मोय सिद्धि सम्पत्तं ॥ २४ ॥
जन उत्त संक सहियं, कल्पं पर्जाव दिस्टि सदर्सं ।
जिन उत्तं सुध सारं, न्यानं अन्मोय विकल्पं विलयं ॥ २५ ॥

अन्वय सहित अर्थ—, सव्द विआर सजुत्त) शब्दोंके द्वारा विचार होते हैं (सव्दं सहकार उवन न्यानं च) शब्दोंकी मददसे शास्त्रोंपर विचार करते हुए ज्ञानकी उत्पत्ति होती है (तारन तरन सहावं) जिनवाणीके शब्दोंके मूल प्रकाशक तारण तरण स्वभावधारी श्री अरहन्त परमात्मा हैं (भय विपिय अभय न्यान ममलं च) जिनके वचनोंसे सर्व संसारका भय दूर होजाता है तथा सर्व भयरहित–शंकारहित शुद्ध केवलज्ञान प्राप्त होजाता है ॥ १ ॥

(अचष्य सव्द स उत्त) अचक्षु शब्दका यह भाव कहा गया है (अचष्यं परम तत्त पदविंद) जो अचक्षु अर्थात् मन परमात्मतत्वका मनन करे या अचक्षु अर्थात् आत्मा परमात्म तत्वका अनुभव करे। जहां अपने ही शुद्धात्माका मनन तथा अनुभव है वहीं यथार्थ अचक्षुदर्शन है (अचष्यं नंत नंत) अनन्तानन्त पदार्थ इंद्रियगोचर नहीं है-ज्ञान गोचर हैं। शुद्धात्मा इंद्रियातीत होकर सर्व अनन्तानन्त ज्ञेयोंको जानता है (अचष्य सहावेन मुक्ति सदर्सं) जो अपने आत्माको इंद्रियोंसे व मनसे भिन्न स्वाभाविक रूपसे अनुभव करता

ममलपा ॥२८३

है वह इस स्वात्मानुभवके प्रतापसे मुक्तिके स्वभावका अनुभव करता है। क्योंकि मुक्ति भी स्वात्मानुभवरूप है ॥ २ ॥

(अचष्यं ममल सहावं) आत्माका दर्शन शुद्ध स्वभाव रूप है (ममल दिट्ठि च अभय भय रहियं) शुद्ध आत्मदर्शनके होनेसे निर्भयता प्राप्त होजाती है व सर्व संसारका भय मिट जाता है (भय विनस्य भवयनं) आत्मानुभवके लाभसे भव्य जीवोंका भय नाश होजाता है क्योंकि सम्यग्दृष्टी आत्माको सदा अविनाशी व सदानन्दमय अनुभव करता है (न्यान अन्मोय मुक्ति मर्मं) ज्ञानानन्दका अनुभव करना ही मोक्षपदका दर्शन करना है ॥ ३ ॥

(अचष्यं अरूव रूवं) आत्मा अमूर्तिक स्वभावधारी है (रूवातीत न विक्त रूव न) वह पुद्गलके स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णमय रूपोंसे भिन्न है तथापि आत्मज्ञानियोंके अनुभवमें प्रगट होता है (पर पर्जय विन्यतो) आत्माकी रमणतासे सर्व रागादि परपरिणति विला जाती है (न्य नवलेन कम्म गलिय च) आत्मज्ञानके बलसे कर्मोंका क्षय होजाता है ॥ ४ ॥

(अचप्य सहाव स उत्त) अचक्षु आत्मदर्शन उसे ही कहा गया है (नन्य सहकार ममल विन्यंती) जहां इन्द्रिय व मन सम्बन्धी सर्व अशुद्ध परिणाम विला जाते हैं (पर्जय सरनि विमुक्त) व जहां शरीरादि पर्यायमें परिणामोंकी फिरन छूट जाती है, शरीर भोग संसार सम्बन्धी मोह रागद्वेष नहीं रहता है (ममल सहावेन मुक्ति सदर्सं) इस शुद्ध आत्म-स्वभावमें रमण करनेसे मुक्तिका स्वरूप अनुभवमें आता है ॥ ५ ॥

(अचष्य पिपनिक रूव) जब आत्म दर्शन या सम्यग्दर्शन क्षायिक रूप होता है (पिपिओ संसार सरनि मोहधं) जब संसार भ्रमण करानेवाले दर्शनमोह कर्मका सर्वथा क्षय होजाता है (पर पर्जावं पिपनं) जब संसार सम्बन्धी चार गतिरूप पर्यायोंमें भ्रमण करानेवाला कर्म क्षय होजाता है (न्यान बलेन निव्वुए जंति) तब शुद्ध केवलज्ञान प्रगट होजाता है और यह आत्मा निर्वाणको पहुँच जाता है। भावार्थ—कोईर क्षायिक सम्यग्दृष्टी उसी भवसे मुक्ति पालेते हैं ॥ ६ ॥

(अचष्य दिस्टि इस्ट) आत्मदर्शन परम हितकारी है (अनिस्ट अन्यान उवन विलयती) जिससे आत्माको अहितकारी अज्ञानका उदय विलय जाता है। अर्थात् सम्यग्दृष्टीके सर्व ही भाव ज्ञानमई होते हैं, मिथ्याज्ञानकी छाया भी नहीं रहती है (विलय मिथ्य सहाव) मिथ्याज्ञान होनेका कारण ऐसा कर्म ही क्षय होजाता

है (इस्टं दिस्ट च कम्म सपिपन) मोक्ष पुरुषार्थको जो देख लेता है। अर्थात् जिसकी गाढ़ रुचि स्वात्माके शुद्ध स्वरूपसे होजाती है उसके अवश्य कर्मोंका क्षय होजाता है । ७ ॥

(अचष्य अलष्य लषिय) अचक्षु दर्शन मन व इंद्रियोंसे अगोचर ऐसे आत्माका दर्शन कर लेता है (लषिय विन्यान नत सहकार) उस आत्मदर्शनसे स्वपरका भेदविज्ञान प्रगट रहता है। इस भेदविज्ञानसे आत्माका अनुभव होता है, जो अनन्तज्ञानकी प्रगटताका कारण है (नत ममल सहाव) तथा इस आत्मानुभवसे अनन्त अविनाशी शुद्ध स्वभाव प्रकाशित होजाता है (भय षिपनिक नन्त कम्म विलयती) स्थानकी दृढ़ता व निर्भयता होनेसे अनन्तानन्त कर्म क्षय होजाते हैं ॥ ८ ॥

(अचष्य दर्सन दर्स) जो आत्माका दर्शन देख लेता है अर्थात् जो आत्मस्वभावी होता है (अचष्य रूवेन पर्जाय विलयती) उसके मनन द्वारा होनेवाले परिणाम मिट जाते हैं (जनरंजन सहाव गलिय) जगतके मानवोंको प्रसन्न करूँ ऐसा भाव भी नहीं रहता है (गलिय राग च न्यान विन्यानं) तथा राग सहित सर्व ज्ञान विज्ञान गल जाता है, वीतराग विज्ञानमय भाव प्रगट होजाता है ॥ ९ ॥

(अचष्य अदिस्ट दिस्ट) यह आत्मदर्शन मन व इंद्रियोंसे न देखने योग्य आत्माका अनुभव कर लेता है (दिस्टि सहकार अदिस्ट रूवेन) इस आत्मानुभवके द्वारा स्वयं आत्मारूप ही परिणमन करता है (इस्ट सहाव सदिस्ट) वह आत्माको हितकारी जो शुद्ध आत्मस्वभाव है उसकी ओर दृष्टि रखता है। अर्थात् वह मोक्षकी ओर दृष्टि लगाए हैं (अनिस्ट दिस्ट न पर्जाव विलयती) इस आत्मानुभवके द्वारा रागद्वेष मोहकी दृष्टिसे जो संसारकी पर्जाएँ होती हैं, वे सव विला जाती हैं अर्थात् संसारका नाश होजाता है ॥ १० ॥

(अचष्य अमेय मेयं) यह आत्मा अनेक भेदरूप है। इसके ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यादि गुण हैं (अनेय सहकार लोय अवलोय) इन अनेक गुणोंके द्वारा वह लोकालोकको विना किसी प्रयत्नके व कष्टके लगातार देखता है व जानता है (अचष्य सहाव सु ममलं) आत्माका स्वभाव परम शुद्ध है (ममल दिस्टी च पर्जाव विलयती) इसी शुद्ध आत्मदृष्टिके प्रतापसे सर्व रागादि परिणति या सर्व सांसारिक पर्जाएँ विला जाती हैं ॥ ११ ॥

(अचष्य चष्य स उत्तं) आत्माकी आंख वही कही गई है (अदिस्ट दिस्टी च न्यान सहकारं) जो ज्ञानकी सहायतासे सर्व ही अदृष्टको देख लेवे। जो प्रत्यक्ष इंद्रियोंके द्वारा नहीं दिखता है ऐसे सर्व तीन काल तीन लोकको देख लेवे (अनत नंत पर्जाव) सर्व विश्वके पदार्थोंकी अनन्तानन्त पर्याएँ ज्ञानमें झलक जावें

(न्यान दिस्टी च पर्जाव विलयं च) ऐसे आत्माकी ओर जो ज्ञानकी दृष्टि है अर्थात् शुद्धात्माका जो अनुभव है उसके प्रतापसे संसारकी पर्याय नाश होजाती है ॥ १२ ॥

(अचष्य नंत सहावं) आत्माका स्वभाव अनन्त शक्तिको धरनेवाला है (नंतानन्त च अनन्त विषय) यह आत्मा अनन्त पदार्थोंकी अनन्तानन्त पर्यायोंको जानता है (विषय च विसय सल्य) जितना इंद्रियोंके विषयोंकी चाहका विष है व माया, मिथ्या, निदान शल्यें हैं (न्यान अन्मोय विसय विस विलयं) यह सर्व विषयोंका विष ज्ञानानन्दमें रमण करनेसे विला जाता है ॥ १३ ॥

(अचष्य इन्द्रिय सहियं) जब मन इंद्रियोंके साथ काम करता है (आल्स परपंच विभ्रम सहिय) और आलस्यमें, मायाचारमें तथा भ्रम बुद्धिमें फँस जाता है (अन्यान सहाव सविड्ं) तथा वहां अज्ञान स्वभाव दिखलाई पड़ता हैं (ममल अन्मोय सयल विल्यती) इस सर्व विभावको शुद्ध ज्ञानानन्द दूर कर देता है ॥ १४ ॥

(आलस सहाव उत्त) आलस्यका स्वभाव यह कहा गया है (आलस उक्त च वयन नहु सहियं) कि यह प्राणी उस प्रमादके कारण कहे हुए जिन वचनको सुनता ही नहीं है। सभामें बैठा बैठा ऊँघता है या कुछ और सोचता रहता है (जिन उवएस भयभीयं) श्री जिनेन्द्रके उपदेशसे डरता रहता है। यह भाव करता है कि यदि मैं सुनूँगा मुझे नियम व त्याग करना पडेगा (भय पिपनिक सहकार आल्सं विल्य) परन्तु इस आलस्यका वहां नाश होजाता है, जहां भयसे रहित करनेवाला सम्यग्दर्शनका प्रकाश होजाता है या सम्यग्दर्शनके सन्मुख देशनालब्धि प्राप्त होजाती है ॥ १५ ॥

(आलस विसेष असुद्ध) विशेष आलस्य और भी अशुद्ध है (जिन उत्त वयन आल्स उत्त) जिसके कारण जिनेन्द्रके कहे हुए वचनोंकी तरफ निरादरकी बात कहता है। वाणी सुनकर उल्टा दोष लगाता है (मिथ्या सहाव विषय) मिथ्यात्व स्वभावके कारण विषयोंमें लीन रहता है (न्यानं अन्मोय आलस गलियं, यह सब आलस्य ज्ञानानन्दकी रुचि होनेपर गल जाता है ॥ १६ ॥

(परपच नन्त नत) अनन्तानन्त प्रकारके प्रपंच जालके भाव होते हैं (पर्जव सहकार ससक सल्यं च) शरीर ममत्वके कारण धर्ममें शंका होती है व माया, मिथ्या, निदान शल्यें वर्तती हैं (पर्जय सक सहाव) शंकाशील जितनी परिणतियें हैं (न्यान अन्मोय सक विलयन्ती) वे सब शंकाएँ ज्ञानानन्दमें रुचि आते ही विला जाती हैं ॥ १७ ॥

(अचष्य ससक सहियं) जब मन शंका सहित होता है। धर्ममें शंका रहती है (जिन उत्त भयभीउ ऊपर सर पसर) तब यह प्राणी जिनेन्द्रके उपदेशसे भयभीत रहता है। उसको जितना भी उपदेश दिया जावे वह सब ऊसर भूमिमें सरोवरके जल फैलनेके समान निरर्थक है (दिट्ठी चंचक चवल) उसकी दृष्टि चंचल व चपल होती है। इन्द्रियोंके विषयोंमें फँसी रहती है (भय पिउनिक सल्य मक विलयती) परन्तु यह सब शल्य व यह सब शंका निर्भय आत्माकी श्रद्धा आते ही मिट जाती है ॥ १८ ॥

(अचष्य ससक सहिय) जब मनमें धर्मकी ओरसे शंका होती है तब अज्ञानीका ऐसा स्वभाव होजाता है (जिन उत्त वयन अनंत भय उत्तं) कि जिनेन्द्रके उपदेशे हुए वचनोंसे अनन्त भय प्रगट करता है–मानता है कि यदि ऐसा वैराग्यमय उपदेश सुनूँगा, मेरा मौजशौक छूट जायगा। मुझे द्यूतरमण, शिकार, मांसाहार, मद्यपान, चोरी, वेश्यासेवन व परस्त्री सेवन त्यागना पड़ेगा (दिट्ठी आग पयत्थ) उसको यदि द्वादशांगवाणीके पदोंका अर्थ समझाया जावे (वक्‍त रूवेन प्रपच पर्जाय) वह सब उपदेश उसके भीतर वक्र या विपरीत भावरूप ही परिणमन करता है। वह इस उपदेशको भी प्रपंचजाल समझ लेता है, मोक्षमार्गको रंच मात्र भी श्रद्धामें नहीं लाता है॥ १९ ॥

(वयन च कम्म सल्य उत्पन्न अनन्त वेयन उत्त) जिसके भावमें शल्य होती है, उसके वचन शल्य सहित निकलते हैं व उसकी क्रिया भी शल्य सहित होती है। माया, मिथ्या व निदान सहित होती है। इसतरह मन, वचन, कायकी प्रवृत्तिसे जो कर्मबन्ध होता है उस कर्मके उदयसे अनन्त प्रकारकी वेदना होती है ऐसा कहा गया है (अन्यान पर्जाव दिट्ठी) उसकी दृष्टि या श्रद्धा मिथ्या ज्ञानरूप रहती है (न्यान अन्मोय ससक विलयती) परन्तु ज्ञानानन्दकी रुचि होते ही वह सब शंकाशील परिणाम विला जाते हैं ॥२०॥

(अचष्य विभ्रम सहिय) जब मनमें विपरीत ज्ञान होता है (अनंत रूवेन पर्जाव संक सल्य) तब अनन्त प्रकारके परिणाम शंका व शल्यसे भरे हुए होते हैं (विभ्रम नंत अनंतं) तब अनन्तानन्त प्रकारके मिथ्याभाव होते हैं (ममल अन्मोय विभ्रम विल्यंती) परन्तु शुद्ध आत्माके भीतर आनन्द आते ही वह सब भ्रमभाव-विपरीत श्रद्धान विला जाता है ॥ २१ ॥

(अचष्य विभ्रम सहिय) जब मन मिथ्यात्व सहित होता है (ज्योतिष कलाप परपंच दर्सी च) तब यह संसारलिप्त प्राणी ज्योतिष सामुद्रिक आदि विकल्पोंके भीतर चित्तको लगाता है (अनेय मयमीय) और रातदिन

नानाप्रकार भयोंसे ग्रसित रहता है। ज्योतिषादिसे कुछ बुरा होगा ऐसा जानकर मिथ्यात्वी बहुत घबड़ाता है (न्यानं अन्मोय भयभीउ विलयति) परन्तु जिसकी मगनता ज्ञानानन्दमें है उसको कोई भय नहीं होता है। वह सम्यग्दृष्टी वीर व साहसी होता है। वह जानता है कि यदि ज्योतिषादिकी बात ठीक होगी और मेरे पापकर्मके उदयसे कष्ट आजायगा, मैं उसको समतासे सह लूँगा। कर्मकी निर्जरा होजायगी यह तो मेरे लिये लाभ ही है, हानि कुछ नहीं ॥ २२ ॥

(अचष्य मड़ाव उत्त) मनका यह भी स्वभाव कहा गया है (जनरजन सु भाव ससक उप्पत्ती) जिससे यह मानवोंके रंजायमान करनेवाले कहानी किस्सोंके सुनने पढ़नेमें लगकर मनमें चोर आदिसे व सिंहादिसे भयभीत रहता है (जन ओत जन सहियं) उसको अपने चारोंतरफ मानवोंका जमघट अच्छा लगता है। सदा उन आदमियोंके साथ विचरता है जो उसकी खुशामद करते हैं, व उसका मन राजी रखते हैं (न्यान अ मोय जनरंजन विलय) परन्तु ज्ञानानन्दकी मगनतासे यह जनतामें रंजायमान होनेका भाव विला जाता है। सम्यग्दृष्टी आत्मानन्दका प्रेमी होजाता है तब उसको इन्द्रिय विषयपोषक रागादिवर्द्धक बातोंके करनेमें आनन्द नहीं आता हैं। वह यथासम्भव स्त्री कथा, भोजन कथा, देश कथासे अपनेको बचाता है ॥ २३ ॥

(अचष्य विसेस उत्त) विशेष ज्ञानी मन उसको कहा गया है (जन सहकार पर्जाव पर पिच्छ) जो जगतके प्राणियोंके साथमें उनके सम्बन्धमें होनेवाले परिणामोंको पर जानता है, अर्थात् उनसे विरक्त रहता है। आत्मीक चर्चाके सिवाय और चर्चाको त्यागने योग्य समझता है (अचष्य ममल सहाव) उसके आत्मामें आत्माका शुद्ध स्वभाव झलक जाता है (न्यानं अन्मोय सिद्धि सम्पत्तं) वह ज्ञानानन्दमें मगन रहता हुआ सिद्धगतिमें पहुँच जाता है ॥ २४ ॥

(जन उत्त सक सहिय) मानवोंकी कही बातोंमें रत होनेसे प्राणी भयभीत व शंकाशील रहता है (कर्पं पर्जाव दिस्टि संदर्सं) अनेक प्रकार पर्यायदृष्टिके विकल्पोंको किया करता है। ऐसा किया था, ऐसा ही करूँगा आदि संसारमें फँसा रहता है (जिन उत्त सुध सारं) परन्तु जो कोई जिनेन्द्र कथित शुद्ध सार भावको ग्रहण करके शुद्धात्माका मनन करता है (न्यान अन्मोय विकल्प विलय) वह ज्ञानानन्दमें मगन रहता है। उसके सर्व सांसारिक विचार बन्द होजाते हैं। वह प्रपंचमें नहीं फँसता है ॥ २५ ॥

भावार्थ—अचक्षुसे यहां अर्थ मनका भी है व आत्माका भी है। इस गाथावलीमें मन सम्बन्धी दोषोंको बताया है कि यह मन जब पांचों इंद्रियोंके विषयोंसे फंसा रहता है तब इसका स्वभाव आत्म-हितकी ओरसे आलसी होजाता है तब उसे जिनवाणी नहीं सुहाती है। वह धर्मोपदेश सुननेसे डरता रहता है। कहीं मुझे कुछ नियम न करना पड़े इस भयसे जिनवाणीको नहीं सुनता है। विशेष प्रमादी होजाता है तब ऐसा मिथ्यात्वभाव होता है कि जिनवाणीके कथनको सुनकर उसका निरादर करता है, उसमें दोष लगाता है, इंद्रियलम्पटी अनेक प्रकार संसारके झगडोंमें फंसा रहता है, उसको धर्मका उपदेश देना ऐसा ही निरर्थक होजाता है जैसे ऊसर भूमिमें पानी व्यर्थ जाता है। इतना ही नहीं, वह ऐसा संसारलिप्त होता है कि उसे कितना भी धर्मोपदेश सुनाया जावे वह उल्टा फलता है। जैसे सर्पको दूध पिलाया जावे तौभी वह विषरूप होजाता है। वह अज्ञानी धर्मकी तरफसे शंकाशील होता है। माया, मिथ्या, निदान तीन शल्योंमें फँसा रहता है। मन, वचन, कायकी ऐसी ही प्रवृत्ति करता है। मेरेको दुःख न हो, सदा सुख बना रहे, इसलिये ज्योतिष सामुद्रिकादिसे अपने भविष्यको मालूम करता है। जब बुरा भविष्य समझता है तब बहुत ही भयभीत होता है और घबड़ाता है। जब सम्यग्दृष्टी ज्ञानी ज्योतिषादिसे भविष्य जानकर समभाव रखता है, शांतिसे सब कुछ सहलूंगा और कर्मोंकी निर्जरा करूंगा ऐसा वीर भाव रखता है। वह मिथ्यात्वी जनताके साथ विकथा व बकवाद करनेमें आनन्द मानता है। उनकी संग-तिमें मोही रहता है, उनकी खुशामदका लोही होता है। इत्यादि मलीन भाव मिथ्यात्वी अज्ञानी जीवके होते हैं। किन्तु जब कोई धर्मखोजी जीव श्री जिनेन्द्रकी वाणीको रुचिपूर्वक सुनता है और उसपर मनन करता है और संसार, शरीर, भोगोंके असार स्वरूपको समझकर उनसे वैराग्यभाव लाता है—आत्माके भीतर सच्चा आनन्द है और यह आनन्द आत्माके शुद्ध स्वभावमें रमण करनेसे प्राप्त होता है, तब वह आत्माके स्वभावका मनन करता है। अभ्यास करते २ अनन्तानुबन्धी चार कषाय तथा मिथ्या-त्वका जब उपशम होजाता है तब उपशम सम्यक्त प्राप्त होजाता है तब भेदविज्ञान पूर्वक आत्माके स्वाद लेनेकी शक्ति प्रगट होजाती है। फिर उसको यह निश्चय होजाता है कि ज्ञानानन्दसे जो तृप्ति होती है वही यथार्थ है। इंद्रियसुखसे कभी तृप्ति नहीं होसक्ती है, यह असार है। ऐसा सम्यक्ती गृहस्थ हो या साधु, हरएक दशामें ज्ञानानन्दका स्वाद लेता है। वह श्रुतज्ञानके बलसे अपने आत्माको परमात्मारूप देखता

समयपाहुड ॥२८९॥

है। यही सम्यक्ती क्षयोपशम सम्यक्ती होकर फिर दर्शन मोहनीयकी तीन प्रकृति और चार अनन्तानुबन्धी कषायको क्षय करके क्षायिक सम्यक्ती होजाता है। ऐसा क्षायिक सम्यक्ती उसी भवसे साधु होकर कर्म काट मोक्ष चला जाता है या तीसरे भव या चौथे भव अवश्य मोक्ष प्राप्त करता है। यदि देव आयु बांधी हो तो तीसरे भव, यदि पशु व मनुष्यायु सम्यक्त होनेके पहले बांधी हो तो चौथे भव, यदि सम्यक्तके पहले नर्क आयु बांधी हो तौभी तीसरे भवमें मोक्ष चला जाता है। अतएव बुद्धिमानको उचित है कि इस अनित्य संसारकी मायामें न उलझकर आत्मज्ञान पानेका उपाय करे। और ज्ञानानन्दमें मगन रहनेका पुरुषार्थ करे। इसीसे यह जीवन भी सुखप्रद रहेगा व आगामी भी सुख प्राप्त होगा।

श्री कुलभद्राचार्य सारसमुच्चयमें मिथ्यात्वी व सम्यक्तीकी दशा बताते हैं—

रागद्वेषमयो जीव कामक्रोधवशे गत । लोभमोहमदाविष्ट संसारे संसरत्यसौ ॥ २४ ॥

आर्तध्यानरतो मूढो न करोत्यात्मनो हित । तेनासौ सुमहत् क्लेश प्राप्नोति च गच्छति ॥ ३ ॥

अनादिकालजीवेन प्राप्त दुःख पुनः पुन । मिथ्यामोहपरीतेन कषायवशवर्तिना ॥ ४८ ॥

कषयातपतप्ताना विषयामयमोहिनाम् । सयोगायोगखिन्नाना सम्यक्त्व परम हित ॥ ३८ ॥

आर्तरौद्रपरित्यागाद् धर्मशुक्लसमाश्रयात् । जीव प्राप्नोति निर्वाणमनन्तसुखमच्युतं ॥ २२६ ॥

भावार्थ—यह जीव रागद्वेषमयी होता हुआ व काम क्रोधके वशमें पडा हुआ तथा लोभ, मोह तथा मदसे घिरा हुआ संसारमें भ्रमण करता रहता है। आर्तध्यानमें रत मूढ प्राणी अपने आत्माका हित नहीं करता है इसीसे इस जन्म व परजन्ममें घोर कष्ट पाता है। अनादिकालसे यह जीव मिथ्यात्व व मोहके वशमें रहकर कषायोंके आधीन होता हुआ वारवार दुःख उठाता है। जो जीव कषायके आतापसे दुःखी है व जिनको विषयोंकी तृष्णाका राग है व जो इष्ट संयोगके वियोगमें खेदित होते हैं उनके लिये सम्यग्दर्शन परम हितकारी है। यह जीव आर्तध्यान व रौद्रध्यानको त्यागता है तथा धर्मध्यान व शुक्लध्यानका आराधन करता है तब यह जीव निर्वाणको अवश्य प्राप्त कर लेता है।

भमक
॥२९०॥

(३९) सर्वार्थसिद्धि छन्द गाथा ६७९ से ६८८ तक ।

पय उववन्न परम परमेस्टिहि, इस्टि दिस्टि च परम ममल अन्मोयह ।
पय संजोए अलषु तं लषियो, भय षिपनिकु अन्मोय ममल सहकारह ॥ १ ॥
जं उववन्न नन्त अनन्तह, लोयालोय ममल न्यान अन्मोयह ।
त भय षिपिय नन्त जिन उत्तह, पय कलन कमल न्यान सहकारह ॥ २ ॥

उवन नन्त नन्त सिद्धि सुद्ध ममल ओत उत्तओ–
विन्यान न्यान सुद्ध झ्यान विंद सुद्ध सिद्धि जुत्तओ ॥
कमह नह तं अनिस्ट समल चित्त ओत जुत्तओ ।
सु न्यान दिस्टि परम इस्ट, ममल न्यान छिन्नओ ॥ ३ ॥
सर्वार्थसिद्धि लोयलोय अर्थ ओत विंद विंद दर्सिओ ।
विन्यान न्यान सहज रूव परम नन्द नन्दिओ ॥
ओंकार विंद सहज नन्द ममल न्यान उत्तओ ।
सु ममल भाव कमल ओत सिद्धि कमल जुत्तओ ॥ ४ ॥
तं भवह उत्तु भय अनन्तु पर पर्जाव जुत्तओ ।
तं न्यान उत्तु भय विनासु भवह भय विनट्ठिओ ॥
सो भव्वु जानि गुन निहानि ममल भाव जुत्तओ ।
सरूव रूव विक्त रूव परम रूव जुत्तओ ॥ ५ ॥

जं भय विनासु सल्य मुक्कु ससंक भय गलन्तओ ।
निसंक भाव अप सहाव पर परजाव मुक्कओ ॥
तं नन्त न्यान ममल झ्यान कम्म मल विमुक्कओ ।
सो भय विनास भव्वु उत्तु सिद्धि सुद्ध संजुत्तओ ॥ ६ ॥
जं भय विनास भवह मुक्कु अभय दिस्टि दिस्टिओ ।
तं दिस्टि इस्टि रिस्टि उस्टि ममल दिस्टि जुत्तओ ॥
तं दर्सु चष्य लोयलोय दिस्टि इस्टि दरसिओ ।
सु ज्ञान दिस्टि परम इस्टि समल दिस्टि विमुक्कओ ॥ ७ ॥
सो दिस्टि सुद्ध न्यान ममल दिस्टि इस्टि दरसिओ ।
सो सुद्ध पंथ नन्त थान भय विनस्ट दिस्टिओ ॥
अलष्यु लष्यु न्यान सुद्ध सहकार न्यान उत्तओ ।
सुयं सुद्ध ममल स्कन्ध सुद्ध न्यान दर्सओ ॥ ८ ॥
दुरिस्ट नस्ट दुख स्कन्ध दुसह भय स उत्तओ ।
सो भय विनास न्यान इस्ट ममल भाव जुत्तओ ॥
सु न्यान रूव रूव रूव नासिका स उत्तओ ।
सहकार न्यान तह विन्यान कमल भाव उत्तओ ॥ ९ ॥
सो कमल कलिय ममल मिलिय न्यान दिस्टि उत्तओ ।
सो कमल उत्त भव विनासु निसंक रूव जुत्तओ ॥

ममलपाहुड ॥२९२॥

सो विवर मुक्कु मुह विमुक्कु कमल ममल उत्तओ ।
सो वयन सुद्ध जिन स उत्त कमल भय विमुक्कओ ॥ १० ॥
जो ओत सुद्ध परिनै जुत्तु परम निह कलंकओ ।
जो परम भाव जिन सहाव ममल भाव जुत्तओ ॥
सो कम्म मुक्कु सल्य तिक्त मिथ्या भय विरत्तओ ।
सो न्यान दिस्टि इस्टि इस्टि ममल कमल उत्तओ ॥ ११ ॥
जो भय विरत्त षिपक उत्त सो भय विनास भव्वओ ।
सो अभय उत्त ममल चित्त तिविहं कम्म गलंतओ ॥
जो तत्तु उत्तू परम तत्तु उत्पन्न न्यान जुत्तओ ।
सो कमल उत्त मुक्ति-पंथ सिद्धि सुह सम्पत्तओ ॥ १२ ॥

घत्ता—

इय विसेष संजुत्तओ, न्यान मह अनुरत्तओ ।
कमल भाव संजत्तओ, ममल मुक्ति सम्पत्तओ ॥ १३ ॥
नाना प्रकार न्यान सहिओ, नन्तानन्त सु ममल पओ ।
भय विनास भवु जू मुनहु, षिपक मुकति सम्पत्तओ ॥ १४ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(पय उवन्न परम परमेस्टि हि) परमात्मा अर्हंत परमेष्टीका पद प्रकाशित हुआ है (इस्टि दिस्टि परम ममल अन्मोयह) जिस पदमें इष्ट जो शुद्धात्म-स्वरूप है सो अनुभवमें आरहा है । वह पद परम शुद्ध व आनन्दमय है (पय सजोए अलपु त लषियो) इस पदके संयोग होनेपर जो आत्मा मन व इंद्रियोंके अगोचर है उसका यथार्थ ज्ञान होजाता है (भय षिपनकु अन्मोय ममल सहकारह) केवली भगवान निर्भय व आनन्दमय शुद्ध ज्ञानकी सहायतासे आत्माको देखते हैं ॥ १ ॥

ममलपाहुड
॥२९३॥

(जं उववन्न नन्त नन्तह) जिस पद्में अनन्तानन्त पदार्थोंको जाननेवाला ज्ञान प्रगट हुआ है (लोयालोय ममल न्यान अन्मोण्ह) जो ज्ञान शुद्ध है व लोकालोकको जानता है व आनन्दमय है (तं भय षिपिय नन्त जिन उचह) ऐसे अर्हतको भय रहित व अनन्त गुणधारी जिन या जिनेन्द्र कहा गया है (पय कलन कमल न्यान सहकारह) वे श्री जिन अपने अर्हतपद्का अनुभव अपने शुद्ध ज्ञानके द्वारा लेते हुए कमलके ही समान प्रफुल्लित हैं ॥ २ ॥

(उवन नन्त नन्त सिद्धि सुद्ध ममल ओत उत्तओ) श्री अर्हत परमात्मामें अनन्तानन्त शक्तिका प्रकाश होगया है। व उन्होंने शुद्ध पद्को सिद्ध कर लिया है वे पूर्ण निरंजन कहे गये हैं (विन्यान न्यान शुद्ध झ्यान विंद सुद्ध सिद्धि जुत्तओ) उन्होंने भेदज्ञान पूर्वक शुद्ध शुक्लध्यानके अनुभवसे शुद्ध भावकी सिद्धिको पाया है (कमट्ठ न्ट्ठ त अनिस्ट समल चित्त ओत जुत्तओ) ज्ञानावरणादि आठ कर्म जीवके गुणोंको नष्ट करनेवाले, महान् बुरा करनेवाले, अशुद्ध भावोंमें ओतप्रोत रखनेवाले हैं (सु न्यान दिस्टि परम इस्ट ममल न्यान छिन्नओ) उन कर्मोंको परम हितकारी सम्यग्ज्ञान स्वरूप शुद्ध ज्ञानके द्वारा जिन्होंने नाश कर दिया है। अर्हतके चार कर्म नाश होगये, शेष चार कर्म अवश्य नष्ट होनेवाले हैं ॥ ३ ॥

(सर्वार्थसिद्धि लोयलोय अर्थ ओत विंद विंद दरसिओ) श्री अर्हत परमात्माने अपना सर्व पुरुषार्थ सिद्ध कर लिया है। उन्होंने लोकालोकके पदार्थ-समूहको भलेप्रकार जाना है व देखा है (विन्यान न्यान सहज रूव परम नन्द नदिओ) वे भेदविज्ञान पूर्वक अपने सहज आत्माके स्वभावमें भरे हुए परमानन्द्में आनन्दित रहते हैं (ओंकार विंद सहज नन्द ममल न्यान उत्तओ) वे ॐ मन्त्रमेंसे जानने योग्य श्री परमात्माके पद्में तिष्ठकर सहजानन्दमय शुद्ध ज्ञानसे पूर्ण हैं (सु ममल भाव कमल ओत सिद्धि कमल जुत्तओ) वे शुद्धोपयोगधारी पूर्ण कमल-वत् अपने गुणोंको विकसित किये हुए हैं ॥ ४ ॥

(त भवह उत्तु भय अनन्तु पर पर्जाव जुत्तओ) इस संसारमें रागादि पर परिणतिके कारण अनन्त भवोंमें अनन्त प्रकारके भय बने रहते हैं। मरण भय, इष्टवियोग भय, रोग भय आदि २ (तं न्यान उत्तु भय विनासु भवह भय विनट्ठिओ) जब भव्यजीव सम्यग्ज्ञानी होजाता है तब सर्व भयोंसे रहित होजाता है। फिर उसके संसारके भ्रमणका भय भी नाश होजाता है (सो भव्वु जानि गुन निहानि ममल भाव जुत्तओ) वह भव्यजीव गुणोंका निधान है, उसके निर्मल भाव रहते हैं ऐसा जानो। वास्तवमें सम्यग्दृष्टी आत्मज्ञानी होता है

उसको निश्चय होजाता है कि मैं शुद्धात्म स्वरूप हूं। मेरी मुक्ति मेरे ही पास है। इसलिये वह पूर्ण निर्भय रहता है (सहुव रूव विक्त रूव परम रूव जुत्तओ) उसके भीतर शुद्ध आत्माका स्वभाव प्रगट रूपसे झलकता है, वह स्वसंवेदन द्वारा आत्माके शुद्ध स्वभावका अनुभव करता है ॥ ५ ॥

(ज भय विनास सल्य मुक्क समक भय गलनओ) जब भयका नाश होजाता है व सब तरहकी शल्यें नहीं रहती हैं तब शंका व भयके कारणरूप मोहनीय कर्मका ही क्षय होजाता है (निसक भाव अप सहाव पर पर्जाव मुक्कओ) सम्यग्दृष्टी आत्माके स्वभावका सच्चा श्रद्धावान होता है। वह जानता है कि आत्माका स्वभाव शंका व भय रहित है, उसमें रागादि पर परिणतिका कोई सम्बन्ध नहीं है, वह पूर्ण वीतराग है (त नन्त न्यान ममल ज्ञान कम्म मल विमुक्कओ) उस सम्यक्ती साधुके शुद्ध शुक्लध्यानके प्रतापसे कर्मका मल छूट जाता है और वह अनन्त केवलज्ञानको प्राप्त कर लेता है (सो भय विनास भव्वु उत्तु सिद्धि सुद्द सम्पत्तओ) ऐसा भव्यजीव परम निर्भय होकर सिद्ध अवस्थाका सुख अनुभव करता है ॥ ६ ॥

(त भय विनास भवा मुक्कु अभय दिस्टि दिस्टिओ) केवलज्ञानी अर्हत् परमात्माके सर्व भयका नाश हो जाता है। वे संसारसे मुक्त होजाते हैं, वे निर्भय आत्माका दर्शन कर रहे हैं (तं दिस्टि इस्टि रिस्टि उस्टि ममल दिस्टि जुत्तओ) उन्होंने इष्टपदको देख लिया है। वहां सुन्दर प्रभात ही होगया है। वे शुद्धोपयोग व क्षायिक सम्यग्दर्शन सहित हैं (त दर्स चष्यु लोयलोय दिस्टि इस्टि दरसिओ) उनकी ज्ञानकी चक्षुने लोक अलोकको देख लिया है तथा अपना इष्टपद अनुभव कर लिया है (सु झ्यान दिस्टि परम इस्टि समल दिस्टि विमुक्कओ) शुक्लध्यानके द्वारा जिन्होंने अपने परमात्म-स्वरूपको देख लिया है। उनके भीतरसे अशुद्धोपयोगकी दृष्टि चली गई है ॥७॥

(सो दिस्टि सुद्ध न्यान ममल दिस्टि इस्टि दरसिओ) श्री अर्हंत भगवानमें शुद्ध सम्यग्दर्शन व शुद्ध ज्ञान हैं जिससे वे अपने इष्ट आत्माके स्वभावका अनुभव कर रहे हैं (सो सुद्ध पथ नन्त थान भय विनस्ट दर्सिओ) उन्होंने शुद्धोपयोगके मार्गपर चलकर अनन्त गुणोंके स्थान अर्हंतपदको जो सर्व भयको नाश करनेवाला है, देखा है (अलष्यु लष्यु न्यान सुद्ध सहकार न्यान उत्तओ) इंद्रिय व मनसे अगोचर आत्माका अनुभव स्वरूप शुद्ध ज्ञानकी सहायतासे उनका ज्ञान शुद्ध हुआ है ऐसा कहा गया है। अर्थात् स्वानुभवसे ही केवलज्ञानका लाभ होता है (सुय सुद्ध ममल स्कंध सुद्ध न्यान दर्सिओ) आत्माका स्वभाव स्वयं शुद्ध है। वह निर्मलताका समूह है। वहीं शुद्ध ज्ञान दिखलाई पड़ता है ॥ ८ ॥

ममलपाहुड ॥२९५॥

(दुरिस्टि नस्ट दुख स्कंध दुसह भय स उत्तओ) संसार महा अनिष्ट है, संसार घातक है, संसार दुःखका समूह है, दुःसह है, इसका बड़ा भय कहा गया है (सो भय विनास न्यान इस्ट ममल भाव जुत्तओ) सो सर्व संसारका भय नाश होजाता है, जब ज्ञान दृष्टिसे अपने इष्ट आत्माके शुद्ध भावको प्राप्त किया जाता है (सु न्यान रूव रूव रूव नासिका स उत्तओ) यह सम्यग्ज्ञानका स्वभाव पुद्गल द्रव्योंके सम्बन्धको नाशक अर्थात् कर्मोंका क्षय करनेवाला कहा गया है (सहकार न्यान तह विन्यान कमल भाव उत्तओ) इसी शुद्धोपयोगमई ज्ञानकी सहायतासे केवलज्ञानका प्रकाशरूप कमल समान प्रफुल्लित भाव होता है, ऐसा कहा गया है ॥ ९ ॥

(सो कमल कलिय ममल मिलिय न्यान दिरिटि उत्तओ) श्री अरहन्तका आत्मा कमलके समान प्रफुल्लित शुद्ध भावसे मिला हुआ ज्ञानदृष्टिको रखनेवाला कहा गया है (सो कमल उत्त भय विनासु निसंक रूव जुत्तओ) वह कमल सर्व भयोंसे रहित निःशङ्कभावका रखनेवाला कहा गया है (सो विवर मुक्कु मुद विमुक्कु कमल ममल उत्तओ) वह अरहन्त भगवान दोष रहित हैं, आदि रहित हैं, ऐसे शुद्ध कमल कहे गए हैं। कमलमें छिद्र होता है व उसका आदि है परन्तु अरहन्त भगवानमें कोई छिद्र या दोष नहीं है, व उनके आत्माकी सत्ता अनादि है (सो वयन सुद्ध जिन स उत्त कमल भय विमुक्कओ) श्री अरहन्त भगवानकी दिव्यवाणी शुद्ध है, वे जिनेन्द्र कमल सर्व भय रहित कहे गए हैं ॥ १० ॥

(जो ओत सुद्ध परिनै जुत्त परम निह कलंकओ) वे श्री अरहन्त भगवान सर्व तरफसे शुद्ध परिणामोंमें ही परिणमन करते हैं, वे परम निःकलङ्क हैं (जो परम भाव जिन सहाव ममल भाव जुत्तओ) वे उत्कृष्ट भावोंके धारी हैं, वे ही जिनेन्द्र हैं, वे ही सर्व रागादि मल रहित भावोंके अधिपति हैं (सो कम्म मुक्कु सल्य तिक्त मिथ्या मय विरत्तओ) वे चार घातीय कर्मोंसे मुक्त हैं—सर्व शल्य रहित हैं। उनमें न मिथ्यात्व है, न मद है (सो न्यान दिस्टि इस्टि ममल कमल उत्तओ) उनहीको ज्ञान दृष्टि धारी पमसेष्टी तथा शुद्ध कमल कहा गया है ॥ ११ ॥

(जो भय विरक्त षिपक उत्त सो भय विनास भव्वओ) वे भगवान भय रहित हैं, क्षायिकभाव धारी कहे गए हैं, उनहीकी भक्तिसे भव्य जीवोंके भय नाश होजाते हैं (सो अभय उत्त ममल चित्त तिविह कम्म गलंतओ) वे ही अभय व शुद्ध चेतनस्वरूप कहे गए हैं। वे द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म तीन प्रकार कर्मोंको गलानेवाले हैं (जो तत्तु उत्त परमत तु उत्तन्न न्यान जुत्तओ) उनहीको तत्व कहा गया है, वे ही परम तत्व हैं। वे प्रकाशमान

ज्ञान सहित केवलज्ञानी हैं (सो कमल उत्त मुक्तिपन्थ सिद्धि सुह सपत्तओ) वे श्री अरहन्त कमल कहे गए हैं। वे मोक्षमार्गके द्वारा मोक्षका अनुपम सुख पाते हैं ॥ १२ ॥

(इय विसेप संजुत्तओ) इन ऊपर लिखित गुणोंके धारी अर्हंत (न्यान मइ अनु त्तओ) जो ज्ञान चेतनामें लीन हैं (कमल भाव सजुत्तओ) वे ही कमलके समान प्रफुल्लित भाव सहित हैं (ममल मुक्ति सम्पत्तओ) वे ही शुद्ध मोक्षपदको पाते हैं ॥ १३ ॥

(नानाप्रकार न्यान सहियो) अनेक प्रकारके ज्ञेय पदार्थोंकी अपेक्षा ज्ञान नानाप्रकार है (नन्तानन्त सु ममल पओ) ऐसे अनन्तानन्त पदार्थोंको जाननेवाले शुद्ध पदके धारी अर्हंत हैं (भय विनास भवु जू मुनहु) हे भव्य-जीव ! निर्भय होकर उन्हींका मनन करो (पिऊ मुक्ति सम्पत्तओ) जिससे कर्मोंका क्षय करके मुक्तिका लाभ होसके ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें श्री अर्हंत परमात्माके गुणोंको गाकर यह बताया गया है कि यह संसार दुःखोंसे पूर्ण है, आत्माका महान् अनिष्ट करनेवाला है, इस संसारमें पद पदपर भय है। अज्ञानीको इस लोक भय, परलोक भय, रोग भय, अरक्षा भय, अगुप्ति भय, मरण भय, अकस्मात् भय; इन सात भयोंके सिवाय और अनेक प्रकारके भय रहते हैं। जैसे इष्टवियोग भय, अनिष्ट संयोग भय, स्वामी भय, मृत्यु भय, चोर भय, राजा भय आदि। संसारी प्राणी शरीरासक्त, धनासक्त, कुटुम्बासक्त होता है। अतएव उसको रातदिन इनके बने रहनेकी चिंता रहती है व यह भय सदा बना रहता है कि कहीं इनका वियोग न होजावे। यह सर्व भय व संसारकी सर्व आपत्तिका नाश उस सम्यग्दृष्टीको होजाता है जिसने भेदविज्ञान पूर्वक भलेप्रकार निश्चय कर लिया है कि मैं केवल आत्मा हूं, अमूर्तीक हूं, अनादि अनन्त अविनाशी हूं, मेरे द्रव्यके साथ पुद्गलका रंचमात्र भी सम्बन्ध नहीं है। अतएव मैं न तो ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मका धारी हूं, न रागादि भावकर्मोंका धारी हूं, न शरीरादि नोकर्मोंका धारी हूं। मै तो स्वभावकी अपेक्षा श्री अरहन्त या सिद्धकी आत्माके समान हूं, मेरा सचा आनन्द मेरा ही स्वभाव है, मैं स्वभावसे सहजानन्दमय हूं, मुझे संसारका सुख कभी तृप्ति नहीं देसक्ता। यह विषके समान घातक है व परिणामोंको रागी द्वेषी रखनेवाला है। ऐसा वैराग्यभाव चित्तमें लाकर सम्यग्दृष्टी यदि गृहस्थमें रहता है तो गृही योग्य सर्व काम नीति व धर्मकी रक्षा करते हुए करता है। आत्मध्यान व स्वाध्याय व जिनभक्तिके

ममलपाहुड
॥२९७॥

लिये समय निकालता है। जितना समय धर्मसाधनमें जाता है उसको वह सफल जानता है। ऐसा सम्यक्ती कोई पुण्यफलकी इच्छा नहीं करता है, वह केवल आत्मोन्नतिका ही भाव दृढतासे रखता है।

यही सम्यक्ती गुणस्थान क्रमसे जब साधु होजाता है तब निर्ग्रन्थ पदमें धर्मध्यानको ध्याता हुआ कर्मोंकी निर्जरा करता है। फिर क्षपकश्रेणीपर चढकर शुक्लध्यानको ध्याता है। चार घातीय कर्मोंका क्षय करके वह केवलज्ञानी अरहन्त परमात्मा होजाता है। इस कमल समान प्रफुल्लित अरहन्त पदकी महिमा गाथामें गाई है। श्री अरहन्त भगवान दिव्यवाणीसे धर्मोपदेश करते हैं जिससे अनेक जीवोंका हित होता है। फिर यही शेष अघातीय कर्मोंका क्षय कर मुक्ति पालेते हैं व स्वयं मुक्त होजाते हैं।

वास्तवमें सम्यक्त ही सर्व दुःखोंको मिटानेवाला है जैसा सारसमुच्चयमें कहा है—

पण्डितोऽसौ विनीतोऽसौ धर्मज्ञ प्रियदर्शन । य सदाचारसम्पन्न सम्यक्त्वदृढमानस ॥ ४२ ॥
जरामरणरोगाना सम्यक्त्वज्ञानभेषजै । शमनं कुरुते यस्तु स च वैद्यो विधीयते ॥ ४३ ॥

भावार्थ—वही पण्डित है, वही विनयवान है, वही धर्मज्ञाता है, उसीका दर्शन प्रिय है, जो सदाचार सहित होकर सम्यग्दर्शनमें दृढ़ता रखता है। जो जन्म, मरण, जरा, रोगोंको सम्यग्दर्शन सहित आत्मज्ञानकी औषधि पीकर शांत करता है, वही वैद्य कहा गया है।

(३६) अचष्य मनरंजन गाथा ६८९ से ७१८ तक।

अचष्यं सुभाव सहियं, कल सहकार पर्जाव दिस्टं च।
पर्जय सरनि स सल्यं, न्यानं अन्मोय पर्जाव गलियं च ॥ १ ॥
अचष्यं अनन्त विसेषं, कलरञ्जन दोष दिस्टि सहकारं।
जिन उत्त न्यान अन्मोयं, कलरञ्जन दोष नत विलयंती ॥ २ ॥
मनरञ्जन अचष्य रूव, विलय पर्जाव ससंक उप्पत्ती।
पर पर्जय सल्य विनयं, मनरञ्जन गलिय न्यान अन्मोयं ॥ ३ ॥

उत्त च ।
मनरञ्जन च सहावं, अनेय कष्टं च अन्मोय अन्मोयं ॥ ४ ॥
तव क्रियं च पर्जावं, मनरञ्जन गलिय न्यान बन्धानं ।
मनरञ्जन श्रुतं च उत्तं, पर्जावं सहकार विकह पत्तं ॥ ५ ॥
बन्धान रूव विज्ञानं, मनरञ्जन भाव दुग्गए जोयं ।
मनरञ्जन श्रुतं च भेयं, नरकं व्याकरन निरीष्यन वासम्मि ॥ ६ ॥
वेदं अन्यान अनथ, मनरञ्जन सहाव निगोय उत्तं ।
मनरञ्जन गारव उत्तं, मय मांस सहकार धम्म स अन्मोयं ॥ ७ ॥
पर पर्जय स सहावं, मनरंजन गलिय न्यान पिच्छंतो ।
मनरञ्जन न्यान सहावं, पर्जय सहकार समल अन्मोय ॥ ८ ॥
सामुद्रिक कोक पर्जावं, मनरञ्जन विलय न्यान नन्ताई ।
अचष्य सहाव स उत्तं, रु मोहंध नन्त रूवं च ॥ ९ ॥
दर्सन अरूव रूवं, मोहध दिस्टि पर्जाव समलं ।
दर्सन अनन्त सु ममल, पर्जय सहकार दर्सए गलियं च ॥१०॥
दसन मोहंध सु विलयं, न्यानं अन्मोय पर्जाव संसारे ।
अचष्यं रूव सहिय, न्यानं आवर्न सरनि आवर्नं ॥११॥
जिन उत्त न्यान नहु दिट्ठं, न्यानं अन्मोय गलिय सहकारं ।
अचष्य दर्सन अनिस्ट, दर्सन आवर्न अनिस्ट आवर्नं ॥१२॥
पर पर्जय दसतो, ममल अन्मोय विलय

अचष्यं मोह पर्जाव, मोहन आवर्नं न्यान विलयन्ती ।
पर पर्जय मोहधं, भय षिपनं न्यान विलय आवन ॥१३॥
अचष्यं नन्त पर्जावं, पर्जय सहकार अन्तरं न्यानं ।
जदि न्यान अन्मोय सु ममलं, भय षिपनिक नन्त अन्तरं विलयं ॥१४॥
अचष्ये दसन सुद्धं, न्यानं अन्तर विलय नन्तानं ।
सम्यक्दर्सन दर्स, न्यान अन्मोय अंतरं विलयं ॥ १५ ॥
अन्तर अन्यान सहावं, न्यानं भयभीउ सल्य संक उत्तं ।
ममल न्यान अन्मोय, भय षिपियं न्यान अंतरं विलयं ॥ १६ ॥
अचष्य सहाव स उत्तं, सुह असुहं च अन्मोय संदिट्ठं ।
पर्जय सरनि संजुत्तं, न्यानं अन्मोय पर्जाव गलियं च ॥ १७ ॥
अचष्य सहाव सु सवदं, सव्द सहकार पर्जाव सहिय च
सव्द सहाव सु समयं, न्यानं अन्मोय सव्द विलयन्ती ॥ १८ ॥
जिह्वा अग्रं उवनं, दिस्टं जिनेन्द विंद विन्यानं ।
नन्त चतुस्टय जुत्तं, परिनाम विन्यान न्यान चौसठियं ॥ १९ ॥
चौसठि अथ जुत्तं, चतुष्टय सहकार सहज ठिदि ममलं ।
मुक्ति सभावं ठिदिय, ठिदियं मुक्तस्य ममल न्यानस्य ॥ २० ॥
जिह्वाकन्द सु ममलं, सौ अट्ठमि परिनामु न्यानं च ।
कम्म कलंक सु विलयं, विन्यान विंद सरूव संक विलयं च ॥ २१ ॥

सो अट्ठंमि स अर्थं, सहकारं उववन्न अप्प अष्टांगं ।
अप्पं च मुक्ति संठदियं, मुक्ति विन्यान न्यान ममलं च ॥ २२ ॥
जिह्वा सहाव जुत्तं, परिनाम सहसट्ठ लष्यनं ममलं ।
चौवीसं तित्थयरं, भय षिपनिक सहकार न्यान ममलं च ॥ २३ ॥
लषियो न्यान संजुत्तं, लष्यन सहकार विंद विन्यानं ।
भय षिपनिक ममल सहावं, धम्मं स सहाव मुक्ति गमनं च ॥ २४ ॥
जिह्वा लष्यन सहियं, लष्यन जिनेन्द विंद तित्थयरं ।
अर्थ सो अप परमर्थं, ति अर्थ आयरन परिनाम तित्थयरो ॥ २५ ॥
भय उत्तं च जिनन्दं, भय षिपिय अर्थ अर्थ ममलं च ।
ति अर्थं भय त्रितियं, भय षिपिय अभय न्यान सहकारं ॥ २६ ॥
भय विलयं ममल सहावं, परिनाम न्यान सयं च अट्ठंमि ।
नौ सहकार संजुत्तं, नौसै बहत्तरम्मि न्यानं च ॥ २७ ॥
ति अर्थ अर्थ सहियं, साट्ठं परिनाम न्यान विन्यानं ।
लष्यन जिन उवएसं, सहसं अट्ठंमि न्यान ममलं च ॥ २८ ॥
चौवीसं च संजुत्तं, तित्थयरं उववन्न न्यान विन्यानं ।
भय विनस्ट सहकारं, ममल सहावेन सिद्धि संपत्तं ॥ २९ ॥
लष्यन जिन उवएसं, न्यानं विन्यान सहाव ममलं च ।
भय षिपियं ममल सहावं, धम्मं स सहाव लष्यनं ममलं ॥ ३० ॥

अन्वय सहित अर्थ—(अचप्य सुभाव सहिय) मनका स्वभाव जब प्राणीमें काम करता है (कल सहकार पर्जाव विहुं च) तब उस मनमें शरीर सम्बन्धी रागकी परिणति देखी जाती है (पर्जय सरनि स सल्य) उन परिणामोंके भीतर माया, मिथ्या, निदान आदि शल्य भी होती है (न्यान अन्मोय पर्जाव गलिंय च) परन्तु जब मन आत्मज्ञानके आनन्दमें मगन होता है तब यह शरीरमें रंजित होनेकी परिणति विला जाती है ॥१॥

(अचप्यं अनंत विसेषं) मनके भीतर अनन्त प्रकारके विकल्प होते हैं (कल रजन दोष दिस्ट सहकारं) उनमेंसे एक दोष यह दिखलाई पड़ता है कि यह मन शरीरके रागभावमें उलझा रहता है—शरीरके श्रृङ्गारमें व शोभामें लीन रहता है (जिन उत्त न्यान अन्मोय) परन्तु जब यह मन जिनेन्द्र द्वारा कथित आत्मज्ञानमें मगन होता है (कल रजन दोष नंत विलयती) तब शरीरके भीतर राग करनेसे जो अनन्त दोष होते हैं वे सब विला जाते हैं ॥ २ ॥

(मन रजन अचप्य रूव) मनके अनेक विचारोंको उठाकर रंजित होना यह भी मनका स्वभाव है (विरूय पर्जाव ससक उप्पत्ती , जिससे वह इस वर्तमान शरीररूपी पर्यायके नाशकी शङ्का किया करता है तथा नवीन पर्यायकी उत्पत्तिकी शङ्का करता है।

भावार्थ—यह विकल्प करता है कि यह शरीर नहीं रहेगा तो क्या करूंगा, सर्व स्त्री पुत्रादिका सम्बन्ध छुट जायगा अथवा यह शरीर जल्दी छूट जावे। मैं बडा दुःखी हूं, तथा मैं मरकर कहीं नर्कमें न पैदा हूँ, कहीं पशुगतिमें न पैदा हूँ, अथवा मै मरकर देव हूँ व धनिक मनुष्य हूँ। इस तरहकी चिंता शरीर सम्बन्धी सुख पानेकी व दुःखसे बचनेकी किया करता है।

(पर पर्जय सल्य विषय मन रजन गलिय न्यान अन्मोयं) परन्तु जब आत्मज्ञानके आनन्दमें मगनता होती है तब पर परिणति सम्बन्धी सर्व शङ्काएँ व सर्व मनोरंजनके भाव दूर होजाते हैं ॥ ३ ॥

(मन रजन च सहावं) मनके रंजायमान होनेका ऐसा स्वभाव है कि (अनेय कष्ट च अन्मोय उत्त च) कभी तो यह अनेक प्रकार दुःखोंसे पीडाका विचार किया करता है, कभी यह सुखमें मगनता दिखाता है ऐसा कहा गया है (तव क्रियं च पर्जाव) तप पालनेका व क्रियाकांड करनेका परिणाम करके मगन होता है कि मैं बड़ा तपस्वी हूँ, मैं बडा क्रियावान हूँ, उस तप व क्रियाकांडका ही अहंकार कर लेता है। आत्मज्ञानके

विना ऐसी मनकी परिणति हुआ करती है (मन रजन गलिय न्यान अन्मोयं) ऐसी मनकी राग परिणति ज्ञानानन्दमें मगनतासे दूर होजाती है ॥ ४ ॥

(मनरजन श्रुन च उत्त) मनको रंजायमान करनेवाला शास्त्र कहा जाता है (पर्जाव सहकार विकह विन्यानं) जिन पुस्तकोंमें शरीर सम्बन्धी राग होता है व चार विकथाओंमेंसे जिनका समन्ध होता है, उन ग्रन्थोंमें स्त्री कथा, भोजन कथा, देश कथा, व राजा कथाके रागमें उलझानेवाली बातें होती हैं (बन्धान रूव विज्ञान) अथवा उनमें शरीरकी सुन्दरता व लौकिक कला, गान विद्या, चित्र विद्याका सम्बन्ध होता है (मनरजन भाव दुगए पत्त) उन रागवर्द्धक लौकिक कथाओंके पढने व सुननेमें जब मन रंजायमान होजाता है तब इस दुःश्रुति अनर्थदंडके कारण यह प्राणी वृथा तीव्र पापबन्ध कर दुर्गतिका पात्र होता है ॥ ५ ॥

(मनरजन श्रुन च भेय) मनको रंजायमान करनेवाला शास्त्र अनेक भेदरूप है (तरक व्याकरन निरीप्यनं जोय) तर्कशास्त्र या न्यायशास्त्र, व्याकरण शास्त्र, व ज्योतिष देखनेका शास्त्र, इन शास्त्रोंको पढकर अभिमानी होजाता है व इनसे रागवर्द्धक शृङ्गाररस पूर्ण शास्त्र बनाता है, व हिंसापोषक ग्रन्थ तैयार करता है व एकांत व हिंसाकारक मत पुष्ट करता है। व ज्योतिष द्वारा प्रसन्न करके व भय दिखाकर स्वार्थसाधन करता है (वेद अन्यान अनर्थ) व ऐसे वेद शास्त्र रचता है व वेदोंका ऐसा अर्थ करता है जिससे अज्ञान व अनर्थकी पुष्टि हो, वृथा पशुओंका होम किया जावे व धर्म माना जावे (मनरजन सहाव निगोय वासमि) जो बहुत ज्ञानी होकर ज्ञानका दुरुपयोग करके जगतमें हिंसा व राग फैलाकर मनको राजी रखते हैं, वे इस अशुभ मनरंजक स्वभावसे तीव्र ज्ञानावरण कर्मको बांधकर एकेन्द्रिय पर्यायमें जाकर निगोद जीव या साधारण वनस्पति जीव होजाते हैं। निगोदमें अनन्तकाल रहना पड़ता है फिर निगोदसे निकलना कठिन होता है ॥६॥

(मनरंजन गारव उत्त) मनको राजी रखनेका अभिमान यह भी कहा गया है (मय मास सहकार धम्म स उत्त) जो अपने मनकी कल्पनासे ऐसे धर्मका उपदेश करे कि जिसमें धर्म क्रिया करते हुए मदिरा पीजावे व मांस खाया जावे व इस मद्य मांसाहारको भी धर्मका अंग माना जावे (पर पर्जव स सहावं) इस धर्ममें आत्मासे भिन्न शरीरकी तरफ ही राग होता है (मनरंजन गलिय न्यान अन्मोयं) परन्तु जब मन आत्मज्ञानके आनन्दमें मगन होता है तब ऐसा अशुभ मनरंजक भाव दूर होजाता है ॥ ७ ॥

(मनरजन न्यान सहावं) मनको रंजायमान करनेवाले ज्ञानका यह भी स्वभाव है (पर्जव सहकार समल

निरओ) जो शरीर सम्बन्धी अशुभ भावोंकी तरफ ही झुका रहता है (सामुद्रिक कोक रतं) सामुद्रिक शास्त्र बनाकर शरीरके चिन्होंसे अच्छा बुरा बनाता है या कोकशास्त्र रचकर कामविकारको पुष्ट करता है। सामुद्रिक व कोकशास्त्रको पढ़कर व सुनाकर उसका दुरुपयोग करके शरीरके सुखमें मगन होजाता है (न्यानं विन्द न्यान अनन्दं) परन्तु जब मन आत्मज्ञानके आनन्दमें मगन होता है तब यह सब मनरंजक भाव दूर होजाता है ॥ ८ ॥

(अचष्य मद्दाव म उत्तं) मनका यह भी स्वभाव कहा गया है (दर्सन मोहंध नन नन्नाई) कि यह मन दर्शनमोह या मिथ्यात्वमें व अनन्तानुबन्धी कषायोंमें अन्धा रहता है (दर्सन अरूव रूवं) तब अरूपी आत्माको देखनेवाले सम्यग्दर्शनके सम्बन्धमें (मोहंध दिष्टि पजाव नई च) मोहांध बना रहता है अर्थात् आत्माके स्वभावका रंचमात्र भी श्रद्धान नहीं होता है, शरीर पर्यायमें ही आपा माना करता है। मैं मानव हूं, मैं रूपवान हूं, मैं बलवान हूं, मैं राजा हूं आदि अहंकार किया करता है ॥ ९ ॥

(दर्सन अनन्त सु ममल) सम्यग्दर्शन शुद्ध है, वह अनादि अनन्त अविनाशी आत्माका स्वभाव है (पजय मद्दकार दर्सन ममठं) परंतु वह स्वभाव शरीरमें व कर्मजनित पर्यायमें तन्मय होनेसे अशुद्ध दिखलाई पड़ता है अर्थात् मिथ्यादर्शनके रूपमें परिणमता हुआ जीवको मिथ्यादृष्टी व अज्ञानी बनाए रखता है (दर्सन मोहंध मविलयं) जब आत्मा और अनात्माके भेदविज्ञानके अभ्याससे दर्शन मोहनीय कर्मका उपशम या क्षय होजाता है (न्यानं अन्मोय पजाय गलियं च) तब आत्मज्ञानके भीतर आनन्द आता है व सांसारिक पर्यायका शनैः २ नाश होजाता है। सम्यग्दर्शनके प्रकाशसे यह जीव शीघ्र ही मोक्षका स्वामी होजाता है ॥ १० ॥

(अचष्यं रूव सहिय) यह मन जब शरीरके भीतर तन्मय होता है (न्यानं आवर्न सरनि संसारे) तब ज्ञानावरण कर्मका विशेष बन्ध होता है जिससे अनेक अज्ञानमई पर्यायोंके भीतर यह जीव संसरण किया करता है (जिन उत्त न्यान नहु दिट्ठं) श्री जिनेन्द्रने जिस सम्यग्ज्ञानका स्वरूप बताया है उस सच्चे तत्वोपदेशकी तरफ दृष्टि नहीं लगाता है तब ज्ञानावरण कर्म बढ़ता ही जाता है (न्यानं अन्मोय गलिय आवर्नं) परन्तु जब आत्मज्ञानका आनन्द आने लगता है तब ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होता रहता है। तथा इसी आत्मज्ञानके अभ्याससे ज्ञानावरणका क्षय होकर केवलज्ञानका प्रकाश होजाता है ॥ ११ ॥

(अचष्य दर्सन अनिष्ट) यह मन जब आत्माको अहितकारी पदार्थोंको देखा करता है जिससे राग,

द्वेष, मोह यढ़े उनकी ओर रंजायमान रहता है (दर्सन आवरन अनिस्ट सहकारं) तब अशुभ दर्शनके कारणसे इसके दर्शनावरण कर्मका बन्ध बढ़ता जाता है। जैसे अशुभ ग्रन्थ देखना, अशुभ मेला तमाशा देखना, वेश्यादिको देखना, नाटक देखना आदि २, इनसे दर्शनावरण कर्म बन्धता है (पर पर्जव दर्सीतो) आत्माको देखना छोड़कर जहांपर पर्यायको, शरीरको व शरीर सम्बन्धी इष्टवस्तुओंको देखा जाता है वहां दर्शनावरणका बन्ध होता है (ममल अन्मोय विलय आवरनं) जहां शुद्ध ज्ञानमें आनन्द माना जाता है, आत्मदर्शनमें प्रीति की जाती है वहां दर्शनावरण कर्मका क्षयोपशम होता जाता है या विशेष आत्म-दर्शनके अभ्याससे दर्शनावरण कर्मका बिलकुल क्षय होजाता है ॥ १२ ॥

(अचष्यं मोह पर्जाव) मन जब मोहकी परिणतिमें, रागद्वेष मोहमें, क्रोधादि कषायोंमें या मिथ्यात्वमें रमण करता है (मोहन आवर्न न्यान विलयन्ती) तब मोहनीय कर्मका बन्ध बढता है, यथार्थ ज्ञान बिला जाता है, मोह या मिथ्यात्वके कारण बहुतसा शास्त्र ज्ञान भी मिथ्याज्ञान रूप परिणमता है (पर पर्जय मोहय) तब यह प्राणी कर्मजनित पर्यायोंमें अहङ्कार व ममकार करके अंधा बना रहता है। मै शुद्ध आत्मा हूँ यह प्रतीति कभी नहीं आती है (भय पिपन न्याय विलय आवर्न) परन्तु जब निर्भय आत्मज्ञानका प्रकाश होता है तब मोहनीय कर्मका आवरण भी हटता जाता है, धीरे२ मोहनीय कर्मका भी क्षयोपशम होता जाता है। किसी समय मोहका बिलकुल क्षय होजाता है ॥ १३ ॥

(अचष्यं अनन्त पर्जाव) मनके परिणाम अनन्त प्रकारके होते हैं (पर्जय सहकार अन्तर न्यानं) उन रागादि भावोंमें लीन रहनेसे आत्माके स्वभावका घात करनेसे ज्ञानके प्रकाशमें अन्तराय पड़ रहा है। अंतराय कर्मका बन्ध होता है जो आत्माके अनन्त वीर्यका घातक है। अनन्त वीर्यके साथ ही अनन्तज्ञान प्रगट होता है (जदि न्यान अन्मोय सु ममल) यदि ज्ञानानन्दमें मगन होनेसे आत्माकी विशुद्धता बढ़ती जावे (भय पिपनिक नन्त अतर विन्य) और निःशंक निश्चल आत्मानुभव हो, द्वितीय शुक्लध्यान होजावे तो अन्तराय कर्मकी अनन्त वर्गणाएँ झड़ जावें और अनंत वीर्य प्रगट होजावे ॥ १४ ॥

(अचष्ये दर्सन सुद्धं) यदि परिणामोंमें शुद्ध सम्यग्दर्शनका प्रकाश रहे (न्यानं अन्तर विलय नन्तान) तो ज्ञानमें अन्तराय करनेवाले अनन्तानन्त कर्म झड़ जावे।

भावार्थ—शुद्ध क्षायिक सम्यग्दर्शनके अनुभवसे ही केवलज्ञान प्रगट होता है।

पिच्छंती) जो शरीर सम्बन्धी अशुभ भावोंकी तरफ ही झुका रहता है (सामुद्रिक कोक पर्जाव) सामुद्रिक शास्त्र बनाकर शरीरके चिन्होंसे अच्छा बुरा बताता है या कोकशास्त्र रचकर कामविकारको पुष्ट करता है। सामुद्रिक व कोकशास्त्रको पढ़कर व सुनाकर उसका दुरुपयोग करके शरीरके सुखमें मगन होजाता है (मनरंजन विक्रय न्यान अन्मोय) परन्तु जब मन आत्मज्ञानके आनन्दमें मगन होता है तब यह सब मनरंजक भाव दूर होजाता है ॥ ८ ॥

(अचष्य सहाव म उत्त) मनका यह भी स्वभाव कहा गया है (दर्सन मोहध नन्त नन्ताई) कि यह मन दर्शनमोह या मिथ्यात्वमें व अनन्तानुबन्धी कषायोंमें अन्धा रहता है (दर्सन अरूव रूवं) तब अरूपी आत्माको देखनेवाले सम्यग्दर्शनके सम्बन्धमें (मोहन्त दिस्टि पर्जाव रूव च) मोहांध बना रहता है अर्थात् आत्माके स्वभावका रंचमात्र भी श्रद्धान नहीं होता है, शरीर पर्यायमें ही आपा माना करता है। मैं मानव हूं, मैं रूपवान हूं, मै बलवान हूं, मै राजा हूं आदि अहंकार किया करता है ॥ ९ ॥

(दर्सन अनन्त जु ममल) सम्यग्दर्शन शुद्ध है, वह अनादि अनन्त अविनाशी आत्माका स्वभाव है (पर्जय सहकार दर्सए ममल) परंतु वह स्वभाव शरीरमें व कर्मजनित पर्यायमें तन्मय होनेसे अशुद्ध दिखलाई पड़ता है अर्थात् मिथ्यादर्शनके रूपमें परिणमता हुआ जीवको मिथ्यादृष्टी व अज्ञानी बनाए रखता है (दर्सन मोहध सविल्य) जब आत्मा और अनात्माके भेदविज्ञानके अभ्याससे दर्शन मोहनीय कर्मका उपशम या क्षय होजाता है (न्यानं अन्मोय पर्जाय गलिय च) तब आत्मज्ञानके भीतर आनन्द आता है व सांसारिक पर्यायका शनैः २ नाश होजाता है। सम्यग्दर्शनके प्रकाशसे यह जीव शीघ्र ही मोक्षका स्वामी होजाता है ॥ १० ॥

(अचष्य रूव सहिय) यह मन जब शरीरके भीतर तन्मय होता है (न्यानं आवर्न सरनि ससारे) तब ज्ञानावरण कर्मका विशेष बन्ध होता है जिससे अनेक अज्ञानमई पर्यायोंके भीतर यह जीव संसरण किया करता है (जिन उत्त न्यान नहु दिट्ठं) श्री जिनेन्द्रने जिस सम्यग्ज्ञानका स्वरूप बताया है उस सच्चे तत्वोपदेशकी तरफ दृष्टि नहीं लगाता है तब ज्ञानावरण कर्म बढ़ता ही जाता है (न्यानं अन्मोय गलिय आवर्न) परन्तु जब आत्मज्ञानका आनन्द आने लगता है तब ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होता रहता है। तथा इसी आत्मज्ञानके अभ्याससे ज्ञानावरणका क्षय होकर केवलज्ञानका प्रकाश होजाता है॥ ११ ॥

(अचष्य दर्सन अनिस्ट) यह मन जब आत्माको अहितकारी पदार्थोंको देखा करता है जिनसे राग,

द्वेष, मोह बढ़े उनकी ओर रंजायमान रहता है (दर्सन आवरन अनिस्ट सहकार) तब अशुभ दर्शनके कारणसे इसके दर्शनावरण कर्मका बन्ध बढ़ता जाता है। जैसे अशुभ ग्रन्थ देखना, अशुभ मेला तमाशा देखना, वेश्यादिको देखना, नाटक देखना आदि २, इनसे दर्शनावरण कर्म बन्धता है (पर पर्जेव दर्सीतो) आत्माको देखना छोड़कर जहांपर पर्यायको, शरीरको व शरीर सम्बन्धी इष्टवस्तुओंको देखा जाता है वहां दर्शनावरणका बन्ध होता है (ममलं अन्मोय विलय आवरनं) जहां शुद्ध ज्ञानमें आनन्द माना जाता है, आत्मदर्शनमें प्रीति की जाती है वहां दर्शनावरण कर्मका क्षयोपशम होता जाता है या विशेष आत्म-दर्शनके अभ्याससे दर्शनावरण कर्मका बिलकुल क्षय होजाता है ॥ १२ ॥

(अचष्यं मोह पर्जाव) मन जब मोहकी परिणतिमें, रागद्वेष मोहमें, क्रोधादि कषायोंमें या मिथ्यात्वमें रमण करता है (मोहन आवर्न न्यान विलयन्ती) तब मोहनीय कर्मका बन्ध बढ़ता है, यथार्थ ज्ञान विला जाता है, मोह या मिथ्यात्वके कारण बहुतसा शास्त्र ज्ञान भी मिथ्याज्ञान रूप परिणमता है (पर पर्जय मोहध) तब यह प्राणी कर्मजनित पर्यायोंमें अहङ्कार व ममकार करके अंधा बना रहता है। मैं शुद्ध आत्मा हूं यह प्रतीति कभी नहीं आती है (मय पिगन न्याय विलय आवर्न) परन्तु जब निर्भय आत्मज्ञानका प्रकाश होता है तब मोहनीय कर्मका आवरण भी हटता जाता है, धीरे २ मोहनीय कर्मका भी क्षयोपशम होता जाता है। किसी समय मोहका बिलकुल क्षय होजाता है ॥ १३ ॥

(अचष्यं अनन्त पर्जाव) मनके परिणाम अनन्त प्रकारके होते हैं (पर्जय सहकार अन्तर न्यानं) उन रागादि भावोंमें लीन रहनेसे आत्माके स्वभावका घात करनेसे ज्ञानके प्रकाशमें अन्तराय पड़ रहा है। अंतराय कर्मका बन्ध होता है जो आत्माके अनन्त वीर्यका घातक है। अनन्त वीर्यके साथ ही अनन्तज्ञान प्रगट होता है (जदि न्यान अन्मोय सु ममल) यदि ज्ञानानन्दमें मगन होनेसे आत्माकी विशुद्धता बढ़ती जावे (मय पिपनिक नन्त भतर विन्य) और निःशंक निश्चल आत्मानुभव हो, द्वितीय शुक्लध्यान होजावे तो अन्तराय कर्मकी अनन्त वर्गणाएँ झड़ जावें और अनंत वीर्य प्रगट होजावे ॥ १४ ॥

(अचष्ये दर्सन सुद्धं) यदि परिणामोंमें शुद्ध सम्यग्दर्शनका प्रकाश रहे (न्यानं अन्तर विलय नन्तानं) तो ज्ञानमें अन्तराय करनेवाले अनन्तानन्त कर्म झड़ जावे।

भावार्थ—शुद्ध क्षायिक सम्यग्दर्शनके अनुभवसे ही केवलज्ञान प्रगट होता है।

पिपनिक ममल सहावं) उनका स्वभाव सर्व भय रहित है व निरंजन निर्विकार है ([illegible])
वे निश्चय रत्नत्रय स्वरूप आत्मानुभव धर्मके प्रतापसे मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ २४ ॥

(जिह्वा लब्यन सहियं) दिव्यवाणीका प्रकाश गए अर्हंत तीर्थंकरका बाहरी लक्षण है ([illegible]
विन्द तित्थयरं) अन्तरंग लक्षण श्री जिनेन्द्र तीर्थंकरोंका स्वात्मानुभव है ([illegible]) वे यथार्थ आत्म
पदार्थ हैं। वे ही परमात्मा या परमार्थ हैं। उनकी आत्माके घातक कर्म नाश होगये हैं ([illegible]
परिनाम तित्थयरो) रत्नत्रय धर्मके आचरणसे ही वे महापुरुष भव्यजीवोंको संसार-सागरसे उद्धार करनेवाले
तीर्थंकर पदके धारी होते हैं ॥ २५ ॥

(भय उत्त च जिनेन्दं) श्री जिनेन्द्र भगवानने अनेक सांसारिक भय बताए हैं ([illegible]
ममलं च) श्री अर्हंतकी आत्मासे सर्व भय दूर होगये हैं, वे निर्भय आत्मा हैं, वे शुद्ध आत्मा हैं ([illegible]
भय त्रितिय) तीन ही यथार्थ पदार्थ हैं सम्यग्दर्शनादि व तीन ही भय हैं—जन्म जरा मरण, इन तीन रोगोंकी
औषधि भी रत्नत्रय धर्मका आराधन है ([illegible]) [illegible] केवलज्ञानके प्रकाश होते
ही जन्म जरा मरणके तीनों भय दूर होजाते हैं ॥ २६ ॥

(भय विलय ममल सहावं) श्री अर्हंत तीर्थंकर भय रहित हैं व शुद्ध स्वभावके धारी हैं ([illegible]
सय च अट्ठमि) उनका जप व ध्यान एकसौ आठ (१०८) दफे करना चाहिये ([illegible]) केवलज्ञानादि
नौ लब्धियोंको प्राप्त करनेके लिये ([illegible]) नौसौ बहत्तर दफे अर्थात् एकसौ आठकी जापको
नौ दफे ज्ञानपूर्वक जपना व ध्याना चाहिये ॥ २७ ॥

(ति अर्थ अर्थ सहियं) श्री अर्हंत तीर्थंकर रत्नत्रयमई धर्मके धारी हैं ([illegible]) उनका
जप व ध्यान भेदविज्ञानपूर्वक एकसौ आठ दफे करना चाहिये ([illegible]) उनका लक्षण जिनेन्द्रोंने
यह कहा है (सहसं अट्ठं मि न्यान ममल च) कि बाहरी लक्षण तो एक हजार आठ हैं व भीतरी लक्षण शुद्ध
केवलज्ञान है ॥ २८ ॥

(चौवीस च सजुत्त तित्थयर उववन्न न्यान विन्यान) गत चतुर्थकालमें ज्ञान विज्ञानसे पूर्ण ऐसे ऋषभादि
महावीर पर्यंत चौवीस तीर्थंकर यहां होगए हैं (भय विनस्ट सहकार) वे निर्भय हैं व हमारे उद्धारके लिये
सहकारी हैं, वे पूज्यनीय हैं (ममल सहावेन सिद्धि सपत्तं) वे शुद्ध स्वभावके प्रतापसे सिद्धिको प्राप्त करचुके हैं॥२९॥

है। यह सम्यक्ती परमेष्ठी वाचक मन्त्रोंके द्वारा जप करता है व ध्यान करता है। जप व ध्यानसे भावोंकी निर्मलता होती जाती है तब धीरे२ श्रावक होजाता है, फिर साधु होजाता है। धर्मध्यान व शुक्लध्यानसे अपने बहुत कर्मोंकी निर्जरा करता हुआ मोहनीयकर्मका व शेष तीन घातीय कर्मोंका क्षय करके केवलज्ञानी अर्हंत होजाता है। रत्नत्रयमई मोक्षमार्ग है, व्यवहारनयसे भेदरूप है, निश्चयनयसे अभेदरूप है। जहां अपने शुद्धात्माका अनुभव है वही मोक्षमार्ग है। इसी धर्मके सेवनसे तीर्थंकर पद होता है। तीर्थंकरोंका बाहरी लक्षण शरीरमें १००८ लक्षणोंका होना है। अन्तरंगमें वे परम वीतराग हैं, ज्ञानानन्दमें मगन हैं। वे तीर्थंकर दिव्यवाणीसे भव्योंको धर्मका उपदेश करते हैं। श्री रिषभादि महावीरपर्यंत चौवीस तीर्थंकर जो भरतमें इस कालमें हुए हैं वे इसी आत्मानुभवसे हुए हैं। अतएव हम लोगोंको उचित है कि अहँकारको त्यागकर व गृहस्थका झूठा मोह त्यागकर क्षणिक इंद्रियसुखोंकी आसक्ति दूरकर जो ज्ञानानंद अपने ही आत्माके स्वभावमें है उसका स्वाद लेना चाहिये। यही ज्ञानानन्द सर्व संसारके भयको मिटानेवाला है और जीवको मोक्षद्वीपमें पहुँचानेवाला है। श्री पूज्यपादस्वामी इष्टोपदेशमें कहते हैं:—

पर परस्ततो दु:खमात्मैवात्मा ततः सुखं। अतएव महात्मानस्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः ॥ ४५ ॥

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारबहिःस्थितेः। जायते परमानंदः कश्चिद्योगेन योगिनः ॥ ४७ ॥

आनंदो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतं। न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्वचेतनः ॥ ४८ ॥

भावार्थ—आत्मासे भिन्न शरीरादि पर हैं उनके मोहसे दुःख होता है। आत्मा आत्मारूप ही है—परमात्मारूप ही है, उसके ज्ञान व ध्यानसे आनन्द होता है इसलिये महात्मालोग आत्माकी सिद्धिके लिये उद्यम करते रहते हैं। जो व्यवहारके मोहसे बाहर होजाते हैं व आत्माके ध्यानमें मगन होते हैं उन योगियोंको योगाभ्याससे कोई अपूर्व परमानन्द प्राप्त होजाता है। वही आनन्द निरन्तर कर्मोंके ईंधनको जलाता रहता है। उस आनन्दको भोगते हुए योगीको बाहरके दुःखोंको तरफ लक्ष्य नहीं रहता है। वास्तवमें ज्ञानानन्द ही मोक्षका यथार्थ उपाय है।

षिपनिक ममल सहावं) उनका स्वभाव सर्व भय रहित है व निरंजन निर्विकार है (धम्म स सहाव मुक्ति गमनं च) वे निश्चय रत्नत्रय स्वरूप आत्मानुभव धर्मके प्रतापसे मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ २४ ॥

(जिह्वा लष्यन सहियं) दिव्यवाणीका प्रकाश यह अर्हंत तीर्थंकरका बाहरी लक्षण है (लष्यन जिनेन्द विन्द तित्थपरं) अन्तरंग लक्षण श्री जिनेन्द्र तीर्थंकरोंका स्वात्मानुभव है (अर्थ सो अप परमथ) वे यथार्थ आत्मपदार्थ हैं। वे ही परमात्मा या परमार्थ हैं। उनकी आत्माके घातक कर्म क्षय होगये हैं (ति अर्थ आवरन परिनाम तित्थयरो) रत्नत्रय धर्मके आचरणसे ही वे महापुरुष भव्यजीवोंको संसार-समुद्रसे उद्धार करनेवाले तीर्थंकर पदके धारी होते हैं ॥ २५ ॥

(भय उत्त च जिनेन्दं) श्री जिनेन्द्र भगवानने अनेक सांसारिक भय बताए हैं (भय पिपिय अथ अर्थ ममल च) श्री अर्हंतकी आत्मासे सर्व भय दूर होगये हैं, वे निर्भय आत्मा हैं, वे शुद्ध आत्मा हैं (ति अर्थ भय त्रितियं) तीन ही यथार्थ पदार्थ हैं सम्यग्दर्शनादि व तीन ही भय हैं-जन्म जरा मरण, इन तीन रोगोंकी औषधि भी रत्नत्रय धर्मका आराधन है भय पिपिय अभेय न्यान सहकारं) अभय केवलज्ञानके प्रकाश होते ही जन्म जरा मरणके तीनों भय दूर होजाते हैं ॥ २६ ॥

(भय विलयं ममल सहाव) श्री अर्हंत तीर्थंकर भय रहित हैं व शुद्ध स्वभावके धारी हैं (परिनाम न्यान सय च अट्ठंमि) उनका जप व ध्यान एकसौ आठ (१०८) दफे करना चाहिये (नौ सहकार संजुत्त) केवलज्ञानादि नौ लब्धियोंको प्राप्त करनेके लिये (नौसै बहत्तरम्मि न्यानं च) नौसै बहत्तर दफे अर्थात् एकसौ आठकी जपको नौ दफे ज्ञानपूर्वक जपना व ध्याना चाहिये ॥ २७ ॥

(ति अर्थ अर्थ सहिय) श्री अर्हंत तीर्थंकर रत्नत्रयमई धर्मके धारी हैं (साढ परिनाम न्यान विन्यान) उनका जप व ध्यान भेदविज्ञानपूर्वक एकसौ आठ दफे करना चाहिये (लष्यन जिन उवएस) उनका लक्षण जिनेन्द्रोंने यह कहा है (सहसं अट्ठं मि न्यान ममल च) कि बाहरी लक्षण तो एक हजार आठ हैं व भीतरी लक्षण शुद्ध केवलज्ञान है ॥ २८ ॥

(चौवीस च सजुत्त तित्थयर उवबन्न न्यान विन्यान) गत चतुर्थकालमें ज्ञान विज्ञानसे पूर्ण ऐसे ऋषभादि महावीर पर्यंत चौवीस तीर्थंकर यहां होगए है (भय विनस्ट सहकार) वे निर्भय हैं व हमारे उद्धारके लिये सहकारी हैं, वे पूज्यनीय हैं (ममल सहावेन सिद्धि सपत्त) वे शुद्ध स्वभावके प्रतापसे सिद्धिको प्राप्त करचुके हैं ॥२९॥

अमलपाहुड
॥२०८॥

(३७) जोगी फूलना छन्द गाथा ७१९ से ७४३ तक।

जोगी हो जिन मार्ग जोगी, जोयो न्यान विन्यानं।
नन्द आनन्दह चिदानन्दमय, सहज नन्द स सहाओ ॥ १ ॥
हो जोगी जिन मार्ग जोगी, जोयो नन्तानन्तु।
नन्त विसेषै दरसै दरसै, वीय सौष्य स उत्तु ॥ २ ॥ (आचरी)
जिन उवएसिउ ममल सरूवे, ममल सिद्धि सभाउ।
भय षिपनिक हे भव्वु स उत्तु, सहज मुक्ति स सहाउ ॥ ३ ॥ हो जोगी० ॥
जिनियो जिनवर न्यान सरूवे, कम्मु अनन्तानन्तु।
अमिय पयोहर न्यान विन्यानह, धम्म सहाउ संजुत्तु ॥ ४ ॥ हो जोगी० ॥
जिनियो जिनवर ओत सहजे, मुक्ति पंथ सुभाउ।
ममल सहावे सिद्धि सरूवे, भय षिपिय सिद्धि स सहाउ ॥ ३ ॥ हो जोगी० ॥
जिनवर उत्तउ ममल सरूवे, उवनो दाता देउ।
अमिय रसायन धम्मह सहियो, मुक्ति-पंथ दर्सई ॥ ६ ॥ हो जोगी० ॥
देव ऊवनो न्यान सरूवं, दाता देव सहाउ।
पर्म देव जो पम ऊवनो, ममल सिद्धि स सहाउ ॥ ७ ॥ हो जोगी० ॥
न्यान विन्यानह परम न्यान मय, ऊवनो दाता सोइ।
भय षिपनिक हे भव्वु उवएसिउ, पर्म देव सम सोइ ॥ ८ ॥ हो जोगी० ॥
अमिय रसियो परम सुभावह, धम्मुति अर्थह जोय।
देव जु कहियो परम देव सुइ, सिद्धि मुक्ति सम सोय ॥ ९ ॥ हो जोगी० ॥

ऊवंकार उवनू सहियो, उवनउ उवन सहाउ।
ममल सहाव कम्मु जु विलयो, भय पिपिय मुक्ति स सहाउ॥ १० ॥ हो जोगी ॥
उवनो विंद विन्यानह सहियो, परमानन्द सहाउ।
अमिय सरूवे मुक्ति संजोए, धम्म सिद्धि सभाउ ॥ ११ ॥ हो जोगी० ॥
उवनों नन्तानन्त चतुस्टय, परम इस्टि परमिस्टि।
इस्टि रिस्टि सुइ ममल विन्यानं, भय विनस्य सुइ इस्टि ॥ १२ ॥ हो जोगी० ॥
सिष्टि सहाए उस्टि संजोए, सहकार इस्टि स सहाउ।
अवयास इस्ट तं ममल सरूवे, भय पिपिय मुक्ति सभाउ ॥ १३ ॥ हो जोगी० ॥
अन्मोय इस्टि त अमिय सरूवे, पिपिक इस्टि जिन उत्तु।
धम्म सहावे सिद्धि सरूवे, मुक्ति इस्टि संजुत्तु ॥ १४ ॥ हो जोगी० ॥
जिनवर उत्तो सहज सरूवे, मुक्ति-पंथ सह नन्द।
दिस्टिहि सहियउ ममल सरूवे, भय पिपिय नंद परनन्द ॥ १५ ॥ हो जोगी० ॥
नन्त सौख्य तं अमिय सरूवे, दिस्टि सहाउ स उत्तु।
धम्म सरूवे सिद्धि सहावे, सहजे मुक्ति पहुत्तु ॥ १६ ॥ हो जोगी० ॥
ह्रियंकार हिययार सहावे, अरूह सुभय स उत्तु।
ह्रींकारह सु ममल सुभावे, भय विनस्य सिद्धि संपत्तु ॥ १७ ॥ हो जोगी० ॥
ह्रींकार हिययार सु सहियो, अमिय रमन रस उत्तु।
अर्थति अर्थह न्यान विन्यानह, धम्मह सिद्धि संजुत्तु ॥ १८ ॥ हो जोगी० ॥

(लब्धन जिन उवएस) श्री जिनेन्द्रका ऐसा लक्षण उपदेश किया गया है (न्यानं विन्यान सहाव ममल च) कि वे केवलज्ञानमई सम्यग्ज्ञानके धारी हैं व उनका आत्मीक स्वभाव शुद्ध वीतराग है (भय षिपियं ममल सहाव) वे निर्भय हैं व शुद्ध स्वभावके धारी हैं (धम्मं स सहाव लब्धन ममल) निश्चयनयसे अपने स्वाभाविक धर्मको धारना ही शुद्ध लक्षण है। वे निरन्तर अपने शुद्धात्माके अनुभवमें तल्लीन रहते हैं। यही सच्चा अरहंत परमात्माका लक्षण है। वे परम वीतरागी व कृतकृत्य हैं ॥ ३० ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें यह बताया है कि मिथ्यादृष्टी संसारासक्त प्राणीका मन रातदिन चंचल रहता है। वह शरीर सुखके मोहमें नानाप्रकारके विचार किया करता है। इष्टवियोग व अनिष्ट संयोग व पीड़ा होनेपर आर्तध्यान करता है। भोगोंकी वांछा करके निदान करता है। तपादि भी आगामी भोगाकांक्षासे साधन करता है। मनको रंजायमान करनेवाले श्रृङ्गार शास्त्रको पढता है, विकथाओंमें प्रसन्न रहता है, शरीरकी सुन्दरता व विषयभोगकी कथाएँ करता है, लौकिक न्याय व्याकरण ज्योतिष छन्द शास्त्र पढकर हिंसा पुष्टिकारक व रागवर्द्धक शास्त्र बनाता है। वेदोंका अर्थ अनर्थकारी करता है। मदिरा मांसाहारसे धर्म होता है ऐसा ग्रन्थमें प्रतिपादन करता है, सामुद्रिक शास्त्रसे अच्छा बुरा जानकर मगन होता है या दुःखी होता है, कोक शास्त्र पढ़कर कामवासनामें अधिक लिप्त होजाता है। इस तरह मिथ्यात्व व अज्ञानमें पड़ा हुआ जीव ज्ञानावरणादि आत्मघातक चार कर्मोंका व अशुभ अघातीय कर्मोंका बन्ध करके दुर्गतिमें जाकर दुःख उठाता है—निगोद तकमें चला जाता है जहां लब्ध्यपर्यात्मक अवस्थामें एक श्वासमें अठारह दफे जन्म मरण करता है। ज्ञान बहुत अल्प प्रगट रहता है। दर्शन मोहनीय व अनन्तानुबन्धी कषायोंके उदयसे यह जीव दीर्घकाल तक संसारासक्त होता हुआ जन्ममरणादिके कष्ट उठाया करता है। जब यह जीव श्री गुरुके प्रसादसे व शास्त्रके मननसे आत्मा व अनात्माका भेद समझता है और वारवार बहुत कालतक आत्माके स्वरूपका विचार जप व ध्यानके द्वारा करता है तब इसका दर्शन, मोह, कर्म व अनन्तानुबन्धी कषायका उदय नहीं रहता है और सम्यग्दर्शनका प्रकाश होजाता है। सम्यग्दर्शनके होते ही मनकी रुचि पलट जाती है। अब मन आत्मानन्दका प्रेमी होजाता है, विषयसुखसे विरागी होजाता है। अब इसको तत्वज्ञानकी चर्चा ही अच्छी लगती है। पहले शुभ कामोंसे राग करता था, अब शुभोपयोगको भी बन्धका कारण जानकर पुण्यकी इच्छा नहीं करता है। केवल शुद्धोपयोगका प्रेमी होजाता

है। यह सम्यक्ती परमेष्ठी वाचक मन्त्रोंके द्वारा जप करता है व ध्यान करता है। जप व ध्यानसे भावोंकी निर्मलता होती जाती है तब धीरे२ श्रावक होजाता है, फिर साधु होजाता है। धर्मध्यान व शुक्लध्यानसे अपने बहुत कर्मोंकी निर्जरा करता हुआ मोहनीयकर्मका व शेष तीन घातीय कर्मोंका क्षय करके केवलज्ञानी अर्हंत होजाता है। रत्नत्रयमई मोक्षमार्ग है, व्यवहारनयसे भेदरूप है, निश्चयनयसे अभेदरूप है। जहां अपने शुद्धात्माका अनुभव है वही मोक्षमार्ग है। इसी धर्मके सेवनसे तीर्थंकर पद होता है। तीर्थंकरोंका बाहरी लक्षण शरीरमें १००८ लक्षणोंका होना है। अन्तरंगमें वे परम वीतराग हैं, ज्ञानानन्दमें मगन हैं। वे तीर्थंकर दिव्यवाणीसे भव्योंको धर्मका उपदेश करते हैं। श्री रिषभादि महावीरपर्यंत चौवीस तीर्थंकर जो भरतमें इस कालमें हुए हैं वे इसी आत्मानुभवसे हुए हैं। अतएव हम लोगोंको उचित है कि अहंकारको त्यागकर व गृहस्थका झूठा मोह त्यागकर क्षणिक इंद्रियसुखोंकी आसक्ति दूरकर जो ज्ञानानंद अपने ही आत्माके स्वभावमें है उसका स्वाद लेना चाहिये। यही ज्ञानानन्द सर्व संसारके भयको मिटानेवाला है और जीवको मोक्षद्वीपमें पहुँचानेवाला है। श्री पूज्यपादस्वामी इष्टोपदेशमें कहते हैं:—

परः परस्ततो दुःखमात्मैवात्मा ततः सुखं। अतएव महात्मानस्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः ॥ ४५ ॥

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारबहिःस्थितेः। जायते परमानंदः कश्चिद्योगेन योगिनः ॥ ४७ ॥

आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतं। न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्वचेतनः ॥ ४८ ॥

भावार्थ—आत्मासे भिन्न शरीरादि पर हैं उनके मोहसे दुःख होता है। आत्मा आत्मारूप ही है—परमात्मारूप ही है, उसके ज्ञान व ध्यानसे आनन्द होता है इसलिये महात्मालोग आत्माकी सिद्धिके लिये उद्यम करते रहते हैं। जो व्यवहारके मोहसे बाहर होजाते हैं व आत्माके ध्यानमें मगन होते हैं उन योगियोंको योगाभ्याससे कोई अपूर्व परमानन्द प्राप्त होजाता है। वही आनन्द निरन्तर कर्मोंके ईंधनको जलाता रहता है। उस आनन्दको भोगते हुए योगीको बाहरके दुःखोंकी तरफ लक्ष्य नहीं रहता है। वास्तवमें ज्ञानानन्द ही मोक्षका यथार्थ उपाय है।

हींकार हिययार ऊवनो, हिय उकार संजुत्तु।
ममल सहावे अर्क विंद है, भय षिपिय सिद्धि संजुत्तु ॥१९॥ हो जोगी० ॥
हींकारह रमनह सहियो, अमिय महारस जुत्तु।
न्यान सहावे षिपनिक रूवे, धम्मह मुक्ति पहुत्तु ॥२०॥ हो जोगी० ॥
हींकारह जु उवन संजुत्तु, सहयारह सम दिट्ठि।
ममलह ममल सहाव संजुत्तं, भय षिपिय सिद्धि संपत्तु ॥२१॥ हो जोगी० ॥
सहयारह समसहाउ संजुत्तउ, अमिय वयन जिन उत्तु।
हिययारह उववन्न सु सहियो, धम्म रमन सिव पंथु ॥२२॥ हो जोगी० ॥
सहयारह संजोए भवियन, हिययार दिस्टि उवएसु।
भय विनास तं भव्व ऊवनं, ममल सिद्धि सम्पत्तु ॥२३॥ हो जोगी० ॥
सहयारह संजोगे जोगी, अमिय रमन रस जुत्तु।
तारन तरन सहावह सहजे, धम्म रमन सिवसंतु ॥२४॥ हो जोगी० ॥
उववन्नह हिययार सहावह, सहयारह ममल सहाउ।
अर्थति अर्थह ममलह सहियो, पिपक सिद्धि सम्पत्तु ॥२५॥ हो जोगी० ॥

अन्वय सहित अर्थ—(जोगी हो जिन मार्ग जोगी) हे योगी ! जिन मार्गपर चलकर तू योगाभ्यास करता है (जो यो न्यान विन्यान) तू भेदविज्ञानका देखनेवाला है। उसे यह ठीक२ ज्ञान है कि यह आत्मा स्वभावसे शुद्ध ज्ञाता दृष्टा आनन्दमय है। यह द्रव्यकर्म, भावकर्म, व नोकर्मसे भिन्न है (नद आनवह चिदानंदमय सहज न" स सहाओ) तथा यह आत्मा आनन्दमई है, वह आनन्द इन्द्रिय सुख नहीं है किन्तु वह ज्ञानानन्द है। उसीको सहजानन्द व अपना ही स्वभाव कहते हैं ॥ १ ॥

ममलपाहुड
॥३१३॥

(हो जोगी जिन मार्ग जोगी) हे योगी ! तू जिनमार्गपर चलकर योगाभ्यास करनेवाला है (जो यो नत.नंतु) तूने उस आत्माको पहचाना है जो अनन्तानन्त गुण पर्यायोंका धारी है (नत विसेषै दर्सै) जो अनन्त पदार्थोंको देखनेवाला है (दर्सै वीर्य सौख्य स उत्तु) जो अनन्त वीर्य व अनन्त सुखका अनुभव करनेवाला है ॥२॥

(जिन उवएसिउ ममल सरूवे) श्री जिनेन्द्र भगवानने शुद्ध स्वरूपका उपदेश किया है (ममल सिद्धि सभाउ) जो निरंजन है व सिद्ध भगवानके स्वभावके समान स्वभावका धारी है (भय षिपनिक हे भव्यु स उत्तु) उसीको हे भव्य ! सर्व भयोंसे अतीत परम निर्भय कहा गया है। उसे कोई काट नहीं सक्ता है, उसे कोई नाश नहीं कर सक्ता है (सहज मुक्ति स सहाउ) वह स्वभाव हीसे मुक्तरूप है व अपने स्वभावरूप सदा बना रहता है ॥ ३ ॥

(जिनियो जिनवर न्यान सरूवे कम्मु अनन्तानन्तु) श्री जिनेन्द्र उसे कहते हैं जिसने अपने ज्ञान स्वरूपमें रमण करके अनन्तानन्त कर्मोंको जीत लिया है (अमिय पयोहर न्यान विन्यानह) जो आनन्दामृतरूपी जलके मेघ हैं व जो ज्ञानस्वरूप हैं (धम्म सहाव सजुत्तु) निश्चय रत्नत्रयमई आत्मीक धर्मके स्वामी हैं ॥ ४ ॥

(जिनियो जिनवर ओत सहजे) श्री जिनेन्द्रने स्वभाव हीसे सर्वको सर्व तरह जीत लिया है, उनके ऊपर कोई दूसरा स्वामी नहीं है, वे स्वतंत्र लोकालोकके स्वामी हैं (मुक्ति पंथ सभाउ) उनका स्वभाव ही मोक्षमार्ग है। भावार्थ—आत्मीक स्वभावमें रमण करना ही मोक्षमार्ग है, इसीमें श्री जिनेन्द्र रमण कररहे हैं (ममल सहावे सिद्धि सरूव) वे कर्ममलरहित स्वभावके धारी हैं, वे ही सिद्ध स्वरूपी हैं (भय षिपिय सिद्धि म सहाउ) वे सर्व भयसे रहित हैं, वे अपने स्वभावको सिद्ध कर चुके हैं ॥ ५ ॥

(जिनवर उत्तउ ममल सरूवे) श्री जिनेन्द्रने कहा है कि यह आत्मा शुद्ध स्वरूपका धारी है (उवनो दाता देउ) यह आत्मा देव है, यही आनन्द दातार है व यही प्रकाशमान है (अमिय रसायन धम्मह सहियो) यह अमृतरूपी रसायनको पिलानेवाले रत्नत्रयमई धर्मको रखनेवाला है (मुक्ति पंथ देखेइ) यही मोक्षमार्गका अनुभव करनेवाला है ॥ ६ ॥

(देव उवनो न्यान सरूवे) यह आत्मदेव सदा ज्ञान स्वरूपमें प्रकाशमान है (दाता देव सहाउ) यही आनन्द दातार है, यही पूज्यनीय देव स्वभावका धारी है (धर्म देव जो धर्म उवनो) यही उत्कृष्ट देव है, इसमें श्रेष्ठ गुण प्रकाशमान हैं (ममल सिद्धि स सहाउ) यही सर्व रागादि मलरहित है, यही सिद्धस्वभावधारी है ॥७॥

(न्यान विन्यानह परम न्यानमय उवनो दाता सोई) यही आत्मा निश्चयसे ज्ञान विज्ञानमई है, केवलज्ञानमई है, यही आनन्ददाता प्रकाशमान है (भय षिपिनक हे भव्वु उवएसिउ) हे भव्य ! इसीको सर्व भयोंसे रहित उपदेश किया गया है (धर्म देव सम सोइ) यही परमात्मा देवके समान देव है ॥ ८ ॥

(अमिय रसियो परम सुभावह) यही आत्मदेव आनन्दामृतमें मगन है, परमस्वभावका धारी है (धम्म ति अर्थह जोय) इसी हीको रत्नत्रयमई धर्म जानो (देव जु कहियो परम देव सुइ) यही देव है, इसीको परमात्मा देव कहा गया है (सिद्धि मुक्ति जम सोय) यही सिद्ध स्वरूप है, यही मुक्ति स्वरूप है ॥ ९ ॥

(ऊवकार ऊवनो सहियो) ॐ मंत्रका जब ध्यान किया जाता है (उवनउ उवन सहाउ) तब उसके द्वारा परमात्माका स्वभाव ज्ञानमें झलक जाता है (ममक सहावे कम्म जु गलियो) तब शुद्ध भाव होजाता है, शुद्धोपयोगसे कर्मोंकी निर्जरा होने लगती है (भय षिपिय मुक्ति स सहाउ) तब निर्भय भाव होजाता है, साक्षात् मुक्तिका स्वभाव ही झलक जाता है ॥ १० ॥

(उवनो विंद विन्यानह सहियो) तब भेदविज्ञान पूर्वक आत्माका अनुभव जग जाता है (परमानन्द सहाउ) परमानन्द स्वभाव प्रगट होजाता है (अमिय सरूवे मुक्ति सजोए) उस आनन्दामृतके भीतर मगन होनेसे मुक्तिका संयोग निकट आता है (धम्म सिद्धि सभाउ) आत्म-धर्मसे जो सिद्धि प्राप्त करनी है वह स्वभाव प्रगट होजाता है ॥ ११ ॥

(उवनो नन्तानन्त चतुस्टय) इसी आत्मानुभवके द्वारा अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य ये चार अनन्त चतुष्टय प्रगट होजाते हैं (परम इस्टि परमिस्टि) तब परमप्रिय अर्हंत परमेष्टी पद प्रगट होजाता है (इस्टि दिस्टि सुइ ममल विन्यान) यही श्रेष्ट इष्टपद है, यही शुद्ध ज्ञानमई पद है (भय विनस्य सुइ इस्ट) वहां भय क्षय होजाता है, वही उपादेय–गृहणीय पद है ॥ १२ ॥

(सिस्टि सहाए इस्टि संजोए) उस श्रेष्ट स्वभावके व शुद्ध भावके संयोग होनेपर (सहकार इस्टि स सहाउ) अपना ही इष्ट स्वभाव प्रगट होजाता है (अवयास इस्ट त ममल सरूवे) वहां परम इष्ट उस शुद्ध स्वरूपका ही अवकाश होता है, वहां अशुद्धताको स्थान नहीं है (भय षिपिय मुक्ति सभाउ) उसीको ही निर्भय मुक्ति स्वभाव कहते हैं ॥ १३ ॥

(अन्मोय इस्टि त अमिय सरूवे) वहां परमानन्दसे ही हित रहता है। उसी अमृत स्वरूपमें मगनता

होती है (पिपक इस्टि जिन उत्तु) उसीको क्षायिक भाव सहित परमप्रिय जिन कहते हैं (धम्म सहावे सिद्धि सरूवे) वहीं धर्मका यथार्थ स्वभाव है, वहीं सिद्धका स्वरूप झलकता है (मुक्ति इस्टि सजुत्तु) ऐसे ज्ञानी ध्यानीको परम उपादेय मुक्तिका लाभ होता है ॥ १४ ॥

(जिनवर उत्तो सहज सरूवे मुक्ति पंथ सह नन्द) श्री जिनेन्द्र भगवानने कहा है कि मोक्षका मार्ग अपने सहज स्वभावमें रमण है, वह आनन्दमई है। स्वाभाविक आनन्दका यहां लाभ है (दिस्टिउ सहियो ममल सरूवे) वहां दृष्टि अपने शुद्ध स्वरूपमें रहती है (भय षिपिय नन्द परनन्द) वहां सर्व भय क्षय होगये हैं, वहां परमानन्दमें मगनता है ॥ १५ ॥

(नन्त सौख्य तं अमिय सरूवे) श्री अर्हंत परमात्मा अपने अमृतमई स्वरूपमें अनन्त सुखका अनुभव करते हैं (दिस्टि सहाउ स उत्तु) उन्होंने अपने स्वभावको देख लिया है, वे स्वरूपके प्रत्यक्षदर्शी कहे गये है (धम्म सहावे सिद्धि सहावे) वहीं धर्मका यथार्थ स्वभाव है वहीं सिद्ध भगवानका स्वभाव है (सहजे मुक्ति पहुत्तु) वे सहज ही स्वभावसे मुक्ति पहुँच जाते हैं ॥ १६ ॥

(ह्रियंकार हिययार सहावे) ह्रीं मंत्र भी बड़ा ही उपकारी है (अरुह सभाव स उत्तु) ह्रीं मंत्रके द्वारा जप या ध्यान करनेसे अरहन्तका स्वभाव झलकता है। ऐसा कहा गया है कि ह्रीमें चौवीस तीर्थंकर गर्भित है (ह्रींकारह सु ममल सहावे) ह्रीं से आत्माका शुद्ध स्वभाव अनुभवमें आता है (भय विनस्य सिद्धि संपत्तु) इस मंत्रके द्वारा सर्व भय नाश होजाता है और ध्यानी महात्मा अन्तमें सिद्धिको पहुँच जाते हैं ॥ १७ ॥

(ह्रींकारह हिययार सु सहियो) ह्रीं मंत्र बड़ा ही हित करनेवाला है (अमिय रमन रस उत्तु) इसके द्वारा आनन्दामृतरूपी रसके स्वादमें रमण होजाता है ऐसा कहा गया है (अर्थति अर्थह न्यान विन्यानह) इसके द्वारा ज्ञानमई रत्नत्रय स्वरूप आत्माका दर्शन होता है (धम्मह सिद्धि सपत्तु) रत्नत्रयकी एकता जो स्वात्मानुभवमें होती है उसीसे भव्यजीव सिद्ध गतिको प्राप्त कर लेते हैं ॥ १८ ॥

(ह्रींकार हिययार ऊवनो) ह्रीं मंत्रका प्रकाश बड़ा ही हितकारी है (हिय उकार सजुत्तु) इससे बड़ा ही उपकार होता है (ममल सहावे अर्क विंद है) इसके द्वारा शुद्ध स्वभावमें सूर्य समान वीतराग विज्ञानमई परमात्माका अनुभव होता है (भय षिपिय सिद्धि सपत्तु) इसी मन्त्रसे सर्व भय नाश होजाते हैं और यह आत्मा सिद्ध गतिको प्राप्त कर लेता है ॥ १९ ॥

(ह्रींकारह रमनहसहियो अमिय महारस जुत्तु) ह्रीं मन्त्रके द्वारा आनन्दामृतमई महान रसके स्वादमें रमण होजाता है इससे इस मंत्रको रमण कह सक्ते हैं (न्यान सहावे पिपनिक रूवे) क्षायिक भाव स्वरूप ज्ञान स्वभावी आत्मामें स्थिरता होजाती है (मम्मह मुक्ति पहुत्तु) ह्रीं मन्त्रसे रत्नत्रय धर्मका पूर्ण लाभ होता है जिसके द्वारा यह भव्यजीव मोक्षपदमें पहुँच जाता है ॥ २० ॥

(ह्रींकारह जु उवन संजुत्तु) ह्रीं मंत्रके द्वारा सम्यग्दर्शन सहित जब जप या ध्यान किया जाता है (सहयारह समदिट्ठि) तब इसकी सहायतासे समदृष्टि, समताभाव, वीतरागभाव प्रगट होजाता है (ममलह ममल सहाव सजुत्तं) भाव कर्म व द्रव्य कर्मसे रहित परम शुद्ध स्वभाव झलक जाता है (भय पिपिय सिद्धि संजुत्तु) इससे सर्व सांसारिक भय मिट जाता है और यह जीव सिद्ध गति पालेता है ॥ २१ ॥

(सहयारह स महाउ संजुत्तउ) ह्रीं मंत्रके द्वारा जब अपना स्वभाव प्रकाश होजाता है तब यह अर्हंत कहलाता है (अमिय वयन जिन उत्तु) तब अमृतमई दिव्यवाणीको प्रकाश करनेवाले वे जिनेन्द्र कहलाते हैं (हिययारह उववन्न जु सहियो) वे भव्यजीवोंके परम हितकारी हैं, उनका उदय परम ज्ञानका दाता है (धम्म रमन मित्र पन्थु) उनहीसे मोक्षमार्ग प्रगट होता है जो आत्माके धर्म या स्वभावमें रमणरूप है, स्वात्मानुभव स्वरूप है ॥ २२ ॥

(सहयारह सनोप भवियन) श्री अर्हंतकी वाणीकी सहायताके संयोगसे भव्यजन (हिययार दिस्टि उवएसु) हितकारी सम्यग्दर्शनका उपदेश लाभ करते हैं (भय विनास तं भाव करन) तब उनका सर्व भय नाश होजाता है, उनमें भव्यत्व भाव झलक जाता है (ममल सिद्धि सत्तु) वे कर्म रहित होकर सिद्धिको प्राप्त कर लेते हैं ॥ २३ ॥

(सहयारह सजोगे जोगी) इस अर्हंतकी दिव्यवाणीकी सहायतासे योगी-ध्यानी मुनि (अमिय रमन रम जुत्तु) आनन्दामृत-रसमें रमण करते हैं (तारन तरन सहावह रूजे) उनको भी सहज हीमें या स्वभावसे ही तारन तरन स्वभाव प्रगट होजाता है, वे भी अर्हंत परमात्मा होजाते हैं (धम्म रमनु सिव सत्तु) वे अपने आत्मीक धर्ममें रमण करते हुए मोक्षरूप और शांत होजाते हैं ॥ २४ ॥

(उववन्नह हिययार सहावह) उनके भीतर परम हितकारी अर्हंतका स्वभाव झलक जाता है (सहयारह ममल सहाव) जहां शुद्ध स्वभावका प्रकाश है (अर्थति अर्थह ममलह सहियो) वहीं रत्नत्रयमई शुद्ध पदार्थका स्वरूप

है (षिरक सिद्धि सम्पत्तु) वे शेष अघातीय कर्मोंको भी क्षय करके सिद्ध गतिको प्राप्त कर लेते हैं ॥ २९ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें आत्मानुभवके अभ्यास करनेवाले योगीको आह्वानन करके कहा गया है कि हे योगी! तू परमानन्द स्वभावधारी अनन्तज्ञान, दर्शन, स्वरूप, निर्भय अपने आत्माका अनुभव कर। इसी आत्मानन्दके भीतर मगन होनेसे श्री जिनेन्द्रने भी कर्मोंको विजय करके परमात्मपदका लाभ प्राप्त किया है। सिद्धके समान अपने आत्माके स्वभावका अनुभव करना चाहिये। यही अपना आत्मा निश्चयसे देव है, यही धर्म रूप है, यही रत्नत्रय स्वरूप है, यही दाता है, यही पात्र है, यह अपनेसे अपनेको ज्ञानानन्द रसका दान करता है। अभ्यास करनेवालेको ॐ मन्त्रके द्वारा अपने निज शुद्ध स्वरूपका मनन करना चाहिये। इसी स्वात्ममननसे आत्मा शुद्ध होजाता है। ह्रीं मन्त्र भी बडा ही उपकारी है। यह अरहन्तके स्वरूपका बतानेवाला है। इसके द्वारा भी परमात्माका मनन होता है और आत्मा चार घातीय कर्मोंको काटकर अरहन्त होजाता है और फिर वही सिद्ध होजाता है। तात्पर्य यही है कि धर्म कहीं बाहर नहीं है। आत्माके शुद्ध स्वभावका श्रद्धान, ज्ञान व चारित्र ही धर्म है। इस धर्मको पहचाने विना कभी कल्याण नहीं होसक्ता है। साधकको मन्त्रोंके द्वारा जप व ध्यान करते हुए धीरे २ आत्माके स्वरूपकी रमणतामें पहुँच जाना चाहिये। यह धर्म वर्तमानमें भी सुखदाई है। यह धर्म वास्तवमें वीतराग विज्ञानकी भूमिपर खड़ा है। शास्त्र पढना, भक्ति करना, जप करना, गुण गाना, संयम पालना, तप करना, इन सब क्रियाओंके सेवनका भाव यही है कि शुद्धात्माका मनन हो। शुद्धात्माके मनन विना अन्य सर्व क्रियाकाण्ड जप तप निरर्थक है। मुमुक्षु जीवको इस शुद्धात्मानुभवका ही दृढतासे अभ्यास करना चाहिये।

श्री देवसेनाचार्य योगसारमें कहते हैं—

जो अप्पाण झायदि संवेयण चेयणाइ उवजुत्तं। सो हवइ वीयराओ णिम्मल रयणत्तओ साहू ॥ ४४ ॥
दंसण णाण चरित्त जोई तस्सेह णिच्छयं भणिय। जो वेयइ अप्पाण सचेयण सुद्धभावट्ठं ॥ ४५ ॥

भावार्थ—जो स्वसंवेदन चेतनादि गुणोंसे युक्त आत्माको ध्याता है वही निर्मल रत्नत्रयमई साधु वीतरागी होजाता है। जो कोई आत्माको चेतन स्वरूप व शुद्धात्मामें बिराजित निश्चयसे देखता है या अनुभव करता है उसी जोगीके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र निश्चयसे कहे गये हैं।

समयपाहुड
॥३१८॥

(३८) हम गम्य वऊ फूलना गाथा ७४४ से ७५८ तक।

जिननन्द नन्द आनन्द मओ, जिन उवनउ सिद्धि सहाउ।
जिन समय संजुत्तो सरन मऊ, जिन दरसिउ ममल सहाउ ॥ १ ॥
हम गम्य वऊ हम विंदि वऊ, हम परमानन्द सहाउ।
हम नन्द आनन्दह नन्द मऊ, हम मुक्ति सिद्धि स सहाउ ॥ २ ॥
हम रंजन रमनह परम पऊ (आचरी)
जिन रमनह जोयो रंज मऊ, जिन न्यान विन्यानु संजुत्तु।
जिन अर्थति अर्थह रमन पऊ, जिन अमिय रमन दर्संतु ॥ ३ ॥ हम गम्य वऊ० ॥
भय पिपिय भव्वु तं रमन मऊ, तं अमिय रमन विहसंतु।
तं रंजन जोयो ममल पऊ, तं रंज रमन सिधि रत्तु ॥ ४ ॥ हम० ॥
तं न्यान सरूवे रूव मऊ, तं अमिय दिस्टि दर्संतु।
तं भय विनासु सहकार मऊ, तं रमन रंज सिधि रत्तु ॥ ५ ॥ हम० ॥
उववन उववन्नऊ न्यान मऊ, तं ममल न्यान सुइ उत्तु।
तं अमिय रसायन रंज मऊ, तं समय सिद्धि सम्पत्तु ॥ ६ ॥ हम० ॥
तं अष्यर सुर विंजन सहिओ, पद पर्म तत्तु दरसन्तु।
भय षिपिय भव्वु विन्यान मऊ, तं रमन मुक्ति संपत्तु ॥ ७ ॥ हम० ॥
तं पद अर्थह संजुत्त पऊ, तं अर्थति अर्थ संजुत्तु।
तं अमिय कमल जिन समय मऊ, तं रंज रमन सिव पंथु ॥ ८ ॥ हम० ॥

ममलपाहुड ॥३१९॥

तं समयह परिनै परिन मऊ, उत्पन् उवएस संजुत्तु ।
भय षिपिय अमिय रस ममल पऊ, तं जय जय रंज रमंतु ॥ ९ ॥ हम० ॥

तं समय सहाव सु ममल पऊ, सहयार न्यान संजुत्तु ।
तं अमिय पयोहर रमन पऊ, तं रंज कमल जिन उत्तु ॥ १० ॥ हम० ॥

अनयासह नन्तानन्त पऊ, तं नन्त न्यान दरसन्तु ।
भय षिपिय नन्त वीरज सहिओ, तं रंज रमन सुह नन्तु ॥ ११ ॥ हम० ॥

अन्मोय न्यान तं कमल पऊ, तं अमिय पयोहर रत्तु ।
तं रिस्टि इस्टि विन्यान पऊ, तं रमन रंज सिव संतु ॥ १२ ॥ हम० ॥

तं षिपिक भाव भय षिपिय मऊ, तं सल्य संक विलयन्तु ।
तं नन्त कम्म विलयन्तु सुइ, तं रमन रंज सिधि रत्तु ॥ १३ ॥ हम० ॥

तं मुक्ति ममल सुइ उवन पऊ, तं अमिय रमन रस जुत्तु ।
तं नन्त कम्मु विलयंतु सुई, तं रमन रंज विहसन्तु ॥ १४ ॥ हम० ॥

तं तारन तरन सहाउ मऊ, तं रमन वियान संजुत्तु ।
भय षिपिय रंज अन्मोय मऊ, सम समय सिद्धि सम्पत्तु ॥ १५ ॥ हम० ॥

अन्वय सहित अर्थ— जिन [illegible] नन्द आनन्द मओ) श्री जिनेन्द्र भगवान आनन्द स्वरूप हैं व आनन्दमें मगन हैं (जिन उवनउ सिद्धि सहाव) जिनके भीतर सिद्धात्माका स्वभाव प्रकाशित है (जिन समय सजुत्तो सरन मऊ) वे जिनेन्द्र स्वात्म रमणरूप चारित्रके धारी हैं, वे ही शरण स्वरूप हैं। उन्हींकी शरणमें जाना योग्य है (जिन दरसिउ ममल सहाउ) श्री जिनेन्द्रने शुद्ध स्वभावका साक्षात् अनुभव किया है ॥ १ ॥

(हम गम्य वऊ हम विंद वऊ) हम भी श्री जिनेन्द्रके समान ज्ञानगोचर हैं। हम भी स्वानुभवगोचर

हैं (हम परमानन्द सहाउ) हम भी परमानन्द स्वभावके धारी हैं (हम नन्द आनन्दह नन्द मऊ) हम अपने आनन्दमई स्वरूपमें मगन हैं (हम मुक्ति सिद्धि स सहाउ) हम ही मुक्ति स्वरूप हैं, हम ही सिद्ध स्वभावके धारी हैं। इसतरह एक साधकको द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा अपने आत्माका स्वरूप मनन करना चाहिये ॥२॥

(हम रजन रमनह परम पऊ) हम परम पदके भीतर रंजायमान हो रमण कर रहे हैं (जिन रमनह जोयो रज मऊ) श्री जिनेन्द्रने आनन्दमय होकर व अपनेमें रमण कर आपको देखा है (जिन न्यान विन्यानु संजुत्तु) वे जिनेन्द्र केवलज्ञानके धारी हैं (जिन अमिय रमन दर्सेतु) श्री जिनेन्द्र इसी बातको दिखलाते भी हैं कि आनन्दामृतमें रमण करो ॥ ३ ॥

(भय षिपिय भव्वु त रमन मऊ) जब भव्यजीव स्वात्माके स्वभावमें रमण करता हुआ तन्मय होजाता है तब सर्व भय नाश होजाता है (त अमिय रमन विहसतु) उसी आनन्दामृतके भीतर रमण कर प्रफुल्लित हो (त रजन जोयो ममल पऊ) जो निज स्वभावमें रजायमान होता है वह शुद्ध परमात्म-पदको देख लेता है (त रज रमन सिधि रत्त) वही आनन्दमें मगन जीव सिद्ध स्वभावमें रत होजाता है ॥ ४ ॥

(त न्यान सरूवे रूव मऊ) यह आत्मा ज्ञान स्वभावमें मगन है व ज्ञान-स्वरूप है (त अमिय दिस्टि दरसतु) यहीं वह दृष्टि या श्रद्धा दिखलाई पड़ती है जिससे आनन्दामृतका स्वाद आजावे (त भय विनास सहकार मऊ) वे ही सर्व भय रहित हैं यही अपने उद्धारके लिये सहकारी है (त रमन रज सिधि रत्तु) यही आनन्द मगन होकर सिद्ध स्वभावमें रत हैं, तन्मय हैं। भावार्थ—आत्माका शुद्ध स्वभाव सिद्धके समान है ॥५॥

(उववन दववन्त्रउ न्यान मऊ) इस आत्मामें निश्चयसे ज्ञानमई प्रकाश झलक रहा है (त ममल न्यान सुद्ध उत्तु) उसीको शुद्ध केवलज्ञान कहते हैं (त अमिय रसायन रंज मऊ) वह आत्मा निश्चयसे आनन्दामृत रसायनमें मगन रहता है (तं समय सिद्धि सपत्तु) ऐसा ही अनुभव करनेवाला आत्मा सिद्ध गतिको पाता है ॥६॥

(त अष्यर सुइ विंजन सहियो पद पमे तत्तु दरसतु) सुर व्यंजन अक्षरोंसे बनी हुई जिनवाणीके पदोंसे परमात्माका तत्व ही दिखलाया जाता है (भय षिपिय भव्वु विन्यान मऊ) वह तत्व निर्भय स्वरूप ज्ञानमई आदरके योग्य है (तं रमन मुक्ति सपत्त) जो कोई उस परम तत्वमें रमण करता है वह मुक्तिमें पहुँच जाता है ॥ ७ ॥

(त पद अर्थह सजुत्त पऊ) श्री जिनवाणीके पद, पद और अर्थ सहित हैं (त अर्थ ति अर्थ सजुत्तु) उनसे रत्न-

ममलपाहुड ॥३२१॥

प्रयमई आत्म-पदार्थका बोध होता है (तं अमिय कमल जिन समय मऊ) वह पदार्थ आनन्दामृतमय ह, कालके समान विकसित है, वही जिन स्वरूप है, वही आत्म-स्वरूपमय है (तं रज रमन 'सत्र पउ) वही आनन्दमें मगन स्वरूप है, वही मोक्षका मार्ग है ॥ ८ ॥

(त ममयह परिनै परिनपऊ) वह आत्मा अपने स्वरूपमें परिणमन करता है (उव्वन् उवएस सजुत्तु) अरहन्त केवलीमें स्वभावसे ही उपदेश होता है (भय षिपिय अमिय रस ममऊ पऊ) वह शुद्ध आत्मा सर्व भय रहित है, आनन्दामृत-रससे पूर्ण है, वही शुद्धपद है (त जय जय रंज रमंतु) वे अर्हत् अपने आनन्दमें रमण करते हैं इसीसे इन्द्रादिदेव उनकी जय बोलते हैं ॥ ९ ॥

(तं समय सहाव सु ममल पऊ) शुद्धपद आत्माका स्वभाव ही है (सहयार न्यान सजुत्तु) उस पदमें केवलज्ञान शोभायमान है (त अमिय पयोहर रमन पऊ) वही आनन्दामृतका समुद्र ह, वही स्वात्म रमणपद है (त रंज कमल जिन उत्तु) श्री जिनेन्द्रने उसीको प्रफुल्लित कमल कहा है ॥ १० ॥

(अवयासह नन्तानन्त पऊ) इस परमपदमें अनन्त गुणोंका अवकाश है (त नन्त न्यान दसंतु) वे अनन्त ज्ञानसे देखनेवाले हैं (भय षिपिय नन्त वीरज सहियो) वे निर्भय हैं, वे ही अनन्त वीर्यके धारी हैं (त रंज रमन सुइ नन्तु) वे अनन्त सुखके स्वादमें रमण कर रहे हैं। ऐसा शुद्ध अरहन्तकी आत्माका स्वरूप है ॥११॥

(अन्मोय न्यान त कमल पऊ) वे ही ज्ञानानन्दमय हैं, वे ही प्रफुल्लित कमल स्वरूप हैं (तं अमिय पयोहर रत्तु) वे ही आनन्दामृतके समुद्रमें मगन हैं (त रिस्टि इस्टि विन्यान मऊ) वे ही श्रेष्ठ हैं इष्ट हैं व विज्ञानमई हैं (त रमन रज सित्र सतु) वे ही आनन्दमें रमण करते हैं, वे ही शिव है या कल्याणरूप हैं, वे ही शांत स्वरूप हैं ॥ १२ ॥

(त पिपिय भाव मय पिपिय मऊ) वे क्षायिक भावोंके धारी हैं, वे परम अभय स्वरूप हैं (त सल्य सक विल्यतु) उनमें न कोई शल्य है न कोई शंकाएँ हैं (तं नन्त कम्म विलपत सुइ) उन्होंने स्वयं अनन्त कर्मोंका क्षय कर दिया है (तं रमन रंज सिधि रत्त) वे ही आनन्द मग्न हैं व सिद्ध स्वभावमें रत हैं ॥ १३ ॥

(त मुक्ति ममल सुइ उवन पऊ) वे ही मुक्ति स्वरूप हैं, वे ही रागादि मलरहित हैं, वे स्वयं प्रकाशरूप हैं (त अमिय रमन रस जुत्त) वे आनन्दामृत रसके स्थानमें लवलीन हैं (त नन्त कम्मु विल्यतु हुई) उन्होंने ही अनन्त-कर्मोंका क्षय कर दिया है। (त रमन रजविह सतु) हे भव्य ! उसी ही आनन्दकी रमणता करके प्रसन्न हो ॥१४॥

(तं तारन तरन सहाव मऊ) वे अरहन्त परमात्मा तारनतरन स्वभावके धारी हैं (तं रमन विवान संजुत) इनके पास स्वात्मरमण रूपी जहाज है (भय षिपिय रज अन्मोय मऊ) वे सर्व भय रहित हैं, वे आनन्दमें मगन हैं (सम समय सिद्धि संपत्तु) वे ही समताभावके धारी आत्मा हैं, वे ही सिद्धिको प्राप्त करते हैं ॥ १९ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें स्वामीने शुद्धात्माके रमणसे जो आनन्द होता है उसीकी महिमा गाई है। आत्माको इसी जीवनमें रहते हुए विकास भावका लाभ होता है। इसीको अरहन्तपद कहते हैं। अरहन्तमें परम तत्व जैसा जिनवाणीने बताया है वैसा झलक रहा है। वे सदा ही निज शुद्ध स्वरूपमें मग्न रहते हैं। वे परम वीतराग हैं। उनकी अपूर्व सुखशांति ही उनके पूर्वबद्ध अनन्तानन्त कर्मोंकी निर्जरा करनेवाली है। उनकी आत्मा कभी मुद्रित नहीं होती है वह ध्रुव कमलके समान सदा ही प्रफुल्लित हैं। वे साक्षात् शिवमार्ग हैं, वे ही एक जहाज हैं, वे अपने उपदेशसे अनेकोंको तारते हैं व आप तर जाते हैं, वे अनन्त गुणोंके धारी हैं, वे अनन्त सुखके समुद्र हैं, वे ही रत्नत्रय स्वरूप हैं। धर्मका वास्तविक लक्षण वहांपर घटित होता है। उन ही अरहन्त परमात्माके समान अपने आत्माको जानना चाहिये। जिनवाणी यह बताती है कि अपने शुद्धात्माको सच्चा श्रद्धान करो, उसीका सच्चा ज्ञान प्राप्त करो, उसीमें रमण करो, स्वात्मरमणता ही मोक्षमार्ग है। जो भव्यजीव इस तत्वको समझते हैं व निश्चिन्त होकर अपने आत्म-स्वरूपका मनन करते हैं, वे कर्म काटके अरहन्त परमात्मा फिर सिद्ध परमात्मा होजाते हैं।

धर्म या मोक्षमार्ग कहीं बाहर नहीं है आत्मा हीमें है व आत्मीक अनुभवसे ही वह प्राप्त होता है। योगसारमें श्री योगेन्द्रदेवने कहा है—

अरिहंतु वि सो सिद्ध फुडु सो आयरिउ वियाणि। सो उज्झावो सो जि मुणि णिच्छय अप्पा जाणि ॥ १०३ ॥

वज्जिय सयल वियप्पयहं परम समाहि लहंति। ज वेददि साणद फुडु सो सिवसुक्ख भणंति ॥ ९६ ॥

भावार्थ—निश्चयनयसे इसी अपने आत्माको ही अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधुजनो, जो सर्व विकल्प छोड़कर परम समाधिको प्राप्त करते हैं वे साधु हैं। जिस आत्मानन्दका अनुभव करते हैं उसे ही मोक्षका सुख कहते हैं।

(३९) न्यान अन्मोय पचीसी ७७९ से ७८४ तक।

उव उवन उवन पउ, उवनु रमै। उव उवन अन्मोय, स न्यानी समय समय ॥१॥
स्वामी देहाले सुइ सिद्धाले, भेउन रहै। जजाके अन्मोय स न्यानी मुक्ति लहै ॥२॥ (आचरी)
जैसे दिस्टि सहावे न्यानी इस्टि रमै। तैसे विंद विन्यान स न्यानी मुक्ति लहै ॥३॥ स्वामी०॥
जैसे इस्टि संजोए रिस्टि रिस्टि रमै। तैसे कमल अन्मोय स न्यानी मुक्ति गमै ॥४॥ स्वामी०॥
जैसे समय सहावे इस्टि सिस्टि गमै। तैसे विंद रमन न्यानी मुक्ति रमै ॥५॥ स्वामी०॥
जैसे उवन उवन दिस्टि समय समय तैसे तरन विवान अन्मोए मुक्ति रमै ॥६॥ स्वामी०॥
जैसे दिस्टि सहाव न्यानी सहै समय। तैसे तरन विवान अन्मोए मुक्ति रमै ॥७॥ स्वामी०॥
जैसे अवयास दिस्टि स न्यानी नंत गमै। तैसे तरन अन्मोय विंदे मुक्ति गमै ॥८॥ स्वामी०॥
जैसे न्यान अन्मोए दिस्टि षिपकु षिपै। तैसे कमल रमन न्यानी केवल लहै ॥९॥ स्वामी०॥
जैसे षिपक सु इस्टि स न्यानी मुक्ति रमै। तैसे तरन विवान अन्मोए सिद्धि गमै ॥१०॥ स्वामी०॥
जैसे मुक्ति सहावे न्यानी सुष्य रमै। तैसे तरन रमन विंदे मुक्ति गमै ॥११॥ स्वामी०॥
जैसे कमल रमन जिन उत्तु गमै। तैसे विंद रमन न्यानी मुक्ति गमै ॥१२॥ स्वामी०॥
जैसे उवन सहावे न्यानी तत्तु रमै। तैसे तरन अन्मोय स न्यानी अगम गमै ॥१३॥ स्वामी०॥
जैसे रयन रमन न्यानी रयन विलै। तैसे तरन अन्मोय स विंदे कम्मु गलै ॥१४॥ स्वामी०॥
जैसे जोति अन्मोय रमन जोति रमै। तैसे कमल विंद रस न्यानी मुक्ति गमै ॥१५॥ स्वामी०॥
जैसे रमन सहावे न्यानी सुर सुयं रमै। तैसे न्यान अन्मोय स न्यानी मुक्ति गमै ॥१६॥ स्वामी०॥

जैसे जलह सहावे वृषु वृद्ध करै । तैसे न्यान अन्मोय स न्यानी केवल सरै ॥१७॥ स्वामी०॥
जैसे सिद्ध सरूवे सिध सिद्ध गमै । तैसे तरन अन्मोय स न्यानी विंद रमै ॥१८॥ स्वामी०॥
जैसे विंजन रमन सुर सुयं गमै । तैसे विंद रमन तारन सहज रमै ॥१९॥ स्वामी०॥
जैसे मुक्ति सुभावे स न्यानी मुक्ति गमै । तैसे कमल रमन स न्यानी केवल रमै ॥२०॥ स्वामी०॥
जैसे ममल अन्मोए म न्यानी सिद्धि गमै । तैसे तरन विवान अन्मोये विंद रमै ॥२१॥ स्वामी०॥
जैसे षिपक सुभावे स न्यानी मुक्ति गमै । तैसे कमल विंद अन्मोये मुक्ति रमै ॥२२॥ स्वामी०॥
जैसे न्यान विन्यान अन्मोए मुक्ति गमै । तैसे तरन अन्मोए स न्यानी विंद रमै ॥२३॥ स्वामी०॥
जैसे समय सहावे न्यानी केवल रमै । तैसे कमल रमन जिनु अगम गमै ॥२४॥ स्वामी०॥
जैसे सुयं रमन जिन अमिय रमै । तैसे तरन अन्मोए स विंदे कमल समय ॥२५॥ स्वामी०॥
जं तारन तरन न्यानी अमिय गमै । तं तरन स विंद कमल जिन सिद्ध रमै ॥२६॥ स्वामी०॥

अन्वय सहित अर्थ—(उव उवन उवन पउ उवन रमै) अब सम्यग्दर्शनका उदय हुआ है उसीमें रमण हो-रहा है (उव उवन अन्मोय स न्यानी समय समय) ज्ञानी जीव उसी सम्यक्त भावमें आनन्द मान रहे हैं। वे ज्ञानी समय समय उसीमें मगन हैं या सम्यक्तभावमें आनन्द मानना सो ही आत्मीक स्वभावमें आचरण है ॥१॥

(स्वामी देहाले सुइ सिद्धाले भेउ न रहै) जैसे भगवान परमात्मा सिद्धालयमें विराजमान हैं वैसे इस शरीररूपी मंदिरमें आत्माराम देव हैं, कोई भेद निश्चयनयसे नहीं है (ज जाने अन्मोय स न्यानी मुक्ति लहै) जो कोई इस सिद्ध स्वभावी आत्माके रमणमें आनन्द मानता है वही ज्ञानी मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥ २ ॥

(जैसे दिस्टि सहावे न्यानी इस्टि रमै) जैसे २ ज्ञानी सम्यग्दर्शनके स्वभावसे अपने इष्ट आत्मीक भावमें रमण करता है (तैसे विंद विन्यान स न्यानी मुक्ति लहै) वैसे २ यह आत्मज्ञानी आत्माका अनुभव करता हुआ मुक्तिकी तरफ बढ़ता जाता है ॥ ३ ॥

ममलपाहुड
॥३२५॥

(जैसे इस्टि सजोए दिस्टि दिस्टि रमै) जैसे २ परम दुष्ट आत्मारामके संयोगसे उत्तम २ प्रकारसे रमण करता जाता है (तैसे कमल अन्मोय स न्यानी मुक्ति गमै) वैसे २ कमल समान प्रफुल्लित आत्मामें आनन्द होता हुआ ज्ञानी मुक्तिकी ओर बढ़ता जाता है ॥ ४ ॥

(जैसे समय सहावे इस्टि सिस्टि गमै) जैसे २ आत्माके स्वभावमें श्रेष्ठ प्रेम बढ़ता जाता है (तैसे विंद रमन न्यानी मुक्ति रमै , वैसे वैसे आत्मानुभवमें रमण करता हुआ ज्ञानी जीव मुक्तिके स्वभावमें रमण करता रहता है ॥ ५ ॥

(जैसे उवन उवन दिस्टि समय समय) जैसे जैसे समय २ आत्मानुभवकी दृष्टि विशेष जमती जाती है (तैसे तरन विवान अन्मोए मुक्ति रमै) वैसे वैसे तारनतरन अरहन्तके स्वभावमें आनन्द अनुभव करता हुआ मुक्तिके भीतर रमण करता है ॥ ६ ॥

(जैसे दिस्टि सहाव न्यानी सहै समय) जैसे जैसे ज्ञानी आत्मदृष्टिके स्वभाव द्वारा आत्मामें विजय प्राप्त करता जाता है (तैसे तरन विवान अन्मोय मुक्ति रमै) वैसे वैसे तारणतरण अरहन्तके स्वभावमें आनन्दित होता हुआ मुक्तिमें रमण करता है ॥ ७ ॥

(जैसे अवयाम दिस्टि स न्यानी नन्त गमै) जैसे जैसे आकाश समान आत्मामें दृष्टि रखता हुआ ज्ञानी अनन्त गुणधारी आत्माका अनुभव करता है (तैसे तरन अन्मोए विन्दे मुक्ति गमै) वैसे वैसे तारणतरण आत्मामें आनन्दका अनुभव करता हुआ मुक्तिकी ओर बढता जाता है ॥ ८ ॥

(जैसे न्यान अन्मोए दिस्टि षिपक षिपै) जैसे २ आत्मज्ञानमें आनन्द अनुभव करती हुई दृष्टि क्षायिक भावरूप होती हुई कर्मोंको क्षय करती जाती है, क्षायिक सम्यक्तके साथ २ चारित्र बढता जाता है वैसे २ कर्मोंकी अधिक २ निर्जरा होती जाती है (तैसे कमल रमन न्यानी केवल लहै) वैसे वैसे कमल समान विकसित आत्मामें रमण करता हुआ ज्ञानी केवलज्ञानको प्राप्त कर लेता है ॥ ९ ॥

(जैसे षिपक सु इस्टि स न्यानी मुक्ति रमै) जैसे २ क्षायिक भाव धारी ज्ञानी परमप्रिय मुक्तिके स्वभावमें रमण करता है (तैसे तरन वियान अन्मोप सिद्धि गमै) वैसे २ तारणतरण अरहन्त आनन्दमग्न होते हुए सिद्ध-गतिको चले जाते हैं। भावार्थ—अरहन्तपदके रमणसे सिद्धपद होता है ॥ १० ॥

(जैसे मुक्ति सहावे न्यानी सुष्य रमै) जैसे २ ज्ञानी मुक्तिके स्वभावमें ठहरकर आत्मिक सुखमें रमण करता जाता है (तैसे तरन रमन विंदे मुक्ति गमै) वैसे २ तरनेवाला आत्मा आत्मीक स्वभावके रमणसे आनन्द अनुभव करता हुआ मुक्तिका अनुभव करता है ॥ ११ ॥

(जैसे कमल रमन जिन उत्त गमै) जैसे२ विकसित कमल समान आत्मामें रमण करता हुआ उस पदको जानता है, जिस शुद्ध पदका माहात्म्य श्री जिनेन्द्रने कहा है (तैसे विंद रमन न्यानी मुक्ति गमै) वैसे २ आत्मानुभवमें रमण करता हुआ ज्ञानी मुक्तिके स्वभावको पहुँचता जाता है ॥ १२ ॥

(जैसे उवन सहावे न्यानी तत्तु रमै) जैसे२ अपने प्रकाशमान स्वभावमें रहकर ज्ञानी जीव आत्म तत्वमें रमण करता है (तैसे तरन अन्मोय स न्यानी अगम गमै) वैसे २ तरण स्वभावी ज्ञानी आनन्द-मग्न होता हुआ इन्द्रिय व मनसे अगोचर आत्माका अनुभव करता है ॥ १३ ॥

(जैसे रयन रमन न्यानी रयन विलै) जैसे जैसे ज्ञानी जीव रत्नत्रयमें रमण करता हुआ रत्नत्रय स्वभावी आत्मामें लय होता है अर्थात् निर्विकल्प समाधि भावको प्राप्त कर लेता है (तैसे तरन अन्मोय स विंदे कम्मु गलै) वैसे २ तरणस्वभावी आत्मामें आनन्द लेता हुआ आत्मानुभवके प्रतापसे कर्मोंका क्षय करता है ॥१४॥

(जैसे जोति अन्मोय रमन जोति रमै) जैसे२ आत्मज्योतिके आनन्दमें मगन होकर आत्मज्योतिसे तन्मय होजाता है (तैसे कमल विंद रस न्यानी मुक्ति गमै) विकसित कमल समान आत्माका स्वाद लेता हुआ ज्ञानी मुक्तिकी ओर जाता है ॥ १५ ॥

(जैसे रमन सहावे न्यानी सुर सुय रमै) जैसे २ ज्ञानी साधु आत्म-रमण स्वभावी आत्मामें स्वयं स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा रमण करता है (तैसे न्यान अन्मोय स न्यानी मुक्ति गमै) वैसे २ ज्ञानी ज्ञानानन्दमें मगन होता हुआ मुक्तिकी ओर जाता है ॥ १६ ॥

(जैसे जलह सहावे वृषु वृद्ध करै) जैसे पानीका स्वभाव ही ऐसा है कि जब वृक्षमें पड़ेगा तब उसको बढावेगा (तैसे न्यान अन्मोय स न्यानी केवल सरै) वैसे ही ज्ञानानन्दकी मगनता जितनी२ होगी उतना२ ही केवलज्ञानकी तरफ बढ़ता जायगा। ज्ञानावरणीय कर्मका क्षय होकर केवलज्ञानका प्रकाश स्वात्मरमणसे प्राप्त स्वात्मानन्दके भोगसे ही होता है ॥ १७ ॥

(जैसे सिद्ध सरूवे सिध सिद्ध गमै) जैसे सिद्ध भगवान अपने सिद्ध स्वभावसे ही सिद्ध गतिमें विरा-

जमान रहते हैं (तैसे तरन अन्मोय स न्यानी विंद रमै) वैसे ही ज्ञानी अपने तरण स्वभावमें आनन्दित होता हुआ स्वात्मानुभवमें रमण करता रहता है ॥ १८ ॥

(जैसे विंजन रमन सुर सुय गमै) जैसे क, ख, ग आदि व्यंजनोंके साथ अ आ आदि स्वर स्वयं मिलकर उसके साथ रम जाते हैं—परस्पर तन्मय होजाते हैं (तैसे विंद रमन तारन सहज रमै) वैसे ही यह तारणतरण आत्मा आप हीमें स्वभावसे रमता हुआ स्वात्मानुभवमें तन्मय होजाता है ॥ १९ ॥

(जैसे मुक्ति सुभावे स न्यानी मुक्ति गमै) जैसे ज्ञानी मुक्ति स्वभावधारी आत्मामें ठहरकर मुक्तिका अनुभव करता है (तैसे कमल रमन स न्यानी केवल रमै) वैसे ही विकसित कमल समान शुद्धात्मामें रमण करता हुआ वह ज्ञानी केवलज्ञानमें रमण करता है ॥ २० ॥

(जैसे ममल अन्मोए स न्यानी सिद्धि गमै) जैसे शुद्धोपयोगमें आनन्द लेता हुआ ज्ञानी मुक्तिका अनुभव करता है (तैसे तरन विनान अन्मोये विंद रमै) वैसे ही तारणतरण आत्मामें आनन्द लेता हुआ ज्ञानस्वभावमें ज्ञानी रमण करता है ॥ २१ ॥

(जैसे षिपक सुभावे स न्यानी मुक्ति गमै) जैसे क्षायिक सम्यक्ती क्षायिक ज्ञानी व क्षायिक चारित्री होकर स्वभावसे ही ज्ञानी मुक्तिका अनुभव करता है (तैसे कमल विंद अन्मोये मुक्ति रमै) वैसे ही ज्ञानी प्रफुल्लित कमल समान आत्मामें मगन होकर आत्मानन्द लेता हुआ मुक्ति स्वभावमें रमण करता है ॥ २२ ॥

(जैसे न्यान विन्यान अन्मोए मुक्ति गमै) जैसे स्वसंवेदन ज्ञानमें आनन्द लेता हुआ ज्ञानी मुक्तिका अनुभव करता है (तैसे तरन अन्मोए स न्यानी विंद रमै) वैसे ही ज्ञानी तरण स्वभावी आत्मामें आनन्द लेता हुआ ज्ञान चेतनामें रमण करता है ॥ २३ ॥

(जैसे समय सहावे न्यानी केवल रमै) जैसे ज्ञानी शुद्धात्माके स्वभावमें ठहरकर केवलज्ञानमें रमण करता है (तैसे कमल रमन जिनु अगम गमै) वैसे ही आत्मारूपी कमलमें रमण करता हुआ वीतरागी जिन इंद्रियातीत आत्माका अनुभव करता है ॥ २४ ॥

(जैसे सुयं रमन जिन अमिय रमै) जैसे जिनेन्द्र आपमें रमण करते हुए आनन्दामृतका स्वाद लेते हैं (तैसे तरन अन्मोए स विंदे कमल ममय) वैसे ही तरण स्वभावके आनन्दका अनुभव करता हुआ यह आत्मा कमलके समान विकसित रहता है ॥ २५ ॥

(ज तारनतरन स न्यानी अमिय रमै) जैसे तारणतरण ज्ञानी आनन्दामृतका अनुभव करता है (तं तरन स विंद कमल जिन सिद्ध रमै) वैसे ही तरण स्वभावी कमल समान विकसित जिनेन्द्र ज्ञानका स्वाद लेते हुए सिद्ध स्वभावमें रमण करते हैं ॥ २६ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें स्वामीने यह बात झलकाई है कि सम्यग्दर्शनके प्रकाशसे ही सिद्धावस्था होती है। सम्यक्तका अनुभव वही आत्माका अनुभव है, वही आत्माके आनन्द गुणका अनुभव है। आत्मानुभवकी शक्ति सम्यक्त गुणके प्रगट होते ही होती है। जिससमय सम्यक्ती महात्मा आत्मानुभव करता है उससमय वहां रत्नत्रय धर्म है व मोक्षका मार्ग है। शुद्धात्माका श्रद्धान सम्यक्त है, उसीका ज्ञान सम्यग्ज्ञान है, उसीमें मगन होना सम्यक्चारित्र है। शुद्धात्मानुभवमें सदा ही आनन्दका अनुभव होता है। यह आनन्दानुभव ही वह ध्यानकी ज्वाला है जो कर्मोंको जलाती है। उसी आनन्दानुभव रूपी जलके सिंचनसे धर्मवृक्ष बढ़ता जाता है, बाधक कर्मोंका क्षय होकर आत्माका गुण विकसित होता जाता है। गुणस्थानकी परिपाटीसे भावोंकी शुद्धता बढती जाती है और यह सम्यक्ती साधु होकर धर्मध्यानकी पूर्णता करता है। फिर क्षायिक सम्यक्ती तद्भव मोक्षगामी अन्तरात्मा क्षपकश्रेणीपर आरूढ होकर आत्मानन्दमें रमण करता हुआ मोहका क्षय करता है। फिर शेष तीन घातीय कर्मोंका क्षय कर केवलज्ञानी अरहंत होजाता है। अरहंत भगवान तारणतरण हैं। आप तरेंगे, अनेकोंको भवसमुद्रसे तारेंगे। यह अरहन्त भी स्वात्मानन्दको लेते रहते हैं। अरहन्त अवस्था होनेके पहले श्रुतज्ञानके आधारसे आत्मानन्दका भोग था। अब केवलज्ञानके आधारसे प्रत्यक्ष आत्माका साक्षात्कार होकर अनन्त आनन्द बहुत ही स्वच्छ प्रगट होजाता है। यही अरहन्त इसी आत्मानन्दसे शेष अघातीय कर्मोंका भी क्षय कर सिद्ध परमात्मा होजाते हैं तब भी वे स्वात्मानन्दका भोग करते हैं। वास्तवमें आत्मानन्द मोक्षमार्ग है, आत्मानन्द ही मोक्ष है। अपने ही भीतर अपने आत्माको सिद्ध समान ध्याना योग्य है। जैसा ध्यावे वैसा होजावे। जैनसिद्धांत अमृतकी घूंट है, सदा ही आनन्दप्रद है, इसीका मनन करना एक मुमुक्षुका परम धर्म है।

योगसारमें श्री योगेन्द्रदेव कहते हैं—

जेहउ सुद्ध आयासु जिय तेहउ अप्पा उत्तु। आयासु वि जड जाणि जिय अप्पा चेयणुवन्तु ॥ ५८ ॥

अप्पय अप्पु मुणन्तयहं किण्णेहा फलु होइ। केवलणाणु विपरिणवइ सासय सुक्खु लहेइ ॥ ६१ ॥

भावार्थ—जैसे शुद्ध आकाश है वैसा ही यह निर्मल आत्मा कहा गया है। आकाश चेतना रहित जड़ है, आत्मा चेतना सहित जड़ नहीं है। आत्माको आत्मा रूप अनुभव करते हुए वहां क्या क्या अपूर्व फल नहीं प्राप्त होते हैं। अन्तमें केवलज्ञान होजाता है और यह आत्मा अविनाशी अनन्त सुखका लाभ कर लेता है।

(४०) अचष्य सब्द गाथा ७८९ से ८०८ तक।

अचष्यं उवन सहावं, सब्दं सहकार ममल उप्पत्ती।
ममलं ममल स उत्तं, कमल सहावेन केवलं उत्तं॥ १॥
अचष्यं उवन सहावं, उवन संजोय न्यान विन्यानं।
हिययार रमन सर्वन्ये, कमल संजोय ममल न्यानं च॥ २॥
अचष्य सुयं सु उवनं, उववन उववन हियार संजुत्तं।
सिद्धं सिद्ध सरूवं, न्यान विन्यान ममल जिन जिनयं॥ ३॥
अचष्यं अचष्य उवनं, असब्द सहकार सुयं जिन जिनयं।
कमल ममल जिन उत्तं, सिद्ध सहकार उवन धुव ममलं॥ ४॥
अचष्यं असब्द सहावं, दिस्टं अदिस्ट उवन सुइ उवनं।
कमल गिरा सिय सहियं, धुव उवनं उवन कमल वयनं च॥ ५॥
अचष्यं इस्टि सु उवनं, इस्टं इस्टति उवन सुइ रमनं।
इस्टं उवन संजोयं, उवन सहावेन सिद्ध धुव वयन॥ ६॥
अचष्यं अदर्सन दर्स, इस्टं दर्सति न्यान सद्भावं।
इस्ट दर्स सुइ उवनं, उवनं संजोय सिद्ध धुव वयनं॥ ७॥

अचष्ये रमन सुइ रमनं, हिय उववन्न रंज जिन रमनं ।
उववन रमन जिन रमनं, सिव धुव संजोय अमिय सुइ वयनं ॥ ८ ॥
अचष्यं उवन सहावं, सिय सहकार धुव वयन ममलं च ।
ममलं उवन उवएसं, सिय सहकार सिद्ध धुव ममलं ॥ ९ ॥
सव्द सुयं सुइ उवनं, रमनं रमिऊन ममल न्यानं च ।
रसिओ सव्द जिनुत्तं, सिय सहकार ममल धुव रमनं ॥ १० ॥
सव्दं कसनि सहावं, कमल सहावेन सिद्धि धुव रमनं ।
कमल कलिय जिन वयनं, धुव सव्दं च कसनि ममलं च ॥ ११ ॥
सव्दं तं तिय अर्थं, तत्वं सहकार उवन उवनं च ।
उवनं उवन स उत्तु, सुइ उवनं कार्ज च कलिय जिन वयनं ॥ १२ ॥
तत्काल सव्द सुइ उवनं, तत्कालं रमन न्यान विन्यानं ।
रंज रमन जिन उत्तं, नंद आनन्द सिद्धि सम्पत्तं ॥ १३ ॥
सव्दं विक्त सरूवं, स्फटिक सुद्ध सुइ उवन ममलं च ।
उवन उवन सुइ रमनं, सिद्ध धुव सहकार मुक्ति गमनं च ॥ १४ ॥
सव्दं सुयं सुइ रमनं, सव्दं विन्यान न्यान उत्तं च ।
जिनपति जिनय सरूवं, सिद्ध धुव परिनामु केवलं उत्तं ॥ १५ ॥
असव्द सव्द स उत्तं, असव्द विलयंति सव्द जिन उत्तं ।
सव्द सुयं सुइ उवनं, सव्दं संजोय ममल न्यानं च ॥ १६ ॥

ममलपाहुड
॥३२१॥

सरं सहाव अचष्यं, सव्दं संजोय कमल जिन उत्तं ।
सव्द विंद सर उवनं, अर्क सव्दं च चष्य अचष्यं ॥ १७ ॥

असव्द सर संजोय, अदिस्ट अनश्रुत सव्द जिन उत्तं ।
गम अगमं सुइ रमनं, रमनं सिय रमन कमल जिन वयनं ॥ १८ ॥

गुपित सव्द जिन उत्तं, गुपितं अन्मोय गुपित सुइ उवनं ।
दिप्त दिस्टि सुइ सव्दं, सहकारं संजोय सव्द पिउ वयनं ॥ १९ ॥

सव्द समय मम उवनं, उवनं सुर सव्द न्यान विन्यानं ।
न्यान रंज सुइ रमनं, नन्द आनन्द जिनय जिन उवनं ॥ २० ॥

सरं सहाव सु ममलं, ममलं सहकार सुयं सुइ कमलं ।
कमल कलिय जिन उत्तं, कमल सहकार केवलं ममलं ॥ २१ ॥

अचष्यं सुभाव स उत्तं, अचष्ये उव उवन लष्य लष्यं च ।
गम अगम्य जिन वयनं, जिन उत्तं उवन अचष्य ममलं च ॥ २२ ॥

अचष्यं सुयं सुइ उवनं, उवन सहावेन कमल सुइ सुवनं ।
सुयं सुयं सुइ उवनं, जिन उत्तं सहकार मुक्ति गमनं च ॥ २३ ॥

तारन तरन सु रमनं, रंज रमन नन्द रयन संजुत्तं ।
विवान उवन सुइ उत्तं, विवान तरन सिद्धि सम्पत्तु ॥ २४ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(अचष्य उवन सहावं) इंद्रियोंसे अगोचर आत्मा प्रकाश स्वभाव है (सव्द सहकार ममल उप्पत्ती) ॐ ह्रीं आदि शब्दोंके जप व ध्यान द्वारा इस आत्मामें शुद्ध भावका प्रकाश होता है (ममलं ममल स उत्त) जिसमें कोई रागद्वेष मल नहीं है उसको मल रहित शुद्ध करते हैं (कमल सहावेन केवल उवं)

जो आत्मा अपने गुणोंमें पूर्ण प्रकारसे विकसित होता है वह कमलके स्वभावके समान होजाता है। उस अरहन्तको केवली कहते हैं ॥ १ ॥

(अचष्य उवन सहाव) आत्मा प्रकाश स्वभाव है (उवन सजोय न्यान विन्यान) आत्माके प्रकाश या आत्मानुभवके संजोगसे ज्ञान विज्ञानका विकास होता है (हिययार रमन सर्वन्ये) आत्मानुभव हितकारी है इसीसे सर्वज्ञ स्वभावी आत्मामें रमण होता है (कमल सजोय ममल न्यानं च) इसीसे कमलवत् अरहन्त होजाता है। वहां निर्मल शुद्ध ज्ञान विराजता है । २ ॥

(अचष्य ध्रुय च उवन) आत्मा स्वयं ही प्रकाशमान होजाता है। यह स्वयं मिथ्यादृष्टीसे सम्यग्दृष्टी होजाता है (उववन उववन हियार सजुत्त) सम्यग्दर्शनका प्रकाश परम हितकारी है (सिद्ध सिद्ध सरूव) सम्यग्दर्शनके द्वारा आत्माका सिद्ध स्वरूप सिद्ध किया जाता है (न्यान विन्यान ममल जिन जिनय) इसीसे शुद्ध केवलज्ञान होता है। इसीसे कर्ममलरहित होता है। इसीसे कर्मोंको जीतकर जिन होता है ॥ ३ ॥

(अचष्य अचष्य उवन) आत्मासे ही आत्माका प्रकाश होता है (अषष्ट सहकार सुयं जिन जिनय) शब्दोंके द्वारा जब शब्द रहित होजाता है, आप आप ही आत्मामें लीन होजाता है तब यह स्वयं कर्मोंको जीतकर जिन होजाता है। भावार्थ—आत्मानुभव हीसे कर्मोंकी निर्जरा होती है (कमल ममल जिन उत्तं) घातीय कर्मोंके क्षयसे यह आत्मा शुद्ध कमलवत् विकसित व जिन कहलाता है (सिद्ध सहकार उवन धुव ममल) फिर यह सिद्ध होजाता है तब सदा ही ध्रुव रूपसे निर्मल या शुद्ध बना रहता है ॥ ४ ॥

(अचष्य अषष्ट सहावं) आत्मा शब्दोंके द्वारा नहीं जाना जाता है किन्तु जब शब्दोंका विचार छोड़कर अपने आपमें लीन हुआ जाता है तब ही आत्माका अनुभव या स्वाद आता है (दिस्टं अदिस्ट उवन सुइ उवन) यह आत्मा जो इंद्रियोंसे नहीं दीखता है ज्ञानद्वारा देखनेमें आता है, यह आपसे ही आपको प्रकाश करता है (कमल गिरा सिय सहिय) जब यह कमलवत् अरहंत होजाता है तब उनकी शुद्ध वाणी प्रगट होती है (धुव उवन उवन कमल वयन च) अरहंतका आत्मा ध्रुव रूपसे प्रकाशित होजाता है, कमलके समान झलक जाता है, उसीमें वाणीका प्रकाश होता है ॥ ५ ॥

(अचष्य इस्ट सु उवन) आत्मा परम प्रिय प्रकाश रूप है (इस्टं इस्टंति उवन सुइ रमनं) यह अपने ही इष्ट स्वभावके साथ जब प्रेमी होजाता है तब यह स्वयं अपने प्रकाशमें रमण करने लगता है (इस्ट उवन सजोय)

ममलपाहुड ॥१३३॥

आत्माका हित अपने ही प्रकाशका संजोग है (उवन सहावेन सिद्ध धुव वयनं) इस अपने ही प्रकाशसे यह आत्मा स्वयं सिद्ध या ध्रुव होजाता है ऐसा जिनेन्द्रका वचन है ॥ ६ ॥

(अचष्ये अदर्सन दर्सं) यह आत्मा अपने आपको देखता है। यह आत्मा इंद्रियोंके द्वारा देखनेमें नहीं आता है (इस्ट दर्सति न्यान सदभाव) यह अपने हितकारी सम्यग्ज्ञानको या आत्मज्ञानको देखता है (इस्ट दर्स सुइ उवन) अपने इष्टको देखना सो ही आत्माका प्रकाश है (उवन सजोय सिद्ध धुव वयन) उसी आत्म प्रकाशके द्वारा यह सिद्ध या ध्रुव होजाता है ऐसा जिनेन्द्रका वचन है ॥ ७ ॥

(अचष्ये रमन सुइ रमन) आत्मामें रमण करना सो ही आत्मानुभव है (हिय उववन्न रज जिन रमन) आत्मानुभव ही स्वात्म हितका प्रकाश है, यही आनन्दमय जिन स्वभावमें रमण है (उववन रमन जिन रमन) आत्मप्रकाशमें रमना सो ही जिन स्वभावमें रमना है (सिव धुव संजोय अमिय सुइ वयन) इसीसे अविनाशी शिवरूप मोक्षका लाभ होता है जो आनन्दमय है ऐसा जिनेन्द्रका वचन है ॥ ८ ॥

(अचष्य उवन सहावं) आत्मा प्रकाश स्वभावका रखनेवाला है (सिव सहकार धुव वयन ममल च) इसीके शुद्ध प्रकाशकी सहायतासे अविनाशी अरहन्त पद प्रगट होता है जिनकी वाणी शुद्ध प्रगट होती है (ममलं उवन उवएसं) उस वाणी द्वारा आत्माकी शुद्धि करनेका उपदेश प्राप्त होता है (सिव सहकार सिद्ध धुव ममल) शुद्धोपयोगके द्वारा ही अविनाशी शुद्ध सिद्धपदका लाभ होता है ॥ ९ ॥

(सव्द सुय सुइ उवनं) श्री अरहन्त भगवानकी वाणी स्वयं ही प्रगट होती है, अरहन्तकी इच्छा विना नामकर्मके उदयसे व भव्य जीवोंके पुण्यके उदयसे वाणीका प्रकाश होता है (रमनं रमिऊन ममल न्यानं च) जिस रमणीक वाणीमें रमण करनेसे ज्ञानकी निर्मलता होती है (रसिओ सव्द जिनुत्तं) जिनेन्द्र द्वारा कथित शब्द अमृतरससे पूर्ण होते हैं (सिव सहकार ममल धुव रमनं) इस शुद्ध वाणीकी सहायतासे शुद्ध व अविनाशी आत्माके स्वभावमें रमण होता है ॥ १० ॥

(सव्द कमनि सहाव) शब्दोंके द्वारा कर्मोंका नाश होता है, जब परमात्मा वाचक शब्दोंके द्वारा मनन करनेसे व ध्यान करनेसे वीतराग भाव पैदा होजाता है तब कर्मोंकी निर्जरा होती है (कमल सहावेन सिद्धि धुव रमन) जब अघातीय कर्मोंके क्षयसे कमल समान अरहन्त पद प्रगट होजाता है तब अरहन्त परमात्मा अविनाशी सिद्ध भावमें रमण करते हैं (कमल कलिय जिन वयनं) कमल समान आत्मामें तल्लीन

श्री जिनेन्द्र द्वारा वाणीका प्रकाश होता है (धुव सव्द न कसनि ममल च) उन शब्दोंके द्वारा कर्मोंका क्षय होता है तब आत्मा कर्ममल रहित होकर अविनाशी भावमें जमा रहता है ॥ ११ ॥

(सव्द त तिय अर्थ) शब्दोंके द्वारा रत्नत्रयमई पदार्थका बोध होता है (तत्व सहकार उवन उवन च) आत्म-तत्वके मनन द्वारा आत्माका प्रकाश होता है (उवन उवन स उत्तु) उसी प्रकाशको तत्वप्रकाश कहते हैं (सुइ उवनं कार्जे च कलिय जिन वयन) उसी आत्म प्रकाशसे स्वयं कारण कार्यरूप होजाता है। अर्थात् आत्मा परमात्मा अरहन्त होजाता है तब उनकी दिव्यवाणीका प्रकाश होता है ॥ १२ ॥

(तत्काल सव्द सुइ उवनं) जिस समय दिव्यवाणीका प्रकाश अरहन्त भगवानके होता है (तत्काल रमन न्यान विन्यान) उस समय भी वे अरहन्त अपने ज्ञानस्वभावमें रमण करते रहते हैं। (रंज रमन जिन उत्त) जिनेन्द्रको आनन्द स्वभावमें रमण करनेवाला कहा गया है (नन्द आनन्द सिद्धि सपत्तं) वे अरहन्त भगवान निजानन्दमें मगन होते हुए सिद्धगतिको प्राप्त कर लेते हैं ॥ १३ ॥

(सव्द विक्त सरूव) भगवानकी वाणीके शब्दोंके द्वारा आत्माका स्वरूप प्रगट होता है। जो वाणीको सुनकर मनन करते हैं उनको आत्माका स्वरूप झलक जाता है (स्फटिक दृष्ट सुइ उवन ममलं च) उनको अनुभवमें आता है कि आत्माका स्वभाव स्फटिकमणिके समान शुद्ध प्रकाशरूप सर्व रागादि मलसे रहित है (उवन उवन सुइ रमन) उसी उदयरूप प्रकाशमें जो स्वयं रमण करते हैं अर्थात् शुद्धात्माका अनुभव करते हैं (सिद्ध धुव सहकार मुक्ति गमन च) वे उस आत्मानुभवके प्रभावसे अविनाशी सिद्ध भावको प्राप्त करके मोक्ष पहुँच जाते हैं ॥ १४ ॥

(सव्द सुयं सुइ रमनं) जिनवाणीका यह उपदेश है कि आपसे ही आपमें रमण करना चाहिये (सव्द विन्यान न्यान उत्त च) जिनवाणी बताती है कि भेदविज्ञानसे आत्मानुभव होता है (जिनपति जिनप सरूव) इसी आत्मानुभवसे कर्मोंको जीतकर आत्मा जिनेन्द्र स्वरूप होजाता है (सिद्ध धुव परिनामु केवल उत्त) तब उसको सिद्ध, ध्रुव, शुद्ध परिणमनशील व केवली कहते हैं ॥ १५ ॥

(असव्द सव्द स उत्त) वह दिव्यवाणी शब्द रहित आत्माको झलकाती है (असव्द विलयति सव्द जिन उत्त) जब शब्द रहित आत्मामें लयता प्राप्त होती है तब जिन कथित वाणीका विचार नहीं रहता है (सव्द सुयं सुइ उवनं) शब्दोंके द्वारा जो भाव है सो स्वयं प्रकाशमान रहता है अथवा शुक्लध्यानमें अबुद्धिपूर्वक

शब्दकी सहायता रहते हुए भी शुद्ध भाव बना रहता है (सब्द संजोय ममल न्यान च) शब्दकी सहायतासे अर्थात् द्वितीय शुक्लध्यानसे जहां शब्दका आलम्बन है या श्रुतज्ञानका आलम्बन है, केवलज्ञानका लाभ होजाता है ॥ १६ ॥

(सरं सहाव अचष्यं) आत्मा सरोवरके समान निर्मल ज्ञान जलसे भरा है (सब्द सजोय कमल जिन उत्त) शब्दोंके आलम्बन द्वारा उसी सरोवरमें श्री जिनेन्द्र कमलका प्रकाश होता है ऐसा कहा गया है। अर्थात् आत्मामें स्वयं ही अरहन्तपद झलक जाता है (सब्द विंद सर उवनं) शब्दोंके द्वारा स्वात्मानुभवरूपी सरोवर प्रगट होजाता है। जब आत्मा आत्मानन्दमें मगन होता है तब धारावाही अमृतका सरोवर ही बन जाता है (अर्क सब्द न चष्य अचष्यं) जिससे आत्मारूपी कमलका विकाश हो वे शब्द–सूर्यके समान हैं। इन इंद्रिय द्वारा ग्राह्य शब्दके द्वारा इंद्रियातीत आत्माका अनुभव होजाता है। भगवानकी दिव्यवाणीकी अपार महिमा है ॥ १७ ॥

(असब्द मा सजोयं) जिनसे शब्द रहित निश्चल निर्मल ज्ञान जलसे पूर्ण आत्मारूपी सरोवरका लाभ होता है (अदिस्ट अश्रुत सब्द जिन उत्त) वे जिनवाणीके शब्द हैं जिनको कभी भाव सहित न सुना गया था न उनका मनन किया गया था। अर्थात् जिनवाणीको जो भाव सहित सुनता है व उसका मनन करता है उसको अवश्य आत्माका लाभ होता है (गम अगम सुइ रमनं) अनुभवगम्य आत्मामें तन्मय होना ही रमण है (रमनं सिय रमन कमल जिन वयन) उसी आत्म-रमणसे शुद्ध भावमें रमण होता है व कमल समान अरहन्तपद प्रगट होता है ऐसा जिन वचन है ॥ १८ ॥

(गुपित सब्द जिन उत्त) जिनेन्द्र कथित वाणीके शब्दोंमें गुप्त रहस्य भरा है (गुपितं अन्मोय गुपित सुइ उवन) उन शब्दोंसे जो गुप्तज्ञान–आत्मज्ञान झलकता है उनमें जो आनन्द सहित लीन होजाते हैं उनका आत्मा स्वयं प्रकाशित होता जाता है (पिप्त दिस्टि सुइ सब्दं) जिनसे आत्मानुभव प्रगटै वे ही यथार्थ शब्द हैं (सहकार सजोय सब्द पि उवन्न) ये शब्द सहायकारी हैं, ये शब्द प्रिय वचनरूप हैं। उन्हीं शब्दोंसे परम कल्याणका लाभ होता है ॥ १९ ॥

(सब्द समय मम उवन) आत्मा सम्बन्धी शब्दोंके मननसे अत्मामें समभाव प्रगट होजाता है (उवन सुर सब्द न्यान वियानं) इन्हीं स्वर व्यंजनरूप शब्दोंसे भेदज्ञान पूर्वक आत्मानुभव पैदा होजाता है (न्यान

रंज सुइ रमनं) इन्हींसे ज्ञानमें आनन्द आता है। आत्मा आपसे ही आपमें रमण करता है (नन्द आनन्द जिनय जिन उवन) तब यह आनन्दमें मगन होजाता है। और यह आत्मा कर्मोंको जीतकर अपने वीतराग जिन स्वरूपको प्रगट कर देता है ॥ २० ॥

(सर सहाव सु ममलं) आत्मारूपी सरोवरका स्वभाव परम शुद्ध है (ममल सहकार सुय सुइ कमल) इसी शुद्ध स्वभावमें रमण करनेसे स्वयं ही अरहन्त परमात्मारूपी कमल प्रगट होजाता है (कमल कलिय जिन उत्त) उसी कमलमें लीन आत्माको जिन कहते हैं (कमल सहकार केवल ममल) इसी कमल समान अरहन्त परमात्मामें निर्मल केवलज्ञान प्रकाशित रहता है ॥ २१ ॥

(अचष्य सभाव स उत्तं) आत्माका स्वभाव ऐसा कहा गया है (अचष्ये उव उवन लष्य लष्य च) जिस आत्माके मननसे अनुभव करने योग्य आत्माका प्रकाश होजावे (गम अगम्य जिन वयन) जिनेन्द्रकी वाणीसे इन्द्रियगोचर व अतीन्द्रियगोचर सब पदार्थ प्रगट होते हैं (जिन उत्तं उवन अचष्य ममल च) जैसा जिनेन्द्रने कहा है—जिनवाणी द्वारा शुद्ध आत्माका प्रकाश होजाता है ॥ २२ ॥

(अचष्य सुय सुइ उवन) यह आत्मा स्वयं ही अपनेसे प्रकाशमान होता है (उवन सहावेन कमल सुइ सुवन) वही अपने प्रकाशनीय स्वभावसे आप ही कमल रूप सुन्दर कमल वन होजाता है (सुय सुय सुइ उवनं) यह आपसे आप ही प्रगट होता जाता है (जिन उत्त सहकार मुक्ति गमन च) जिनवाणीकी सहायतासे यह आत्मा मोक्षमें चला जाता है ॥ २३ ॥

(तारन तरन सु रमनं) तारणतरण स्वरूप श्री अरहन्त भगवान आपमें रमण करते हैं (रंज रमन नन्द रयन सजुत्त) वे आनन्द स्वभावमें रंजित हैं, रमणशील हैं, वे रत्नत्रय स्वरूप हैं (विवान उवन सुइ उत्त) उन ही अरहन्तको प्रगट धर्म जहाज कहा गया है (विवान तरन सिद्धि सपत्तु) वही जहाज भव-समुद्रको तरके सिद्धगतिमें पहुँच जाता है ॥ २४ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें बताया है कि वह आत्मा अपने स्वभावसे ही—परमात्मा होजाता है। परमात्मा होनेका उपाय शुद्धात्माका अनुभव है। साधकको शब्दोंके आलम्बनसे ध्यानका अभ्यास करना पड़ता है। यह शब्दका आलम्बन धर्मध्यानमें भी रहता है तथा शुक्लध्यानमें भी बारहवें गुणस्थान तक रहता है। छठे प्रमत्त गुणस्थान तक बुद्धि-पूर्वक आलम्बन रहता है। आगे अबुद्धिपूर्वक आलम्बन रहता

है। श्रुतज्ञान भावश्रुत व द्रव्यश्रुत दो प्रकार है। भावश्रुत आत्मज्ञान है, द्रव्यश्रुत वे शब्द हैं जिनसे आत्मज्ञान होता है। द्रव्यश्रुतका आधार श्री अरहन्त भगवानकी दिव्यध्वनि है, जो इच्छा विना स्वभावसे ही कर्मोंके उदय वश प्रगट होती है। इस वाणीमें गुप्त आत्मज्ञानका परम रमणीक उपदेश होता है।

जो कोई इस उपदेशको सुनकर उसके द्वारा भाव श्रुतका मनन करता है—भेदज्ञान पूर्वक आत्माका शुद्ध स्वभाव ध्यानमें लेता है उसको वीतरागताका लाभ होता है, साथ ही आत्मानन्दमें रमणता होती है। यही रमणता कर्मोंकी निर्जरा करती हुई आत्माका विकास करती है। तब आत्मा आत्मध्यानके बलसे अरहन्त परमात्मा होजाता है। फिर वही सिद्ध होजाता है। यहां मुख्यतासे स्वावलम्बनकी शिक्षा दी है कि यह आत्मा स्वभावसे परमात्मा ही है। कर्मबन्धके संयोगसे अशुद्ध कहलाता है। इस अशुद्धताको लानेवाला भी यही आत्मा है। यह आत्मा राग द्वेष मोहसे कर्मोंका बन्ध करता है तथा वीतरागभावसे कर्मोंकी निर्जरा करता है। यह वीतरागभाव तब ही जागृत होता है जब आपसे आपमें आप ही रमणता होती है। निश्चय रत्नत्रय धर्मका साधन होता है। यहां बताया है कि यह आत्मा आप ही सरोवर है, आप ही उसमें उत्पन्न होनेवाला कमल है। आत्मानन्दके अमृतमें धारावाही मगनता सरोवरके समान है। इसीसे अरहन्तपद कमलके समान होता है। आत्मा स्वयं कारण है, स्वयं कार्य है। आपके ही अनुभवसे यह परमात्मा होता है। श्री अरहन्त भगवान तारणतरण जहाजके समान हैं। वे आप तो भवसागरसे तरते ही हैं परंतु अपनी दिव्यवाणी द्वारा अनेकोंको मोक्षमार्ग बताते हैं। यह अरहन्तपद आत्माको आपसे ही प्राप्त होता है।

अतएव जो अपना आत्महित करना चाहें उनको उचित है कि वे निश्चिन्त होकर नित्यप्रति आगमके द्वारा तत्वज्ञान प्राप्त करके अपने आत्माके चिन्तवन करनेका अभ्यास करें। आत्मारूपी सरोवरमें स्नान करें। इसीसे आत्माका स्वभाव सिद्धरूप होजायगा। श्री योगसारमें योगेन्द्रदेव कहते हैं:—

जहिं अप्पा तहिं सयलगुण केवलिराय भणन्ति। तिहिं कारण ए जीव फुडु अप्पा विमल मुणन्ति ॥ ८४ ॥

इक्कलउ इन्द्रिय रहिउ मण वय काय ति सुद्धि। अप्पा अप्प मुणेइ तुहुं लहु पावहु सिव सिद्धि ॥ ८५ ॥

भावार्थ—जहां आत्माका अनुभव है वहां सर्व गुण हैं ऐसा केवली कहते हैं। इसी कारण ये ज्ञानी

जीव प्रगटपने निर्मल आत्माका मनन करते है। आत्मा अकेला है, इंद्रियोंसे रहित है, जो कोई मन, वचन कायको शुद्ध करके आत्माके द्वारा आत्माका अनुभव करता है वह शीघ्र ही मोक्षकी सिद्धि कर लेता है।

(४१) विजौरौ ऊँकार गाथा ८०९ से ८२८ तक।

ऊँवंकार उवन पउ विजौरोदे, उव उवनो न्यान विन्यान विजौरोदे।
विन्यान विद वीरज सहियो विजौरोदे, वीरज ममल सहाउ विजौरोदे ॥ १ ॥
दीजे रमनकी रयन पउ विजौरोदे, कमल रमन जिन उत्तु विजौरोदे ॥ २ ॥ (आचरी)
न्यान डोरि मन राषियो विजौरोदे, अन्मोय न्यान सिद्धि रत्तु विजौरोदे।
न्यानी न्यान सहाव ले विजौरोदे, जं वाधा अवध जुत्तु विजौरोदे ॥ ३ ॥ दीजे रमन०
अष्यर रमनह रयन पउ विजौरोदे, सुर रमनह मुक्ति सहाउ विजौरोदे।
सुर रमनह मान विसेपले विजौरोदे, विन्यान रमन सिधि रत्तु विजौरोदे ॥ ४ ॥ दीजे० ॥
विंजन विन्यान सहिओ विजौरोदे, विन्यान मुक्ति दर्सतु विजौरोदे।
अलष लषिउ सुइ न्यान पउ विजौरोदे, लषियो लोय अलोय विजौरोदे ॥ ५ ॥ दीजे० ॥
लोय अलोयह ममल पउ विजौरोदे, सहयार सरीर सुभाउ विजौरोदे।
अर्थति अर्थह न्यान पउ विजौरोदे, पट्ट कमलह सुभाउ विजौरोदे ॥ ६ ॥ दीजे० ॥
अंगदि अंगह सुद्ध पउ विजौरोदे, चक्र छत्र जिन उत्तु विजौरोदे।
छत्रत्रय विन्यान मउ विजौरोदे, रयनमई सिद्धि रत्तु विजौरोदे ॥ ७ ॥ दीजे० ॥

न्यान सहाव सु सरीरं मुनि विजौरोदे, परिनामूं नन्तानन्त विजौरोदे ।
जिन उवएसिउ मुक्ति पउ विजौरोदे, अप्पा ममल सहाउ विजौरोदे ॥ ८ ॥ दीजे० ॥
संसार सरनि तं नन्त मुनि विजौरोदे, भमियो द्रष्य सहन्तु विजौरोदे ।
आदि अनादि न जानियो विजौरोदे, न्यान अन्मोय विलंतु विजौरोदे ॥ ९ ॥ दीजे० ॥
जिन उवएसिउ न्यान पउ विजौरोदे, अनादि कम्म विलयन्तु विजौरोदे ।
न्यान पयोहर अमिय रस विजौरोदे, अनन्तु कम्म विलयन्तु विजौरोदे ॥१०॥ दीजे० ॥
न्यान विन्यानह भेउ मुनि विजौरोदे, जन रंजन राग गलन्तु विजौरोदे ।
जनह सहाउ न उत्त जिन विजौरोदे, सह न्यान राग विलयंतु विजौरोदे ॥११॥ दीजे० ॥
कलरञ्जन दोष जु सै गलियो विजौरोदे, पर पर्जय विलयन्तु विजौरोदे ।
पर्जय दिस्टि अनिस्ट मउ विजौरोदे, न्यान अन्मोय गलंतु विजौरोदे ॥१२॥ दीजे० ॥
मनरञ्जन गारो सौ गलिओ विजौरोदे, वय तव क्रिय अन्यान विजौरोदे ।
गारव श्रुत अन्यान पउ विजौरोदे, न्यान अन्मोय विलन्तु विजौरोदे ॥१३॥ दीजे० ॥
दर्सन मोहे अन्ध पउ विजौरोदे, अंधे अंध स उत्त विजौरोदे ।
अंधे चौगइ दुह सहियो विजौरोदे, उत्पन न्यान विलन्तु विजौरोदे ॥१४॥ दीजे० ॥
राग दोष गारव गलियो विजौरोदे, दर्सन मोहध विलन्तु विजौरोदे ।
न्यान उवनं विन्यान मउ विजौरोदे, अन्मोय न्यान सिधि रत्त विजौरोदे ॥१५॥ दीजे० ॥
न्यान आवरनु न पेषियो विजौरोदे, दर्सन मोहंध विलन्तु विजौरोदे ।
न्यान अन्तर न वि उत्तियो विजौरोदे, उत्पन्न न्यान अन्मोय विजौरोदे ॥१६॥ दीजे० ॥

निसंक सहावे न्यान पउ विजौरोदे, सल्य संक विलयंतु विजौरोदे ।
भय विनास भवु जू मुनहु विजौरोदे, अमिय रमन जिन उत्तु विजौरोदे ॥१७॥ दीजे० ॥
उत्पन दिस्टि उत्पन्न मउ विजौरोदे, हिय उवयार संजुत्तु विजौरोदे ।
सहयारह सहियो घनो विजौरोदे, तिविह कम्मु विलयन्तु विजौरोदे ॥१८॥ दीजे० ॥
जान ऊपजे जानियो विजौरोदे, रिजु विपुलह संजुत्तु विजौरोदे ।
मन पर्जय संजुत्त पद विजौरोदे, पद विंदह केवल उत्तु विजौरोदे ॥१९॥ दीजे० ॥
ममल सहावे ममल पउ विजौरोदे, पद विंदह केवल उत्तु विजौरोदे ।
न्यान विन्यान सु रमन पउ विजौरोदे, अन्मोय सिद्धि सम्पत्तु विजौरोदे ॥२०॥ दीजे० ॥

अन्वय सहित अर्थ—नोट–इस गीतमें विजौरोंके वाक्यका अर्थ जो समझमें आया सो लिखा जाता है । विजौरा एक फल देशी भाषामें प्रसिद्ध है जो मीठा नीबू या चकोतरेके समान होता है। उसकी उपमा अमृतरससे पूर्ण मोक्षफलसे दी है। विजौराके अर्थ जीतनेवाले भावके भी होसक्ते हैं। कर्मोंको जीतनेवाले शुद्धात्मीक भावको ही मोक्ष कहते हैं। अतएव यहां मोक्षकी प्रार्थना अपने ही आत्मदेवसे की गई है। (ऊँवकार उवन पउ) ॐ मंत्रमें परमात्माका पद प्रकाशरूप है (उव उवनो न्यान विन्यान) इस पदमें केवलज्ञानका प्रकाश होरहा है (विन्यान विन्द वीरज सहियो) यहां ज्ञान चेतनाका अनुभव है। यहां अनन्तवीर्य है (वीरज ममल महाउ) इस पदमें शुद्ध आत्मस्वभावका बल है ॥ १ ॥

(दीजे रमनकी रयन पउ) रत्नत्रय पदमें रमण करनेकी शक्ति मुझे प्राप्त हो ऐसी प्रार्थना आत्मदेवसे की गई है (कमल रयन जिन उत्तु) श्री जिनेन्द्र भगवान प्रफुल्लित कमलके समान आत्मामें लीन रहते हैं ऐसा कहा गया है ॥ २ ॥

(न्यान डोरि मन राषियो) हे भव्यजीव ! ज्ञानकी डोर मनमें रक्खो। इसी डोरके सहारे शुद्धात्मारूपी राजाका लाभ होता है। अर्थात् ज्ञान आत्माका लक्षण है, इसके ज्ञान स्वभावके मननसे शुद्धात्माका

मनन होता है और केवलज्ञानका प्रकाश होजाता है (अन्मोय न्यान सिधि रत्तु) ज्ञानानन्दमें रहना वही सिद्ध स्वभावमें रति करना है (न्यानी न्यान सहावले) हे ज्ञानी! ज्ञान स्वभावमई आत्माका श्रद्धान करे। यह आत्मा रागीद्वेषी नहीं है (ज बाधा अवध जुत्त) इसके ज्ञान स्वभावका नाश किसी भी बाधासे नहीं हो-सक्ता है। आत्माका स्वभाव अविनाशी है। उसे कोई चेतन व अचेतन पदार्थ नाश नहीं कर सक्ता है॥३॥

(अष्यर रमनह रमन पउ) रत्नत्रयमई आत्माका अविनाशी पद है उसमें रमण कर (सुर रमनह मुक्ति महाउ) या सूर्य समान प्रतापशाली मुक्ति स्वभावी आत्मामें रमण कर (सुर रमनह भान विसेष के) सूर्य समान आत्मामें रमण करनेसे ज्ञानविशेषकी या केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है उसे तू ग्रहण कर। (विन्यान रमन सिधि रत्तु) आत्माके ज्ञानमें रमण करना सो ही सिद्ध स्वभावमें रमण करना है ॥ ४ ॥

(विंजन विन्यान सहियो) आत्माका चिह्न सम्यग्ज्ञान है (विन्यान मुक्ति दसैतु) सम्यग्ज्ञानरूप आत्म-ज्ञानमें रमण करनेसे मुक्तिका दर्शन होता है (अलष लषिय सुइ न्यान पउ) इंद्रियोंसे अगोचर आत्माका अनु-भव करना सो ही ज्ञानपदमें ठहरना है (लषियो लोय अलोय) जिस ज्ञानपदमें लोकालोक दिखलाई पड़ते हैं॥५॥

(लोय अलोयह ममल पउ) शुद्ध आत्मीक पदमें लोक व अलोक झलकते हैं (सहयार सरीर सुभाउ) यही आत्माका ज्ञान शरीर है। ज्ञान शरीरी आत्मा दर्पण समान है जिसमें सर्व जानने योग्य पदार्थ झलकते हैं (अर्थति अर्थह न्यान पउ) वही रत्नत्रय स्वरूपी ज्ञानमई पदार्थ है (पद् कमलह सुभाउ) जिसका स्वभाव छः प्रफुल्लित कमल स्वरूपी गुण सहित है अर्थात् आत्माके स्वभावमें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख, क्षायिक सम्यक्त व क्षायिक चारित्र ये छः गुण पूर्ण प्रकारसे विकसित हैं ॥ ६ ॥

(अगदि अगह सुद्ध पउ) जिस आत्माके असंख्यात प्रदेशी अंगमें शुद्ध पद छाया हुआ है-आत्मा परम शुद्ध ज्योतिका धारी है (चक्र छत्र जिन उत्तु) जिनेन्द्र समान आत्माके चक्र व छत्र भी कहे गए हैं (छत्र त्रय विन्यान मउ) उनके तीन लोकका ज्ञान है, यही तीन छत्र हैं (रयनमई सिधि रत्तु) अथवा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तीन रत्नमई तीन छत्र है, व धर्मरूप ही जिनका धर्मचक्र है। जो जगतमें धर्म फैलाते हैं वे जिनेन्द्र समान आत्मा अपने सिद्ध स्वभावमें रत है ॥ ७ ॥

(न्यान महाव सु सरीर मुनि) उस आत्माका शुद्ध शरीर ज्ञान स्वभावमई है ऐसा जानो (परिनाम नन्ता-नन्त) जिस ज्ञान स्वभावमें अनन्तानन्त पदार्थोंकी पर्यायोंकी अपेक्षा अनन्तानन्त परिणमन होते हैं (जिन

उवएसिउ मुक्ति पउ) श्री जिनेन्द्रने जिस मुक्तिपदका उपदेश किया है (अप्पा ममल सहाउ) वह आत्माका शुद्ध स्वभाव ही है ॥ ८ ॥

(संसार सरनि तं नत मुनि) संसारमें अनन्तकालसे जीवका भ्रमण होरहा है ऐसा जानो (भमियो दुस्य सहतु) यह जीव दुःखोंको सहता हुआ भ्रमण कर रहा है (आदि अनादि न जानियो) यह भ्रमण प्रवाहकी अपेक्षा अनादि है। एक शरीर धारणकी अपेक्षा सादि है ऐसा अज्ञानी नहीं जानता है (न्यान अन्मोय विलतु) उसके ज्ञानानन्दका लोप होरहा है। सम्यक्तके विना ही अनन्त भव-भ्रमण होता है ॥ ९ ॥

(जिन उवएसिउ न्यान पउ) श्री जिनेन्द्रने आत्मज्ञानके पदका उपदेश किया है (अनादि कम्म विलयतु) उस आत्मज्ञानमें रमण करनेसे अनादिकालके कर्मोंका संयोग छूट जाता है (न्यान पयोहर अमिय स) आत्मानन्दरूपी अमृतरससे भरे हुए ज्ञानसमुद्रका लाभ होता है (अनन्त कम्मु विलयन्तु) तब अनन्त कर्मोंका क्षय होजाता है ॥ १० ॥

(न्यान विन्यानह भेउ मुनि) हे भाई ! सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञानका भेद समझो। ठीक २ आत्माके स्वरूपका अनुभव होनेसे (जन रजन राग गलन्तु) जनसमूहको प्रसन्न करनेका राग गल जाता है, विकथा-ओंका राग चला जाता है (जनह सहाउ न उत्त जिन) मानवोंके स्वभावमें रागद्वेष मिल सक्ता है, वीतराग-ताका भाव नहीं दिखलाई पड़ता है ऐसा कहा गया है (सह न्यान राग विलयंतु) जब आत्मज्ञान होता है तब अवश्य संसारका राग मिट जाता है ॥ ११ ॥

(कलरंजन दोप जु सै गलियो) आत्माका अनुभव होनेसे शरीरको रंजायमान रखनेका सर्व दोष गल जाता है। अर्थात् शरीरका राग चला जाता है, आत्माका प्रेम उमड़ आता है (पर पर्जय विलयतु) तब कर्म-जनित रागद्वेष परिणति विला जाती है, वीतरागता बढती जाती है (पर्जय दिस्टि अनिस्ट मउ) शरीरमें अहंबुद्धिमय जो मिथ्यादृष्टि है अर्थात् शरीरको ही आपा मान लेना ऐसा मिथ्याश्रद्धान महान जीवका बुरा करनेवाला है। क्योंकि मिथ्यात्वी आत्मानन्दको पाकर विषयसुखका रागी होकर इष्टवियोग व अनिष्ट संयोगके अकथनीय कष्टको भोगता है (न्यान अन्मोय गलंतु) उसको ज्ञानानन्दका भोग कभी नहीं मिलता है॥१२॥

(मन रजन गारो सौ गलियो) आत्म प्रतीत मई सम्यक्तके होते ही मनको रंजायमान करनेवाला सर्व अभिमान या अहङ्कार या मद गल जाता है (वय तव क्रिय अन्यान) अज्ञानमई, आत्मज्ञान रहित व्रत, तप

समकपाहुड ॥३४३॥

क्रियाका साधन मिट जाता है (गारव श्रुत अन्यान पउ) शास्त्रोंके जाननेका अहंकारमय जो अज्ञानपद है सो सब (न्यान अन्मोय विलन्तु) ज्ञानानन्दमें मगन होनेसे विला जाता है ॥ १३ ॥

(दर्सन मोहे अध पउ) दर्शनमोहके उदयमें अन्धपद बना रहता है, आत्माका श्रद्धान नहीं होता। सच्चे देव, शास्त्र, गुरुका श्रद्धान नहीं होता, तत्वकी श्रद्धा नहीं होती, अज्ञान अन्धेरा छाया रहता है (अधे अंध स उतु) जैसे अन्धा अन्धेको मार्ग बतावे वैसे ही जो देव, शास्त्र, गुरु स्वयं ही अज्ञानरूप हैं उनकी भक्तिसे अज्ञान ही बढेगा कभी भी मोक्षमार्ग नहीं दिख सक्ता है, ऐसा कहा गया है (अधे चउगइ दुह सहियो) यह अन्धा मिथ्यादृष्टी प्राणी पंचमगति मोक्षको न देखता हुआ तृष्णाके वशीभूत हो पाप पुण्यके अनुसार देव, मनुष्य, तिर्यंच व नर्कगतिमें दुःख सहन किया करता है (उवन यान विलतु) जब आत्मज्ञानका उदय होता है तब यह मिथ्या श्रद्धान चला जाता है ॥ १४ ॥

(राग दोष गारव गलियो) आत्मज्ञानके होते ही रागद्वेष व अहङ्कार मिट जाता है (दर्सन मोहध विलन्तु) तथा दर्शन मोहनीय कर्मका क्षय होकर क्षायिक सम्यक्त पैदा होजाता है (न्यान उवनु विन्यान मउ) तब भेदविज्ञान पूर्वक आत्मानुभव जग जाता है (अन्मोय न्यान सिधि रन्तु) तब ज्ञानानन्दकी मगनता होती है, वही सिद्ध स्वभावमें रति करना है ॥ १५ ॥

(ज्ञान आवरनु न पेषियो) तब ज्ञानावरण नहीं देखा जाता है अर्थात् उस ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होजाता है जो आत्मानुभवको रोकनेवाला है (दर्सन मोहन विलन्तु) साथ ही दर्शन मोहनीय कर्मका भी क्षय होजाता है (न्यान अन्तर न वि उत्तिओ) वहां वह अन्तराय कर्मका उदय भी नहीं कहा गया है जो आत्मानुभवमें अन्तर डाल सके (उतरन यान अ मोय) इसतरह ज्ञानानन्द प्रकाशित रहता है। सम्यग्दृष्टीके भीतर चारों घातीय कर्मोंका बल इतना कम होजाता है जिससे वह अपने ज्ञानानन्दके भोगमें बाधा नहीं पाता है ॥ १६ ॥

(ससक सहावे न्यान पउ) जब सम्यक्ती शुद्ध आत्मज्ञानके पदमें ठहरता है तब इसका स्वभाव निःशंक होजाता है, कोई भय नहीं रहता है (सल्य संक विलयन्तु) सर्व शङ्काएँ व सर्व शल्यें दूर होजाती हैं (भय विनास भवजू सुनहु) हे भव्य जीव ! सर्व भय निवारक अपने शुद्ध आत्मीक पदका मनन करो (अमिय रमन जिन उत्तु) आत्मज्ञानमें रमना आनन्दामृतमें रमण करना है, ऐसा जिनेन्द्रने कहा है ॥ १७ ॥

(उत्पन्न दिस्टि उतपन्न मउ) जब प्रकाश स्वरूप आत्मदृष्टि पैदा होजाती है (हिय उवयार सजुत्तु) तब यह दृष्टि बड़ी ही हितकारी व उपकार करनेवाली होती है (सहयारह सहियो धनो) इस दृष्टिकी सहायतासे जब यह पूर्णपने आप अपनेमें लीन होजाता है, पूर्ण निर्विकल्प समाधि जग जाती है (तिविहु कम्मु विलयन्तु) तब भाव कर्म रागद्वेषादि, द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादि, नोकर्म शरीरादि सब नाश होजाते हैं ॥ १८ ॥

(जान ऊपजे जानियो) आत्मज्ञानके प्रभावसे ज्ञानका प्रकाश होता जाता है (रिजु विपुलह सजुत्तु) रिजुमति तथा विपुलमति मन पर्ययज्ञान पैदा होजाता है (मन पर्जय सजुत्त पउ पद निंदह केवल उत्तु) विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान होते हुए अरहन्तपदको अनुभव करनेवाला केवलज्ञान होजाता है, ऐसा कहागया है ॥१९॥

(ममल सहावे ममल पउ) शुद्ध स्वभावमें रमण करनेसे शुद्धपद प्रगट होजाता है (सयल कम्मु विलयन्तु) सर्व रागादि मल पैदा करनेवाले कर्म गल जाते हैं (न्यान विन्यान सु रमन पउ) आत्माके शुद्ध ज्ञानमें रमणताका पद अर्थात् वीतरागतामई अरहन्तपद होजाता है (अन्मोय सिद्धि स त्त) वे ही अरहन्त आनन्दमग्न रहते हुए सिद्धपदमें पहुँच जाते हैं ॥ २० ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें यह बताया गया है कि यह जीव अनादिकालसे मिथ्यात्व धर्मके अन्धकारसे अन्धा होरहा है। इसका ज्ञान विपरीत होरहा है, इसका चारित्र विपरीत होरहा है, यह विषय–तृष्णाका दास बना हुआ है, शरीरमें ही आपा मान रहा है। स्त्री कथा, भोजन कथा, देश कथा व राजा कथा आदि विकथाएँ जिनसे मनको प्रसन्न किया जावे व रागद्वेष बढाया जावे इस अज्ञानीको रुचती हैं। शरीरके शृंगारमें, पांचों इंद्रियोंके भोगोंमें लगा रहता है। कुदेव, कुशास्त्र व कुगुरुकी मान्यता करता है। अज्ञान तप व व्रत पालता है, मिथ्या क्रियाकाण्ड करता है। भावना यही रहती है कि पांचों इंद्रियोंके मनोहर भोग प्राप्त हों, जगतमें मानको प्राप्त करूँ। इष्टवियोगसे व अनिष्ट संयोगसे दुःखी होता हुआ अशुभ भावोंसे मरकर इस संसारमें बारम्बार जन्म लेकर दुःख उठाया करता है, चारों गतियोंमें भ्रमण किया करता है। मिथ्यात्वके समान कोई कष्टदायक नहीं है। जब तत्व विचारसे व गुरुके उपदेशसे सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। आत्माका स्वभाव कर्मजनित रागादि भावोंसे अलग है ऐसा झलक जाता है तब संसारका, शरीरका व इंद्रिय भोगका राग मिट जाता है, आत्मानन्दका प्रेम उमड़ आता है, तब ज्ञान भी निर्मल होजाता है, आत्म वीर्य भी दृढ़ होजाता है, आत्मानन्दमें मगनता होजाती है, तब सिद्ध स्वभा-

ममलपाहुड ॥३४५॥

वमें रति बढ जाती है। आत्मानुभवकी कलाके अभ्याससे धीरे २ कर्मोका क्षय होजाता है, अरहन्तपद प्रगट होजाता है। यही सशरीर परमात्माका पद है। फिर शीघ्र ही मोक्षपद प्राप्त होजाता है। भव्यजीवको उचित है कि वह मोक्षफलका प्रेमी होकर आत्मानुभवरूपी धर्मवृक्षकी सेवा करे। रत्नत्रयमई यह धर्म-वृक्ष है। इसकी सेवासे सदा ही ज्ञानानन्दका स्वाद आता है। यही ज्ञानानन्द ध्यानकी अग्नि है, जो कर्मोको जलाती है। सर्व शंका मिटाकर व माया मिथ्या निदान तीन शल्य दूरकर निर्भय भाव रखकर अपने आपको परमात्मारूप ही श्रद्धानमें लाकर वारवार उसीका अनुभव करना चाहिये। ज्ञान डोर आत्मासे ही उठती है। इस डोरके सहारे आत्मारामका ध्यान करना चाहिये। आत्मज्ञान विना शास्त्र-ज्ञान भी बुरा ही करनेवाला है, अहङ्कार पैदा करनेवाला है। परम हितकारी एक आत्मज्ञान है। इसीका स्वाद लेकर मोक्षफलकी भावना भानी चाहिये। कल्लाणालोयणामें कहा है—

इक्को सहाव सिद्धो सोइ अप्पा वियप्पपरिमुक्को। अण्णो ण मज्झ सरण सरण सो एक्क परमप्पा ॥ ३५ ॥

अरस अरूव अगन्धो अव्वावाहो अणन्तणाणमओ। अण्णो ण मज्झ सरण सरण सो एक्क परमप्पा ॥ ३६ ॥

भावार्थ—जो एकरूप है, स्वभावसे सिद्ध है, सर्व संकल्पविकल्प रहित है, ऐसा जो आत्मा है, वही मैं हूँ, वही एक परमात्मारूप है, उसीकी मैं शरणमें जाता हूँ, औरकी शरण नहीं लेता हूँ। वह आत्मा वर्ण रहित है, रस रहित है, गन्ध रहित है, बाधा रहित है, अनन्तज्ञान स्वरूप है। वही एक परमात्म-स्वरूप है, उसीकी शरण लेता हूँ, और किसीकी शरण नहीं लेता है।

(४२) जिन आयरो फलना गाथा ८२९ से ८४९ तक।

ऊ वंकार उवनपौ उवन उवन मौ, उव उवन सविद विन्यान पओ।
जिन जिनयति जिनय जिन अरूवी, जिन नन्द सनन्द स उत्तु सुयं जिन आयरो ॥ १ ॥
भय षिपनिक भव्वु स उत्तु नन्द जिन आयरो, अहु कमल रमन रस रसिय पंम जिन आयरो।
दिप दिपिय दिप्ति आयरन सहज जिन आयरो, भय सल्य संक विलयन्तु ममल जिन आयरो ॥

अहु अमिय रमन विषु गलनु सुयं जिन आयरो, अहो तरन विवान जिनय जिन उत्त
समय जिन आयरो ॥ २ ॥ (आचरी)
जिन जिनवर उत्तउ षिपक रमन जिनु, जिन जिनयति जिनय जिनेन्द पऊ।
षट् रमन कमल रस अर्क विंद पउ, आगन्तु रमन रस रयन परम जिन आयरो ॥ ३ ॥
हिय यार रमन रस रसियो, हुवयार सब्द रै रमन मऊ।
तं रयनह रयन सरूव रमन जिनु, उत्पन्न उवन उवन रवरै, उवनु उवन निलय जिन आयरो ॥४॥
उववन इस्टि त इस्टि रिस्टि जिन हिययार रमन रस रयन पऊ।
सहयार श्री सुइ रमन सहज जि सुइ नन्द आनन्द रमन जिन आयरो ॥ ५ ॥
उव उवन दिस्टि हिययार रमन रयन जिनु, सहयार सहजरै समय मऊ।
हिययार दिस्टि षट् रमन परमपय, परम नन्द परम जिनय जिन आयरो ॥ ६ ॥
सहयार रमन हिययार रंजु रै, उववन दिस्टि सम समय मऊ।
सम समय सजुत्तु विवान परम पउ, सम समय संजुत्तु सुनन्त निलय जिन आयरो ॥ ७ ॥
उत्पन्न रंजु भय षिपिय रमन सुइ, नन्द सुनन्द ममल पऊ।
हिययार रंजु तं अमिय रमन जिनु, नन्द आनन्द सुनन्द रमन जिन आयरो ॥ ८ ॥
सहयार रंजु वैदिसि रमन जिनु, रमिय नन्द चेयानन्द जिनु।
विन्यान रंज तं रमन जिनय जिनु, सहजनन्द त सहज सुयं तं परम सुयं जिन आयरो ॥ ९ ॥
जिन रंज रमन जिननाथ सुयं जिनु, परम नन्द त परम पऊ।
तं तारन तरन विवान समय जिनु, सिहु समय संजुत्तु समय मुक्ति जिन आयरो ॥१०॥

जिन जिनयति जिनेन्द जिनय जिनु, नन्द सुनन्द सुयं जिननन्द पऊ।
नन्द सनन्द नन्द जिन जिनयति, लष्य सलष्य सलष्य अलष जिन आयरो ॥११॥
लष्य सलष्य सलष्य अलष्य रूई, अलष्य सलष्य अलष्य अलष्य परम पय परम पऊ।
पर्म सुपर्म परम पयड़ी, परम जिन परमानन्द जिन आयरो ॥ १२ ॥
जिन जिनय स उत्तउ जिनय जिनय पउ, उववन उवन जिन उवन उवन पऊ।
सुइ सहज सरूवे सहज सहावे, सुयं लष्य सुलष्य अलष्य जिन आयरो ॥ १३ ॥
उववन श्री उववन दिस्टिरे, उववन सद्दरै उवन स उवन उवन पऊ।
उववन उवन उवन इस्ट त इस्ट पऊ, इस्ट सुइस्ट नन्तानन्त रहिउ,
इस्ट सुनन्द सनन्द नन्द जिन आयरो ॥ १४ ॥
हिययार श्री उवन उवन जिनु, उवन सनन्द सनन्द नन्द जिनय जिन परम पऊ।
परम सु परम सु परम जिन जिनपति, जिनय जिनेन्द जिनय जिन आयरो ॥ १५ ॥
सहयार श्री त सहज रमन पऊ, रमन स रमन रमन स रमन पऊ।
सहजे सहज सनन्द सनन्द रमन पऊ, तं गुप्ति सगुप्ति स गुहिज रमन रस रमन सनाथ जिनयति
जिन रमन सु रमन जिन आयरो ॥ १६ ॥
उत्पन्न श्री हिययार रमनैरे, रमन स अर्क स अर्क अक जिन विन्यान विंद रस रमन पऊ।
सहयार श्री त लष्य अलष्य मऊ, श्री समय रमन सु सिद्ध सु सिद्ध मुक्ति पउ आयरो ॥१७॥

अन्वय सहित अर्थ—(नोट–इसका मूल पाठ बहुत विचारसे लिखा है। सम्भव है कि कहीं अधिक अक्षर हो, अन्य शुद्ध-प्रतिसे मिला लेना चाहिये)।

(ऊँवंकार उवनपौ उवन उवन मौ) ॐ मन्त्रमें परमात्माका पद प्रगट है। जो परमात्मा सदा प्रकाश स्वरूप है (उव उवन स विन्द विन्यान पओ) वही स्वानुभव स्वरूप ज्ञानका पद प्रकाशित है (जिन जिनयति जिनय जिन अरुवी) वे ही जिन हैं, वे ही जीतनेवाले हैं, वे ही वीतरागी जिन हैं, वे ही अमूर्तीक आत्मा हैं (जिन नन्द सनन्द स उत्तु सुय जिन आयरो) वे ही जिन आनन्द मगन कहे गये हैं, यह आत्मा स्वयं जिन स्वरूप है। इस आत्मा जिनेन्द्रका आचरण करो। इस अपने परमात्मदेवका ध्यान करो ॥ १ ॥

(भय विनिक भव्यु स उत्त नंद जिन आयरो) हे भव्यजीव! वे ही परमात्मा भयोंको क्षय करनेवाले कहे गये हैं, वे ही आनन्दमई जिन हैं उन हीका ध्यान करो (अहु कमल रमन रस रसिय परम जिन आयरो) अहो भाई! शुद्धात्मारूपी कमलमें मगन हो जो आनन्दमई रसके रसिक होरहे हैं, ऐसे परमात्मा वीतराग जिनदेवका ध्यान करो (दिप दिपिय दिप्ति आवरन सहज जिन आयरो) जो दैदीप्यमान ज्ञान ज्योतिमें आचरण कर रहे हैं, ऐसे सहज-स्वाभाविक जिन भगवानका ध्यान करो। वे ज्ञान चेतनामें ही स्वभावसे सदा मगन हैं। उन हीका अनुभव करो (भय सल्य सक विलयन्तु ममल जिन आयरो) जिनके ध्यानसे सर्व भय, सर्व शल्य, सर्व शङ्काएँ विला जाती हैं ऐसे शुद्ध जिन भगवानका ध्यान करो (अहु अमिय रमनु विष गलनु सुय जिन आयरो) अरे भाई! आनन्दामृतमें रमण करनेनाले व विषय सुखके विपको गलानेवाले ऐसे स्वयं अपने आत्मारूपी जिन भगवानका ध्यान करो। यह आत्मा ही निश्चयसे श्री जिनेन्द्र परमात्मा है (अहो तरन विज्ञान जिनय जिन उत्तु समय जिन आयरो) हे भाई! तारणतरण स्वरूप जिनेन्द्र जिन जिनको कहते हैं ऐसे अपने आत्मारूपी जिन भगवानका ध्यान करो। यह आत्मा ही निश्चयसे तारणतरण अरहन्त परमात्मा है ॥ २ ॥

(जिन जिनवर उवउ विपकरमन भिनु) श्री जिनेन्द्र वीतराग भगवानको ही क्षायिकभावमें रमन करनेवाला जिन कहा गया है, वे नौ क्षायिकलब्धिके स्वामी हैं। क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग, क्षायिक वीर्य, क्षायिक सम्यक्त व क्षायिक चारित्र ये क्षायिक भाव रूप नौ केवल लब्धियें हैं (जिन जिनयति जिनय जिनेन्द्र पऊ) ये जिन कर्म विजयी, रागादि विजयी जिनेन्द्र पदमें शोभायमान है (पद् रमन कमल रस अर्क विंद पउ) वे ही भगवान अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, क्षायिक सम्यक्त, वीतराग चारित्र इन छः गुणोंमें रमण करनेवाले शुद्धात्मारूपी कमलके रसको प्रगट करनेवाले सूर्यके समान परम वीतराग स्वात्मस्वरूपी पदमें तल्लीन हैं। वे ही सूर्य हैं, वे ही

लेता है (सम समय सजुतु सुनन्न निलय जिन आयरो) वीतरागमय आत्माके भीतर अनन्त गुणोंका स्थान होजाता है, वे ही जिन होजाते हैं। हे भव्यजीव ! उसी जिनका ध्यान करो ॥ ७ ॥

(उत्वन्न रंजु भय विपिय रमन सुइ) जब आत्मामें रंजायमानपना पैदा होता है तब सर्व भय क्षय होजाते हैं वही आत्म रमणभाव है (नंद सुनद सु ममल मऊ) यही आत्मानन्दमें मगनता है, यही शुद्धोपयोग है (ह्रियार रजुत अमिय रमनु जिन) ह्रीं मंत्रके भीतर रंजायमान होना ही आत्मानन्दमें रमना है व जिनपना प्राप्त करना है (नद आनद सुनन्द रमन जिन आयरो) निजानन्दमई परमानन्दमें मगन होकर रमनेवाले वीतराग जिनका ध्यान करो ॥ ८ ॥

(सहयार रजु वे दिप्ति रमन जिन) आत्मामें रंजायमान होनेसे ही ज्ञान ज्योतिमें रमणता होजाती है वही जिनका धर्म है (रमिय मद चेयानद जिनु) श्री जिनेन्द्र चिदानन्दमई आनन्दमें ही रमण करते हैं (विन्यान रज त रमन जिनय जिनु) उसी रमणताको भेदविज्ञानमें रंजायमानपना कहते हैं, उसीको वीतरागतामें रमण करना कहते हैं। यही जिनका धर्म है (सहजनद त सहज सुय त परम सुय जिन आयरो) वहीं सहजानन्द है, वही स्वभावसे ही यह आत्मा स्वयं रमण करता हुआ परमात्मा जिन होजाता है, उसीका ध्यान करो ॥९॥

(जिन रज रमन जिननाथ सुय जिनु) श्री जिनेन्द्र भगवान स्वयं ही अपने जिन स्वभावमें रंजायमान होकर रमण करते हैं (परमनन्द तं परम पऊ) वहीं परमानन्द है वहीं परमपद है (त तारनतरन विन्यान समय जिनु) उसी परमपदमें तिष्ठनेवालेको तारणतरण जहाजके समान जिनेन्द्र परमात्मा कहते हैं (सिद्धु समय सजुत्तु समय मुक्ति जिन आयरो) वे ही स्वरूपाचरण सहित आत्मा हैं, वे ही जिनेन्द्र मुक्ति स्वरूप हैं, उन हीका ध्यान करो ॥ १० ॥

(जिन जिनय ति जिनेन्द्र जिनय जिनु) वे ही जिन हैं, वे ही कर्मोंको जीतनेवाले जिनेन्द्र वीतराग परमात्मा हैं (नद सुनद सुय जिन नद पऊ) वे ही स्वात्मानन्दमें आनन्दित हैं, वे स्वयं वीतराग आनन्दपद स्वरूप हैं (नन्द सनन्द नन्द जिनपति) वे ही आनन्दमें मगन सुखमई जिनेन्द्र जिननाथ हैं (लष्य सलष्य सलष्य अलष जिन आयरो) वे ही अनुभव करने योग्य हैं, वे ही भलेप्रकार लखनेयोग्य है। मनन करने योग्य है, वे ही इन्द्रिय व मनसे लखनेयोग्य नहीं है, आपसे आप ही लखनेयोग्य हैं, ऐसे जिनेन्द्रका ध्यान करो ॥११॥

(लष्य सलष्य सलष्य अलष्य रई) अतीन्द्रिय आत्मा ही लखनेयोग्य है, भलेप्रकार जाननेयोग्य है, भले

प्रकार मनन करने योग्य है, ऐसी रुचि ही सम्यक्त भाव है (अनध्य सनध्य अनध्य परम पय परम पऊ) इसीसे उस परमात्माके परमपदकी प्राप्ति होती है, जो इन्द्रिय व मनसे अगोचर है तथापि भलेप्रकार लखनेयोग्य है अभव्योंको उसका ज्ञान यहीं होता है (पर्म सुपर्म परम पयती) वही श्रेष्ठमें श्रेष्ठपद है, उसीका श्रेष्ठ स्वभाव है (परम जिन परमानन्द जिन आयरो) वे ही परमात्मा जिनेन्द्र परमानन्दमई वीतराग है उनहीका ध्यान करो ॥१२॥

(जिन जिनय स उत्तउ जिनय जिनय पऊ) उन्हीं जिनेन्द्रको विजयी जिन कहा है, वे ही रागादि व कर्मादिके विजेता परम जिनपदमें हैं (उवन उवन जिन उवन उवन पऊ) उन्हींमें परम प्रकाशित जिनपद सदा उदयरूप है (सुइ महज सरूवे सहज सुभावे) वे ही अपने सहज स्वरूपमें हैं, वे ही अपने सहज-स्वभावमें हैं (सुय लष्य सुलष्य अलष्य जिन आयरो) वे स्वयं ही अनुभवने योग्य हैं, वे भलेप्रकार जाननेयोग्य हैं, वे इंद्रिय व मनसे लखनेयोग्य नहीं हैं ऐसे जिनेन्द्रका ध्यान करो ॥ १३ ॥

(उववन श्री उववन दिप्टि) प्रकाशमान श्री मंत्रके द्वारा धारावाही आत्मदृष्टिको जगाना चाहिये (उववन सब्द रे उवन स उवन उवन पऊ) इस श्री शब्दको लगातार ध्यानमें लानेसे वह शुद्धपद धीरे २ उदय होता जाता है (उववन उवन उवन इष्ट त इष्ट पऊ) परमेष्ठीका परमप्रिय पद धीरे २ उदय होता हुआ पूर्ण प्रकाशित होजाता है (इष्ट सु इष्ट न तानन्त रहिउ) उसी परमेष्ठीपदमें अनन्तानन्त स्वहितकारी गुण प्रगट होजाते हैं (इष्ट सुनन्द सनन्द नन्द जिन आयरो) जो परमेष्ठी जिन अपने आनन्दमई पदमें मगन हैं, उनका ध्यान करो ॥ १४ ॥

(हिययार श्री उवन उवन जिनु) हितकारी श्रीं मंत्रके द्वारा जिनपद उदय होता चला आता है (उवन सनन्द सनन्द नंद जिनय यिन परम पऊ) इसीसे आत्मानन्द बढ़ता चला जाता है तब अनन्त सुखरूप वीतराग जिनेन्द्रका परमपद झलक जाता है (परम सु परम सु परम परम जिन जिनपति) वे ही श्रेष्ठ हैं, वे सर्व जगतके श्रेष्ठ पदार्थोंमें श्रेष्ठ पदार्थ हैं, वे ही परमात्मा वीतराग जिन हैं (जिनय जिनेन्द जिनय जिन आयरो) ऐसे विजेता श्री जिनेन्द्र वीतराग भगवानका ध्यान करो ॥ १५ ॥

(सहयार श्री त महज रमन पऊ) श्रीं मंत्र सहकारी है उसीके द्वारा आत्माके सहज-स्वभावमें रमण होनेका पद प्राप्त होजाता है (रमन स रमन स रमन पऊ) वही पद आत्म रमणरूप है, भलेप्रकार रमणरूप है, भलेप्रकार आनन्दमें मगन है (सहजे सहज सनर मनर रमन पऊ) वह रमणपद सहज ही उदय होता है जिसमें

स्वाभाविक आनन्दमें मगनता रहती है (त गुप्ति स गुप्ति स गुहिज रमन रस रमन) वहीं मन वचन कायकी गुप्ति है, वहीं भलेप्रकार तल्लीनता है वहीं आत्माकी गुफामें बैठकर आत्मीक आनन्द रसका स्वाद आता है (सनाथ जिनयति जिन रमन सुरमन जिन आयरो) वे ही त्रिलोकीनाथ वीतराग जिन हैं, जो अपने आनन्दमें रमण कर रहे हैं। ऐसे जिनेन्द्रका ध्यान करो ॥ १६ ॥

(उत्पन श्री ह्रियया रमनौ) उदयमान श्रीं मंत्र परम हितकारी है उसमें लगातार रमण करना चाहिये (रमन स अर्क स अर्क अर्क जिन विन्यान विन्द रम रयन पऊ) वे ही आत्मामें रमण करनेवाले निर्मल सूर्यके समान निर्मल सूर्यसम तेजस्वी हैं। वे सूर्यसम जिनेन्द्र अपनी ज्ञानचेतनाके रसमें रमण करते हैं (सहयार श्री त लष्य अलष्य मउ) श्रीं मंत्रकी सहायतासे इंद्रियातीत आत्माका अनुभव होजाता है (श्री समय रमन सु सिद्ध सु सिद्ध मुक्ति पउ आयरो) अनन्तज्ञानादि लक्ष्मीके धारी आत्माकी रमणता सोई सिद्धपदकी रमणता है। ऐसे सिद्ध भगवानके मुक्तिपदका ध्यान करो ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस फूलनामें श्री अरहन्त परमात्माके गुण गाकर यह बताया है कि यह आत्मा ही परमात्मा—स्वरूप है, यही शुद्ध स्वरूप है, इसीके भीतर रमण करनेकी रुचि सम्यक्त है। इस सम्यक्त भावको प्राप्त करके अपने परमात्म-स्वरूप आत्मदेवका ध्यान करना चाहिये। ध्यान करनेके लिये ॐ, ह्रीं तथा श्रीं मंत्रकी सहायता उपकार करनेवाली है। इनमेंसे किसी मंत्रके द्वारा परमात्माके स्वरूपका विचार करना चाहिये। जहां आत्माका दृढ़ श्रद्धान होता है वहां आत्मा सम्बन्धी निःशङ्क भाव जागृत होजाता है, सर्व सांसारिक भय मिट जाते हैं। सर्व विषय वांछा मिट जाती है। आत्मानन्दकी रुचि आजाती है। आत्मानन्दरूपी अमृतके स्वादके सामने विषयसुख विषके समान कटुक भासता है। श्रद्धापूर्वक लगातार ध्यान करनेसे सहज—स्वभावकी प्रगटता होती है। यह आत्मा वास्तवमें अनुभवगम्य है। आपसे आप ही जानने योग्य है। इंद्रियोंकी व मनकी वहां पहुँच नहीं होसक्ती है। यद्यपि मनके द्वारा मनन होता है व शब्दोंका आलम्बन लेना पड़ता है। परन्तु जब मन, वचन, काय तीनों थिर होजाते हैं और आत्माका उपयोग आत्माकी गुफामें प्रवेश करके विश्रांति लेता है तब आत्माका अनुभव होता है। आत्मा एक ऐसा शुद्ध सहजानन्द स्वभावका धारी है कि इसकी वार्ता करनेमें ही आनन्द आता है। इसके मननमें भी आनन्द होता है। इसके अनुभवसे तो परमानन्द होता है। आत्मानुभव ही वह मोक्षमार्ग है जिसपर

चलकर आत्माका विकास होता है—आत्मा परमात्मा होता है। बाहरी जप तप व्रत मात्र सहकारी कारण हैं। जो आपको परमात्मारूप ध्याता है वही परमात्मा होजाता है। इसलिये यहां वारवार प्रेरणा की गई है कि शुद्धात्माका ध्यान करो। श्री योगसारमें कहा है—

अप्पा अप्पउ जइ मुणहि तउ णिव्व णु लहेहि। पर अप्पा जउ मुणिहि तुहुं तहु ससार भमेहिं ॥ १२ ॥

अह पुण अप्पा ण वि मुणहिं पुण्ण वि करइ असेसु। तउ वि ण पावइ सिद्धसुहु पुणु संसार भमेसु ॥ १५ ॥

अप्पा दंसण इक्क परु अण्णु ण किं पि वियाणि। मोक्खह कारण जोईया णिच्छइ एहउ जाणि ॥ १६ ॥

भावार्थ—यदि कोई आत्माके द्वारा आत्माको अनुभव करता है तो वह निर्वाणको पाता है तथा जो कोई परको आत्मा मानता है वह संसारमें भ्रमण करता है। जो कोई बहुत पुण्य तो करे परन्तु आत्माका अनुभव न करे तो वह कभी भी सिद्ध सुखको नहीं पासक्ता है। वह संसारमें ही भ्रमेगा। मोक्षका उपाय एक आत्माका दर्शन है, और कोई भी नहीं है ऐसा जानो। हे योगी! निश्चयनयसे आत्माको ही मोक्षका कारण मानो।

---

(४३) अवधिदर्शन गाथा ८४६ से ८७२ तक।

चष्ये चष्य स उत्तं, अचष्यं आकर्न हेय संजुत्तं।
चष्ये रमन सहावं, कमल कलनं च सिद्धि सम्पत्तं ॥ १ ॥
अचष्य सुभाव स उत्तं, अवध्यवयास सरूव सजुत्तं।
उववन निधि सं सुवनं, अवहिं अवयास गुरुव गुरुचरनं ॥ २ ॥
साधु सुयं स उत्तं, सहयार अवयास धुवं धुव उवनं।
दिस दिस्टि सुइ सव्दं, पिउ संजुत्त धुवं धुव निश्चं ॥ ३ ॥
धुव उत्तं धुव कर्न. धुव उवनं अवयास हेय आकर्न।
धुव षिपि धुव सहयारं, धुव सिय कमल कलन निर्वानं ॥ ४ ॥

धुव हिय धुव हिय जुत्तं, धुव अवयास आयरन संजुत्तं ।
धुव विवान विन्यानं, धुव सिय कम्म कलन विन्यानं ॥ ५ ॥
धुव रमनं धुव सुवनं, धुवमय धुव सुवन सव्द संदस ।
धुव लष्य लष्य सुइ उवनं, धुव गम्य अगम्य कमल निर्वानं ॥ ६ ॥
धुव उत्तं धुव सुवनं, धुव रयनं धुव उवन नन्त सुइ न्यानं ।
धुव रयनं धुव गहनं, धुव पद कोड कमल निर्वानं ॥ ७ ॥
धुव गमनं धुव सहन, धुव कलनं रमन हिय रमनं ।
सह रमनं धुव कलनं, आकन च कमल विन्यानं ॥ ८ ॥
जं जं उववन सहियं, उवनं सुइ अक अर्क सुइ रमनं ।
अर्क विंद सहकारं, उवनं आकर्न कमल निर्वानं ॥ ९ ॥
सिय सिय सिय सुइ सुवनं, सिय हिय सिय विय उवन्न सुइ रमनं ।
सिय उवन उवन सुइ गमनं, सिय धुव आकर्न कमल विन्यानं ॥१०॥
सिय धुव उवन सहावं, साहिय साहंति आगम गम रमनं ।
आकर्म समय सम समयं, कमलं आकर्न कमल निर्वानं ॥ ११ ॥
उववन निहि उववन्नं, उववन आकर्न विंद सुइ रमनं ।
साहंति समय सह सुवनं, कमलं आकर्न उवन निर्वानं ॥ १२ ॥
दिसि नन्त सुइ दिस्टं, दिस्टं दिस्टी सुइ नन्त दिसि सुइ दरसं ।
दिसि दिस्टि आयरनं, आकर्न समय कलन विन्यानं ॥ १३ ॥

कमल सब्द नन्तानं, नन्तानन्त सब्द कर्म आकर्नं ।
आकर्नं कलन सुइ कमलं, कमलं सुइ कलिय केवलं न्यानं ॥ १४ ॥
कमल विंद सुइ सब्दं, सब्दं आयरन कर्नं विंदानं ।
कर्नं विंद सुइ कमलं, कमलं आवर्नं कलन निर्वानं ॥ १५ ॥
उववन अवहि निहि सुवन, अवहि महसमै साहु धुव सुइ रमनं ।
सइकारं धुव गमनं, आगम सुइ षिपिय विलय कम्मानं ॥ १६ ॥
उववन निहि सुइ अर्क, अर्क सुइ दिप्ति सुइ रमनं ।
अर्क सब्द सुइ कर्नं, कर्नं सुइ सब्द कमल कलनं च ॥ १७ ॥
हुवयार अर्क हिययारं, हिययार अर्क विंद विंदानं ।
अनन्त रमन अवयासं, समयं आकर्न कमल निर्वानं ॥ १८ ॥
हिय रमन अर्क सुइ उवनं, उवन हिय गहिर गमन गुरु वचनं ।
गमन गुप्ति सुइ सर्वं, आकर्न कमल कलन निर्वानं ॥ १९ ॥
गुपित अर्क गुरु गुरुवं, गुरुवं गुहिजं च सब्द सुइ सुवनं ।
गुरु गुपितह सुइ सब्दं, सब्दं आकर्न कलन निर्वान ॥ २० ॥
गुपितं गुहिज आकर्नं, सहिय सह समय कमल कलनं च ।
कमल कलन सुइ अर्कं, सा हिय सह विंद कन कमलं च ॥ २१ ॥
गुहिज अर्क गम अगमं, जानू पय अर्क नन्त नन्ताई ।
नन्तानन्त सु चरनं, चरनं आयरन अर्क कमलं च ॥ २२ ॥

अवहि उवन निहि सहियं, समयं संमत्त समय सुइ रमनं ।
जिन अर्क कमल सुइ दर्स, दर्स सुइ कमल उवन कलनं च ॥ २३ ॥
कलन समय सम समयं, कमलं सम कर्न कमल हिययारं ।
हिययार समय हुवयारं, समयं सह कर्न कलन निर्वानं ॥ २४ ॥
अवहि उवन निहि उवनं, उवनं निहि समय समय अवयासं ।
समय सुइ नन्त अनन्तं, समय आकर्न कमल निर्वानं ॥ २५ ॥
समय समय सुइ समयं, समयं सम दस सब्द आकर्न ।
समय उवन उव उवनं, समयं आकर्न कमल निर्वानं ॥ २६ ॥
नन्त नन्त सुइ उवनं, उवनं सह अवहि उवन निहि कमलं ।
केवल कमलं उवनं, आकर्न कर्न कमल निर्वानं ॥ २७ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(चष्ये चष्य स उत्त) चक्षुसे यहां आत्माका भाव लेना चाहिये, आत्मा उसको कहते हैं (अचष्य आकर्न हेय सजुत्त) जब आत्मामें आत्मा स्थिर होता है तब अनात्मा सम्बन्धी जो कुछ कथन सुना गया है वह सब त्यागने योग्य होजाता है अर्थात् आत्मा अपनेको पुद्गल सम्बन्धी व कर्मजनित सब विकल्पोंसे हटा लेता है, केवल आप आपमें तन्मय होजाता है, वही आत्माका असली स्वभाव है (चष्ये रमन सहाव) आत्माका स्वभाव ही यह है कि वह परसे राग द्वेष छोड़कर अपने ही निज स्वभावमें रमण करे (कमल कलन च सिद्धि सउत्त) प्रफुल्लित कमल समान शुद्धात्मामें रमण करना यही वह उपाय है जिससे सिद्ध गतिका लाभ होता है ॥ १ ॥

(अचष्य स भाव स उत्त) शुद्धात्मासे भिन्न अनात्मा सम्बन्धी स्वभाव उसको कहते हैं (अवध्यवसाय सरूव संजुत्तं) जहां मर्यादा पूर्वक ज्ञानका स्वरूप फैले। आत्माका स्वभाव अनन्त ज्ञान है। मति, श्रुत, , मनःपर्ययमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी मर्यादा रूप पदार्थोंका क्रमपूर्वक ज्ञान होता है। मतिश्रुत तो

ममलपाहुड
॥६५७॥

परोक्ष ज्ञान हैं, अवधि मनःपर्ययज्ञान रूपी पदार्थोंको ही प्रत्यक्ष मर्यादारूप जानते हैं। इसलिये वे चारों ही ज्ञान क्षयोपशम ज्ञान हैं, विभाव ज्ञान हैं, आत्माका स्वभाव नहीं है। आत्माका स्वभाव तो एक शुद्ध सहज केवलज्ञान है (उवन निधि म मुवनं) जहां आत्माके भंडारका निरोध होरहा है वह अनात्मभाव है जहांतक घातीय कर्मोंका उदय है वहांतक आत्माके स्वाभाविक गुणोंका निरोध है (अवहि अवयाम गुरुव गुरु चरन) जहां मर्यादा पूर्वक ज्ञानके साथ भारीसे भारी बाहरी चारित्र है, केवलज्ञान सहित परम यथा ख्यात चारित्र नहीं है, वहांतक अनात्मभाव है, शुद्धात्मीक भावका प्रकाश नहीं है॥ २ ॥

(साधु सुय स उत्त) आत्माको निश्चयसे स्वयं साधु या साधनेवाला मोक्षमार्गी कहा गया है (सहयार अवयाम धुव धुवं उवन) आत्मा अविनाशी है, उसका ज्ञान स्वभाव भी अविनाशी है। इसतरह ध्रुव आत्माके ज्ञानके अभ्याससे ही आत्माका ध्रुव स्वभाव प्रगट होता है (दिपि दिप्ति सुइ मन्द) वे ही शब्द या मंत्र कार्यकारी हैं जिनके द्वारा जप या ध्यान करनेसे आत्माका ज्ञान स्वभाव प्रकाशित होजावे, केवलज्ञान प्रगट होजावे (पिउ मजुत्त धुव धुव निश्च) तथा परमप्रिय ध्रुव अविनाशी निश्चय मोक्षपदका लाभ होजावे ॥ ३ ॥

(धुव उत्त धुव वर्ण) ध्रुव नित्य आत्माका ही वर्णन करना चाहिये। अर्थात् द्रव्यार्थिक नयसे आत्मा द्रव्यका स्वभाव पुनः पुनः कहना चाहिये व पुनः पुनः सुनना चाहिये जिससे पर्याय दृष्टिका मोह हटकर द्रव्य दृष्टिपर भाव जमे (धुव उवन अवयास हेय आकर्न) इसी अभ्याससे ध्रुव स्वभाव प्रकाशित होजाता है। सुना हुआ और सर्व अध्रुव ज्ञानका विकल्प त्याग दिया जाता है। क्षयोपशम ज्ञानके जितने विकल्प हैं, वे सर्व अध्रुव हैं व त्यागने योग्य हैं (धुव पिपि धुव महकार) ध्रुव आत्माके अनुभवसे ही कर्म पुद्गल जो भी ध्रुव हैं उनका क्षय होजाता है। जगतमें आत्मा द्रव्य भी ध्रुव है व पुद्गल द्रव्य भी ध्रुव है दोनोंका संयोग ही संसार है, जब आत्मा आत्मानुभव करता है तब वीतराग भावोंमें रमण करता है जिससे रागद्वेषसे बांधे हुए द्रव्यकर्म आत्माकी सत्तासे अलग होजाते हैं। अलग होना ही कर्मका नाश है (धुव सिय कमल करन निर्वान) जब अविनाशी शुद्ध कमल समान शुद्ध आत्माका दृढ अनुभव होता है, अयोग गुणस्थानमें निष्काम आत्मा होजाता है तब ही आत्माको निर्वाणका लाभ होजाता है ॥ ४ ॥

(धुव हिय धुव हिय जुत्त) जब यह आत्मा अपने अविनाशी स्वभावका प्रेमी होकर अपने अविनाशी

आत्माके हितमें या स्वात्मानुभवमें लीन होजाता है (धुव अवयास आवरन सजुत्त) जब यह शुद्ध अविनाशी ज्ञानके आचरणमें तन्मय होजाता है, एक अपनी ज्ञान चेतनाका ही स्वाद लेता है (धुव विवान विन्यानं) तब उसको अविनाशी भवसागरसे तारनेवाला केवलज्ञान प्रगट होजाता है (धुव सिय कमल कलन विन्यान) तब यह परमात्मा अपने ध्रुव शुद्ध कमल समान प्रफुल्लित आत्मामें मगन होता हुआ उसी ज्ञानमें तल्लीन रहता है ॥ ५ ॥

(धुव रमन धुव सुवनं) शुद्धात्म स्वरूपमें सदा ही रमण करना, उसीमें भलेप्रकार उपयुक्त रहना (धुव मव धुव सुवन सब्द संरसै) अविनाशी स्वभाव धारी आत्मामें भलेप्रकार एकाग्र होना, ॐ आदि शब्दोंसे जिस वस्तुस्वरूपका बोध होता है उसको भलेप्रकार देखना (धुव लष्य लष्य सुइ उवन) ऐसे लगातार धारावाही रूपसे जब शुद्धात्मा रूपी लक्ष्यपर ध्यान रक्खा जाता है तब वह स्वयं प्रकाशित होजाता है (धुव गम्य अगम्य कमल निर्वान) तब गम्य-इंद्रिय मन गोचर, अगम्य-इंद्रिय मन अगोचर इन सबका ध्रुव रूपसे ज्ञान प्राप्तकर अर्थात् केवलज्ञानी अरहन्त परमात्मा प्रफुल्लित कमलके समान होकर यह आत्मा निर्वाणको प्राप्त कर लेता है ॥ ६ ॥

(धुव उत्त धुव सुवन) ध्रुव उसीको कहा गया है जहां ध्रुव रूपसे आत्मा आत्मामें ठहर जावे (धुव रयन धुव उवन नत सुइ न्यान) ध्रुव रत्नत्रय स्वभावमें रमन करनेसे ध्रुव अनन्त ज्ञानमई यह आत्मा प्रगट होजाता है (धुव रयनं धुव गहन) तब भी ध्रुव रत्नत्रयमई रहता है, ध्रुव रूपसे आपको ग्रहण किये रहता है (धुवरद कोड कमल निर्वान) परमात्माका ध्रुव पद कमल समान स्वीकार होजाना अर्थात् सदा ही निज स्वभावमें जमे रहना निर्वाण है ॥ ७ ॥

(धुव गमन धुव सहन) ध्रुव रूपसे स्वरूपमें प्राप्त होना ही ध्रुव रूपसे विजय प्राप्त करना है, फिर कभी कर्मोंके वश जीव नहीं होगा (धुव कलन रमन हिय रमन) ध्रुव रूपसे आपसे आपको जानना सो ही अपने हितकारी स्वरूपकी रमणतामें रमण करना है (सह रमनं धुव कलनं) रमण करनेके साथ ध्रुव रूपसे अपनेको जानते रहना (आकर्नं च कमल विन्यान) जैसे कमल स्वरूप आत्माका स्वरूप जिनवाणीमें सुना है उसी-तरह भलेप्रकार आपसे आपको जानते रहना यही निर्वाण है ॥ ८ ॥

(ज ज उववन सहिय) जो कोई भी स्व भावको प्रकाश कर लेता है (उवनं सुइ अर्क अर्क सुइ रमनं) वही

सूर्यके समान प्रकाशित होजाता है और उसी सूर्यमें आप ही रमण करता है (अर्क विंद महकार) इस सूर्य समान आत्माका अनुभव बराबर बना रहता है (उवन आर्नै कमल निर्वान) जैसा जिनवाणीमें सुना था वैसा ही कमल सम आत्माको निर्वाणका लाभ होजाता है ॥ ९ ॥

(मिय मिय मिय मुइ उवन) आत्माका द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मसे रहित होकर परम शुद्ध होना ही आत्माका प्रकाश है (मिय हिय मिय विय उवन मुइ रमन) वही शुद्ध हित है, वही शुद्ध प्रिय वस्तु है, वही निज प्रकाशित स्वभावमें रमण है (मिय उवन उवन मुइ गमन) शुद्ध प्रकाशका सदा बने रहना सोई आपसे आपको जानना है (मिय धुव आर्नै कमल वि गान) वही शुद्ध ध्रुव कमलसम आत्माका ज्ञान है। जैसा जिन वाणीमें सुना था वैसा शुद्ध ज्ञानका लाभ प्राप्त करना है ॥ १० ॥

(सिय धुव उवन महाव) निर्वाणमें आत्मा शुद्ध ध्रुव प्रकाश स्वभावमें रहता है (महिय माइति अगम गम रमनं) वही निर्वाण साधनेयोग्य है। उसीको जय सिद्ध कर लिया जाता है तब यह अतीन्द्रिय आत्माको यथार्थ जान लेता है व उसीमें रमण करता है (आर्नै समय सम समं) जैसे जिनवाणीमें सुना है वैसा समभावका धारी आत्मा होजाता है (कमल आर्नै कमल निर्वान) जिस कमलका स्वरूप सुना था वैसा कमलके समान सम्पूर्णपने आत्माका विकास होजाना ही निर्वाण है ॥ ११ ॥

(उवन निहि उवन) जो आत्माकी सम्पत्ति उत्पन्न होने योग्य थी वह निर्वाणमें उत्पन्न होजाती है (उवन आर्नै विंद मुइ रमन) जैसा जिनवाणीमें सुना था वैसा आत्मानुभव या आत्मामें रमण उत्पन्न होजाता है (माइति समय मुवन) निर्वाण प्राप्त आत्माएँ अपने आत्मामें भलेप्रकार तल्लीनताको साधन कर लेते हैं (कमल आर्नै उवन निर्वान) जैसा सुना था वैसा कमल समान प्रफुल्लित आत्माका प्रगट होजाना ही निर्वाण है ॥ १२ ॥

(दिप्ति नंत मुइ दिप्टं) अनन्त ज्ञानका वहां प्रकाश स्वयं रहता है (दिप्त दिप्टी मुइ नंत दिप्ति मुइ दर्स) वहां क्षायिक सम्यग्दर्शन है व अनन्त वीर्य है व अनन्तदर्शन है (दिप्ति दिप्टि आयरन) वे परमात्मा अनंत ज्ञानके स्वभावमें ही आचरण करते हैं (आर्नै समय रुलन निर्वाणं) जैसा सुनाथा वैसा ही आत्मामें रमण सोई निर्वाण है ॥ १३ ॥

(कमल सब्द नन्तानं) कमल शब्द अनन्तानन्त गुणोंके धारी परमात्माका वाचक है (नन्तानन्त सब्द

कर्न आकर्न) अनन्तानन्त शब्द जो कानोंसे सुना है उस शब्दके अनुसार जो अनन्तानन्त गुण पर्यायका धारी है (आकर्न कलन सुइ कमलं) जैसा सुना है वैसा ही आपमें जमना सो ही कमलका स्वरूप है (कमल सुइ कलिय केवलं न्यानं) कमल वही है जहां केवलज्ञानका प्रकाश हो ॥ १४ ॥

(कमल विंद सुइ सव्द) कमलका स्वाद लेना ऐसा जो शब्द है (सव्दं आयरन कर्न विंदान) विंदानं आयरन अर्थात् स्वानुभव पूर्वक जानना ऐसा जो शब्द कानोंसे सुन पड़ता है (कर्न विंद सुइ कमल) कानोंसे जो शब्द सुन पड़ता है वही कमल स्वरूप भावका वाचक है अर्थात् जब आत्मा आपसे आपमें लय होता है तब विंद शब्दकी सफलता है (कमल आकर्न कलन निर्वान) कमल शब्द जो सुन पड़ता है यह अवस्था तब ही होती है जब आत्मा निर्वाणका स्वाद लेता है।

भावार्थ—आत्मा जब अपनेमें ठहरकर अपने गुणोंका आनन्द लेता है वहीं कमल व बिन्दु शब्दोंकी सफलता है ॥ १५ ॥

(उववन अवहि निहि सुवन) जब अवधिज्ञानकी निधिमें प्रतिष्ठापना प्राप्त होता है (अवहि सह समै साहु धुव सुइ रमन) वह अवधिज्ञान सहित आत्मा साधु अपने ध्रुव आत्म–स्वभावमें रमण करता है (सहकार धुव गमनं) इस आत्मध्यानकी सहायतासे ध्रुव अवस्थाको या निर्वाणको पहुँच जाता है (अगम सुइ विपिय विलय कम्मान) वहीं अगम्य अर्थात् इंद्रिय व मनसे अगोचर आत्मा क्षायिक भावधारी होजाता है तब उसके सब कर्म क्षय होजाते हैं ॥ १६ ॥

(उवन्न निहि सुइ अर्क) जब केवलज्ञानकी निधि प्राप्त होजाती है तब यह सूर्य समान वीतरागी व ज्ञानी प्रतापी अरहन्त होजाता है (अर्क सुइ दिप्ति दिस्टि सुइ रमन) इसे सूर्य कहो या स्वयं ज्ञान दर्शनमय कहो या स्वयं चारित्ररूप कहो एक ही बात है (अर्क सव्द सुइ कर्न) अर्क शब्द जो कानोंसे सुना है (कर्न सुइ सव्द कमल कलन च) जैसा कानसे सुना है उस शब्दके अनुसार आत्मा जब अपने कमल समान प्रफुल्लित आत्मामें मगन होता है तब वह सूर्यसम होजाता है ॥ १७ ॥

(हुययार अर्क हिययार) यह आत्मा सूर्य परम उपकारी है व परम हितकारी है, जो इसका ध्यान करता है उस हीका कल्याण होता है (हिययार अर्क विंद विंदान) यह आत्मा सूर्य आत्मानुभव करनेवालोंके लिये हितकारी है। अर्थात् अरहन्त परमात्माको समझकर आपको उसी रूप ध्याना अर्हत्पदका कारण

है (अनन्त रमन अरयास) इस आत्मामें अनन्त ज्ञानमें रमण होता है (ममय आकर्न कमल निर्वा) जैसा सुना है वैसा ही यह आत्मा कमल स्वभावी निर्वाणनाथ होजाता है ॥ १८ ॥

(हिय रमन अर्क सुइ उवनं) अपने परम हितकारी आत्मामें रमण करना सो ही सूर्य समान आत्माके उदयका कारण है (उवन हिय गहिर गमन गुरु वचनं) यह गुरुका वचन है कि तब यह हितकारी आत्मारूपी गुफाके भीतर जाकर बैठ जाता है, यही सूर्यका उदय है (गमन गुप्ति सुइ सर्व) मन, वचन, कायकी गुप्तिके साथ आप आपमें जमना सो ही सर्व कुछ साध लेना है (आकर्न कमल कलन निर्वान) जैसा जिनवाणीमें सुना है, प्रफुल्लित कमल समान आत्मामें आत्माका तन्मय होना ही निर्वाण है ॥ १९ ॥

(गुपित अर्क गुरु गुरुव) यह आत्मा गुरुओंका गुरु गुप्त सूर्य है (गुरुव गुहिज च सब्द सुइ सुवन) यह बड़ी गम्भीर आत्म गुफासे उदय होता है। ऐसा शब्द कहता है उसीसे इसका पूज्यपना है (गुरु गुपितह सुइ सब्द) अपने गम्भीर आत्मारूपी गुफामें गुप्त होजाना सो ही इन शब्दोंका अर्थ है (सब्द आकर्न कलन निर्वान) जैसा जिनवाणीमें सुना है वैसा ही यह आत्मा आत्माकी गुफामें ठहरकर निर्वाणका आनन्द लेता है ॥ २० ॥

(गुपित गुहिज आकर्न) अपनी गुप्त गुफाके भीतरसे प्रगट होना ऐसा जो सुना है (सहिय सह समय कमल कलन) सो यह आत्मा अपनेको साधता हुआ जब कमल समान शुद्धात्मामें मगन होता है तब प्रगट होजाता है (कमल कलन सुइ अर्क) ऐसे शुद्धात्मामें मगन होना ही स्वयं सूर्य समान आत्माका प्रकाश है (सहिय सह विंद कर्न कमल च) जैसा सुना है वैसा ही यह आत्मा साधन करते हुए आत्मानुभवमें मगन होजाता है ॥ २१ ॥

(गुहिज अर्क गम अगम) अपनी आत्मारूपी गुफामें मगन होनेसे ही सूर्य समान शुद्धात्माका उदय होता है जो इंद्रिय मन गोचर व इंद्रिय मन अगोचर सर्व पदार्थोंको जानता है (जानु पय अर्क नन्त नन्ताई) वह सूर्य सम आत्मा अनन्तानन्त पदार्थोंको जानता है (नन्तानन्त सु चरन) वह अनन्तानन्त गुणोंमें रमण करता है (चरन आवरन अर्क कमलं च) स्वरूपमें आचरण करना ही सूर्य है व वही कमल है ॥ २२॥

(अवहि उवन निहि सहिय) अवधिज्ञानरूपी निधिके उदय सहित साधु (समयं समत्त समय सुइ रमन) शुद्धात्माका श्रद्धान रखता हुआ अपने आप ही अपने आत्मामें रमण करता है (जिन अर्क कमल सुइ दर्स) तब वह सूर्य समान या कमल समान श्री जिनेन्द्र परमात्माका दर्शन करता है (दर्स सुइ कमल उवन कलन च)

ऐसा आत्मदर्शन करते करते वही कमल समान आत्मा होजाता है तब आपसे आपमें रमण करता है॥२३॥

(कमल समय सम समयं) कमल समान शुद्धात्मा ही समभावधारी आत्मा है (कमल सम कर्म कमल हिययार) जैसा सुना है कि समभावकी स्थिरता होना सो ही हितकारी कमल सम विकसित होजाना है (हिययार समय हुवयार) वही शुद्धात्मा हितकारी है, वही उपकारी है (समय सह कर्म करन निर्वान) जैसा सुना है कि इसी आत्माके साथ रमण करना ही निर्वाण है ॥ २४ ॥

(अवहि उवन निहि उवन) तब किसी सम्यक्ती साधुको अवधिज्ञानकी निधि प्राप्त होजाती है (उवन निहि समय समय कवयासं) जब ध्यानके अभ्याससे आत्माकी निधि ऐसी प्रगट होजाती है कि उस आत्मामें आकाशके समान अनन्त गुणोंका वास होजाता है (समय सुइ नन्त अनन्तं) तब आत्मा अनन्तानन्त गुणोंका धारी प्रगट होजाता है (समय आकर्न कमल निर्वानं) जैसा सुना है कि ऐसा कमल समान आत्मा ही निर्वाण स्वरूप है ॥ २५ ॥

(समय समय सुइ समय) आत्मा आत्माके ही ध्यानसे स्वयं परमात्मा होजाता है (समय सम दर्स सव्द आकर्नं) वह आत्मा समदर्शी या वीतरागी होजाता है जैसा वचन जिनवाणीमें सुना है (समय उवन उव उवन) वह आत्मा प्रकाश होते होते पूर्ण प्रकाश होजाता है (समयं आकर्न कमल निर्वानं) जैसा सुना है वही कमल समान आत्मा निर्वाण स्वरूप है ॥ २६ ॥

(नन्त नन्त सुइ उवनं) तब ही अनन्तानन्त गुण प्रगट होजाते हैं (उवन सह अवहि उवन निहि कमल) इस तरह अवधिदर्शन व अवधिज्ञानके उदय होनेसे कमल समान अरहन्तपदकी निधि प्रगट होजाती है (केवल कमल उवन) वही केवली कमल समान अर्हंत प्रगट हैं (आकर्न कर्न कमल निर्वान) जैसा कानोंसे सुना है वही कमल समान आत्मा निर्वाण स्वरूप है ॥ २७ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीको अवधि दर्शन कहा गया है। अवधि दर्शन सम्यग्दृष्टी हीको होता है। अवधिज्ञानके पहले अवधिदर्शनोपयोग होता है। जो कोई सम्यग्दृष्टी है वही मोक्षका पात्र है। यह सम्यक्ती यद्यपि मति, श्रुत, अवधि तीन विभाव ज्ञानोंका धारी है तथापि इसको अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपका, आत्माके अनन्त गुणोंका, आत्माके अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्र आदि शुद्ध गुणोंका पूर्ण विश्वास है। श्रद्धापूर्वक यह सम्यक्ती अपनेको

शुद्ध अनुभव करता है। शुद्धात्माके ध्यानसे ही यह शुद्ध होकर निर्वाणका नाथ होजाता है। आत्माको सूर्य और कमलकी उपमा दी है। जैसे सूर्य जबतक मेघोंसे छाया होता है पूर्ण प्रकाश नहीं करता है। जब मेघ दूर होजाता है तब स्वयं ही पूर्ण रूपसे चमक जाता है, उसी तरह जबतक आत्मा कर्मोंके आवरणसे ढका है तबतक वह परमात्मा रूप नहीं होता। जब कर्मोंका आवरण स्वात्मध्यानके प्रतापसे हट जाता है तब यह सूर्य सम सदाके लिये अनन्तज्ञानादि गुणोंका प्रगट भोक्ता परमात्मा होजाता है। जैसे कमल मुदित होता है तब उसकी शक्तियां ढकी होती हैं वैसे यह आत्मा जबतक कर्मोंके अंधकारमें है तबतक मुदित है। जब सूर्योदयसे कमल खिल जाता है तब वह कमल अपने पूर्ण विकासको पालेता है। इसी तरह कर्मोंका अंधेरा स्वानुभवरूपी सूर्यके प्रकाशसे जब दूर होजाता है तब अपने सर्व गुणोंको विकसित करने-वाला कमलसम आत्मा प्रकाशित होजाता है। जैसे सूर्य पूर्व दिशासे उदय होता है वैसे यह आत्मा स्वानुभवरूपी गुफासे ही उदय होता है। जब मन, वचन, कायकी तीनों गुप्तियोंको रोककर आत्मा आपसे आपमें विश्राम करता है तब यह स्वयं अरहन्त परमात्मा या सिद्ध परमात्मा होजाता है। जिनवाणीने जैसा मुक्तिका स्वरूप बताया है वैसा ही स्वानुभवके प्रतापसे प्राप्त होजाता है। स्वानुभव तब ही होता है जब उपयोग आत्माके स्वरूपमें ऐसा एकाग्र किया जावे कि वहां न तो कोई मन सम्बन्धी चिन्तवन हो, न वचनके जल्प हो, न कायका हलन चलन हो। मैं आत्मा हूं, ज्ञाताद्दष्टा हूं, यह विकल्प भी स्वानुभवमें नहीं रहता है, निर्विकल्प समाधि पैदा होजाती है। जैसा द्रव्यसंग्रहमें कहा है—

मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किंचि जेण होइ थिरो। अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव हवे परमज्झाणं ॥ ५६ ॥

अर्थात्—मत कुछ कायकी चेष्टा करो, मत कुछ बोलो, मत कुछ चिंतवन करो जिससे आत्मा थिर होकर आपसे आपमें रत होजावे यही उत्कृष्ट ध्यान है, यही स्वानुभवकी दशा है। इसकी प्राप्तिके लिये साधकको जिनवाणीके शब्दोंपर विश्वास लाकर निर्वाणका व निर्वाण मार्गका श्रद्धान करना जरूरी है। फिर ॐ, ह्रीं, श्रीं आदि मन्त्रोंके आश्रयसे आत्माका मनन करना जरूरी है। मनन करते २ एकाएक स्वानुभव उसी तरह पैदा होता है जिस तरह दूधको विलोते हुए मक्खन पैदा होता है। इंद्रियोंसे व मनसे जो कुछ ग्रहण किया था वह सब विकल्प भाव भी स्वानुभवकी दशामें छोड़ने पड़ते हैं। यहां चक्षुसे मतलब जानने देखनेवाले आत्मासे लिया गया है। आत्मा ध्रुव है, इसी ध्रुवके ध्यानसे ध्रुव सिद्धपद होजाता

है। निर्वाणमें भी ध्रुवरूपसे स्वानुभव व आत्मरमण बना रहता है। वास्तवमें आत्मदर्शनसे ही आत्माका प्रकाश होता है। श्री योगेन्द्रदेव योगसारमें कहते हैं—

जेहउ सुद्ध आयासु जिय तेहउ अप्पा उत्तु। आयासु वि जड जाणि जिय अप्पा चेयणुवंतु ॥ ५८ ॥
णासग्गि अब्भिंतरह जे जोवहि असरीरु। बाहुडि जम्म ण संभवहि पिवहि ण जणणीखीरु ॥ ५९ ॥

भावार्थ—हे जीव ! जैसा शुद्ध आकाश है वैसा ही आत्मा है ऐसा जान। आकाश जड़ है तब आत्मा चेतन स्वरूप है। नाशाग्र दृष्टि धारकर जो कोई भीतर शुद्ध आत्माको जो शरीरसे भिन्न है अनुभव करता है, वह स्वानुभव करते करते मुक्त होजाता है, फिर वह जन्म नहीं धारण करता है, फिर वह माताका दूध नहीं पीता है।

---

(४७) सुह गम्य रमन फूलना गाथा ८७३ से ८९३ तक।

जिन उत्त उवन पौ-उवन उवन मौ, जिन न्यान विन्यान संजुत्तु।
उव उवन दिस्टि मौ सब्द सहज लै, तं पदम कमल सुइ उत्तु ॥ १ ॥
सुह गम्य रमन दुह गम्य गलन, सूष्म परिनाम स उत्तु।
सुह गम्य सहज सुइ नन्द अनन्द चौ, सुइ न्यान विन्यान संपत्तु ॥
सजोय चतुस्टं मुक्ति पऊ ॥ २ ॥ (आचरी)
सुइ कंध ममल पौ दुह कंध समल चौ, उत्पन कमल सभाउ।
हिययार रमन मौ, तं अरुह चलन पौ, तं अर्क बिंद स सहाउ ॥
सुह गम्य रमन० ॥ ३ ॥
·आगन्तु अर्थ रुई, रमन सहज सुई, हिय हुवयार संजुत्तु।
उव उवन चष्य मौ, दिस्टि इस्टि रै, चष्य अचष्य पउत्तु ॥ ४ ॥ सुइ० ॥

सहयार समय सुइ, नन्त ममल मौ, तं गुपित न्यान संजुत्तु ।
तं गुहिज कमल रुई, सहजनद मौ, गुरु गुपित हिययार संजुत्तु ॥ ५ ॥ सुह० ॥
गुरु गुपित दिट्ठ मौ, विवान सहज सुई, पय पद विंद स उत्तु ।
तं अर्थति अर्थह, समय समर्थह, पंचार्थ ममल संजुत्तु ॥ ६ ॥ सुह० ॥
तं परम परम मौ, नन्द आनन्द मौ, चेयन नन्द सहाउ ।
तं सहजनन्द मौ, विन्यान न्यान पौ, परमानन्द सहाउ ॥ ७ ॥ सुह० ॥
तं नन्त न्यान पौ, दर्स दर्स मौ, वीर्यानन्त सभाउ ।
सुह गम्य रमन रस, विन्यान विनय जस, तं नन्त सौष्य स सहाउ ॥ ८ ॥ सुह० ॥
तं ध्यान उत्तु जिन, समय विलय मन, न्यान विन्यान सुभाउ ।
जं कम्म गलिय, सुह गम्य रमन रै, तं परम न्यान स सहाउ ॥ ९ ॥ सुह० ॥
आरतिहि अरति पौ, अनिस्ट संजोय मौ, तं इस्ट विओय सजुत्तु ।
तं पिड़ चिंता मै, वर पर्जय रय, निदान नरय संजुत्तु ॥ १० ॥ सुह० ॥
आरत्ति हिरयन पउ, इस्ट संजोय मउ, न्यान विन्यान सचिंतु ।
तं नन्त सहज रुई, नन्द परम पउ, तं पर पर्जय विलयन्तु ॥ ११ ॥ सुह० ॥
तं रौद्र ध्यान सुइ, सहयार हियार मौ, हिंस नन्द स उत्तु ।
अनृत पर्जय रय, स्तेय अनृत मौ, तं विषय नरय संजुत्तु ॥ १२ ॥ सुह० ॥
तं रौद्र जिनुत्तु कम्मु विलय सुई, न्यान विन्यान सहाउ ।
जिन उत्त नन्द मौ कम्मु गलिय सुई, षिपि कम्म मुक्ति सभाउ ॥ १३ ॥ सुह० ॥

तं धम्मु उत्तु जिनु अन्य विचय मन, अपाय विचय स भाउ।
विपाक विचय सस्थान निचय, तं ममल धम्म स सहाउ ॥ १४ ॥ सुह० ॥
तं धम्म धरन सुई अर्थति अर्थ मउ, लषियो लष्य सु भाउ।
तं रमन न्यान पउ चक्कहर इच्छ मौ, जिन नाथ रमन स सहाउ ॥ १५ ॥ सुह० ॥
तं सुल्क ज्ञान पौ, ममल न्यान मौ, तं नन्तनन्त सुइ उत्तु।
तं कम्म गलिय तं, नन्त नन्त रैं, भय षिपिय मुक्ति संपत्तु ॥ १६ ॥ सुह० ॥
पृथक् वित्र करैं, विचार ममल मौ, एकत्त वित्रक जिन उत्तु।
विचार न्यान मौ, विन्यान सहज सुइ, सुह गम्य सिद्धि संपत्तु ॥ १७ ॥ सुह० ॥
सुष्यम परिनवै तं ममल सहज रैं, सूष्यम सहाउ स उत्तु।
सुइ षिपिय षिपक मौ, नन्त न्यान पौ, तं मुक्ति रमन संजुत्तु ॥ १८ ॥ सुह० ॥
जिनउ क्रांति मौ, उत्पन्न न्यान रैं, अर्थति अर्थ संजुत्तु।
प्रतिपाद परम पय, सुहगम्य सहज रैं, जिननाथ सिद्धि संपत्तु ॥ १९ ॥ सुह० ॥
विप्रिय भय गलिय, कुमय मय विलय, पर पर्जय विलयंतु।
सुह गम्य रमन सुई, नन्त ममल मय, सुइ सहज सिद्धि सम्पत्तु ॥ २० ॥ सुह० ॥
जं ध्यान उत्तु, जिन न्यान समय गन, तं समय संजुत्तु पउत्तु।
उव उवन उत्तु जिनु, तरन तरन गन, सम समय सिद्धि संपत्तु ॥ २१ ॥ सुह० ॥

अन्वय सहित अर्थ—(जिन उत्त उवन पौ उवन उवन मौ) जिनेन्द्रने जैसा कहा है वैसा परम ज्योतिस्वरूप पद उदय होगया है (जिन न्यान विन्यान संजुत्त) यह पद वीतराग है व केवलज्ञान स्वरूप है (उव उवन दिष्टि मौ)

यह पद प्रकाशित दर्शन स्वरूप है अर्थात् अनंतदर्शनमई है (सब्द सहज ले) यह शब्दोंके द्वारा सहज लय या सहज स्वरूपके ध्यानसे प्रगट होता है (तं पदम कमल सुइ उत्तु) इसी पदको पदम या कमल स्वरूप अरहन्त कहते हैं ॥ १ ॥

(सुह गम्य रमन) सुखसे अनुभव करने योग्य या सुखस्वरूप अनुभवने योग्य जो आत्मा है उसमें रमण स्वरूप यह परमात्म पद है (दुह गम्य गलन) दुखसे अनुभवने योग्य जो विश्राम भाव है या संसार परिणति है या चतुर्गतिमय अवस्था है उसका वहां क्षय होगया है (सूष्म परिनाम स उत्तु) उस परमात्मपदमें जो शुद्धोपयोग है उसको इंद्रिय व मनसे अगोचर सूक्ष्म परिणाम कहते हैं (सुह गम्य सहज सुह नन्द आनन्द मौ) वही पद सुखसे अनुभव करने योग्य सहज ही परमानन्दमें मगन स्वरूप है (सुइ न्यान विन्यान संजुत्तु) वह पद शुद्ध ज्ञान सहित है (संजोय चतुष्ट मुक्ति पऊ) वहां अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख तथा अनन्त वीर्य, इन चार चतुष्टयका संयोग है वही पद मुक्तिपद है ॥ २ ॥

(सुह कंष ममल पौ) वह पद सुखका समूह है व निर्मल है (दुह कष सयल चौ) चार गतिके अशुद्ध पद सब दुःखोंके समूह हैं (उत्पन कमल सभाउ) परमात्मपदमें कमल स्वभावी आत्माका प्रकाश होजाता है (हिययार रमन मौ) वही पद हितकारी है व स्वात्म-रमणरूप है (त अरुह चलन पौ) वही पद अरहन्त स्वभावमें परिणमन स्वरूप है (तं अर्क विंद स सहाउ) वही सूर्य समान है, वह स्वानुभूतिमई स्वाभाविक है ॥३॥

(आगंतु अर्थ रुई) आनेवाले मोक्ष पदार्थमें गाढ़ रुचि इसी पदमें है, इसी पदसे परमावगाढ़ सम्यक्त कहते हैं (रमन सहज सुई) वही स्वभावमें रमण-स्वरूप पद है (हिय उवयार संजुत्तु) यही पद हितकारी व उपकारी है (उव उवन चष्य मौ) यहां प्रकाशमान आत्मदर्शन होरहा है (दिष्ट इष्टि रै) यहां लगातार दृष्टि अपने इष्ट आत्माकी तरफ है (चष्य अचष्य पउत्तु) इसी पदमें रमण करनेसे इंद्रियगोचर व अतीन्द्रियगोचार ज्ञानका लाभ होजाता है ॥ ४ ॥

(सहयार समय सुइ) वही सहायकारी आत्मीक पद है (नंत ममल मौ) वही पद अनन्त है व शुद्ध है (तं गुपित न्यान संजुत्त) उसी पदमें गुप्त ज्ञान व आत्म ज्ञान है (त गुहिज कमल रुइ) वही आत्मीक गुफासे प्रगट होनेवाले कमल समान परमात्म पदमें गाढ़ रुचि है (सहजनद मौ) वही पद सहजानंद मई है (गुरु गुपित हिययार संजुत्तु) यही पद श्रेष्ठ है, वही गुप्त है, अनुभवगोचर है, वही परम हितकारी है ॥ ५ ॥

(गुरु गुपित विद्व मौ) वही पद श्रेष्ठ है, वही गुप्त सम्यग्दर्शन स्वरूप है या अनुभवगोचर आत्मदर्शन स्वरूप है (विवान सहज सुई) वही पद मोक्षद्वीपमें लेजानेको जहाज है, वही जहाज स्वाभाविक पद है (पय पद विंद स उत्तु) उसी पदको पद विंद या स्वानुभवरूप पद कहते हैं (त मर्थति अर्थह) वही पद रत्नत्रय स्वरूप पदार्थ है (समय समर्थह) वही अपने स्वरूपमें रमण करनेकी सामर्थ्य रखता है (पंचार्थ ममल सजुत्त) उसी पदमें पांच शुद्ध पदार्थ झलकते हैं। भावार्थ—वहीं अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु पांच पद है या वहीं पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल पांच द्रव्योंका यथार्थ झलकाव है व वहीं पांच शुद्ध गुण हैं—अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य, क्षायिक सम्यक्त व क्षायिक चारित्र ॥ ६ ॥

(त परम परम पौ) वही पद सर्व श्रेष्ठपदोंमें श्रेष्ठ है परमात्मपद है (नंद आनद मौ , वही पद आनन्दमय भावमें मगन स्वरूप है (चेयन नंद सहाउ) वही पद चिदानन्द स्वभावरूप है (त सहजनद मौ) वही सहजानन्दमई है (विन्यान न्यान मौ) वही केवलज्ञानमई पद है (परमानद सहाउ) वही परमानन्द स्वभावरूप है ॥ ७ ॥

(त नंन न्यान पौ) वही पद अनन्तज्ञान स्वरूप है (दर्स दर्स मौ) वही क्षायिक सम्यग्दर्शन स्वरूप है तथा अनन्तदर्शनमई है (वीर्यानत समाउ) वही पद अनन्तवीर्य स्वभावरूप है (सुइ गम्य रमन रस) वही पद सुखमें अनुभवने योग्य है, वही स्वात्मीक रसमें रमणता है (विन्यान विनय जस) वही पद ज्ञानमें विनय स्वरूप है, अर्थात् ज्ञानचेतनारूप है। वही पद परम यशस्वी है (त नन्त सौख्य स सहाउ) वही पद अनन्तसुख स्वभावरूप है ॥ ८ ॥

(त ध्यान उत्तु जिन) उसी पदमें यथार्थ ध्यान कहा गया है। क्योंकि वहां लगातार स्वरूप संवेदन है (समय विलय मन) वहां आत्माके रसमें मनका लोप होगया है। अर्थात् मन सम्बन्धी सर्व विकल्प मिट गये हैं (न्यान विन्यान सुभाउ) वही परम ज्ञान स्वभावरूप है (ज कम्म गलिय) उसी ध्यानसे कर्म क्षय होते हैं (सुइ गम्य रमन रै) वहीं सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें लगातार रमणता है (त परम न्यान स सहाउ) वही श्रेष्ठ ज्ञान स्वभाव है ॥ ९ ॥

(आरतिहि अरतियौ) आर्तध्यान दुःख अनुभव स्वरूप पद है (अनिष्ट सजोय मौ) प्रथम आर्तध्यान अनिष्ट वस्तुके संयोगसे उत्पन्न होता है (तं इष्ट विओय संजुत्त) दूसरा आर्तध्यान इष्टके वियोगसे होता है

ममलपाहुड
॥३६९॥

(तं पिड चिन्ता मौ) तीसरा आर्तध्यान पीड़ा चिन्तवन है (पर पर्जय रय निदान नरय सजुत्त) चौथा आर्तध्यान पर पर्यायमें रत–विषयभोगकी कांक्षारूप निदान भाव रूप है। ये चारों ही आर्तध्यान अति तीव्र होते हैं तो नर्क आयुको बन्ध कर देते हैं। मध्यम हो तो तिर्यंचायु बांधते है। ये चारों ही ध्यान आर्तस्वरूप दुःखानुभवरूप त्यागने योग्य हैं ॥ १० ॥

(आरति हि रमन पउ) निश्चयनयसे आरति ध्यान यह है जहां रत्नत्रय पदमें सब तरफसे रति हो प्रेम हो (इस्ट पजोय मउ) जहां परम इष्ट परमात्माके स्वभावका सयोग हो (ग्यान वि यान रु चिंतु) जहां भेद-विज्ञानपूर्वक शुद्ध ज्ञान स्वभावका चिन्तवन हो (त नन्त सहज रुई, जहां स्वाभाविक अनन्त गुणमई आत्मामें रुचि हो (नद परम पउ) जहां परमात्माके पदमें आनन्द हो (त पर पर्जय विरयंतु) जहां रागादि पर परिणतिका लोप होगया हो। निश्चयसे स्वात्मरमणरूप आरति ध्यान है। यह उपादेय है या ग्रहण करनेके योग्य है ॥ ११ ॥

(त रौद्र ध्यान सुह) वही खोटा रौद्रध्यान है (सहयार हिंसा मौ) जो मदको या दुष्ट भावमें उन्मत्तताको सहकारी है व बढ़ानेवाला है (हिंस नन्द स उत्तु) प्रथम रौद्रध्यान हिंसानंदी है जहां हिंसामें आनन्द माना जाता है (अनृत पर्जय रय) दूसरा रौद्रध्यान मिथ्या परिणतिमें रमण रूप मृषानन्दी है (स्तय अनृत मौ) तीसरा रौद्रध्यान मिथ्यारूप चोरीमें आनन्द स्वरूप है (तं विषय नरय संजुत्त) चौथा रौद्रध्यान विषयानन्द स्वरूप है। ये चारों ही रौद्रध्यान नरकायुके बन्धके कारण हैं ॥ १२ ॥

(तं रौद्र जिनुत्त) निश्चयसे जिनेन्द्रने रौद्रभाव या क्रूर भाव उसे ही कहा है जिस भावसे (कम्म विलय सुई) कर्मरूपी शत्रुओंका संहार किया जावे। कर्मोंका हिंसाकारक भाव ही सच्चा स्वात्मरमण रूप रौद्रध्यान है (न्यान विन्यान सभाउ) वह शुद्ध ज्ञान स्वभावरूप है (जिन उत्त नन्द मौ , वह ध्यान आनन्दमई है, परमानन्दमई है ऐसा जिनेन्द्रने कहा है (कम्मु गलिय सुई) उससे सब कर्म क्षय होजाते हैं (पिपि कम्म मुक्ति मभाउ) तथा कर्मोंके क्षय होनेसे मुक्तिका स्वभाव प्रगट होजाता है ॥ १३ ॥

(त धम्म उत्तु जिन) श्री जिनेन्द्रने धर्मध्यानको कहा है (अ य विनय मन) प्रथम धर्मध्यान आज्ञा विचय-रूप है जहां जिनेन्द्रकी आज्ञानुसार तत्वोंका मनन किया जावे (अपाय विचय सभाउ) दूसरा धर्मध्यान अपाय विचय है जहां यह विचार किया जावे कि मेरे रागादि भावोंका व कर्मोंका नाश हो या दूसरे जीवोंके

रागादि भावोंका व कर्मोंका नाश हो (विपाक विचय) तीसरा धर्मध्यान विपाक विचय है, जहां सांसारिक दुख या सुखको देखकर कर्मोंके फलका विचार किया जावे कि यह सर्व सुख दुःख जीवोंके अपने ही बांधे कर्मोंके फल हैं (संस्थान विचय) चौथा धर्मध्यान संस्थान विचय या संस्थान निचय है, जहां श्रद्धापूर्वक छः द्रव्यमई लोकका स्वरूप विचारा जावे या अपने ही आत्माका अमूर्तीक आकार मनन किया जावे (त ममल धम्म स सहाउ) यही शुद्ध धर्मध्यान अपने ही आत्माका स्वभाव है ॥ १४ ॥

(तं धम्म धरन सुइ) निश्चय धर्मध्यानका धारण करना वह है जो (अर्थति अर्थ मउ) रत्नत्रयमई पदार्थमें परिणमन किया जावे (लपियो लष्य सुभाउ) जहां अनुभवनेयोग्य आत्माका स्वभाव अनुभवमें लाया जावे (तं रमन न्यान पउ) जहां निज ज्ञानपदमें रमण किया जावे (चक्रहर इच्छ मौ) जहां इच्छा और मदके चक्रको तोड़ा जावे, अनादिकालसे पर पदार्थकी इच्छा व परिणतिमें अहँकारका चक्र चला आया है उसको जहां खण्डन किया जावे, निस्पृह भाव व निरहँकार भावमें रमण किया जावे (जिननाथ रमन स सहाउ) जहां श्री जिनेन्द्र परमात्मामें रमण किया जावे या अपने स्वभावमें रहा जावे ॥ १५ ॥

(त सुल्क ज्ञान पौ) शुक्लध्यानका पद ऐसा है (ममल न्यान मौ) जो शुद्ध ज्ञान मई है (त नत नत सुइ उत्तु) उसी ज्ञानमई पदको अनन्तानन्त गुणधारी कहा है। अर्थात् वहां अनन्त गुणधारी आत्माका शुद्धानुभव है (त कम्म गलिय) इसीसे कर्मोंका क्षय होता है (त नत नत रे) इसमें अनन्तानन्त गुणधारी आत्मामें धारावाही लीनता होती है (भय पिपिय मुक्ति संपत्तु) इसीसे सर्व भय दूर होकर यह आत्मा मोक्षकी प्राप्ति कर लेता है ॥ १६ ॥

(पृथकवित्र करै विचार ममल मौ) पहला शुक्लध्यान पृथक्त्व वितर्क विचार है, जो शुद्धोपयोगरूप है। इस ध्यानमें अबुद्धिपूर्वक पलटन होती है। एक योगसे दूसरे योगमें, एक शब्दसे दूसरे शब्दमें, एक ध्येय पदार्थसे दूसरेमें द्रव्यको छोड़, पर्यायमें पर्यायको छोड़, गुणमें एक गुणको छोड़ दूसरे गुणमें पूर्व अभ्यासमें उपयोगकी फिरन होजाती है, परन्तु ध्याताको इस पलटनकी खबर नहीं होती है। यह शुक्लध्यान आठवें अपूर्वकरण गुणस्थानसे प्रारम्भ होकर बारहवें क्षीण मोह गुणस्थानके पहले पद तक रहता है। इसीसे सर्व मोहनीय कर्म सर्वथा क्षय होजाता है (एकत्व वितक जिन उत्तु) दूसरा शुक्लध्यान एकत्व वितक अविचार है। वहां किसी एक योगमें, किसी एक शब्दमें, किसी एक ध्येयमें एकाग्रता होजाती है, पलटन नहीं होती

है। यह बारहवें क्षीण मोह गुणस्थानमें होता है। इससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय तीन घातीय कर्मोंका क्षय होजाता है (विचार न्यान मौ) इन दोनों शुक्लध्यानोंमें ज्ञानमई आत्माका अनुभव है (विन्यान सहज सुइ) यही सहज विज्ञान है (सुइ गम्य सिद्धि संपत्तु) इसीके अनुभवने योग्य आत्मा सिद्धिको पालेता है अर्थात् परमात्मा होजाता है अरहन्त होकर फिर सिद्ध होजाता है ॥ १७ ॥

(सुष्म परिनवै त ममल सहज रै) तीसरा शुक्लध्यान सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति है। जब सयोग केवली जिन तेरहवें गुणस्थानके अन्तमें अपने सहज योगसे सूक्ष्म योगके परिमनमें होते हैं वहां भी शुद्ध सहज भावमें धारावाही रमणता है। यह ध्यान अन्तर्मुहूर्तके लिये होता है। इसकेद्वारा चौदहवें अयोग केवलि जिन गुणस्थानमें आरोहण होता है (सूष्म सहाव स उत्तु) इसको सूक्ष्म योग स्वभाव कहा गया है (सुइ पिपिय विपक मौ) यह क्षायिक भाव है, कर्मोंका क्षय करनेवाला है (नंत न्यान पौ) वहां अनन्तज्ञानका पद रहता है (तं मुक्ति रमन सजुत्तु) इस तीसरे शुक्लध्यानमें आत्मा मुक्तिके स्वभावमें ही रमण करता है ॥ १८ ॥

(जिन उत्काति मै) चौथा शुक्लध्यान व्युपरत क्रिया निवर्ति है जहां सर्व आत्माके प्रदेशोंका सकम्प पना बन्द होजाता है। यह चौदहवे गुणस्थानमें इतनी देर तक रहता है जितनी देरतक अ, इ, उ, ऋ, लृ, ये पांच लघु अक्षर बोले जावें। यह वह अवस्था है जब श्री जिनेन्द्रका आत्मा सर्व कर्मोंसे व सर्व शरीरसे छूटकर ऊर्ध्वगमन करता है। इस शुक्लध्यानसे आयु, नाम, गोत्र, वेदनीय चारों अघातीय कर्म क्षय होजाते हैं। (उत्पन्न न्यान रै) तब शरीर रहित ज्ञान मूर्ति सिद्धावस्था लगातार प्रगट रहती है (अर्थति अर्थ सजुत्तु) श्री सिद्धात्मा रत्नत्रयमई भावोंसे युक्त शुद्ध आत्म-पदार्थ अपनी सत्ताको स्थिर रखते हैं (प्रतिशद परम पय) परमात्माके पदमें स्थिर होजाते हैं (सुइ गम्य सहजरै) जहां सुखसे अनुभवने योग्य आत्माका सहज ही धारावाही अनुभव होता है (जिननाथ सिद्धि सपत्त) इस तरह श्री जिनेन्द्र सिद्धपदको प्राप्त कर लेते हैं ॥ १९ ॥

(विप्रिय मय गलिय) सिद्धावस्थामें सर्व विपरीत भाव व सर्व भय गल जाते हैं (कुमय मय विलय) कुमति या मद सर्व विला जाते हैं (पर पर्जय विलयन्तु) पर परणति नहीं रहती है (सुइ गम्य रमन रुई) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमणताकी गाढ रुचि रूपी सम्यक्त भाव रहता है (नत ममल मय) वे अनन्त गुणोंके धारी शुद्ध रहते हैं (सुइ सहज सिद्धि सपत्तु) यही सहज सिद्धिका लाभ है ॥ २० ॥

(ज ध्यान उत्तु जिन) जिस ध्यानको श्री जिनेन्द्रने मोक्षका कारण कहा है (न्यान समय गन) वह ज्ञानमई

आत्माओंका अनुभव है (तं समंव संजुत्तु पउत्तु) वह ध्यान स्वरूपाचरण चारित्र सहित ही पाया जाता है (उव उवन उत्तु जिन) उसीको श्री जिनेन्द्रने सदा उदयरूप कहा है (तरन तरन गन) वही ध्यान भवसागरसे तारनेवाला जहाज है (सम समय सिद्धि संपत्तु) इसी ध्यानसे समभाव सहित आत्मा होकर सिद्धिको पालेता है ॥२१॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें प्रथम ही परमात्मा पदकी महिमा गाई गई है जिसमें दिखाया है कि परमानन्दमई, अनन्त चतुष्टयधारी, सर्व रागादि मलरहित, आत्मामें रमणतारूप, परम सामर्थ्यधारी, अरहंत व सिद्ध पद है। जब इस जीवको यह पद प्राप्त होजाता है तब यह जीव सदाके लिये भवभ्रमणसे छूट जाता है। और परम स्वाधीन होकर नित्य अपनी ही शुद्ध परिणतिमें रमण करता है। हरएक भव्य जीवको इस परमात्म पदका प्रेमी बनना चाहिये और इसकी प्राप्तिका उपाय करना चाहिये। फिर यहां इसका साधन आत्मध्यान बताया है। शुद्धात्माके ध्यानसे ही आत्मा शुद्ध होता है। जैन सिद्धान्तानुसार ध्यानके चार भेद हैं–आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान, और शुक्लध्यान। उनमें दो पहले ध्यान अशुभ हैं, पाप बंधकारक हैं, भावोंको मलीन रखनेवाले हैं, वृथा ही इस भवमें व परभवमें बुरा करनेवाले हैं। अतएव हितकांक्षीको उचित है कि इन दोनों ध्यानोंसे बचे तथा धर्मध्यानका अभ्यास करे व शुक्लध्यानकी भावना भावे। इस पंचमकालमें धर्मध्यान चौथे गुणस्थानसे लेकर सातवें गुणस्थान तक होसक्ता है। शुक्लध्यानके योग्य शरीरका संहनन नहीं है। तीन उत्तम संहननवालोंके ही शुक्लध्यान होता है। ये तीनों प्रकारकी अस्थियां पंचमकालके जन्म प्राप्त मानवोंमें नहीं होती हैं। शुक्लध्यान विना कर्मोंका क्षय नहीं होता है। इसीलिये यहां भरतक्षेत्रमें आज कल कोई जीव सीधा मोक्ष नहीं प्राप्त कर सक्ता है, धर्मध्यानसे स्वर्ग जासक्ता है। स्वामीने बड़ी विद्वत्तासे आरति ध्यानको आत्मध्यान सिद्ध किया है व कर्म-संहारकारी आत्मध्यानको ही सच्चा रौद्रध्यान बताया है। कर्मोंको क्षय करे वही रुद्र है या रौद्र भावधारी है। व्यवहारनयसे मोक्षमार्गमें उपकारी धर्ममय शुक्लध्यान है, निश्चयनयसे एक शुद्धात्मानुभवरूप ही है। ध्यान ही कर्मोंका क्षय कर देता है। यह शुद्धात्मानुभवरूप परिणति सिद्धावस्थामें भी बनी रहती है। सिद्ध भगवान सदा ही अपने आत्माके भीतर ही रमण करते रहते हैं। हम सबको चाहिये कि हम श्रद्धापूर्वक आत्मध्यानका अभ्यास करें। श्री तत्वार्थसारमें श्री अमृतचन्द्राचार्य ध्यानका स्वरूप इस भान्ति कहते हैं—

ममलपाहुड ॥३७३॥

आर्तं रौद्रं च धर्मं च शुक्लं चेति चतुर्विधम् । ध्यानमुक्तं परं तत्र तपोऽङ्गमुभयं भवेत् ॥ ३५ ॥
प्रियभ्रंशेऽप्रियप्राप्तौ निदाने वेदनोदये । आर्तं कषायसंयुक्तं ध्यानमुक्तं समासतः ॥ ३६ ॥
हिंसायामनृते स्तेये तथा विषयरक्षणे । रौद्रं कषायसंयुक्तं ध्यानमुक्तं समासतः ॥ ३७ ॥
एकाग्रत्वेऽतिचिन्ताया निरोधो ध्यानमिष्यते । अन्तर्मुहूर्ततस्तच्च भवत्युत्तमसंहते ॥ ३८ ॥
आज्ञापाय विपाकाना विवेकाय च संस्थिते । मनसः प्रणिधानं यद्धर्मध्यान तदुच्यते ॥ ३९ ॥
प्रमाणीकृत्य सार्वज्ञीमाज्ञामर्थावधारणम् । गहनाना पदार्थानामाज्ञाविचयमुच्यते ॥ ४० ॥
कथं मार्गं प्रपद्येरन्नमी उन्मार्गतो जनाः । अपायमिति या चिन्ता तदपायविचारणम् ॥ ४१ ॥
द्रव्यादिप्रत्ययं कर्म फलानुभवनं प्रति । भवति प्रणिधानं यद्विपाकविचयस्तु सः ॥ ४२ ॥
लोकसंस्थानपर्यायस्वभावस्य विचारणम् । लोकानुयोगमार्गेण संस्थानविचयो भवेत् ॥ ४३ ॥
शुक्लं पृथक्त्वमाद्यं स्यादेकत्वं तु द्वितीयकम् । सूक्ष्मक्रियं तृतीयं तु तुर्यं व्युपरतक्रियम् ॥ ४४ ॥
द्रव्याण्यनेकभेदानि योगैर्ध्यायति यत्त्रिभी. । शान्तमोहस्ततो ह्येतत्पृथक्त्वमिति कीर्तितम् ॥ ४५ ॥
श्रुतं यतो वितर्कः स्याद्यतः पूर्वार्थशिक्षित । पृथक्त्वं ध्यायति ध्यानं सवितर्कं ततो हि तत् ॥ ४६ ॥
अर्थव्यञ्जनयोगाना वीचारः सङ्क्रमो मतः । वीचारस्य हि सद्भावात् सवीचारमिदं भवेत् ॥ ४७ ॥
द्रव्यमेकं तथैकेन योगेनान्यतरेण च । ध्यायति क्षीणमोहो यत्तदेकत्वमिदं भवेत् ॥ ४८ ॥
श्रुतं यतो वितर्कः स्याद्यतः पूर्वार्थशिक्षित । एकत्वं ध्यायति ध्यानं सवितर्कं ततो हि तत् ॥ ४९ ॥
अर्थव्यञ्जनयोगाना वीचारः सङ्क्रमो मतः । वीचारस्य ह्यसद्भावादवीचारमिदं भवेत् ॥ ५० ॥
अवितर्कमवीचारं सूक्ष्मकायावलम्बनम् । सूक्ष्मक्रियं भवेद्ध्यानं सर्वभावगतं हि तत् ॥ ५१ ॥
काययोगेऽतिसूक्ष्मे तद्वर्तमानो हि केवली । शुक्लं ध्यायति संरोद्धुं काययोगं तथाविधम् ॥ ५२ ॥
अवितर्कमवीचारं ध्यानं व्युपरतक्रियम् । परं निरुद्धयोगं हि तच्छैलेश्यमपश्चिमम् ॥ ५३ ॥
तत्पुनः रुद्धयोगः सन् कुर्वन् कायत्रयासनम् । सर्वज्ञः परमं शुक्लं ध्यायत्यप्रतिपत्ति तत् ॥ ५४ ॥

भावार्थ—आर्त, रौद्र, धर्म, शुक्ल चार प्रकार ध्यान कहा गया है उनमें पिछले दो ध्यान तपके अङ्ग हैं ॥३५॥ इष्टके वियोगमें, अनिष्टके संयोगमें, वेदनाके उदयमें, निदान भावमें कषाय सहित ध्यान करना

सो संक्षेपसे आर्तध्यान कहा गया है ॥ ३६ ॥ हिंसामें, असत्यमें, चोरीमें, विषयोंके रक्षणमें कषाय सहित ध्यान करना सो रौद्रध्यान संक्षेपसे कहा गया है ॥ ३७ ॥ एक किसी पदार्थको मुख्य करके उसीमें जमकर और चिन्ताका रोक देना ध्यान है। उत्तम संहननवालोंके यह ध्यान लगातार एक अंतर्मुहूर्त तक होसक्ता है। ४८ मिनटसे कमको अन्तर्मुहूर्त कहते हैं ॥ ३८ ॥ मनको आज्ञामें, अपायमें, विपाकमें व संस्थानके विवेकमें जोड़ देना सो धर्मध्यान चार प्रकारका कहा गया है ॥ ३९ ॥ सर्वज्ञकी आज्ञाको प्रमाण करके सूक्ष्म कठिन पदार्थोंका भाव विचारना वह आज्ञाविचय धर्मध्यान कहा जाता है ॥ ४० ॥ ये जगतके प्राणी कुमार्गसे हटकर किस तरह सुमार्गमें लगे ऐसा विचारना सो अपाय विचय धर्म्मध्यान है ॥ ४१ ॥ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका निमित्त पाकर किसतरह कर्मोंका फल भोगा जाता है ऐसा विचारना विपाक-विचय धर्मध्यान है ॥ ४२ ॥ लोकानुयोग शास्त्रके अनुसार लोकका आकार लोकके भीतर छः द्रव्योंका स्वरूप आदि विचारना सो संस्थानविचय धर्मध्यान है ॥ ४३ ॥ पहला शुक्लध्यान पृथक्त्ववितर्क वीचार है, दूसरा एकत्ववितर्क अवीचार है, तीसरा सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति है, चौथा व्युपरतक्रियानिवर्ति है ॥ ४४ ॥ जहां तीनों योगोंसे अनेक द्रव्योंको ध्याया जावे व जिससे मोहकर्मका क्षय होजावे वह पृथक्त्ववितर्क-वीचार ध्यान है ॥४५॥ पूर्वोके द्वारा जाने हुए अर्थको शिक्षाके अनुसार जहां श्रुतका आलम्बन हो उसको वितर्क कहते हैं। श्रुत सहित ध्यानको भिन्न २ करके ध्याया जावे सो पृथक्त्व सवितर्क ध्यान है ॥ ४६ ॥ जहां ध्येय पदार्थका, शब्दका व योगका पलटन हो उसको वीचार कहते हैं। वीचारके होनेसे पहले ध्यानको सवीचार कहते हैं ॥ ४७ ॥ जहां एक किसी योगसे एक द्रव्यको ध्याया जावे वह एकत्व वितर्क अवीचार ध्यान क्षीणमोहीके होता है ॥ ४८ ॥ पूर्वोके अर्थकी शिक्षाके अनुसार श्रुतको वितर्क कहते हैं। जहां एक ही श्रुतको ध्याया जावे वह सवितर्क दूसरा ध्यान है ॥ ४९ ॥ ध्येय, अर्थ, शब्द व योगकी पलटनको वीचार कहते हैं। जहां वीचार न हो वह अवीचार दूसरा शुक्लध्यान है ॥५०॥ जहां न वितर्क हो न वीचार हो, केवल सूक्ष्म काय योगका आलम्बन हो वह तीसरा सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यान है। यह सर्व शुद्ध भावोंमें तन्मयरूप है ॥ ५१ ॥ जब केवलीका काय योग अति सूक्ष्म रह जाता है तब सर्व काय योगको विरोध करनेके लिये तीसरा शुक्लध्यान केवली ध्याते हैं ॥ ५२ ॥ चौथे शुक्लध्यानमें भी वितर्क व वीचार नहीं है। वह योग रहितके चौदहवें गुणस्थानमें मोक्ष जानेके पहले होता है। इसीलिये उसे व्युपरत क्रिया

अष्टपाहुड
॥३७८॥

कहते हैं ॥ ५३ ॥ अयोग केवली सर्वज्ञ औदारिक, तैजस, कार्मोण तीनों शरीरोंको क्षय करते हुए इस परम शुक्लध्यानको ध्याते हैं। यह ध्यान निर्विकल्प है ॥ ५४ ॥

---

(४५) सूक्ष्म रासा गाथा ८९४ से ९१५ तक।

जिन जिनवर उत्तउ, सुद्ध परम जिनु, पर परम मुक्ति दरसीजै।
पर परम तत्तु परमप्परु दर्से, पर परम न्यान सिधि रमिजै ॥ १ ॥
भवियन सूषम सुइ कम्म विलीजै, सुहगम्य रमन सिधि लहिजै।
भवियन सूषम सुइ कम्म विलीजै, भय षिपिय मुक्ति संमिलिजै ॥ २ ॥ (आचरी)
सूषम सुइ षिपिय कम्म सुइ विलयो, सुह गम्य रमन रस तं जिनियं।
तं ममलह ममल सरूव संजुत्तु, पर परम मुक्ति सुइ मिलियं ॥ ३ ॥ भवि० ॥
परिनामू नन्तनन्त सुष्यम सुइ, कमल ममल तं सुइ उवनं।
तं अंगदि अंग अर्थ अर्थ हिओ, सुइ परम परम पय सुइ भुवनं ॥ ४ ॥ भवि० ॥
सूषम सुइ मिलिय अर्थति अर्थह, सुइ समय अर्थ ममल जिन उत्तं।
कमलं तं कलिय कमल भय विलयं, सुह गम्य रमन रस तं मिलियं ॥ ५ ॥ भवि० ॥
कमल कद सो अट्ठ ममल पय, कमल अग्र तं जिन वयनं।
चौसटि वरन तं चरन नन्त मौ, सुह गम्य रमन सिधि रमनं ॥ ६ ॥ भवि० ॥
तं कमल गिरा गिर कंद ममल पौ, परिनाम ममल जिन उत्त सुयं।
सूषम सुइ ममल ममल उवनं, सुह गम्य रमन सिधि रमनं ॥ ७ ॥ भवि० ॥

गिरा अग्र सुइं सूषम उवनं, चरन ममल जिन उत्त सुयं ।
नन्तानन्त सु सषम ममलं, सुह गम्य मुक्ति तं सुइं रमनं ॥ ८ ॥ भवि० ॥
भव हरित भव हतं भय विनासु है, भय षिपनिकु भवु स उत्तं ।
सहज सूषम परिनाम नन्त रे, सुह गम्य रमन सिधि रत्तं ॥ ९ ॥ भवि० ॥
भय विलय नन्त परिनै सुइं, परिनै भवह सुइ ममल सुयं ।
सुह गम्य रमन तं नन्तनन्त जिनु, सुकिय सुभाइ मुक्ति मिलनं ॥ १० ॥ भवि० ॥
अर्थति अर्थ भव हरिय ममल मौ, ममल वुद्धि नो भय विलय ।
परिनाम षिपक ममल सुइ षिपनिक, सुह गम्य रमन सिधि मिलियं ॥ ११ ॥ भवि० ॥
सुषम परिनवै नो भवह भय विलय, दिस्टि गलिय सुइ गमन रयं ।
झडप गलिय भव सुयं सहज सुइं, परिनाम ममल मुक्ति मिलियं ॥ १२ ॥ भवि० ॥
अर्थति अर्थह जं भव विलयं, परिनामू नन्त ममल मिलियं ।
सूषम षिपिय परम जिन नाह हो, सुह गम्य रमन सुह सिधि मिलियं ॥ १३ ॥ भवि० ॥
अंगदि अंग तह न्यान परम पय, परम परम जिन उत्तं ।
नन्तानन्त चतुस्टे पर्म जिनु, सूषम सुइ कम्मु विलय ॥ १४ ॥ भवि० ॥
कमल कंद मति न्यान परम पय, कंठ ममल तं जिन भनियं ।
सूषम ममल न्यान सुइं उवनं, सुह गम्य मुक्ति तं सुइ मिलियं ॥ १५ ॥ भवि० ॥
नो उत्पन्न अष्यर सुइ मिलियं, सूषम परिनवै सुयं ममलं ।
भय षिपनिक श्रुतन्यान सुवन सुइ, अष्यर सुइ अंग अमिय रवनं ॥ १६ ॥ भवि० ॥

ममलपाहुड
॥६७७॥

अवहि न्यान गुरु गुपित रुचिय सुइ, गुरु गुहिजह तं भवहरनं ।
सूषम परिनाम अषय अष्यर सुइ, उलटि गिरा ऊर्ध गमन ॥ १७ ॥ भवि० ॥
मन पर्जय तं जान सहज सुइ, रिजु विपुलह सजुत्त सुयं ।
उस्ट इस्ट सुह अष्यर रवनं, सूषम परिनाम न्यान मिलिय ॥ १८ ॥ भवि० ॥
अवधौ अष्यर अषय रमन सुइ, सूषम सभाउ भव्वु तं रमनं ।
सुह गम्य हतं परम रमन सुइ, सुकिय सुभाव मुक्ति मिलिय ॥ १९ ॥ भवि० ॥
न्यान विन्यानह सुयं सुइ रमनं, सुइ सूषम भाउ कम्मु गलियं ।
सूषम सुइ नन्त नन्त रमनं, सुह गम्य रमन मुक्ति मिलियं ॥ २० ॥ भवि० ॥
न्यान सरूवं सहज सुभावे, सिद्ध सरूव सुई रमिजै ।
सहज सूषम परिनै पर्म ममल पौ, सुह गम्य रमन सिद्धि जै जै ॥ २१ ॥ भवि० ॥
नन्द आनन्दह नन्द सु रमनं, सूषम सुइ परमानन्दं ।
तारन तरन सुभाउ सहज मिलि, समय जिन पर्म जिनन्दं ॥ २२ ॥ भवि० ॥

अन्वय सहित अर्थ—(जिन जिनवर उत्तउ सुद्ध परम जिनु) श्री जिनेन्द्र वीतराग भगवानने कहा है कि शुद्ध परम जिनेन्द्र (पर परम मुक्ति दरसीजै) उत्तम व श्रेष्ठ मुक्तिको देखते हैं व प्रगट करते हैं (पर परम तत्त परमष्य दसें) वे श्रेष्ठ व उत्तम परम आत्मीक तत्वको जो अविनाशी है अनुभव करनेवाले हैं (पर परम न्यान सिधि रमिनै) वे श्रेष्ठमें श्रेष्ठ ऐसे ज्ञानकी सिद्धि पाकर रमण कर रहे हैं ॥ १ ॥

(भवियन सूषम सुह कम्म विलीजै) हे भव्यजीवो ! वही अतीन्द्रिय सूक्ष्म स्वरूप है उसीसे कर्मोंका क्षय होता है (सुह गम्य रमन सिधि लहिजै) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमण करनेसे तुम सिद्धपदका लाभ करो (भवियन सूषम सुह कम्म विलीजै) हे भव्यजीवो ! वही सूक्ष्म स्वरूप है उसीसे कर्मोंका क्षय होता है (भव षिपिय मुक्ति सं मिलिजै) तुम सर्व भवोंका क्षय करके उस मुक्तिपदको भलेप्रकार प्राप्त करो ॥ २ ॥

(सूषम सुइ विपिय कम्म सुइ विलयो) वही अतीन्द्रिय सूक्ष्म क्षायिक भाव है उसीसे कर्म स्वयं क्षय होते हैं (सुइ गम्य रमन रस त जिनियं) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमण करनेसे जो आनन्द स्वाद आता है उसीसे कर्मोंका विजय होता है (तं ममलह ममल सरूव सजुत्त) वहां वीतराग निर्मल स्वरूपका संयोग होता है (पर परम मुक्ति सुइ मिलिय) तब ही उत्तम व श्रेष्ठ मुक्तिका लाभ होता है ॥ ३ ॥

(परिनामू नन्त नन्त सूष्यम सुइ) वहां अनन्तानन्त सूक्ष्म परिणामोंका परिणमन है। शुद्धोपयोगमें भी समय समय शुद्ध जलमें तरंगके समान परिणमन अगुरुलघु गुणके द्वारा होता है (कमल ममल तं सुइ उवन) वहीं शुद्ध कमल समान शुद्ध आत्माका प्रकाश है (त अगदि अग अर्थ अर्थहिओ) वहां द्वादशांगवाणीके सारका ग्रहण है, वहीं सर्व पदार्थोंका सार है (सुइ परम परम पय सुई भुवन) वही श्रेष्ठ परमात्मपदका होजाना है ॥४॥

(सूषम सुइ मिलिय अर्थति अर्थह) उस सूक्ष्म अतीन्द्रिय शुद्ध भावमें रत्नत्रयमई आत्म-पदार्थका मेल है (सुई समय अर्थ ममल जिन उत्तं) वही शुद्ध व आत्म-पदार्थ है, ऐसा श्री जिनेन्द्रने कहा है (कमल तं कलिय कमल भय विलय) कमल समान आत्मा उसी रत्नत्रयधर्मसे पूर्ण है, उस कमलको किसी प्रकारका भय नहीं है। क्योंकि घातीय कर्मोंका क्षय होगया है (सुइ गम्य रमन रस तं मिलिय) सुखसे अनुभवने योग्य आत्माके रमणसे जो आनन्दामृत रस होता है वह उनको प्राप्त होगया है ॥ ५ ॥

(कमल कंद सो अट्ठ ममल पय) इस आत्मारूपी कमलके भीतर आठ शुद्ध पद हैं अर्थात् आठ कर्मोंके क्षयसे जो आठ गुण प्रगट होते हैं वे इस आत्मामें विराजमान हैं। जैसे सम्यक्त, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनतत्व, अगुरुलघुत्व, अव्याबाधत्व । (कमल अग्र त जिन वयन) इस अरहंत कमलके मुखारविंदसे श्री जिनवाणीका प्रकाश होता है (चौसठ वरन त चरन नंत मौ) उस जिनवाणीकी रचना चौसठ वर्णोंसे बने हुए पदोंके द्वारा कीगई है। उस जिनवाणीके अनुसार आचरण करनेसे अनन्त गुणोंकी प्रगटता होजाती है (सुइ गम्य रमन सिधि रमन) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमण करनेसे यह आत्मा सिद्ध स्वभावमें रमण करता है ॥ ६ ॥

(तं कमल गिरा गिर कद ममल पौ) श्री अरहंत कमलसे प्रगट वाणीका सार यही है जो आत्माके शुद्ध पदमें रमण किया जावे (परिनाम ममल जिन उत्त सुयं) तथा अपने भाव शुद्ध होजावें ऐसा ही श्री जिनेन्द्रने स्वयं कहा है (सूषम सुइ गमल ममल उवन) वह शुद्ध भाव एक अति सूक्ष्म अतीन्द्रिय परम शुद्ध भावका

प्रकाश है (सुह गम्य रमन सिधि रमनं) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमण करनेसे सिद्ध भावमें रमण होता है ॥ ७॥

(गिरा अग्र सुई सूपम उवन) श्री जिनवाणीका मुख्य सार यह है कि जो अपने भीतर सूक्ष्म अतींद्रिय भावका प्रकाश हो (चरन ममल जिन उत्त सुय) तथा शुद्ध स्वभावमें आचरण हो ऐसा जिनेन्द्रने स्वयं कहा है (नन्तामन्त सु सूषम ममल) वह आत्मा अनन्तानन्त गुणोंका धारी शुद्ध अतीन्द्रिय सूक्ष्म पदार्थ है (सुह गम्य मुक्ति त सुइ रमन) सुखसे अनुभवने योग्य आत्माकी मुक्ति यही है जो आपसे आपमें रमण किया जावे॥८॥

(भव हरित मवह तं भय विनासु है) शुद्ध स्वभावके लाभ होनेसे संसार छूट जाता है। संसारके कारण कर्मोंका क्षय होजाता है। सर्व सांसारिक भय नाश होजाता है (भव षिपनिकु भ्वु स उत्तं) उसी आत्मरमीको भय रहित भव्य कहा गया है (सहज सूपम परिणाम नत रे) उसमें स्वाभाविक सूक्ष्म अतीन्द्रिय अनंत शुद्ध परिणमन सदा हुआ करते हैं (सुइ गम्य रमन सिद्धि रत) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमण करना सो ही सिद्ध भावमें लीन होना है ॥ ९ ॥

(भय विलय नन्त परिनै सुई) जब कर्मोंके क्षयसे सर्व भय दूर होजाते हैं तब यह आत्मा स्वयं अपने अनन्त गुणोंमें परिणमन करता है (परिनै मवह सुइ कमल सुयं) ऐसा भव्यजीव स्वयं स्वभावमें परिणमन करनेवाला ही स्वयं कमल समान अरहंत है (सु गम्य रमन त नन्त नन्त जिनु) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमण करना सो अनन्तानन्त गुणोंका धारी जिनका स्वभाव है (मुक्तिय सुभाउ मुक्ति मिलन) अपने ही स्वभावमें रमण करनेसे मुक्तिका लाभ होता है ॥ १० ॥

(अर्थति अर्थ भवहरिय ममल मौ) रत्नत्रयमई शुद्ध पदार्थके प्रकाशसे संसार छूट जाता है (ममल बुद्धि नो मय विलय) जब ज्ञान वीतराग होजाता है तब भय नोकषायका नाश होजाता है (परिनाम षिपक ममल सुइ पिपनिक्र) क्षायिक भावोंको ही शुद्ध भाव कहते हैं, उन्हींसे ही कर्मोंका क्षय होता है (सुह गम्य रमन सिधि मिलियं) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमन करनेसे ही सिद्ध भावका लाभ होता है ॥ ११ ॥

(सुपम परिनवै नो मवह भय विलय) सूक्ष्म अतीन्द्रिय स्वभावमें परिणमन करनेसे भव्य जीवोंका भय नोकषाय विला जाता है (विस्टि गलिय सुह गम्य रयं) मिथ्यादृष्टिका क्षय होजाता है तब स्वयं यह अनुभवने

इन पांच ज्ञानोंका प्रकाश भी कह सक्ते हैं। अभेदनयसे इन पांचों ज्ञानोंको केवलज्ञान ही कहेंगे। स्वात्मरमण परमानन्द स्वरूप है। अनन्त अविनाशी आनन्दकी प्रगटताका कारण है। हे भव्यजीवो! यदि सिद्ध गतिको प्राप्त करना हो तो अपने आत्मामें ही रमण करो। यही सच्चा सीधा मोक्षमार्ग है। यदि आत्मरमण न होगा तो और अनेक प्रकार जप तप व्रत करते हुए भी कर्मोंका क्षय न होगा, केवलज्ञानका लाभ न होगा। जब आत्मामें रमणता होती है तब अवश्य निःशङ्क व निर्भय भाव रहता है। यही भाव भय कषायका क्षय करनेवाला है। केवलज्ञानीकी दिव्यध्वनिसे जो कुछ तत्वज्ञान प्रगट होता है उसका सार यही है कि अपने आत्माको यथार्थ जानकर उसीका ही आचरण करो। उसीका ही ध्यान करो। स्वात्म-रमणतासे ऐसी वीतरागता झलकती है कि संसारके कारणीभूत कर्म सब क्षय होजाते हैं। और अवश्य सिद्धपदका लाभ होता है। योगसारमें श्री योगेन्द्रदेव कहते हैं—

सुद्धु सचेयण बुद्ध जिणु केवलणाणसहाउ। सो अप्पा अणुदिण मुणहु जइ चाहउ सिवलाहु ॥ २६ ॥
जाम ण भावहु जीव तुहुं णिम्मलअप्पसहाउ। ताम ण लब्भइ सिवगमणु जहिं भावहु तहिं जाउ ॥ २७ ॥
जो णिम्मल अप्पा मुणइ वयसंजमुसंजुत्तु। तउ लहु पावइ सिद्ध सुहु इउ जिणणाहहं वुत्तु ॥ ३० ॥
वयतवसंजमुसीलु जिय ए सव्वे अकइच्छु। जाम ण जाणइ इक्क परु सुद्धउभावपवित्तु ॥ ३१ ॥

भावार्थ—यह आत्मा निश्चयसे शुद्ध है, चेतन स्वरूप है, ज्ञानी है, जिन है, केवलज्ञान स्वभावधारी है। हे भव्य! तू मोक्षका लाभ चाहता है तो इसी आत्माका रातदिन ध्यान कर ॥ २६ ॥ हे आत्मन्! जबतक तू निर्मल आत्माके स्वभावकी भावना नहीं करेगा तबतक तू मोक्ष नहीं पासक्ता है, तू चाहे जहां जा ॥ २७ ॥ जो कोई व्रत व संजम सहित होकर शुद्धात्माका अनुभव करता है वह शीघ्र ही सिद्धके सुखको पाता है, ऐसा श्री जिनेन्द्रोंने कहा है ॥ ३० ॥ जबतक आत्माके शुद्ध व धर्म स्वभावका अनुभव हो तबतक व्रत, तप, संयम, शील आदि सब मोक्षकी सिद्धिमें निरर्थक हैं ॥ ३१ ॥

प्रकाश है (सुह गम्य रमन सिधि रमन) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमण करनेसे सिद्ध भावमें रमण होता है ॥ ७ ॥

(गिरा अग्र सुई सूषम उवन) श्री जिनवाणीका मुख्य सार यह है कि जो अपने भीतर सूक्ष्म अतींद्रिय भावका प्रकाश हो (चरन ममल जिन उत्त सुय) तथा शुद्ध स्वभावमें आचरण हो ऐसा जिनेन्द्रने स्वयं कहा है (नन्तानन्त सु सूषम ममल) वह आत्मा अनन्तानन्त गुणोंका धारी शुद्ध अतीन्द्रिय सूक्ष्म पदार्थ है (सुह गम्य मुक्ति त सुइ रमनं) सुखसे अनुभवने योग्य आत्माकी मुक्ति यही है जो आपसे आपमें रमण किया जावे ॥८॥

(भव हरित भवह तं भय विनासु है) शुद्ध स्वभावके लाभ होनेसे संसार छूट जाता है। संसारके कारण कर्मोंका क्षय होजाता है। सर्व सांसारिक भय नाश होजाता है (भव विपनिकु भवु स उत्त) उसी आत्म-रमीको भय रहित भव्य कहा गया है (सहज सूषम परिणाम नंत रे) उसमें स्वाभाविक सूक्ष्म अतीन्द्रिय अनंत शुद्ध परिणमन सदा हुआ करते हैं (सुइ गम्य रमन सिद्धि रत) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमण करना सो ही सिद्ध भावमें लीन होना है ॥ ९ ॥

(भय विलय नन्त परिनै सुई) जब कर्मोंके क्षयसे सर्व भय दूर होजाते हैं तब यह आत्मा स्वयं अपने अनन्त गुणोंमें परिणमन करता है (परिनै भवह सुइ कमल सुयं) ऐसा भव्यजीव स्वयं स्वभावमें परिणमन करनेवाला ही स्वयं कमल समान अरहंत है (सु गम्य रमन त नन्त नन्त जिनु) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमण करना सो अनन्तानन्त गुणोंका धारी जिनका स्वभाव है (मुक्तिय सुभाउ मुक्ति मिलन) अपने ही स्वभावमें रमण करनेसे मुक्तिका लाभ होता है ॥ १० ॥

(अर्थति अर्थ भवहरिय ममल मौ) रत्नत्रयमई शुद्ध पदार्थके प्रकाशसे संसार छूट जाता है (ममल बुद्धि नो भय विलय) जब ज्ञान वीतराग होजाता है तब भय नोकषायका नाश होजाता है (परिनाम विपक ममल सुइ विपनिक) क्षायिक भावोंको ही शुद्ध भाव कहते हैं, उन्हींसे ही कर्मोंका क्षय होता है (सुह गम्य रमन सिधि मिलियं) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमन करनेसे ही सिद्ध भावका लाभ होता है ॥ ११ ॥

(सुषम परिनवै नो भवह भय विलय) सूक्ष्म अतीन्द्रिय स्वभावमें परिणमन करनेसे भव्य जीवोंका भय नोकषाय विला जाता है (दिस्टि गलिय सुह गम्य रय) मिथ्यादृष्टिका क्षय होजाता है तब स्वयं यह अनुभवने

योग्य आत्मामें रत होजाता है (झडप मलिय मय सुय सहज सुई) अपने सहज स्वभावमें रमण करनेसे संसार शीघ्र ही नाश होजाता है (परिनाम ममल मुक्ति मिलियं) भावोंका शुद्ध होना ही मुक्तिका लाभ होना है ॥१२॥

(मर्थति मर्थह ज भव विल्यं) जब आत्मा पदार्थ रत्नत्रय धर्मकी पूर्णताको प्राप्त कर लेता है तब ही संसारका क्षय होजाता है (परिनामू नन्त ममल मिलियं) तब अनन्त शक्तिधारी शुद्ध परिणामोंका लाभ होता है (सूपम षिपिय परम जिननाह हो) सूक्ष्म कर्मोंका क्षय होकर यह परम जिनेन्द्र अरहन्त केवली होजाता है (सुह गम्य रमन सुइ सिधि मिलिय) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमण करना सो ही सिद्धभावको पालेना है ॥१३॥

(अगदि अंग तह न्यान परम मय) द्वादशांगवाणीके ग्रहण करनेका यही फल है जो ज्ञान श्रेष्ठ होजावे। अर्थात् श्रुतज्ञानके ही द्वारा केवलज्ञान होता है (परम परम जिन उत्तं) उसीको श्रेष्ठ ज्ञान परमात्मा जिनेन्द्रने कहा है (नन्तानन्त चतुष्टै पर्म जिन) तब अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य ये चार अनन्त चतुष्टयका धारी परमात्मा जिन होजाता है (सूपम सुइ कम्मु विल्य) तब ही सूक्ष्म घातीय कर्मोंका क्षय होजाता है ॥ १४ ॥

(कमल कंद मति न्यान परम मय) श्री अरहन्त कमलमें शुद्ध मतिज्ञान मिलता है। शुद्ध मतिज्ञान भी केवलज्ञान है। मतिज्ञानावरण कर्मका क्षय केवलीके होजाता है तब शुद्ध मतिज्ञान प्रगट होजाता है। यह केवलज्ञानमें गर्भित है (कठ कमल तं जिन भनियं) इसीके द्वारा शुद्ध वाणीका प्रकाश होता है ऐसा जिनेन्द्रने कहा है। अर्थात् केवलज्ञानीके ही सत्य दिव्यवाणी सम्भव है (सूषम ममल न्यान सुइ उवनं) वह शुद्ध ज्ञान इंद्रियोंकी सहायतासे रहित स्वयं प्रगट होता है (सुह मम्य मुक्ति तं सुइ मिलिय) सुखसे अनुभवनेयोग्य आत्माको तब स्वयं मुक्तिका लाभ होजाता है। केवलज्ञानी ही मुक्ति पाते हैं ॥ १५ ॥

(नो उत्पन्न भष्यर सुइ मिलियं) केवलीके नोकर्म अर्थात् भाषा वर्गणाके स्वयं ग्रहणसे वाणीका प्रकाश होता है (सुपम परिनवै सुय ममल) यह वाणी परम शुद्ध स्वयं अति सूक्ष्मरूप होकर परिणमती है। अर्थात् दिव्यवाणीका प्रकाश मेघगर्जनावत् होता है। सब कोई अपनी२ भाषामें उसको सुनते हैं, यह इस दिव्यवाणीमें अद्भुत शक्ति है, जो वह अनेक भाषारूप परिणमन कर जाती है (भय षिपनिक श्रुत न्यान सुवन सुई) यही भय रहित परम पूजनीय स्वयं श्रुतज्ञान है। अर्थात् केवलीकी दिव्यध्वनिसे जो पदार्थ प्रगट होते हैं उनहीको संग्रह करके द्वादशांगवाणीका निर्माण गणधर करते हैं। यद्यपि केवलीके केवलज्ञान है, परोक्ष

श्रुतज्ञान नहीं है तथापि उनकी दिव्यवाणी श्रुतज्ञानका कारण है। इसलिये केवलीके भी इस अपेक्षासे श्रुतज्ञान कहा है अथवा केवलीके श्रुतज्ञानावरण कर्मका क्षय होता है। इसलिये क्षायिक श्रुतज्ञान पैदा होता है जो केवलज्ञानमें गर्भित है (अष्यर सुइ अग अमिय रयन) अक्षरोंसे द्वादशांगवाणी बनती है, उसका मूल केवलीका दिव्य वचन है जो आनन्दामृत पिलानेवाला है ॥ १६ ॥

(अवहि न्यान गुरु गुपित रुचिय सुई) केवलीके अवधिज्ञान भी प्रगट होता है, वहां गम्भीर गुप्त आत्मपदार्थमें स्वयं रुचि है (गुरु गुहिनह त भव हरनं) वह शुद्ध आत्मज्ञान महान आत्मारूपी गुफासे प्रगट होता है और वही भवका हरनेवाला है (सूषम परिनाम अषय सुइ अष्यर) अवधिज्ञानी केवली सम्यग्दृष्टीके भीतर अविनाशी अतीन्द्रिय सूक्ष्म आत्माका शुद्ध भाव परिणमन करता है जो स्वयं अविनाशी है (उर्ऊटि गिग ऊर्द्ध गमन) जब केवलीके वाणीका होना बन्द होजाता है, योगोंका हलन चलन नहीं रहता है, तब शुद्धात्मा स्वभावसे ऊपर गमन करके लोकाग्र ठहर जाता है। भावार्थ—केवलीके ही अवधिज्ञानावरण कर्मका क्षय होता है तब क्षायिक अवधिज्ञान प्रगट होजाता है, जो केवलज्ञानमें गर्भित है। यहां शुद्धात्मामें रमण है। ऐसा ज्ञानी ही मुक्ति लाभ करता है ॥ १७ ॥

(मनपर्यय त जान सहज सुइ) उस केवलीके ज्ञानको स्वाभाविक मनःपर्यय ज्ञान भी जानो। क्योंकि केवलीके ही मनःपर्यय ज्ञानावरणका क्षय होता है। इससे क्षायिक मनःपर्यय ज्ञान प्रगट है जो केवलज्ञानमें गर्भित है (रिजु विपुलह सजुत सुयं) वह ज्ञान स्वयं ऋजुमति व विपुलमति सहित है अर्थात् इन दो प्रकारके मनःपर्यय ज्ञानका जो विषय है वह सब केवलज्ञानके विषयमें गर्भित है (उस्ट इस्ट सुइ अष्यर रयन) वही शुद्ध इष्ट अविनाशी ज्ञानका प्रकाश है (सूषम परिनाम न्यान मिलिय) अतीन्द्रिय सूक्ष्म भावोंमें यह ज्ञान मिला हुआ है अर्थात् केवलज्ञानमें यह ज्ञान गर्भित है ॥ १८ ॥

(अवधौ अष्यर अषय रमन सुइ) वह शुद्ध ज्ञान बाधा रहित है अविनाशी है तथा स्वयं अविनाशी आत्मामें रमण स्वरूप है (सूषम सभाउ भव्व तं रमन) भव्यजीव उसी सूक्ष्म अतीन्द्रिय स्वभावमें रमण करते हैं (सुइ गम्यह त परम रमन सुइ) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें उत्तम प्रकारसे वही रमण स्वरूप है (सुकिय सुभाउ मुक्ति मिलिय) अपने ही स्वभावका प्रकाश सो ही मुक्तिका लाभ है ॥ १९ ॥

(न्यान विन्यानह सुय सुइ रमन) जहां स्वयं अपने शुद्ध ज्ञान भावमें रमणता होती है (सुइ सुषम भाव

कम्मु गलिय) उसी सूक्ष्म अतींद्रिय भावसे कर्मोंका क्षय होता है (सूषम सुइ नन्त नन्त रमनं) सूक्ष्म भावको पाना यही है, जो अनन्त गुणोंके धारी आत्मामें रमण किया जावे (सुइ गम्य रमन मुक्ति मिलिय) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमण करना सो ही मुक्तिका लाभ है ॥ २० ॥

(न्यान सरूवे सहज सुभावे) अपने ज्ञान स्वरूपमें अपने सहज स्वभावमें रमना (सिद्ध सरूव सुई रमिजै) वही सिद्ध स्वरूपमें रमना है। हे भव्य! वहीं तू रमण कर (सहज सुषम परिनै पर्म ममल पौ) जिससे यह आत्मा सहज ही सूक्ष्म अतीन्द्रिय क्षायिक भावमें परिणमन करके परम शुद्ध परमात्मपद प्राप्त करले (सुइ गम्य रमन सिद्धि जै जै) सुखसे अनुभवने योग्य आत्मामें रमण करना सो ही सिद्धि पाना है उसीको जय जय कहना चाहिये ॥ २१ ॥

(नद आनन्दइ नन्द सु रमन) आत्मानन्दमें मगन होना ही भलेप्रकार आनन्दमें रमण करना है (सूषम सुइ परमानन्द) वहीं सूक्ष्म अतीन्द्रिय परमानन्द झलकता है (तारन तरन सुभाउ सहज मिलि) इसीसे तारणतरण अरहन्तका स्वभाव सहजमें प्रगट होजाता है (समयजिन परम जिनद) तब यह आत्मा वीतराग परम जिनेन्द्र होजाता है ॥ २२ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें सूक्ष्म अतीन्द्रिय स्वानुभव या स्वात्म-रमणका माहात्म्य गाया गया है। यह स्वानुभव पूर्णपने अरहन्त तथा सिद्ध परमात्मामें होता है। स्वानुभव स्वरूप, अनन्त चतुष्टय स्वरूप, परमात्माका स्वरूप पहचानकर जो अपने आत्माको उस रूप श्रद्धानमें लाकर व वैसा ही ज्ञान प्राप्त करके उसी शुद्धात्माके भीतर रमण करते हैं, वे ही निश्चय रत्नत्रयमई आत्मा पदार्थको पालेते हैं। इस निर्विकल्प समाधिके प्रगट होते ही मन व इंद्रियोंके सर्व विकल्प बन्द होजाते हैं। कोई प्रकारके विचार नहीं रहते हैं। सूक्ष्म अतीन्द्रिय अनुभवगोचर एक तत्व प्रगट होता है। यही वास्तवमें मोक्षमार्ग है, यही मोक्षका लाभ कराता है। स्वानुभव करते २ कर्मोंकी निर्जरा होती जाती है और यह चार घातीय कर्मोंका क्षय करके केवलज्ञानी होजाता है। फिर उसी स्वात्मरमणरूप भावसे शेष अघातीय कर्मोंका क्षय करके सिद्ध शुद्ध परमात्मा मुक्त होजाता है।

वास्तवमें आत्मा सहज ही सुखसे अनुभवने योग्य है। उसीमें रमण होना मुक्तिमार्गपर आरूढ़ होना है। केवली भगवानके ही पांचों ज्ञानावरणीय कर्मोंका एक साथ क्षय होता है। इसलिये भेदनयसे

इन पांच ज्ञानोंका प्रकाश भी कह सक्ते हैं। अभेदनयसे इन पांचों ज्ञानोंको केवलज्ञान ही कहेंगे। स्वात्म-रमण परमानन्द स्वरूप है। अनन्त अविनाशी आनन्दकी प्रगटताका कारण है। हे भव्यजीवो! यदि सिद्ध गतिको प्राप्त करना हो तो अपने आत्मामें ही रमण करो। यही सच्चा सीधा मोक्षमार्ग है। यदि आत्मरमण न होगा तो और अनेक प्रकार जप तप व्रत करते हुए भी कर्मोंका क्षय न होगा, केवल-ज्ञानका लाभ न होगा। जब आत्मामें रमणता होती है तब अवश्य निःशङ्क व निर्भय भाव रहता है। यही भाव भय कषायका क्षय करनेवाला है। केवलज्ञानीकी दिव्यध्वनिसे जो कुछ तत्वज्ञान प्रगट होता है उसका सार यही है कि अपने आत्माको यथार्थ जानकर उसीका ही आचरण करो। उसीका ही ध्यान करो। स्वात्म-रमणतासे ऐसी वीतरागता झलकती है कि संसारके कारणीभूत कर्म सब क्षय होजाते हैं। और अवश्य सिद्धपदका लाभ होता है। योगसारमें श्री योगेन्द्रदेव कहते हैं—

सुद्धु सचेयण बुद्ध जिणु केवलणाणसहाउ। सो अप्पा अणुदिण मुणहु जइ चाहउ सिवलाहु ॥ २६ ॥

जाम ण भावहु जीव तुहुं णिम्मलअप्पसहाउ। ताम ण लब्भइ सिवगमणु जहिं भावहु तहिं जाउ ॥ २७ ॥

जो णिम्मल अप्पा मुणइ वयसंजमुसंजुत्तु। तउ लहु पावइ सिद्ध सुहु इउ जिणणाहह वुत्तु ॥ ३० ॥

वयतवसंजमुसीलु जिय ए सव्वे अकयच्छु। जाम ण जाणइ इक्क परु सुद्धउभावपवित्तु ॥ ३१ ॥

भावार्थ—यह आत्मा निश्चयसे शुद्ध है, चेतन स्वरूप है, ज्ञानी है, जिन है, केवलज्ञान स्वभावधारी है। हे भव्य! तू मोक्षका लाभ चाहता है तो इसी आत्माका रातदिन ध्यान कर ॥ २६ ॥ हे आत्मन्! जबतक तू निर्मल आत्माके स्वभावकी भावना नहीं करेगा तबतक तू मोक्ष नहीं पासक्ता है, तू चाहे जहां जा ॥ २७ ॥ जो कोई व्रत व संजम सहित होकर शुद्धात्माका अनुभव करता है वह शीघ्र ही सिद्धके सुखको पाता है, ऐसा श्री जिनेन्द्रोंने कहा है ॥ ३० ॥ जबतक आत्माके शुद्ध व धर्म स्वभावका अनुभव हो तबतक व्रत, तप, संयम, शील आदि सब मोक्षकी सिद्धिमें निरर्थक हैं ॥ ३१ ॥

(४६) केवलदर्शन गाथा ९१६ से ९३४ तक।

चष्यं च तं सहावं, उववन उववन नन्त स सहावं।
अचष्यं नृत आयरन, आयरनं न्यान नन्त नन्ताइ ॥ १ ॥
अवहि उवन उवएसं, गुप्ति आयरन अवहि निहि जुत्त।
तं उवन उवन निहि सहियं, उवनं पनपर्जय केवलं उत्तं ॥ २ ॥
केवलदर्सन उत्तं, केवल सुइ उवन ममल संजुत्तं।
कलन कमल सुइ ममलं, कमल आकर्न कमल सिद्धं च ॥ ३ ॥
केवल कलन सहावं, कलन कमलस्य हेय हुव कन।
तत्काल रमन सुइ दर्सं, आकर्न कमल निव्वुए जंति ॥ ४ ॥
कलनं केवल उवनं, उवनं आकर्न कमल उत्तं च।
कमल ममल सुइ रमनं, रमनं तं अर्क विंद सिद्धानं ॥ ५ ॥
सिय धुव सिद्ध सहावं, सिव चरनं नन्त अर्क विंदानं।
नन्त न्यान आयरनं, धुव कर्न उवन कमल सिद्धानं ॥ ६ ॥
केवल चरनं उवन, कलन सहावेन कमल सुइ रमनं।
कमल चरन आकर्न, धुव सिय धुव सिद्ध विंदानं ॥ ७ ॥
सिय सुह उवन सहावं, उवन उववन्न ममल मल विलयं।
कलन कमल सुइ चरनं, आकर्न कमल केवलं न्यानं ॥ ८ ॥
अष्यर सुरं विंजनयं, पद अर्थ अर्थ ममल सुइ उवनं।
अष्यर अषय सहावं, सुर रमनं कलन कमल सिद्धानं ॥ ९ ॥

विंजन विनय स उत्तं, विनय विन्यान ममल उववन्नं ।
ममल चरन सुइ कलनं, कर्नं आकर्न कमल सिद्धानं ॥ १० ॥
केवलं दर्सन उत्तं, अष्यर सुर विंजन अष्यरं जुत्तं ।
अर्कं अर्क सुइ उवन, अर्क आकर्न कमल सिद्धान ॥ ११ ॥
सिय सहाउ स उत्तं, सिय नन्तानन्त अर्क ममलं च ।
ममल न्यान सुइ उवनं, साहिय सुइ कर्म कमल धुव सिद्धं ॥ १२ ॥
उव उवन उवन उव उवनं, उवन सुइ स्रेनि उवन संजुत्तं ।
उव उवन हियार सु ममलं, उवनं सह समय सिद्धि संपत्तं ॥ १३ ॥
अन्मोय स्रेनि सहयारं, साहिय सह समय कलन सिय रमनं ।
कलन चरन चर चरनं, दिसि दिस्टं च सव्द पिउ कलनं ॥ १४ ॥
सहयार कमल अन्मोयं, दिसि दिस्टं च सव्द सुइ सुवनं ।
विन्यान विस्स सुइ उवनं, कलनं अन्मोय सिद्धि सम्पत्तं ॥ १५ ॥
तस्य उवन उव उवनं, उवनं सुइ सुवन समय संजुत्तं ।
जिन वयनं जिन रमनं, जिन उत्तं कलन सिद्धि सम्पत्तं ॥ १६ ॥
उव उवन उवन उव उवनं, उवन हिय सहजे य ।
उव उवन उवन उव उवन उवन उव उवन पयं ॥
सुइ अर्क सु अर्क सु अर्क, अर्क सुइ अर्क मयं ।
अन्मोय कलन सुइ, स्रनि कन सुइ सिद्धि जयं ॥ १७ ॥

सुइ मिलन सु मिलन सु मिलन, मिलन सुइ मिलन हियं ।
सुइ रमन सु रमन रमन हिय सहय गयं ॥
सुइ कलन सु कलन सु कलन कर्न सुइ कलनं जय ।
अन्मोय तरन सुइ कमल कर्न सुइ सिद्धि जयं ॥ १८ ॥
केवल ममल सहावं, ममलं सुइ कर्न सुई उवनं ।
कलन कमल सिय चरनं, अर्क सुइ कमल केवलं न्यानं ॥ १९ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(चष्य च तं सहाव) चक्षु इंद्रियके स्वभावसे जिनवाणीको देखकर व मनन कर (उववन उववन नन्त स सहावं) क्रम क्रमसे अपने आत्माका अनन्त स्वभाव प्रगट होजाता है (अचष्य नृत आयरन) अचक्षु अर्थात् अन्य चार इंद्रिय व मन द्वारा पदार्थोंका यथार्थ स्वरूप जानकर जो सत्य मार्गका आचरण किया जावे (आयरन न्यान नत नंताइ) तो उस आचरणसे अनन्तानन्त ज्ञानका प्रकाश होजाता है ॥ १ ॥

(अवहि उवन उवएस) जब अवधिदर्शन पूर्वक अवधिज्ञानका प्रकाश होता है तब ऐसा उपदेश है (गुप्ति आयरन अवहि निहि जुत्त) कि अवधिज्ञानकी विधि सहित होकर भी अपने गुप्त आत्मज्ञानका आचरण किया जावे । अर्थात् शुद्धात्माका अनुभव किया जावे (त उवन उवन निहि सहियं) तब इससे क्रम क्रमसे अवधिज्ञानकी निधि बढ़ जाती है । परमावधि व सर्वावधिज्ञानका प्रकाश होजाता है (उवन मनपर्ज्ज केवल उत्तं) तथा मनःपर्ययका उदय होता है। अन्तमें केवलज्ञानका प्रकाश होजाता है ऐसा कहा गया है ॥ २ ॥

(केवल दर्सन उत्त) केवलज्ञानके साथ केवलदर्शन भी कहा गया है (केवल सुइ उवन ममल सजुत्त) जब घातीय कर्ममल दूर होकर आत्मामें शुद्धता होती है तब ही स्वयं केवलज्ञानका प्रकाश होता है (कलन कमल सुइ ममल) केवलज्ञानी अरहंत स्वयं शुद्ध वीतराग होते हुए अपने ही कमल समान आत्माके भीतर चरण करते हैं (कमल आकर्न कमल सिद्ध च) जैसा कमलका स्वभाव सुना है वैसा कमलसम परमात्मपद होजाता है ॥ ३ ॥

(केवल कलन सहाव) आत्माका स्वभाव केवलज्ञानमें रमण करनेका है (कलन कमलस्य हेय हुव कर्न)

जब कमल समान परमात्मामें रमणता होता है तब सर्व इंद्रिय व मनकी सहायता छूट जाती है (तत्काल रमन सुइ दर्सी) जिससमय आत्माका दर्शन है उसी समय आत्मामें रमण है (आकर्न कमल निव्वुए जंति) जिन-वाणीमें सुना है ऐसा प्रफुल्लित कमल समान आत्मा निर्वाणको प्राप्त कर लेता है ॥ ४ ॥

(कलन केवल उवनं) केवलज्ञानमें रमण करनेवाला पद प्रगट होगया है (उवनं आकर्नं कमल उत्तं च) जैसा सुना है व कहा गया है वैसा ही यह कमल समान प्रफुल्लित आत्मा प्रगट हुआ है (कमल ममल सुइ रमनं) शुद्ध कमलका होना ही स्वात्म-रमण है (रमन त अर्क विंद सिद्धानं) स्वरूपमें रमण करना यही सूर्यका प्रकाश है, यही स्वानुभव है, यही सिद्ध स्वभाव है ॥ ५ ॥

(सिय ध्रुव सिद्ध सहावं) शुद्ध, ध्रुव, सिद्ध स्वभावका वहां प्रकाश है (सिय चरनं नन्त अर्क विंदानं) वहीं शुद्ध चारित्र है, वहीं अनन्त ज्योतिस्वरूप सूर्य है, वहीं स्वानुभव है (नन्त न्यान आवरनं) वहीं अनन्तज्ञानमें आचरण है (ध्रुव कर्म उवन कमल सिद्धान) वही ध्रुव परिणामधारी कमलका या सिद्धपदका प्रकाश है ॥६॥

(केवलं चरनं उवन) केवलज्ञानमें आचरण करनेवाला पद प्रगट होगया है (कलन सहावेन कमल सुइ रमन) उसका स्वभाव ही स्वात्मरमण है। इसीसे वह स्वात्म कमलमें रमण कर रहा है (कमल चरन आकर्नं) जैसा सुना है वैसा वहां कमल समान आत्मामें आचरण है, स्वरूपाचरण है (ध्रुव सिय ध्रुव सिद्ध विंदानं) वहीं ध्रुव शुद्धता है, वही ध्रुव सिद्धपद है, वही स्वानुभव है ॥ ७ ॥

(सिय सुइ उवन सहावं) वह शुद्ध पद प्रकाश स्वभाव है (उवन उववन ममल मल विलयं) वहां शुद्ध प्रकाश प्रगट होगया है, सर्व कर्म मल विला गया है (कलन कमल सुइ चरनं) स्वात्म–कमलमें रमण करना ही वहां चारित्र है (आकर्न कमल केवल न्यान) जैसा सुना है वही कमल केवलज्ञान स्वरूप है ॥ ८ ॥

(अष्यर सुर विंजनय) वही पद अक्षर है, सुर है, व्यंजन है अर्थात् वह शुद्ध पद अविनाशी है, सूर्यरूप है व स्पष्ट प्रगट है (पद अर्थ अर्थ ममल सुइ उवनं) वही नौ पदार्थोंमें शुद्ध पदार्थ है, वही उदयरूप है (अष्यर अषय सहाव) वह अविनाशी स्वभाव है इसीसे अक्षर है (सुर रमं कलन कमल सिद्धान) वही सूर्य स्वभावमें रमण करनेवाला है, वही कमल स्वभावमें रमनेवाला है, वही सिद्ध स्वरूप है ॥ ९ ॥

(विंजन विनय स उत्त) वह अपने स्पष्ट प्रगट स्वरूपकी ओर ही विनयवान है। अर्थात् अपने शुद्ध स्वभावमें नम्रीभूत है, तन्मय है, ऐसा कहा गया है (विनय विन्यान ममल उववन्न) वही शुद्ध ज्ञानमें तन्मय

है, ऐसा उदयरूप है (ममल चरन सुइ कलनं) शुद्ध चारित्रवान है, यही स्वात्मरमण है (कर्म आकर्न कमल सिद्धानं) जैसा कानोंसे सुना है, यही कमलरूप है व यही सिद्ध स्वरूप है ॥ १० ॥

(केवल दर्सन उत्तं) इसीको केवल दर्शन स्वरूप कहा गया है (अष्यर सुर विंजन अष्यर जुत्तं) यही अविनाशी अक्षर स्वरूप है, यही सूर्य स्वरूप है, यही स्पष्ट प्रगट है, यही अक्षर है, यही ध्यान स्वरूप है (अर्क अर्क सुइ उवन) यही सूर्य है, यही सूर्य समान प्रकट है (अर्क आकर्न कमल सिद्धान) जैसा सुना है यही सूर्य है, यही कमल है, यही सिद्ध है ॥ ११ ॥

(सिय सहाव स उत्त) यही शुद्ध स्वभावी कहा गया है (सिय नन्तानन्त अर्क ममल च) यही शुद्ध अनन्तधारी निर्मल सूर्य है (ममल न्यान सुइ उवनं) यहीं शुद्ध ज्ञानका उदय है (साहिय सुइ कर्न कमल ध्रुव सिद्ध) जैसा सुना है इसीने कमल समान ध्रुव सिद्धपदको साधन कर लिया है ॥ १२ ॥

(उव उवन उवन उव उवनं) यह पद उदय होते होते परम उदय रूप हुआ है। जैसे दोइजका चन्द्रमा पूर्णमासीका चन्द्रमा होजाता है वैसे अविरत सम्यग्दृष्टीका स्वानुभवरूप सम्यग्ज्ञान ही बढ़ते२ शुद्ध वीतराग केवलज्ञान होजाता है (उवन सुइ स्रेनि उवन सजुत्तं) यही उदय होता हुआ क्षपकश्रेणीके द्वारा उदय होकर घातीय कर्मोंका क्षय करता है (उव उवन हियार सु ममलं) इसका प्रकाश होना हितकारी है व परम निर्मल है (उवन सह समय सिद्धि सपत्तं) परम उदय सहित आत्मा ही सिद्ध गतिको पालेता है ॥१३॥

(अन्मोय स्रेनि सहयार) यह पद आनन्दमय श्रेणीसे प्राप्त होता है अर्थात् स्वात्मानन्दमें मगनता ही वह गुणस्थानकी श्रेणी है जिसपर चढ़कर परमात्मपद होता है (साहिय सह समय कलन सिय रमनं) इसी श्रेणीद्वारा आत्मा आपको साधन करके शुद्धात्मानुभवमें रमणता प्राप्तकर लेता है (कलन चरन चर चरन) स्वात्मरमण ही आचरण है, यही स्वचारित्रमें चलना है (दिप्ति दिस्टं च सब्द पिउ कलनं) यहीं ज्ञानकी प्रगटता है, यहीं क्षायिक सम्यक्त है, यहीं परमप्रिय स्वात्मरमण शब्दका वाच्य है ॥ १४ ॥

(सहयार कमल अन्मोय) कमल समान शुद्ध आत्मामें आनन्दित होना ही परमात्मपदका सहकारी है (दिप्ति दिस्ट च सब्द सुइ सुवनं) उसीसे ज्ञानकी दीप्ति होती है, यहीं सम्यक्त भाव है, यहीं अरहन्त रूप पूज्यनीय शब्दकी सफलता है (विन्यान विस्स सुइ उवन) वहीं सर्व लोकालोकके ज्ञानका उदय है (कलनं अन्मोय

सिद्धि संपत्तं) इसी आनन्दकी मगनतासे ही सिद्ध गति प्राप्त होती है। भावार्थ—स्वात्मानन्दका भोग ही मोक्षमार्ग है व यही परमात्मपद है व यही सिद्धपद है ॥ १५ ॥

(तस्य उवन उव उवनं) उस परमात्मपदका उदय ही महान् उदय है (उवन सुइ सुवन समय सजुत्त) वहीं परम पूज्यनीय आत्माका उदय है (जिन वयनं जिन रमन) वहीं जिनवाणीका सार है—वहीं जिन स्वभावमें रमण है (जिन उत्तं कलन सिद्धि संपत्तं) जिनेन्द्रने जैसा कहा है वैसा स्वात्मरमण करनेसे ही सिद्ध गति प्राप्त होती है ॥ १६ ॥

(उव उवन उवन उव उवन उवन हिय सहइ जयं) उदय होते होते परम हितकारी परमात्मपदका उदय हुआ है जो कर्मोंको विजय करनेवाला है (उव उवन उवन उव उवन उवन उव उवन पयं) यह पद चौथे गुणस्थानसे उदय होते होते सातवें तक आया, फिर क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ होकर उदय होते २ सयोगकेवलि जिन तेरहवें गुणस्थानमें प्रगट हुआ है (सुइ अर्क सु अर्क सु अर्क अर्क सुइ अर्क मयं) यही पद सूर्य है, शोभनीक सूर्य है, शांतिमय सूर्य है, परम प्रकाशित सूर्य है, अनन्त गुणरूप किरणोंका धारी सूर्य है (अन्मोय कलन सुइ खेनि कर्म सुइ सिद्धि जयं) स्वात्मानन्दकी मगनतासे ही क्षपकश्रेणीके परिणामोंको प्राप्त करके यही केवलज्ञानी होकर सिद्धिको या विजयको प्राप्त कर लेता है ॥ १७ ॥

(सुइ मिलन सु मिलन सु मिलन मिलन सुइ मिलन हियं) उस पदका लाभ चौथे अविरत सम्यक्त गुणस्थानमें हुआ, फिर वही लाभ विशेष होता २ सातवें गुणस्थानमें हुआ, वही फिर क्षपकश्रेणी पर हुआ वही बढ़ते २ परमात्मा अरहन्त पदमें परम हितकारी होगया (सुइ रमन सु रमन सु रमन रमन हिय सहय मयं) वही स्वरूपमें रमण चौथे गुणस्थानमें हुआ, बढ़ते बढते सातवेंमें हुआ, यही रमण क्षपकश्रेणी पर हुआ। परमात्मपदमें परम हितकारी रमण ऐसा हुआ कि वह परम थिरतारूप होगया (सुइ कलन सु कलन सु कलन कर्न सुइ ...लन जय) वही स्वरूपकी थिरता गुणस्थान क्रमसे बढते बढते क्षपकश्रेणीके कारण परिणामोंमें हुई फिर परमात्मपदमें ऐसी हुई कि उसने सर्व विभावोंको विजय ही कर लिया (अन्मोय तरन सुइ कमल कर्न सुइ सिद्धि जयं) वही आनन्दमय भवसागरसे तरनेवाले कमल समान अरहन्त पदमें तिष्ठकर सिद्धपदको व संसारके विजयको प्राप्त कर लेता है ॥ १८ ॥

...केवल ममल सहावं) परमात्माका स्वभाव केवल असहाय व शुद्ध है (कमल सुइ कर्न सुइ उवनं) वही पद

सर्व मल रहित है, वही शुद्ध परिणमन रूप है, वही उदयरूप है (कलन कमल सिय चरनं) वही थिरतारूप है, वही कमलरूप है, वही शुद्ध चारित्ररूप है (अर्क सुइ कमल केवलं न्यान) वही सूर्यरूप है, वही कमलरूप है, वही केवलज्ञान स्वरूप है ॥ १९ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें बताया है कि चक्षु और अचक्षु दर्शनसे चक्षुइन्द्रिय तथा अन्य चार इंद्रिय और मन इनसे सामान्य अवलोकन होकर जगतके पदार्थोंका बोध होता है, उस ज्ञानसे भेदविज्ञानकी प्राप्ति करके ग्रहण करनेयोग्य एक अपने ही शुद्ध आत्माको जानके उसका वारवार मनन करके सम्यग्दर्शनको प्राप्त करना चाहिये। यह सम्यग्दर्शन मोक्षमार्गका मूल है। इसीसे परमात्मपदरूपी फलका लाभ होता है। अवधिदर्शन पूर्वक अवधिज्ञान तो सम्यग्दृष्टीको ही होता है। वह सम्यक्ती अवधिज्ञानकी ऋद्धिमें ममत्व न करके अपने शुद्धात्माका मनन तथा अनुभव करता है। आत्मानुभवके दृढ़ अभ्याससे अवधिज्ञानावरण कर्मका विशेष क्षयोपशम होजाता है तब इसे सर्वावधिज्ञान होजाता है। कदाचित् मनःपर्यय ज्ञान भी होजाता है। फिर इसी स्वात्मानुभवके अभ्याससे केवलदर्शन और केवलज्ञानका लाभ होजाता है। यही स्वात्मानुभव फिर अघातीय कर्मोंका भी क्षय करके आत्माको सिद्ध कर देता है। सिद्धपदमें भी वही स्वात्मानुभव अनन्त कालके लिये बना रहता है। स्वानुभव ही कारण है, स्वानुभव ही कर्म है। स्वानुभवमें सदा अतीन्द्रिय सहज आनन्दका स्वाद आता है। इसी आनन्दसे कर्मोंकी निर्जरा होती है। वास्तवमें चिदानन्दमय ही मोक्षमार्ग है व अनन्त सुखरूप ही मोक्ष है। शुद्ध आत्माको कमल तथा सूर्यकी उपमा देकर महिमा गाई है। जहां स्वानुभव है वहां सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र तीनोंकी एकता है। अतएव मुमुक्षु जीवको उचित है कि सर्व प्रकार प्रयत्न करे, अपने आत्माके स्वभावपर दृढ श्रद्धान लावे और उसीके ध्यानका शांत भावके साथ ध्यान करे। इससे वर्तमान जीवन भी आनन्दप्रद रहेगा व भविष्यमें शुद्धात्मपदका लाभ होजायगा। श्री नागसेन मुनि तत्वानुशासनमें कहते हैं—

धर्मादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं ज्ञानमधिगमस्तेषां। चरणं च तपसि चेष्टा व्यवहाराद् मुक्तिहेतुरयं ॥ ३० ॥
निश्चयनयेन भणितस्त्रिभिरेभिर्यः समाहितो भिक्षुः। नोपादत्ते किंचिन्न च मुञ्चति मोक्षहेतुरसौ ॥ ३१ ॥
यो मध्यस्थः पश्यति जानात्यात्मानमात्मनात्मन्यात्मा। दृगवगमचरणरूपस्स निश्चयान्मुक्तिहेतुरिति जिनोक्तिः ॥३२॥
स च मुक्तिहेतुरिद्धो ध्याने यस्मादवाप्यते द्विविधोऽपि। तस्मादभ्यस्यतु ध्यानं सुधियः सदाप्यपास्यालस्यं ॥ ३३ ॥

भावार्थ—उत्तम क्षमा आदि दश धर्म व जीवादि तत्वोंका श्रद्धान करना सम्यक्त है, उनहीका जानना सम्यग्ज्ञान है, तप करनेमें उद्योग सो सम्यक्चारित्र है, व्यवहारसे यह रत्नत्रय मोक्षके मार्ग हैं ॥ ३० ॥ निश्चयनयसे मोक्षका मार्ग ऐसा कहा गया है जहां ऊपर कथित तीनोंसे विभूषित शिष्य न तो परको ग्रहण करता है न किसी स्व गुणको त्यागता है, आप आपमें मगन होता है ॥ ३१ ॥ जो कोई वीतरागी आत्मा अपने आत्मामें अपने आत्माके द्वारा अपने आत्माको देखता व जानता है वह स्वयं सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप मोक्षमार्ग है, ऐसा निश्चयसे जिनेन्द्रने कहा है ॥३२॥ क्योंकि ऐसा दोनों प्रकारका मोक्षमार्ग आत्मध्यानमें मिलता है इसलिये बुद्धिमानोंको उचित है कि आलस्यको त्यागकर सदा ही ध्यानका अभ्यास करें।

---

(४७) तरन विवान विजौरौ गाथा ९३९ से ९६४ तक।

उव उवनौ उवन उवन पऊ, विजौरौदे।
उव उवनो हो न्यान विन्यान, तरन विवान, सु मुक्ति पौ, बिजौरौदे ॥ १ ॥
सुइ न्यान विन्यान सु समय पऊ, विजौरौदे।
सम समय स उत्तु जितुत्तु, तरन विवान सु मुक्ति पौ, बिजौरौदे ॥ २ ॥
जिन जिनवर उत्तु सु मुक्ति पौ, बिजौरौदे।
जिननाथ रमन दर्सतु, तरन विवान सु मुक्ति पौ, बिजौरौदे ॥ ३ ॥
एक सु एक सु ममल पौ, विजौरौदे।
पद् रमनहि दिस्ति संजुत्तु, तरन विवान सु मुक्ति पौ, निजौरौदे ॥ ४ ॥
सु एक इस्टि परमिस्टि मुनि विजौरौदे।
हिययारह हो हर सि सुनहु, तरन विवान सु मुक्ति पौ, निजौरौदे ॥ ५ ॥

सुइ लषियो अलष सुलष्य मौ, विजौरौदे । सुइ लषियो हो लोय अलोय, तरन विवान० ॥६॥
लष्यन लषिय सु दिप्ति मौ, विजौरौदे । हिय कोड सु नन्द सुनन्द, तरन विवान० ॥ ७ ॥
अस्टंग रमन तं सहज जिनु, विजौरौदे । उव उवन हो कोड सुभाव, तरन विवान० ८ ॥
सुइ कोड उवनो नन्द मौ, विजौरौदे । सुइ नन्द दिप्ति संजुत्तु, तरन० ॥ ९ ॥
सुइ कोड उवनो उवन पौ, विजौरौदे । हर हर सिउ हो दिप्ति संजुत्त, तरन० ॥ १० ॥
जं कोड उवनो जिनय जिनु, विजौरौदे । तं सुयं लब्धि संजुत्तु, तरन० ॥ ११ ॥
सुयं लब्धि नौ उत्त जिनु, विजौरौदे । तं लब्धि हो परमानन्द, तरन० ॥ १२ ॥
दिप दिप्ति उवनो न्यान मऊ, विजौरौदे । दिपि दिपियो हो नन्द आनन्द, तरन० ॥ १३ ॥
दिपिय गमन सुइ नन्त मऊ, विजौरौदे । दिपि दिपियो हो गम्य अगम्य, तरन० ॥ १४ ॥
सुयं रमन सुय दिप्ति मऊ, विजौरौदे । हिययार हो हरसि संजुत्तु, तरन० ॥ १५ ॥
हिययार दिप्ति तं रमन पऊ, विजौरौदे । हिय हरसिउ हो हरसि जिनेन्द्र, तरन० ॥ १६ ॥
तं क्रांति उवनो दिप्ति मऊ, विजौरौदे । दिपि दिपियो हो हरसि विन्यान, तरन० ॥ १७ ॥
तं दिप्ति सितं सांतिमई, विजौरौदे । हिययारह हो हरसि जिनुत्तु, तरन० ॥ १८ ॥
सुइ सित सांति जिन दिप्ति मऊ विजौरौदे । उत्पन्नउ हो हरसि विन्यान, तरन० ॥ १९ ॥
न्यान रमन सुइ दिप्ति मऊ विजौरौदे । हुव हिय हो हरसि आनंदु, तरन० ॥ २० ॥
तं न्यान अर्क सुइ दिप्ति मऊ, विजौरौदे । तं अर्क विन्यान जिनुत्तु, तरन० ॥ २१ ॥
सुयं रमन सुइ नन्द मऊ, विजौरौदे । तं सुयं हरसि जिन उत्तु, तरन० ॥ २२ ॥
रुचि प्रिय दिप्ति सुनन्द जिनु, विजौरौदे । सुइ क्रांति हो हरसि जिनेन्द्र, तरन० ॥ २३ ॥

ममलपाहुड ॥३९३॥

कमल उत्पन सुइ दिप्ति मऊ, विजौरौदे। तं क्रांति हो कलन सुभाउ, तरन० ॥ २४ ॥
रमन कमल सुइ दिप्ति मऊ, विजौरौदे। तत्काल हो मुक्ति सुभाउ, तरन० ॥ २५ ॥
रमन कमल उत्पन्न मऊ, विजौरौदे। उत्पन्नह हो दिप्ति विन्यान, तरन० ॥ २६ ॥
सहकार रमन तं नन्त मुनि, विजौरौदे। तं हरसिउ हो जिनय जिनेन्द, तरन० ॥ २७ ॥
सहज सुभावै परिनवै, विजौरौदे। तं सहजे हो परमानन्द, तरन० ॥ २८ ॥
दिप दिप्ति दिप्ति उत्पन्न मऊ विजौरौदे। दिपि दिपियो हो हरसि आनन्द, तरन० ॥ २९ ॥
सुइ तारनतरन सहाउ मऊ विजौरौदे। सुइ समय हो मुक्ति पहुत्तु, तरन० ॥ ३० ॥

अन्वय सहित अर्थ—(उव उवनो उवन उवन पऊ विजौरौदे) अब उदय होते होते परम उदयरूप अरहंत पद उदय होगया है। हे अरहंत! मुझे विजौरा फलके समान सर्वको विजय करनेवाला मुक्तिफल प्रदान कर (उव उवनो हो न्यान विन्यान) अब केवलज्ञानका प्रकाश होगया है (तरन विवान सु मुक्ति पऊ) यही तारण-तरण जहाजके समान हैं, अवश्य मुक्ति पहुँचेगे (विजौरौदे) हे अरहंत, मुझे मुक्ति फल दे ॥ १ ॥

(सुइ न्यान विन्यान सु समय पऊ) वे ही अरहन्त ज्ञान स्वरूप हैं, वे अपने आत्मीक पदमें विराजित हैं (सम समय स उत्त जितुत्त) उनहीको समभावधारी आत्मा कहागया है ऐसा ही जिन वचन है ॥ २ ॥

(जिन जिनवर उत्त सु मुक्ति पऊ) वे जिनेन्द्र मुक्तिको अवश्य प्राप्त करते हैं ऐसा श्री जिनेन्द्रने कहा है (जिननाथ रमन दर्सेतु) वे ही जिनेन्द्र स्वभावमें रमन कररहे हैं, ऐसा प्रत्यक्ष प्रगट होरहा है ॥ ३ ॥

(एक सु एक सु ममल पौ) वे अरहन्त एक अकेले अपनी सत्ताको रखनेवाले परम शुद्ध पदमें हैं (षट् रमन हि दिप्ति सजुत्तु) वे छः मुख्य गुणोंके प्रकाशको रखनेवाले है—अनन्त ज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, क्षायिक सम्यक्त व क्षायिक चारित्र ॥ ४ ॥

(सु एक इस्टि परमिस्टि मुनि) वे ही अरहन्त परमेष्ठी एक परम इष्टपदमें है उनका मनन करो (हिययार हो हरसि सुनन्दु) वे हितकारी हैं, उनके ध्यानसे आत्मीक आनन्दका हर्ष होता है ॥ ५ ॥

(सुइ लषियो अलष्य सु लष्य मऊ) वे ही इंद्रिय मनसे अगोचर आत्माको प्रत्यक्ष देखनेवाले हैं उनका

अम

लक्ष्य एक निज स्वभाव ही है (सुइ लषियो हो लोय अलोय) उन्होंने लोक अलोकको प्रत्यक्ष देख लिया है ॥६॥

(लष्येन लषियं सु दिप्ति मऊ) वे ज्ञान ज्योतिमई लक्षणसे लखने योग्य हैं (हिय कोड सुनन्द सुनन्द) वे हितकारी आत्मीक आनन्दको धारण करके उसीमें मगन होरहे हैं ॥ ७ ॥

(अष्टंग रमन तं सहज जिनु) वे जिनेन्द्र भगवान अपने सहज स्वभावमें ठहर कर आठ गुणोंमें रमण कर रहे हैं–सम्यक्त, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व और अव्याबाधत्व (उव उवन हो कोड सुभाव) वे अपने स्वभावको धारण करे हुए सदा प्रकाशमान हैं ॥ ८ ॥

(सुइ कोड उवनो नन्द मौ) वे ही आनन्दमई प्रकाशको रखनेवाले हैं (सुइ नन्द दिप्ति सजुत्तु) वे ही आनन्दमई ज्योतिके धारी हैं ॥ ९ ॥

(सुइ कोड उवनो उवन पौ) वे ही परम प्रकाशित परमात्मपदके धारी हैं (हर हरसिउ हो दिप्ति सजुत्तु) वे ज्ञान दीप्ति सहित सर्व दुःखोंको हरके परम हर्षमई हैं ॥ १० ॥

(ज कोड उवनो जिनय जिन) वे ही कर्म विजयी जिनपदको धारण करनेवाले हैं (त सुयं लब्धि संजुत्त) वे स्वयं अनेक लाभ व शक्तियोंके धारी हैं ॥ ११ ॥

(सुय लब्धिनौ उत्तु जिनु) उनमें स्वयं नौ क्षायिक लब्धि प्रगट हैं जैसा जिनेन्द्रने कहा है। क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग, क्षायिक वीर्य, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्र (त लब्धि हो परमानन्द) उन्होंने अनन्त सुखरूप परमानन्दको भी प्राप्त किया है॥१२॥

(दिप दिप्ति उवनौ न्यान मऊ) उनमें ज्ञानमई दीप्तिका प्रकाश उदय होरहा है (दिपि दिपियो हो नन्द आनन्द) वे परमानन्द स्वभावमें चमक रहे हैं ॥ १३ ॥

(दिपिय गमन सुइ नन्त मऊ) वे ही अनन्तज्ञानमें प्रकाशमान हैं (दिप दिपियो हो गम्य अगम्य) वे इंद्रिय व मन गोचर व इंद्रिय मनसे अगोचर सर्व सूक्ष्म स्थूल पदार्थोंको जान रहे हैं ॥ १४ ॥

(सुय रमन सु दिप्ति मऊ) वे स्वयं अपने ज्योतिमई स्वभावमें रमण कर रहे हैं (हिययार हो हरसि सजुत्तु) वे हितकारी प्रभु आनन्द सहित हैं ॥ १५ ॥

(हिययार दिप्ति त रमन मऊ) वे हितकारी ज्ञान ज्योतिमें रमण करते हुए स्वपदमें विराजित हैं (हिय हरसिउ हरसि जिनेन्द) वे जिनेन्द्र हितकारी परमानन्दमें मगन हैं ॥ १६ ॥

ममलपाहुड ॥३९८॥

(त क्राति उवनो दिप्ति मऊ) उनमें दीप्तमान कांतिका प्रकाश है। उनका आत्मा शुद्ध गुणोंसे चमक रहा है (दिपि दिपियो हो हरसि विन्यान) वे ज्ञानानन्दमई ज्योतिसे दीप्तमान हैं ॥ १७ ॥

(तं दिप्ति सित सातिमई) वह ज्योति शुद्ध है व शांतिमई है (हिययारह हो हरसि जिनुत्तु) वे जिनेन्द्र हितकारी हैं व आनन्दमय हैं ऐसा जिनेन्द्रने कहा है ॥ १८ ॥

(सुइ सित साति जिन दिप्ति मऊ) वे जिनेन्द्र वीतराग ज्ञान ज्योतिमय शुद्ध व परम शांत हैं (उत्पन्नउ हो हरसि विन्यान) उनमें आनन्द और ज्ञान गुण दोनो प्रगट हैं ॥ १९ ॥

(न्यान रमन सुइ दिप्ति मऊ) वे ज्ञान ज्योतिमय प्रभु अपनी ज्ञान चेतनामें रमण कर रहे हैं (हुव हिय हो हरसि आनद) जहां हितकारी परमानन्दमें मग्नता होरही है ॥ २० ॥

(तं न्यान भक सुइ दिप्ति मऊ) वे ही परम प्रकाशित ज्ञान सूर्य हैं (त भर्क विन्यान जिनुत्तु) उनको ही ज्ञान सूर्य जिनेन्द्रने कहा है ॥ २१ ॥

(सुय रमन सुइ नंद मऊ) वे स्वयं ही आपमें रमण कर रहे हैं, वे आनन्दमई हैं (त सुय हरसि जिन उत्तु) उनमें आनन्द नामका गुण है, ऐसा जिनेन्द्रने कहा है ॥ २२ ॥

(रुचि प्रिय दिप्ति सुनन्द जिनु) वहां परमप्रिय गाढ़ सम्यग्दर्शनका प्रकाश है, वे जिनेन्द्र आनन्द स्वरूप हैं (सुइ क्राति हो हरसि जिनेन्द) वे ही उद्योतकारी आनन्दमय जिनेन्द्र हैं ॥ २३ ॥

(कमल उत्पन्न सुइ दिप्ति मऊ) वे ही परम प्रफुल्लित कमल समान प्रकाशित हैं (त क्राति हो कलन सुभाउ) वे प्रकाशमान होकर भी अपने स्वभावमें तिष्ठनेवाले हैं ॥ २४ ॥

(रमन कमल सुइ दिप्ति मऊ) वे ज्योतिस्वरूप आत्मारूपी कमलमें रमण कर रहे हैं (तत्काल हो मुक्ति सुभाउ) उसी समय वहां मुक्तिका स्वभाव शोभ रहा है। वे जीवन्मुक्त परमात्मा हैं ॥ २५ ॥

(रमन कमल उत्पन्न मऊ) वे उदयस्वरूप स्वरूप रमण कमल हैं (उत्पन्नह हो दिप्ति विन्यान) उनमें ज्ञानका प्रकाश उदयरूप है ॥ २६ ॥

(सहकार रमन तं नत मुनि) उनके भीतर अनन्त गुण रमण कर रहे हैं ऐसा मनन करो (तं हरसिउ हो जिनय जिनेंद) वे श्री वीतराग जिनेन्द्र उनमें मगन होरहे हैं ॥ २७ ॥

ममलप
॥३९६॥

(सहज सुभावे परिनवै) वे परमात्मा अपने सहज स्वभावमें परिणमन कर रहे हैं (तं सहजे हो परमानंद) वहां परमानन्द भी सहज ही स्वाभाविक है ॥ २८ ॥

(दिय दिप्ति दिप्ति उत्पन्न मऊ) वे उदयरूप परम ज्योतिमें दीप्तमान हैं (दिपि दिपियो हो हरसि आनद) वे आनन्दकी मगनतामें चमक रहे हैं ॥ २९ ॥

(सुइ तारन तरन सहाउ मउ) वे ही तारण तरण स्वभावरूप हैं (सुइ समय हो मुक्ति पहुत्तु) वे ही परमात्मा मुक्तिमें पहुंच जाते हैं ॥ ३० ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें श्री अरहन्त परमात्माकी स्तुतिका गान है, जिसके गानेसे मन एकाएक अरहन्त परमात्माके शुद्ध गुणोंमें रंजायमान होजाता है, संसारकी परिणतिका मोह दूर होजाता है, मोक्षपदकी प्राप्तिका प्रेम उमड़ आता है। परमात्माका नाम व परमात्माके गुण पुनः पुनः स्मरण करनेसे उपयोगको धारावाही परमात्माके गुणोंमें भिगोए रखते हैं, भावना फलदाई होती है। अरहन्तके गुणोंका मनन अरहन्तके ध्यानमें मग्नता प्राप्तिका कारण है। यह अरहन्त पद आपसे ही, अपने पुरुषार्थसे ही, स्वात्मामें रमण करनेसे ही, धर्मध्यान व शुक्लध्यानसे ही प्राप्त होता है। वे प्रभु चार घातीय कर्मोंके क्षयसे नौ केवल लब्धियोंके स्वामी हैं। वे केवलज्ञान केवलदर्शनसे लोकालोकको देखनेवाले हैं तथापि अपने आपमें मगन हैं। अपने भीतर भरे हुए अनन्त गुणोंका स्वाद ले रहे हैं। उनमें राग द्वेषादिका पूर्णतया अभाव है। वे परम शांत, परम वीतराग हैं, परमानन्दमें मग्न हैं, कभी उनमें कोई खेद, चिंता, दुख, शोक, निर्बलता, इच्छा, द्वेष आदि विभाव भाव नहीं होते हैं, क्योंकि उनमें मोहनीय कर्मका उदय सर्वथा नहीं है। वे ज्ञान ज्योतिमें मुख्यतासे चमकते हैं। सर्व विकारी भावोंसे बाहर हैं। उनको सूर्यकी उपमा इसीलिये दी गई है कि जैसे सूर्य विना रागद्वेषके सर्व कुछ प्रकाश करता है, उस सूर्यकी विना इच्छाके ही सूर्यके तापसे अन्नादि पकते हैं, जगतका बहुत उपकार होता है। कोई सूर्यके प्रकाशसे हानि भी मानलें तथा सूर्यके प्रकाशकी निन्दा करे तौभी सूर्य प्रशंसा करनेवाले पर हर्ष व निन्दा करनेवाले पर द्वेषभाव नहीं करता है।

इसी तरह अरहन्त परमात्मा पूर्ण प्रकाशित हैं, एक ही साथ लोकालोककी अनन्त पर्यायोंको प्रगट कररहे हैं तथापि किसीसे रागद्वेष नहीं करते हैं। जो उनकी भक्ति करे उसपर प्रसन्न नहीं होते हैं। जो

ममकपाहुड ॥१९७॥

निन्दा करे उसपर द्वेषभाव नहीं करते हैं तथापि भक्तोंको पुण्य बन्ध होकर सुख प्राप्त होजाता है, निंदकोंको पापबन्ध होकर दुःख प्राप्त होजाता है। अरहन्त भगवान न किसीको सुख देना चाहते हैं। दुःख देना चाहते हैं। वे परम वीतराग हैं, समदर्शी हैं।

अरहन्तको कमलकी उपमा इसलिये दी है कि कर्मोंके अंधकारमें यह आत्मारूपी कमल मुद्रित था, इसकी शक्तियां छिपी थीं, जब केवलज्ञान सूर्यका प्रकाश हुआ यह आत्मारूपी कमल विकसित होगया, आत्माके सब गुण प्रगट शोभने लगे। जैसे कमलमें भ्रमर लुब्धायमान होते हैं वैसे अर्हंत परमात्माकी भक्तिमें भक्तजन लुब्धायमान होते हैं। भक्ति करके उसी तरह आत्मीक आनन्दका लाभ करते हैं जैसे भ्रमरोंको सुगन्धका लाभ होता है।

इस स्तुतिमें यह भावना है कि मेरा आत्मा भी अरहन्त होकर मोक्षके मिष्ट फलको प्राप्त करले।

श्री नागसेन मुनिने तत्वानुशासनमें कहा है:—

परिणमते येनात्मा भावेन स तेन तन्मयो भवति। अर्हद्ध्यानाविष्टो भावार्हं स्यात्स्वय तस्मात् ॥ १९० ॥
येन भावेन यद्रूप ध्यायत्यात्मानमात्मवित्। तेन तन्मयता याति सोपाधि स्फटिको यथा ॥ १९१ ॥
ध्यातोऽर्हत्सिद्धरूपेण चरमाङ्गस्य मुक्तये। तद्ध्यानोपात्तपुण्यस्य स एवान्यस्य मुक्तये ॥ १९७ ॥
ज्ञानं श्रीरायुरारोग्य तुष्टिपुष्टिर्वपुर्धृति। यत्प्रशस्तमिहान्यच्च तत्तद्ध्यातु प्रजायते ॥ १९८ ॥

भावार्थ—जिस भावसे आत्मा परिणमन करता है उसी भावके साथ वह तन्मई होजाता है। इसी लिये जो श्री अरहन्त भगवानका ध्यान करता है वह भावमें स्वयं अरहन्तरूप होजाता है ॥१९०॥ आत्मज्ञानी जिस रूप आत्माको जिस भावसे ध्याता है उसी भावसे वह उसी तरह तन्मई होजाता है जैसे जैसी डाकके रंगकी उपाधि स्फटिक पाषाणके लगे वह उसी रंगसे तन्मई होजाता है ॥१९१॥ जो अर्हंतरूप व सिद्धरूप अपने आत्माको ध्याता है, यदि वह चरमशरीरी हो तो उसी जन्मसे मोक्ष पालेता है अन्यथा ध्यानके द्वारा बांधे हुए पुण्यसे वह नानाप्रकार भोग प्राप्त करता है ॥ १९७ ॥ ज्ञान, लक्ष्मी, दीर्घ आयु, आरोग्य, संतोष, बल, शरीरका रूप, धैर्य, इत्यादि और भी जो कुछ उत्तम उत्तम वस्तुएँ हैं सो सब ध्यानीको प्राप्त होजाती हैं ॥ १९८ ॥

अष्टपाहुड

(४८) बडो व धाऊ गाथा ९६५ से ९८५ तक।

उव उवनो हो न्यान विन्यानह, सुद्ध सरूवे समय मऊ।
सम समय स उत्तउ, अर्थति अर्थह, पंच दिप्ति परमिस्टि पऊ ॥ १ ॥
परमेस्टिहि सहियो, ममलह ममल सहाऊ मऊ।
जिनवर उत्तउ, सुद्ध सचेयनु, सुद्ध न्यान संसुद्ध पऊ ॥ २ ॥
देव उवन हो दाता होउ तउ, न्यान विन्यानह ममल पऊ।
गुरु गुप्तिहि रुचियो, दिट्ठउ दाता, हो न्यान सरूवे सुद्ध पऊ ॥ ३ ॥
धम्म जु उत्तउ चेयन सहियो, दर्सन दिस्टि सु ममल मऊ।
दर्सन दर्सिउ, लोय अवलोयवि, दर्सिउ अर्थह मल रहिऊ ॥ ४ ॥
तउ उवएसिउ ममल सहावे हो, तत्काल ऊवनउ तउ कहियो।
परम देव परमान सु सहियो, परम ऊवनउ देउ पऊ ॥ ५ ॥
जिनवर जिनियो कम्मु अनन्तुजु, चेयन नन्द सु समय मऊ।
परम जिनेन्दह सूषम जिनियो, मर्म कम्म जिनि ममल पऊ ॥ ६ ॥
परम गुरह परमप्परु उत्तउ, पर्म गुप्ति सव सिद्ध मऊ।
परम धम्म परमप्पइ सहियो, तिविह कम्मु तं सुइ गलिऊ ॥ ७ ॥
तत्तु जिनेन्दह उत्त समय हो, तत्काल ऊवनो न्यान मऊ।
जं जं समइ हो, पुच्छिउ भवियन, तं तं उवनउ ममल मऊ ॥ ८ ॥
तत्तु तत्तु सवुलोय स उत्तउ, तत्तु भेय तुवि जानि पऊ।
भय विनासु तं भवु जु कहियो, तत्तु भेय गुरु जानि पऊ ॥ ९ ॥

ममलपाहुड ॥३९९॥

तत्काल ऊवनो तत्तु जु जानहु, नन्तानन्त सु न्यान मऊ।
न्यान विन्यानह विमल सु निर्मलु, तत्काल ऊवनो तत्तु मुनि ॥ १० ॥
पर्म तत्तु परमप्पह उत्तउ, परम न्यान उत्पन्न समऊ।
परमानन्दह परम सुभाऊ, परम तत्तु परमिस्टि मऊ ॥ ११ ॥
अन्मोय विरोह विजानहु भवियन, कम्मु कलंक स उत्तियउ।
कम्म भाउ कम्मान स उत्तउ, न्यान अन्मोयह विलय गऊ ॥ १२ ॥
जं पुनु कम्मु अनन्तु भव एहो, जनरंजन राग जु ऊपजिऊ।
कलरंजन दोष जु गारौ सहियो, न्यान अन्मोयह गलि गयऊ ॥ १३ ॥
मन रंजन गारी कम्म सदिट्ठो, दर्सन मोह अन्ध तु हू।
न्यान विन्यानह उवसम सहियो, कम्मु विलय सो मुक्ति गऊ ॥ १४ ॥
जं पुन कम्मह भेउ न जानियो, न्यान सरूवे वृद्धियऊ।
मिथ्यामय सो सल्यह सहियो, न्यान अन्मोयह गलि गयऊ ॥ १५ ॥
पर पर्जायह दिट्ठि जु सहियो, पर पर्जय रत्तउ मूढ मई।
कल लंकृत कम्मु जु दिट्ठो समई, न्यान अन्मोयह गलि गयऊ ॥ १६ ॥
जं अबंभह सरनि हि सहियो, मैहुन संन्या संसरिऊ।
जं पुन मान कषाय संजुत्तउ, दर्सन दिस्टिहि विलय गऊ ॥ १७ ॥
मोह मही हर कम्मु ऊपजै, कषयह विषय संजुत्तु समू।
अन्यान दिट्ठि परजावह सहियो, न्यान अन्मोयह गलि गयऊ ॥ १८ ॥

चष्य अचष्यह चष्यह उत्तउ, अवहिहि कम्म जु ऊपजई ।
अन्यान दिस्टि जं कम्मु ऊपजे, न्यान अन्मोयह गलि गयऊ ॥ १९ ॥
जह जह कम्मु उपत्ति सदिट्ठो, जह जह कम्मु जु ऊपजे ।
तह तह कम्मु जु विलयो समई, न्यान अन्मोयह समय मऊ ॥ २१ ॥
अप्पहु अप्पा सुद्धप्पा सउ, परमप्पा परम सु समय मऊ ।
न्यान विन्यानह ममल सुभाउ हो, परम न्यान सो मुक्ति गऊ ॥ २१ ॥

अन्वय सहित अर्थ—(उव उवनो हो न्यान विन्यानह सुद्ध सरूवे समय मऊ) अब आत्माके शुद्ध स्वरूपमें आत्माका स्वाभाविक केवलज्ञानका उदय हुआ है (स समय स उत्तइ अर्थति अर्थह पंच दिप्ति परमिस्टि मउ) उस शुद्ध स्वरूपी आत्माको स्वसमय, रत्नत्रयमई पदार्थ, पंच ज्ञानमय मतिश्रुत अवधि मनःपर्यय केवल स्वरूप तथा पांच परमेष्ठी पद या अरहन्त परमेष्ठी पद कहते हैं। केवलज्ञानमें अन्य चार ज्ञान तथा आत्मा द्रव्यमें अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु पांचों पद गर्भित हैं, पर्यायकी अपेक्षा अरहन्तकी मुख्यता है ॥ १ ॥

(परमेस्टि हि सहियो ममलह ममल सहाउ मऊ) वे अरहन्त परमेष्ठी रागादि रहित वीतराग व घातीय कर्ममल रहित शुद्ध स्वभावके धारी हैं (जिनवर उत्तउ सुद्ध स चेयनु सुद्ध न्यान ससुद्ध पऊ) वे ही शुद्ध चेतना स्वरूप हैं, शुद्ध ज्ञानमई हैं तथा शुद्ध पदके धारक हैं ॥ २ ॥

(देव उवन हो दाता होउ तउ न्यान विन्यानह ममल पऊ) श्री अरहन्तदेवका उदय हुआ है, यह ज्ञानमई शुद्ध पदके दातार भी हैं अर्थात् जो अरहंतकी भक्ति करता है व अरहंत परमात्माके ध्यानमें तन्मय होता है उसका भी आत्मा शुद्ध केवलज्ञानी होजाता है (गुरु गुपित्ति रुचियो निट्ठउ दाता, हो न्यान सरूवे सुद्ध पऊ) वे अरहंत गुप्त आत्मज्ञानकी रुचिके दातार हैं अतएव वे ही गुरु हैं। हे भव्य जीव! अपने ज्ञान स्वरूपमें उनके शुद्ध पदको देखो ॥ ३ ॥

(धम्म जु उत्तउ चेयन सहियो दर्सन दिस्टि सु ममल पऊ) चेतन आत्माके स्वभावको धर्म कहा गया है।

श्री अरहंत भगवान शुद्ध पदके धारीने उस धर्मको अपने क्षायिक सम्यग्दर्शनसे व अनन्तदर्शन व ज्ञानसे देख लिया है (दर्सन दर्सिउ लोय अवलोययि, दर्सिउ अर्थेह मल रहिऊ) उन्होंने अनन्तदर्शन व अनन्तज्ञानसे लोक व अलोकको देख लिया है, वे मल रहित निर्मल हैं, उन्होंने सर्व पदार्थोंको देख लिया है ॥ ४ ॥

(तउ उवएसिउ ममल सहावे हो तत्काल ऊवनउ तउ कहियो) शुद्ध स्वरूपके रमणको तप कहा गया है। श्री अरहन्तमें हरसमय तपका उदय कहा जाता है। वे आत्मामें निरन्तर तप रहे हैं (परम देव परमान सु महियो परम ऊवनउ दवु पऊ) वे ही अरहन्त सर्व देवोंमें श्रेष्ठ महादेव हैं, वे ही उत्कृष्ट ज्ञानके धारी हैं, वही परमात्मदेवका पद उदय हुआ है ॥ ५ ॥

(जिनवर जिनियो कम्मु अनंत जु चेयननंद सु समय मऊ) श्री जिनेन्द्रने अनन्त कर्मोंको जीत लिया है, वे चिदानन्द हैं व स्व समयरूप हैं, स्वात्मरमण स्वरूप हैं (परम जिनेंदह सुयम जिनियो मर्म कम्म जिनि ममल पऊ) उन परमात्म जिनेन्द्र भगवानने सूक्ष्म कर्मोंको व सूक्ष्म रागादि भावोंको जीत लिया है, इसीसे वे शुद्ध पदके धारी जिन हैं ॥ ६ ॥

(परम गुरह परमप्पक उत्तउ धर्म गुप्ति सिव सिद्ध मऊ) उनहीको परम गुरु व परम अक्षर या अविनाशी तथा परम गुप्त अर्थात् स्वरूप मगन, शिव अर्थात् कल्याणरूप तथा सिद्ध स्वभावधारी कहा गया है (परम धम्म परमप्पह सहियो तिविह कम्मु त सुइ गलिऊ) वे अरहन्त परम धर्मके व परमात्म-स्वभावके धारी हैं। उनके द्रव्यकर्म, भावकर्म व नोकर्म तीनों ही स्वयं गल गये हैं। तेरहवें गुणस्थानमें जली हुई रस्सीके समान अघातीयकर्म हैं जो शीघ्र ही झड़ जांयगे ॥ ७ ॥

(तत्तु जिनेन्दह उत्त समय हो तत्काल ऊवनो न्यान मऊ) श्री जिनेन्द्रने जो तत्व कहा है वह वही आत्मा है जिसके ज्ञानमई भाव प्रकाशित है। अर्थात् केवलज्ञान स्वरूपी परमात्मा ही यथार्थ तत्व है, सब तत्वोंमें सार है (ज जं समइ हो पुच्छियउ भवियन त तं उवनउ ममल मऊ) जब जब भव्यजीवोंने श्री अरहन्त भगवानसे तत्वका प्रश्न किया है तब तब यही दिव्यध्वनिमें प्रगट हुआ है कि वह तत्व शुद्ध स्वरूपी आत्मा है ॥ ८ ॥

(तत्तु तत्तु सवुलोय स उत्तउ तत्तु भेय नवि जानि पऊ) सर्व लोग तत्व तत्व शब्द कहते हैं, परन्तु तत्वका भेद नहीं जानते हैं (भय विनासु त भवु जु कहियो तत्तु भेउ गुरु जानि पऊ) हे भव्यजीव ! श्रीगुरु महाराज उस तत्वके भेदको जानते हैं, वह तत्व सर्व भयोंका क्षय करनेवाला है ॥ ९ ॥

(तत्काल ऊवनो ततु जु जानहु नन्तानन्त सु न्यान मऊ) वह तत्व अनन्त ज्ञानमई अरहन्त परमात्मा है। जिनका प्रकाश घातीय कर्मके क्षयसे उसी समय होता है (न्यान बिन्यानह विमल सु निर्मलु तत्काल ऊवनो तस मुनि) श्री अरहन्तका ज्ञान अज्ञान मलसे रहित है व रागादि मलसे रहित है अर्थात् वे वीतराग विज्ञानमई हैं उसी तत्वको इसी समय मनन करो ॥ १० ॥

(पर्म ततु परमप्पह उत्तउ परम न्यान उत्पन्न समऊ) परम ज्ञानधारी आत्मा या परमात्माको परम तत्व कहा गया है (परमानन्दह परम सुभाउ परम ततु परमिस्टि मऊ) वह परम तत्व परमानन्द स्वभाव धारी अरहन्त परमेष्ठी हैं ॥ ११ ॥

(अन्मोय विरोह विजानहु भवियन कम्मु कलंक स उत्तियउ) हे भव्यजीवो ! अनन्त सुखका विरोधी कर्म कलंकका उदय कहा गया है यह भलेप्रकार जानो (कम्म भाउ कम्मान स उत्तउ न्यान अन्मोयह विलय पऊ) कर्मोंके उदयसे कर्मजनित दुःखमय भाव होते हैं ऐसा कहा गया है, परन्तु जब आत्मज्ञानमें आनन्द आता है तब कर्मोंका क्षय होजाता है ॥ १२ ॥

(ज पुनु कम्म अनंतु भवए हो जनरंजन राग जु उपजिऊ) जो इस जीवके अनन्तानुबन्धी कषायोंका उदय है, जो अनंत भवोंमें रुलानेवाले हैं उनके प्रभावसे जगतके प्राणियोंमें रंजायमान होनेवाला राग उपजता है। अर्थात् अनंतानुबन्धी लोभादिके कारण आत्माके स्वभावमें आनंद नहीं आकर संसार, शरीर, भोग सम्बन्धी बातोंमें व स्त्री पुत्र मित्रादिमें राग भाव तीव्रतासे रहता है, मनकी रंजकता बाहरी पदार्थोंमें रहती है (कलरंनन दोप जु गारौ सहियो न्यान अन्मोयह गलि गयऊ) तथा शरीरमें रंजायमान होनेवाला राग द्वेष व शरीरका अहंकार होता है। कर्मजनित पर्यायोंमें मगनता होती है या अनिष्ट संयोगमें द्वेष होता है सो सब मिथ्यात्वभाव व जनरंजन व कलरंजनभाव व अहंकारभाव आत्मज्ञानमें आनन्द आनेसे गल जाते हैं ॥ १३ ॥

(मन रजन गारौ कम्म सविठ्ठो दर्सन मोहे अंध तु हू) जबतक हे भव्य जीव ! तू दर्शनमोहनीयके उदयसे अंधा है तबतक तेरे उन कर्मोंका उदय दिखलाई पडता है जिनसे तू मनको अहंकार ममकारमें रंजायमान करे (न्यान विन्यानह उवसम सहियो कम्मु विलय सो मुक्ति गऊ) परंतु जब आत्मज्ञानका उदय होता है तब दर्शनमोह आदिका उपशम होता है। उपशम सम्यक्तके होनेपर धीरे २ सर्व कर्मोंका क्षय होजाता है

और यह जीव मुक्ति पहुंच जाता है। मोक्षमार्गका प्रारंभ उपशम सम्यक्तके उदयसे होता है ॥ १४ ॥

(जं पुनु कम्मह भेउ न जानियो, न्यान सरूवे वृद्धि यऊ) जयतक कर्मोंके आस्रव व बंधका भेद नहीं जाना जाता है कि किन २ भावोंसे कर्मोंका बंध होता है तबतक अज्ञान दशामें कर्मोंका संचय पडता जाता है (मिथ्यामय सो सल्यह सहियो न्यान अन्मोयह गलि गयऊ) तथा मिथ्यात्व व मदकी शल्य रहा करती है परंतु आत्मज्ञानमें आनन्द आनेसे यह मिथ्याशल्य व कर्मका संचय गल जाता है ॥ १५ ॥

(पर पर्जायह दिट्ठि जु सहियो पर पर्जय न्तउ मूढ मई) मूढ बुद्धि बहिरात्मा आत्मासे भिन्न पर परिणतिमें आपापनेका श्रद्धान रखता हुआ कर्मजनित पर पर्यायोंमें लीन होजाता है। जो शरीर पाता है व कर्मोंके उदयसे जैसी अच्छी व बुरी अवस्था होती है उसीमें तन्मय होजाता है (कल्लकुन कम्मु जु दिट्ठो समई न्यान अन्मोयह गलि गयऊ) उस समय शरीरमें रंजायमान होनेवाली क्रियाएँ ही दीख पडती हैं, परंतु जब आत्मज्ञानमें आनंद आता है तब यह मूढ़ बुद्धि गल जाती है ॥ १६ ॥

(ज अवमह मरनि हि महियो, मैहुन संन्या समरिऊ) जबतक यह प्राणी अब्रह्मके मार्गमें चलता है तबतक मैथुन संज्ञा या कामसेवनका भाव भावोंमें घूमता रहता है (ज पुन मान कषाय सजुत्तउ, दर्सन दिस्टिहि विलय गऊ) तथा जो अब्रह्मभाव मान कषाय सहित होता है अर्थात् जो अब्रह्मभावमें आसक्ति होती है सो सब सम्यग्दर्शनके उदयसे दूर होजाती है। सम्यग्दृष्टीको आसक्ति ब्रह्मभावमें होजाती है, वह अब्रह्मभावसे उदास होजाता है ॥ १७ ॥

(मोह यही हर कम्मु जु ऊान, कषयह विषय सजु सम) विषय व कषायोंके साथ मोहरूपी पर्वतसे कर्मोंकी उत्पत्ति होती है अर्थात् मिथ्यात्वभाव सहित विषय व कषायोंमें रंजायमान होनेसे संसार भ्रमणकारी कर्मोंका बन्ध होता है (अन्यान दिट्ठि परनावह सहियो न्यान अन्मोयह गलि गयऊ) साथमें शरीरमें आसक्ति रखनेवाली अज्ञानदृष्टि रहती है सो सब मिथ्यादृष्टि आत्मज्ञानमें आनन्द आनेसे गल जाती है ॥ १८ ॥

(चष्य अचष्यह चष्यह उत्तउ अवहिहि कम्म जु ऊाजई) चक्षु, अचक्षु व कुअवधि द्वारा जो मिथ्यादृष्टि होती है उनसे कर्मोंका बंध होता है (अन्यान दिट्ठि ज कम्मु उपजै न्यान अन्मोयह गलि गयऊ) या अज्ञानदृष्टिसे जितना कर्मबन्ध होता है वह सब आत्मज्ञानमें आनन्द मगन होनेसे क्षय होजाता है ॥ १९ ॥

(जह जह कम्मु उपत्ति सविट्ठो जह जह कम्मु जु उपनै) जैसे जैसे कर्मोंका उदय देखा जाता है व जैसे

जैसे कर्मोंका बन्ध होता है (तह तह कम्मु जु विल्यो समई न्यान अन्मोयह समय मऊ) वैसे वैसे आत्मा सम्बन्धी ज्ञानमें आनन्द आनेसे उसी क्षण वे कर्म विला जाते हैं। अर्थात् आत्मानन्दकी मगनतासे रागद्वेष नहीं होते हैं तब नवीन कर्मोंका बन्ध न होकर पुरातनकी विशेष निर्जरा होती है ॥ २० ॥

(अप्पहु अप्पा सुद्धप्पा सउ, परमप्पा परम सु समय मऊ) यह आत्मा आप ही शुद्धात्मा है, आप ही परमात्मा है, आप ही स्वसमय स्वरूप है (न्यान अन्मोयह ममल सुभाउ हो परम न्यान सो मुक्ति गऊ) यही ज्ञानानन्दमय शुद्ध स्वभाव धारी है। इसीके अनुभवसे केवलज्ञान प्रगट होता है और यह आत्मा मुक्तिपदको प्राप्त कर लेता है ॥ २१ ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें बताया है कि श्री अरहन्त परमात्मा सच्चे देव हैं, सच्चे गुरु हैं, सच्चे धर्म स्वरूप हैं, वे ही यथार्थ तत्व हैं। अरहन्तके समान अपने आत्माको समझकर भावना करनी चाहिये। श्री अरहन्त परमात्मामें पांचों परमेष्ठी गर्भित हैं। उनके केवलज्ञानमें मति श्रुतादि ज्ञान भी गर्भित हैं। यह जीव अनादिकालसे अनन्तानुबन्धी कषाय और दर्शनमोहके उदय वश आत्मतत्वके ज्ञानसे शून्य होरहा है, पर्याय बुद्धि वर्त रही है। जिस शरीरको पाता है उसीके भीतर रंजायमान होजाता है, विषयोंकी गाढ़ रुचि वर्तती है। इसीसे जगतके साथ बहुत राग रहता है। स्त्री पुत्र मित्रादिसे बड़ा स्नेह रहता है। उनके लिये अन्याय करते हुए व पाप करते हुए शँका नहीं रहती है। संसार सुखमें विशेष मगनता रहती है। मिथ्या शल्य सहित विषयसुखकी चाहसे वह अज्ञानी धर्माचरण भी करता है। जीवन सदा इष्टवियोग, अनिष्ट संयोग, रोगकी वेदना व आगामी भोगाकांक्षाके होनेसे सदा दुःखमय रहता है। इन सब दुःख और चिंताओंको मेटनेवाला सम्यग्दर्शनका लाभ है। सम्यक्तके होते ही आत्मज्ञान व आत्मानुभव होजाता है। इसीसे सर्व रागादि मल दूर होजाते हैं, कर्मोंके वश जल जाते हैं। सम्यग्दर्शन बड़ा उपकारी है। इसके होते ही निर्वाणकी रुचि पैदा होजाती है, अतीन्द्रिय सुखकी श्रद्धा होजाती है, संसार सुखकी रुचि मिट जाती है, सर्व विकथाओंमें रंजायमान होनेका भाव मिट जाता है, पर्याय बुद्धिका अहँकार व ममकार दूर होजाता है। आत्मानन्दका स्वाद ही सम्यक्तीको रुचता है। वह निरन्तर ज्ञानानन्दमें मगन रहता है। इसीसे कर्मोंका क्षय होता जाता है। आत्मज्ञानका अनुभव ही एक दिन आत्माको परमात्मपदमें सुशोभित कर देता है। कर्मोंके नाशकी एक मात्र औषधि आत्मज्ञानकी रमणता है।

ममलपाहुड

श्री योगेन्द्रदेव योगसारमें कहते हैं—

अजरु अमरु गुणगणणिलउ जहिं अप्पा थिर थाई । सो कम्महि ण वि बंधयउ संचियपुव्व विलाइ ॥ ८९ ॥
जो सम्मत्तपहाणु बुहु सो तयलोय पहाणु । केवलणाण वि लहु लहइ सासयसुक्खणिहाणु ॥ ९० ॥
जह सलिलेण ण लिप्पियइ कमलणिपत्त कया वि । तह कम्मेण ण लिप्पियइ जइ रइ अप्पसहावि ॥ ९१ ॥
जो समसुक्खणिलीण बुहु पुण पुण अप्प मुणेइ । कम्मक्खउ करि सो वि फुडु लहु णिव्वाण लहेइ ॥ ९२ ॥

भावार्थ—जो कोई आत्मा अजर, अमर, गुणोंके समुदायरूप आत्मामें स्थिर होता है वह कर्मोंको नहीं बांधता है, पूर्व संचित कर्मोंको क्षय करता है ॥ ८९ ॥ जिसके सम्यग्दर्शनका लाभ होगया है वह तीन लोकमें उत्तम है, वही केवलज्ञानको पाता है, वही अविनाशी सुखके भंडारको भोगता है ॥ ९० ॥ जैसे कमलिनीका पत्ता कभी भी पानीसे लिप्त नहीं होता वैसे जो कोई आत्माके स्वभावमें रमण करता है वह कर्मोंसे नहीं बंधता है ॥ ९१ ॥ जो कोई समताभाव सहित आनन्दमें मगन होकर बारबार अपने आत्माको ध्याता है वह कर्मोंका क्षय करके शीघ्र ही मोक्षका अधिकारी होजाता है ॥ ९२ ॥

(४९) विवान अर्क गाथा ९८६ से १०१५ तक ।

विवान विन्यान स उत्तं, विवान दिस्टि नन्त संदरसं ।
विवान न्यान विन्यानं, विवानं वीय नन्तनन्ताई ॥ १ ॥
विवान सुक्ख सुइ नन्तं, नन्त चतुस्टं च सुयं सुइ सुवनं ।
नन्तानन्त अनन्तं, अनन्त सुभावेन नन्तं परवंसं ॥ २ ॥
विवान अर्क सुइ अर्कं, अर्क सुइ अर्क उवन संदर्स ।
उवन उवन सुइ विलनं, अर्क अर्कस्य मुक्ति गमनं च ॥ ३ ॥
अर्क अर्क अनन्तं, अनन्तं सुभावेन नन्त परवेसं ।
नन्तानन्त सु गमनं, गमनं अगम्य सिद्धि सम्पत्तं ॥ ४ ॥

अर्क अर्क स लष्यं, लष्यं अर्क अलष्य रूवेन ।
अलषं अलष्य लषनं, कर्न कमलस्य सिद्धि सम्पत्तं ॥ ५ ॥
अर्क गमन सहावं, गमनं अर्कस्य अगम रूवेनं ।
दर्स उवन सहावं, उवनं आकर्न कमल निव्वानं ॥ ६ ॥
अर्क इस्ट उवन्नं, इस्टं अर्क च उवन सुइ रूवं ।
उवन उवन सुइ उवनं, उवनं सुइ कर्न कमल निव्वानं ॥ ७ ॥
अर्क हिययार स उत्तं, हियार अर्क हुवयार संजुत्तं ।
उवन सुहाइ सु उवनं, उवनं सुइ कलन कर्म उव उवनं ॥ ८ ॥
अर्क मित मित्तानं, मितं प्रवेस मिलन सुइ चरनं ।
चरनं उवन सहावं, उवनं कमलस्य कर्न सुइ रमनं ॥ ९ ॥
अर्क परिनत रूवं, परिनै सहावेन प्रमान दर्सति ।
प्रमानं मुक्ति सरूवं, मुक्ते कमलस्य कर्न मुक्तं च ॥ १० ॥
अर्क कोमल रूवं, कोमल सहकार ललित सुइ सुवनं ।
ललित चरन सिय चरनं, चरनं कमलस्य कर्न निर्वानं ॥ ११ ॥
अर्क ललित उवन्नं, ललित सहावेन ममल रूवेन ।
ममल सियं धुव ममलं, ममलं कमलं च केवलं न्यानं ॥ १२ ॥
ममल उवन सुइ सुवनं, ममलं उवन्न अवयास संजुत्तं ।
अवयास गमल सुइ कलनं, कलनं कमलं च कर्न निर्वानं ॥ १३ ॥

ममलपाहुड
॥४०७॥

विवान समय उव सुवनं, सुवनं हुव हेय सहाव सुवनं य ।
सह अवयास स ममलं, साहिय सुसमय अवयास सिद्धानं ॥ १४ ॥
विवान समय सुइ समयं, समयं उववन्न समय सुइ गमनं ।
समय अगम सुइ गमनं, समयं सह समय मुक्ति ठिदि रमनं ॥ १५ ॥
महुवा अर्क सु समयं, समयं सुइ अर्क सिद्धि ठिदि रमनं ।
समय विवान स चरनं, समय सहावेन महुवा सुइ उवनं ॥ १६ ॥
महुवा अर्क सु समयं, अर्क ममलं च महुवा निर्वानं ।
महुवा अर्क सु समयं, अर्क ममलं च महुवा निर्वानं ॥ १७ ॥
महुव अर्क सुइ साहं, कमलं उववन्न कर्म सुइ समयं ।
समय कलन सुइ उवनं, कलनं कमलं च केवलं न्यानं ॥ १८ ॥
महुव अर्क सम साहं, साहं ससमय विवान समयं च ।
उवनहि यार सहावं, महुव सहावेन प्रहर परमानं ॥ १९ ॥
प्रहरं अर्क सु सहियं, अर्क विवान कमल अवयासं ।
कमल कलन उववन्नं, साहिय सुइ कर्म कलन कमलं च ॥ २० ॥
विवान अक सुइ प्रहरं, प्रहरं सुइ समय उवन निर्वानं ।
प्रहरं सहाव सु उवनं, दुति प्रहरं च अर्क ममलं च ॥ २१ ॥
दुति प्रहरं च विवानं, विवान समय कलन कर्नं च ।
दुति सहाव सुइ अर्क, दिप्ति उव उवन दिगन्त नन्तानं ॥ २२ ॥

दिप्ति उवन दिपि दिपियं, दिप्ति दिस्टं च दिस्टि दिप्ती च ।
दिस्टि दिप्ति सुइ समयं, कलन कमलं च उवन सुइ उवनं ॥ २३ ॥
कमलं कलन सुचरनं, अर्क सम उवन सहियं कर्मं ।
कमलं कर्म सजोयं, संजोय समय सिद्धि संपत्तं ॥ २४ ॥
दिप्ति अर्क सुइ समयं, रमनं षट् रमन अर्ह सुभावं ।
दिप्तिं अर्थ सुभावं, तीसं महि उवन उवन परमानं ॥ २५ ॥
तस्य समय विवानं, उव उवन पयोग अर्क सुइ सुवनं ।
ति अथ पट् कमलं, उववन पयोग वर्ष सुइ सुवनं ॥ २६ ॥
सो उववन ति अथ, कमलं दह दर्स दिप्ति सुइ सुवनं ।
सै तीनि साढि सुय सुवनं, वर्ष सुइ नन्त काल सिधि रमनं ॥ २७ ॥
विवान समय सुभावं, कलनं सुइ कालय कर्म ममलं च ।
तारन तरन सहावं, कमलं सुइ कर्न सिद्धि सम्पत्तं ॥ २८ ॥
विवान समय सुइ उवनं, उत्तं सुइ उवन केवलं न्यानं ।
तित्थयर रमन सुइ रमनं, उत्तं तित्थयर समय सिद्धानं ॥ २९ ॥
तारन तरन सु ममलं, ममलं सुइ कलन कमल सुइ कर्न ।
समय विवान सु समयं, सह समय सिद्धि सम्पत्तं॥ ३० ॥

अन्वय सहित अर्थ— विवान विन्यान स उत्त) श्री अरहन्त भगवान ज्ञानरूपी जहाज कहे गए हैं (विवान दिस्टि नत सर्दसे) इस ज्ञानरूपी जहाजमें अनन्त दर्शन भी देखा जाता है (विवान न्यान विन्यनं) इस जहाजमें केवलज्ञान भी है (विवान वीय नत नताई) इस जहाजमें अनन्तवीर्य भी है ॥ १ ॥

ममलपाहुड ॥४०९॥

(विनान सुक्ख सुइ नत) इस जहाजमें अनन्त सुख भी है (नं चतुष्टे च सुयं सुइ सुवनं) इसतरह चार अनन्त चतुष्टय यहां स्वयं प्रकाशित हैं इसीसे यह पूज्यनीय हैं (नंन न नत) ये चारों ही स्वभाव अनन्तानन्त शक्तिको धरनेवाले हैं (अनंत सुभावेन अनन्त पावेस) ज्ञानका स्वभाव अनन्त है इसलिये उनमें अनन्त पदार्थोंका स्वरूप व्याप्त होरहा है ॥ २ ॥

(विनान अर्क सुइ अर्क) यह जहाज सूर्य समान है। श्री अरहंत स्वय सूर्य हैं (अर्क सुइ अर्क उवन संदर्शी) यह सूर्य समान तेजस्वी पूर्ण प्रकाशको दिखला रहे हैं अर्थात् श्री अरहन्त वीतरागता सहित ज्ञानदर्शन गुण धारी हैं (उवन उवन सुइ मिलन) उदय होते होते यह सूर्यसम होगए हैं। जब भेदविज्ञान पूर्वक आत्मानुभव होता है तब आत्मा बाल सूर्यके समान होजाता है। जब केवलज्ञान होता है तब पूर्ण तेज स्वरूप सूर्य समान होजाता है (अर्क अर्कस्य मुक्ति गमन च) हरएक अरहन्त सूर्य दूसरे अरहन्त सूर्यके बराबर है, सब ही मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

(अर्क अर्क अनंतं) श्री अरहन्त सूर्य अनन्त किरणरूप शक्तियोंके धारी हैं (अनन्त सुभावेन नत पावेस) अनन्त स्वभाव रखनेके कारण अनन्त लोकालोक उनके ज्ञानमें व्याप्त है (नतानत सुगमन) वे अनन्तानन्त गुण पर्यायोंको भलेप्रकार जान रहे हैं (गमनं अगम्य सिद्धि स च) उन्होंने इंद्रियातीत आत्माको प्रत्यक्ष अनुभव किया है, वे अवश्य सिद्धिको प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

(अर्क अर्क स लष्यं) इस सूर्यका लक्ष्य स्वयं सूर्य ही है। यह अरहन्त आप आपमें मगन हैं (लष्य अर्क अलष्य रूवेन) वे स्वाभाविक अतीन्द्रिय ज्ञानसे अपने आत्म सूर्यका अनुभव कर रहे हैं (अलष्यं अलष्य लषन) जिस अतीन्द्रिय आत्माको इंद्रियें व मन नहीं अनुभव कर सक्ते हैं उसका उन्होंने अनुभव किया है (कर्न कमलस्य सिद्धि स च) यह आत्म सूर्य अपने ही आत्म कमलके विकसित करनेका कारण है। अर्थात् केवलज्ञान होते ही आत्मारूपी कमल अपने स्वभावमें प्रफुल्लित होजाता है फिर अरहन्त सिद्धिको प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥

(अर्क गमन सहावं) यह अरहन्त सूर्य परिणमन स्वभावको धरनेवाले है (गमन अर्कस्य अगम रूवेन) इस सूर्यका परिणमन स्वाभाविक बहुत ही सूक्ष्म अगुरु लघु गुणके द्वारा होजाता है जो स्थूल बुद्धिके अगोचर

है (दर्सी उवन सहावं) वहां उदयरूप स्वभाव दिखलाई पड़ता है (उवन आकर्न कमल निव्वानं) जैसा सुना है यही उदयरूप कमल समान अरहन्त प्रभु निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं ॥ ६ ॥

(अर्क इस्ट उवन) यह सूर्य परम इष्ट व कल्याणकारी है, इसका उदय होगया है (इस्ट अर्क च उवन सुइ रूव) यह हितकारी सूर्य स्वयं अपने स्वभावमें उदयरूप हैं (उवन उवन सुइ उवन) यह उदय होते होते उदय हुए हैं (उवन सुइ कर्न कमल निव्वान) यह उदयरूपी कमल स्वयं निर्वाणरूप होजाता है ॥ ७ ॥

(अर्क हिययार स उत्तं) यह सूर्य बड़े हितकारी कहे गए हैं (हियार अर्क हुवयार सजुत्त) इस हितकारी सूर्यसे बड़ा उपकार होता है, दिव्यवाणीका प्रकाश होता है जिससे अनेक जीव मोक्षमार्गका लाभ करते हैं (उवन सहाव सु उवन) यह अपने स्वभावसे उदयरूप है (उवन सुइ कलन कर्न उव उवन) यह उदय होकर अपने स्वभावमें रमण करते हुए उदय रहते हैं ॥ ८ ॥

(अर्क मित मिचान) यह अरहन्त सूर्य असंख्यात प्रदेशी होकर अपने शरीरप्रमाण मर्यादाको रखनेवाले हैं (मित्त पवेस मिलन सुइ चरन) इसी शरीर प्रमाण आकारमें ही स्वयं प्रवेश होकर एकमें एक होकर मिल गए हैं यही स्वरूपमें आचरन है (चरनं उवन सहावं) स्व चारित्र भी उदय स्वभाव है, सदा उदय रहता है (उवन कमलस्य कर्न सुइ रमन) यह सूर्य आत्मारूपी कमलके विकसित करनेका कारण है तथा उसी प्रफुल्लित कमलमें यह आप ही रमण करते हैं ॥ ९ ॥

(अर्क परिनत रूव) यह अरहंत सूर्य परिणमन स्वभाव है (परिनै सहावेन प्रमान दर्सीति परिणमन करते हुए अपने केवलज्ञान प्रमाणको दिखलाते हैं। केवलज्ञानमें त्रिकालवर्ती ज्ञेयोंका जैसा परिणमन होता है वैसा झलकता है, इस अपेक्षा भी अरहंत सूर्य परिणमनशील है (पमानं मुक्ति सरूव) यह केवलज्ञान प्रमाण परम शुद्ध मुक्त स्वरूप है (मुक्ते कमलस्य कर्म मुक्तं च) यह कमल समान आत्माको मुक्त करके मुक्ति पहुंचा देता है ॥ १० ॥

(अर्क कोमल रूव) यह अरहंत सूर्य परम कोमल मार्दव स्वभावधारी परम शांत हैं (कोमल सहकार ललित सुइ सुवन) अपनी कोमलताके कारण यह बहुत ही ललित हैं, सुन्दर हैं तथा परम पूज्यनीय हैं (ललित चरनं सिप चरन) श्री अरहन्तका चारित्र बड़ा ही सुन्दर है, उनका परम शुद्ध आचरण है, वहां शुक्ललेश्या है व वीतराग भाव शोभनीक है (चरन कमलस्य कर्न निर्वान) वे अरहन्त सूर्य आत्मकमलको अपने आचरणसे प्रफुल्लित करके निर्वाण पहुंचा देते हैं ॥ ११ ॥

(अर्क ललित उवन्न) यह अरहंत सूर्य बडे सुन्दर रूपमें उदयरूप हैं (ललित सहावेन कमल रूवेन) सुन्दर स्वभाव होते हुए कमलके समान प्रफुल्लित हैं (ममल सिय धुव ममल) यह कममल रहित हैं, शुक्लेश्या धारी हैं, ध्रुव रूपसे शुद्ध हैं फिर कभी अशुद्ध नहीं होंगे (ममल कमल च केवल न्यान) यह शुद्ध कमल अरहन्त केवलज्ञान स्वरूप हैं ॥ १२ ॥

(ममल उवन सुइ सुवन) यह अरहन्त सूर्य शुद्धतासे उदयरूप हैं तथा पूज्यनीय है (ममलं उवन्न अवयास सजुत्त) शुद्ध अरहन्त सूर्यमें बडा भारी अवकाश है, सर्व ज्ञेय ज्ञानमें झलकते हैं (अवयास ममल सुइ कल्न) वे शुद्ध ज्ञानका ही अनुभव कर रहे हैं (कल्न कमलं च कर्न निर्वान) यह अपने कमल स्वभावमें रमण करते हुए निर्वाणको पहुंच जाते हैं ॥ १३ ॥

(विवान समय उव सुवन) यह अरहन्तका आत्मारूपी जहाज, परम पूज्यनीय है (सुवन हुव हेय सहाव सुवन च) उन्होंने पहले घातक कर्मोंको घात करके अपना पूज्यनीय स्वभाव प्राप्त किया है (सह अवयाव स ममल) इसलिये वे अनन्तज्ञान सहित हैं व वीतराग हैं (साहिय सुममय अवयास सिद्धान उन्होंने अपना स्व-समय या स्वरूपाचरण चारित्रको तथा पूर्णज्ञानको पाकरके सिद्धपदका साधन कर लिया है ॥ १४ ॥

(विवान समा सुइ समय) यह अरहन्त आत्मा जहाजके समान तारण तरण हैं सो ही आत्मीक स्वभाव रूप हैं (मनय उवन्न समय सुइ गमनं) वहां आत्माका स्वरूप उदयरूप है। वे अरहन्त आत्मा परिणमनशील हैं, अपनी स्वाभाविक परिणतिमें परिणमन करते हैं (समय अगम सुइ गमनं) उस आत्माका परिणमन अगम्य है, अति सूक्ष्म है, केवलज्ञानगोचर है (समय सह समय मुक्ति ठिदि रमन) वे अरहन्त आत्मा स्वरूपाचरण सहित मुक्तिको पाकर उस मुक्तिमें सदा स्थिर रहते हैं व आनन्दमें रमण करते रहते हैं॥१५॥

(महुवा अर्क सु समय वह अरहन्तका आत्मा महुवाका अर्क है। अर्थात् मदिराके समान है। आत्मानुभव करनेसे जो आनन्दामृत पैदा होता है, उसकी उपमा मदिरासे दी है। जैसे मदिरा पीनेवाला उन होजाता है वैसे अरहन्त परमात्मा अपने आनन्दके मदमें लवलीन हैं (समय सुइ अर्क सिद्धि ठिदि रमन) आत्मा है वही मदिरा है, वही सिद्धि है, वही आत्मस्थिति है, वही स्वरूप रमण है, इन सबका भाव एक ही है। जब आत्मा आत्मामें तन्मय होता है तब ही मदिरा जेसी दशा होती है, तब ही आत्मसिद्धि होती है, तब ही आत्मस्थिति होती है, तब ही स्वरूपमें रमण होता है। (समय विवान स

चान) वही आत्मा जहाज स्वचारित्र रूप है (समय सहावेन महुवा सुइ उवन) वह अपने आत्मीक स्वभावसे ही महुवाकी मदिरारूप होरहे हैं, उनका उपयोग आत्मस्थ है ॥ १६ ॥

(महुवा अर्क सु समय) यह स्वचारित्र रूप आत्मा ही महुवाका अर्क या मदिरा है (अर्क ममल च महुवा निर्वानं) यही सूर्य है, यही शुद्ध है, यही मद्यरूप है, यही निर्वाण स्वरूप है (महुवा अर्क सु समय) यह आत्मा ही मदिरा है (अर्क ममल च महुवा निर्वान) यही सूर्य है, यही शुद्ध है, यही मद्य है, यही निर्वाण है ॥१७॥

(महुव अर्क सुइ साह) मदिराकी ही साधना करनी होती है । स्वात्मानन्दके भावसे ही स्वात्मानन्दकी रमणता रूपी मदिरा बनती है (कमल उववन कर्म सुइ समय) उसी अवस्थाको कमलका विकास कहते हैं, वही मोक्षका कारण है, वही आत्मारूप है (समय कलन सुइ उवन) वही आत्माके भीतर मगनता है, वही उदयरूप भाव है (कलन कमल च केवल न्यान) वही स्वात्मरमण कमलरूप है, वही केवलज्ञान है ॥ १८ ॥

(महुव अर्क सम साह) समताभावकी साधना ही मदिरा है (माहं स समय विशान समय च) वही स्वसमयकी व तारण तरण जहाज सम आत्माकी साधना है (उवन हियार सहाव) तब परम हितकारी स्वभाव प्रगट होजाता है (महुव सहावेन प्रहर परमानं) इस मादक स्वभावसे कर्मोंको भलेप्रकार घात करनेवाला ज्ञान प्रकाशमान होजाता है अर्थात् स्व समाधिकी तल्लीनतासे ही घातीय कर्मोंका घात होता है ॥ १९ ॥

(प्रहर अर्क सु महियं) यह आत्मारूपी सूर्य कर्मोंका घातक है (अर्क विवान कमल अवयासं) यही सूर्य जहाज है, यही कमल है, यही आकाश समान अनन्तज्ञानको अवकाश देनेवाला है (कमल कलन उववन) यहां आत्मारूपी कमल अपनेमें तन्मयस्वरूप प्रकाशित है (सहिय सुइ कर्म कलन कमलं च) इसी साधनासे स्वात्मरमणरूप कमलकी साधना की जाती है ॥ २० ॥

(विवान अर्क सुइ प्रहर) जो जहाज है, वही सूर्य है, वही कर्म चूरक वज्र है (प्रहर सुइ समय उवन निर्वान, जो वज्र है, वही आत्मा है । उसीके निर्वाणका उदय होता है (प्रहर सहाव सु उवन) आत्मा वज्रमई स्वभावसे प्रगट होता है (प्रति प्रहर च अर्क ममलं च) इस वज्रकी जो कांति है वही निर्मल सूर्यका प्रकाश है ॥२१॥

(प्रति प्रहर च विवानं) इस वज्रकी जो कांति है अर्थात् स्वानुभव है वही जहाज है (विवान समय कलन कर्न च) यही जहाज आत्मामें रमणरूप है व मोक्षका कारण है (प्रति सहाव सुइ अर्क) इस आत्माका ज्योति-

मय स्वभाव है वही सूर्य है (दिप्ति उव उवन दिगत नतानं) इस ज्ञान ज्योतिकी चमक अनन्त दिशाओंमें व्याप्त है, अर्थात् ज्ञान लोकालोक प्रकाशक है ॥ २२ ॥

(दिप्ति उवन दिपि दिपिय) इस अरहन्त परमात्मामें जो ज्योतिका उदय है वह चारों ओर चमक रहा है (दिप्त दिस्ट च दिस्टि दिप्ती च) यहां क्षायिक सम्यक्तका प्रकाश है व अनन्तदर्शनका प्रकाश है (दिस्टि दिप्ति सुइ समय) ज्ञानदर्शनादि ज्योतिमई ही आत्मा है (कलन कमलं न उवन सुइ उवनं) यही स्वात्मरमणरूप कमल है, यह प्रकाश रूप है ॥ २३ ॥

(कमल कलन सु चरनं) आत्मारूपी कमलमें रमण करना ही स्वचारित्र है (अर्क सम उवन सहिय कर्न) यही सूर्य है, यहीं समभावका उदय है, यहीं मोक्षमार्गकी साधना है (कमल कर्न सजोय) इस कमलमें रत्नत्रयरूपी मोक्षमार्गका संयोग है (सजोय समय सिद्धि सपत्त) रत्नत्रयकी एकतारूपी आत्मा होनेसे ही आत्मा सिद्धिको पालेता है ॥ २४ ॥

(दिप्ति अर्क सुइ समयं) परम ज्योतिरूप सूर्यसमान आत्मा है (रमन षट् रमन अर्ह सुभावं) यही अरहंत स्वभावरूप है और अपने छः शुद्ध रमणीक गुणोंमें रमन कर रहे हैं अर्थात् अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्र (दिप्ति अर्थ सहाव) यह ज्ञान ज्योति आत्मारूपी पदार्थका स्वभाव है (तीस महि उवन उवन परमानं) जंबूद्वीप, धातुकी खंड व पुष्करार्द्धमें भरत ऐरावत आदि ३० क्षेत्र हैं अर्थात् ढाई द्वीप भरसे आत्मा केवलज्ञानकी प्राप्ति करके मोक्ष जाता है। विदेह भरत ऐरावतमें तो कर्मभूमि है, मोक्षमार्ग चलता है, भोगभूमिमेंसे उपसर्ग प्राप्त केवली सिद्धगति पाते हैं ॥२५॥

(तस्य समय निव्वान) निर्वाण प्राप्तिका यही समय है (उव उवन पयोग अर्क सुइ सुवनं) जब कभी उपयोग सूर्य समान शुद्ध ज्ञानमय होजावे व पूज्यपना प्रगट होजावे। अर्थात् अर्हंत आयुकर्मके क्षयसे अवश्य मोक्ष प्राप्त करते हैं (ति अर्थ षट् कमल) वे ही रत्नत्रयमई पदार्थ हैं, वे ही ऊपर कहे प्रमाण छः गुणोंके धारी अर्हंतरूपी कमल हैं (उववन पयोग वर्ष सुइ सुवनं) जिस क्षेत्रमें केवलज्ञानका उपयोग प्रगट होता है, जहां शुद्धोपयोगरूप सिद्ध भाव प्रगट होता है वह क्षेत्र भी माननीय होजाता है अथवा वह वर्ष या समय भी माननीय होजाता है। जैसे श्री महावीरका निर्वाण दिवस व उनका निर्वाणक्षेत्र पावापुर ॥ २६ ॥

(सो उववन ति अर्थ) उस सिद्धपदमें रत्नत्रयमई पदार्थ झलक जाता है (कमल दह दर्स दिप्ति सुइ सुवन)

उस कमलमें धर्मके दश लक्षण झलकते हैं। अर्थात् उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य व उत्तम ब्रह्मचर्य, वहीं ज्ञान ज्योति परम पूजनीय हैं (सै तीन साढ़ि सुय सुवन) वे तीनसै साठ ३६० दिन पूज्यनीय हैं (वर्षे सुइ नत काल सिधि रमन) वे सिद्ध भगवान अपने सिद्ध क्षेत्रमें अनन्त काल तक अपने सिद्ध स्वभावमें रमण करते रहते हैं ॥ २७ ॥

(विवान समय सुभाव) अरहन्त आत्माका स्वभाव जहाजके समान है (कलन सुइ कलिय कमल ममल च) वे स्वात्मरमण करते हुए प्रफुल्लित कमलके समान शुद्ध हैं (तारन तरन सहाव) वे ही तारणतरण स्वभावधारी हैं (कमल सुइ कर्न सिद्धि सपत्तं) वे ही कमलके समान आत्मा आप ही सिद्ध होकर निर्वाण प्राप्त करलेते हैं ॥२८॥

(विवान समय सुइ उवनं) वे ही जहाजके समान आत्मा उदयरूप है (उत्त सुइ उवन केवलं न्यानं) वहीं प्रकाशरूप केवलज्ञान कहा गया है (तित्थयर रमन सुइ रमनं) तीर्थंकर भी स्वयं रमण करते हुए तीर्थका प्रचार करते हैं (उत्त तित्थयर समय सिद्धान) वे ही तीर्थंकर आत्मा सिद्ध होजाते हैं ऐसा कहा गया है ॥ २९ ॥

(तारन तरन सु ममल) वे अरहन्त शुद्ध तारणतरण जहाज हैं (ममलं सुइ कलन कमल सुइ कर्न) वे ही कर्म रहित निर्मल हैं, वे ही स्वात्म-रमणरूप कमल हैं, वे ही मोक्षके कारण हैं (समय विवान सु समय) वे ही आत्मा स्वचारित्ररूप जहाज है (सह समय सिद्धि संपत्त) वे ही अपने आत्मीक स्वभावको लिये हुए सिद्धिको प्राप्त कर लेते हैं ॥ ३० ॥

भावार्थ—इस गाथावलीमें श्री अरहन्त परमात्माकी खूब भावसे स्तुति की है। वे स्वयं तारणतरण जहाज हैं। क्योंकि वे स्वयं सिद्ध होंगे व उनके उपदेशसे अनेक भव्यजीव मोक्षमार्गका लाभ प्राप्त करके सिद्धगतिको पावेंगे। वे अरहन्त ही सूर्य समान हैं। क्योंकि वे स्वयं प्रकाशित होते हुए भी परम वीतराग रहते हैं। वे ही कमल समान प्रफुल्लित हैं। वे ही कर्म-पर्वतोंको चूर्ण करनेके लिये वज्र समान हैं। श्री अरहन्तका आत्मा शुद्ध होगया है व वह स्वयं अपने स्वभावमें ही अनुरक्त हैं। स्वात्मानन्दमें रमण कर रहा है। अब ऐसा कोई कर्म शेष नहीं रहा जो उनकी आत्माको अशुद्ध कर सके। वे अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य व अनन्त सुखके धारी हैं। उन अरहन्त हीमें यह शक्ति है जो वे प्रत्यक्ष अमूर्तीक आत्माका दर्शन कर सके। वे द्रव्य स्वभावको धारण करते हुए अपनी स्वभाव पर्यायमें परिणमन करते हैं। वे नित्य आत्मानन्दका स्वाद लेते हैं। उनका जो कोई ध्यान व पूजन करता है वह भी उनहीके

समान होजाता है। यद्यपि वे लोकालोकको जाननेकी अपेक्षा लोकालोक व्यापी हैं तथापि प्रदेशोंकी अपेक्षा वे असंख्यातप्रदेशी हैं। ये प्रदेश भी संकोच करके शरीराकार होरहे हैं। अरहन्तका आत्मा इसी निज स्वरूपमें मगन हैं। वे अरहन्त उत्तम क्षमादि दश धर्मके धारक हैं व सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र–रत्नत्रय धर्मके धारक हैं। वे परम शांत हैं। वे परम सुन्दर हैं। उनके भीतर कोई रागादि विकार नहीं है। वे तेरहवें गुणस्थानमें शरीर सहित भी बड़े सुन्दर हैं। उनके शुक्लेश्या होती है। वे अर्हंत परमात्मा सर्व संसारके प्रपंचजालसे वैराग्यवान होते हुए आत्मीक स्वभावमें रमण करनेसे जो परमानन्द रस प्रगट होता है उसमें इस तरह मगन हैं जैसे कोई मदिरा पीकर उन्मत्त होजावे। आत्मानन्दके विलासी भगवानको मदिरा रस मगनकी उपमा इसीलिये दी है कि पाठकोंको बोध होजावे कि अरहन्त परमेष्ठी आनन्दमें मगन रहते हुए किसी प्रकारकी इच्छाको व विकल्प भावको नहीं करते हैं। अरहन्तको वज्र भी इसलिये कहा है कि उनके शुद्ध भावोंसे कर्मके पर्वत चूर्ण होजाते हैं। वे अरहन्त सदा उदयरूप रहते हैं, आयुके अन्तमें शरीर रहित सिद्ध परमात्मा होजाते हैं। ढाईद्वीपके तीसों क्षेत्रोंसे मुक्ति होती है। मुक्त जीव सीधे ऊपरको जाकर लोकके अग्रभागमें ठहर जाते हैं। सिद्धक्षेत्र भी इसीलिये ढाईद्वीपके बराबर ४५ लाख योजनका है। हम भव्योंको ३६० दिन वर्षके होते हैं सब दिन उनकी भक्ति करनी चाहिये। सिद्ध भगवान अनन्त कालतक सिद्धावस्थामें रहेंगे। तीर्थंकर भी तीर्थप्रचार कर सिद्ध होजाते हैं। जिस क्षेत्रमें जिससमय तीर्थंकर व सामान्य केवली मोक्ष प्राप्त करते हैं वह समय व क्षेत्र आदरके योग्य है। श्री अरहन्त भगवान तारणतरण हैं, बड़े उपकारी हैं, स्वयं भवसागरसे तरते हैं व उनके उपदेशसे अनेक भव्यजीव धर्म साधन कर मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। श्री अरहन्तका आत्मा स्वात्मरमणमें रमण करता हुआ सिद्धावस्थामें अनन्त काल तक विराजमान रहता है। आप्तस्वरूप ग्रन्थमें अरहन्तकी महिमा बताई है:—

यस्य वाक्यामृतं पीत्वा भव्या मुक्तिमुपागताः। दत्तं येनाभयं दानं सत्वानां स पितामहः ॥ ३६ ॥
केवलज्ञानबोधेन बुद्धवान् स जगत्त्रयम्। अनन्तज्ञानसंकीर्णं तं तु बुद्धं नमाम्यहम् ॥ ३०॥
सर्वद्वंद्वविनिर्मुक्तं स्थानमात्मस्वभावजम्। प्राप्तं परमनिर्वाणं येनासौ सुगतः स्मृतः ॥ ४१ ॥
जन्ममृत्युजरारोगाः प्रदग्धा ध्यानवह्निना। यस्यात्मज्योतिषा राजे सोऽस्तु वैश्वानरः स्फुटम् ॥ ४३ ॥
अच्छेद्योऽनवमेयश्च सूक्ष्मो नित्यो निरंजनः। अजरो ह्यमरश्चैव शुद्धसिद्धो निरामयः ॥ ५३ ॥

सड़क बजाजा पर लसे, सुगृह विशेशरनाथ।
चैत्यालय तहं एक है, नमूं नाय निज माथ ॥ २२ ॥
मुन्नेलाल सु कागजी, घर है यहियागंज।
चैत्यालय तहं पर लसै, करै पापको भंज ॥ २३ ॥
इत्यादिक संयोगमें, सुखसे काल विताय।
श्री जिन तारण गुरु रचित, पाहुड़ ममल सुहाय ॥ २४ ॥
अध्यातम गुणगान हैं, पद पद पर रसलीन।
पढ़ जाने समझै अरथ, होवै आतम लीन ॥ २५ ॥
ग्रंथ कठिन भाषा कठिन, तुच्छ बुद्धि अनुसार।
प्रचलित भाषामें लिखा, अर्थ सुगम चितधार ॥ २६ ॥
तारण स्वामि प्रतापसे, टीका हुई विचार।
भूल चूक कछु होय तो, क्षमा करो बुधिधार ॥ २७ ॥
आगासाद निवासि हैं, मन्नूलाल उदार।
अर मथुराप्रसाद हैं, सागर पर उपकार ॥ २८ ॥
प्रेरक ये इस कार्यके, इनहीका उपकार।
यह कछु कारज बन पड़ा, लखा तत्व हितकार ॥ २९ ॥
मंगल श्री जिनराज हैं, मंगल सिद्ध महान।
गुरु पाठक साधू नमूं, लहूं ज्ञान सुखदान ॥ ३० ॥
आश्विन कृष्णा चौदसी, है गुरुवार महान।
चौविस इकसठ वीरमें, पूरण किया सुजान ॥ ३१ ॥

शुभं भूयात्, मंगलं भूयात्, हितं भूयात्।

ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद।

समान होजाता है। यद्यपि वे लोकालोकको जाननेकी अपेक्षा लोकालोक व्यापी है तथापि प्रदेशोंकी अपेक्षा वे असंख्यातप्रदेशी हैं। ये प्रदेश भी संकोच करके शरीराकार होरहे हैं। अरहन्तका आत्मा इसी निज स्वरूपमें मगन हैं। वे अरहन्त उत्तम क्षमादि दश धर्मके धारक हैं व सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र–रत्नत्रय धर्मके धारक हैं। वे परम शांत हैं। वे परम सुन्दर हैं। उनके भीतर कोई रागादि विकार नहीं है। वे तेरहवें गुणस्थानमें शरीर सहित भी बड़े सुन्दर हैं। उनके शुक्लेश्या होती है। वे अर्हंत परमात्मा सर्व संसारके प्रपंचजालसे वैराग्यवान होते हुए आत्मीक स्वभावमें रमण करनेसे जो परमानन्द रस प्रगट होता है उसमें इस तरह मगन हैं जैसे कोई मदिरा पीकर उन्मत्त होजावे। आत्मानन्दके विलासी भगवानको मदिरा रस मगनकी उपमा इसीलिये दी है कि पाठकोंको बोध होजावे कि अरहन्त परमेष्ठी आनन्दमें मगन रहते हुए किसी प्रकारकी इच्छाको व विकल्प भावको नहीं करते हैं। अरहन्तको वज्र भी इसलिये कहा है कि उनके शुद्ध भावोंसे कर्मके पर्वत चूर्ण होजाते हैं। वे अरहन्त सदा उदयरूप रहते हैं, आयुके अन्तमें शरीर रहित सिद्ध परमात्मा होजाते हैं। ढाईद्वीपके तीसों क्षेत्रोंसे मुक्ति होती है। मुक्त जीव सीधे ऊपरको जाकर लोकके अग्रभागमें ठहर जाते हैं। सिद्धक्षेत्र भी इसीलिये ढाईद्वीपके बराबर ४५ लाख योजनका है। हम भव्योंको ३६० दिन वर्षके होते हैं सब दिन उनकी भक्ति करनी चाहिये। सिद्ध भगवान अनन्त कालतक सिद्धावस्थामें रहेंगे। तीर्थंकर भी तीर्थ प्रचार कर सिद्ध होजाते हैं। जिस क्षेत्रमें जिससमय तीर्थंकर व सामान्य केवली मोक्ष प्राप्त करते हैं-वह समय व क्षेत्र आदरके योग्य है। श्री अरहन्त भगवान तारणतरण हैं, बड़े उपकारी हैं, स्वयं भवसागरसे तरते हैं व उनके उपदेशसे अनेक भव्यजीव धर्म साधन कर मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। श्री अरहन्तका आत्मा स्वात्मरमणमें रमण करता हुआ सिद्धावस्थामें अनन्त काल तक विराजमान रहता है। आप्तस्वरूप ग्रन्थमें अरहन्तकी महिमा बताई है:—

यस्य वाक्यामृतं पीत्वा भव्या मुक्तिमुपागताः। दत्त येनाभयं दानं सत्वाना स पितामह ॥ ३६ ॥
केवलज्ञानबोधेन बुद्धवान् स जगत्रयम्। अनन्तज्ञानसंकीर्णं त तु बुद्ध नमाम्यहम् ॥ ३९ ॥
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्त स्थानमात्मस्वभावजम्। प्राप्त परमनिर्वाण येनासौ सुगतः स्मृतः ॥ ४१ ॥
जन्ममृत्युजरारोगा प्रदग्धा ध्यानवन्हिना। यस्यात्मज्योतिषा राशे सोऽस्तु वैश्वानरः स्फुटम् ॥ ४३ ॥
अच्छेद्योऽनवमेयश्च सूक्ष्मो नित्यो निरंजनः। अजरो ह्यमरश्चैव शुद्धसिद्धो निरामय ॥ ५३ ॥

भावार्थ—जिनके वचनामृतका पानकर भव्यजीव मुक्तिको पाते हैं व जिन्होंने सर्व प्राणियोंको अभयदान दिया है, इसलिये वे अरहन्त पितामह हैं ॥ ३ ॥ जिनने केवलज्ञान नेत्रसे तीन जगको जान लिया ऐसे अनन्तज्ञानको रखनेवाले श्री अरहन्त बुद्धको मैं नमन करता हूँ ॥३९॥ सर्व झगड़ेसे रहित, आत्मीक स्वभावसे उत्पन्न परम निर्वाणके स्थानको जिन्होंने प्राप्त कर लिया इसीलिये उनको सुगत कहते हैं ॥४१॥ जिन्होंने ध्यानकी अग्निसे जन्म, मरण, जरा रोगोंको जला डाला ऐसी आत्म-ज्योतिमई राशिको रखनेवाले अरहन्तको वैश्वानर या अग्नि कहते हैं ॥४३॥ वे अरहन्त परमात्मा छिद नहीं सक्ते, भिद नहीं सक्ते, सूक्ष्म हैं, नित्य हैं, निरञ्जन हैं, अजर हैं, अमर हैं, शुद्ध सिद्ध हैं, तथा सर्व व्याधि रहित हैं।

इस प्रकार यह श्री जिन तारणतरण विरचित ममल पाहुड़ ग्रन्थका तृतीयांश भाषाटीका सहित
मिती आश्विन वदी १४ चौदस गुरुवार वीर संवत् २४६१ विक्रम संवत् १९९२
ता० २१ सितम्बर सन् १९३५ को समाप्त हुआ।

अन्तिम मङ्गलाचरण।

दोहा—मंगल श्री अरहन्त हैं, मंगल सिद्ध महान। आचारज उपझाय मुनि, करो कर्मकी हान ॥ १ ॥
ऋषभदेवसे वीर लौं, चौवीसों जिनराय। वर्तमान युग तीर्थंकृत, नमूँ सदा सिरनाय ॥ २ ॥
स्याद्वाद वाणी नमूँ, आतम रस दातार। पीकर भविजन तृप्त हों, करें पाप संहार ॥ ३ ॥
कुन्दकुन्द मुनिराजको, सुमरूँ वारम्वार। जो प्रसाद अध्यात्मरस, प्रगटो जगत मंझार ॥ ४ ॥
श्री जिन तारण बहुगुणी, आतमरस लवलीन। वन्दन कर गुण मनन कर, बनूं निजात्म प्रवीण ॥ ५ ॥
भवि जीवन हित कारणे, टीका लिखी विचार। पढो पढ़ावो प्रीतिसे, होवे ज्ञान अपार ॥ ६ ॥
अल्पबुद्धिसे ग्रन्थकी, भाषा करी स्वाध्याय। भूलचूक हो बुद्धिजन, क्षमा करो हित लाय ॥ ७ ॥

लखनऊ (अवध)
डालीगंज, जैन बाग मंदिर
ता० २६-९-१९३५।

ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद।

टीकाकारकी प्रशस्ति।

दोहा—लक्ष्मणपुर अवधिहि वसे, अग्रवाल कुल जान।
गोयल गोत्र महानमें, मङ्गलसैन सुजान ॥ १ ॥
ज्ञाता विद्वन् तत्वचित्, समयसार रस लीन।
गुणी सदाचारी विमल, उद्योगी स्वाधीन ॥ २ ॥
तीन सुत मक्खनलालजी, गृही कर्म चित धार।
संतलाल तिन ज्येष्ठ सुत, सीतल तृतिय विचार ॥ ३ ॥
कुछ विद्या लौकिक पढी, किया जगत व्यापार।
धर्मशास्त्र अभ्यास कर, बढ़ा प्रेम चित सार ॥ ४ ॥
बत्तिस वय अनुमानमें, उन्निस सड़सठ वर्ष।
श्रावक व्रत हिय धार कर, फिरूं देश धर हर्ष ॥ ५ ॥
संवत विक्रम उन्निसै, नव्वे दो चित लाय।
जन्मपुरीमें वास किय, वर्षाकाल विताय ॥ ६ ॥
सर्व दिगम्बर जैनने, किया निमन्त्रण धाय।
किया मान वृष भाव धर, आयो प्रेम बढाय ॥ ७ ॥
शत घर जैन दिगम्बरी, अग्रवाल खंडेल।
वसत यहां व्यापार प्रिय, धरें परस्पर मेल ॥ ८ ॥
मन्दिर जैन दिगम्बरी, दोय चौकमें जान।
नेमिनाथ मन्दिर बड़ा, भवियनको सुख खान ॥ ९ ॥
बालक शाला एक है, शाला वृष भी एक।
पूजन पाठ सदा चलै, रखैं धर्मकी टेक ॥ १० ॥

गोविन्द प्रसाद हैं, सन्तूमल वृप लीन।
राधेलाल नेमचन्द, वनवारी सुख लीन॥ ११॥
शम्भूनाथ शिखरचन्द, सुमेरचन्द अनन्त।
फूलचन्द धर्मचन्द हैं, सितावचन्द महन्त॥ १२॥
सुमतिलाल खुन्नीमलं, और वुलाकीदास।
या प्रमाण साधर्मि वहु, रखें धर्म चित वास॥ १३॥
यहियागंज विराजता, मन्दिर एक महान।
औषध शाला जैनकी, चलत करत रुग हान॥ १४॥
वृप शाला दो हैं वनी, रहत पथिक वहु आन।
मुन्नेलाल गृहस्थ हैं, दुर्गादास सुजान॥ १५॥
वरातीलाल गुलावचन्द, वाबू छोटेलाल।
गोपीनाथ जीतमल, सुमेरचन्द सुलाल॥ १३॥
माणकचन्द वकील हैं, गुलावचन्दर सेठ।
सितावचन्द ज्ञानचन्द, उग्रसेन गुण श्रेष्ठ॥ १७॥
गंज स आदत भी वसे, मंदिर एक सुहाय।
सुगनचन्द जौहरीमल, हरखचन्द सुखदाय॥ १८॥
डालिगंज उपवन वना, जिन मंदिर सुखकार।
तेजपाल लादूमलं, प्रेमसुक्ख दुषहार॥ १९॥
इष्टेशन चार वागपर, शाला धर्म महान।
मंदिर भी सुखदाय कृत, मुन्ने कागजि जान॥ २०॥
अजितप्रसाद धर्मात्मा, वकील वहु गुणवान।
गंज गणेज विराजिता, चैत्यालय वृषदान॥ २१॥

ममलपाहुड
॥४१९॥

सड़क बजाजा पर लसे, सुगृह विशेशरनाथ।
चैत्यालय तहं एक है, नमूं नाय निज माथ॥ २२॥
मुन्नेलाल सु कागजी, घर है यहियागंज।
चैत्यालय तहं पर लसै, करै पापको भंज॥ २३॥
इत्यादिक संयोगमें, सुखसे काल विताय।
श्री जिन तारण गुरु रचित, पाहुड़ ममल सुहाय॥ २४॥
अध्यातम गुणगान हैं, पद पद पर रसलीन।
पढ़ जाने समझै अरथ, होवै आतम लीन॥ २५॥
ग्रंथ कठिन भाषा कठिन, तुच्छ बुद्धि अनुसार।
प्रचलित भाषामें लिखा, अर्थ सुगम चितधार॥ २६॥
तारण स्वामि प्रतापसे, टीका हुई विचार।
भूल चूक कछु होय तो, क्षमा करो बुधिधार॥ २७॥
आगासाद निवासि हैं, मन्नूलाल उदार।
अर मथुराप्रसाद हैं, सागर पर उपकार॥ २८॥
प्रेरक ये इस कार्यके, इनहीका उपकार।
यह कछु कारज बन पड़ा, लखा तत्व हितकार॥ २९॥
मंगल श्री जिनराज हैं, मंगल सिद्ध महान।
गुरु पाठक साधू नमू, लहूं ज्ञान सुखदान॥ ३०॥
आश्विन कृष्णा चौदसी, है गुरुवार महान।
चौविस इकसठ वीरमें, पूरण किया सुजान॥ ३१॥

शुभ भूयात्, मगलं भूयात्, हितं भूयात्।

ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद।